* श्रीसरस्वत्यैनमः *



वेद धरातल

लेखक,

गिरीशचन्द्र अवस्थी व्याकरणाचार्य.

प्रधानाध्यापक

(संस्कृत-प्राच्यविभाग, लखनऊ-यूनिवर्सिटी

संपादक,

श्रीदेवाचार्य साहित्यरत्न,

काशी.

प्रथमावृत्ति]   संवत् २०१० वि०   [मूल्य १०) रु०

प्रकाशक—
सतीशचन्द्र अवस्थी एम० ए०,
'वाङ्मय-विहार-प्रकाशन',
बाबूगंज, लखनऊ

मुद्रक—
बजरंगबली गुप्त, 'विशारद'
श्री सीताराम प्रेस, जालपादेवी, काशी.

श्रीवेद्धरातल



गिरीशचन्द्र अवस्थी व्याकरणाचार्य

जिस समय मै काशीस्थ क्वीन्सकालेज में व्याकरणाचार्य मे प्रविष्ट हो अध्ययन कर रहा था, उस समय महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथजी कविराज एम० ए० भी अध्ययन कर रहे थे। एक ही बोर्डिंग मे रहने के कारण उनसे मेरा परिचय था। उस समय वे प्रायः संस्कृतछात्रो से संस्कृत के पुराणग्रंथो से भूगोल की गवेषणा के लिये कहा करते थे। मै भी सुनता था; परन्तु समयाभाव से मेरी प्रवृत्ति उधर न हुई। जब मै अध्ययन समाप्त कर चुका तो कुछ दिनों इधर-उधर पाठशालाओं मे अध्यापन करने के बाद लखनऊ-विश्वविद्यालय मे पहुँचा। यहाँ मुझे पुस्तको की सुलभता के कारण उन्हे पढ़ने की इच्छा हुई। मैने वायुपुराण पढ़ना आरम्भ किया। वायुपुराण मे भूगोल की सामग्री बहुत दिखलाई दी। उसी समय कार्यवशात् मुझे काशी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ मैने श्री कविराजजी के दर्शन किये और उनसे बातचीत की। उस समय वे काशीस्थ क्वीसकालेज मे प्रिंसिपल के स्थान को सुशोभित कर रहे थे। उनसे पता चला कि उक्त प्रयत्न मे अभी तक कोई सफल नही हुआ। मैने आज्ञा ली और लखनऊ आकर कार्य प्रारम्भ किया। फलस्वरूप सामग्री बहुत-कुछ तैयार हो गयी। संस्कृत के ग्रन्थो के साथ-साथ दानपत्रों एवं 'वेदिक इन्डेक्स' के अध्ययन से मुझे भूगोल के विषय मे योरोपियन विद्वानो के मतों के बारे मे ज्ञान हो गया। मि० कनिगहम की 'इन्सेन्ट जागराफी' तथा श्री ह्वेनसाँग,

श्री फाहियान और श्री इत्सिंग इत्यादि के ग्रन्थो से स्थानो के नाम के ज्ञान की आशा उत्पन्न हुई। परंच ग्रन्थनिर्माण की इच्छा संस्कृत मे थी। इसी बीच हिन्दीभाषा ने राष्ट्रभाषा के आसन पर पदार्पण किया और श्रीमान् के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, हेड आफ संस्कृत-डिपार्टमेन्ट, लखनऊयूनिवर्सिटी ने प्रत्येक अध्यापक को नवीन विषय पर बोलने की आज्ञा दी। मैने उनसे हिन्दी मे बोलने की आज्ञा माँगी। उसके लिए कुछ लिखा। मेरी वक्तृता को लोगो ने प्रेम से सुना और हिन्दी मे लिखने की सम्मति दी। मैने भी प्रधान ग्रन्थ संस्कृत मे तथा उसका अनुवाद हिन्दीभाषा मे करने का निश्चय किया। लिखने से पहले सूचीकटाहन्याय से भौगोलिक विषय में वैदिक भाग के भौगोलिक शब्दो के थोड़े होने के कारण पहले उसे ही प्रकाशित करना उचित समझा और उसकी भाषा केवल हिन्दी रखी। मैंने क्रम को श्री डा० मेकडानल कीथ रचित 'वैदिक इन्डेक्स्' के सहारे प्रारम्भ किया। उसमे जो शब्द थे उनको लिया, और जो नहीं थे तथा वैदिक संस्कृतग्रन्थो में उनका संकेत मिलता था, उनको भी लिया और कुछ शब्द आवश्यकतानुसार प्रासंगिक भी लिये। मेरा किसी भी विद्वान से द्वेष नहीं। जैसा उन लोगो ने समझा लिख गये और जैसा मै समझ रहा हूँ, लिख रहा हूँ। मनुष्य से प्रमाद होना कोई कठिन नहीं है। यदि मुझसे या मेरे सहायक अनुवादको से कोई प्रमाद हो गया हो तो उसको विज्ञजन क्षमा करेगे। साथ ही; मुझे सूचित करने की भी कृपा करेगे जिससे मै अग्रिम संस्करण मे ठीक कर दूँ। परञ्च मेरे लेख पर मत्सर और द्वेष न करे कि यह एक अंग्रेजी न जाननेवाला इस प्रकार लिख रहा है।

अस्तु, आजकल के प्रायः संस्कृत-विद्वान् प्राचीन भौगोलिक ज्ञान से यहाँ तक शून्य हो रहे है कि पंचाल शब्द से पंजाब को

समझ रहे है। इसी कारण टीकाकार भी ठीक ज्ञान न होने से उनपर ठीक तरह प्रकाश नही डाल सके। ऐसी दशा मे उनके मुद्रण और लेखन मे लेखको ने मनमाना प्रमाद किया। यहाँ तक कि पूर्व के देश पश्चिम मे लिख गये एवं दक्षिण के उत्तर मे लिख गये। एक-एक शब्द कई स्थानो पर लिख गये। जैसा कि बृहत्संहिता में कश्मीर को ईशान मे लिखा है। परञ्च यह वराहमिहिर का प्रमाद नहीं है, यह लेखको के प्रमाद का फल है। ऐसी दशा मे प्राचीन ग्रन्थों के मूलमात्र ही शरण है और ज्ञान देने के लिये ईश्वर शरण है।

प्राचीन ग्रन्थो मे वैदिक भाग मे कुछ शब्द मिलते है और कुछ लौकिक भाग के पुराणादि मे भी मिलते है। ये ग्रन्थ कई स्थानों से मुद्रित है और उनमे पाठान्तर भी मिलते है। वाल्मीकीय रामायण चार स्थानों से मुद्रित मैंने देखी, यथा—गुर्जर प्रेस (गुजराती प्रेस), निर्णयसागर, लाहौर और इटली मे मुद्रित। इटली का पाठ वंगपाठ कहलाता है। लाहौर का पाठ कश्मीरपाठ कहलाता है। बाकी दोनो पाठ दाक्षिणात्यपाठ कहे जाते है। इनमे परस्पर बहुत कुछ अन्तर मिलता है और पाठ भी भिन्न-भिन्न है। कथाएँ एक हैं और कहीं पर उनमे आंशिक अंन्तर है। कौन पाठ सत्य है, यह कहना कठिन है। यही दशा महाभारत की भी है। एक महाभारत निर्णयसागरप्रेस मे, दूसरा मद्रास मे, तीसरा चित्रशालाप्रेस, पूना मे मुद्रित है। चौथा सुथंकर का महाभारत पूना मे इस समय मुद्रित हो रहा है और उसके बहुत से पर्व मुद्रित हो भी चुके है। इनमे इसका पाठ अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है। क्योंकि इसको एक विद्वन्मंडली शुद्धकर छपवा रही है। परंच इसके भी पाठ पूर्ण शुद्ध हो, यह निश्चित नहीं इसका कारण निम्नलिखित है। महाभारत उद्योग पर्व ११३।२ ।

राजा ययाति का विशेषण 'वत्सकाशीशः' दिया गया है, जिसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि ययाति वत्स और काशी दोनो के राजा थे। साथ ही; उसी महाभारत मे ११५।१ मे उसी समय दिवोदास को काशी का राजा लिखा है। जब दिवोदास काशी के राजा है, तो ययाति 'वत्सकाशीशः' किस प्रकार हो सकते है? इस बात पर विद्वानो ने ध्यान न देकर मुख्य पाठ मे 'ययातिर्वत्सकाशीशः' लिख दिया और 'ययातिः सूर्यसंकाशः' इस मुख्य पाठ को टिप्पणी मे गौणरूप से दिखलाया। इसी प्रकार—

पार्श्वेशशस्य द्वे वर्षे उभये दक्षिणोत्तरे
कर्णौ तु नागद्वीपं तु काश्यपद्वीपमेव च।
ताम्रवर्णः शिरोराजन् श्रीमान् मलयपर्वतः॥ भी० प० ७५२

यह पाठ पद्मपुराण तथा समस्त मुद्रित महाभारतो मे है। अन्तर इतना है कि कही-कही 'ताम्रपर्णः' पाठ मिलता है। इसमे 'श्रीमान् मलय पर्वतः' का अर्थ महाभारत के टीकाकार सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री नीलकण्ठशास्त्रीजी ने बिल्कुल नही समझा। टीका प्रत्येक कठिन शब्द की होनी चाहिये। इससे उन्होने इसको वेदान्त मे ले जाकर बड़े परिश्रम से इसकी मनमानी व्याख्या की। परंच उस समय उनके विचार मे यह नहीं आया कि वर्णन तो यहाँ सुदर्शनद्वीप की छाया का है जो चन्द्रमा मे शशरूप से दिखलायी पड़ती है तथा उसके द्वारा सुदर्शनद्वीप के भूगोल का वर्णन है। सुदर्शनद्वीप जम्बूद्वीप का पर्याय है। इससे यहाँ वेदान्त के विचार की क्या आवश्यकता है? श्री नीलकंठजी पर श्रद्धा रखनेवाले बेचारे संस्कृतज्ञ वही ठीक समझ लेते है। इसी कारण से सुथंकर के महाभारत की संशोधकमंडली भी मक्षिकास्थानेमक्षिकादेशः करके कृतार्थ हो गयी, और मन मे इस पाठ को अशुद्ध समझते हुए भी उन लोगो ने भौगोलिक ज्ञानाभाव से ठीक निर्णय न कर सकने के

कारण मौनावलंबन करना ही उचित समझा। यहाँ वास्तविक पाठ होना क्या चाहिये? महाभारत मे धृतराष्ट्र के प्रश्न पर संजय भूमि का वर्णन कर रहे हैं। उसमे भूमि के मध्य में मेरु माना है। मेरु के चारों ओर इलावृत है। इलावृत की चारों सीमाओं पर चार पर्वत हैं। इलावृत के पूर्व भद्राश्व है, जिसकी सीमा पूर्वी समुद्र है। इलावृत के पश्चिम मे केतुमाल माना है, उसकी सीमा समुद्र-पर्यन्त है। उत्तर की सीमा में नीलपर्वत है। उसके उत्तर श्वेतपर्वत है। इन दोनों पर्वतों के बीच मे रम्यक् नाम का वर्ष है। श्वेतपर्वत के उत्तर शृंगवान् नाम का पर्वत है। इनके बीच मे हिरण्मय नाम का वर्ष है। शृंगवान्पर्वत से उत्तर समुद्रपर्यन्त उत्तरकुरु नामक वर्ष है। इसका आकार धनुषाकार है। धनुष् की प्रत्यञ्चा के स्थान मे शृंगवान् नाम का पर्वत है और यष्टि के स्थान मे समुद्र है। यह उत्तरवर्ष भी कहा जाता है। इलावृत से दक्षिण दिशा मे निषध-पर्वत है। निषध के बाद हेमकूटपर्वत है। इन दोनों पर्वतों के बीच मे हरिवर्ष है। हेमकूट से दक्षिण हिमालय है। हिमालय और हेम-कूट के बीच का भाग किंपुरुषवर्ष कहा जाता है। हिमालय से दक्षिण समुद्रपर्यन्त का देश भारतवर्ष कहा जाता है। इसका वर्णन धनुषाकार है। इसको हैमवत्वर्ष भी कहते है। इसमें रोदा के स्थान मे हिमालय है और यष्टि के स्थान मे समुद्र है। यह दक्षिणवर्ष कहा जाता है। अब, महाभारत का अर्थ दिखला रहा हूँ। महाभारत का पाठ 'श्रीमान् मलयपर्वतः' के स्थान में 'ग्रीवा मलयपर्वतः' यह वास्तविक था। और सुथंकर की टिप्पणी के पाठन्तरों मे अब भी लिखा हुआ है। चन्द्रमा मे सुदर्शनद्वीप की छाया शशाकृति मे दिखलायी पड़ती है। दोनो दक्षिणोत्तरवर्ष; अर्थात् उत्तरकुरु और भारतवर्ष उस शशक के दोनों पार्श्व है। शशाक का शिर ताम्रवर्ण या ताम्रपर्णद्वीप; अर्थात् सिंहल है। सिंहल के इधर-उधर के दोनों

नागद्वीप और काश्यपद्वीप शशक के दोनों कान हैं और मलय-पर्वत ग्रीवा (गर्दन) है। इस प्रकार की बहुत-सी त्रुटियाँ मूलपाठो मे भरी पड़ी हैं, जिन्हे स्थानाभाव से मै दिखलाना नहीं चाहता। इसी प्रकार भविष्यत्पुराण की श्लोकसंख्या सभी पुराणो मे ५४ सहस्र लिखी है। परंच इस मुद्रित भविष्यत्पुराणमे ५० सहस्र लिखी है और श्लोक भी उतने नहीं है। एक पर्व मे भविष्यत् का वर्णन भी इतना विचित्र है कि उसपर विश्वास नही किया जा सकता। इससे यह वास्तविक भविष्यत्पुराण नहीं प्रतीत होता है। वास्तविक भविष्यत्पुराण को खोजना चाहिये[1]। इस प्रकार मुद्रित और लिखित पुस्तको मे बहुत से पाठ अशुद्ध हैं। जब तक इनका संशोधन न हो जाय तब तक ठीक पाठ क्या है, इसका पता चलना असम्भव है। संशोधन के लिये प्रकार यह होगा कि प्रत्येक प्रान्त से पर्याप्त संख्या मे पुस्तके एकत्र की जायें और उनके पाठ मिलाये जायँ। योग्य विद्वान् एकत्र हो उनका निर्णय करे। मै भी उसमे सहायता देने को प्रस्तुत रहूँगा। मैने यथासम्भव स्वबुद्धि के अनुसार संशोधन करके इस समय काम चलाया है।

क्षेमेन्द्रकृत 'लोकप्रकाश' को जनरल कनिंगहम ने भौगोलिक ग्रन्थ लिखा है। इससे मै भी उसे बहुत-कुछ समझता था। परंच सन् १९५२ के अक्तूबर महीने मे उसकी एक प्रति कश्मीर-पुस्तक-

(१) यहाँ के सुप्रसिद्ध एडवोकेट श्रीब्रजनाथ शर्माजी का कहना है कि "गोवर्द्धनमठाधीश श्रीशंकराचार्य भारतीकृष्णतीर्थजी ने १९२० ई० में मुझसे कहा था कि भविष्यपुराण शृंगेरीमठ में हस्तलिखित रखा है। उसमें श्रीमहारानी विक्टोरिया का जया नाम लिखा है और स्वराज्य मिलने का समय भी लिखा है। श्रीशंकराचार्य के कथनानुसार स्वराज्य उसी दिन मिला।" अब, गवर्नमेण्ट से हमारी प्रार्थना है कि उसको स्वयं मुद्रित कराकर प्रकाशित करे।

माला में छपी हुई अपनी कालेज-लाइब्रेरी में मिल गयी। मैंने उसको देखा। उसमें भौगोलिक वर्णन कश्मीर के विषय में लिखे गये हैं। कुछ ग्रामों के नाम आये हैं और शाकद्वीपादि सप्तद्वीपों का नाममात्र का वर्णन है। साथ ही; हुन्डी, तमस्सुख (प्रोनोट) इत्यादि के लिखने का भली प्रकार वर्णन है। संस्कृत के विद्वानों के लिये इन लौकिक शब्दों के ज्ञानार्थ यह बड़ी अच्छी वस्तु है और प्राचीन नामों के हिन्दी-पर्याय शब्द ढूँढ़नेवालों को उससे कुछ सहायता मिल सकती है। भोजकृत 'प्रतिदेश व्यवस्था' एवं मुंजकृत 'प्रतिदेश व्यवस्था' तथा राजशेखरकृत 'भुवनकोष' के नाम-मात्र ही सुनाई पड़ते हैं। जनरल कनिंगहम ने एक पंडित द्वारा लिखे गये एक भौगोलिक ग्रन्थ का वर्णन, जो कि मुसलमान बादशाहों के समय[१] में लिखा गया है, किया है और उसे कलकत्ते की लाइब्रेरी में स्थित लिखा है। परंच हमारे यहाँ के लाइब्रेरियन के पूछने पर कलकत्ता-कालेज के प्रिंसिपल ने वहाँ उक्त पुस्तक का होना स्वीकार नहीं किया।

कहीं-कहीं पर टीकाकार भी अयोग्यता के कारण या प्रमादवश[२]

---

(१) सुराध्यक्ष प्रकरण २५।४६।

(२) मल्लिनाथ ने मेघदूत श्लोक १ की टीका में रामगिरि को चित्रकूट माना है। वह असम्भव होने से नहीं हो सकता; क्योंकि मेघदूत में उससे उत्तर दिशा में नर्मदा का वर्णन है। विचार करने पर वह रामटेक पहाड़ी है, जो नागपुर के समीप है। इसी प्रकार दशपुर को रन्तिदेव की राजधानी (चर्मण्वती) के वर्णन में मेघदूत ४७ की टीका में लिखा है। वह उनका भ्रम है, जिसका कि कारण है—'रन्ति देवस्य कीर्तिम्' यह पाठ और 'उत्स' के समीप दशपुर का वर्णन। क्योंकि चम्बल का उद्गम दशपुर से १३२ मील है। दशपुर का रन्तिदेव की राजधानी

विरुद्ध व्याख्यान करते हुए देखे जाते है। जैसे, अर्थशास्त्र के टीकाकार ने 'कापिशायन' शब्द को 'कपिशा' शब्द से बनाया है और उसे उड़ीसा की कपिशा माना है, जिसका रघुवंश मे वर्णन है। वस्तुतः यह शब्द 'कापिशी' से बनता है, जिसके लिये पाणिनि ने 'कापिश्याःष्फक्' सूत्र बनाया है। वैजयन्तीकोष[1] मे शरावती के दक्षिण-पूर्व भाग को प्राच्य और उत्तर-पश्चिम भाग को उदीच्य तथा प्राच्य और उदीच्य के बीच मे मध्यदेश माना है। ग्रन्थकार ने यह विचारने का कष्ट नहीं किया कि इन दोनों प्राच्य और उदीच्य के बीच में शरावती की धारा ही हो सकती है, तो क्या उनके मध्य मे मध्यदेश शरावती की धारा मे था ? इसलिये विना समझे केवल कोष को प्रमाण मे लेना उचित नहीं।

ग्रीकनिवासियो के ग्रन्थों के बल पर भूगोल-विचार का बहुत बड़ा भाग आज हिस्ट्री-संसार मे चल रहा है, यह भी चिंतनीय है। क्योकि ग्रीकनिवासियो के उच्चारण अस्फुट होने के कारण उनसे मनमाने शब्दो की कल्पना विद्वानो ने की है और वे सत्य की तरह माने जा रहे है। जनरल कनिंगहम ने 'गन्धार' के वर्णन मे कहा है कि सिकन्दर के साथियो के लेख परस्पर विरुद्ध और असम्बद्ध है। इससे यह पता चलता है कि एरियन इत्यादि ने जो कुछ लिखा है, वह परस्पर मिलता नही। यदि वे लोग सिकन्दर के साथ उसकी विजययात्रा मे चले होते तो समस्त वर्णन

होना कहीं भी वर्णित नहीं है। रन्तिदेव की राजधानी कहाँ थी, इसका कोई वर्णन ही नही है। महाभारत मे द्रोणपर्व षोडसराज्योपाख्यान के वर्णन से चम्बल के उद्गम के समीप वह प्रतीत होती है, जो कि दिग्थान नाम के स्थान के समीप है।

(१) भूमिकाण्ड देशाध्याय २२।

एक होते। परंच देखे हुए मे भी जब उनके लेखों मे विरोध है, तो हम अवश्य ही उनको सिकन्दर के साथ चलते हुए लिखे नहीं मान सकते। और भी, 'वरण' का वर्णन जो कि 'ओरनोस' नाम से किया गया है, वह वास्तविक ओरनोस कहाँ है, इसपर जनरल कनिंगहम ने बड़ी खोज करके अन्त मे इसे रानीघाट ठहराया। परंच वह उनके वर्णन से नहीं मिलता। अन्य लोगो ने भी विभिन्न स्थानो को 'ओरनोस' माना है; परंच 'वरण' अटक के सामने सिन्धुनदी के तट पर है—यह नन्दलाल डे ने ए. पी. ग्राफिया के आधार पर स्पष्ट कर दिया है, और आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा लिखा है। ग्रीक लोगों का 'ओरनोस' पर्वत पर था और वह पर्वत पर नहीं है।

ग्रीक लोगो ने महाराज सिकन्दर का संग्राम महाराज पोरुस के साथ लिखा है और संग्रामस्थल का वर्णन झेलमनदी के पूर्व मे किया है, जो पोरुस का निवासस्थान था। हिस्ट्री के समस्त विद्वान मुक्तकंठ से पेशावर को पुरुषपुर कहते है, जो कि महाराज पुरुष की राजधानी था। पुरुष और पोरुस मे कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता है। इससे पोरुस के साथ संग्राम पेशावर मे दिखलाना उचित था। यदि ये लोग साथ मे होते तो संग्राम को पेशावर मे दिखलाते। सिकन्दर रावी उतरकर पूर्व को न बढ़कर लौट पड़ा और उसने धोखे मे अपने स्थान मे बैठे हुऐ मालवगण पर धावा किया। हिस्ट्री के समस्त विद्वान् अवन्तिप्रान्त को मालवा मानने मे, मालवगण को वहाँ जाने मे कारण मानते है। जब से मालवगण ने उस प्रान्त का विजय किया तब से वह प्रान्त मालवा कहलाया। हमारा यह कहना है कि पंजाब का वह प्रान्त जो आज भी 'मालवा' नाम से प्रसिद्ध है और लुधियाने आदि के प्रान्त उसमे सम्मिलित है, उनका मालवा नामकरण मालवगण के रहने के ही

कारण हुआ था। उसमे बैठे हुए मालवगण के ऊपर सिकन्दर के धावे का होना कैसे सम्भव है ? इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सिकन्दर का विजय घर बैठे लिखा गया। लेखको ने व्यवसायियों द्वारा नगर और राजाओ के नाम सुने थे। राजभक्ति मे उन्मत्त हो उन लोगो ने सिकन्दर का कालपनिक विजय-वर्णन करके अपने को कृतकृत्य किया। इससे सिद्ध होता है कि सिकन्दर भारत मे नही आया। यदि आया होता तो सिकन्दर का नाम यहाँ के किसी काव्य मे अवश्य आया होता। अतः ग्रीकनिवासियों को आधार मानकर सभी कल्पनाएँ सत्य हों, ऐसा नही हो सकता।

हिस्ट्री के बहुत बड़े आधार के पात्र चीन के यात्री है। उनमे फाहियान और ह्वेनसांग सर्वप्रधान है। जनरल कनिंगहम की पुस्तक ह्वेनसांग के लेख के आधार पर आधारित है। परंच उसमें कोई स्थल ऐसा नही है जिसमें दिशा और नाप ठीक हो। जनरल कनिंगहम ने मनमानी कल्पनाओ द्वारा उसे तैयार किया है, जैसा कि देखने से मालूम होता है। मैने इन लोगो के लेखानुसार अपने प्रान्त मे जो कुछ मिलान किया, उससे मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन विद्वानो ने चीन मे बैठकर अपनी याददाश्त पर ग्रन्थों को लिखा। इनके पास कोई नोट नही था। ह्वेनसाग ने भाषा न समझते हुए भी अपनी यात्रा के समस्त प्रान्तो की संस्कृति, नगरो और देश की लम्बाई-चौड़ाई एवं लोगों के व्यवहार इत्यादि को लिखा है। मेरी सम्मति मे भाषा विना समझे इन वातो का ज्ञान असम्भव है। इससे इनका वर्णन अधिकतम कालपनिक है।*
फाहियान अपनी पुस्तक मे काशी से चलकर कौशाम्बी गये। परंच काशी से चलते समय उत्तर-पश्चिम को चले और कौशाम्बी

---

* ५। २१३।

पहुँच गये, जो कि काशी से दक्षिण-पश्चिम इलाहाबाद के समीप है। इसी प्रकार कन्नौज को गंगा से उत्तर मानते है, जो दक्षिणी तट पर है। ह्वेनसांग गंगा के जल को पहले[1] देखते समय काला लिख रहे है, जो श्वेत है। डा० ह्वील ने अपने व्याख्यान मे 'काला' अर्थ किया है और डा० वाटर ने 'गॅदला' अर्थ किया है। किन्तु गंगा का जल श्वेत है। संकिशा से कन्नौज[2] उत्तर-पश्चिम माना गया है जो कि उत्तर-पूर्व मे है। वे कन्नौज का नाम 'पुष्पपुर' कहते है, जो कि पटना का नाम है। इन बातों से इन्ही के आधार पर किसी बात का विश्वास कर बैठना भयंकर भूल करना है।

योरोपियन विद्वानो के कथन पर विचारः—

वैदिक इन्डेक्सकार 'निपङ्गधि' के व्याख्यान में तलवार को वैदिक शस्त्र नहीं मानते, जो उससे तीसरे मंत्र मे 'नमोसिमद्भ्यः' से शुक्ल यजुर्वेद अ० १६ मे स्पष्ट है, और इसका अर्थ है 'तलवार को धारण करनेवाले रुद्रो के लिये नमस्कार'। ऐतरेय ब्राह्मण ३३।४ के 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' मे तलवार लिये हुए अजीगर्त का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद १०।२२।१० मे 'कार्पाण' शब्द 'तलवार' के अर्थ मे आया है। और वैदिक इन्डेक्स के 'नगरिन्' के व्याख्यान मे उसको तैत्तिरीयारण्यक १।११।१८ तथा ३१।४ मे आया हुआ मानते हुए यह लिख रहे है—"पूर्व वैदिक साहित्य मे 'नगरिन्' ऐसा व्यक्तिवाचक संज्ञा के विशेषणरूप मे आया है। परन्तु तैत्तिरीयारण्यक १।११।१८ तथा ३१।४ मे शहर के रूप मे आता है। बाद के भी साहित्य मे कई बार इसी अर्थ मे आता है।" अब, विचारणीय है कि मोहनजोदड़े के वर्णन मे डा० कीथ यह घोषित कर रहे हैं कि आर्य लोग नगर बनाना नहीं जानते थे और ऋग्वेद मे कई

(१) ह्वेनसांग का 'भारत भ्रमण' ४।१६१। (२) वही पुस्तक ४।२११

स्थानो पर आये हुए 'पुर' शब्द का अर्थ 'किला' कर रहे है। इनका कौन-सा कथन सत्य है, यह हमारी समझ मे नही आता।

योरोपियन विद्वान् लोग भाषा देखकर उसके समय का निर्णय अपनी बुद्धि से करते है। इसी आधार पर इन्होंने ऋग्वेद को सबसे पहले बना माना है और उसके बाद अन्य वेद बने। ब्राह्मण और उपनिषद् भी उनके (वेदो के) बाद बने। ऋग्वेद में जिन-जिन नामो का वर्णन है, उससे अधिक वे लोग देश और नदियों को नही जानते थे, इससे ऋग्वेद मे न लिख सके। ऋग्वेद के बनने के समय ये लोग पंजाब मे थे, इससे आगे का न लिख सके। ये लोग समुद्र को नही जानते थे, यह भी कई विद्वानो का मत है। जिमर समुद्र का जानना मानते है; परंच आर्य लोग समुद्र की तरंगो को नही जानते थे। सिन्धुनदी भी जानते थे; परन्तु सिन्धु के मुहाने को नहीं जानते थे, इत्यादि। अब, विचारणीय है कि ऋग्वेद १०।९०।९ मे सामवेद के साथ यजुर्वेद का नाम आया है और ऐतरेय ब्राह्मण २५।७।३ मे यजुर्वेद जाननेवाले ऋत्विग् का नाम "अध्वर्यु" लिखा है। ऋग्वेद १०।१०७।६ मे 'यजन्य' शब्द यजुर्वेद के ज्ञाता के लिये आता है। ऋग्वेद २।१४।१ से ११ तक प्रत्येक मंत्र मे 'अध्वर्यु' शब्द आया है। ३।७।७ तथा ७।२।४ मे भी 'अध्वर्यु' शब्द दिखलाई पड़ता है। और ऋग्वेद ३।५३।११ मे यैजवन् सुदास् के अश्वमेधयज्ञ का वर्णन है और अश्वमेध की पद्धति, जिसके द्वारा अश्वमेधयज्ञ होता है, यजुर्वेद मे है। इसी प्रकार ऋग्वेद ९।११।२ मे तथा २।४३।२ मे सामवेद के गान का वर्णन है। ऋग्वेद १०।९०।९ मे ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद की उत्पत्ति का साथ-साथ वर्णन है। ऋग्वेद १।१७३।१, १०।९३।८, १०।५९।२ तथा १०।३६।५ मे सामवेद के गान का वर्णन है। ऋग्वेद १०।८५।११, १।१०७।२ तथा १०।१३०।२ में सामवेद का नाम आया है।

ऋग्वेद १।१६४।२४ मे गायत्रसाम और त्रैष्टुभसाम का वर्णन है। ऋग्वेद ७।२४।३ मे आगूपसाम का वर्णन है। ऋग्वेद १।१६४।२५ मे जगत्साम, रथन्तरसाम और गायत्रसाम का वर्णन है। ऋग्वेद १।१८१।१ मे रथन्तरसाम का नाम आया है। ऋग्वेद ८।६६।१, ८।८६।१, १०।१८१।२, ८।८६।७ तथा ८।६८।१ मे बृहत्साम का नाम आया है। ऋग्वेद ८।२६।१० मे महि (महत्) साम का नाम आया है। तब भी 'ऋग्वेद सब वेदो से पहले बना'—यह घोषणा कहाँ तक ठीक है, विद्वान् लोग इसपर विचार करें।

समस्त संसार की यह प्रथा है कि लेखक अपने लेख मे प्राकरणिक बातो को लिखा करता है और अप्राकरणिक को छोड़ देता है। इसी लिये वेदो मे जो प्राकरणिक बाते है उनसे भिन्न अप्राकरणिक बातो को छोड़ देना उचित ही है। अतः उनके न लिखने से उनका अज्ञान-कल्पन नही हो सकता। वेदो मे प्रधानरूप से कर्मकांड और ज्ञानकाड दो भाग है। कर्मकांड मे यज्ञो का वर्णन और ज्ञानकांड मे ब्रह्मज्ञान का वर्णन है। किसी इतिहास या भूगोल आदि का वर्णन प्रधानरूप से नहीं है। प्रकरणवशात् कहीं-कहीं इतिहास, देश और नदियो के नाम आदि उल्लिखित है। जिनके वर्णन की जहाँ-कही आवश्यकता पड़ी, उनका नाम वहाँ लिखा गया तथा आवश्यकता न होने से अन्य नाम नही लिखे गये। इससे जिन नदियो के नाम उनमे नहीं मिलते है, उनके संबंध मे उनका अज्ञान कैसे कल्पन किया जा सकता है? इसी ग्रन्थ मे 'समुद्र' के वर्णन मे समुद्रो का निदर्शन दिखलाया है एवं समुद्र की लहरो का भी वर्णन दिखलाया गया है। गंगा, यमुना, सरयु, श्वेतयावरी (शोण) का वर्णन तथा चेदि और कीकट देशो का वर्णन होते हुए भी ऋग्वेद के समय आर्य लोग पंजाब के आगे नही जानते थे, योरोपियन विद्वानो का यह कथन कितना सत्य है, इसपर विद्व-

ज्जन विचार करें।

विन्टरनीज[1] ने लिखा है कि ऋग्वेद मे व्याघ्र (Tiger) का नाम नही है और धान का भी नाम नहीं। आर्य लोग जब बंगाल मे पहुँचे तब इन्होने इन दोनो के नाम जानकार अथर्ववेद मे लिखे। परंच यह बात युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती। क्योंकि ऋग्वेद[2] मे 'वारण' शब्द व्याघ्रअर्थ मे आया है और सायणाचार्य ने उसका 'व्याघ्र' अर्थ किया है। यद्यपि अन्य स्थानो मे 'वारण' का अर्थ 'हाथी' भी होता है तथापि वहाँ हाथी का सम्बन्ध नहीं बैठता है और यजुर्वेद वाजसनेयीसंहिता[3] मे 'व्याघ्र' शब्द लिखे मिलते है तथा शिमला एवं उत्तरप्रदेश के जंगल व्याघ्रों से भरे पड़े है। तब भी आर्य लोगों ने पंजाब और यू० पी० मे व्याघ्र को नही देखा और बंगाल मे ही जाकर देखा, यह कितनी पते की बात है।

ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ६ खण्ड ८ मे विस्तार से पशु का प्रतिनिधि पुरोडाश को बनाने के लिये एक आख्यायिका लिखी है। वह इस प्रकार है—"देवताओ ने यज्ञ मे मनुष्य को पशु बनाकर यज्ञ का प्रारम्भ किया। उस समय मनुष्य मे जो यज्ञ के

---

(१) विंटरनीज—हिस्ट्री आफ इन्डियन लिट्रेचर १।६४।

(२) ऋग्वेद १०।४०।४ में सायण ने यह मन्त्रार्थ किया है:—'हे अश्विनीकुमारो! जिस प्रकार वारण मृगेव (शार्दूल) मृगण्यवः (मृगों के शिकारी) मृगो को खोजा करते है उसी प्रकार दिन-रात हम आपको हवि द्वारा नियम से आह्वान करते है, इत्यादि।' हाथी मृगो का शिकार नहीं करते, इससे यहाँ 'हाथी' अर्थ का सम्भव नहीं। इससे यहाँ 'शार्दूल' ही लिया जायगा।

(३) १४।६ में 'व्याघ्र' तथा २१।३६ तथा १६।६२ मे 'व्याघ्र-लोम' शब्द आया है। २४।३३ में 'शार्दूल'।

योग्य पवित्र भाग था, वह बाहर निकलकर घोड़े में प्रविष्ट हो गया। तब देवताओं ने घोड़े को पशु बनाया। तब वह पवित्र भाग मेष मे घुस गया। तब देवताओ ने मेष को पशु बनाया। तब वह भागकर बकरे मे प्रविष्ट हो गया। अनंतर देवताओ ने बकरे को पशु बनाया। तब वह पवित्र भाग पृथ्वी मे घुस गया। देवता लोग उसके पीछे गये। वहाँ से वह भाग न सका और व्रीहि होकर जमा। इससे यज्ञ मे पशु के स्थान मे पुरोडाश से कार्य प्रारम्भ हो गया।" व्रीहि के चावलो से पुरोडाश बनता है। यह पुरोडाश शब्द ऋग्वेद ३।२८।१ से ६ तक आया है एवं ३।८१। २ मे भी पुरोडाश का नाम आया है[1]। इस सम्बन्ध का विन्टरनीज का कथन नितान्त अमान्य है।

राथ ने सेंट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी मे लिखा है:—"आर्यों ने हिन्दुस्तान मे आकर ही इस हाथी जानवर को देखा और जाना। इसी से हस्ती का विशेषण ऋग्वेद मे मृग दिया है, जो आश्चर्य का बोधक है (वे. इ.—मृग=हस्ती)। परंच यह बात ठीक नहीं है। क्योकि 'हस्ती' शब्द का अर्थ 'हस्तवाला' होता है और 'हस्त' के अर्थ 'हाथ' और 'हाथी की सूँड़' दोनो होते है। 'हस्त' होने से अन्य लोग हस्ती (हाथी) नही कहे जाते, उसका कारण शब्द का योगरूढ़ होना है। जैसे, कीचड़ मे पैदा होने पर भी 'पंकज' शब्द मेढ़क को नही बतलाता, उसका अर्थ 'कमल' ही होता है। उसी प्रकार यह शब्द भी अन्य सभी हाथवालो को न बतलाकर

---

(१) वाजसनेयी संहिता १८।१२ में व्रीहि और नीवार दोनो शब्द आये हैं। और देहरादून का चावल संसार में प्रसिद्ध है तथा यू० पी० से बिहार तक चावल अधिक मात्रा में पैदा होता है, तो भी बंगाल में धान को जाना। यह कथन कहाँ तक सत्य है।

'हाथी' का ही बोध कराता है। ऋग्वेद १।६४।७ मे 'हस्ती' शब्द से 'हाथी' ही लिया जाता है। इसका 'मृग' विशेषण इसे अन्य हाथवालो से पृथक् करता है, न कि मृग शब्द आश्चर्य-बोधन कराता है। यदि यह आश्चर्य को प्रकट करता तो सूकर का वर्णन जो ऋग्वेद[1] मे है, वही जब अथर्ववेद[2] मे आता है तब उसका 'मृग' विशेषण मिलता है। यदि यह आश्चर्य का द्योतन करने-वाला शब्द होता तो अथर्ववेद की अपेक्षा इसे ऋग्वेद में आना चाहिये था।

यूनीवर्सिटी के कुछ विद्वान् ऋग्वेद में मूर्धन्य वर्णों का अभाव बतलाते चले आ रहे हैं। परंच विचार करने पर यह सिद्धान्त ठीक नही प्रतीत होता। क्योकि ऋग्वेद मे मूर्धन्य वर्ण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। मूर्धन्य वर्ण 'मूर्धा' स्थान से उच्चरित होनेवाले ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष है। ऋग्वेद के नाम में ही प्रथम 'ऋ' अक्षर मूर्धन्य है। यदि देखा जाय तो ऋग्वेद मे कोई भी ऋचा ऐसी न मिलेगी जहाँ कोई मूर्धन्य अक्षर न हो। यथा, ऋग्वेद १।१।१, १।१।२, १।२।२, १।२।६, १।२।८, १।४।६, २।१।२, ३।१।१०, ३।१०।५, ४।११।५, ५।७।२, ६।२४।१, ७।४८।१, ८।२।१४, ६।७४।६, १०।१०।६ इत्यादि में 'ऋ' अक्षर आया है।

१।४।६, १।७।८, १।८।२, १।५४।२, २।२।१०, ३।४३।७, ४।१७।६, ५।१६।३, ६।१८।२, ७।५।५, ८।२४।१६, ६।२२।२, १०।६८।१० इत्यादि में 'टकार' आया है।

१।८।१, १।११।६, १।१४।६, १।५५।७, २।७।१, ३।२१।३, ४।३६।७, ५।६५।२, ६।१५।१३, ७।७७।५, ८।६।१३, ६।६७।२७, १०।१५।८ इत्यादि में 'ठकार' आया है।

---

(१) ७।५५।४।
(२) १२।१।१८।

१।१।२, १।१२।३, १।१२।६, १।११०।६, १।११८।६, २।१८।४, ३।५६।२, ४।१८।२२, ५।२२।१, ६।१।२, ७।८२।८, ८।६६।१३, ९।६६।१, १०।६४।२ इत्यादि में 'डकार' आया है।

१।२७।२, १।२७।१०, १।६४।८, १।१०५।६, १।१२४।१३, २।२४।१, ३।१६।३, ४।२१।१०, ८।२५।१४, ९।६१।२३, १०।८५।२५ इत्यादि में 'ढकार' आया है।

१।१।८, १।२।६, १।३।८, १।४।८, १।५।४, २।१।१२, ३।१६।२, ४।२।१०, ५।२।१२, ६।१८।१, ७।१।२, ८।४।७, ९।२५।७, १०।८५।७ इत्यादि में 'णकार' आया है।

समस्त ऋग्वेद मे शायद ही ऐसी कोई ऋचा हो जिसमें 'रेफ' न आया हो।

१।२।२, १।१।३, १।१।६, १।२।१, १।३।२, २।३।३, ३।१६।४, ४।४६।१, ५।४०।४, ६।१७।१०, ७।२४।३, ८।७४।११, ९।६८।७, १०।५१।३ मे 'षकार' आया है। अब, विद्वान् लोग स्वयं विचार करें कि योरोपियन विद्वानो का यह सिद्धान्त कहाँ तक समीचीन है।

"ओरिजिन एन्ड डेवेलपमेन्ट आव दी बंगाली लेंगवेज" (कलकत्तायूनीवर्सिटी प्रेस, १९२६) प्रथम भाग के पृष्ठ ४४-४५ मे कुछ विद्वानो के मत दिये हैं। उनमें मैकडानल की प्रसिद्ध पुस्तक 'वेदिक ग्रामर' मे लिखा यह बतलाया गया है—"आर्यों ने विहार मे पहुँचकर रेफ का ज्ञान किया और उसका असर ऋग्वेद और यजुर्वेद तक पहुँचा।" अब, यह विचारणीय है कि योरोपियन सिद्धान्त ऋग्वेद का बनना पंजाब और मध्यदेश तक समाप्त कर देता है[1]। तब आर्यों ने विहार मे पहुँचने पर जिन अक्षरो को सीखा उन्हे ऋग्वेद मे कैसे लिखा? यदि बाद मे लिखा तो अक्षरो के बढ़ने से शब्द बढ़ेंगे और शब्दो के बढ़ने से उनके अनुकूल

(१) 'पंचनद' देखिये।

वाक्यों की रचना भी माननी होगी। साथ ही; अर्थ भी पहले से भिन्न होने की सम्भावना है। परंच योरोपियन सिद्धान्त यह नहीं बतलाता कि ऋग्वेद के मंत्र विहार मे जाकर पहले से आकृति और अर्थ में भिन्न हो गये। यदि भिन्न हो गये तो पहले के ऋग्वेद का स्वरूप क्या था ? और बाद मे जो बना उसका बनना विहार में मानना होगा। इसे तो वे मानते नही और ऋग्वेद मे रेफ का निवेश मानते है। यह कैसे बनेगा ? ऋग्वेद मे प्रायः कोई भी मंत्र ऐसा न होगा जिसमे रेफो की भरमार न हो। यदि गिना जाय तो प्रत्येक मण्डल और सूक्त मे रेफ की पर्याप्त सहस्रो की संख्या मिलेगी। यही दशा मूर्धन्य 'ष' की भी है। इसी प्रकार अन्य मूर्धन्य वर्ण भी ऋग्वेद के सभी मण्डलो मे मिलेगे। अब, यह विचारणीय और है कि आर्यों को रेफ का ज्ञान पूर्वी भाषाओं से हुआ तो अन्य पश्चिम की जातियो को रेफ का ज्ञान कहाँ से हुआ ? क्योंकि उनके मत से आर्य भी पश्चिम से ही पूर्व को गये थे। लेटिन, जिन्द, ग्रीक एवं ईरान, रुसा, इटली, फ्रान्स, जर्मनी, इङ्गलैण्ड, आयरलैण्ड, अरब इत्यादि की भाषाओ मे 'रेफ' कहाँ से आया ? क्योकि 'रेफ' तो पूर्व मे था। इसी प्रकार 'ट' और 'ड' भी पर्याप्त मात्रा मे योरोपियन भाषाओ मे कहाँ से आये ? यदि आर्य, ब्राह्मण, शूद्र, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र, सूर्य, चन्द्र, भारती आदि शब्द भी विहार मे ही बने तो पहले ये किन नामों से कहे जाते थे ? यह भी विद्वज्जनों द्वारा विचारणीय है।

योरोपियन विद्वान् जिस देवता को या सिद्धान्त को चाहते है, उसे 'आर्यो ने अनार्यों से सीखा'—यह लिख देते है। जैसे, इसी पुस्तक मे संख्या ३५ के लेख के उद्धरण मे रुद्र, विष्णु और शिव को अनार्य देवता माना है। परंच प्रमाण कोई भी नहीं। अब, विचारणीय है कि आर्य लोग जब बाहर से आये, तब उनके

कौन-कौन से देवता और कौन-कौन सिद्धान्त थे तथा इसका ज्ञान इन लोगो को कैसे हुआ ? जब तक यह निश्चित न हो जाय कि आर्यों के अमुक सिद्धान्त और अमुक देवता थे, इसी प्रकार अनार्यो के अमुक सिद्धान्त और अमुक देवता थे, तब तक उनके देवताओ का विवेक तथा सिद्धान्तों का विवेक करना केवल साहस-मात्र है। किसी भी विद्वान् का मत कहकर प्रमाण देना समुद्र में कागज की नाव चलाना है। जब यह प्रश्न होगा कि उसने कैसे जाना, तब युक्ति की ही शरण लेनी पड़ेगी। युक्ति के लिये प्राचीन लिपि या ग्रन्थ प्रमाण के लिये ढूंढ़ने पड़ेंगे। वेदो को सर्वप्रथम मानते हुए भी वैदिक सिद्धान्त यदि आर्यों ने अनार्यो से लिये तो वैदिक सिद्धान्त कौन थे, यह उन लोगो को बतलाना होगा। जैसा कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त लेकर ही वेद[1] के वेदान्त भाग (ज्ञान काण्ड) का महत्व है। वेद मे ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड का प्रधानतया प्रतिपादन है, अन्य बातें तो उससे झलक जाती है। यज्ञ करने से स्वर्गप्राप्ति और उस पुण्य की समाप्ति के बाद पुनः इस संसार में जन्म लेना, यह कर्मकाण्ड का फल माना गया है। ज्ञानकाण्ड (वेदान्त) मे वर्णित फल संसार मे फिर जन्म न लेना माना गया है। फिर भी योरोपियन[2] विद्वान् इस सिद्धान्त को अनार्यो से लिया हुआ मान रहे है। उपनिषद् जो संहिताओ मे

---

(१) ऋग्वेद ४ । २७ । १ में पुनर्जन्म का वर्णन है।

(२) बाइबिल सेण्ट जॉन गेस्पेल अध्याय १ रीइनकारनेशन एनी-बेसेण्ट में पुनर्जन्म का वर्णन है। वहाँ लिखा है कि ईसामसीह ने एक जन्मान्ध बालक के अपने अन्धा होने का प्रतिपादन किया है, और यह स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य अपने से कर्मो का भोग स्वयं भोगता है। माता-पिता इत्यादि के कर्मो का फल नहीं भोगता। यह बालक अपने

मंत्र भाग में मिलते है, उनके लिये बहुत पीछे का समय कल्पन करते है। और ऋग्वेद के बीच मे भी जिन देवताओं का वर्णन है उनको अनार्यो का देवता कहने में भी नही सकुचाते। कभी रुद्र को अनार्य देवता कहते हैं और कभी यजुर्वेद के रुद्र में अनार्यता का सम्बन्ध जोडते है तथा यह नही देखते कि इनके यहाँ के मर्करी देवता भी तो रुद्र ही है। क्योंकि उनका वर्णन नग्न रहना और साँप लपेटे रहना है। शिववीर्य जो 'पारा' कहलाता है, उसको भी 'मर्करी' कहते है।

लेखनकला को कुछ लोग नवीन मानते हैं। उनका तर्क है कि वेद 'श्रुति' कहे जाते है। इससे लोग उन्हे कंठस्थ ही रखते थे, वे लिखे नही जाते थे। अतः लेखनकला उस समय संसार में प्रचलित नहीं हुई थी। यह कथन निस्सार है। इसमें प्रमाण इस प्रकार है:—ऋग्वेद ३।५३।११ मे यैजवन् सुदाम् के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन है। अश्वमेध के घोड़े के माथे पर अश्वमेधकर्त्ता के यश और प्रताप का वर्णन स्वर्णपत्र मे लिखकर टाँगा जाता था। यह बात सभी पुराण और काव्यादि ग्रंथों में स्पष्ट है। यदि लोग उस समय लेखनकला को नही जानते थे तो यह कैसे सम्भव था? अथर्ववेद काण्ड ७।४।५ (आदि से ३६७) ५ ऋचा में लिखने का वर्णन है। वेद इसलिये 'श्रुति' कहे जाते थे कि वे जब तक सुने न जायँ तब तक सफल नहीं हो सकते; अर्थात् गुरु-मुख से उनका उच्चारण सुनकर स्वयं उच्चारण करना आवश्यक

कर्म के फल ही से अन्धा हुआ है, इत्यादि। अब, विचारणीय है कि जन्म के पहले बालक क्या कर्म कर सकता है, जिससे वह जन्म के समय अन्धा हो। इस जन्म से पहले बालक का होना उसके कर्म करने के लिये मानना होगा।

है। क्योंकि वेद का उच्चारण सस्वर होता है। स्वर बदल जाने से अर्थ बदल जाता है। अर्थ बदल जाने से जिस कार्य के लिये उसका उच्चारण होता है, वह ठीक नहीं होता। इतना ही नहीं, वह हानिकारक[1] भी हो जाता है। यह बात शतपथ ब्राह्मण और व्याकरण महाभाष्य[2] मे स्पष्ट है। वहाँ लिखा है कि पुत्रवध से कुपित हो त्वष्टा ने इन्द्र के मारने के लिये मंत्र जपा। मंत्र का स्वरूप 'स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व'—यह था। मंत्र का अर्थ यह था कि इन्द्रशत्रु बढ़े। 'शत्रु' का अर्थ 'मारनेवाला' था। 'इन्द्रशत्रु' का अर्थ बहुव्रीहि समास मे "इन्द्र हैं मारनेवाले जिसके" यह होता है और पूर्वपद प्रकृतिक स्वर होता है। तथा तत्पुरुष समास में "इन्द्र का मारनेवाला" अर्थ होता और अन्तोदात्त स्वर होता है। जप मे मंत्र का सस्वर उच्चारण करना आवश्यक है। क्रोधाविष्ट त्वष्टा तत्पुरुष के स्थान मे बहुव्रीहि समासवाले का पूर्वपद प्रकृतिक स्वर के साथ जप करते रहे। फल यह हुआ कि इन्द्रशत्रु (वृत्रासुर) पैदा तो हुआ; परंच वह स्वयं ही इन्द्र द्वारा मारा गया। इससे गुरुमुख द्वारा सुनकर स्वरो के उच्चारण को ठीक करके पाठ करना आवश्यक है। ऐतरेय ब्राह्मण २५।७ में लिखा है कि यज्ञ मे मंत्रो को पढ़कर, जहाँ पर हवन इत्यादि हो वहाँ पर, ब्रह्मा चुपचाप बैठकर मंत्रो का उच्चारण सुने और उनकी अशुद्धियो को जानता रहे। बाद में व्याहृतियो से हवनकर अशुद्धि द्वारा हुए यज्ञ के अंग के विनाश को पूरा करे। वहाँ यह लिखा है कि प्रजापति ने अग्नि, वायु और आदित्य के द्वारा वेदों को उत्पन्न किया। और स्वयं यज्ञ की शुद्धि अन्य देवताओ से कराई। ऋग्वेद के ज्ञाता को 'होता' बनाया।

---

(१) १।६।३।

(२) पस्पशाह्निक।

यजुर्वेद के ज्ञाता को 'अध्वर्यु' बनाया। सामवेद के ज्ञाता को 'उद्गाता' बनाया। तीनो वेदो के ज्ञाता को 'ब्रह्मा' बनाया और मंत्रों के उच्चारण मे अशुद्धि होने पर उसकी शान्ति के लिये ब्रह्मा द्वारा हवन का विधान बतलाया। इससे यज्ञ के समय भी मंत्रो का सुनना आवश्यक है। इसका सुनना आवश्यक होने के कारण ही इसका नाम 'श्रुति' पड़ा। आज भी जहाँ-कहीं हवन होता है, ब्रह्मा के योग्य विद्वान् न मिलने के कारण कुश का ब्रह्मा बनाकर रख दिया जाता है और मनुष्य भी ब्रह्मा बनाया जाता है।

स्मृति का अर्थ यह है—'वह सर्वदा स्मरण में रहे'। अर्थात् सर्वदा स्मृति के बताये हुए सिद्धान्तो को संसार में व्यवहार करते समय स्मरण रखे और उसी के अनुसार व्यवहार करे। कभी प्रमाद न करे।

श्रीमहर्षि पाणिनि[1] और कात्यायन[2] ने अपनी अष्टाध्यायी के सूत्रों और वार्तिको मे बोलनेवाली संस्कृत को 'भाषा' शब्द से व्यवहार किया है और वैदिक संस्कृत के लिये 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग किया है। महाभाष्यकार भी 'लोके' और 'वेदे' शब्द से व्यवहार कर रहे है। इससे यह प्रतीत होता है कि वैदिक संस्कृत कभी बोली नहीं जाती थी। यदि बोली जाती होती तो उसको भी नवीन भाषा और प्राचीन भाषा के नामों से व्यवहार करना था। महाभाष्यकार[3] ने शंका की है कि प्रत्येक शब्द के ज्ञान के लिये सभी शब्दों को अलग-अलग पढ़ देना चाहिये था, व्याकरण बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस शंका का यह उत्तर दिया

(१) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् बहुलं छन्दसि।
(२) प्रत्यये भाषायाम् नित्यम् छन्दसि क्रमेके।
(३) पस्पशाह्निक।

कि बृहस्पति ने दिव्य सहस्र वर्ष तक इन्द्र को शब्दो का पारायण सुनाया, फिर भी अन्त न पा सके। बृहस्पति प्रवक्ता, इन्द्र श्रोता और दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययनकाल—फिर भी अन्त को प्राप्त न कर सके। मनुष्यो का एक वर्ष 'दिव्यवर्ष' का एक दिन होता है। आजकल जो बहुत जीता है, वह सौ वर्ष जीता है। इससे थोड़े में सभी शब्दो का ज्ञान हो जाय, इसलिये व्याकरण की आवश्यकता है। महाभाष्यकार ने दिखलाया है कि पाणिनि व्याकरण से पृथ्वी के सभी प्रान्तो के संस्कृत के प्रयोग बन सकते हैं। वहाँ यह शङ्का की है कि पाणिनि व्याकरण से बहुत से ऐसे शब्द तैयार होते है, जिनकी संसार मे सत्ता भी नही है। इसका कई उत्तरो मे समाधान कर अन्त मे 'सर्वेदेशान्तरे' वार्तिक और इसकी व्याख्या से समाधान किया है। ये सभी शब्द देशान्तरो मे बोले जाते है। इसकी खोज करनी चाहिये। शब्द का प्रयोग-विषय बहुत बड़ा है। सात द्वीपवाली पृथ्वी है। तीन लोक हैं। चार वेद है एवं उनके रहस्य है। वेदों के अंग है। यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ है। सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ है। ऋग्वेद की २१ शाखाएँ है। अथर्ववेद की ९ शाखाएँ है। वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण तथा वैद्यक इतना शब्दों का प्रयोग-विषय है। इन्हें न देखकर यह कहना—'नही मिलता है', यह ठीक नही। और देशविशेषो में विशेष-विशेष शब्दों का प्रयोग भी बतलाया है और जिन शब्दों की सत्ता का अभाव बतलाया गया, उनको भी वेदो के उदाहरण मे दिखलाया है।

महाभाष्यकार तो संसार के सभी संस्कृतशब्दो का बनना पाणिनि व्याकरण से माने और रिसर्चर-उपाधिधारी पाणिनि के ज्ञान में पंजाब से बिहार तक के शब्दो का ज्ञान ही बतलाकर उनकी विज्ञता की इतिश्री कर दें। महाभाष्य को शुंगवंश में उत्पन्न महा-

राज पुष्यमित्र के समय में बना मानें तथा उसमें लिखे इतिहास और पुराणो को गुप्तवंश के राज्य में बना माने। अनुसन्धानको की इस प्रकार की कपोलकल्पनाएँ सर्वथा चिन्त्य हैं। महाभाष्यकार वेदों की ११३१ शाखाओं को मानें और अनुसंधानक उनमें से ४,५ को ही पाकर और उनके अर्थों को भी अच्छी तरह न समझकर वेद के शब्दो की इयत्ता की घोषणा कर बैठते है। उनमें लिखे हुए को ही आर्य लोग जानते थे और न लिखे हुए को वे नहीं जानते थे, यह कहकर अपनी विद्वत्ता की पताका उड़ाने लगते है। वेदो में प्रतिपादित देवताओ और वेद मे आये हुए शब्दो एवं अक्षरो की समता किसी अन्य भाषा के कुछ शब्दो से करते हुए कहने लगते है कि उस भाषा के शब्द को आर्यो ने सीखा और अनार्यों से बहुत से अक्षरो को भी सीखा। भला, अनुसंधानको की इस सिद्धान्त-वादिता की भी कोई सीमा है? इसपर विद्वज्जन विचार करे।

वेदो (ऋग्वेद १०। ९०। ९ शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ३१) मे उनकी उत्पत्ति का एक साथ वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण ५।७ मे भी अग्नि, वायु और आदित्य के द्वारा वेदो के प्रादुर्भाव का वर्णन है। बाद मे जिस ऋषि ने जिस मंत्र को जिस काम मे लगाया; अर्थात् विनियोग किया, वह ऋषि उस मंत्र का 'द्रष्टा' माना गया। इसलिये ऋषि लोग मंत्र के विनियोग करनेवाले हैं, यह ऐतरेय ब्राह्मण ३।४ इत्यादि[1] में 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' इत्यादि से स्पष्ट है। इनको मन्त्रों का कवि मानना अनुचित है। यदि ये ऋषि लोग ही उनके कवि है तो वे वेद कौन हैं, जो सृष्टि के आदि मे प्रादुर्भूत हुए और प्रजापति ने उनको अग्नि इत्यादि के द्वारा प्रकट किया? इससे ऋषि लोग मंत्र के विनियोगकर्त्ता मात्र है। ईश्वरीय ज्ञान-

---

(१) मुण्डकोपनिषद् १।२।

स्वरूप वेद में भूत, भविष्यत्, वर्तमान सभी कुछ रहना उचित है। इससे बीजमात्र से संसार का सभी कुछ वेदों से जाना जा सकता है। परन्तु प्रधानरूप से इसमें दो काण्ड हैं, पहला कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड। मीमांसाशास्त्र वेद को 'अपौरुषेय' मानता है; अर्थात् इसका बनानेवाला कोई नहीं है और न्यायवैशेषिक शास्त्र इसका बनानेवाला परमाप्त ईश्वर को मानता है।

कुछ शब्द दस्युदाम इत्यादि हैं जिनका कि वेदों मे और वेदिक इन्डेक्स मे नाम आता है और उनका इतिहास से सम्बन्ध भी है, उनका भी मैंने इसी के साथ संग्रह किया था। परंच श्री कविराजजी की आज्ञा उनको पृथक् छपाने की हुई, इससे उनका वर्णन दूसरी पुस्तक में होगा।

एक ग्रन्थ भुवनकोश नामक मैं आजकल लिख रहा हूँ। उसमें लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का साथ-साथ संग्रह है। उसकी भाषा संस्कृत है। उसकी टीका भी हिन्दीभाषा मे साथ-साथ चल रही है। यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो वह भी कभी विद्वानो के समक्ष उपस्थित करूँगा।

—गिरीशचन्द्र अवस्थी

सहायक-सूची

श्री इष्टदेव

श्री गुरुगण

लखनऊविश्वविद्यालय के 'चांसलर्स' महानुभाव—

Sir W. Marris (1923–27)
Sir A. Muddiman (1928)
Sir M. Hailey (1928–34)
Sir H. G. Haig (1934–38)

H. E. Sir Maurice Granier Hallet	1938
H. E. Sir Graham Haig	1939
H. E. Sir M. G. Hallat	1939
H. E. Sir Francis Nermer Wylie	1945
H. E. Srimati Sarojini Naidu	1947
H. E. Sir H. P. Mody	1949
Sir K M. Munshi	1951

लखनऊविश्वविद्याय के 'वाइसचांसलर्स' महानुभाव—

श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती
,, डा० केमिरन
,, जगन्नारायण मुल्ला
,, आर० पी० पराञ्जपे
,, महाराजसिंह
,, हबीबुल्ला

श्री राजा विश्वेश्वर दयालु
,, आचार्य नरेन्द्रदेव
,, ,, युगलकिशोर

रजिस्ट्रार महानुभाव—

श्री आर० आर० खन्ना
,, इनायतुल्ला वट
,, के० डी० तिवारी

प्रिन्सिपल महानुभाव—

डा० केमिरन
डा० स्मिथ
डा० स्ट्रेंग

असिस्टेन्ट-रजिस्ट्रार महानुभाव—

श्री इनायतुल्ला वट
श्री रायसाहब शिवशंकर

हेड आफ डिपार्टमेन्ट (ल० वि० व्रि०)—

श्री के. ए. सुब्रह्मण्यम अय्यर एम. ए. (लंडन) अनेक भाषा-पारंगत, डीन आर्ट विभाग।

श्री डा० कान्तिचन्द्र पाण्डेय (अस्थायी)

प्रिन्सिपलों के क्लर्क—

श्री रासविहारी चटर्जी
,, जयकृष्ण अग्रवाल
,, कृष्णचन्द्र मिश्र
,, चण्डीदास चटर्जी

लाइब्रेरियन (ल० वि० वि०)—

श्री सरदार तारासिंह
,, रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव
,, जगदीशचन्द्र शर्मा
,, सहदेव दीक्षित
,, मौलवी वारसी
,, जखन लाल

मार्ग-दर्शक—

महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज

सम्मति-दाता—

श्री महावीर मिश्र व्याकरणाचार्य (जुबली गव. इन्टर का. ल.)
,, घूटर झा साहित्यवेदान्ताचार्य (सहायकाध्यापक प्रा. सं. वि. ल. वि. वि.)
,, रामशंकर द्विवेदी व्याकरण साहित्याचार्य ,, ,,
,, रामेश्वरप्रसाद द्विवेदी साहि० (क्रिश्चियन का० लखनऊ)
,, चरणदास चटर्जी एम. ए. (हिस्ट्री-विभाग, ल. वि. वि.)
,, डा० रामकुमार दीक्षित एम. ए. ,, ,, ,,
,, वैजनाथपुरी बी. लिट् ,, ,, ,,

अंग्रेजी-ग्रंथों के अनुवादक—

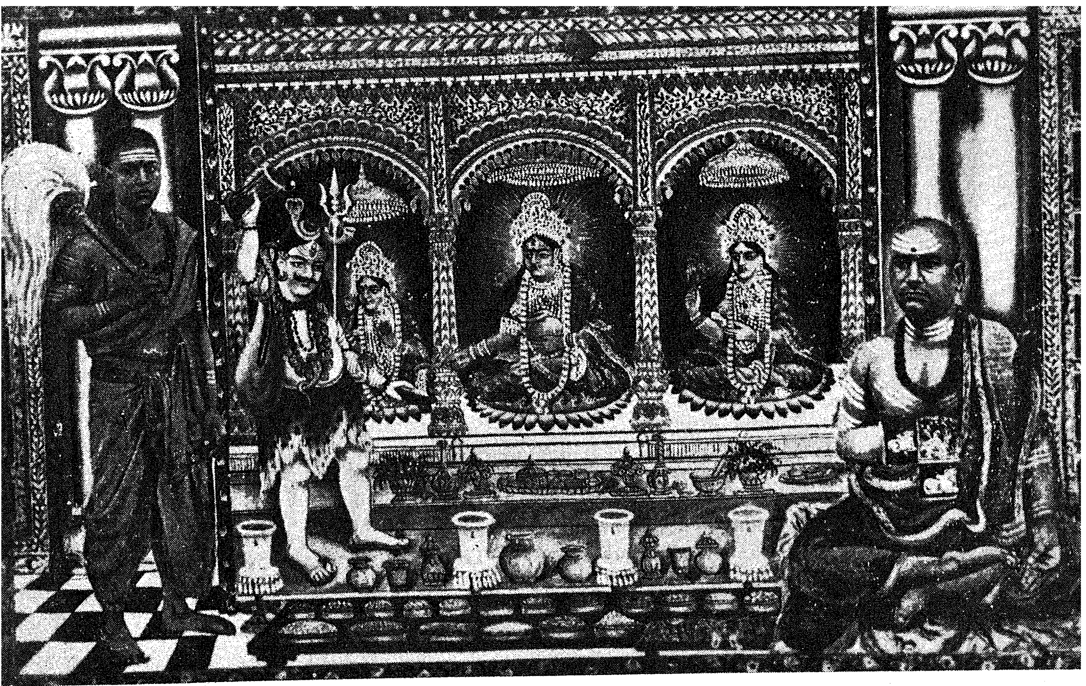
श्री प्रभाकर विस्नोई एम. ए. (वेदिक इन्डेक्स के)
,, गदाधर वाञ्चू एम. ए. ,,
,, धर्मदेव एम. ए. एल. टी. ,,
,, हरिवंश अवस्थी बी. ए. एल. टी. (जागराफि. डिक्श. के)

स्वर्गीय श्रीजगदीशचन्द्र अवस्थी एम. ए. आचार्य (एन्सेंट जाग. के)
श्री अन्नपूर्णा टाँगड़ी एम. ए., आचार्य ,,
,, शशिशेखरमिश्र एम. ए. (ल. वि. वि. प्रा. सं. वि.) ,,
,, मोतीलाल रस्तोगी एम. ए. ,,
,, हेमचन्द्र जोशी एम. ए. आचार्य जाग. आफ अर्ली बुद्धिस्ट के
,, नारायणदत्त शुक्ल बी. ए. प्रथमवर्ष ,, ,,
,, कृष्णानन्द अग्निहोत्री एम. ए.; एल. एल. बी. आचार्य (ह्वेनसांग के हिन्दी-अनुवाद के बील और वाटर के मिलान में सहायक)
,, उमाशंकर शुक्ल एम. ए. (इन्डि. आन्टी. और एपी. इ. के अनूदित नोटो एवं लेखो के पढ़ने में सहायक)
,, हरिहरनाथ पाठक व्याकरणाचार्य (सं. अ. जु. का. ल.) ,,
,, पूर्णचन्द्र गुप्त बी. ए. ,,
,, सलिलचन्द्र गुप्त बी. ए. ,,
,, रमेशचंद्र रस्तोगी एम. ए., आचार्य (फुटकल अंग्रेजी-ग्रंथो के अनुवादक)
,, श्यामानंद खरे बी. ए. गवर्नमेंट पेंशनर (हिंदी-लेखो के अंग्रेजी-अनुवादक)
,, मूलचंद्रजोशी पेंशनर सूचना-विभाग सेक्रे० यू० पी०, (हिंदी एवं अंग्रेजी लेखों के मुद्रण में सहायक)
,, राजवैद्य शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य (स्वास्थ्यरक्षक)
,, ,, परमेश्वरीदीन मिश्र ,,
,, रामाधीन शास्त्री, कालीचरण हाई स्कूल, लखनऊ (पुस्तकों की प्राप्ति में सहायक)
,, राजमंगल एम. ए. आचार्य, कालिवन का. लखनऊ ,,
,, श्रीदेवाचार्य साहित्यरत्न, सूर्यकुण्ड, काशी (संपादक)

लेखकगण—

श्री रघुवरदयाल मिश्र एफ. ए.
,, रामनारायण मिश्र
,, छत्रपाल शास्त्री
,, माधवशरण मिश्र
,, उदयभान शुक्ल बी. ए.

—:०:—



श्रीलक्ष्म्यै नमः श्रीअन्नपूर्णायै नमः

सांकेतिक शब्द-सूची



अ० = अध्याय ।
अग्नि० = अग्निपुराण ।
अंगुत्तर० = अंगुत्तर निकाय ।
अथर्व० = अथर्ववेद ।
(का०=काण्ड, अ०=अध्याय, सू० = सूक्त, आ०=आदि से सूक्त का क्रम)
अध्या० = अध्याय ।
अनु० = अनुवाक ।
अभिधान चि० = अभिधानचिन्तामणि ।
अमर० = अमरकोष ।
(शूद्र० = शूद्रवर्ग, भूमि० = भूमिवर्ग । क्षत्रि०=क्षत्रियवर्ग ।)
अमे० ओ० सो० = अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी ।
अश्व० = अश्वमेध ।
आ० = आदिखंड ।
आदिका० = आदिकाव्य ।
आपस्तम्ब०, (श्रौ० सू०) = आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ।
आरकी० स० रि० = आरकीयो लाजिकल सर्वे रिपोर्ट ।
आयुध० = आयुधजीवि संघाञ्ञ्यड्वातीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ।
इ० अ० = इण्डियन आण्टीक्वेरी ।
इ० मु० = इटली-मुद्रित ।
इण्डि० आ० = इण्डियन आण्टीक्वेरी ।
इण्डि०, इन्डिस्चे० = इण्डिस्चे स्टडियन ।

इण्डि० लिट्० = इण्डियन लिट्रेचर।
उ० = उत्तरार्द्ध, उपनिषद्।
उत्त० = उत्तरखंड।
उत्तरा० = उत्तरार्द्ध।
ऋ०, ऋग्० = ऋग्वेद।
ए० पी० इ० = एपी ग्राफिया इण्डिका।
ए० जा० = एन्शेन्ट जाग्राफी।
ए० पी० ग्रा० इ० = एपी ग्राफिया इन्डिका।
एरिअन इन्डि० = एरिअन इन्डिका।
ऐ० ब्रा०, ऐत०, ऐत० ब्रा०, ऐतरे० = ऐतरेयब्राह्मण।
कथा० स० कथामु० = कथासरित्सागर कथामुख।
(अल० = अलकारवती लंबक। प्रभा० = प्रभावती लंबक।
लावा० ल०=लावाणक लबक। विषम०=विषमशील लम्बक।
सूर्य० = सूर्यवती लंबक।)
कल्कि०, (पु०) = कल्किपुराण।
काठक सं० = काठक संहिता (अश्व०=अश्वमेध)
काण्व सं० = काण्व संहिता।
कात्यायन श्रौ० (श्रौत० सू०) = कात्यायन श्रौतसूत्र।
का० इ० = कार्पस इक्सप्रेशन।
कालि०, कालिका०, कलिका पु० = कलिकापुराण।
काव्य मी०, काव्य मीमां० = काव्यमीमांसा।
कुमार० = कुमारसम्भवकाव्य।
कूर्म० = कूर्मपुराण।
कूर्म पु० पू० अ० = कूर्मपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय।
(ब्रा० पू० = ब्राह्मीसंहिता पूर्वार्द्ध)
कृत्त० = कृत्तद्धित समासाश्च।

कौषीतकि० उपनिषद् = कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् ।
कौषीतकि ब्रा० = कौषीतकि ब्राह्मण ।
ख० = खण्ड ।
गणर० = गणरत्नमहोदधि ।
गणे० उ० (उत्त०) = गणेशपुराण उत्तरार्द्ध ।
गरु०, गरुड़० पू० = गरुड़पुराण पूर्वार्द्ध (उ० = उत्तरार्द्ध)
गर्ग० वि० (विश्व०) = गर्गसंहिता विश्वजित्खण्ड ।
गोपथ० (ब्रा०) = गोपथब्राह्मण ।
च० = चरित ।
चि० = चित्रशालाप्रेस, पूना ।
छान्दोग्य० = छान्दोग्योपनिषद् ।
जा० डि०, जाग्रा० डि० = जाग्राफिकल डिक्शनरी ।
जे० ए० एस्० बी० = जरनल आफ एशियाटिक सुसाइटी, बंगाल ।
जैमिनि०, जैमिनीय० (ब्रा०)=जैमिनीयोपनिषद् (ब्राह्मण) ।
ताण्ड्य०, ताण्ड्य ब्रा० = ताण्ड्यमहाब्राह्मण ।
तै० सं०, तैत्ति० = तैत्तिरीय संहिता ।
तैत्ति०, तैत्ति० उ० = तैत्तिरीयोपनिषद् ।
तैत्तिरीय ब्रा० = तैत्तिरीय ब्राह्मण ।
दश० च० = दशकुमारचरित ।
दे० भा०, देवी भा० = देवीभागवत ।
(सप्त० = सप्तमस्कन्ध)
द्व्यञ्० = द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ।
ध० = धर्म ।
ध० सू० = धर्मसूत्र ।
नप्राच्य भर्गादि० = 'नप्राच्यभर्गादि यौधेयादिभ्यः ।
नागरी प्रचा० = नागरीप्रचारिणीपत्रिका, काशी ।

नाट्य० = नाट्यशास्त्र ।

नाट्यशास्त्र० = भरत नाट्यशास्त्र ।

नारदी०, नारदीय० = बृहन्नारदीय पुराण।

(पू० = पूर्वार्द्ध, उ० = उत्तरार्द्ध)

नि०, नि० मु० = निर्णयसागरप्रेस, बम्बई ।

नि०, निरु० = निरुक्त ।

पंचविं० ब्रा० = पंचविंशब्राह्मण ।

पद्म० = पद्मपुराण ।

(आ०, आदि० = आदिखंड । पा० = पातालखंड । सृ०= सृष्टिखण्ड । उत्तर० (ख०) = उत्तरखंड) ।

प्र० = प्रश्न ।

प्र०, प्रपा० = प्रपाठक ।

पु० = पुराण ।

पू० = पूर्वार्द्ध, पूर्वभाग ।

पृ० = पृष्ठ ।

फी० = फीट ।

बृहत्कथा० = बृहत्कथामंजरी ।

(लावा० = लावाणक लंबक । वि०, विषमशील० = विषमशील लंबक । श्लोक० = श्लोकसंग्रह)

बृहत्सं० = बृहत्संहिता ।

बृहदा०, बृहदारण्यक० (उ०) = बृहदारण्यकोपनिषद् ।

बौधा० = बौधायनधर्मसूत्र ।

(धर्म०, धर्मं सू०, ध० सू० = धर्मसूत्र)

बौधायनधर्मसूत्र प्र० ख० सू० = प्रपाठक खण्ड सूत्र ।

(श्रौ० = श्रौतसूत्र । स्मृ०=स्मृति)

ब्रह्मवै० = ब्रह्मवैवर्त (पुराण) ।

(श्रीकृष्ण० = श्रीकृष्णखंड)

ब्रह्मा०, ब्रह्माण्ड (पु०) = ब्रह्माण्डपुराण ।

(अ० = अध्याय तथा अनुषंगपाद । उ०, उपो०=उपोद्घातपाद । पू०=पूर्वभाग । म० = मध्यभाग । प्र० = प्रक्रियापाद)

ब्रा० = ब्राह्मण, ब्राह्मपर्व ।

भवि० ब्रा०, भविष्य० ब्रा० = भविष्यत् पुराण ब्राह्मपर्व ।

भा० = भाग ।

भा० इ०, भा० रूप, भारतीय इ० रू०=भारतीय इतिहास की रूपरेखा ।

भार० नि०, भारत० निवा० = भारतभूमि और उसके निवासी ।

भा० भू० परि० = भारतभूमि परिशिष्ट ।

म० = मद्रास ।

मत्स्य० (पु०) = मत्स्यपुराण ।

मनु० (अ०) = मनुस्मृति (अध्याय) ।

महा०, महाभा० = महाभारत ।

(अ०, अर्घा०=अर्घाभिहरणपर्व । अनु०=अनुगीतापर्व । अभिमन्यु०=अभिमन्युवधपर्व । अश्व०=अश्वमेधपर्व । आ०, आ० प०, आदि०=आदिपर्व । आ०, आर०, आरण्य०=आरण्यपर्व । आश्व०=आश्वमेधिकपर्व । इ०, इन्द्र०=इन्द्रलोकाभिगमनपर्व । उ०, उद्यो० = उद्योगपर्व । कर्ण०=कर्णपर्व । गदा०=गदापर्व । गोग्रह०=गोग्रहपर्व । घो० = घोषयात्रापर्व । चि०=चित्रशालाप्रेस (पूना) । चैत्र०=चैत्ररथपर्व । जम्बू०=जम्बूखण्डनिर्माणपर्व । जम्बूख०=जम्बूखण्ड । जरा०=जरासंधवधपर्व । ती०, तीर्थ०=तीर्थयात्रापर्व । द०= दम्भपर्व । दि०, दिग्वि० = दिग्विजयपर्व । द्यू०, द्यूत०=द्यूतपर्व । द्रो०, द्रोण०=द्रोणपर्व । नि०=निर्णयसागरप्रेस (बंबई) । भवि०=भविष्यत्पर्व । भी०, भीष्म०=भीष्मपर्व । भी० भी०=भीष्मपर्व भीष्मवधपर्व । भी० व०=भीष्मवध । मंत्र०=मन्त्रपर्व । म०=मद्रास (मुद्रित) । रा०=राज्यलाभ ।

राज०, राजध०=राजधर्म । वन०=वनपर्व । वि०=विष्णुपर्व । वि०, विरा०, विराट०=विराटपर्व । वै०=वैराटपर्व तथा वैष्णवधर्मशास्त्रपर्व । श०, शल्य० = शल्यपर्व । शा०, शान्ति०=शान्तिपर्व । सम्भ०= संभवपर्व । स०, सभा०=सभापर्व । सु०=सुथकर (पूना) । सेनो०= सेनोद्योगपर्व । स्वयम्बर०=स्वयम्बरपर्व । हरि०, हरिवं०=हरिवंश । हरि० ह० (हरि०)=हरिवंश हरिवंशपर्व)

महाभाष्य पस्पशा० = व्याकरण महाभाष्य पस्पशाह्निक् ।

मार्क०, मार्कण्डे०, मार्कण्डेय० (पु०)=मार्कण्डेयपुराण ।

मालमा० = मालतीमाधव ।

मि० डे० = मिस्टर नन्दलाल डे ।

मेदिनी० = मेदिनीकोश ।

(च०=चकार, चतुष्क । त०=तकार । द्वि०=द्वितीय । नत्रि०= नकारत्रितय । य०=यकार । र० द्वि० = रेफ द्विक् ।)

मैत्रा० सं०, मैत्रा० संहिता=मैत्रायणीसंहिता ।

यू० पी० = उत्तरप्रदेश ।

योगवा० = योगवाशिष्ठ ।

(उत्प०=उत्पत्तिप्रकरण । उप०=उपशमप्रकरण । नि० उ०=निर्वाण-प्रकरण उत्तरार्द्ध । नि० पू०=निर्वाणप्रकरण पूर्वार्द्ध ।)

रघुवं० = रघुवंशकाव्य ।

रा० ए० सो० = रायल एशियाटिक सोसाइटी ।

राजतर० = राजतरंगिणी ।

रामा०=रामायण ।

(उत्तर० = उत्तरकाण्ड । कि०, कि० का०=किष्किन्धाकाण्ड)

लघुशि० = लघुशिवपुराण ।

लाट्यायन श्रौ० (श्रौ० सू०, सू०) = लाट्यायन श्रौतसूत्र ।

लिङ्ग० पू० = लिंगपुराण पूर्वार्द्ध ।

वसिष्ठ

(धर्म० = धर्मसूत्र । स्मृ०=स्मृति) ।

वाज० सं० = वाजसनेयी संहिता ।

वात्स्यायनकामसूत्र

(साम्प्र० अ० दश० = साम्प्रयोगिक अधिकरण दशनच्छेद प्रकरण)

वामन० = वामनपुराण ।

वायु० (पु०) = वायुपुराण ।

वारा०, वाराह० = वाराहपुराण ।

वा० रा०, वाल्मी०, वाल्मीकी० (रामा०)=वाल्मीकीय रामायण ।

(अ० का०, अयो०, अयोध्या०=अयोध्याकाण्ड । उ०, उत्तर०= उत्तरकाण्ड । कि०=किष्किन्धाकाण्ड । बा०, बाल० = बालकाण्ड । इ०=इटली, गु०=गुजरातीप्रेस, नि० = निर्णयसागरप्रेस, ला०= लाहौर में मुद्रित)

वि=विश ।

वि० ध०, विष्णुध०, विष्णुधर्मो०=विष्णुधर्मोत्तरपुराण ।

वि०, विष्णु० (पु०, पुरा०)=विष्णुपुराण ।

(द्वि० = द्वितीय । च० = चतुर्थ)

विनय० = विनयपिटक ।

विशिष्ट० = विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।

विश्वकोश

(र० द्वि०=रेफ द्वितीय)

विश्वप्रकाश

(ग० द्वि०=गकार द्वितीय)

वे० इ० = वेदिक इन्डेक्स आफ नेम्स् एण्ड सब्जेक्ट्स ।

वे० इ० कार = वेदिक इन्डेक्सकार ।

वेणीसंहार ना० = वेणीसंहार नाटक ।

वै०=वैवर्त ।
वैजयन्तीकोश
(भू० दे० = भूमिकाण्ड देवता अध्याय)
वैया० सि० = वैयाकर सिद्धान्तकौमुदी ।
(तत्वबो० = तत्वबोधनीटीका सहित)
व्या० महाभा०, व्याकरण महा० = व्याकरण महाभाष्य ।
श० का० = शतपथ ब्राह्मण काण्वशाखीय ।
शत०, शतपथ० (ब्रा०) = शतपथ ब्राह्मण ।
शा०, शांखायन श्रौ० (श्रौत सू०) = शांखायन श्रौतसूत्र ।
शि० म०, शिवम०, शिवमहा० (पु०)=शिवमहापुराण ।
(अरु०=अरुणाचलमाहात्म्य । उ०, उत्तरा०=उत्तरार्द्ध । उमा०=उमासंहिता । कोटि०, को० रु०, को० सं०=कोटिरुद्रसंहिता । माहे०=माहेश्वरखंड । रु० पा० = रुद्रसंहितापाद । वायवी०=वायवी संहिता । वि०=विद्येश्वरसंहिता । शतरुद्र०=शतरुद्रसंहिता)
शिवलघु० = लघुशिवपुराण ।
शूद्राणां = शूद्राणामनिरवसितानाम् ।
श्री० भागवत, श्रीमद्भा०, श्रीमद्भागवत०=श्रीमद्भागवतपुराण ।
श्रौ०, (श्रौ० सू०) = श्रौत, (श्रौतसूत्र) ।
श्लोक० = श्लोकसंग्रह ।
सा० = सायण ।
सिन्धुतत्त्व० = सिन्धुतत्त्वशिलाभ्योगण्यौ ।
सिले० इ० = सिलेक्ट इक्सप्रशन ।
सु० = सुथंकर (पूना) ।
सुपोधातु = सुपोधातु प्रातिपदिकयोः ।
सौर०, सौर पु० = सौरपुराण ।
स्क०, स्कन्द० (पु०) = स्कन्दमहापुराण (पुराण) ।

(अ० मा०, अव०, अवन्ति मा०=अवन्तिमाहात्म्य। अयो०= अयोध्यामाहात्म्य। अरु० = अरुणाचलमाहात्म्य। आ०, आव० = आवन्त्यखण्ड। उ०, उत्तरा०=उत्तरार्द्ध। उमा०=उमासंहिता। का० = कार्तिकमाहात्म्य। काशी० (ख०)=काशीखण्ड। के०= केदारखण्ड। कोटि०, को० रु०, को० सं० = कोटिरुद्रसंहिता। कौ०=कौमारिकाखण्ड। च० लि० = चतुरशीतिलिंग। द्वा० = द्वारकामाहात्म्य। धर्मा० = धर्मारण्यमाहात्म्य। नागर० = नागर-खण्ड। पु०, पुरु०=पुरुषोत्तम (क्षेत्र) माहात्म्य। पू०=पूर्वार्द्ध। प्र०, प्रभा० (ख०) = प्रभासखण्ड। प्र० मा०, प्रभास मा०= प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य। ब०, बदरी०=बदरिकाश्रममाहात्म्य। ब्रह्म०= ब्रह्मखण्ड। ब्रह्मो०=ब्रह्मोत्तरखण्ड। मा०=मार्गशीर्षमाहात्म्य। मा०, माहे०, माहेश्वर० = माहेश्वरखण्ड। यज्ञ०=यज्ञवैभवखण्ड। रु० पा०=रुद्रसंहितापाद। रेवा० = रेवाखण्ड। लिंग०=लिंगमाहात्म्य। व०=वस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्य। वायवी०=वायवीसंहिता। वि०=विद्येश्वर-संहिता। वे०=वेंकटाचलमाहात्म्य। वै०=वैष्णवखण्ड। शतरुद्र०= शतरुद्रसंहिता। सूत०=सूतसंहिता। से०=सेतुमाहात्म्य। हिमा०= हिमाद्रिखण्ड)

सं० = संहिता।

सु० = सुथंकरप्रेस।

सू० = सूत्र। सृ० = सृष्टिखण्ड। स्मृ० = स्मृति।

स्त्रिया० = स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च।

हरि०, हरिवंश० = हरिवंशपुराण।

(वि० = विष्णुपर्व। हरि० = हरिपर्व)

हिरण्यकेशि० (सू०) = हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र।



प्रधान शब्द-सूची

—**—



अप्रधान शब्द-सूची

श्रीवेदधरातल



श्रीसरस्वत्यै नमः



❀ श्री गणेशाय नमः ❀

॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

वेद धरातल

गजास्यं कामदं[1] वन्दे सर्वविघ्नविनाशकम् ।
जगद्रूपम् जगन्नाथं जगद्योनिं जगद्गुरुम् ॥ १ ॥
विश्वरूपं निराकारं निर्विकारमजं विभुम् ।
सदसद्रूपतातीतं वन्दे देवं निरञ्जनम् ॥ २ ॥
शङ्करं सर्वलोकानां शङ्करं जड़तापहम् ।
सशिवं स्कन्दगणपसहितं नौमिसिद्धिदम् ॥ ३ ॥
काशीश्वरीं जगद्धात्रीमन्नपूर्णेति विश्रुताम् ।
गिरीन्द्रतनयां वन्दे मोक्षदां परमां शिवाम् ॥ ४ ॥
देवीमिष्टप्रदां वन्दे सर्वदां शारदां पराम् ।
शरदिन्दुनिभां मालावीणापुस्तकमण्डिताम् ॥ ५ ॥
एकमेवाद्वितीयाहं ब्रह्मेति प्रतिपादिनीम् ।
एकार्णवजले नित्यां भारतीं वरदां भजे ॥ ६ ॥
वंशीविभूषितकरं राधालिङ्गितविग्रहम् ।
गोपीचीरहरं वन्दे कृष्णचन्द्रं मतिप्रदम् ॥ ७ ॥
वन्देऽङ्गारमतीं देवीं करुणार्द्रां जगत्प्रसूम् ।
प्रसह्य पूजां गृह्णन्तीं मणिद्वीपनिवासिनीम् ॥ ८ ॥

---

१ गणेश का वर्णन नारायणोपनिषद् में है ।

अक्षराणां प्रदातारं विद्याविद्योतितान्तरम् ।
त्रिपाठिनं गुरुं वन्दे मुरलीधरनामकम् ॥ ९ ॥
योगीन्द्रं सर्वशास्त्राणां तत्वज्ञं च कृपार्णवम् ।
गुरुं बालाप्रसादाख्यं वन्दे द्वैपायनोपमम् ॥ १० ॥

पुत्तीलालं गुरुं वन्दे रमालिङ्गितविग्रहम् ।
विचित्रप्रतिभायुक्तं धन्वन्तरिनिभं कविम् ॥ ११ ॥
यदुसूनुं गुरुं वन्दे कान्यकुब्ज विभूषणम् ।
श्रीमन्तं शास्त्रनिष्णातं साक्षाच्छ्रीयदुनन्दनम्[1] ॥ १२ ॥

यजुर्वेद गुरुं वन्दे जगन्नारायणाभिधम् ।
तन्त्रशास्त्रेति निपुणं मन्नालालेति विश्रुतम् ॥ १३ ॥
शब्दशास्त्रेति निपुणं वाचस्पतिसमं गिरि ।
प्राप्तसाहित्यसत्ख्यातिं केशवं नौमिसद्गुरुम् ॥ १४ ॥

नागेशं च गुरुं वन्दे क्किंसकालेजमाधवम् ।
कृपाकरं च मीमांसाशब्दशास्त्रविभूषणम् ॥ १५ ॥
प्रधानाध्यापकं वन्दे भवानीदत्तदीक्षितम् ।
क्किंसकालेजमध्यस्थं साक्षाद्भट्टोजिदीक्षितम् ॥ १६ ॥

देवनारायणं[2] वन्दे क्किंसकालेजमण्डनम् ।
काशीशेषं कृपामूर्तिं तिवारीजीति विश्रुतम् ॥ १७ ॥

---

१ मुख्य नाम ।

२ वस्तुतः इनका यह नाम था, लेकिन काशी में हरनारायण नाम से प्रसिद्ध थे ।

महादेवं गुरुं वन्दे व्याकृतिप्राप्तसन्मतिम् ।
विश्वनाथं च साहित्ये क्विंसकालेजभूषणम् ॥ १८ ॥
न्यायशास्त्रेतिनिपुणं वैशेषिककृतश्रमम् ।
जीवनाथं गुरुं वन्दे क्विंसकालेज गौतमम् ॥ १९ ॥
न्यायशास्त्रे कृताभ्यासं प्राप्तं वैशेषिके मतिम् ।
विश्वविद्यालये वन्दे गिरीशं गिरिशोपमम् ॥ २० ॥
गङ्गाधरं गुरुं वन्दे चिकित्सकशिरोमणिम् ।
चरकाभं सुधापाणिं विलसत्प्रतिभं कविम् ॥ २१ ॥
याज्ञवल्क्यं च वेदान्ते साहित्ये मम्मटोपमम् ।
कुमारिलं च मीमांसाशास्त्रे योगे पतञ्जलिम् ॥ २२ ॥
कपिलं सांख्य सिद्धान्ते धर्मशास्त्रे मनूपमम् ।
व्याकृतौ पूर्वनागेशं काशीपण्डितपूजितम् ॥ २३ ॥
कृपालुं च महापूर्वमहोपाध्यायसंयुतम् ।
विशेषतो भागवताचार्यं नौमिविभूतये ॥ २४ ॥
ज्योतिषे रमले चैव कर्मकाण्डेतिमन्मतिम् ।
वन्दे रामसहायं तं तातं तिर्वेशपण्डितम् ॥ २५ ॥
रामप्रियां मातरं तां वन्दे सद्गुणसंयुताम् ।
पतिव्रतालब्धकीर्तिं शिवाराधनतत्पराम् ॥ २६ ॥
कान्जकुब्ज सभासभ्यान् वन्दे सच्छात्रवृत्तिदान् ।
शिवप्रसादं मन्त्रीन्द्रं फतेगढ़विभूषणम् ॥ २७ ॥

लक्ष्मीनारायणं वन्दे कान्यकुब्जविभूषणम्।
कान्यकुब्जां पाठशालां रक्षतीति क्षितौश्रुतम्। २८॥

ॐसहनाववतु॥ सहनौ भुनक्तु॥ सहवीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। वृषलेन्द्रनुतां वन्दे म्लाने गोरण्डराज्यके। राज्यवाणीपदासीनां हिन्दीभाषां मनोरमाम्॥ १॥ तद्-गुणाकृष्टचित्तोहं सुहृद्वर्गप्रचोदितः। प्रकाशयामितत्रैव देववाणीविनिर्मितम्॥ २॥ राजशेखर मुञ्जादिभोज क्षेमेन्द्र भाषितः। देशादीनां परिचयो नैव कुत्रापि दृश्यते॥ ३॥ जिमरादिभिराचार्यैर्जर्मन्यादिनिवासिभिः। प्रकाशितञ्च यत्तत्वं महतामपि मोहदम्॥ ४॥ त्रुटि पूर्णञ्च संवीक्ष्य भारतीयांश्च कोविदान्। उदासीनान् विलोक्याशु वक्ष्ये वेदधरातलम्॥ ५॥

अंशुमती—यह एक नदी है। इसका वर्णन ऋ० वे० ८।९६। १३-१४ मे दश सहस्र साथियों के साथ कृष्णनामक असुर के छिपने और इन्द्र के द्वारा मारे जाने के वर्णनरूप मे आया है। सामवेद (पूर्वार्चिक ऐन्द्रपर्व तृतीयाध्याय दशम खण्ड प्रथमा ऋचा) मे भी इसका इसी प्रकार वर्णन है। अथर्ववेद मे भी (का २० अ० ९ सू० १३७ आ० ७५३।८) इसका वर्णन इसी प्रकार है। बृहद्देवता ६।१११ मे कुरुदेश के सामने इसमे सोम के छिपने का वर्णन है।

वस्तुतः यह यमुना का नाम है। वाल्मी० रा० अयो० का०

(नि० गु०) ५५।५ ई० ५५।१४ में यमुना का आंशुमती नाम लिखा है। ला० ५९।१४ मे अश्मवती पाठ है। वैदिक उदाहरण होने से आदि मे वृद्धि नहीं हुई।

अकूपार—समुद्र का नाम है। यजुर्वेद[1] मे इसका वर्णन है। महीधर ने समुद्र अर्थ किया है। अमरकोष[2] में समुद्र का नाम है। निरुक्त ४।१८ में भी समुद्र का नाम है। ऋग्वेद १०। १०९।१ मे सूर्य अर्थ मे आया है।

अगस्त्यतीर्थ[3]—यहाँ पर अगस्त्य ने तपस्या की थी।

अग्रभरण – जहाँ कुछ पकड़ने को न हो। ऋ० १।११६।५ में समुद्र का विशेषण आया है।

अग्रु—यह साधारण नदी का नाम है। ऋ० १।१९१।१४ तथा ७।२।५ मे इसका वर्णन है। निरुक्त २।२४।

अंग—१. वैदिक इन्डेक्स में इसको जातिवाची शब्द माना है। तथा बाद मे ये लोग सोन तथा गंगा नदी पर बसे थे। इनकी राजधानी पहले वहाँ रही होगी। यह भी लिखा है।

२. जिमर तथा ब्लूमफील्ड का भी यही मत है। (वे० इ०)

३. पार्जीटर के मत में ये अनार्य थे और समुद्र के द्वारा पूर्व भारत मे आये। (वे० इ०)

४. जाग्राफिकल डिक्शनरी पृष्ठ ७ "यह देश भागलपुर के समीप में है और इसके अन्दर मुंगेर भी है। यह भारत के सोलह जनपदों में एक है। (अंगुत्तर० १।४ विनय०

१—वाजसनेयि संहिता २४।३५

२—१।१०।१

३—गोपथ ब्राह्मण २।८

२।१४६ दिघनिकाय का गोविन्दसुत्त १९।३६) इसकी राजधानी चम्पा या चम्पापुरी थी। इस देश की उत्तरी सीमा के पश्चिमी किनारे पर गंगा सरजू का संगम था। यह रामायण के रोमपाद तथा महाभारत के कर्ण का राज्य था। रामायण में कहा जाता है कि प्रेम के देवता मदन को महादेव ने इस स्थान पर भस्म किया था और इसी से यह देश अंग कहा जाता है। और मदन अनंग कहे जाते है। (बालकाण्ड २३।१३ तथा १४) कामाश्रम पर देखिये। सर जार्ज बर्डवुड के अनुसार अग के अन्तर्गत वीरभूमि और मुर्शिदाबाद के जिले भी हैं। कुछ विद्वानो के अनुसार इसके अन्तर्गत संथाल परगने भी हैं। यह देश ईसा से पूर्व छठीं शताब्दी मे बिन्दुसार के द्वारा मगध राज्य मे मिला लिया गया था। (स्पेंसहार्डी के मैनुअल आफ बुद्धिज्म पृष्ठ १६६) उसका पुत्र कुनिक अर्थात् अजातशत्रु उसका वाइसराय हो गया था। उसका हेडक्वार्टर चंपा थी। कन्नौज के राजा गोविदचन्द्र की रानी कुमार देवी का नाना महान् रामनरेश अंग मे शासक था (जर्नल आफ दी एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल १९०८) यह देश पाल राज-वंश के प्रथम नरेश गोपाल के राज्य में आठवीं शताब्दी में आया। प्राचीन समय के प्रसिद्ध तथा मनोरंजक स्थान अगदेश में ये है। ऋष्यश्रृंग का आश्रम (ऋषिकुण्ड के पास) बरियार पुर के दक्षिण-पश्चिम चार मील है। बरियारपुर ईस्टइण्डिया रेलवे का स्टेशन है। कर्णगढ़ या कर्ण का किला भागलपुर से चार मील है। चंपा या चपापुरी अंग की पुरानी राजधानी है तथा जैनों के बारहवें तीर्थंकर वसुपूज्य की जन्मभूमि है।

सुल्तानगंज में जह्नु का आश्रम है। मोदागिरि मुंगेर है। पथर-घाट में बुद्ध की गुफायें। (पुराना शिला संगम या विक्रम शिला संघाराम) कहलगाँव के उपविभाग में है। ह्वेनसाँग ने इसे चौर कवि की चौर पंचाशिका से व्यक्त किया है। और मंदर की पहाड़ियाँ (मंदार पर्वत की पहाड़ियाँ) बांसी में हैं जो कि भागलपुर से ३२ मील दक्षिण में हैं। चंपापुरी तथा सुह्म को देखिये। ५. मिस्टर कनिगहम की एन्सियन्ट जाग्राफी पृष्ठ ३४६ मे इस देश को चंपा के नाम से लिखा है और भागल-पुर जिले का नाम माना है।

वस्तुतः यह शब्द देश अर्थ मे और इस देश के राजा के अर्थ मे और इस देश के निवासी क्षत्रिय अर्थ मे आता है। जैसा कि आगे वर्णन है। इसकी राजधानी चंपा (भागलपुर) है। तथा यह राजा बलि के एक पुत्र का नाम है जिसका राज्य अंग के नाम से प्रसिद्ध देश बना। वायुपुराण उत्तरार्ध अनुषङ्ग पाद ३७।३३। महाभा० आदि (चि०) १०४।५३–५४ उसकी सन्तान क्षत्रिय भी अङ्ग शब्द से कही जाती है, यह गंगा से दक्षिण है। (हस्त्यायुर्वेद १।४ महारोगस्थान) अथर्ववेद[1] मे ज्वर दूर करने के लिये जो हवन किया जाता है, उसमें जो मंत्र दिये है उनमे अंग शब्द भी आता है। वहाँ ज्वर से प्रार्थना है कि आप फिर महावृषदेश को चले जाइये। क्योकि ज्वर का घर महावृषदेश है और मूजवन्त देश है। और आप बाह्लिक देश में पैदा होकर घूमे है, और जगह मे आपको अच्छा नहीं लगता इससे बाह्लिक को चले जाइये। गन्धारि देश मूजवन्त अङ्ग और

1-५।२२।४–१४

मगध को चले जाइये, वहाँ तुम्हारा निवासस्थान है इत्यादि वहाँ का अर्थ है। इसमे स्पष्ट अग शब्द देश अर्थ मे आया है तथा गोपथ[1] ब्राह्मण मे (कावन्धि नामक आथर्वण के पुत्र से माता ने कहा है कि इमे एषु कुरुपञ्चालेषु अङ्गमगधेषु काशिकौशलेषु शाल्वमत्स्येषु सवशोशीनरेषु उदीच्येषु अन्नमदन्ति) कि कुरु पञ्चाल अङ्ग मगध काशि कोशल शाल्व मत्स्य वश और उशीनर व उदीच्य देशों मे लोग अन्न खाते है तथा बृहद्देवता ४।३०।३३ मे अङ्ग शब्द स्पष्ट देश अर्थ मे आया है। पाणिनि ने इसको जनपद समान क्षत्रिय वाचक माना है। यह देश का नाम है। और एक क्षत्रिय जाति का भी नाम है। जहाँ पर क्षत्रिय अर्थ है वहाँ अङ्ग शब्द से अपत्य (सन्तान) अर्थ मे द्व्यञ्मगध-कलिङ्ग सूरमसादण् ४।१।१७० से अण् प्रत्यय होकर आङ्ग शब्द बनता है इस प्रत्यय की तद्राज सञ्ज्ञा भी होती है। इससे अंग के राजा के अर्थ में भी अण् होकर आङ्ग ही बनता है, बहुवचन मे अण् प्रत्यय का लुक् होता है। इससे सन्तान व राजा अर्थ मे अङ्ग ही बनता है। जनपद अर्थ मे भी अङ्गानां निवासो जनपदः अङ्गाः ही हो जाता है। तस्य निवासः ४।२।६९ से अण् जनपदेलुप् ४।२।८१ से अण् प्रत्यय का लुप् और लुपि युक्तवद् व्यक्ति वचने १।२।५१ से प्रकृति की तरह लिङ्ग वचन (अर्थात् जिससे प्रत्यय हुआ है उसका जो लिङ्ग व वचन हो) होता है। विग्रह में अङ्ग शब्द पुल्लिङ्ग और बहुवचन है। इससे जनपद अर्थ मे पुल्लिङ्ग और बहुवचन होकर अङ्ग ही बनता है। बहुवचन मे क्षत्रिय और राजा

१—२।९।३

अर्थ में अङ्ग शब्द प्रत्ययरहित बहुवचन ही बोला जाता है। प्रकरण से अर्थ विशेष का निर्धारण होता है। अथर्ववेद मे अन्य क्षेत्रेषु इत्यादि शब्द और रहना उत्पन्न होना इत्यादि कहे गये है। इससे वहाँ अङ्ग शब्द कदापि जाति अर्थ मे नहीं हो सकता, न गोपथ ब्राह्मण मे ही। वैदिक इन्डेक्सकार तथा ब्लूम फील्ड और जिमर का मत कैसा है यह विद्वान् लोग विचार करें। वाल्मीकीय[1] रामायण में अंग देश के राजा लोमपाद की राजधानी चम्पा का वर्णन गंगा के किनारे किया है। और लोमपाद ने सन्तानरहित होने के कारण उत्तर कोशलेश महाराज दशरथ की लड़की शान्ता को गोद लिया था जिसका विवाह ऋष्यश्रृंग से हुआ था। शान्ता को लोमपाद की लड़की बतलाकर उसका दशरथ के गोद लेने का वर्णन करनेवाले लोग वालमीकीय रामायण से अनभिज्ञ है वा० रा० बालकाण्ड १३।२ इटली मुद्रित (वङ्ग पाठ) को देखिये। गुर्जर प्रेस की छपी ११।३ मे अस्य तस्य के अर्थ मे संदेह हो सकता है। इटली मुद्रित मे नहीं। महाभारत[2] मे अङ्गराज कर्ण की राजधानी चम्पा को गङ्गा के तट पर माना है और वहीं पर पेटी मे बन्द कर्ण का पाना अधिरथ नामक धृतराष्ट्र के सूत का भी वर्णन है। देश रूप मे इसका वर्णन पुराणादि[3] में आता है। दश-

---

१ आदिकाण्ड (इ० ला०) ८।११ से प्रारम्भ

२ महाभारत आर० चि० ३०८।२६

३ सौर पुराण १८।५९ महाभा० भीष्म पर्व जम्बू ख० ९।४४ चि० ६।४।। (म) ब्रह्मवैवर्त श्रीकृष्ण ख० १०५। ५६ कतिक० ०३।१४।२७ गर्गसहिता विश्व २०।१०

कुमार चरित[1] मे भी अग की राजधानी चम्पा का वर्णन गंगा के तटपर है। पं० तारानाथ तर्कवागीश का मत है कि—"यह देश वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर तक था, यह शक्ति सङ्गमतंत्र मे लिखा है। यह राजगृह और मोदागिरि के बीच मे था।" (हिन्दी विश्वकोष अङ्ग शब्द) वस्तुतः चौहद्दी का पता लगाना असंभव है।

महाभारत सभा २६।३५–३८ (म) ३०।२१ (चि) मे भीमसेन के दिग्विजय मे भीमसेन ने राजगृहाधीश सहदेव को जीतकर अङ्गाधिप कर्ण को जीता, बाद में मोदागिरि (मुंगेर) के राजा को जीता ऐसा लिखा है। जिससे अंग देश मगध से पूर्व प्रतीत होता है। वैदिक इन्डेक्स में "बाद मे ये सोन तथा गंगा नदी पर बसे थे इनकी राजधानी पहले वहाँ रही होगी" यह लिखा है। प्रमाण मे जिमर अलटिन डिसेज्लेबेन ३५ ब्लूमफील्ड-हिम्स आफ दी अथर्ववेद ४४६-४४९ दिया है। पार्जीटर जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०८।८५२ में ये अनार्य रूप मे उल्लिखित है। जो कि समुद्र से पूर्व भारत मे आये। वस्तुत. सोन नदी पटना से पश्चिम है। और भागलपुर पटना से पूर्व है। इससे इन लोगो का सोन नदी पर बसना मानना सर्वथा मिथ्या है। अंग देश मगध से पूर्व है; न कि पश्चिम। सोन पर बसना असंभव है। बाद मे कहने से इनका स्थान पहले और रहा होगा। यह प्रतीत होता है। परन्तु उसका नाम नहीं लिखा। यह लेख उनको घुमक्कड़ जाति सिद्ध करने की चेष्टा मे है। उनका एक घुमक्कड़ बाहरी जाति होना निर्मूल है।

१. पृ० ६३

यह अंगदेश राजा अंग के समय से इस नाम पर प्रसिद्ध हुआ। उसकी सन्तान क्षत्रिय जाति थी और ब्राह्मणादि जातियो के साथ यहाँ रहती थी। जो जाति आर्य थी उसको अनार्य कहना और समुद्र से आना बतलाना निष्प्रमाण और कोरी कल्पना मात्र है। इसका नाम सूत विषय भी है। महाभारत आरण्य-पर्व २९३।१४ (सु) २६३।१९ (म) वृहत्कथा श्लोक सग्रह १६।२६ में इसको बड़ा देश माना है। ऐतरेय ब्राह्मण ३९।८ मे अग एक राजा का नाम है जो कि वैरोचन अर्थात् विरोचन का वंशज था। उसका ऐन्द्राभिषेक उद्मय नामक आत्रेय ने कर-वाया। उससे बलिष्ठ हो उस राजा ने समस्त पृथ्वी को जीता और अश्वमेध यज्ञ किया। और अपने पुरोहित को बहुत अधिक द्रव्य दान किया। वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड (नि० गुजराती प्रेस मुद्रित) २३।१४ मे अंग विषय सरयू और गंगा के संगम की बिचली भूमि (कामाश्रम) को लिखा है। परन्तु यह पाठ इटली २६।१४ तथा लाहौर मुद्रित २१।१४ अनंग इति देशोयं ख्यातः कामांगनाशनात् इस पाठ से शुद्ध हो जाता है। क्योकि कामदेव के अंग नाश से अनंग ही नाम ठीक प्रतीत होता है, न कि अंग।

नन्दलाल डे का मत है कि मुंगेर अंग के मध्य मे है। यह ठीक नहीं। क्योकि महाभारत सभापर्व २६।३५-३८ (म) ३०।२१ चि० भीमदिग्विजय मे पहले मगध देश का विजय है। उसके बाद अंग का विजय है। उसके बाद मोदागिरि के विजय का वर्णन है। इससे स्पष्ट यह देश अग से बाहर था। यदि अंग मे होता तो अंग के विजय से मोदागिरि का विजय हो

जाता। परन्तु मोदागिरि के विजय का पृथक् वर्णन है, इससे दोनो भिन्न-भिन्न हैं। गगा और सरयू का सगम इसकी उत्तरी सीमा के पश्चिमी किनारे पर था, यह कथन भी ठीक नहीं। क्योकि इसकी उत्तरी सीमा गंगा थी और पश्चिमी सीमा मगध था। गंगा का भाग जो सरयू के संगम के पास था, उसका दक्षिणी भाग मलद और करूष देशो मे बॅटा था, उन देशो के पूर्वी भाग मे मगध था। बीच का भाग मगध को पार कर यहाँ कैसे आ सकता है? कामाश्रम तो गंगा से उत्तर और सरयू से दक्षिण और संगम से पश्चिम था। उसका नाम भी अनंग था। अंग नहीं था। यह हम इसी मे ऊपर स्पष्ट कर चुके है। वह स्थान बलिया जिले मे कारो नाम से प्रसिद्ध है और वहाँ पर कामेश्वर नाथ महादेव का मन्दिर है। लोगो का कहना है कि यहाँ पर महादेव ने काम को भस्म किया।

यदि यह सत्य है तो इसके समीप ही पूर्व दिशा मे रामचन्द्र के समय गगा-सरयू संगम था।

बौधायन धर्मसूत्र प्र० १ ख० २। सूत्र १४ व बौधायन स्मृति १।३१ में इस देश को संकीर्ण योनि माना है। इसमें तीर्थयात्रा के बिना जाने का भी निषेध किया गया है। महाभारत के कर्ण-पर्व मे जहाँ पर कि कर्ण के तेज को क्षीण करने के लिये मद्र-राज शल्य ने अंगराज कर्ण से बहुत से कटुशब्द कहे और कर्ण ने उत्तर मे शल्य के सामने उनके देश की निन्दा की। उसके उत्तर में शल्य ने जो उत्तर दिया उसमें अग के जो दोष दिखलाये है उनमे कोई ऐसा दोष नहीं है जो बौधायन धर्मसूत्र और स्मृति को पुष्ट करता हो। इससे मेरी समझ मे यह बौद्ध-समय

में उन प्रान्तों मे बौद्धो के अधिक होने से किसी पण्डित ने प्रक्षिप्त कर दिया। पृ० ९ टि० ३ का अवशिष्ट पद्मपुराण आदि ६।४१ विष्णु० ४।१८।१ ब्रह्म० १३।३६ ब्रह्माण्ड० पूर्वा० अ० १६।५१ मत्स्य० १२१।५० नारदीयपुराण पू० ५६।७४४ स्कन्द० वै० वे० १७।५ महाभारत हरिवंश वि० ३४।१६;५९।२९ महाभारत सभाद्यूत० (चि) ५२।१६ (म) ५२।१३१ काशिका ४।१।१७८ (व्या० महाभा० ४।२०।५२ कैयट) वायु पू० ३७।३३ ब्रह्म २७।५२ मत्स्य ११४।४४ वामन १३।४४ वाल्मी० किष्किन्धा ४०।२३ महाभारत सभा० २६।४३ श्रीमद्भागवत ९।२३।५ विष्णुधर्मोत्तर पुराण १।९।४ गरु० पू० ५५।१२ बृहत्संहिता १४।८ मे इसको पूर्व दक्षिण का देश माना है। कथासरित्सागर विषमशील० १।७६ काव्य मीमांसा १७। मृच्छकटिक ना० पृ० ७९ वेणीसंहार ना० २।१६ कादम्बरी पृ० १९३ (बम्बई) नाट्यशास्त्र २६१।२३।१०४ पृ० (यहाँ के लोग प्रायः श्याम करना) तिलक मंजरी काव्य पृ० १०३ रघुवंश ६।२७ अभिधान चिन्तामणि ९५७ वैजयन्ती भू० दे० ३१ विश्वप्रकाश (गहि १४)

अज—वैदिक इन्डेक्स अज एक जाति का नाम है और ऋग्वेद १।१८।१९ मे आता है, जो कि तृत्सु और सुदास् से हारे माने गये है। इनका उल्लेख यक्षूज् तथा शिग्रूज् के साथ आया है। जिमर कल्पना करता है कि इन लोगों ने सुदास् के विरोध मे भेद के साथ एक संघ कायम किया था। यह नाम उनके पैतृक चिन्ह का द्योतक है। परन्तु यह अनिश्चित है। यह कहना बहुत कठिन सा है कि वे आर्य थे या नहीं।

वस्तुतः यह एक देश का नाम है। यहाँ के निवासी अज कहे जाते थे। यह यमुना के तट पर है। आजकल यह इटावा और जालौन जिलो मे है। ऋग्वेद के ७।१८।१९ मंत्र मे सुदास् का पक्ष लेकर इन्द्र न भेद नामक सुदास् के शत्रु को मारा और उस युद्ध मे तृत्सु राजा की सन्तान और यमुना ने इन्द्र को सतुष्ट किया। और अज शिग्रु जनपद निवासियो और यक्षु लोगों ने इन्द्र को उपहार मे उत्तम-उत्तम घोड़े दिये, यह लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भेद नामक सुदास् का शत्रु यमुना के तट पर रहनेवाला था और उसका राज्य अज शिग्रु देश और यक्षु लोगो पर था। ऋग्वेद मे उल्लिखित देशो के राजे इसके अधिकार मे राज्य करते थे। ये अज देश के निवासी क्षत्रिय आर्य है।

वैदिक इन्डेक्स इनको जाति मानता है। और जिमर इनको जाति मानते हैं और इनके पूर्वज का नाम अज था, यह भी मानते हैं। इस दशा मे विचार यह है कि यदि जाति मानना है तो इस शब्द से एक वचन होना चाहिये, बहुवचन नहीं हो सकता। क्योकि जाति मे जाति के एक होने के कारण एक वचन ही होता है। परन्तु ऋग्वेद मे बहुवचन है इससे केवल जाति मानना असम्भव है। यदि अज की सन्तान मान लें और उसे जाति मानें तो जब तक जनपद समान क्षत्रिय वाचक नहीं मानेगे तब तक अज शब्द से जो अण् प्रत्यय हुआ है उसका लुक् नहीं हो सकता। जब तक लुक् न हो अजाः प्रयोग नहीं बन सकता। यदि जनपद समान क्षत्रियवाचक मान ले तो यह शब्द एक देश का नाम और एक क्षत्रिय का नाम और उसी क्षत्रिय की सन्तान

का नाम हो जायगा। उस क्षत्रिय की सन्तान ही जाति हो जायगी। यहाँ पर अजाः का यदि जाति अर्थ मानना है तो अज क्षत्रिय की सन्तान अज देश निवासी यह अर्थ करना होगा। परन्तु जिमर का मत देश नहीं मानता इससे अधूरा होता हुआ उसके व्याकरण ज्ञान की कमी प्रकट कर रहा है। वैदिक इन्डेक्स-कार का मत जिमर से अधिक व्याकरण-ज्ञान की शून्यता प्रकट कर रहा है। अजाः सन्ति अस्मिन्देशे इस विग्रह मे तदस्मिन्न-स्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६८ इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है उसका जनपदेलुप् ४।२।८१ से लुप् होता है।

लुपि युक्तवद् व्यक्ति वचने १।२।५१ से (प्रकृति जिससे प्रत्यय हुआ) की तरह लिंग और वचन होकर पुल्लिग अज शब्द बहुवचन मे होता है देश अर्थ मे बहुवचन ही शब्द बोला जाता है। यदि जातिवाचक भी मानना हो तो यह अज शब्द जैसे अज–जनपद को कहता है, उसी प्रकार एक क्षत्रिय का भी नाम है। इससे यह जनपद समान क्षत्रिय वाचक हो जाता है। इससे अजस्यापत्यम् इस विग्रह मे द्व्यञ् मगध कलिंग सूरमसादण् ४।१।१७० सूत्र से अज की सन्तान अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है। उसकी तद्राज संज्ञा तेतद्राजाः ४।१।१७४ सूत्र से होती है। कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६ सूत्र से समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७१ इस सूत्र से विभक्ति का लुक् होता है। तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७ से अज शब्द के आदि अकार की वृद्धि होती है। यचिभम् १।४।१८ सूत्र से अज शब्द की जकार के अकार की भ सज्ञा होती है।

और यस्येतिच ६।४।१४८ सूत्र से उसका लोप हो जाता है। और जकार अण् प्रत्यय के अ कार मे मिल जाता है। और एक वचन मे आज ऐसा प्रयोग बनता है। इस प्रकार द्विवचन मे आजौ बनता है। बहुवचन में अण् प्रत्यय की तेतद्राजाः ४।१।१७४ सूत्र से तद्राज संज्ञा होने से बहुवचन में तद्राजस्य बहुषुतेनैवास्त्रियाम् २।४।६२ इस सूत्र से लुक् हो जाता है। इससे आदि वृद्धि इत्यादि न होकर अजाः ऐसा रूप बनता है। जिसका अज क्षत्रिय की तीन या तीन से अधिक पुरुष सन्तान यह अर्थ होता है। ऋग्वेद मे भी अजाः बहुवचन का प्रयोग है। इससे अज क्षत्रियो की पुरुष सन्तान अर्थ करना निश्चित है। यदि जनपद के समान यह क्षत्रिय का वाचक न होता तो अत इञ् ४।१।९५ से इञ् प्रत्यय होकर उसकी तद्राज संज्ञा न होकर लुक् न होने से बहुवचन मे आजयः ही प्रयोग बनता। ऋग्वेद मे अजाः लिखा है। इससे क्षत्रिय होने मे सन्देह नहीं है। जब क्षत्रिय थे तो आर्य अवश्य थे। ऋग्वेद ७।१८।१९ मे आवदिन्द्रं यमुना ऐसा लिखा है। सायण ने तमिद्र यमुनावत (अतोषयत् तत्तीरवासी जनः सर्वोपि अतोषयदित्यर्थः) इन्द्र ने युद्ध मे भेद नामक सुदास् के शत्रु को मारा और यमुनातटवासियो ने इन्द्र को संतुष्ट किया।

इस प्रान्त के इटावा से लेकर यमुना तक होने मे प्रमाण यह है कि यह प्रान्त इटावा से लेकर जालौन तक यमुना के दोनों तटों पर है। और चन्द्रनगर की बकरियाँ संसार की बकरियो में सर्वश्रेष्ठ होती हैं जिनका प्रबन्ध गवर्नमेंट स्वयं कर रही है। और दूसरी जाति की भी बर्बरी नाम की बकरियाँ चन्द्रनगरी

बकरियों से कुछ न्यून गुणवाली होती हैं। इसी प्रान्त के समीप यमुना से दक्षिण इटावा से कुछ ही दूरी पर ग्वालियर राज्य में भेद की राजधानी भेदपुरी नाम की थी जो कि अब भी भदावर नाम से प्रसिद्ध है।

अञ्जसी—यह एक नदी है। इसका वर्णन ऋग्वेद १।१०४।४ मे आया है। यह नदी शिफा नदी की सहायक नदी है। यह नदी नैपाल मे प्रतीत होती है, क्योंकि ऋ० में इसको शिफा नदी का सहायक माना है। इसके साथ वीरपत्नी नाम की एक नदी का नाम आया है जो कि शिफा की सहायक है। वह नैपाल की नदी है, यह स्कन्द पुराण हिमवत् खण्ड ७९।२२ तथा १२४।७३ में वर्णित वीरा नाम की नदी से एक की जाती है, जिसका नाम चम्पा भी है। वह नैपाल की नदी है। इससे यह भी नैपाल ही की है।

अनारम्भण—आलम्बन-रहित ऋ० १।११६।५ तथा १।१८२।६ मे समुद्र का विशेषण है।

अनास्थान—आस्थान भू प्रदेश, उससे रहित ऋ० १।११६।५ मे समुद्र का विशेषण है।

अनितभा—एक नदी है।

१. मैक्समूलर इसको एक नदी मानते हैं और रसा का विशेषण भी मानते हैं। (वे० इ०)

२. वैदिक इन्डेक्सकार इसको नदी मानते हैं।

ऋग्वेद ५।५३।९ में इसका नाम आया है। यह एक नदी है। सायणाचार्य ने इस मंत्र की व्याख्या मे जितनी नदियों के नाम आये है, उनका यौगिक अर्थ किया है। परंच अन्यत्र

उनको नदी भी माना है। इससे नदियों के साथ आने से यह भी नदी ही है। यह मंत्र वायु की स्तुति मे आया है और इसका अर्थ यह है—हे मरुतो ! आपको रसा और अनितभा और कुभा कुत्सित रमण न करावें तथा आपको पुरीषिणी और सरयू भी न रोकें। आपके आने से पैदा हुआ सुख हमीं लोगो को हो।

अंध्र—१. वैदिक इन्डेक्स। यह एक प्रकार के लोगो का नाम है, जो कि पुण्ड्राज् शबराज् पुलिन्दाज् तथा भूतिबाज् के साथ जाति से निकाले हुए के रूप मे आये है जो विश्वा-मित्र के ५० लड़के शुनः शेप के मानने से इन्कार करते से निकाले गये थे। इससे यह स्पष्ट है कि ये लोग अनार्य थे जैसा कि अन्ध्राज् मालूम होते है।

२. वेसेन्ट स्मिथ इसको देश मानते है और पूर्व भारत मे कृष्णा गोदावरी के बीच मे मानते हैं। (वे० इ०)

३. कनिंगहम ऐन्सियन्ट जाग्राफी पृष्ठ ६०३ में इसको देश मानते हैं।

ह्वेनसाँग कोशल से ९०० ली अथवा १५० मील दक्षिण की ओर 'अण्टोलो' या 'आन्ध्र' को, जो कि आधुनिक तेलंगाना है, गया। इसकी राजधानी का नाम 'पिंगकिलो' था, जिसको एम जुलियेन विगखिला लिखता है। किन्तु इसका अभी तक पता नहीं चल सका है। हम जानते हैं कि वारंगोल या वर्णाकोल आगे चलकर कई शताब्दी तक तेलंगाना की राज-धानी रही थी। किन्तु इसकी स्थिति का यात्री के वर्णन से सामञ्जस्य नहीं होता। क्योंकि पैनगंगा पर स्थित चाँद से यह

बहुत दूर और कृष्णा पर स्थित धारनीकोट्ट से बहुत निकट है। चीनी अक्षर भी वारंगोल के नाम की ओर संकेत नहीं करते। यद्यपि कदाचित् उनसे वंकोल का बोध हो सकता है। उनको भीमगाल भी पढ़ा जा सकता है जो कि तेलंगाना के एक प्राचीन कस्बे का नाम है, जिसका उल्लेख अबुलफज्ल ने किया है। लेकिन भीमगाल चाँद से १५० मील दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम होने के स्थान पर केवल १२० मील दक्षिण-पश्चिम है। और धारनीकोट्ट से १६७ मील के स्थान पर २०० मील से भी अधिक उत्तर मे है। इसलिये मेरी अभिरुचि यह स्वीकार करने के लिए होनी चाहिये कि चीनी अक्षर वारंगोल की ही त्रुटिपूर्ण प्रतिलिपि है। यद्यपि उनकी स्थितियाँ अधिक अनुकूल होती है किन्तु वारंगोल और चाँद का वास्तविक अंतर १६० मील और वारंगोल और धारनीकोट्ट के मध्य केवल १२० मील का अन्तर है। अतः ह्वेनसाँग के वर्णन के अनुसार यह धारनीकोट्ट के बहुत समीप और चाँद से बहुत दूर है। यदि हम 'बरार' की अमरावती को कोशल की राजधानी के रूप मे मान सकें तो भीमगाल निस्सन्देह आन्ध्र की राजधानी हो जायगा। क्योकि चाँद और धारनीकोट्ट के बीच यह मध्य बिन्दु की अपेक्षा कुछ कम ही दूर है। किन्तु ह्वेनसाँग के ९०० ली और १००० ली अथवा १५० मील और १६७ मील के अंको के अनुकूल होने मे यह दोनो अन्तर (दूरी) बहुत ही अधिक है।

'एलगाण्डेल' की स्थिति जोकि भीगगाल और वारंगोल के बीचोबीच मे है, यात्री के वर्णन से अधिक मेल खाती है। क्योंकि

यह चाँद से लगभग १३० मील और धारनीकोट से १७० मील है। अतः मेरी सम्मति ईसा की सातवीं शताब्दी में आन्ध्र की राजधानी के सम्भवनीय रूप में 'एल्गाएडेल' को स्वीकार करने की है।

आन्ध्र प्रान्त ३००० ली अथवा ५०० मील (चारों ओर) वर्णित है। सीमा का उल्लेख किसी भी दिशा मे नहीं है। किन्तु यह माना जा सकता है कि गोदावरी नदी जो कि उत्तर-पूर्व मे आधुनिक सीमा है, प्राचीन थी। क्योंकि यह उत्तर में तेलगू भाषा की भी सीमा है। पश्चिम मे जहाँ यह महाराष्ट्र के बृहद् राज्य से मिला है, यह गोदावरी की मन्भिरा शाखा के उस पार नहीं फैल सका होगा। अतः इस प्रदेश का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि यह दक्षिण-पूर्व मे मन्भिरा और गोदावरी के संगम से भद्रचेलम तक २५० मील लम्बाई मे और दक्षिण मे हैदराबाद तक १०० मील लम्बाई मे फैला हुआ है।

हैदराबाद और भद्रचेलम् के बीच का अन्तर १७५ मील है। इन सीमाओं से ५२५ मील विस्तृति आती है, जो कि लगभग वही है जो ह्वेनसाँग ने बतलाया है। आन्दरों के नाम से प्लिनी ने आन्ध्र लोगो का वर्णन किया है कि यह एक शक्तिशाली राष्ट्र है जिसके पास ३० सदुर्ग नगर हैं। एक लाख सिपाहियो, दो हजार घुड़सवारों और एक हजार हाथियो की लम्बी सेना है। (पेन्टीगेरियन तालिकाओ) मे भी आन्दरों इण्डी मिलते है। गंगा के किनारों पर आन्ध्र लोगों का निवास बतलाते हुए 'विल्सन' इन तालिकाओं (सूचियों) को उद्धृत करता है। किन्तु पेन्टीगेरियन नक्शे के बहुत अधिक बढ़े हुए

स्वरूप ने बहुत से लोगों और राष्ट्रो को उनके ठीक स्थान से बहुत अधिक दूर हटा दिया है। समीपवर्ती नामों की तुलना से कहीं अधिक सुरक्षित परिणाम का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार आन्दर्रो इन्डी दी मरिस के निकट रक्खे जाते हैं, जिसको कि मैं Ptolemy (टालेमी) का लिम्युरिक (Limyrike) समझूँगा। और इसके लिये केवल आदि के △ को ∧ मे परिवर्तित करना होगा। क्योंकि तालिकाओं की रचना के लिये मूलभूत प्रमाण (प्राचीन अधिकारी) यूनानी ही रहे होंगे। लेकिन लिम्युरिक के लोगों ने प्रायद्वीप के दक्षिणी पश्चिमी समुद्रतट को ही अपना निवासस्थान बनाया था। फलस्वरूप उनके पड़ोसी 'आन्दर्रो' इण्डी तेलिगान के सर्व-प्रसिद्ध आन्ध्र लोग ही होंगे। और गंगा के कल्पित (पौराणिक) आन्ध्र नहीं जिनका उल्लेख केवल पुराणों मे मिलता है।

प्लिनी को आन्दर्रो का ज्ञान या तो अपने समय के सिकन्दरी सौदागरों से प्राप्त हुआ होगा या मेगास्थनीज और दियोनिसियस के लेखो से जो कि (Palibothra) पालीबोथ्रा के दरबार मे क्रम से सेल्यूकस निकटोर और टाले भी फिलाडेल्फस के राजदूत थे। आन्दर्रो प्लिनी के समकालीन थे या न थे; किन्तु यह तो निश्चित है कि वे उस समय मगध पर शासन नहीं कर रहे थे जिस समय की ओर वह संकेत करता है। क्योंकि ठीक उसी के पश्चात् वह पालीबोथ्रा के (प्रासी) का उल्लेख करता है। कि वह भारत का सबसे अधिक शान्तिसम्पन्न राष्ट्र है जिसके पास ६ लाख सिपाही, ३० हजार घोड़े और ९ हजार हाथी हैं या आन्दर्रो इण्डी की शक्ति के छः

गुने से भी अधिक ।

चीनी यात्री देखता है कि यद्यपि आन्ध्र के लोगों की भाषा मध्यभारत के लोगो की भाषा से बहुत ही भिन्न है तथापि लिखित वर्णों की आकृतियाँ अधिकांशतः बिल्कुल वही है यह उक्ति विशेष रुचिकर है, क्योकि यह प्रदर्शित करता है कि उत्तरी भारत से आये हुए प्राचीन नागरी वर्णो का अब भी प्रचार था और तेलगू वर्णों (अक्षरो) की विचित्र ढंग से मुड़ी हुई आकृतियाँ जो कि १० वीं शताब्दी के शिलालेखों से प्राप्त होती हैं, दक्षिण मे अभी तक स्वीकृत नहीं की जा सकी थीं ।

जाग्राफिकल डिक्शनरी पृ० ७ अध्र यह देश गोदावरी और कावेरी के बीच मे है । इसमे कृष्णा का जिला भी है । इसकी राजधानी धान्यकटक या अमरावती कृष्णा नदी के मुहाने पर है । इलूर से ५ मील उत्तर वेगी है । ह्वेनसाँग के अनुसार वह पुरानी राजधानी थी (गरुड़ पुराण अध्याय ५५)

२. तेलिंगाना जो कि हैदराबाद के दक्षिण मे है, अनर्घ-राघव अंक ७।१०३ के अनुसार सप्त गोदावरी आंध्र देश में आतो है । उसके मुख्य देवता भीमेश्वर है । वेंगी के पल्लव-नरेश कल्याणपुर के चालुक्य नरेशों द्वारा हराये गये और चोल नरेशो द्वारा उसकी उन्नति हुई, जो कि धरणी कोटि के जैन नरेशों द्वारा शासित किये गये । आध्र राजवंश सातवाहन या सातकर्णि नाम से जाना जाता है । उनकी राजधानी श्री काकु-लम् थी जो कि कृष्णा मे मिल गई ।

वस्तुतः यह शब्द एक विश्वामित्र के वंशज़ों का बोधक है और दस्युओं मे जो कि डाकुओं का पेशा करते थे उनमे से एक

का नाम है। उन्हीं के रहने के कारण यह शब्द देश अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इनको अनार्य जाति मानना विश्वामित्र के वंशज होने के कारण निराधार ही नहीं बल्कि आँखों में धूल झोंकना है। जब विश्वामित्र आर्य थे तो उनकी संतान अनार्य कैसे हो सकती है। ऐतरेय ब्राह्मण ३३।६ मे यह कथा इस प्रकार है। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ मे शुनःशेप को अपना बड़ा पुत्र बनाया। तब शुनःशेप ने विश्वामित्र से कहा कि आपके लड़के भी इस बात को स्वीकार कर ले। तब विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि शुनःशेप को अपना बड़ा भाई माने। विश्वामित्र के १०१ पुत्रो में से मधुछन्दस से बड़े ५० पुत्रो ने पिता की आज्ञा को स्वीकार नहीं किया, इससे अप्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उनको शाप दिया कि तुम्हारी सन्तान अन्त्यज हो जाय। उन्हीं पुत्रो की सन्तान अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर पुलिन्द, मूतिब इत्यादि दस्युओ मे बहुतायत से है। विश्वामित्र आर्य थे, उनके पुत्र भी आर्य थे, उनकी सन्तान भी आर्य हो सकती है; न कि अनार्य। दस्यु डाकू को कहते है, जो डाका डालने लगे वही डाकू। डाका डालना किसी जाति के ऊपर निर्भर नहीं है। आर्य लोग अनार्यों को दस्यु कहते थे यह बिल्कुल निर्मूल है। यह शब्द पुराणादि' मे देश अर्थ मे आया है। वैदिक इन्डेक्स मे शांखायन श्रौत सूत्र १५।२६ जहाँ पर कि उदन्त्याः (सीमा के परे) के स्थान पर उदञ्चाः पाठ है। उदञ्चाः उत्तरी। परन्तु प्रथम पाठ ठीक मालूम होता है। शांखायन पुलिन्दाज् को छोड़ देते है मूतीवाज् को अपनाते है। इनका अर्थ उदन्त्या का सीमा के बाहर है। यह ठीक नहीं। क्योकि

पुण्ड्र इत्यादि का सीमा के बाहर सभव नहीं।

सायणाचार्य इस शब्द का अर्थ अत्यंत नीच जाति करते हैं। अन्ध्राः सन्ति अस्मिन्देशे इति इस विग्रह मे तदस्मिन्नस्तीति-देशे तन्नाम्नि इस सूत्र से अण् प्रत्यय होकर उसका जनपदे लुप् इस सूत्र से लुप् करके लुपियुक्तवद् व्यक्ति वचने इस सूत्र से प्रकृति के समान लिंग वचन करने पर यह देशवाची बहु-बचनान्त अंध्र शब्द तैयार होता है। यह देश दक्षिण देश में है और तैलंग नाम से प्रसिद्ध है।

ए० पी० आ० इ० २१।२७४ यह देश श्री पर्वत के पूर्वभाग से पूर्व समुद्र तक और मेखल पर्वत पर्यन्त है तथा श्री पनवोत राजा का राज्य है। इन्डि० आ० १५।१७५ आन्ध्र मण्डल यह श्रीबधूवल्लभ मल्लदेव नन्दवर्मा का राज्य है इसमें १२६ हजार गाँव हैं और यह सप्तार्ध लक्ष विषय कहलाता है। बात्स्यायन कामसूत्र सां प्रयो द० नं० ५।२८ की टीका मे जयमंगल ने इसको कर्णाट से पूर्व माना है।

१. पद्मपुराण आदि० ६।४८ वामन १३।५० महाभारत भीष्म पर्व ९।४९ सभा ३१।७१ (चि०) वाल्मीकि रामायण किष्किंधा का० ४१।२ बृहत् संहिता १४।८ श्रीमद्भागवत् ९।२०।३० कल्कि० ३।१४।२७ ब्रह्माण्ड पू० १६।५३ मार्कण्डेय० ५४।४८ तथा ५५।१६ यह देश पूर्वमुख कूर्म के पूर्व-दक्षिण पैर में है। गरु० पू० ७०।१५ यह देश है और इसमे पद्मराग मणि पैदा होती है। महाभारत भीष्म (चि० नि०) ९।४८ (म०) ९।४७॥ वाल्मीकि कि० (गु०) ४१।२ (नि०) ३२।७३ यह जनपद दक्षिण देश में है

वायु० पू० ४५।१२७ यह जनपद भारतवर्ष में दक्षिण दिशा मे है। पद्म आ० ६।४४ यह देश भारत मे है। ब्रह्मा० पू० १६।५९ मत्स्य० १६।११६ यह देश है यहाँ के ब्राह्मण को श्राद्ध मे भोजन न करावे। वाम० १३।५० यह देश कुमार द्वीप में दक्षिण दिशा मे है। पाठ आंध्र है। नारदीय० पू० ५६।७४२ कूर्म० ब्रा० पू० ४७।४४

अन्यतः प्लक्षा—एक कमलयुक्त तालाब का नाम है और स्त्रीलिङ्ग है। पिशल इसको सिरमोर में मानते हैं। (वे० इ०) यह सर कुरुक्षेत्र मे है। ऐसा शतपथ ब्राह्मण ११।५।१।४ मे लिखा है। यहीं पर महाराज पुरूरवा को उर्वशी का दर्शन फिर से हुआ था। श्रीमद्भागवत ९।१४।३३ में सरस्वती नदी मे कुरुक्षेत्र के भीतर उर्वशी के दर्शन का वर्णन है।

अपाक्—यह शब्द ऋग्वेद ३।५३।११ मे पश्चिम देश के अर्थ मे आया है।

अपाच्य—पश्चिम दिशा में रहनेवाले लोग। (वे० इ०) "पश्चिमी राजे अपाच्य कहे जाते हैं। ऐतरेय ब्रा० ८।६४ में इनका उल्लेख है" वस्तुतः पश्चिम दिशा में निवास करनेवाले प्राणी अपाच्य कहे जाते है। ऐतरेय ब्रा० ३८।३ मे "प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजा नः येऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव ते शिषिच्यन्ते स्वराडित्येतान् अभिषिक्तान् आचक्षत" "सायण प्रतीच्यांदिशि वर्तमानाः प्राणिनः नीच्या अपाच्याश्च। निकर्ष भवन्तीति नीच्याः। अपकर्षभवन्तीति अपाच्याः। जात्या निकर्षः व्यवहारेण अपकर्षः" इसका अर्थ यह है पश्चिम दिशा में जो नीच्यों और अपाच्यों के राजे हैं वे स्वाराज्य के लिये

अभिषिक्त होते हैं। ऐन्द्राभिषेक से अभिषिक्त इन राजाओं को स्वराट् कहना चाहिये। "सायण ने जो जाति से हीन हैं वे नीच्य कहे जाते है और जो व्यवहार से हीन हैं वे अपाच्य कहे जाते है यह लिखा है" वे० इ० कार का अर्थ अशुद्ध है।

अयोध्या पृ०—यह शब्द अथर्ववेद १०।२।३१ मे आया है और इसका अर्थ अयोध्या नगरी है। जाग्राफिकल डिक्शनरी पृ० १४ "अयोध्या अवध राम का राज्य रामायण के काल मे (१ का० अ० ४९, ५०) कोशल की दक्षिणी सीमा स्यन्दिका अथवा सई नदी थी जो कि गोमती और गंगा के बीच मे है। बुद्धकाल मे अयोध्या उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल मे विभाजित हुई। सरयू नदी ने दो प्रान्त विभाजित किये। पहले की राजधानी श्रावस्ती ताप्ती नदी के तट पर थी। और बाद वाले की राजधानी अयोध्या सरयू के तट पर थी। बुद्ध के समय मे प्रसेनजित् के पिता का राज्य कोशल महाकोशल में परिवर्तित हुआ जो कि हिमालय से गगा तथा रामगगा से गण्डक तक था। राज्य की पुरानी राजधानी अयोध्या कही जाती थी; जो रामचन्द्र की जन्मभूमि थी। जन्म के स्थान पर राम का जन्म माना जाता है। क्षीरोदक जो क्षीरसागर भी कहा जाता है, यहाँ पर राजा दशरथ ने ऋष्य श्रृंग की सहायता से पुत्रार्थ यज्ञ किया था। एक स्थान ऐसा है जो कि त्रेता का ठाकुर कहा जाता है। यहाँ पर रामचन्द्र ने सीता की मूर्ति स्थापित करके अश्वमेध यज्ञ किया था, रत्न मण्डप में वह सभा करते थे। (मुक्तिकोपनिषद् अ० १) फैजाबाद में स्वर्गद्वारम् मे उनका शरीर भस्म किया गया था। लक्ष्मणकुण्ड सरयू नदी में है

जहाँ लक्ष्मण विलीन हो गये थे। दशरथ ने अन्ध ऋषि के पुत्र श्रवण को अकस्मात् मझौरा के स्थान पर जो कि फैजाबाद के जिले में है, मार डाला था। आदिनाथ नामक एक जैन तीर्थङ्कर अयोध्या में जन्मे थे। (फूहरर का एम० ए० आई) कनिगहम ने सुग्रीव पर्वत को तथा कालकाराम या पूर्वाराम के मठ को जो कि महावंश का है एक ही माना है तथा मणिपर्वत को जो कि अशोक के स्तूप के साथ ह्वेनसाँग ने वर्णन किया है तथा कुबेर पर्वत जो कि बुद्धदेव के बालों और नाखूनों के स्तूप से युक्त है एक ही है। (आर्कियो सर्वे रिपोर्ट खण्ड १) मणिपर्वत गन्ध मादन का टुकड़ा कहा जाता है जिसको हनुमान् अपने सिर पर लाये थे। अयोध्या के पवित्र स्थान विक्रमादित्य के द्वारा खोजे गये थे। यह विक्रमादित्य गुप्त नरेश थे जो कि ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे और दूसरी शताब्दी मे थे। कुछ के अनुसार पाँचवीं मे थे। इसी प्रकार पवित्र स्थान वृन्दावन मे सोलहवीं शताब्दी मे रूप और सनातन गोस्वामी द्वारा खोजे गये थे। अयोध्या बौद्धों का साकेत तथा टालेमी की सगडा है। साकेत देखिये।" डाक्टर डे ने स्यन्दिका को जो कोशल की दक्षिणी सीमा कहा है, वह ठीक नहीं है। वाल्मीकि रामायण मे स्यन्दिका को मनु के द्वारा इक्ष्वाकु को दी गई भूमि का अन्त बतलाया है, न कि कोशल का। उसका अर्थ मनु द्वारा उतनी भूमि जागीर के रूप मे इक्ष्वाकु को दी गई थी यह है और उसके बाद कोशल के वे भाग लिखे हैं जिनका शासन दशरथ की आज्ञा से अन्य राजे लोग करते थे। शृंगबेरपुर गंगा के उत्तरी तट पर था और वह कोशल में ही था, यह बा०

रा० में स्पष्ट है। इससे यह सीमा गंगा तक तो अवश्य माननी होगी। डा० डे का कहना है कि बुद्धकाल में अयोध्या उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल मे विभाजित हुई यह भी ठीक नहीं। क्योंकि अयोध्या जिस कोशल मे थी वह सर्वदा से उत्तर कोशल कहा जाता रहा और दक्षिण कोशल दक्षिण देश में बिंध्य के देश मे था, जहाँ के राजा की पुत्री दशरथ की पटरानी कौशल्या थीं। कोशल के राजा की लड़की होने के कारण ही कौशल्या नाम पड़ा। दक्षिण कोशल ही महाकोशल कहा जाता है। उत्तर कोशल महाकोशल कभी नहीं कहा गया "और सरयू ने उत्तर और दक्षिण कोशल का विभाग किया" यह भी ठीक नहीं। सरयू के उत्तर तट पर मखौड़ा नाम का स्थान दशरथ की यज्ञभूमि कहा जाता है। और नैमिषारण्य में गोमती तट राम के अश्वमेधयज्ञ का स्थान है। यह बात रामायण उत्तर० और पुराणो मे (महाभारत वन २९१।७०) में प्रसिद्ध है। वह स्थान अयोध्या में नहीं हो सकता। भगवान् रामचन्द्र को भस्म क्रिया कहना तो सर्वथा रामायण उत्तर० और पुराणों से विरुद्ध है। वाल्मीकीय रामायण उत्तर० में भगवान् रामचन्द्र परमधाम जाते समय पशु-पक्षी सहित अयोध्या के निवासियो को साथ लेकर सरयू के गुप्तार घाट में प्रविष्ट हो गये और लक्ष्मण ने अपने शरीर को योग द्वारा छोड़ा, न कि लक्ष्मणकुण्ड में प्रविष्ट हुए। हनुमान द्रोणाचल को लंका में लाये थे और काम निकालने के बाद उसे उसके स्थान पर पहुँचा आये। यह वा० रा० युद्ध० में लिखा है। अयोध्या मे नहीं लाये और न कोई पर्वत अयोध्या या उसके आसपास ही है।

शायद कुछ लोगों ने बौद्धकाल मे कुछ स्थानों का नाम पर्वत रख दिया हो, यह हो सकता है।

विक्रमादित्य कई एक हुए है उनमे कौन विक्रमादित्य हैं इसका निश्चय नहीं। हमारी समझ मे कथासरित्सागर के विषमशील विक्रमादित्य ही हमारी प्रसिद्ध कथाओ के विक्रमादित्य है। गुप्त वंश मे विक्रमादित्य होने का कोई भी प्रमाण नहीं है। यदि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य होते तो उनके तथा बाद के लेखों मे उनको विक्रमादित्य लिखा जाता।

परञ्च उनके लेखो तथा बाद के लेखों मे—उनके लिए विक्रमादित्य का प्रयोग नहीं मिलता। एक सील (मोहर) मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य मिलता है। उसका सम्बन्ध गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त से करना ठीक नहीं। वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कोई और ही होगे। यह निश्चित है।

अयोध्या नगरी का नाम है मिं० डे का देश अर्थ मे प्रयोग ठीक नहीं।

अर्णव—यह समुद्र का नाम है। ऋ० वे० १।५५।२ तथा ३।२२।२ तथा शतपथ ७।१।८३ मे यह शब्द समुद्र अर्थ मे आया है। तैत्तिरीयारण्यक प्रपाठक ४ अनुवाक ४२ पृष्ठ ३५३ में, हे अ ग्ने ! आप अर्णव = समुद्र के समान महान् है।

अर्बुदोदासर्पणी—यह एक मार्ग का नाम है जो कि सर्वचरु नामवाले देश मे है, इसका वर्णन ऐतरेय ब्रा० अध्या० २६।१ मे है।

अर्म—दृषद्वती के उत्पत्ति-स्थान का नाम है। यमुना से

अधिक दूर नहीं है। यमुना यहाँ से दक्षिण है। लाट्यायन श्रौत सूत्र १०।१९।५—१५

अक्षचत्नुक—ऐतरेय[1] ब्राह्मण मे इसका नाम आया है। देश[2] का नाम है। यहाँ अंगराज के पुरोहित आत्रेय उदमेय ने दश सहस्र हाथियो का दान किया। बाद मे थक जाने पर परिचारकों को दान देने की आज्ञा दी। परिचारक भी जब एक एक देते थक गये तो तुम्हारे लिये १०० देते है, यह कहकर देने लगे। उसपर भी थके तब तुम्हारे लिये सहस्र देते है, ऐसा कहकर दान देते हुए इतने थक गये कि लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगे।

अवनि—यह नदी सामान्य का नाम ऋ० ५।११।५ तथा ५।८६।६ निरुक्त २।२४

अश्मन्वती—एक नदी का नाम है। नन्दलाल डे इसको आक्सेस् नदी मानते है। जा० डि० पृ० १३

वस्तुत ऋ० १०।५३।८ मे तथा शतपथ १३।८।३।३ मे एक नदी के रूप मे वर्णित है। अर्थ से दृषद्वती प्रतीत होती है। प्रमाणाभाव से नन्दलाल का मत ठीक नहीं है।

अश्विक्न—यह एक देश है। इसके राजा याज्ञतुर ऋषभ के अश्वमेध का वर्णन शतपथ १३।५।४।१५ मे आया है।

असिक्नी—(१) वे० इ० यह पहले एक नदी के रूप मे आती है। बाद मे चन्द्रभागा कहलाने लगी, अब चिनाव कही जाती है।

१—३९।८ पृ० ९५१

२—यह सायण का मत है वस्तुतः स्थान विशेष प्रतीत होता है।

(२) ग्रीक निवासी इसको एकेसिनीज कहते थे (वे० इ०)

(३) जिमर इसको चिनाव मानते हैं (वे० इ०)

(४) जयचन्द्र विद्यालङ्कार भारतभूमि खण्ड १ पृष्ठ १४५ चन्द्रभागा चिनाव इसमे जहाँ पर ६० मील तक पश्चिमवाहिनी है उसके अन्तिम दक्षिण मोड़ पर रियासी के सीधे उत्तर उसमे अस नदी मिलती है जिसका नाम चिनाव के वैदिक नाम असिक्नी की याद दिलाता है । भण्डारकर कोमे मोरेशन १९१७ पृ० २५ । वस्तुत: निरुक्त ९।२६ मे असिक्नी अशुक्ला असितामिति वर्णनाम तत्प्रतिषेधोमितम् । अर्थात् काले जलवाली, दुर्गाचार्य ने भी कालेजलवाली कृष्णोदका लिखा है । अत: यह नदी चनाव नहीं हो सकती, क्योंकि उसका जल श्वेत है । इससे हमारी समझ मे यह यू० पी० की कन्नौज के समीप गंगा मे मिलनेवाली काली नदी है । यमुना का भी जल काला है परन्तु ऋ० १०।७५।५ मे यमुना के साथ इसका नाम आया है, इससे यमुना का संभव नहीं । इसका वर्णन ऋ० ८।२०।२५ मे मरुतों की स्तुति मे जो औषधियाँ असिक्नी नदी मे हैं इस अर्थ मे तथा ऋ० १०।७५।५ मे "हे आसिक्नि आप हमारा सामवेदोक्त स्तोत्र सुनें" इस अर्थ मे आया है । पद्म० आदि ६।१९ देवी भा० ८।११।१८ महाभा० भी० ९।२३ मे इसको भारतवर्ष की नदी कहा गया है । श्रीमद्भा० ५।१९।१८ मे महानदी लिखी है । मेदिनी कोष (नत्रि० ३३) मे नदी विशेष कहा है । अष्टाध्यायी वर्णादनुदात्तात्तो पधात्तोन: ४।१।३९ मे कात्यायन ने छन्दसि क्नमेके इस वार्तिक के द्वारा असित शब्द से असिक्नी बनाया है । जिसका अर्थ काले जलवाली होता है ।

अस्त—ऋ० १०।२८।१ मे घर का नाम ।

अहिच्छत्र—१. जा० डि० पृ०२ यह उत्तर पाञ्चाल की राजधानी का नाम है। अहिच्छेत्र रुहेलखण्ड मे बरेली से पश्चिम २० मील रामनगर है, इस अहिच्छत्र का आधुनिक नाम मैदान मे बड़े किले के लिये कहा जाता है, जो कि आलमपुरकोट तथा नसरतगंज मे है।

२. यही मत डा. फुहरर एम० ए० आई. का भी है (जा. डि.)

ऐन्सियन्ट जाग्राफी पृ० ४१२ मे कनिङ्गहम ने इस प्रकार लिखा है।

अहिच्छत्र—गोविसन से ह्वेन च्यांग दक्षिणपूर्व मे अहि० चि ८० लो० या अहिक्षेत्र को ४०० ली या ६६ मील चला। एक समय के इस प्रसिद्ध स्थान का अब भी नाम अहिछत्र है। यद्यपि बहुत शताब्दियो से यहाँ कोई नहीं रहता है इसका इतिहास १४३० बी० सी० से आरम्भ होता है जिस समय उत्तरी पञ्चाल की यह राजधानी थी। इसका नाम अहिक्षेत्र लिखा है और अहिछत्र भी। किन्तु आदि राजा और नाग की कथा जो कि सोते समय अपने सिर के ऊपर एक आच्छादन बना लेते थे सूचित करती है कि दूसरा शब्द अर्थात् अहिच्छत्र शुद्ध रूप है। यह शानदार पुराना किला राजा आदि के द्वारा बनवाया गया था जो कि अहिर था और उसका भविष्य मे राजत्व पाना द्रोण के द्वारा पहले ही से बतलाया गया था। द्रोण ने यह भविष्य वाणी उस समय की थी जब उन्होने (द्रोण ने) आदि को सर्प से रक्षित सोते हुए देखा। टाले ने भी—

इस स्थान का नाम ASIOASPa लिखा है, जिससे प्रमा-

णित होता है कि आदि की कथा उतनी ही प्राचीन है जितना कि क्रिश्चियन संवत् । किला आदि कोट कहलाता है। किन्तु अधिक प्रयोग में आनेवाला नाम अहिछत्र है।

महाभारत के अनुसार पांचाल का महत् राज्य हिमालय पर्वत से चम्बल नदी तक विस्तृत था। उत्तरी पाञ्चाल या रोहिलखण्ड की राजधानी अहिछत्र थी और दक्षिणी पाञ्चाल की या मध्य गंगा के दोआब की काम्पिल्य या कम्पिल थी जो कि बदायूँ और फर्रुखाबाद के मध्य में पुरानी (बूढ़ी) गंगा पर स्थित थी। महायुद्ध के पूर्व या १४३० बी० सी० में पाञ्चाल का राजा द्रुपद पाण्डवों के गुरु द्रोण के द्वारा पराजित हुआ। द्रोण ने उत्तरी पाञ्चाल अपने लिये रखा; किन्तु दक्षिण का आधा राज्य द्रुपद को वापस कर दिया। इस वर्णन के आधार पर अहिछत्र का नाम और आदि राजा तथा सर्पों की कथा बुद्धधर्म की उन्नति के पूर्व की है। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध लोगों ने कथा को अपने गुरु के प्रति आदर दिखलाने के लिए परिवर्तित कर दिया। क्योंकि ह्वेनच्वाँग का कथन है कि नगर के बाहर एक नागह्रद था, जहाँ पर बुद्ध ने अपने उपदेश को सात दिन तक नाग राजा के लिये दिया था। और वह स्थान अशोक के स्तूप से चिह्नित है। अब वहाँ का स्तूप छत्र कहलाता है। मैं विश्वास करता हूँ कि बौद्ध कथा में नागराजा को अपना धर्म बदलकर बुद्ध के ऊपर अपने फणों से एक मण्डल बनाते हुए दिखलाया है। मेरे विचार से धर्म-रूपान्तर के स्थान पर बनवाया हुआ स्तूप स्वभावतः अहिछत्र कहलाया। नाग राजा मुचलिन्द के विषय में भी वैसी ही कथा प्रचलित है, जिसने

ईर्ष्यालु मार राक्षस के द्वारा की हुई वर्षा से बुद्ध की अपने फणों द्वारा रक्षा की थी।

ह्वयनच्वाँग के द्वारा दिया हुआ अहिछत्र का वर्णन अपूर्ण है, नहीं तो बहुत सी नष्टप्राय वस्तुओं का एकीकरण बौद्धधर्म की पुस्तको से कर लेता। राजधानी १७ या १८ ली या ३ मील के घेरे में थी और प्राकृतिक रुकावटों से रक्षित थी। वहाँ पर १२ बौद्धमठ थे, जिनमें १००० भिक्षु थे। ९ ब्राह्मणों के मन्दिर थे जिनमें ३०० ईश्वर देव (शिव के भक्त) थे जो कि अपने शरीर में धूल लगाये थे। नागह्रद के पास नगर के बाहर स्थित स्तूप का वर्णन कर दिया गया है। उसी के समीप चार और छोटे-छोटे स्तूप उस स्थान पर बने हैं जहाँ पर पहले के चार बुद्ध बैठे थे या चले थे। अहिछत्र के किले की नाप तथा विचित्र स्थिति ह्वयनच्वांग के पुराने अहिछत्र के वर्णन से इतना अधिक मिलती है कि उनके एकीकरण मे कोई सन्देह नहीं है। इस समय दीवारों का घेरा १९४०० फीट अथवा ३॥ मील से अधिक है। उसकी आकृति एक राइट कोण (समकोण) वाले त्रिकोण की तरह है। पश्चिमी लाइन ५६०० फीट लम्बाई मे है। उत्तरी लाइन ६४०० फीट और पूर्व-दक्षिण की लम्बी लाइन ७४०० फीट। किला रामगंगा और गांघन नदी के मध्य में स्थित है। दोनो ही नदियाँ कठिनता से पार की जा सकती हैं। पहली चौड़ी बालू के कारण, दूसरी विस्तृत कन्दराओं के कारण। उत्तर और पूर्व में पिरिया नाले के कारण नदी पार ही नहीं की जा सकती है। पिरिया नाला एक बहुत बड़ी कन्दरा (खड्ड) है। जिसके किनारे टूटे और ढालू हैं। जहाँ पर

असंख्य पानी के कुण्ड हैं, जो पहियेदार सवारियों से पार नहीं किये जा सके हैं। इसलिये बरेली की बैलगाड़ी से चलनेवाली सड़क जो केवल १८ मील है, २३ मील की हो जाती है। वास्तव मे लखनोर की दिशा से उत्तर-पश्चिम की सड़क ही ऐसी है, जहाँ से वहाँ पर जाया जा सकता है। लखनोर कटेहिया राजपूत की राजधानी है। अतः ह्वयनच्वाँग का यह कथन कि यह प्रकृति से ही सुरक्षित है, ठीक है। अहिछत्र अओन्ला से ७ मील उत्तर में है। किन्तु बाद का आधा भाग गांङन नदी की कन्दराओं के कारण कठिनता से पार किया जा सकता है। अओन्ला के उत्तर मे जंगलो की भी यही स्थिति है। यहीं पर कटेहिया राजपूतो ने फीरोजशाह तुगलक के समय मे मुसलमानों का विरोध किया था[1]।

अहिछत्र मे सबसे पहले कैप्टेन हाग्सन गये, जिन्होंने उस स्थान का इस प्रकार वर्णन किया है। "एक पुराने किले का नष्ट-प्राय भाग है, जिसका घेरा कई मील है। जिसमे ३४ दुर्ग के रक्षा करनेवाले उभड़े भाग थे और आसपास "पाण्डु का किला" के नाम से प्रसिद्ध है।' मेरे निरीक्षण के अनुसार वहाँ पर ३२ मीनारें हैं। किन्तु यह संभव है कि एक दो मुझसे छूट गई हों, क्योंकि मैंने बहुत से ऐसे भाग देखे जो कि वनों से आच्छादित थे और उनकी गणना करना या पार पाना कठिन था। बहुधा मीनारें २८ फीट से ३० फीट तक ऊँची है। केवल

---

१ नो० ब्रिग्ज का फेरिस्ता।

पश्चिम को छोड़कर जहाँ पर वे ३५ फीट ऊँची हैं, पश्चिम-दक्षिण मे एक मीनार ४७ फीट ऊँची है। सामान्यतः ऊँचाई १५ से २० फीट तक है। बहुत सी मीनारे प्राचीन नहीं है। क्योंकि २०० वर्ष पूर्व अली मुहम्मद खाँ ने किले को सुधारने का प्रयत्न किया था। क्योंकि उसने इसे अपना दुर्ग बनाना चाहा था, जिससे कि वह जब देहलो का राजा नष्ट करने का यत्न करे तब अपनी रक्षा कर सके। नई दीवारें १। गज मोटी थीं, जो दक्षिण पूर्व की मेरी दीवारो की नाप से मिलती है, जो कि २ फी० ९ इं० से ३ फी० ३ इंच मोटो थी। कहा जाता है कि अली मुहम्मद ने एक करोड़ रुपये या दस लाख पाउड स्टर्लिंग के लगभग खर्च किया। किन्तु अन्त मे व्यय की अधिकता के कारण उसे अपना प्रयत्न छोड़ना पड़ा। मेरे विचार से उसने किले की दीवारो का बनवाने मे एक लाख रुपया या १०००० पौंड खर्च किये होगे। दक्षिण-पूर्व की ओर एक फाटक (द्वार) है, जो मुसलमानो ही के द्वारा बना होगा। क्योकि नई ईंटे नहीं बनी थीं, अतः मजदूरी का ही व्यय इसे सहना पड़ा। किले के "बचाव" १८ फीट मोटे है और कहीं-कही पर १४ या १५ फीट है। अहिछत्र ३००० ली या ५०० मील के घेरे मे था। इन ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई के विचार से इसमें रोहिलखण्ड का भी अर्धभाग अवश्य सम्मिलित होगा, जो कि उत्तरी पर्वतो और गंगा के मध्य मे, पश्चिम मे पीलीभीत से खैराबाद तक, पूर्व में घाघरा के निकट तक विस्तृत है। इसकी सीमा ४५० मील है यदि सीधी तरफ से नापा जाय, और ५०० मील यदि सड़क से नापा जाय।

वस्तुतः यह एक देश[1] है। दूसरा नाम इसका उत्तर पंचाल[2] है। इसकी पश्चिमी सीमा कुरु देश से मिली थी। उत्तरी हिमालय था। दक्षिणी गङ्गा थी। पूर्वी प्रलम्ब और ऊपर ताल देश थे। अहिच्छत्र या अहिच्छत्रा यह एक नगर या नगरी थी, यह छत्रवती भी कही जाती थी। उत्तर पाञ्चाल की राजधानी थी। आजकल इस नाम से प्रसिद्ध ह्वेनसाँग ओहोर्चीटालो (अहिक्षेत्र) पृष्ठ २०६ यह प्रदेश ३०० ली के घेरे में है। राजधानी का क्षेत्रफल १७ या १८ ली मे है। पहाड़ी चट्टान के किनारे होने के कारण यह प्रदेश सुरक्षित है। यहाँ पर गेहूँ उत्पन्न होता है तथा जंगल और नदियाँ बहुत हैं। जलवायु उत्तम तथा मनुष्य सत्यनिष्ठ, चतुर एवं विज्ञ है। १० संघाराम हैं, ९ देवमन्दिर पाशुपत संप्रदाय के हैं। नगर के बाहर एक नागझील है। यहाँ पर एक अशोक स्तूप है। इसके निकट चार स्तूप और है, नहीं है। हिस्ट्री के समस्त विद्वान् एक स्वर से इसको बाँसबरेली के प्रान्त मे रामनगर मानते है। कनिङ्घम ने बौद्धधर्म मे प्रचलित एक कथा भी लिखी है, जो अहिक्षत्र या अहिक्षत्र नाम होने मे सहायक है। इसका नाम ह्यनच्वाँग के समय तक अहिक्षत्र या अहिक्षेत्र था। कनिङ्घम की पुस्तक में यहाँ एक किले का वर्णन है और इस समय का नाम अहिच्छत्र है। परंच रामनगर नाम हम सुन रहे हैं और अहिच्छत्र नाम हिस्ट्री के अध्यापकों और छात्रों के द्वारा ही सुनने में

---

१. महाभारत आदिपर्व जतुगृहदाह प० १२८।१७ सुथन्कर० पद्म० सृ० २९।१३१ इस देश में जयानन्द ब्रह्मा हैं।

२. महाभारत आदि प० १३१।८४ (लि) १४८।८१ (चि०) १३८।७६

आता है। हम इसका विचार महाभारत के आधार पर कर रहे हैं। महा० आ० पर्व, दम्भ पर्व अ० १२१ से १२८ तक। सुथन्कर के महाभा० मे वर्णित है। उसका सारांश यह है कि द्रोण के पिता भरद्वाज और द्रुपद के पिता पृषत् की मित्रता थी, इससे द्रुपद भरद्वाज के आश्रम मे नित्य जाते थे और द्रोण के साथ खेलते थे। साथ-साथ पढ़े। पृषत् के मरने पर द्रुपद पञ्चाल के राजा हुए। जब द्रोण परशुराम से धनुर्वेद पढ़कर आ गये, द्रुपद से मिले और कहा कि हम आपके मित्र द्रोण है। द्रुपद ने उत्तर दिया कि तुम मूर्ख हो। मित्रता धनाढ्यों की धनाढ्यों के साथ होती है, दरिद्र के साथ नहीं। मैं राजा तुम दरिद्र ब्राह्मण, मेरी तेरी मित्रता कैसी? द्रोणाचार्य द्रुपद के पास से चले आये और हस्तिनापुर में भीष्म ने उनको अपने पौत्रो को धनुर्वेद पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया। जब धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र सुशिक्षित हो गये तब द्रोण ने उनको लेकर द्रुपद पर चढ़ाई कर दी। अर्जुन ने द्रुपद को बाँध लिया। गंगा के दक्षिण का राज्य द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को दे दिया। गंगा के उत्तर का अहिच्छत्र विषय स्वयं ले लिया। अहिच्छत्रा राजधानी अपनी रखी जो कि पहले से ही राजधानी थी। द्रुपद से कहा कि हम दोनो अब बराबर हैं, इससे अब मित्र हैं। इससे द्रोण का सम्बन्ध अहिच्छत्रा से हो गया।

अहिच्छत्रा मे महाभारत संग्राम से पूर्व दुर्योधन के पक्षपाती[1] राजाओं की सेना पड़ी थी। हस्तिनापुर में सब सेना के

---

1 महाभा० उद्यो० (चि) (म) १९।११ काशिका एङ्प्राचां देशे १।१।७५ यह प्राच्य देश में है।

लिये स्थान नहीं था। इससे सेना समीप के स्थानों मे बाँट दी गई थी और ह्वेनसाँग ने अ० ४ में इस स्थान को पहाड़ की चट्टाने किनारे होने से सुरक्षित लिखा है। और एक नागझील का भी वर्णन किया है। नैनीताल जिले का काशीपुर इन सब गुणों से युक्त है। पर्वत भी समीप है। द्रोणसागर नाम का एक बहुत बड़ा सर आज भी द्रोणाचार्य के यश का साक्षी है। बहुत बड़ा दुर्ग जो आज भी भग्नावशेष है, पाञ्चाल राजाओं की महत्ता का सूचक है। रामनगर पर्वतो से बहुत दूर है। ह्वेनसाँग के लेख से सर्वथा विरुद्ध है। दुर्योधन के सहायको की सेना भी काशीपुर मे हस्तिनापुर के समीप होने से रह सकती है। रामनगर में नहीं, जो कि काशी-पुर की अपेक्षा हस्तिनापुर से चौगुना दूर है, जो करीब ५० कोस से कम दूर न होगा। रामनगर मे द्रोण का कोई चिन्ह सुनाई नहीं देता है। पाण्डवो का किला नाम का स्थान द्रोण से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। किन्तु पाण्डवो के राज्य मे उसके रहने का सूचक हो सकता है। बौद्ध ग्रन्थों में द्रोण का नाम अहिच्छत्रा मे आता है। इससे महाभारत और बौद्ध साहित्य रामनगर के विरुद्ध है। राजा लोग जो दुर्योधन की सभा में नित्य जाते थे, इनका पचास कोस दूर उतारना ठीक है या १०-१२ कोस पर। पद्मपुराण[1] में एक देवी का वर्णन है जो कि

---

१. पद्म पाताल० १२।४९ व १८।४९ कथासरित्सागर शशाङ्कवती-लम्बक ५।२३ यह नगरी उदय तुङ्ग की राजधानी है। अभिधान चिन्ता-मणि ९६० यह प्रत्यग्रथ देश का नाम है। इम्पि० आ० ६-५२ ए पी ग्रा० इ० १९-२५ सिले० इ० ९१।

अहिच्छत्र में है। काशीपुर मे एक प्रसिद्ध देवी का स्थान भी है, जिसका मेला चैत मे सात दिन लगता है जो कि किले से पूर्व १ मील दूरी पर है। वर्तमान काशीपुर का वर्णन इस प्रकार है। काशीपुर से उत्तर पहाड़ प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु चढ़ाव काशीपुर से ही प्रारम्भ हो जाता है। काशीपुर मे तीन बड़े-बड़े तालाब है, जिनमे सर्वदा पानी भरा रहता है। प्रत्येक कमलो से परिपूर्ण है। पहला द्रोणसागर लगभग एक मील लम्बा-चौड़ा है। इसके तीन तट पक्के है। एक किले की दीवाल से मिला हुआ है। यहीं पर लोग द्रोणाश्रम बतलाते है। इसके किनारे बहुत से मकान बने हैं। दूसरा गिरिताल, यह द्रोणसागर से एक मील उत्तर स्थित है। यह दो मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। शहर के मकान इसके तट पर बने हुए हैं। लोग प्रतिदिन इसमे स्नान करते हैं और डोगियों पर इसकी सैर करते हैं। तीसरा खोखरे का ताल करीब २ या ३ मील लम्बा चौड़ा है। किले की दक्षिणी दीवाल से मिला है। वर्षा के प्रभाव से इसका बहुत सा भाग उथला हो गया है, जिसमे खेती होती है। दक्षिणी किनारे पर खोखरे देवी का मन्दिर है जिसमे प्रतिवर्ष प्रसाद चढ़ा करता है। द्रोणसागर के पूर्वी किनारे पर प्राचीन काल का एक पुराना किले का भग्नावशेष है, उसकी दीवाले अब नहीं हैं। परन्तु सतह पर नींव के आसार तथा तीन चहर-दीवारियो के आसार भीतर की ओर दिखलाई देते है। प्रत्येक नींव की चौड़ाई लगभग २५ गज के होगी, जिसकी बड़ी-बड़ी तथा मोटी-मोटी ईंटें दिखलाई देती है। तीसरी चहारदीवारी के भीतर प्रायः इमारतें होगी। यह किला लगभग एक मील लम्बा

चौड़ा है। इसके दक्षिणी किनारे पर खोखरे का ताल है। लोग इस किला को हिडिम्बा का किला कहते हैं। किले से पूर्व की ओर एक मील की दूरी पर देवी का बहुत बड़ा मन्दिर है, जिसमे सैकड़ों मनुष्य रह सकते हैं। मन्दिर से पूर्व चार फर्लांग के बहुत ऊँचे चबूतरे पर मोटेश्वर महादेव का मन्दिर है। इससे १०० गज पूर्व वाहला नदी बहती है। ढेलानदी के रेते से सोना निकलता है। शायद इसी कारण इसके तट पर राजधानी बनाई गई हो। इसका दूसरा नाम छत्रवती भी है (महा० आदि १६६।२१ म० १६३।३९)

आखु—१. वे० इ० इसका असली तात्पर्य अनिश्चित है। यह तैत्तिराय संहिता ५।५।१४।१ मैत्रायणी सं० ३।१४।७ वाजसनेयी सं० ३।५७ तथा २४।२६-२८ अथर्ववेद ६।५०।१ मे वर्णन किया गया है और ऋ० वे० ९।६७।३० का शब्द माना जाता है।

२. राथ इसको चूहा मानता है (वे० इ०)

३. जिमर इसका अर्थ छछुन्दर करता है। (वे० इ०)

४. पिशल इसको चोर के अर्थ मे लगाता है। (वे० इ०)

५. हिल्ले ब्रान्टड पिशल के विरुद्ध है। (वे० इ०)

वस्तुतः बृहद्देवता ६।५९ मे सौभरिऋषि का ऋग्वेद के ८।२१।१७-१८ के मन्त्रो का ऋषि होना वर्णन करता है। कुरुक्षेत्र मे सरस्वती के तट पर चित्र नामक राजा के यज्ञ मे जाकर सौभरि ने उसके निवासस्थान आखुदेश और सरस्वती नदी और चित्र राजा के दान की प्रशंसा की और चित्र ने इसको दान दिया, यह वर्णन है। ऋ० वे० ८।२१।१७-१८ मे चित्र राजा के सरस्वती के तट पर यज्ञ करने और सौभरिऋषि के

लिये दान देने का वर्णन है। यह आखु देश इस नाम से अन्यत्र नहीं मिलता। परंच इसके अर्थ में मूरिखक नाम का देश पुराणों और खारवेल इत्यादि के पुराने लेखो मे मिलता है। सर्वसिद्धान्त से यह दक्षिणात्य देश है, यह निश्चित हो चुका है। हिस्ट्री के समस्त विद्वान् एक स्वर से इसको दक्षिण मे मान रहे हैं। जब बृहद्देवता आखु देश को दक्षिण का देश और उसके राजा को चित्र नामवाला मान रहा है और ऋ० वे० चित्र के दान का वर्णन कर रहा है, तब भी ऋ० वे० के समय आर्य लोग पञ्जाब के बाहर का भूगोल नहीं जानते थे, यह सिद्धान्त आज भी संसार मे प्रतिष्ठित माना जा रहा है। विद्वानों को ठंढे दिमाग से इसपर विचार करना चाहिये।

वे० इ० मे जहाँ जहाँ इस शब्द के आने का वर्णन है वहाँ-वहाँ आखु शब्द का अर्थ मूषक ही है। परंच ऋ० वे० ९।६७। ३० मे आखु शब्द नहीं है, बल्कि आखुं चित् शब्द है जिसका अर्थ सबका आहन्ता सायण ने किया है। ऋग्वेद का अर्थ यह है। यह मन्त्र पवमान और सोम की स्तुति मे आया है। अधिगमनशील शत्रु का नाशक पवमान उसी शत्रु का नाश करे और हे दीप्यमान सोम आप पापरहित हम लोगो के सामने चलें और हे देव सोम आप आखुञ्चित् (सब के आहन्ता) भी उस शत्रु को ही नष्ट करे, न कि पापरहित हम लोगो को भी। इसमें आखुञ्चित् शब्द का अर्थ सबका आहनन करनेवाला है। खारवेल के दानपत्र मे पहले लोगो ने असिक पढ़ा था; परन्तु जायसवाल ने उसको मूषिक पढ़ा और यही माना जाता है।

आपया—१. वे० इ० इसको एक नदी मानता है।

२. लुडविक आपया गंगा का दूसरा नाम मानता है। (वे० इ०)

३. जिमर इसको सरस्वती के समीप उसकी शाखा नदी जो थानेश्वर के पास होकर बहती थी अथवा वर्तमान इन्द्रमती नदी मानता है। (वे० इ०)

४. पिशल इसको कुरुक्षेत्र की नदी मानता है। और महाभारत मे एक प्रसिद्ध नदी के नाम से उल्लिखित है, यह कहता है (वे० इ०) वस्तुतः यह कुरुक्षेत्र की नदी है और मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस पर है और बरसाती नदी है जो अस्थिपुर के पास महेश्वरदेव के समीप है।

लुडविक का गंगा का नाम कहना असंगत है। ऋ० ३। २३।४ मे इस नदी का वर्णन है। यह मन्त्र अग्नि की प्रार्थना में आया है। अर्थ यह है–हे अग्ने! हम आपको पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान मे धारण करते है आप दृषद्वती या मानुषतीर्थ या आपया या सरस्वती के तट पर धन से युक्त हो प्रज्वलित हो। पुराणों[1] में इसका नाम आपगा लिखा है। अर्थ समान है।

ब्रह्म० २७।२७ मे इसको हिमालय से निकली हुई नदी माना है। वाम० ३४।७ इसको कुरुक्षेत्र की वर्षाकाल की बहनेवाली नदी कहा है। ३६।१ मे मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस पर माना है। नारदीय० उत्त० ६५।५८ में इसको महानदी और मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस पर कुरुक्षेत्र मे माना है। वायु० उ० १७।२० इसको पवित्र नदी लिखा है।

पद्म० आदि २७।६४ मे मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस

१ पद्मपुराण २६।६२ में यह तीर्थ कुरुक्षेत्र में है। मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस पर है।

अस्थिपुर नामक स्थान मे महेश्वरदेव के समीप माना है। महाभारत आरण्य० ८३।६७ (चित्रशाला प्रेस) मे मानुषतीर्थ से पूर्व एक कोस पर माना है। सु० पूना ८१।५५ मे भी ऐसा ही पाठ है। म० ६६।३३। में आगता ऐसा पाठ है। ६६।१७२ मे आपगा पाठ है और यहाँ पर महेश्वरदेव का वर्णन है।

विष्णु धर्मोत्तर मे २।२५।१८३ मे इसको नदी माना है। महाभा० कर्णपर्व मे ४४।१० मे आपगा को पंजाब की नदी माना है। और शाकल नगर के पास मालूम पड़ती है। भारत० नि० पृ० ३२ संस्कृत मे ऐक (आपगा) नदी स्यालकोट के पास। इससे आपगा नाम की दो नदियाँ प्रतीत होती है। परञ्च यहाँ पर आपया मे दृषद्वती और मानुष और सरस्वती के साथ आने से कुरुक्षेत्र की नदी ही ली जानी चाहिये।

आयसीपुर—लोहे का बना हुआ नगर वे० इ० (पुर शब्द में) पुर शब्द का अर्थ दुर्ग (किला) और कभी-कभी लोहे के (आयसी) मजबूत स्थानो का भी प्रसंग आया है। परन्तु अलंकार रूप मे आया है, यह लिखा है। उसमे ऋ० १।१५८।८ तथा २।२०।८ तथा ४।२७।१ तथा ७।३।७ तथा ७।१५।४ तथा ७।९५।१ तथा १०।१०१।८ को प्रमाण मे दिया है।

२. मुइर का भी यही मत है (वे० इ०) वस्तुतः पुर का अर्थ किला नहीं है। किन्तु नगर अर्थ है। यहाँ लोहे का बना नगर है और ऋ० वे० मे सर्वत्र नगर व किला के अर्थ में भी नहीं आया है। ऋ० १।५८।८ में सायण ने हे अग्ने! स्तुति करनेवालो को आयसीभि०र्यांसैः। यद्वा अयोव दृढ़तरैः पूरभिः पालनैः रंहसः पापात् उरुष्ये रक्ष। यह अर्थ किया है। हे अग्ने

आप अपनी स्तुति करनेवालो को आयसी व्याघ्र या लोहे के समान दृढ़तर पालनों द्वारा पाप से रक्षा करें। यहाँ लोहे का किला अर्थ नहीं है। ऋ० वे० २।२०।८ में इन्द्र ने उस वज्र से दस्युओं को मारकर उनके लोहे के नगरों को अत्यन्त भस्म कर दिया। यहाँ भी लोहे का नगर अर्थ है। तथा ४।२७।१ मे श्येन-स्तुति मे वामदेव ऋषि ने कहा है कि जब हम गर्भ मे थे, उसी समय हमने इन्द्रादि देवताओं के सम्पूर्ण जन्मो को जान लिया था, इससे पहले सैकड़ों लोहे से बने हुए पुरों ने मेरी रक्षा की। अर्थात् इस जन्म के पूर्व जन्मो मे सैकड़ों लोहे के बने नगर अर्थात् लोहे से बने हुए के समान अभेद्य पुर शरीरो ने मेरी रक्षा की जिस प्रकार शरीर से भिन्न कोई आत्मा है। यह न जानते हुए मेरी रक्षा की। यहाँ स्पष्ट आयसीपुर लोहे के नगर के अर्थ मे आया है।

ऋ० ७।३।७ मे अग्नि की स्तुति मे अग्ने आप सैकड़ो आयसीपुर सुवर्ण के नगरों से हमारी रक्षा करें ७।१५।४ और ७।९५।१ मे आयसीपुर शब्द का अर्थ यह सरस्वती नदी लोहे से बने नगर के समान धारण करनेवाले जलो से शीघ्र बहती है १०।१०१।८ मे आयसीपुर शब्द भी लोहे की नगरी अर्थ मे है।

आर्जीक—यह एक देश है।

१. हिल्ले ब्रान्टड इसको देश मानते है और कश्मीर या उसके निकट इसकी स्थिति स्वीकार करते है (वे० इ०)

२. पिशल इसको एक देश मानते है परंच स्थान का पता नहीं लगा सके।

३. राथ और जिमर इस शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा

मानते हैं (वे० इ०)

राथ ऐसा केवल एक ही स्थान पर करते हैं। और स्थानों पर सोमपात्र अर्थ करते है जिसमे सोम-रस परिष्कार किया जाता है (वे० इ०)

हिन्दी-विश्व कोष मे लिखा है कि सायण आर्जीक का अर्थ ऋजीक देश का ह्रद बतलाते हैं। (वे० इ०) मे आर्जीक, आर्जीकीय और आर्जीकीया इन तीनों शब्दों का विचार एक साथ किया है। और यह लिखा है कि राथ ने जो अर्थ किया है वहाँ यह आवश्यक प्रतीत होता है। इस शब्द को प्रत्येक स्थान मे एक ही भाव मे दिया जावे। वस्तुतः यह देश है और व्यास नदी के उद्गम स्थान के पर्वत के समीप वाले देश का नाम है। ऋ० वे० ९।११३।२ मे सोम-स्तुति में आर्जीकादापवस्व ऐसा प्रयोग आया है। आर्जीक देश से हमारे यज्ञ मे आइये, यह सोम से प्रार्थना है। तथा ऋ० ८।७।२९ मे मरुत् की स्तुति मे आर्जीक शब्द एक वचन आया है। मन्त्रार्थ यह है कि ऋत्विक् लोग सोम को लाने के लिये सुषोम (सिन्धु नदी) और शर्यणावत् और पस्त्यावत् और आर्जीक मे शकट लेकर जावे है। तथा ऋ० वे० ९।६५।२३ मे सोम की स्तुति मे आर्जीक शब्द बहुवचन आया है। इस मंत्र का सायण भाष्य यह है जो सोम आर्जीक अर्थात् ऋजीक पर्वत के समीप वाले देशों तथा कृत्वन् नामक देशो मे तथा पस्त्याओं (सरस्वती इत्यादि नदियों मे) या उनके समीप है और पञ्चजन (निषाद है पाँचवाँ जिनका ऐसे चारों वर्णों) से कूटकर रस निकाले गये हैं। वे सोम हमारे अभिमत को दें। इसमे बहुवचन

आर्जीक शब्द का प्रयोग है, जो देशवाची का होता है। ऋजीक शब्द से ऋजीकस्य अदूर भवः इस विग्रह में चातु-रर्थिकं अदूरभवश्च ४।२।७० सूत्र अण् प्रत्यय होकर आर्जीक शब्द बनता है, जिसका अर्थ ऋजीक के समीपवाला होता है। ऋजीक पर्वत से व्यास नदी निकलती है। इससे उसके समीप का देश आर्जीक मानना होगा। निरुक्त ९.२६ मे इमं मे गङ्गे इस मंत्र का व्याख्यान करते हुए महर्षि यास्क ने आर्जीकीयाम् विपाट् इत्याहुः ऋजीक प्रभवावर्जु गामिनी वा, यह लिखा है। इसी प्रतीक को लेकर दुर्गाचार्य ने साकस्मात् ऋजीक प्रभवा? ऋजीको नाम पर्वतः तस्मात् प्रभवतीति तद्धिते न, यह लिखा है। इससे व्यास के उद्गम के समीप का देश आर्जीक मानना होगा। ऋजीकात् प्रभवति इस अर्थ मे ततः प्रभवति ४।२।८३ सूत्र से त्रण् प्रत्यय होकर आर्जीकीया बन सकता है, जैसा कि दुर्गाचार्य ने लिखा है। परंच इस अर्थ मे त्रण् प्रत्यय करनेवाला कोई सूत्र नहीं है, इसमे आर्जीक शब्द से आर्जीका नामियम् इस विग्रह मे तस्येदं इस सूत्र से इदमर्थ में वृद्धाच्छः इस सूत्र से छः प्रत्यय करना उचित है। हिन्दी-विश्व-कोष में जो सायण के नाम पर अर्थ लिखा है वह अशुद्ध है और सायण ने नहीं लिखा है। राथ और जिमर का सिद्धान्त एकदम निरुक्त से विरुद्ध होने के कारण मानने योग्य नहीं। इनमे पिशल कुछ पंडित मालूम होता है। हिल्ले ब्रान्टड भी काश्मीर के निकट मानने में कुछ-कुछ ठीक है। आर्जीकीय—राथ और जिमर इसको व्यक्तिवाचक संज्ञा मानते है और मूलतः कदाचित् दुग्ध-पात्र को आर्जीक कहते हैं। संभवतः यह शब्द दैवी पात्र का

द्योतक है, जिसमें सोमरस का परिष्कार किया जाता है। अथवा उससे बनी आकाश नदी को बतलाता है।

दूसरी ओर सभी अथार्टीज् आर्जीकीया को नदी स्वीकार करते हैं। राथ केवल एक स्थान पर ऐसा कहता है, सो भी केवल और स्थानों पर सोमपात्र का प्रसंग उल्लेख कर उसको ऐसा मानता है। परन्तु यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शब्द को प्रत्येक स्थान में एक ही भाव में लिया जाय। प्रत्येक अथार्टीज् आर्जीकीया को नदी स्वीकार करते हैं, यह वे० इ० कार ने लिखा है। (वे० इ०)

२. जिमर इसको नदी का निश्चित वर्तमान रूप नहीं बतलाता, परन्तु नदी मानता है। (वे० इ०)

३. पिशल इस विषय में असंभवता सोचता है (वे० इ०)

४. हिल्ले ब्रान्टड समझता है कि उत्तरी सिन्धु अथवा वितस्ता (झेलम) अथवा और कोई नदी रही होगी (वे० इ०)

५. व्रन् हॉफर इस शब्द का अर्थ अर्घ नदी की शाखा अर्घेशन मानते हैं। (वे० इ०)

६. ग्रासमैन इसको व्यास मानते हैं। वे० इ० डेक्सकार ने लिखा है कि नदीस्तुति में इस नाम की उपस्थिति से यह असंभव सा प्रतीत होता है (वे० इ०)

वस्तुतः यह शब्द पुल्लिग और स्त्रीलिंग में व्यास नदी का नाम है। जहाँ पुल्लिग है वहाँ नद अर्थ है और जहाँ स्त्रीलिंग है वहाँ नदी अर्थ है। ऋ० ८।६४।११ में यह शब्द पुल्लिग आया है। मन्त्रार्थ यह है कि जो सोम शर्यणावत् और सुशोमा नदी और आर्जीकीय नद में है आपको आनन्द देनेवाले वे ही

सोम उपस्थित है। आप उनका पान करें। ऋ० वे० १०।७५।५ मे आर्जीकीया शब्द स्त्रीलिंग मे आया है उसका अर्थ निरुक्त ९।२६ में यास्क ने विपाट् अर्थात् व्यास नदी किया है। जब निरुक्त व्यास अर्थ स्फुट कह रहा है तब उसके सामने और लोगो का अर्थ प्रतिष्ठित नहीं माना जा सकता, क्योंकि निरुक्त और ब्राह्मणो और श्रौत सूत्रों के आधार पर ही वेदार्थ होता है। दूसरे यह बात और है कि निरुक्त के समय मे इन शब्दों से नदियों का व्यवहार होता था तो निरुक्तकार बहुत प्राचीन होने से प्रत्यक्षदर्शी हैं, इससे आजकल के लोगो की अपेक्षा उनका कथन अत्यंत प्रमाणिक मानना होगा।

वे० इ० कार ने ग्रासमैन को यास्क के मत का अनुसरण करनेवाला माना है, परन्तु नदीस्तुति मे इस नाम की उपस्थिति से यह असंभव सा प्रतीत होता है, यह लिखा है। परंच इस मंत्र मे विपाशा का नाम नहीं है। फिर कैसे इस नाम की उपस्थिति कहते हुए ग्रासमैन तथा यास्क के अर्थ को असंभव कहने का साहस करते है। यह हमारी समझ मे नहीं आता। वे० इ० मे इस शब्द को देशवाची माना है, उसका खण्डन आर्जीकीया मे है।

आर्जीकीया—वे० इ० मे आर्जीक, आर्जीकीय इन दो शब्दों से देश का बोध होता है और स्त्रीलिंग आर्जीकीया शब्द नदी का बोध कराता है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह शब्द स्त्रीलिंग में व्यास नदी का नाम है। वे० इ० कार आर्जीकीय शब्द का अर्थ देश मानते हैं, वह असंभव है। देशवाची आर्जीक शब्द से छ प्रत्यय होकर आर्जीकीय

शब्द बनता है। इसका किसी प्रकार देश अर्थ नहीं बन सकता।

ऋ० वे० १०।७५।५ मे इसका वर्णन आया है। इसमे गंगा, यमुना इत्यादि नदियों के साथ व्यास नदी से प्रार्थना है कि आप हमारे स्तोत्र को सुनें।

आर्यावर्त—यह शब्द पुल्लिग है और एक देश का नाम है। इसका आयाम पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और विस्तार हिमालय से परियात्र (विन्ध्य) तक है। इसका वर्णन मनु[1] बौधायन धर्मसूत्र[2] बौधायन स्मृति[3] वसिष्ठ स्मृति[4] वसिष्ठ धर्मसूत्र व्याकरण महाभाष्य[5] तथा उसके विवरण कैयट-

---

(१) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं प्रचक्षते। २।२२ पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक हिमवान् और विन्ध्य का मध्य, इस प्रकार किया है।

(२) बौधायन धर्मसूत्र ११२।१३–१४ में।

(३) बौधायन स्मृति १।२७–२९ में निम्नलिखित है। प्र० १ सं० २ सूत्र १३ प्राग दर्शनात् प्रत्यक् कालक वनात् दक्षिणेन हिमवन्त मुदक् पारियात्रम् एतदार्यावर्तम् तस्मिन् व आचारः स प्रमाणम्। गङ्गा यमुनयोरन्तर मित्येके। अदशन से पूर्व कालक वन से पश्चिम हिमालय से दक्षिण पारियात्र से उत्तर उसमें जो आचार है वह प्रमाण है। कोई लोग गगा यमुना के अन्तर को ही आर्यावर्त मानते हैं। म्लेच्छ देशस्त्वतः परम् इसके बाद सब म्लेच्छ देश है।

(४) वशिष्ठ स्मृति १।१।१० में प्रागदर्शात् प्रत्यक् कालवनात् उदक पारियात्रात् दक्षिणेन हिमवतः उत्तरेण विन्ध्यस्य गंगायमुनयोरन्तर-मित्येके। टि० अदर्शनात्।

(५) शूद्रा २।४।१० प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालक वनात् दक्षिणेन हिमवन्त उत्तरेण पारियात्रम् आर्यावर्तः। आदर्श से पूर्व कालक वन से

कृत प्रदीप, अमरकोष[1] इत्यादि में आता है। पुराणों[2] में भी इसका वर्णन है। इसकी सीमा के विषय मे मतभेद है। वास्तविक पूर्वी सीमा और पश्चिमी सीमा के स्थानों के नाम का ठीक पता नहीं चलता। (मनु और महाभारत,[1] काव्यमीमांसा मे इसकी पूर्वी सीमा समुद्र मानी है। पश्चिमी सीमा भी समुद्र मानी है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्थान जिस देश में न हो वह म्लेच्छ देश है। बाकी आर्यावर्त है)

पश्चिमी सीमा पर विचार—

१. महाभाष्य मे पूर्वी सीमा कालक वन माना गया है। पश्चिमी

पश्चिम हिमाद्रि से दक्षिण पारियात्र से उत्तर आर्यावर्त है। कैयट ने 'आदर्शादयः पर्वत विशेषाः' आदर्शादि पर्वत हैं।

(१) आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्य विन्ध्य हिमागयोः २।१।८ आर्यावर्त हिमालय और विन्ध्य के मध्य की भूमि। इसका दूसरा नाम पुण्यभूमि भी है। काव्य मी० १७ १५ पूर्व पश्चिम समुद्र और हिमालय और विन्ध्य का मध्य आर्यावर्त है। अभिधान चिन्तामणि ९४८ विन्ध्य हिमालय की मध्य भूमि आर्यावर्त है।

(२) स्कन्द० ब्रह्म० ब्रह्मो० ८।१३ यह देश है। इसमें कालिन्दी (यमुना) नदी है। भविष्य० ब्रा० ७।६५ भारत में हिमालय और विन्ध्य के बीच मे पूर्व पश्चिम समुद्रों के मध्य में आर्यावर्त नामक देश है। श्री मद्भागवत० ९।६।५ एक देश है, शिव महा० उमा० ३७।२ एक देश है। इसमें अयोध्या नाम की पुरी है। कालिका० ६०।३६ एक देश है। महाभा० (नि०) आश्व० वै० ११०।४३ हिमालय विन्ध्य का मध्य पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त आर्यावर्त देश है (चि० पाठ नहीं है) महा० शा० (चि०) ३२५।१५ नि० ३३८।१५ एक देश है। विष्णु धर्मोत्तर १।२४।१९ यह एक देश है।

सीमा आदर्श माना गया है। हिमालय उत्तरी सीमा, पारियात्र दक्षिणी सीमा माना गया है। २. आदर्श को कन्टे ने अर्वली पर्वत-श्रेणी माना है। (जा. डि. १४९) ३. कैयट ने आदर्श को पर्वत माना है। काशिका मे जनपद तदवध्योश्च ४।२।१२४ इस सूत्र मे आदर्श जनपद माना है। लेकिन यह आदर्श जनपद कहाँ पर है, यह नहीं पता चलता। कैयट के कथनानुसार आदर्श को पर्वत भी मान लिया जाय तो कालक वन जिसमे स्पष्ट वन शब्द लगा है, कैसे पर्वत माना जा सकता है? मनु इत्यादि के साथ एक-वाक्यता करने पर आदर्शजनपद पश्चिम समुद्र के तट पर मानना होगा (और कालक वन पूर्वी समुद्र के तट पर) बौधायन धर्म सू० और बौधायन स्मृ० वसिष्ठ धर्म सू० और वसिष्ठ स्मृ० आदर्श के स्थान मे अदर्श पाठ पढ़ते है। पाठान्तर मे अदर्शन भी मिलता है। अर्थ:—सरस्वती का अदर्शन अर्थात् विनशन, जहाँ पर सरस्वती लुप्त हो जाती है मानते हैं और सीमाएँ समान मानते हैं। कोई-कोई आचार्य गंगा और यमुना के मध्य भाग को आर्यावर्त्त मानते हैं। इसके आचार को प्रमाण मानते है, यह भी लिखा है। उसमें भाल्लवियों की गाथा प्रमाण देते हैं। पश्चात् सिन्धुर्विधरणी सूर्यस्योदयनं पुरः। यावत् कृष्णा विधावति तावद्धि ब्रह्मवर्चसम्। टि० में विधरणी के स्थान मे विचरणा मिलता है। इसका अर्थ होता है कि पूर्व मे जहाँ से सूर्य उदय होता है, पश्चिम में विधरणी नदी और जहाँ तक काले हिरण दौड़ते हैं, वहीं तक ब्रह्मवर्चस है। गोविन्द स्वामी ने बौधायन धर्मसूत्र की व्याख्या मे कृष्ण शब्द का अर्थ काला मृग किया

है। और ब्रह्मवर्चस का अर्थ वेदाध्ययन यज्ञादि करने योग्य भूमि किया है। उसके बाद म्लेच्छ देश है। बौधायन श्रौत सूत्र मे अवन्ती, अङ्ग, मगध, सुराष्ट्र, दक्षिणापथ, उपावृत्, सिन्धु सौवीर ये संकीर्ण योनि है, ऐसा लिखकर आरट्ट कारस्कर पुण्ड्र सौवीरवङ्ग कलिङ्ग प्रानून देशों में जाकर लौटने पर स्तोम से यज्ञ करे या सर्वपृष्ठि से। कुछ पु० और स्मृ० जहाँ पर वर्ण-विभाग है, उसको आर्यावर्त मानते हैं। बाकी को म्लेच्छ देश कहते हैं। यदि वास्तविक विचार किया जाय तो बौधायन और वशिष्ठ के धर्म सू० स्मृतियाँ तीन सीमाओ मे समान है। पश्चिमी सीमा मे विरुद्ध हैं। मनु ने आर्यावर्त लक्षण से पहले। सरस्वती और दृषद्वती के मध्य को ब्रह्मावर्त माना है। सरस्वती दृषद्वत्योः देवनद्योर्यदन्तरम्। त देवनिर्मितंदेशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ २।१७ तस्मिन्देशेयआचारः पारं पर्य क्रमागतः। वर्णानां सान्त-रालानां स सदाचार उच्यते ॥ कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥१९॥ उस देश मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सब मध्यम जातियो का जो आचार है, वह सदाचार कहा जाता है। मनु ने ब्रह्मर्षि देश को मध्य देश के चारों ओर माना है, उनके नाम ये है— कुरुक्षेत्र (कुरुदेश) मत्स्य शूरसेन और पञ्चाल और ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश के ब्राह्मणों से संसार को अपना-अपना चरित्र सीखना चाहिये। विनशन से पूर्व प्रयाग से पश्चिम हिमालय और विन्ध्य का बीच मध्यदेश माना है। मध्यदेश और आर्या-वर्त दोनो भिन्न-भिन्न देश है। और मध्यदेश की सीमा विन-शन है, न कि आर्यावर्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि इन

स्मृतियों में भी पहले प्रागादर्शात् ही पाठ रहा होगा। लेखक के प्रमाद से अथवा आदर्श का अर्थ न समझकर आदर्श की जगह अदर्श पाठ बना दिया गया। भाल्लवियो की गाथा का प्रमाण भी यज्ञ के योग्य स्थान के लिये है, न कि आर्यावर्त की सीमा के लिये। गंगा यमुना का अन्तर आर्यावर्त है, यह भी अर्थ ठीक नहीं। किन्तु वह आचार मे प्रमाण मानना चाहिये, यह उसका अर्थ है। इसी की पुष्टि मे भाल्लवियो का मत दिया गया है।

पूर्वी सीमा का निर्णय— कालक वन

(१) मध्यदेश के वर्णन मे वे० इ० में इसका अर्थ काला जंगल अथवा शायद कनखल हरद्वार के समीप किया गया है।

(२) जाग्राफि० डि० पृ० ८४ मे नन्दलाल डे ने इसको राजमहल की पहाड़ियाँ माना है।

(३) कुन्टे के मत मे भी राजमहल की पहाड़ियाँ ही है। (जा० डि० ८४)

(४) कैयट ने शूद्राणां० सूत्र के महाभाष्य के व्याख्यान में इसे पर्वत माना है। वस्तुतः कालक बन को कनखल कहना ठीक नहीं। यदि कनखल ही आर्यावर्त की पूर्वी सीमा होगा तो कुरु पंचाल इत्यादि सभी पूर्वीदेश आर्यावर्त से बाहर हो जायँगे। यह बात मनु और पुराणो से विरुद्ध है। राजमहल की पहाड़ियाँ भी मानना ठीक नहीं, क्योंकि उसको पूर्वी सीमा मानने पर उससे पूर्व विन्ध्य और हिमाद्रि के बीच का समुद्र पर्यन्त देश आर्यावर्त से बाहर हो जायगा। जब कालकवन शब्द मे बन शब्द पड़ा है तब पहाड़ी कैसे हो सकता है? इसी से कैयट का भी कथन ठीक नहीं। मनु और पुराणों के अनुसार यह

विन्ध्य और हिमाद्रि के बीच मे पूर्व समुद्र के तट पर कोई बन मानना होगा ।

दक्षिणी सीमा का निर्णय— पारियात्र

(१) एसियाटिक रिसर्च ८।३३८ विन्ध्य श्रेणी का विस्तृत पश्चिमी भाग चंबल के उद्गम से कैंबी की खाड़ी तक (जा० डि० १४९)

(२) प्रोफेसर भन्डारकर के मत मे विध्य श्रेणी का वह भाग जिसमे से चम्बल तथा वेतवा निकलती है (जा० डि०)

१. नन्दलाल डे के मत मे इसमे अमगावली पर्वत तथा राजपूताने की पहाड़ियाँ, जो कि पठार श्रेणी की है, शामिल है वही पारियात्र का रूपान्तर है। ऐसा ज्ञात होता है कि इसमे अपरान्त सौराष्ट्र शूद्र मालय (मालव) तथा अन्य भी शामिल हैं (कूर्म पु० पू० अ० ४७)। संक्षेपतः भारत के पश्चिमी तरफ का एक भाग शामिल है। रामायण के अनुसार पारिपात्र या पारियात्र पश्चिमी तट पर है। (रामा० कि० का० ४२।२०)

२. हिन्दूकुश तथा पामीर पर्वत (निषध को देखिये) पारियात्र पारिपात्र ही है (बामन पु० अ० १३) (ब्रह्मा० पु० २ अ० १६)

वस्तुतः पुराणो मे अधिकतर पारियात्र ही शब्द अधिक मिलता है। परंच वङ्ग पाठ मे पारिपात्र ही दिखलाई पड़ता है। इसलिये दोनों पाठो को ही मानना उचित है। पुराणों मे पारिपात्र का वर्णन तथा उसकी नदियों का वर्णन इस प्रकार है। वायु पू० ४५।८८ विष्णु० २।३।३ ब्रह्म० २७।२० ब्रह्मा० पू० अ० १८।१९ मत्स्य० ११४।१८ स्कन्द० माहे कौ० ३९।११२ वाराह०

८५।०० तथा २२४।५३ वाम० १३।१५ अग्नि० ११८।३ में यह कुलाचल भारत में है। वाल्मी० कि० (गु०) ४२।१९ (नि०) ४३।१८ (इ०) ४३।२७ यह पर्वत पश्चिम समुद्र मे है।

नदियाँ—कूर्म० आ० पू० ४७।३० वेदस्मृति वेदवती (वेदरता पा०) वृतघ्नी त्रिदिवा वर्णाशा (पर्णाशा पा०) चन्दना (बन्धना पा०) चर्मण्यवती सुरा सदानीरा मनोरमा चर्मण्वती वायु पू० ४५।९८ वेदस्मृति वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धु वर्णाशा चन्दना सतीरा महती चर्मण्वती परा सुरा (सदावी नीरा मनोरमा चर्मण्वती सूर्या पा०) विदिशा वेत्रवती (वेनवत्या पा०)। विष्णु धर्मो० १।१०।९ परा चर्मण्वती पादा विदिशा वेणुवती शिप्रा अवन्ती कुन्ती। तारा० ८५—वेदस्मृ० वेदवती सिन्धु पर्णा चन्दनाभा नाश० (सा०) दाचारा रोही पारा चर्मण्वती विदिशा वेदत्रयी वपन्ती वाम० १३।२५ वेदस्मृति वेदसिनी वृत्रघ्नी सिन्धु पर्णाशा नन्दिनी पावनी चर्मण्वती लूपी विदिशा वेणुवती चित्रा ओघवती तथा रम्या १९।१० वेदस्मृति इत्यादि। विष्णु० २।१० वेदस्मृ० इत्यादि। ब्रह्मा० पू० आ० १६।२७ वेदस्मृति वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धु वर्णाशा नन्दना महानदी सदानीरा पाशा चर्मण्वती अनूपा विदिशा वेत्रवती शिप्रा अवन्ती। स्कन्द० माहे० कौ० ३९।११५ वेदस्मृति इत्यादि ब्रह्म० २७।२९ वेदस्मृ० दैववती वृत्रघ्नी सिन्धु वेण्या चन्दना (वन्दना पा०) सदानीरा (सदापारा) मही मकी परा चर्मण्वती वृषी (नृपी) (भूपा) विदिशा वेत्रवती वेदवती शिप्रा शीघ्रा अवन्ती। मार्क० ५४।१९ वेदस्मृति वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धु वेणाशा नन्दना सदानीरा मही पारा चर्मण्वती नूपी विदिशा वेत्रवती चिप्रा अवन्ती ये पाठ

मिलाते है इनमें बहुत से पाठ अशुद्ध भी है, तथापि यह सिद्ध होता है कि मही चम्बल शिप्रा वेतवा इत्यादि नदियाँ जिस पर्वत से निकलती है उसका नाम पारियात्र है। परंच यहाँ मनु और पुराणो के साथ एकवाक्यता करते हुए हम उत्तरी पूरी विंध्य-श्रेणी को पारियात्र शब्द से मानते है।

जो लोग अरावली पर्वत तथा राजपूताने की पहाड़ियों को ही पारियात्र मानते हैं, उनके मत में आर्यावर्त से यू० पी० का कुछ भाग तथा उससे समस्त पूर्व भाग निकल जायगा। जो लोग अपरान्त सौराष्ट्र इत्यादि को पारियात्र के अन्तर्गत करते है, उनका मत सर्वथा प्रमाणाभाव से निस्सार और विरुद्ध है। रामायण के अनुसार पारियात्र पश्चिमी समुद्र मे है; न कि पश्चिमी सीमा पर। जो लोग हिन्दूकुश तथा पामीर पर्वत को पारियात्र कहते है, वे भी केवल मनमानी उड़ानेवाले है; क्योकि उनके कथन मे कोई प्रमाण नहीं मिलता है। उत्तर की सीमा में हिमालय है, उसके लिये उसका वह भाग दिया जायगा जो कि ठीक विन्ध्य के सामने है।

आसन्दीवान्—(वे० इ०) "आसन्दीवन्त सिहासनारूढ़ होना। यह उपाधि उस नगर की है जिसमें परीक्षित जनमेजय ने अपने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा बाँधा था। दोनों अथारटी लोग एक ही गाथा कहते है; परन्तु जिसने यज्ञ कराया था, उस पुरोहित के विषय मे मतभेद है। शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।२ में इन्द्रोत दैवाय शौनक कहा जाता है और ऐतरेय ८।२१ मे तुरकावषेय कहा जाता है।"

वस्तुतः यह नगर है। अहिस्थल इसका दूसरा नाम है।

परीक्षित के पुत्र महाराज जनमेजय ने यहीं पर अश्वमेध यज्ञ किया था, जिनकी राजधानी हस्तिनापुर थी। ऐतरेय ब्रा० ३९।७ शतपथ ब्रा० १३।५।४।२ तथा सांख्यायन सूत्र १६।९।१ मे भी इसी में जनमेजय के यज्ञ का वर्णन है। सायण ने इसे देश विशेष माना है। भट्टोजि दीक्षित[1] ने एक गाँव माना है। आसन्दीवच्च क्रीवत्कक्षीवद्द्रुमरावच्चर्मरावती ८।२।१३ में पाणिनि ने निपातन से सिद्ध किया है। आसन शब्द के स्थान मे निपात से आसन्दी आदेश किया है।

यह भट्टोजि दीक्षित का मत है। काशिकाकार[2] भी आसन शब्द के स्थान मे आसन्दी आदेश मानते है और 'आसन्दी व दहिस्थलम्' यह उदाहरण मे देते है। पदमञ्जरीकार[3] हरदत्त ने आसन्दी व दहिस्थलम् देशविशेष' यत्रेदमुच्यते ऐसा टीका किया है।

यह मेरठ के जिले मे हिरण्योदा[4] अर्थात् हिडन नदी के तट पर था। भरत जब अपने ननिहाल गिरिव्रज (गजनी) से लौटे तब उन्होंने यमुना के बाद अहिस्थल नगर मे हिरण्यवती नदी को पार किया था। वे० इ० मे जो पुरोहितों के विषय मे मतभेद लिखा है वह वस्तुतः वे० इ० कार का भ्रम है।

शतपथ ब्रा० मे इन्द्रोत, दैवाप, शौनक अश्वमेध यज्ञ का पुरोहित लिखा है और ऐतरेय ब्रा० मे ऐन्द्राभिषेक का पुरोहित कावषेयतुर लिखा है। दोनो यज्ञ परस्पर भिन्न है। तब ऐतरेय

(१) वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी मत्वर्थीय तद्धित (२) जयादित्य वामन ८।२।१२ मे इसको अहिस्थल नगर माना है। (३) काशिका की टीका। (४) वाल्मी० (ला०) ७७।११ अयोध्या का० मे हिडन का नाम हिरण्योदा आया है। इटली ७३।८ मे हिरण्यवती पाठ मिलता है।

और शतपथ का मतभेद कैसे हो सकता है ? ऐतरेय में अश्वमेध के पुरोहित का नाम नहीं लिखा है। शतपथ का ही पुरोहित वहाँ अश्वमेध का पुरोहित मानना पड़ेगा।

इक्ष्वाकु—यह एक देश है। बौधायन श्रौत सूत्र २।५।५ उत्तर कोशल का नाम।

इन्द्रक्रोश—यह एक स्थान है। ताण्ड्य ब्रा० १३।५।१५

उत्तरकुरु—(१) (वे० इ०) इनको उत्तर कुरूज् नामक जाति मानता है और जानन्तपि अराति का नाम जानन्तपि अन्यरात् रखता है। उसकी इस देश को जीतने की इच्छा थी इससे पूर्णतया काल्पनिक नहीं मानता परञ्च पूर्ण काल्पनिक तथा आंशिक काल्पनिक होने मे कोई भी प्रमाण नहीं देता और जिमर की धारणा को स्वीकार करता है।

(२) जिमर की धारणा है कि उत्तर कुरूज् कश्मीर मे मुख्यतया तथा कुरुक्षेत्र के प्रान्त मे, जहाँ पर यह जाति कश्मीर से आती हुई पाई जाती है, रहे होंगे। (वे० इ०)

(३) जाग्रा० डि० २१३ उत्तरकुरु गढ़वाल का उत्तरी भाग और हूण देश जहाँ पर कि मन्दाकिनी नदी तथा चैत्ररथ कानन है। ऐ० ब्रा० ८।१४।४ महाभारत वनपर्व अ० १४५ इसमें हिमालय के नीचे का देश भी शामिल है। तिब्बत (महाभा० भीष्म अ० ७) तथा पूर्वी तुर्किस्तान उत्तरकुरु मे था। (रामा० कि० अ० ४३) यह देश हरिवर्ष भी कहलाता है। (ब्रह्मा पु० अ० ४८ मे) भारत के उत्तर मे यह देश है और उत्तर में समुद्र से घिरा है (श्लोक ५३)। शायद उत्तरकुरु द्वीप अब कोरिया हो गया है।

(४) टालेमी का यह ओहर कोर्र है। (जा० डि०)

(५) लासन इसे कासगर के पूर्व में बतलाता है।

(६) ग्रिफिथ की रामायण खण्ड ४ पृ० ४२४। जातक केम्ब्रिज एडीशन वा० ५ पृ० १६७ यह हिमालय मे था।

(७) मिस्टर बुनसेन के अनुसार बेलूर ताग (ढाल) आर्यों का उत्तरकुरु देश है, जो कि मध्य एशिया की पामीर पर्वत की शाखा है। पामीर पर्वत से बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलकर उत्तरकुरु को सींचती हैं। वेलूर ताग किउनलुन भी कहा जाता है जो कि तिब्बत की पश्चिमी सीमा है तथा बर्फ से लगातार ढका रहता है। यह मुस्ताग करपुरम् कोरुम हिन्दूकुश और सुनलुङ्ग भी कहलाता है। [वैल फोल की सैगला पीडिया आफ इन्डिया] [जा० ग्रा० डि०]।

वस्तुत: यह एक देश है और हिमालय से उत्तर है। ऐत० ब्रा० ३८।३ में इस देश का वर्णन इस प्रकार आया है:— उत्तरस्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा: उत्तर कुरव: उत्तर मद्रा: इति वैराज्यायते अभिषिच्यन्ते विराडित्यनेन अभिषिक्तानाचक्षत। उत्तर दिशा में हिमालय से उस तरफ जो देश उत्तरकुरु और उत्तर मद्र नामवाले हैं, वहाँ के राजे लोग वैराज्य के लिये ही अभिषिक्त होते है। अभिषिक्त उन राजाओं को विराट् शब्द से कहना चाहिये। तथा ३९।९ मे सातहव्य वाशिष्ठ ने जानन्तपि अराति नामक राजा का ऐन्द्राभिषेक कराया। उसके प्रभाव से अराति ने समस्त पृथ्वी का विजय किया। उसके बाद सातहव्य ने अराति से कहा कि आप समस्त पृथ्वी जीत चुके, अब हमको बहुत बड़ा ऐश्वर्य देवें। तब राजा ने कहा कि

जब हम उत्तरकुरु को जीत लेंगे तब आपको पृथ्वी का राजा बना देंगे और हम सेनापति होकर आपके रहेंगे। इसपर सातहव्य ने कहा:—उत्तरकुरु देवक्षेत्र है, इसको मनुष्य नहीं जीत सकता। तुमने हमारे साथ द्रोह किया, इससे हम तुम्हारा सामर्थ्य हरण किये लेते है। उसका सामर्थ्य अपहरण हो जाने से उसको शिवि पुत्र शुष्मिण नामक राजा ने मार डाला। यह दो कथाएँ स्पष्ट इस देश को देवदेश बतला रही है। पुराणो मे भी इसका वर्णन विस्ताररूप से उत्तरी समुद्र के दक्षिण भाग मे मिलता है, जो कि वर्तमान टुण्ड्रा मे पड़ता है। वे० इ० मे इसको जाति मानना निरी कोरी कल्पना है। जब ऐ० ब्रा० स्पष्ट जनपद शब्द से लिख रहा है तब भी जाति मानना साहस की पराकाष्ठा है। फिर पहले एकदम काल्पनिक कह देना, अनंतर अन्यराति को विजयेच्छा से पूर्णतया काल्पनिक न मानना पहले से विरुद्ध भी है। जिमर की धारणा से फिर उसको सत्य मान लेना उपहासास्पद भी है। अराति का अन्यरात नाम भी आपकी कल्पना करने का नमूना है। शायद आपकी पुस्तक में अन्यरात ही लिखा हो। परञ्च सायणसम्मत पाठ स्पष्ट आरति ही है। जिमर की धारणा निराधार, बिल्कुल काल्पनिक है। कुरु और उत्तरकुरु देश भिन्न भिन्न है। उसके साथ उत्तर शब्द और हिमालय से पार होना हिमालय के दक्षिण स्थित कुरु देश से उसको भिन्न कर रहा है। कुरुओ का काश्मीर से आना मानना और पीछे कुरुक्षेत्र मे बसना इत्यादि आर्यों को घुमक्कड़ बाहर से आनेवाला सिद्ध करने के लिये यह सब जाल रचा गया है।

ऐतरेय ब्राह्म० ८।१४ के आधार पर। नृसिंह १९।

१२ योगवाशिष्ठ नि० उ० १२३।७ महाभा० म० चि० ७।२ सु० ८।२ देवी भा० ७।३०।८० श्रीमद्भागवत ५।१६।८ गर्गसंहिता विश्व० २८।१ मत्स्य० १३।५ वायु पू० ४७।५५ पद्म० सृ० ११।११४

उत्तरगिरि[1]—हिमालय का नाम है।

उत्तर मद्र—१. (वे० इ०) यह उत्तरमद्र उत्तर कुरूज् के साथ ऐतरेय ब्राह्मण ८।१९ मे उल्लिखित जाति का नाम है। यह लोग हिमालय के पार रहते हुए माने गये हैं। यह कह रहे हैं और जिमर के मत को स्वीकार कर रहे है।

२. जिमर इसको कम्बोज के समीप मानते है। उसमें यह युक्ति देते है कि वंश[2] ब्राह्मण में काम्बोज औपमन्यव मद्रगार का शिष्य है। इससे यह अर्थ निकलता है कि काम्बोज और मद्राज् बहुत दूर-दूर नहीं रहे होंगे। वे० इ०

३. नन्दलाल डे पर्शिया में मेडिया को मानते हैं। वस्तुतः ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३ (८।१४ मे) इस देश को हिमालय से उत्तर माना है। उत्तरस्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदाः उत्तर कुरुवः उत्तर मद्राः इति वैराज्यायतते अभिषिच्यन्ते इत्यादि। (उत्तर कुरु देखिये) इसमें उत्तर मद्र को उत्तरकुरु के पास माना है। इससे यह प्रान्त रूस देश मे उत्तरकुरु के समीप प्रतीत होता है। परन्च वे० इ० ने देश शब्द रहते हुए भी इनको जाति माना है। यह कितनी बड़ी धाँधली है। उसका जिमर के मत का सम-

---

(१) शतपथ ब्रा० १।१४।१।१४ काण्व शाखीय शतपथ ब्रा० के० ११।३ १।७।१४ रघुवंश काव्य १५।१०३।

(२) इंडिस्चेस्टडियन ४।३७१

ांन करना आश्चर्यजनक है। जिमर का यह कहना कि गुरु शिष्य के नाम मे मद्रगार और कम्बोज शब्द आया है तो दोनों ेश बहुत दूर नहीं होगे, यह कितना प्रमाणिक है—इसे विद्वज्जन विचार करें। लोक मे एक गुरु का नाम कलकत्ता-प्रेय है और शिष्य का नाम बम्बईनाथ है तो क्या कलकत्ता और बम्बई को लोग पास में समझते है? गुरु का नाम मद्रगार ो वह मद्रदेश का रहनेवाला माना गया। मद्रदेश रावी नदी ; तट पर पंजाब मे है और हिमाद्रि से दक्षिण है और ऐतरेय ाह्मण मे उत्तरमद्र हिमाद्रि से उत्तर है तो दोनो को एक करके म्बोज के समीप मानना, जो कि पूर्वी अफगानिस्तान मे है, कतना युक्तियुक्त है और साक्षी देनेवाले कितने साहसी हैं। वस्तुतः द्रगार शब्द देश अर्थ मे नहीं है। नन्दलाल डे ने (ज्ञा० डि० ११४) लिखा है कि पर्शिया मे मेडिया मदया माड का रूपान्तर ै जो कि मद्र का रूपान्तर है। वही पुराणों का उत्तरमद्र है। ाडिया में आजरबैजान का सूबा भी शामिल है (आविस्ता का रियन वेजो 'एरियन' देखो)। यह मत भी ऐतरेय से विरुद्ध ोने के कारण साररहित है।

उदधि—ऋ० वे०[1] ३।४५।३ मे यह शब्द समुद्र के अर्थ ं आया है। यहाँ यह शब्द बहुवचन है, इससे कम से कम ीन समुद्र का बोध होता है। जो लोग यह कहकर कि ऋ० वे० ा समुद्र का वर्णन नहीं है, इससे आर्य लोग समुद्र को नहीं

---

१. इस मन्त्र में इन्द्र की स्तुति है। अर्थ है कि हे इन्द्र! जिस प्रकार म्भीर समुद्रो को आप जलो से पुष्ट करते है उसी प्रकार यज्ञ के कत इस जमान को अभिमतप्रदान से पुष्ट करें।

जानते थे, इससे इनको पजाब के आगे का ज्ञान नहीं था, ऐसा प्रतिपादन करते है उनको तीन दिशाओं के ३ समुद्रो को ऋ० वे० मे देखना चाहिये।

उदव्रज—ऋ० वे० ६।४७।२१ मे शंबर और वर्ची नामक असुरों को इन्द्र ने यहाँ पर मारा, यह वर्णन है। सायण इसको देश मानते है उदकानि व्रजन्ति अस्मिन् इति उदव्रजो देश विशेष:। हमारे मत मे यह स्थान का भी नाम हो सकता है। यह स्थान किसी पर्वत पर है, ऐसा ऋ० वे० २।१२।११ से प्रतीत होता है। मन्त्रार्थ यह है कि इन्द्र के भय से भागकर पहाड़ो मे बसते हुए शंबर नामक दानव को इन्द्र ने चालीसवे वर्ष मे पाया, तब मारा।

उदमेघ—यह शब्द ऋ० वे० १।११६।३ में समुद्र अर्थ में आया है। सायण ने उदकै मिह्यिते सिच्यते इति उदमेघ: समुद्र: मिह सेचने कर्मणिघज्। जो लोग ऋ० वे० मे समुद्र का वर्णन नहीं मानते, उनको यह देखना चाहिये।

उदीच्य—१. "वे० इ०[1] मे उत्तरी लोगो के भाषण का प्रसंग कुरु पञ्चाल के समान ही आता है। उत्तरी लोगों का भाषण शुद्धि के लिये होता था, अतएव ब्राह्मण उत्तर मे अध्ययन के लिये जाते थे।"

२. जा० डि० मे २०९ पृ० मे "शरावती नदी के उत्तर पश्चिम देश का नाम है, अमरकोष भूमि ४।"

वस्तुत: इस शब्द का अर्थ उत्तरी है। और पारिभाषिक

---

(१) ३।२।३।१५

रावी नदी के पश्चिमोत्तर देश का भी नाम है। शतपथ ब्रा० ३।२।३।१५ मे यह शब्द उत्तरदेश के अर्थ मे आया है। वहाँ पारिभाषिक अर्थ भी हो सकता है। निरुक्त २।२ मे भी यह शब्द आया है। "दातिर्लवनार्थे प्राच्येपुदात्र-मुदीच्येषु" 'दा' धातु काटने के अर्थ मे प्राच्य (पूर्वी) या रावी के दक्षिणी एवं पूर्वी देशों में बोली जाती है, जैसा कि 'व्रीहीन्दाति' धानों को काटता है। यही 'दा' धातु उदीच्य देशों में नाम होकर बोली जाती है, जैसा कि दात्र (हँसिया) जिससे काटा जाय। यही अर्थ व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में भी होता है। वे० इ० कार का कथन ठीक नहीं, क्योकि शतपथ मे कुरु पञ्चाल देशो के लोग उन्नतभाषी होते है यह लिखा है; न कि उत्तरी लोगों की और कुरु पञ्चाल के लोगो की भाषा का प्रतिपादन है। उत्तरी लोगो का भाषण शुद्धि के लिए होता था और ब्राह्मण उत्तर मे अध्ययन के लिए जाते थे, इसका अणुमात्र भी बोध नहीं होता। गोपथ ब्रा० २।१०।४ मे भी उदीच्य शब्द आया है, उसके भी दोनो अर्थ हो सकते है।

उदवत्—इस शब्द का अर्थ ऊँचा है और ऋ० वे० ५।८३।७ में आया है।

उरुञ्जिरा—(१) वे० इ० विपाश् नदी का नाम है।

(२) जा० हि० पृ० २१२ यह विपाशा का नाम है। प्रसिद्ध व्यास। यह शायद एरियन की सरञ्जेस् है; परन्तु पाठ अरञ्जिर दिया है, सो अशुद्ध है।

निरुक्त ९।२६ मे लिखा है कि व्यास का पहले उरुञ्जिरा

नाम था। पुत्रशोकार्त वशिष्ठ ने मरने के लिए अपने को पाशों मे बाँधकर इस नदी में डाल दिया। इस नदी मे जल के द्वारा पाश खुल गये और जल ने वशिष्ठ को किनारे पर बैठाकर रख दिया, इसी से विपाशा नाम पड़ गया। यह व्यास का नाम है और पञ्जाब की नदी है। दुर्गाचार्य ने उरुजला अर्थात् बहुत जलवाली अर्थ किया है।

उशीनर—(१) वे० इ० ऐतरेय ब्राह्मण ८।१४ मे कुरु पञ्चालाज्, वशाज् तथा उशीनराज् के साथ मध्यदेश मे रहते हुए माने जाते हैं। कौषीतकी उपनिषद् ४।१ में उशीनराज् कुरु पञ्चालाज् और वशाज् के साथ सम्बद्ध है। परन्तु गोपथ ब्राह्मण २।९ मे उशीनराज् और वशाज् उत्तरी माने गये हैं। ऋ० वे० १०।५९।१० मे इन लोगों का प्रसंग उनकी रानी उशीनराणी के लिये आया है।

(२) जिमर इनको पहले उत्तर पश्चिम मे रहनेवाला मानते है। यह प्रमाण देते हैं कि अनुक्रमणी (इन्डेक्स आफ ऋग्वेद १०।१७९) में शिबि उशीनराज् का वर्णन है और शिबीज् अलेक्जन्डर के साथियो को ज्ञात थे। ये लोग सिन्ध और अकेसेनीज् (चिनाब) के बीच मे रहते थे (वे० इ०)। वेदिक इन्डेक्सकार कहते है कि इसके लिये कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। जिमर का इसप्रकार का प्रमाण भी स्पष्ट नहीं है, क्योंकि गाथाकाल मे कुरुक्षेत्र के उत्तरी प्रदेश मे शिबीज् लोग रहते थे। कोई कारण नहीं कि उशीनराज् को वैदिक समय में मध्यदेश के स्थान पर पश्चिमदेश मे माना जाय।

वस्तुतः यह शब्द देशवाची है और इसका कुछ भाग

पञ्जाब मे है, कुछ भाग पञ्जाब के बाहर है। यह बात विभाषोशीनरेषु ४।२।११८ सूत्र की व्याख्या मे काशिकाकार ने बतलायी है और उशीनर के बीच में वाहीक के आह्वजाल और सौदर्शन नाम के दो गाँव दिखलाये है। और ३।२।८२ मे 'क्षीरपायिनः उशीनराः' प्रयोग से इस देश मे दूध का आधिक्य दिखलाया है। ऐतरेय ब्राह्मण अ० ३८।३ मे 'ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते अभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षत मध्यमा अर्थात् मध्यदेश दिशाओं की अपेक्षा ध्रुव है, अर्थात् उसी से पूर्वादि व्यवहार देशों के होते है। उसमे कुरु, पञ्चाल, वश और उशीनर देशों के राजा लोग राज्य के लिये अभिषिक्त होते है। इससे इनके अभिषिक्त नृपों को राजा कहा जाता है। यहाँ उशीनरशब्द स्पष्ट देशवाची है, जातिवाची नहीं हो सकता।

कौषीतकीब्राह्मणोपनिषद् ४।१ में गार्ग्योंहवालाकिरनूचानः संस्पष्ट आस सोयमुशीनरेषु संवसन् मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशीविदेहेष्विति सहाजातशत्रुं काश्यमेत्योवाच। गर्ग का वंशज बालाकि नामक बड़ा विद्वान् था और अभिमानी था। वह उशीनर में बसता हुआ मत्स्य, कुरु, पञ्चाल, काशी, विदेह देशों में घूमता हुआ काशी मे अजातशत्रु के पास गया। इसमे ये सभी शब्द देश का अर्थ स्पष्ट बतला रहे है, न कि जाति को।

गोपथ ब्राह्मण २।१०।४ विचारी कावन्धि एक बहुत बड़ा बुद्धिमान मीमांसक तथा वेदविषयक विद्वान् था। परन्तु उसके पास उसके योग्य मानुष धन नहीं था। उसकी माता ने उससे

कहा कि इन कुरु, पञ्चाल, अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, शाल्व, मत्स्य, वश. उशीनर, उदीच्य देशो मे लोग अन्न खाते है। तुम्हें जैसा कुछ मिलता है उसी प्रकार का भोजन हमलोग पाते है, इससे उन देशो मे जाओ। इसके बाद काबन्धि महर्षि यौवनाश्व (युवनाश्व के पुत्र) सार्वभौम (समस्त पृथ्वी के स्वामी) मान्धाता के यज्ञ मे गया, इत्यादि वर्णन देश-अर्थ मे उशीनर का प्रयोग बतलाता है; न कि जाति के अर्थ मे।

ऋ० वे० १०।५९।१० मे उशीनराणी शब्द से ओषधी का ग्रहण किया गया है। वे० इ० कार ने उशीनराणी को रानी लिखा है, यह सर्वथा असंगत है। यह मन्त्र इन्द्र-स्तुति में आया है। अर्थ यह है, हे इन्द्र! शकट को ले चलने मे समर्थ बैल को आप प्रेरणा करें, जो बैल उशीनराणी ओषधि लादे हुए शकट को हमारे पास पहुँचा दे। इसमे उशीनर देश मे पैदा होनेवाली ओषधि का वर्णन है। उशीनर देश में पैदा होने के कारण उशीनराणी कही जाती है। कौषीतकीब्राह्मणोपनिषद् मे उशीनर देश मे बालाकि के रहने का वर्णन है। उसमे उशीनर जाति के लोगों का वश इत्यादि जाति के साथ रहने का वर्णन नहीं है। पुराणों+ मे भी इसका देश अर्थ में प्रयोग है। और इसके राजा शिबि का वर्णन श्रीमद्भा० १।१२।२० में आया है। यह देश शतलज से पश्चिम और शतलज से पूर्व यू० पी० मे यमुना तक प्रतीत होता है; क्योकि इसका कुछ भाग

+ महाभा० शान्तिपर्व (नि० चि०) १०।१।४० तथा अनुशासन (चि०) ३१।२२ (नि०) ६७।२२ श्रीमद्भा० ७।२।२८ गर्गसहिता वि० १२।६ व्या० महाभाष्य शदेःशितः १।३।६० बृहत्संहिता ४।२२

वाहीक में है और कुछ भाग उससे बाहर है। यह काशिका ४।२।११८ से स्पष्ट है। महाभा०* वन प० (चि०) १३०। २१ (सु०) १३०।१७ मे औशीनर के यज्ञ का वर्णन यमुना के तट पर है और उसका नगर भी समीप ही मे प्रतीत होता है।

ऊर्जयन्ती—(१) लुडविक के अनुसार ऋ० वे० २।१३। ८ मे यह शब्द एक किले के नाम के लिये आता है, जो नारमल की शक्ति का स्थान था। (वे० इ०)

(२) ग्रासमैन इसका अर्थ सूर्य बतलाता है। (वे० इ०)

(३) राथ इसको ऊर्जय के विशेषण के रूप मे देता है। (वे० इ०)

(४) वेदिक इन्डेक्सकार इस प्रकार के अर्थों की गड़बड़ी देखकर कह रहे है कि इस ऋचा का अर्थ समझ मे नहीं आता। सायणाचार्य इस शब्द का अर्थ पिशाची करते है। वह उचित प्रतीत होता है।

ऊर्णावती—१. (वे० इ०) ऋ० १०।७५।८ म यह शब्द नदी के रूप मे आता है और लुडविक का मत बिल्कुल स्वीकार योग्य नहीं है।

---

* यमुना के दोनों तटों पर यमुना की सहायक जला, उपजला नाम की नदियों का वर्णन है। जला पश्चिम तट पर थी, उपजला पूर्व तट पर थी। (म० १०४।१७ में) उपजला के स्थान में ऊर्ध्वजला पाठ है। इन दोनों यमुना की सहायक नदियों के मध्य की भूमि में औशीनर के यज्ञ का वर्णन और बसने का भी वर्णन है। इससे यह उशीनर देश की पूर्वी सीमा यमुना तक प्रतीत होती है।

२. लुडविक के अनुसार यह नदी सिन्धु की शाखानदी है। (वे० इ०)

३. राथ के अनुसार केवल ऊनी अर्थ है। (वे० इ०)

४. जिमर राथ के अर्थ को नहीं मानता और कहता है कि इस अर्थ से ऋचा अस्पष्ट हो जाती है। (वे० इ०)

५. पिशल के अनुसार यह शब्द सिन्धु नदी का दूसरा नाम है, जिसका अर्थ भेड़ो से धनी होता है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह सिन्धु नदी का विशेषण है। यह कोई नदी विशेष नहीं है। इसके तट पर सुन्दर ऊन होने से सुन्दर ऊन वाली इसको कहा है। वे० इ० कार का नदी मानना ठीक नहीं, न लुडविक का ही मत ठीक है। पिशल का भी मत ठीक नहीं।

ऊर्व—वड़वानल का नाम है। यह अग्नि समुद्र मे रहता है। समुद्रजल पीता है। ऋ० वे०[1] मे इसका वर्णन अनेक स्थानो पर आया है। कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीय सहिता[2] मे भी इसका वर्णन है। ऋ० वे० ३।१।१४ ऊर्व समुद्र का भी नाम है।

---

१. ऋ० २।३५।३ का अर्थ यह है कि बरसे और बिना बरसे (पहले से भूमि पर स्थित) जल सब साथ मिलकर समुद्र मे स्थित बड़वानल को तृप्त करते हैं। ऋ० ३।३०।१९ हे इन्द्र! हमारी अभिलाषाएँ ऊर्व (बड़वानल) के समान बढ़ रही हैं। ऋ० ४।५८।११ में समुद्र के भीतर अग्नि का वर्णन है। ऋ० ८।१०२।४ में समुद्र मे बसनेवाले अग्नि का वर्णन है।

२. द्वितीय काण्ड प्रपा० ५ अनुवाक १२।२ तथा ३।१।११।८ तथा ४।७।१३।४ तथा ४।५।१०।३

ऋजीक—यह एक पर्वत का नाम है, जिससे व्यास नदी निकलती है। निरु० ९।२६

ऋषिद्रोण*— एक स्थान का नाम है, जहाँ पर द्रोण ऋषि ने तपस्या की थी।

ऋषिवन—गोपथ ब्रा० २।८ मे एक स्थान का नाम।

एनी—ऋ० वे० ५।५३।७ मे नदीमात्र का नाम है। निरु० २।२४

कन्या—वैदिक इंडेक्स मे इसका अर्थ नदी नहीं माना है, किन्तु यह एक नदी का नाम है। ऋ० वे० ६।४९।७ मे इसका वर्णन है। मन्त्रार्थ यह है:—पावीरवी, कन्या, चित्रायु, सरस्वती तथा वीरपत्नी ये नदियाँ हमारे कर्मयज्ञ को धारण करें और प्रसन्न हो। ये सब प्रसन्न देवपत्नियो के साथ स्तुति करनेवाले मुझे छिद्र-रहित, शत्रुओं के धर्षण से अयोग्य घर या कल्याण को दे। आश्वलायन श्रौतसूत्र ३।७ यह नदी है। शिव महा० माहे० अरु० उ० २।१३ कन्या नदी है। इसके तट पर शिवलिङ्ग हैं। शिवमहा० वि० १२।१७ यह नदी है।

मध्यभारत मे ग्वालियर के उत्तरी हिस्से मे शिवपुर मुरैना और भिंड जिले मे बहती हुई यह नदी चम्बल मे मिलती है। आसन इसकी मुख्य सहायक नदी है। यह क्वाँरी नाम से प्रसिद्ध है।

कम्बोज—(१) वे० इ० यास्क निरुक्त २।२ मे आर्यों से विभिन्न काम्बोजाज् का भाषण लिखा है। यह काम्बोजाज्

---

* गोपथ ब्राह्म० २।८

बाद को सिन्ध के उत्तर-पश्चिम मे बस गये। प्राचीन पर्शियन धर्मलेख में कम्बुजीय जाने जाते हैं। 'एक शिक्षक जिसका कि नाम औपमन्यव था और जो मद्रगार का शिष्य था' यह वंश ब्राह्मण (इन्डिस्चेस्टडियन ४।३७२) मे आता है। यह मद्राज् के साथ सम्बन्ध मे संभव है अथवा उत्तर मद्राज् के सम्बन्ध मे अधिक संभव है, जिनके साथ मे कम्बोज थे, जो संभवतः ईरानियन अथवा भारतीय सभ्यता रखते थे।

(२) यही मत जिमर, वेबर, मैक्समूलर और ओल्डनवर्ग का भी है। (वे० इ०)

(३) जा० डि० पृ० ८७ कम्बोज अफगानिस्तान, कम से कम उसका उत्तरी भाग (मार्कण्डेय० अ० ५७ मनु० अ० १०) अफगान नाम स्पष्ट अश्वकान् शब्द से निकलता है। यह घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था।

(४) डा० स्टीन के अनुसार अफगानिस्तान का पूर्वी भाग कम्बोज है। (जा० डि०)

(५) डा० लोह के अनुसार हिन्दूकुश पर्वत मे जो शियापोश जाति रहती है, वह कम्बोजों की वंशज है। (जा० डि०)

(६) विलफोर्ट के अनुसार गजनी के पर्वत मे कम्बोज रहते हैं। (जा० डि०)

(७) डा० रिसडेविट के अनुसार इसकी राजधानी द्वारका थी, जो गुजरात की द्वारका से भिन्न थी। (जा० डि०)

(८) हेमचन्द्र चौधरी तथा डा० देवदत्त रामकृष्ण भन्डारकर का कहना है कि कश्मीर के दक्षिण छिभाल प्रदेश कम्बोज था। (भारतभूमि परिशिष्ट २९७)

(९) फूशे ने इसे तिब्बत का कोई भाग माना है। (भारतभूमि परिशिष्ट)

(१०) डा० ग्रियर्सन इसको आर्यभाषाभाषी कोई ईरानी प्रदेश मानते है। (भा० भू० परि०)

(११) चौधरी बहाबुद्दीनकम्बोह की किताब 'तारीख कम्बोहाँ' में लिखा है कि अफगानिस्तान के पूर्वी हिस्से का नाम कम्बोज था। (यूनिवर्सिटी के एक मौलवी)

(१२) मिस्टर एज् व्युरिज के मत मे यह लोग सिन्धु नदी के पार के रहनेवाले है। यह अकबरनामा के टीकाकार हैं। प्रमाण मे कम्बोह लोग ऐसा कहते है, ऐसा लिखते है। (लखनऊ यूनिबर्सिटी के एक मौलवी)

(१३) हिन्दी विश्वकोष (कम्बोज शब्द) कम्बोज देश सिन्धु नद के उत्तर और गौरीगुरु पर्वत के निकट रहा, मार्कण्डेय० मे गौरग्रीव और महाभा० मे सुवास्तु नदी के साथ गौरी नदी का उल्लेख मिलता है। यह सुवास्तु और गौरी नदी वर्तमान पञ्जाब के उत्तर अवस्थित है। सुतरा रघुवंश का मत मानते हुए वर्तमान सिन्धु और लन्दई नदी के उत्तरांश मे पूर्वकाल मे कम्बोज नामक जनपद रहा। पहले कम्बोजवासी संस्कृतभाषा बोलते थे। मल्लिनाथ ने गौरीगुरु का अर्थ हिमालय माना है; किन्तु उस स्थल पर गौरीगुरु एक स्वतन्त्र पर्वत समझ पड़ता है। पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टालेमी ने झेरिया नामक एक जनपद का उल्लेख किया है। इसी जनपद के मध्य गौरी नदी प्रवाहित है। यह नदी वर्तमान काबुलनदी मे जा गिरी है। फिर उसे ऋग्वेद और महाभा० मे गौरी नदी

ही लिखा है। उसके चारो ओर पर्वतमाला खड़ी है। कालिदास ने इसी पर्वतमाला को गौरीगुरु कहा है। विशेषतः इसी पर्वत से गौरी नदी निकली है। उक्त पर्वतीय प्रदेश को टालमी ने गोरिया बताया है।

(१४) (भारतभूमि पृ० २२४) हमारा अफगानिस्तान वास्तव मे पक्थ, कम्बोज देश है। उसमे जहाँ पूर्वोक्त ब्रिटिश अफगानिस्थान गिनना चाहिये, वहाँ कपिश या काफिरिस्तान वास्तव मे उसका अङ्ग नहीं है। हिन्दूकुश से उत्तर ओर बलख प्रदेश अथवा अफगान-तुर्किस्तान अब जनता की दृष्टि से पक्थ, कम्बोज नहीं रहा; किन्तु कम्बोज देश का जो अंश रूसी पंचायत संघ मे है, उसे भी अफगानस्थान मे गिनना चाहिये। अफगानिस्तान का काफरिस्तान या कपिश देश जनता और इतिहास की दृष्टि मे अफगानस्थान (कम्बोज) का भाग नहीं है। जिसे हमने कम्बोज देश कहा है, उसमे आजकल गलचा बोलियाँ बोली जाती है। कम्बोज उर्फ तुखार देश के पश्चिमी अंश बदख्शाँ में पहले उनसे मिलती हुई भाषा बोली जाती थी। अब फारसी बोली जाती है। तुखार कम्बोज की जनता अब ताजिक कहलाती है। कम्बोज देश का मुख्य अंश आज रूसी पंचायत संघ के अन्दर है। पर वह वास्तव मे अफगान का एक अंश है।

(भारतभूमि परिशिष्ट पृ० २९७) फूशे ने (आईकोनोग्राफीबुधीक पृ० १३५; वि० स्मिथ की अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया चतुर्थ संस्करण पृ० १९३ पर निर्देश) नेपाली अनुश्रुति के अनुसार कम्बोज को तिब्बत का कोई भाग माना है। किन्तु डा० ग्रियर्सन दिखला चुके है

(ज० रा० ए० सो० १९११ पृ० ८०२) कि वह कोई ईरानी आर्यभाषाभाषी प्रदेश था। इसलिये साधारण तथा विद्वान् लोग कम्बोज का अर्थ पूर्वी अफगानिस्तान करते हैं। किन्तु पूर्वी अफगानिस्तान के एक एक प्रदेश की जब हम पूरी छानबीन करते है तो कम्बोज को उसमे से किसी स्थान पर भी ठीक नहीं बैठा सकते। झोब घाटी से अफरीदीतीरा तक पक्थ देश था। फिर काबुल नदी के उत्तर कपिश, गान्धार और कम्बोज उन तीनों मे से किसी का समानार्थक रहा है, सो कोई नहीं कह सकता। हेमचन्द्र चौधरी का पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐन्शियन्ट इन्डिया पृ० ९४-९५ मे लिखा है कि "कश्मीर के दक्षिण छिभाल प्रदेश कम्बोज था।" खेद है कि डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने भी उसी शिनाख्त को स्वीकार कर लिया (अशोक पृ० ३१)। महाभा० मे एक प्रतीक है—कर्ण राजपुरं गत्वा काम्भोजा निर्जितास्त्वया।८।४।५ डा० चौधरी के मत मे इससे सिद्ध होता है कि राजपुर कम्बोज की राजधानी थी और वह आधुनिक राजौरी के सिवाय कोई नहीं है। सोलह महाजनपदो के समय (७ वीं ८ वीं शताब्दी ई० से पूर्व मे) का कम्बोज महाजनपद वही था। डा० राम० चौधरी के अनुसार उसकी पश्चिमी सीमा काफिरिस्तान तक पहुँचती थी ; अर्थात् झेलम और सिन्ध के बीच हजारा जिला भी उसमे मिला था। उन्होने स्वयं यह भी सिद्ध किया है कि उस युग मे गान्धार महाजनपद मे कश्मीर भी सम्मिलित था (पो० हिस्ट्री पृ० ९३)। किन्तु यह बात उन्हें न सूझ पड़ी कि कश्मीर का दक्षिण-पश्चिम हिमालयप्रदेश और हजारा

प्रदेश कम्बोज रहा तो गान्धार का राज्य उसे लिये बिना कश्मीर कैसे ले सकता था। दारयबहु ने जिन भारतीय प्रदेशों को जीता था, उनमे कम्बुजिय का भी नाम है। कम्बोज अशोक के सम्राज्य में भी था। डा० भण्डाकर के मत मे दारय बहु और अशोक के अभिलेखों का कम्बोज वही है। किन्तु छिभाल प्रदेश प्राचीन भारत मे सदा अभिसार के नाम से प्रसिद्ध रहा है। दारयबहु और अशोक के समय के बीच जब सिकन्दर पञ्जाब में आया तब उसके साथियो ने उसका नाम अभिसार ही पाया। महाभा० मे अर्जुन के दिग्विजय मे अभिसारी का नाम कम्बोज से अलग है। वह ठीक उरगा से स्पष्टतः उरशा का अपपाठ है और उससे पहले है। सभा पर्व अ० २८ उरशा प्राचीन हजारा है, जो अभिसार से ठीक सटा हुआ है। वह भी कम्बोज का अंश रहा हो, इसके लिये रत्ती भर भी प्रमाण नहीं है। फिर समूचे भारतीय इतिहास और वाङ्मय मे कम्बोज एक सीमान्त का देश है। किन्तु उक्त शिनाख्त के अनुसार वह न केवल सिन्ध नदी के प्रत्युत जेहलम के भी पूर्व और कश्मीर के दक्षिण जा पड़ता है। कश्मीर के पड़ोस के किसी देश की शिनाख्त करते समय उक्त विद्वानों का कम से कम कल्हण की साक्षी पर तो ध्यान देना उचित था। कल्हण ने ललितादित्य के दिग्विजय मे राजतरङ्गिणी ४।१६३—१६५ मे कम्बोज को कश्मीर से उत्तर रखा है, जब ये विद्वान् उसे दक्षिण रखते है। राजौरी जीतने की ललितादित्य को जरूरत भी न थी; क्योकि वह कम से कम उसके दादा के समय से उसके पूर्वजो के अधीन थी। रघु के दिग्विजय मे कालिदास ने

कहा है (रघुवंश ४।७१–८०) कि कम्बोज जीतकर रघु की सेना हिमालय पर चढ़ी। किन्नरों को जीतने के बाद उसपर से उतरी। यदि हिमालय की दक्षिणी उपत्यका की तरफ से चढ़ी होती तो भारत के बजाय चीनी तुर्किस्तान मे जा उतरती। सन् १९२८ मे मैंने पहले पहल कल्हण की रहनुमाई मे चलते हुए कम्बोज को चितराल से मिलाया था। क्योंकि ललितादित्य के विजय मे उसका नाम तुखार के ठीक पहले है। तुखार या तुःखार अरब लेखको का तुखारिस्तान या आधुनिक बदख्शाँ है। चितराल कश्मीर के उत्तर-पश्चिम है। उसी में बदख्शाँ जाने के दोरा आदि जोतों के रास्ते है। किन्तु एक सन्देह मेरे मन मे बना रहा कि चितराल की जनता दरद जातीय है। असल दरदों से वह जिस अंश मे भिन्न है, वह भेद भी प्राचीन काल में न था। क्योंकि चितराल की भाषा खोवार दरदी मे गलचा के जिस मिश्रण से बनी है, वह मिश्रण नया है। तब प्राचीन काल में चितराली लोग भी दरद कहलाते होंगे। दरदों का नाम ललितादित्य दिग्विजय मे अलग है। गलचा प्रदेश को मैं पहले भारत से बाहर समझता था। पर हाल में भारतवर्ष के स्वाभाविक प्रान्तो और परंपरागत सीमाओं की पड़ताल करते समय अफगानिस्थान की विवेचना करते समय मुझे यह देखने की उत्सुकता हुई कि गलचा प्रदेश का उससे क्या सम्बन्ध है? तब उस प्रदेश का अध्ययन करने पर मुझे यह सूझ पड़ा कि वही प्राचीन कम्बोज देश है; क्योंकि वह कश्मीर के ठीक उत्तर है। तुखार या बदख्शाँ से उसकी एक तरफ की सीमा समूची सटी हुई है, जब कि चितराल का एक कोना बदख्शाँ को छूता

है। यह बात सूझने पर मैंने यह देखना चाहा कि यास्क ने (५०० ई० पूर्व से जरूर पहले) कम्बोजों की भाषा के विषय में यह जो लिखा है कि "शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते" इस बात का निशान कहीं अब तक गलचा भाषाओं में बचा हुआ तो नहीं है। मुझे अत्यंत आश्चर्य और आनन्द हुआ जब मैंने यह पाया कि गलचा भाषाओं में अब भी 'शवति' धातु बरती जाती है। डा० ग्रियर्सन के नमूनों में शिग्नी बोली में शुत=गया। पृ० ४६८ भा० भा० प० १०। सरीकोली में सेत=जाना ४७२। सुइत=गया। मौम=जाऊँगा ४७६। जेब की सगलीची या इस्का शिमी में शुद=गया ५००। मुञ्जानीया मूंगी में शिआ=जाना ५११। युइद्गा में शुद=गया ५२४। केवल वखी के नमूने में शवति क्रिया नहीं है। ग्रियर्सन का कहना है कि बदख्शाँ में भी पहले गलचा बोली जाती थी। आइकोनोग्राफी पूर्वार्ध पृ० ५२७ बदख्शाँ और पामीर की जनता एक ही है (ताजिक)। कोकचा के पूर्व का बदख्शाँ का पूर्वी भाग भौगोलिक दृष्टि से भी पामीर सा ही है। इस बात पर ध्यान देते हुए कि प्राचीन जनपद प्रायः आधुनिक बोलियों के क्षेत्रों से मिलते हैं, हम पामीर और बदख्शाँ को कम्बोज में सम्मिलित कर सकते हैं। महाभारत से इस बात की पुष्टि मिलती है, क्योंकि वहाँ कम्बोज और बह्लीक का नाम प्रायः एक द्वन्द्व में आता है। ६।७५।१७, २।२८, २२।२३ जिससे जान पड़ता है कि कम्बोज की सीमा बाह्लीक या बलख से लगती थी, अर्थात् बदख्शाँ उससे सम्मिलित था। रघु के उत्तरदिग्विजय में कम्बोज देश से उसे रत्नों की भेंट मिलने का कालिदास ने उल्लेख किया है (४।७०)।

आज भी गल्चाभाषी शहर मुंजान के पास पन्ना की खानें है। कालिदास ने वहाँ कम्बोजों का उल्लेख वंक्षुतट के हूणों के बाद किया है (४।६८-६९)। आधुनिक विद्वान् यह निश्चय कर चुके है कि वंक्षु पर हूणों का इलाका नहीं था, जिसे पारसी लोग हैतल तथा अरब के लोग खुन्तल कहते थे। अरब भूगोल लेखकों के अनुसार वह आमू की धाराओ वक्षाव (आधुनिक वख) और अक्साव (आधुनिक अक्सू या मुर्गाव) के बीच का दोआब था। एस्० कृष्णस्वामी आयङ्गर हन प्रोब्लेम इन इण्डियन हिस्ट्री (भारतीय इतिहास में हूण समस्या) इण्डियन आण्टीक्वेरी १९१९ पृ० ६५ आदि उनकी सीमा गलचा प्रदेश की ठीक उत्तरी सीमा के साथ-साथ सटी हुई है। कल्हण ने कम्बोज और तुःखार के नाम अलग अलग दिये है। चीनी इतिहास लेखक बतलाते हैं कि ताहिया लोग पहले चीन के कानसू प्रान्त की पश्चिमी सीमा पर रहते थे। फिर वे वंक्षु के काठे में आये। डा० मार्कार्ट का मत है कि चीनियों के ताहिया और अरबो के तुखार एक ही हैं। इस प्रकार तुखार लोग वंक्षु तट पर दूसरी शताब्दी ईशा से पूर्व के लगभग आये थे। तब से उनका नाम तुखार देश या तुखारिस्तान पड़ गया। कम्बोज और तुःखार तब एक दूसरे के पर्याय हो गये। नये नाम ने पुराने नाम को दबा दिया। बोलोर, पामीर, बदख्शाँ सभी किसी समय तुखार देश मे सम्मिलित थे। बाद जब युइची का वह साम्राज्य टूट गया तब केवल बदख्शाँ का नाम तुःखार रह गया। इस प्रकार कम्बोज और तु.खार दोनों नाम प्राचीन कम्बोज उर्फ तुःखार के दो टुकड़ो के नाम रह गये। किन्तु

कम्बोज शब्द का अर्थ बहुत जमाने तक भूला न गया था। सो इस प्रसिद्ध फारसी पद्य से प्रकट है, दोयम कम्बो इत्यादि। डा० चौधरीवाले महाभारत के प्रतीक का या तो यह अर्थ है कि कम्बोज का रास्ता राजौरी होकर जाता था या वहाँ राजपुर से राजगृह का अभिप्राय है। बलख की राजधानी का नाम भी राजगृह था। सो हम ह्वेनसाँग के यात्रा-विवरण से जानते हैं (वैटर्स १ पृ० १०८)। नेपाली अनुश्रुति कम्बोज को तिब्बत में क्यों रखती है, सो भी अब स्पष्ट हो गया। नेपाल की तरफ से देखनेवाले को पामीर तिब्बत का बढ़ाव ही दीखता है। 'कम्बोज के पड़ोस गंगा।' कम्बोज के भूगोल का अध्ययन करते हुए मुझे यह सूझ पड़ा कि कालिदास ने क्यों उसके ठीक बाद गङ्गा का उल्लेख किया है (रघुवंश ४।७३)। कम्बोज की पूर्वी सीमा सीता (यारकन्द) नदी है। एक विशेष काल के प्राचीन भारतीय विश्वास के अनुसार सीता और गगा का स्तोत्र एक ही अनवतप्त सरोवर से था। सीता उसके उत्तर और गंगा पूर्व निकलती थी (अभिधर्म कोष ३।३७, वैटर्स याँनचाँग १ पृष्ठ ३२-३५)। इस प्रकार उस सरोवर के उत्तर-पूर्व परिक्रमा करने से रघु की सेना काम्बोज के ठीक बाद गङ्गा के स्रोत पर पहुँच सकती थी। कालिदास का अभिप्राय कश्मीर के उत्तर व्यथ की शाखा सिन्ध या उत्तर की किशनगङ्गा (प्राचीन कृष्णगंगा) उत्तरगङ्गा (व्यथ की शाखा सिन्ध) या उत्तरगङ्गा की एक शाखा के स्रोत गङ्गा सरोवर से नहीं हो सकता। क्योंकि वे सब हिमालय की गर्भश्रृंखला के नीचे हैं। जब कि कालिदास के वर्णन के अनुसार रघु की सेना कम्बोज के बाद हिमालय पर

चढ़ी और किनारों को जीतने के बाद उसपर से उतरी थी। स्पष्ट ही हिमालय से अभिप्राय यहाँ गर्भश्रृंखला से कारकोरम श्रृंखला तक के पहाड़ों से है (३०९)। काम्बोज की पूर्वी सीमा से खोतन तक घोड़े की पीठ पर चार-पाँच रोज में पहुँचा जा सकता है।

वस्तुतः महाभारत द्रोण० (चि०) ४।५ तथा (सु०) भीष्म० ११७।१५ में "कर्ण राजपुरं गत्वा कम्बोजा निर्जितास्त्वया" यह पाठ मिलता है। इससे यह प्रतीत होता है कि इसकी राजधानी का नाम राजपुर था। मिस्टर कनिङ्हम की 'ऐशियन्ट जाग्राफी इण्डिया' मे गान्धार के वर्णन में पृ० ५८ मे एक स्वात नदी (पंजकोरा) के तटस्थ हश्तनगर का नाम मिलता है और हश्तनगर के आठ भागों का उसी मे वर्णन है। उनके नाम ये हैं - टाँगी, सिरपो, उम्रजई, तुरङ्गजई, उस्मानजई, राजुर, चारसाद और परग। ये पन्द्रह मील तक फैले हैं और अन्तिम दो नगर नदी के मोड़ मे फैले हैं। इनमें राजुर नाम का नगर राजपुर का अपभ्रंश है। और महाभारत में अर्जुन के दिग्विजय के अनुसार बाह्लाक से उत्तर भी होता है। क्योंकि अर्जुन बाह्लीक के विजय के बाद काम्बोज के विजय को गये। बाह्लीक हींग का नाम है, इससे हींग जिस देश मे पैदा होती है वह देश बाह्लीक कहा जाता है। अर्जुन सिहपुर से कुइटा होते हुए पहले बाह्लीक मे गये। उसके बाद काम्बोज को गये। इस देश की पूर्वी सीमा गान्धार से मिली थी। परंच कहाँ पर मिली थी, यह निश्चय नहीं। दक्षिणी सीमा बाह्लीक से मिली थी।

और पश्चिमी सीमा हूण देश से मिली थी। उत्तरी सीमा का निश्चय नहीं कि कहाँ तक थी। यद्यपि कनिंगहम इस प्रान्त को गान्धार मे मानते हैं और हश्तनगर को हस्तिनगर का अपभ्रंश कहते हैं, सो सब कोरी कल्पना है। हश्त शब्द का अर्थ पारसी भाषा मे आठ होता है। पश्तो और पारसी का बहुत कुछ साम्य है। इससे पश्तो मे भी इसका अर्थ समान होगा। कनिंगहम ने आठो भागों का स्पष्टरूप से वर्णन किया है। इससे यह शब्द हश्तनगर ही निश्चित है। डा० चौधरी तथा डा० भण्डारकर का काम्बोज की राजधानी राजपुर मानना बिल्कुल ठीक है। परंच वह राजपुर कहाँ था, इसमे उनको अवश्य भ्रम हो गया। जयचन्द्र विद्यालंकार ने उनके मत का भलीभाँति खण्डन किया है, वह उचित है। इससे हम उसका खण्डन पृथक् नहीं करना चाहते। जयचन्द्र विद्यालंकार ने जो बद्‌ख्शाँ के होने मे प्रमाण दिये हैं, उनपर विचार करना है। उनका कहना है कि "झोब घाटी से अफरीदीतीरा तक पथ्य देश था। फिर काबुल नदी के उत्तर कपिश और गान्धार था। कम्बोज उन तीनो मे से समानार्थक रहा है। सो कोई नहीं कह सकता।" वस्तुतः कपिश शब्द देशवाची है, इसमें कोई भी प्रमाण नहीं है। केवल रिसर्चरों की कोरी कल्पनामात्र है। ऋ० वे० ८।४९।१० मे पक्थ शब्द एक राजा और उसकी सन्तान के लिये आया है। वे पक्थ देश के निवासी थे। पक्थ देश वहीं पर था, इसमे कोई प्रमाण नहीं है। कपिश शब्द भी देशवाची है, इसमे भी किसी प्रकार का प्रमाण नहीं है। नगरी का कापिशी नाम देखकर कपिश देश का कल्पन करना भी

असंगत है। कपिश नामक व्यक्ति ने इसको बसाया था, इसलिए कापिशी नाम पड़ा। यह प्रान्त इन्हीं तीनो प्रान्तों मे बँटा था, इसमे भी कोई प्रमाण नहीं है। किसी देश की सीमा का निर्णय करना प्रमाणाभाव से असंभव है। यद्यपि योरोपियन विद्वानों के सामने उनके कल्पित देशों को कहना दोषावह नहीं है तथापि यह युक्ति साररहित है। गलचा भाषा के बलपर 'शव' धातु का प्रयोग जो विद्यालंकारजी ने दिखलाया है वह तो बड़ा ही विचित्र है। उसमे आपने जो सुत=गया, सुइत=गया, सौम=गया, सेत=जाना उदाहरण दिये हैं, 'शव' धातु का इनमें एक भी अक्षर नहीं है। क्योकि इसमें शव के शुद या शिया=जाना, शुई=गया में भी शव धातु का शकार मात्र ही है। वे भी शव धातु का उदाहरण नहीं बन सकते*। उषवदात के लेख में मालय का अर्थ जो मालव समझ लेते है और यकार वकार के भेद होने पर भी मालवगण या मालवानिवासी अर्थ मान लेते हैं, जो वास्तव मे मलयपर्वत निवासी के अर्थ मे आया है, वे लोग आपकी इस परीक्षा को शायद मान ले। कह्लण की राजतरंगिणी मे

---

* यदि कोई यह कहे कि 'शुद' 'शव' धातु का रूप है और वकार का संप्रसारण होकर उकार हुआ है, सो भी ठीक नहीं। क्योंकि यह दकार इसमें धात्वंश है, प्रत्ययांश नहीं है। इसके रूप इस प्रकार होते हैं—शुद=वह गया, शुदन्द=वे गये, शुदी=तू गया, शुदेद=तुम गये, शुदम्=मैं गया, शुदेम्=हम गये। फारसी में 'शुद' का अर्थ 'गया' और 'हुआ' दोनों होते हैं। यदि 'शुद' 'शव' का रूप माना जायगा तो फारसी में भी शव का प्रयोग गतिअर्थ में हो जायगा, ऐसी दशा में कम्बोज ही मे 'शव' का प्रयोग गतिअर्थ में होता है, यह नहीं कह सकते

तु:खार और कम्बोज को भिन्न-भिन्न माना है, वह भी आपके विरुद्ध ही है। कम्बोज के समीप गंगा के वर्णन में आपने जो युक्ति दिखलायी है, वह भी कोरी कल्पनामात्र है। कम्बोज का विजयकर रघु अयोध्या की तरफ मुड़े और उन्होंने गढ़वाल का विजय किया; क्योंकि गढ़वाल में ही उत्सवसंकेत नामक गण रहता था। गण के रहने तथा राज्य के कारण ही प्रान्त का नाम गणपाल पड़ा। उसी का अपभ्रंश गढ़वाल है। गंगा का होना और देवदारु का वर्णन गढ़वाल को ही निश्चय कर रहा है। रघु दक्षिण तरफ से ही चढ़े और दक्षिण ही उतरे, यह रघुवंश से प्रतीत होता है। क्योंकि कालिदास ने घोड़े और हाथियों से रघु की चढ़ाई का वर्णन किया है। रथों को रघु नीचे ही छोड़ गये थे। लौटकर रघु को अपनी छोड़ी हुई सेना से मिलना आवश्यक था। इससे उनको लौटकर उसी स्थान पर या उससे पूर्व अयोध्या की ओर आना पड़ा होगा। किन्नरों को हराया, यह बात भी समझ मे नहीं आती। संस्कृतवाङ्मय मे किन्नरों को गानेवाली जाति मानी है। उसकी लड़ाई का कहीं पर भी वर्णन नहीं मिलता। इससे किन्नरों को हराया, यह कहना ठीक नहीं। बल्कि किन्नरों ने वीर रघु के यश का गान प्रसन्नता से किया। गंगा का स्रोत अनवतप्त सरोवर है, यह भी ठीक नहीं। क्योंकि जब कालिदास का रघुवंश नन्दिनी और दिलीप की कथा को पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० १९८ के अनुसार वर्णन करता है तो कालिदास का वर्णन भी पुराणों के अनुकूल ही मानना चाहिये। पुराणों मे गंगा की उत्पत्ति बिन्दुसर से मानी गयी है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार उसको कहना अनुचित है।

रघु के दिग्विजय मे हूणों का वर्णन सिन्धु नदी के तीर पर मिलता है। उसके विषय मे पं० रामचन्द्र शुक्लजी का कथन है कि हस्तलिखित कई प्रतियों मे सिन्धुतीर के स्थान पर वंक्षुतीर यह पाठ मिलता है, इसको यदि स्वीकार कर लिया जाय तो पारसीक के बाद हूणों का विजय वंक्षु तट पर करने के बाद रघु कम्बोज को जीतने गये, यह रघुवंश का वर्णन ठीक महाभारत से मिल जाता है। हिन्दी-विश्व-कोष में 'सुवास्तु' का अर्थ 'स्वात' समझा जाता है, वह कोई नयी बात नहीं है। सुवास्तु और स्वात एक है, यही योरोपियन मत है। स्वात शब्द संस्कृत स्वाति शब्द का अपभ्रंश है। स्वाति नाम की नदी स्वात कही जाती है, सुवास्तु नहीं। सुवास्तु का विवेचन सुवास्तु में करेंगे। गौरी शब्द सुवास्तु के साथ आ गया, इससे सुवास्तु और गौरी समीप है, यह कहना बिल्कुल भ्रम है। उसमे सैकड़ो नदियों के नाममात्र दिये हैं। क्रम और सामीप्य का विचार नहीं है। गौरीनदी निकलने से गौरीगुरु दूसरा पर्वत हो गया। गौरीगुरु मल्लिनाथ का ठीक नहीं। यह कहना भी भ्रममात्र है। द्वितीय सर्ग में 'गंगाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश' २।२६ लिखा है, इससे गंगा और हिमालय साफ-साफ प्रतीत होते है। वहाँ पर गौरीगुरु का हिमालय अर्थ करना और टालमी इत्यादि के नाम सुनाकर 'गौरी नदी के निकलने का पर्वत' अर्थ करना परस्पर विरुद्ध होगा। टालमी ने वहाँ रघुवंश का गौरीगुरु यही है, यह तो नहीं लिखा। वह तो प्रान्त कह रहा है और आप पर्वत ! यह प्रान्त गोरिया है, इससे प्रकरण मे क्या प्रमाण आया ?

वहाँ से चलकर रघु हिमालय पर चढ़े, इसमें क्या बिगड़ता है ! वहीं हिमालय पर चढ़े ऐसा तो नहीं लिखा है, जिसलिये कि इतना आडम्बर किया जाय ।

वेदिक इन्डेक्स में जो गुरु शिष्य के सम्बन्ध से इसको तथा उत्तरमद्र को समीप में माना है, वह कल्पना भी निर्मूल है । इस बात को हम उत्तरमद्र में दिखला चुके हैं ।

निरुक्त[1] २।२।७ में तथा व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में और पुराणों मे इसका वर्णन मिलता है ।

महाभा० सभा० (चि०) ४९।१९ (नि०) ७६।२९ में कम्बोज का राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में कदली मृगो के चर्मों को लाया । (नि०) मे 'काम्भोज' ऐसा पाठ है । (म०) ५१।३१।। में भी काम्भोज पाठ है । दाक्षिणात्य पाठ काम्भोज मिलते हैं और उत्तरी पाठ काम्बोज मिलते हैं । ब्रह्मा० पू० १६।४९ यह देश भारत में है और उत्तरी है । वाल्मी० बा० (नि०) ६।२२ (इ०) ६।२४ यहाँ के घोड़े अच्छे होते है । स्कन्द० माहे० कौमा० ३९।१५४ यह देश भारत में है । ब्रह्म० २०२।३२

---

(१) निरुक्त का यह अभिप्राय है कि 'शव' धातु कम्बोज देश ही में क्रियारूप में 'हो जाने' के अर्थ में बोली जाती है । आर्यदेशों मे शव धातु का विकार अर्थात् कृदन्तरूप बोला जाता है । क्रियाअर्थ में इसका प्रयोग नहीं होता । जैसा कि शव (मुर्दा) । उसको कम्बोज इसलिये कहते है कि इसमें लोग कम्बल=ऊनी कपड़े दुशाले पशमीने इत्यादि का भोग करते हैं । अर्थात् देश बहुत ठण्डा है । इसलिये ऊनी कपड़ों को व्यवहार में लाते हैं । अथवा कमनीय (चाहने योग्य) भोगवाले होते हैं । कम्बल चाहने योग्य होता है । महाभाष्य पस्पशाह्निक में 'शव' धातु के विषय में जो निरुक्त में लिखा है, वही माना है ।

यहाँ के घोड़े अच्छे होते हैं। वायु० पू० २६।१५१ यहाँ राजा सगर ने कम्बोज गण को सिर मुड़वाकर जीवित ही छोड़ दिया। वायु० पू० ४५।११८ यह देश भारत में उदीच्च कहा जाता है। पद्म० आदि० ६।६० यह देश भारत मे है और उदीच्य कहा जाता है। ब्रह्म० २७।४६ यह देश भारत मे उदीच्य है। मार्कण्डेय० ५५।३० यह देश पूर्वमुख कूर्म के पिछले दक्षिणपाद में है, ५४।३८ यह देश उदीच्य है। वामन० १३।४० यह कुमाराख्य द्वीप (भारत) मे उदीच्य है। नारदीय पू० ५६।७४४ यह देश पूर्वमुख कूर्म के पाणिमंडल मे है। महाभा० भी० (चि०) ९।६५ यह देश है। महाभा० उद्यो० ४।१८ मे एक देश है। महाभा० शा० १०१।५ यहाँ के लोग अश्व-युद्ध मे कुशल होते हैं। महाभा० सभा० (चि०) २७।३० यह देश उत्तरी है। महाभा० सभा० (म०) ५१।३२।। काम्भोज का राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे कदली के समान मृदु रोमवाले काले, श्याम और लाल रंगवाले बहुमूल्य कम्बलों को लाया। निर्णयसागर ७६।२९ कदलीमृगों के चर्म लाया। (चि०) ५१।३ यह राजा ऊन के बने हुए वस्त्र तथा बिलों मे रहनेवाली बिल्लियों के चर्म तथा सुनहले कामवाले ओढ़ने योग्य चर्मों को लाया। महाभा० सभा० (चि०) २७।३० यह देश उदीच्य है। महाभा० उद्यो० (चि०) ४।१८ (सु) १९।२१ काम्बोज का राजा सुदक्षिण यवन और शकों के साथ दुर्योधन की सहायता को आया। निरुक्त २।२ वाल्मी० बाल० (नि०) ६।२२ कि० (इ) ४४।१४ (नि० गु०) ४३।१२ काव्यमीमांसा १७।१० यह देश उत्तरापथ में है। पाणिनि इस कम्बोज शब्द को क्षत्रिय-

समान जनपदवाची मानते हैं। अर्थात् कम्बोज एक क्षत्रिय का नाम है और देश का भी। उससे अपत्य (सन्तान) अर्थ मे जन-पद शब्दात् क्षत्रियादञ् ४।१।१६८ से अञ् प्रत्यय करके कम्बोजा-ल्लुक् ४।१।१७५ से लुक् करके सन्तानअर्थ में भी कम्बोज ही बनाते हैं और राजाअर्थ मे भी कम्बोज ही बनाते हैं। यहाँ पैदा हुआ मनुष्य और मनुष्य मे स्थित वस्तु काम्बोजक कही जाती है। अन्य सब वस्तु काम्बोज कही जाती है। काशिका मनुष्य तत्स्थयोर्वुञ् ४।२।१३४ गणरत्न महोदधि ५।३२८ तथा ३५२ में भी यही लिखा है। राजतरङ्गिणी ४।६५ मे यह देश उत्तरापथ मे लिखा है। मेदिनीकोष ग ३।२० यह देशविशेष है। बृहत्कथामंजरी विषमशील० १।२८५ ये म्लेच्छ हैं। इनको विक्रमादित्य ने जीता। लेकिन कथासरित्सागर विषम-शील० ५) मे यह पाठ नहीं है। जातक ४।४६४ कम्बोज के खच्चर सुन्दर दाँतवाले होते हैं। भारतीय इतिहास की रूप-रेखा पृ० ३७९ कम्बोज देश से खच्चर आते थे। पृ० ४५८ भारत का कम्बोज देश मगध से ठीक दक्षिण-पूर्व लगता था। अमरकोश क्षत्रि० ४५ कम्बोज के घोड़े काम्बोज कहलाते थे। मनु० १०।४४ में इनके लिये यह लिखा है कि ये क्षत्रिय लोग धीरे-धीरे क्षत्रियोचित क्रियाओ के लोप हो जाने और ब्राह्मणों के न देखने से शूद्र हो गये; अर्थात् क्षत्रियोचित क्रियाये इनसे छूट गईं। इस देश में संस्कारादि करानेवाले ब्राह्मण नहीं गये। महाभाष्य ४।१।१७५ में इसको क्षत्रियाभिधायी जनपद होना माना है। रघुवंश ४।६९ में यह देश हूणदेश से इधर और हिमाद्रिसे दक्षिण है। यहाँ अच्छे घोड़े पैदा होते हैं। अत्रि स्मृ०

७।२ कम्बोज देश है। उसके रहनेवाले कम्बोज कहे जाते हैं।

कलिङ्ग—१. नन्दलाल डे पृ० ८५ उत्तरीसरकार। यह एक देश है जो उड़ीसा के दक्षिण, द्रविड़ के उत्तर तथा समुद्र के तट पर है। यह महानदी और गोदावरी के बीच मे था। इसके मुख्य नगर मणिपुर, राजपुर या राजमहेन्द्री थे। (महाभा० आदि २१५ शान्ति प० अ० ४) महाभा० काल मे उड़ीसा का अधिक भाग कलिग मे था। उसकी उत्तरी सीमा वैतरणीनदी थी। (महाभा० वन० अ० ११३) कालिदास के समय मे उत्कल (उड़ीसा) और कलिंग भिन्न भिन्न राज्य थे। रघुवंश स० ४ ईशा के पूर्व तीसरी शताब्दी मे अशोक की मृत्यु के बाद यह धीरे-धीरे स्वतंत्र हो गया तथा अपनी स्वतन्त्रता को इसने कनिष्क के काल तक स्थिर रखा।

२. रैप्शन के मत मे यह महानदी और गोदावरी के बीच मे था। ऐन्शियन्ट इण्डिया पृ० १६४ (जा० डि०)

३. कनिगहम के मत मे यह देश गोदावरी के दक्षिण पश्चिम के मध्य तथा इन्द्रावती नदी की गौलिया शाखा के उत्तर-पश्चिम के मध्य का भाग था। कनिगहम की ऐशियन्ट जाग्राफी पृ० ५१६। (जा० डि०)

४. कनिगहम की ऐन्शियन्ट जाग्राफी पृ० ५९० सातवीं शताब्दी मे की-लिग-किया अथवा कलिग राज्य की राजधानी गंजाम से १४००-१५०० ली अथवा २३३-२५० मील दक्षिण-पश्चिम मे स्थित थी। इसकी स्थिति और दूरी या तो गोदावरी नदी पर स्थित 'राजमहेन्द्री' या समुद्रतट पर स्थित कोरिंग की ओर संकेत करती है। प्रथम गंजाम से २५१ मील

दक्षिण-पश्चिम मे और द्वितीय उसी दिशा मे २४६ मील पर स्थित है। क्योंकि प्रथम के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह इस प्रदेश की बहुत दिनों तक राजधानी रही है। अतः मैं समझता हूँ कि यह वही स्थान होगा जिसे चीनी यात्री ने देखा था, कलिग की प्रथम राजधानी कहा जाता है। यह कलिंगपटम् के २० मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित श्रीककोल या चीककोल रहा है। राज्य का विस्तार ५००० ली या ८३३ मील तक था। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं है, किन्तु यह पश्चिम में आन्ध्र से और दक्षिण में धनककट से मिला हुआ था। अतः इसकी सीमान्तरेखा दक्षिण-पश्चिम में गोदावरी नदी और उत्तर-पश्चिम में इन्द्रावती नदी की गौलिया शाखा के पीछे नहीं हो सकती। इन सीमाओ के अन्तर्गत कलिग का क्षेत्र लगभग ८०० मील होगा। देश के इस विस्तृत प्रदेश में मुख्य आकृति (रूप) महेन्द्रपर्वतमाला है, जिसने कि महाभारत के रचनाकाल से वर्तमान समय तक अपना नाम ज्यो का त्यों अपरिवर्तित रूप में सुरक्षित रखा है। इस पर्वतश्रेणी का ऋषिकुल्या नदी के उद्गम स्थान के रूप में विष्णुपुराण में भी उल्लेख है, क्योंकि यह गंजाम की नदी का बहुत ही प्रसिद्ध नाम है। महेन्द्रपर्वतो की महेन्द्रमलय-श्रेणी से तुरन्त ही समानता स्थापित की जा सकती है, जो गंजाम को महानदी की घाटी से विभक्त करती है। राजमहेन्द्री वेङ्गी के चालुक्य राजकुमारो की छोटी या पूर्वी शाखा की राजधानी थी, जिसका शासन उड़ीसा की सीमाओं तक फैला हुआ था। वेङ्गी के राज्य की स्थापना वेङ्गीपुर की प्राचीन राजधानी के हस्तगत होने से लगभग सन् ५४० ई० में

हुई थी, जिसके अवशेष वेङ्गी में अब भी उपस्थित हैं, जो एल्लूर से ५ मील उत्तर और राजमहेन्द्री से ५० मील पश्चिम-दक्षिण में स्थित है। ७५० ई० के लगभग बेंगी के राजा ने कलिंग को जीत लिया था, जिसने बहुत शीघ्र ही राजमहेन्द्री को अपनी राजधानी बनाया।

प्लिनी ने कलिगों का उल्लेख किया है कि वह भारतवर्ष के पूर्वी तट पर मण्डेई, मल्ली और प्रसिद्ध पर्वत मलयस् के नीचे स्थित है। इस पर्वत का ऐक्य कदाचित् गंजाम की 'ऋषि-कुल्या' नदी के उद्गमस्थान पर स्थित उच्च पर्वतश्रेणी से स्थापित किया जा सकता है, जो अब भी महेन्द्रमाला अथवा महेन्द्रपर्वत कहलाता है। दक्षिण की ओर कलिगोप्रदेश (राज्य) कलिंगोन अन्तरीप और दण्डगुड या दण्डगुल के कस्बे तक, जो गंगा के मुहाने से ६२५ रोमन मील या ५७४ ब्रिटिश मील दूर कहा जाता है, विस्तृत है। दूरी और नाम, ये दोनों ही कोरिंगा के बड़े बन्दरगाह की ओर कोरिंगोन के अन्तरीप के सदृश संकेत करते हैं, जो गोदावरी नदी के मुहाने पर भूमि के उभड़े हुए बिन्दु पर स्थित है। दण्डगुड या दण्डगुल के कस्बे को जिसे मैं बौद्ध वृत्तान्तो (वर्णनों) का दन्तपुर समझता हूँ, कलिंग की राजधानी होने के नाते अनुमानतः राजमहेन्द्री से, जो कोरिंग से केवल ३० मील उत्तर पूर्व है, समानता स्थापित की जा सकती है। यूनानी I और II की अत्यधिक समानता के कारण मैं इसको असंभव नहीं समझता कि यूनानी नाम 'दाण्डपुल' रहा होगा, जो कि लगभग दन्तपुर ही है। किन्तु इस (प्रस्तुत) विषय में बुद्ध का दाँत अथवा

दन्तावशेष प्लिनी के समय तक अवश्य ही कलिग के मन्दिर मे स्थापित कर दिया गया होगा। इसकी पुष्टि बौद्ध वर्णनो से होती है कि बुद्ध का बायाँ सुवा दाँत उनकी मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही कलिङ्ग लाया गया था, जहाँ कि तत्कालीन शासक सम्राट् ब्रह्मदत्त ने उसकी मन्दिर मे संस्थापना की थी। दन्तपुर के विषय मे कहा जाता है कि वह एक बड़ी नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित रहा' है, जो केवल 'गोदावरी' ही हो सकती है। क्योंकि कृष्णा कलिङ्ग मे न थी। राजमहेन्द्री की प्राचीन राजधानी जो गोदावरी के उत्तरी-पूर्वी तट पर स्थित है, दन्तपुर की स्थिति को निश्चित करने के लिये केवल यह यथार्थता ही पर्याप्त होगी Plotamov (टालेमी) के ग्रन्थ (Pitundia Metro polis) मे महेन्द्री का नाम संभवत: सुरक्षित है, जिसको कि वह मैसोलस या गोदावरी अर्थात् मसुलीपटम् की नदी के निकट बतलाता है।

कलिङ्ग की राजधानी का इससे भी प्राचीन नाम सिहपुर था, जो उसके संस्थापक सीलोन (लंका) के सर्वप्रथम उल्लिखित सम्राट् विजय के पिता सिहबाहु के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी स्थिति को सूचित नहीं किया गया है, किन्तु इस नाम का एक बहुत बड़ा कस्बा गंजाम से ११५ मील पश्चिम अब भी लालुग्ल नदी पर स्थित है, जो कि सम्भवत: वही स्थान है।

चेदि के कलचुरि अथवा हैहयराजवंश के शिलालेखों में राजा लोग कालञ्जरपुरराज और त्रिकलिङ्गराज की उपाधियों को धारण करते है। कालंजर बुन्देलखण्ड में एक बहुत ही प्रसिद्ध पर्वतीय दुर्ग है और त्रिकलिङ्ग या तीनकलिङ्ग अवश्य

ही कृष्णा पर धानक या अमरावती, आन्ध्र या वारङ्गल और कलिंग या राजमहेन्द्री के तीन राज्य होंगे। सम्भवत: त्रिकलिंग का नाम प्राचीन है, क्योंकि प्लिनी कलिंगो से पृथक् मक्को-कलिंगो और गंगारिड् कलिंगो लोगों का उल्लेख करता है, जब कि महाभा० तीन भिन्न अवसरों पर कलिंग लोगों का उल्लेख करता है। प्रत्येक बार भिन्न-भिन्न लोगो के योग में करता है। इस प्रकार त्रि-कलिंग की तेलिगान के बृहत् प्रान्त से समानता स्थापित हो जाती है। अत: ऐसा होना सम्भव प्रतीत होता है कि तेलिंगान 'त्रिकलिंगान या त्रिकलिंग' का ही केवल किञ्चित् संक्षिप्त रूप हो। मैं समझता हूँ कि महादेव के त्रिलिंग या तीन लिंग से ही इस नाम की उत्पत्ति हुई है। किन्तु प्लिनी के द्वारा मक्को-कलिंगो और गंगारिड-कलिंगो का उल्लेख यह प्रकट करता है कि तीन कलिंग मेगास्थनीज के समय में प्रसिद्ध रहे होंगे, जिससे कि 'प्लिनी' ने अपने भारतीय भूगोल मे प्रमुखत: नकल की है। अत: यह नाम दक्षिण भारत में महादेव की लिंगोपासना से भी अधिक प्राचीन होगा। ऐर राजा के खण्डगिरि-शिलालेख में कलिंग का तीन बार उल्लेख है, जो दूसरी शताब्दी ईशापूर्व से अधिक बाद का नहीं हो सकता और इससे भी कुछ अधिक पूर्व शाक्यमुनि के जीवनकाल में उत्तम मलमल बनाने के लिये वह कलिंग प्रसिद्ध था और उसकी मृत्यु हो जाने पर यह कहा जाता है कि कलिंगराज को बुद्ध का एक दाँत प्राप्त हुआ था, जिसपर उसने एक बहुत ही सुन्दर स्तूप बनवाया।

वस्तुत: यह देश दक्षिण देश में पूर्वसमुद्र के तटपर है,

जो पुराणों[1] में दक्षिणसमुद्र माना जाता है। इस देश की पूर्वी सीमा समुद्र है और पश्चिमी सीमा अमरकण्टकपर्वत है जो पुराणों[2] में कलिंग देश के पश्चिमार्द्ध में लिखा है। इसकी उत्तरी सीमा उड़ीसा से मिली है, जो ऋषिकुल्या[3] नामक नदी से विभक्त की जाती है। ऋषिकुल्या नदी आज भी गञ्जाम जिले में इसी नाम से प्रसिद्ध है, जो महेन्द्रपर्वत से निकलती है। इसकी दक्षिणी सीमा आन्ध्रदेश था। इसमें महेन्द्रपर्वत तथा हाथियों की खान प्रसिद्ध है। दान-पत्रों में महेन्द्र के ऊपर गोकर्णस्वामी[4] महादेव का वर्णन मिलता है, जो उस समय वहाँ के राजाओं के इष्टदेव थे। बौधायन श्रौतसूत्र २।५।५ मे इसका वर्णन मिलता है। इसकी राजधानियाँ महाभारत के समय मे राजपुर[5] और दन्तवक्र[6] या दन्तकूर[7] नाम से प्रसिद्ध थीं। उनमें प्रधान राजधानी अन्तिम ही प्रतीत होती है, क्योंकि सहदेव[8] की विजय यात्रा में इसी

---

(१) अग्नि० १०८।२०, मार्क० ५३।७

(२) वायु० उ० १५।१५ से प्रारम्भ, पद्म० सृ० १७।२०७ से प्रारम्भ, मत्स्य० १८६।१२ से प्रारम्भ

(३) ब्रह्म० १०८।२८

(४) इण्डि० आ० १८।१६७

(५) महाभा० शान्ति० ४।३

(६) महाभा० उद्यो० (म०) ४८।७६

(७) महाभा० (चि० नि०) ४२३।२४ (सु०) २३।२३

(८) महाभा० उद्यो० (म) ४८।७६

राजधानी में कलिग के सब राजे लोग मिलकर लड़े थे। समय-समय पर कलिग नगर इत्यादि राजधानियाँ बनीं।

इस देश की राजधानी पर विचार—

'राजपुर' इसको नन्दलाल डे और कनिगहम भी राजमहेन्द्री मानते हैं और यह मत उचित भी प्रतीत होता है।

दन्तकूर या दन्तवक्त्र इनपर विचार करना है। इन्हीं दोनों शब्दो से दन्तपुर नाम पड़ा। कनिगहम ने दन्तगुड़ या दण्डगुल कस्बे को दन्तपुर माना है।

नन्दलाल डे जा० डि० पृ० ५३ मे कहते हैं कि दन्तपुर यह कलिग की पुरानी राजधानी है। दाढ़ धात्वंश (टर्नल का एकाउन्ट आफ दी टूथरेलिक इन सीलोन जे० एस्० बी० १८३७ पृ० ८६०)

कुछ लोगो के मत के अनुसार यह उड़ीसा की जगन्नाथपुरी है। यह वही स्थान है जहाँ पर कि लंका जाने से पहले बुद्ध का दाँत रखा गया था। बुद्ध का बायाँ पैना दाँत ब्रह्मदत्त कलिग-नरेश लाये थे और उसको यहाँ पर प्रतिष्ठित किया था। दाढ़ धात्वंश के अनुसार दाँत बुद्ध की चिता से खेम के द्वारा खींचा गया था, जो बुद्धदेव के शिष्य थे। उन्होने दाँत ब्रह्मदत्त को दिया। ब्रह्मदत्त ने उसको एक मन्दिर में रख दिया। बहुत दिनों तक उस दाँत की दन्तपुर मे पूजा हुई। कलिग के राजा गुहशिव चौथी शताब्दी मे पाटलिपुत्र ले गये। कहा जाता है कि दाँत ने पाटलिपुत्र मे बड़ा चमत्कार दिखलाया। जैनी अथवा निर्ग्रन्थियों को लज्जित करने के बाद वह दाँत फिर दन्तपुर मे लाया गया। राजा पाण्डु ने वह दाँत दन्तपुर से पाया—(जे० एस०

बी० १८३७ पृ० ८६८-१०५९) यह गुहशिव के द्वारा दन्तपुर लाया गया तथा पुराने मन्दिर में फिर स्थापित किया गया। गुहशिव और उसके भतीजे खिरधार के युद्ध में गुहशिव की मृत्यु हुई। खिरधार उत्तरी देश का राजा था, जो दाँत को लूटने के लिए ही दन्तपुर आया था। गुहशिव की लड़की हेममाला तथा उसके पति दन्तकुमार उज्जैन के राजकुमार तथा गुहशिव के भांजे भी थे। उन्होंने कीर्तिश्री मेघवर्ण (ए० डी० २९८-३२६) के राज्य में अनुराधपुर मे पवित्र लेखों की रखा की थी। उन्होंने ही दाँत को सीलोन भेज दिया। (टेन्नेन्ट का सीलोन, टर्नल का टूथ रेलिक आफ दी सीलोन, दाढ़ धात्वंश का अनुवाद जो मुतकुमार स्वामी के द्वारा किया गया है तथा टर्नल का दाढ़ धात्वंश जे० ए० एस्० बी० १८३७ पे० ८६६ मे) यह दाँत अब कैण्डी श्रीवर्धनपुर के मलिगवा मन्दिर में रखा है। दाँत अवशेष के लिए जो समारोह कैण्डी में हुआ, उसे महावंश अ० ८५ में देखो। बाद मे यह राजमहेन्द्री को, जो गोदावरी के तट पर है, तथा मिदनापुर के दांतन को दन्तपुर बतलाया गया है। परन्तु अब यह निश्चित है कि दन्तपुर उड़ीसा मे पुरी नगरी है। इस विश्वास के अनुसार कि कृष्ण जरा के द्वारा मारे गये थे, और उनकी हड्डियाँ एकत्र करके एक डिब्बे में तब तक रखी गयी थीं जब तक कि विष्णु भगवान् के आदेश से राजा इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ की मूर्ति में उन हड्डियो को नहीं रखा। (गैरट की क्लासिकल डिक्शनरी आफ इण्डिया अन्डर जगन्नाथ वार्ड, हिस्ट्री आफ दी हिन्दूज् १।२०६)

वस्तुतः दन्तपुर कलिङ्ग में था। इसमें प्रमाण यह है कि

यह दन्तपुर शब्द दन्तकूर या दन्तवक्त्र से बना है। इससे यही दन्तपुर कलिङ्ग की राजधानी है। लोक मे जैसे सत्यभामा शब्द सत्यभामा का नाम है, उसी प्रकार सत्या और भामा भी सत्य-भामा के नाम होते है। महर्षि कात्यायन ने एक वार्त्तिक "विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पदयोर्लोपो वा वक्तव्यः" (बिना प्रत्यय के भी पूर्व और उत्तर पद का लोप विकल्प से कहना चाहिये) बनाया है। उदाहरण मे देवदत्त—देव, दत्त, यह एक ही नाम के होते हैं। उसी प्रकार यहाँ भी दन्तकूरपुर इसका नाम था, यह प्रतीत होता है। महाभारत मे छन्दोभंग के भय से पुर छोड़ दिया गया, केवल स्थान का नाम दन्तकूर या दन्तवक्त्र लिखा गया। उसका नाम दन्तपुर, कूरपुर और दन्तकूरपुर हो सकता है। उसी प्रकार वक्रपुर, दन्तपुर और दन्तवक्त्रपुर हो सकता है। इससे यह निश्चयतः वही दन्तपुर है, जिसका महाभारत में वर्णन है। यह स्थान बुद्ध के जीवन मे वर्तमान था। क्योंकि महावस्तु अवदान ३६१ मे लिखा है कि कलिङ्ग मे दन्तपुर नगर है। बुद्ध स्वयं वक्ता हैं, इससे यह निश्चित है कि बुद्ध के समय मे यह नगर वर्तमान था।

दलवंश नामक ग्रन्थ में लिखा है "बुद्ध के एक बायें दाँत को एक शिष्य कलिग मे ले गया, उसपर उसने एक स्तूप बनवाया। उसी दाँतवाले स्तूप के पास लोग रहने लगे, इसीलिये उस स्थान का नाम दन्तपुर हो गया। धीरे-धीरे बढ़ने से नगर हो गया। उसमें जहाँ पर बौद्ध लोग रहते थे, वहाँ पर कुछ लंकानिवासी दाँत का चमत्कार देखकर बस गये थे। ब्राह्मणों ने जब उस स्तूप को तोड़ दिया तब बौद्ध उस दाँत को लेकर

सीलोन चले गये।" महा० अवदान बुद्ध के जीवन में इस नगर का होना कह रहा है और दाढ़धात्वश ग्रन्थ बुद्ध के मरने के बाद इसका होना मान रहा है, दो में एक अवश्य असत्य है। हमारे सिद्धान्त में महाभारत के अनुकूल होने के कारण महा. अवदान का लेखक सत्य कह रहा है। दाढ़धात्वंश ग्रंथ के लेखक ने महा. अवदान नहीं देखा था, इससे उसने मनमानी उड़ाई और उसके आधार पर जो लेख लिखे गये, वे सब निस्सार हैं। यह स्थान चिकाकोल जिले में सिद्धान्तम् के समीप एक बड़ा-सा भूखण्ड पड़ा है, जिसे लोग आजकल भी दन्तवक्त्र के किला की भूमि कहते हैं, सिद्धान्तम् ग्राम है। उस स्थान पर अब भी किसानों को जोतते समय रत्न और सिक्के इत्यादि मिलते हैं। जो लोग दन्तपुर को जगन्नाथपुरी कहते हैं और उसके लिए प्रमाण-रहित घृणित अटकलबाजी करके इस पवित्र पुरी को एक श्मशानभूमि के नाम से बदनाम करते हुए हमारी सभ्यता पर चोट पहुँचाते है, वह उनकी कोरी कल्पनामात्र है। जो लोग इन्द्रद्युम्न के द्वारा श्रीकृष्ण की हड्डियों को जगन्नाथ की मूर्ति में रखने को कहते हैं, उनको स्कन्दपु० का 'पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्य' अवश्य पढ़ना चाहिये। यह भी देखना चाहिये कि इन्द्रद्युम्न श्रीकृष्ण से कितने दिनों पहले हुए हैं और उन्होने केवल काष्ठ की मूर्तियाँ बनवाई हैं; न कि उनमें श्रीकृष्ण की हड्डियाँ भरी है। सबसे बड़ी विचित्र बात तो यह है कि ये लोग जगन्नाथरूपी डिब्बी के पेट मे श्रीकृष्णकी हड्डियाँ भरवावें और नाम दन्तपुर रखें। यदि हड्डियों के कारण ही नाम दन्तपुर है तो उसका नाम अस्थिपुर होना चाहिये। इन लोगों ने कितनी बड़ी भद्दी गलती की है,

इसे विद्वान् विचारें। सनातनधर्म में हड्डियाँ किसी भी मनुष्य की पवित्र नहीं मानी जातीं। इसीलिये हिन्दू लोग अपने पूज्य माता-पिता की भी हड्डियाँ नहीं रखते। वे लोग अपने पूज्य की भी हड्डियाँ मन्दिर मे रखेंगे, यह कैसे संभव हो सकता है? बौद्धधर्म बुद्ध की हड्डियाँ और चिता की भस्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है, इसीलिये उस संप्रदाय के मन्दिरों मे हड्डियों का होना और उनकी पूजा होना संभव है। यदि कहें कि पहले जगन्नाथजी का मन्दिर बौद्ध संप्रदाय का ही था और बाद में बौद्ध धर्म की अवनति होने पर सनातनधर्म का मन्दिर हो गया, तो उनको यह भी कहना चाहिये कि जो हड्डियाँ जगन्नाथरूपी डिब्बी मे भरी हैं वे बुद्ध की हैं; न कि श्रीकृष्ण की। इसलिये इनको अपने इस असंबद्ध लेख पर ठंढे दिमाग से विचार करना होगा कि श्रीकृष्ण की हड्डियाँ प्रभास या द्वारका छोड़कर उड़ीसा की जगन्नाथपुरी मे कैसे पहुँचीं? और अस्थिपुर के बदले दन्तपुर नाम कैसे पड़ा? साथ ही; दाँत के सीलोन जाने पर भी ये हड्डियाँ जगन्नाथ के पेट मे कैसे रह गयीं? अतः जगन्नाथपुरी को दन्तपुर बतलाना भ्रममात्र है। जो लोग मिदनापुर के दाँतन को दन्तपुर मानते है, उनका मत इससे ठीक नहीं कि यह स्थान कलिंग से बहुत दूर है।

(कलिगनगर जा० डि० ८५) कलिगनगर उड़ीसा में भुवनेश्वर का प्राचीन नाम था। यह नाम ईसा के बाद सातवीं शताब्दी मे ललाटेन्दुकेशरी के समय मे हुआ था। यह उड़ीसा की राजधानी ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी से छठी अन्तिम शताब्दी के मध्य तक रही (आर० एल० मित्रा की आंटीकिटीज्

आफ उड़ीसा वालूम २ पृ० ६२ और दशकुमारचरित सर्ग ७)। यह मुखलिंगम् के नाम से जानी जाती है। यह एक तीर्थस्थान है। गंजाम जिले के पिलग्रिमगे से २० मील है (एपीग्राफिया इण्डिका ३।२२०)। इसमे कई बौद्ध तथा हिन्दू-चिन्ह अवशिष्ट हैं। मधुकेश्वर महादेव का मन्दिर बहुत पुराना है। सोमेश्वर महादेव का मन्दिर सबसे सुन्दर है। ये पुराने मन्दिर अब भी कई लेख तथा उत्तम नक्कासी से युक्त हैं। समीपवर्ती नगर कटक मे भी कुछ मनोरंजक चिन्ह अवशिष्ट हैं तथा बुद्ध की एक मूर्ति है। परन्तु परलाकिमेडी के कलिंगराज इन्द्रवर्मा सम्बन्धी लेखानुसार गंजाम जिले मे वंशभार नदी के मुहाने पर कलिंगपट्टम् है (इण्डियन आण्टिक्वेरी १६।१८८७ पृ० १३२)। यह के० सी० एच० (१५५७ ए० डी०)। इसको कंश नदी के तट पर बतलाता है, जो कसइ से भिन्न है। कलिंग-नगर कलिंग की साधारण राजधानी का निर्देश करता है, जो भिन्न भिन्न समय मे भिन्न भिन्न स्थानों पर रही। जैसे, मणि-पुर, राजपुर, भुवनेश्वर, पिष्टपुर, जयन्तपुर, सिहपुर, मुखलिंगम् इत्यादि।

कलिङ्ग नगर पर विचार—ए० पी० आ० इ० २३।६५ के प्रारम्भ मे फ्लीट साहब इसको कलिंगपट्टम् मानते हैं, जो गञ्जाम जिले का एक बन्दर है। जी० वी० राममूर्ति का कहना है कि ए० पी० आ० इ० ४।१८७–१८८ में कलिंगनगर कलिंग राजाओ की राजधानी था। इससे वहाँ पर राजधानी के चिन्ह होने चाहिये थे। परन्तु वे कलिंगपट्टम् में कुछ भी नहीं मिलते। यह कहो कि "समुद्र उनको बहा ले गया" तो इस

कथन में प्रमाण की आवश्यकता होगी। गञ्जाम जिले में परलाकिमेडी नामक जमींदारी है। उससे करीब २० मील दूर वंशधारानदी के बायें तट पर मुखलिगम् नामक एक तीर्थ है। वहाँ मधुकेश्वर, भीमेश्वर और सोमेश्वर नामक तीन महादेवों के मन्दिर हैं। उनमे मधुकेश्वर नाम के मन्दिर के खम्भों और दीवालो पर कुछ लेख है। वहाँ पर टूटे हुए मकानों और मन्दिरों के चिन्ह करीब दो मील दक्षिण ओर नगरकटकम् नामक ग्राम तक चले गये है। वह नरसन्नपेट ताल्लुके मे है। वहाँ पर बहुत से लेख मिले हैं, जो छापे भी गये हैं। मधुकेश्वर और अनिश्रंक भीमेश्वर के मन्दिर के लेखो मे चोड़ अनन्तवर्म गंगदेव के समय के राजवश और रईसो के दिये हुए दानों के वर्णन हैं। उनमे "कलिगावनीनगरे श्री मन्मधुकेश्वराय शिवाय" और "कलिगदेशनगरे श्रीमन्मधुकेश्वराय शिवाय" लिखा मिलता है। तिलगु के लेखो मे "नगर मुनमधुकेश्वर देवरकु" और "नगरानवीटि श्री मधुकेश्वर देवरकु" लिखा मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि जहाँ ये मन्दिर थे, वह स्थान नगर या कलिगदेशनगर कहा जाता है। क्षेत्रमाहात्म्य मे ४ नाम है—मधुकेश्वर, गोविन्दकानन, जयन्तपुर और मुखलिङ्गम्। मधूक वृक्ष के पास शिव के मिलने से मधुकेश्वर नाम पड़ा। ए० पी० ग्रा० इ० २३।७२ मे कलिङ्गनगर के अमरपुरानुकारी और सर्वर्तुसुख विशेषण दिये गये हैं। पृष्ठ ७६ मे अनन्तवर्मा वज्रहस्त का यहाँ बैठकर वराहवर्तनी विषय मे नवग्राम के दान का वर्णन है। ए० पी० ग्रा० इ० ३।१८ कलिङ्गनगर अनन्तवर्मा की राजधानी है। इ० आ० १८।१६४ कलिङ्गनगर त्रिकलिङ्गा-

धिप अनन्तवर्मा चोडगङ्गदेव की राजधानी है। यहाँ पर बैठकर उसने ससवा विषय के चाकिवाडाख्य ग्राम को दिया। ए० पी० ग्रा० इ० ३।१२८ विजयकलिङ्ग नगर यह कलिग देश में गांग-कुलावतंस महाराज इन्द्रवर्मा की राजधानी है। सिलेक्शन० पृष्ठ २०७ कलिगनगरी यह खारवेल की राजधानी है। इसमे खिवीर और शीतल तड़ाग है। महाराज्याभिषेक के बाद खारवेल ने वातहत कलिङ्गनगरी के गोपुर और प्राकार का संस्कार कराया और खिवीर और शीतल तड़ागपाली को बँधवाया। जो लोग भुवनेश्वर को कलिगनगर मानते हैं, वह ठीक नहीं। क्योंकि भुवनेश्वर उड़ीसा मे कलिग की दिशा मे भी नहीं है, प्रत्युत वह उड़ीसा मे है। जो लोग महाभारत आदि० २१५ का प्रमाण देकर मणिपुर को कलिग मे मानते है और उसका आधुनिक रत्नपुर से ऐक्य प्रतिपादन करते हैं, वह ठीक नहीं। महाभा० आदि २१५ मे खाण्डवदाह है, वहाँ मणिपुर का संभव नहीं। किसी पाठ मे शायद हो भी तो वह अर्जुन की तीर्थयात्रा मे होगा। महाभा० (सु०) आदि० २०७।१३ मे अर्जुन की तीर्थ-यात्रा के वर्णन मे मणलूर शब्द आया है, (मु०) मे भी वही पाठ है, (चि०) मे मणिपुर शब्द आया है, वह सभी पाठो मे पाण्ड्यदेश मे लिखा है। उसका कलिंग मे संभव नहीं। जो लोग वैतरणीनदी को कलिग की सीमा मानते है, वह भी ठीक नहीं। क्योंकि महाभा० (सु०) वन० ११४।४ मे कलिंग देश में वैतरणीनदी को लिखा है, जो कलिग के मध्य में है। जो लोग कलिग की सीमा महानदी और गोदावरी को मानते हैं, उनके मत में जगन्नाथ और भुवनेश्वर भी कलिग मे मानने

पड़ेगे। उड़ीसा के लिए स्थान खोजना पड़ेगा। जो महाभा० मे उड़ीसा का अधिक भाग कलिग में कहते हैं, उन्होंने महाभा० पढ़ा नहीं।

(त्रिकलिङ्ग)—(१) जा० डि० पृ० २०५ 'तिलिगाना त्रिकलिग कुंभी के ताम्रपत्र में वर्णित है (जे० एस० बी० १८३९ पृ० ४८१)। इसमे कलचुरी राजवंश का वृत्तान्त है। प्लिनी के अनुसार त्रिकलिंगे मे कलिंगे, मैक्को कलिंगे और गंग राइडेस कलिंगे के सूबे शामिल थे (कनिगहम् की ऐन्सियन्ट जाग्राफी आफ इण्डिया पृ० ५१९ से प्रारम्भ जे० एस० बी० १८३७ पृ० २८६)। कलिंगे मुख्य कलिग के निवासी थे। मैक्को कलिंगे मध्यकलिग या उड़ीसा के निवासी थे। गंग राइडेस् कलिंगे गांग, राढा या गंगातट के निवासी थे। उनकी राजधानी गांगे या सप्तग्राम थी (सप्तग्राम सुह्म तथा राढा देखिये)। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण कोशल यानी मध्यप्रदेश के राजा त्रिकलिगाज् कहलाते थे, जिनके राज्य में प्रमाणतः दक्षिणकोशल. पटनास्टेट तथा मध्यप्रान्त शामिल थे (एपीग्राफिया इण्डिका ३।३२३-३५९, जे० एस० बी० १९०५ पृ० १)। कनिगहम् के मत में तीन अर्थात् धानकटक या अमरावती जो कि कृष्णा के तट पर है, आन्ध्र या वारंगल और कलिग या राजमहेन्द्री हैं (मैक क्रिन्डलस टालेमी पृ० २३२)।

(२) प्रोफेसर सुब्बाराव–यह त्रिकलिगदेश उत्तर में गंगा तक और दक्षिण में गोदावरी तक था, यह मानते है। (ए० पी० ग्राफिया इण्डिका २३।६९)

(३) मि० जी० रामदास का कहना है कि त्रिकलिग गंजाम

की महेन्द्र पहाड़ियो से पश्चिम की ओर ऊँचा स्थान है। महानदी के ऊपर से लेकर लंगुलीयनदी के उद्गम तक।

(४) प्रोफेसर आर० सी० मजुमदार एम० ए० पी० एच० डी० ढाका का मत है (ए० पी० ग्राफिया इण्डिका २३।६९) वज्रहस्त को त्रिकलिगराज की पदवी मिली। त्रिकलिग के माने पूरे कलिग से लगाये जाते है। और प्रोफेसर सुब्बाराव इस वज्रहस्त की पदवी से यह पता लगाते हैं कि वह कलिगदेश का चक्रवर्ती राजा था और यह त्रिकलिकदेश उत्तर मे गंगा तक और दक्षिण मे गोदावरी तक था (जर्नल रायल एसियाटिक सोसाइटी वालूम ६।२०३)। यह बात प्रोफेसर साहब की असंभव है। पूर्वी चालक्यो के लेखो से इस बात पर कुछ प्रकाश पड़ता है। चालुक्य भीम प्रथम के (मुसलीपटम् ८८८-९१८ ए० डी०) प्लेटो से और मल्लपदेव के पिठापुरम् पिलर-लेख से यह पता चलता है कि पूर्वी चालुक्य राजा विजयादित्य तृतीय ने कलिग के राजा गंग से जबर्दस्ती सोना ले लिया और कलिंग के राजा द्वारा दी गई हाथियों की भेंट को स्वीकार किया। अम्म प्रथम (९१८-९२५ ए० डी०) के मुसलीपटम् के प्लेट से पता चलता है कि विजयादित्य चतुर्थ (९१८ ए० डी०) ने वेंगीगण्डल पर जो त्रिकलिग वन से मिला है, राज्य किया (त्रिकलिंगाटवीयुतम्)। चालुक्य भीम द्वितीय विक्रमादित्य ने (९२५ ए० डी०) वेगी और त्रिकलिग पर राज्य किया। अम्मराज द्वितीय ने भी त्रिकलिग सहित वेंगी पर राज्य किवा। लेकिन बाद मे उसने पैतृक स्थान छोड़कर कलिग में निवासकर १४ वर्ष तक कलिग पर राज्य

किया। दानार्णव ने भी वेंगी के निकल जाने के बाद तीन वर्ष तक कलिंग मे राज्य किया। यह दशवीं सदी के लेखों से पता चलता है कि त्रिकलिग कलिग से भिन्न है। और त्रिकलिग ऐसी मुख्य जगह नहीं है, जैसा कि कलिंग। इससे प्रोफेसर सुब्बा का मत गलत है। मिस्टर जी० रामदास का कहना है कि त्रिकलिग गंजाम की महेन्द्र पहाड़ियो से पश्चिम ओर ऊँचा स्थान है। महानदी के ऊपर से लेकर लंगुलीयनदी के उद्गम तक (जनरल आफ विहार उड़ीसा रिसर्चसोसइटी १४।५४७)। जी० रामदास को यह पता नहीं है कि त्रिकलिंग और कलिग चालुक्य शिलालेखो मे भी आये हैं। लेकिन उनका विचार ठीक जान पड़ता है। हालाँकि हमको कुछ दक्षिण चलना पड़ेगा। यह त्रिकलिग कलिग नहीं है। प्रत्युत कलिग के पश्चिम की ओर एक पर्वतीय राज्य है।

त्रिकलिङ्ग का विवेचन—

ए० पी० ग्रा० इ० २३।७२ इसमे त्रिकलिङ्गाधिप अनन्तवर्म वज्रहस्त का कलिगनगर में स्थित होकर वराहवर्तनी विषय में नवग्राम के दान का वर्णन है। ए० पी० ग्रा० इ० २५।२८७ त्रिकलिग देश के स्वामी इन्द्रवर्मा ने दन्तपुर मे स्थित हो वोंखल-भोग मे जिजगिग्राम को दो ब्राह्मणों के लिये दिया। इस दान-पत्र से इन्द्रवर्मा जो त्रिकलिग का राजा है, उसने कलिंग की राजधानी दन्तपुर मे स्थित हो दान दिया। इससे कलिग त्रिकलिग में था, यह निश्चित है और कलिग में दान भी त्रिकलिंगाधिप को कलिंग का स्वामी होना कह रहा है। ए० पी० ग्रा० इ० २३।३५६ इसमे त्रिकलिगाधिप महाभव गुप्त-

राज देव का कोशल के लुप्तुरा खण्ड मे गोत्तईकेला ग्राम के दान का वर्णन है। इससे कोशल का त्रिकलिग में होना निश्चित है। बी० सी० एच० छब्बा एम० ए० का कथन है—"राय बहादुर हीरालाल लुप्तुरा को लितुंगा मानते है, जो पटना प्लेट छठे वर्ष का है। लिप्तुंगा पटनास्टेट मे बोलंगीर से ६ मील दक्षिण है। बी० सी० मजूमदार तुप्तर और तुमरनिखिग को, जो सोनपुरस्टेट मे है, उनमे एक लुप्तरा है, यह मानते है। मेरी समझ मे तुप्तुरा गाँव पहले का लुप्तुरा खण्ड है और गोत्तइकेला मिस्टर सरकार सेक्रेटरी सोनपुर का गोत्तरकेल है, जो सोनपुरनगर से करीब ३ मील दूरी पर है।

आर० डी० बनर्जी के मत में कलिंग, तोसल और उत्कल त्रिकलिग है। ए० पी० ग्रा० इ० २५।२८७ लेख के प्रारम्भ में डा० आर० जी० बसक उड़ीसा, कोगोड और कलिग को त्रिकलिग मानते हैं। ए० पी० ग्रा० इ० २५।२२७ लेख के प्रारम्भ मे मि० जी० रामदास कलिग, दक्षिणकोशल और उनके मध्य की भूमि को त्रिकलिग मानते है।

वस्तुतः ए० पी० ग्रा० इ० ३।३५६ इसमे त्रिकलिंगाधिप महाभव गुप्तराज देव का कोशल के गौड़सिमिणिल्लि ग्राम के दान का वर्णन है। इससे भी कोशल त्रिकलिग मे आता है। ए० पी० ग्रा० इ० ११।९४ में त्रिकलिंगाधिप महाभव गुप्तराज देव का लुप्तुरा-खण्ड के वक्रतेतली ग्राम के दान का वर्णन है। लुप्तुरा-खण्ड कोशल मे था, इससे यह भी कोशल का त्रिकलिंग मे होना निश्चय कराता है। ए० पी० ग्रा० इ० २३।२५१ में त्रिकलिगाधिप महाभव गुप्तराज देव का कोशला के लुप्तरा-खण्ड में

गोइत्तकेलाग्राम के दान का वर्णन है, यह भी कोशल को त्रिकलिग मे होने का निश्चय करता है। इ० आ० ५।४६ त्रिकलिगाधिप महाभव गुप्तराज देव के कोशलदेश के योधा विषय मे दारण्डाग्राम और खलाण्डर ग्राम के दानो का वर्णन है। यह कोशल को त्रिकलिग मे निश्चित करता है। ए० पी० ग्रा० इ० ३०८।१४१ यह दानपत्र त्रिकलिगाधिप महाभव गुप्तराज देव के ओड्रदेश के कलशोडा विषय मे प्रतिबद्ध सतल्लमा ग्राम को बतलाता है और महाभव गुप्तराज देव का दूसरा नाम जनमेजय भी कहता है। इससे उड़ीसा भी त्रिकलिग मे था, यह निश्चित होता है। इस प्रकार त्रिकलिगदेश कलिग, कोशल और उड़ीसा का नाम प्रतीत होता है। परञ्च इस देश में चेदि देश भी था, कुछ दानपत्र ऐसा निश्चित करते है। वे निम्नलिखित है:—ए० पी० ग्रा० इ० ११।१४५ त्रिकलिगाधिप कर्णदेव ने कर्णतीर्थ मे पड़ाव डालकर गंगा के अर्घतीर्थ मे स्नानकर कोशम्बपत्तला के चन्द्रपहा ग्राम को दिया। इसी दानपत्र में कर्णदेव का वर्णन चेदि के राजा के रूप मे भी है। ए० पी० ग्रा० इ० २१।९५ त्रिकलिगाधिप राज्यत्रयाधिप त्रिपुरी-स्वामी जयसिह ने त्रिपुरी में स्थित हो अगरा ग्राम को दिया। इसमे त्रिपुरी राजधानी लिखी है, वह चेदि को त्रिकलिग में सम्मिलित करती है। इ० आ० १२।२१२ इसका स्वामी राज्य-त्रयाधिप नरसिह देव है। इ० आ० १७।२२६ यह त्रिकलिगा-धिप जयसिह देव का राज्य है। इसमे कक्करेडिका नगरी और खण्डगहापत्तला है, उसमे अखडापाडग्राम है। विद्ध-शालभञ्जिका पृ० १३९ इसमें विद्याधरमल्ल कर्पूरवर्ष की

राजधानी रेवाकूल में लिखी है। हमारी समझ में लेखकों के प्रमाद से 'त्रिपुरी' का 'तृपुरी' हुआ होगा और 'तृपुरी' से 'नृपुरी' हुआ। एक ही दानपत्र मे पहले राजाओं के वर्णन के साथ कर्णदेव को चेदि का राजा लिखा है। बाद में दान के साथ त्रिकलिंगाधिप लिखा है और गजपति, अश्वपति, राज्यत्रयाधिपति लिखा है। इससे चेदि भी त्रिकलिग देश में अवश्य था। इ० आ० १७।२२९ त्रिकलिग देश मे कूयिसवपालिसपत्तला है, उसमें छिदौड़ा ग्राम को कक्करेडिकाधिप सलक्ष्मणदेव वर्मा ने ब्राह्मणो को दिया। इस प्रकार ओड़, कलिग, कोशल और चेदि चारो त्रिकलिग शब्द से लिये जाते है। 'त्रिभिः सहितः कलिंगः' इस विग्रह से त्रिकलिग शब्द बनता है और 'तीन के साथ कलिग' यह त्रिकलिग शब्द का अर्थ होता है।

'त्रिकलिग' शब्द 'महादेव के लिगों से बना है, यह भी संभव नहीं। इसमें 'कलिग' शब्द है, न कि 'लिग' शब्द। दक्षिण मे गोकर्ण[1], रामेश्वर[2], अरुणाचला[3], कालहस्तीश[4] का होना मिलता है और रामायण, महाभा० और स्कन्द० आदि मे मिलता है, तब महादेव का पूजन दक्षिण देश

(१) महाभा० आदि० (म०) २०४।६०।।, (चि०) २३७।३८, (नि०) २३७।३८, महाभा० आरण्य० (चि०) ८५।२५, (म०) ६८।२४।।, नारदीय० उत्तर० ७४।३३, शिव० महा० को० रु० ८।४ यह मद्रास में है।

(२) वाल्मी० यु० (गु०) १२३।२०

(३) स्कन्द० माहे० अरु० पू० २।६१ से प्रारभ, यह मद्रास में है।

(४) स्कन्द० यज्ञ० सूत० ३।४३

में त्रिकलिंग शब्द से नवीन है, यह कथन कैसे प्रमाणिक माना जा सकता है ? त्रिकलिंग शब्द प्राचीन ग्रन्थो में न मिलने से पुराणों की उत्पत्ति के बाद संसार मे प्रचलित हुआ और नवीन कवियो ने उसे अपनाया—ऐसा प्रतीत होता है ।

डा० मजूमदार का मत ठीक नहीं, क्योकि वह त्रिकलिंग देश को एक छोटा-सा देश मानते हुए उसको कलिंग की अपेक्षा प्रतिष्ठित नहीं मानते । परन्तु चेदिदेश के राजे त्रिपुरी में बैठे हुए अपने को त्रिकलिंगाधीश कहने मे प्रतिष्ठित मानते हैं, और जब कि त्रिकलिंग से कलिंग, उड़ीसा, कोशल और चेदि लिये जाते है तब भी त्रिकलिंगाटवी वेंगी के समीप हो सकती है ।

कलिंग की सीमा उड़ीसा से लगी है । इससे हम उसके विषय मे विचार कर रहे है । उड़ीसा का परिचय पुराणादि*

---

* कालिका० १८।४२, स्कन्द० प्र० प्र० मा० १०७।१० में उड्डियान पाठ है । स्कन्द० आव० रेवा० १८६।१३ यह तीर्थ और भगवती का सिद्धक्षेत्र है । इसमें तथा गर्ग० विश्व० १५।३ में उड्डीश नाम है । स्कन्द० वै० पुरु० ११।९१, लिंग० पू० ६५।२७, अग्नि २७३।८, वायु० उ० २३।६९, पद्म आदि० ६।३६ इत्यादि में उत्कल पाठ है । ब्रह्म० २८।६ से १८ तक । ब्रह्मा० म० उपो० ६।१८, स्कन्द वै० वे० १४।७, स्कन्द वै० पुरु० ४।१०५, ब्रह्म० १०८।२८ तथा ७।१८ और २७।५९, महाभा० भी० ९।४१, महाभा० हरि० हरि० १०।१९ मत्स्य० १२४।५२, वाम० १३।४४ मार्क० ५४।५३ काव्यमीमांसा १७।२० में उत्कल पाठ है । कालिका० ३।१४ तथा २७ वाल्मी० (इ) कि० ४४-१३ तथा ४१।१८ मेदिनीकोष (र द्वि०) ११, मत्स्य १६३।६ बृहत्स० १४।६, १६।१, विष्णु धर्मोत्तर ३।२५।२१, महाभा० भी० (म) ९।५० (चि०) ९।५७ में ओड् पाठ है । स्कन्द वै० पुरु०

मे उत्कल, उड्, ओड्, औड्र, ओढ, उड्डियान, उड्डीश नामो से मिलता है। पुराणों में इसकी सीमा पुरुषोत्तमक्षेत्र की उत्तरी सीमा विरजमण्डल माना है। विरजमण्डल और एकाम्रक क्षेत्र एक है। आजकल का वह भुवनेश्वर है। यह बात स्कन्दपुराण वैष्णव० पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य मे अ० ११।९१ से लेकर अ० १२ तक मे स्पष्ट है। नारदीय० उ० ५२।८ मे भी पुरुषोत्तमक्षेत्र और विरजमंडल का नाम आया है। ब्रह्म० २८।६-१८ में इस देश की उत्तरी सीमा विरजमंडल को माना है। ब्रह्म० १०८।२८ मे ऋषिकुल्यानदी से स्वर्णरेखा पर्यन्त देश का नाम उत्कल माना है। यह नदी गजाम जिले से होकर चिलिकाह्रद से दक्षिण, समुद्र मे गिरती है और इसी नाम से अब भी प्रसिद्ध है। स्वर्णरेखानदी भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इससे यह स्पष्ट है कि यह देश इन दोनो नदियो के बीच मे था और इसकी दक्षिणी सीमा ऋषिकुल्या थी। पुराणो मे जब भुवनेश्वर कलिंगदेश की सीमा पर न होकर उड़ीसा की विभिन्न सीमा पर है तो भुवनेश्वर कभी कलिगनगर कहा जाता हो, यह बात समझ मे नहीं आती।

अब हम उड़ीसा के उड्डियान नाम पर भी विचार कर रहे हैं। कालिका० १८।४२ में उड्डियान को प्राच्यदेश मे माना है और वहाँ पर सती के ऊरु (जाँघों) के जोड़े के गिरने का वर्णन है और उस स्थान पर सतीदेवी के होने का वर्णन है। स्कन्द० प्रभा० मा० १०७।१० में उड्डियान

७।२३, महाभा० सभा० (म०) २७।७४ में ओढ़् पाठ है। अग्नि० ५।१३, मत्स्य० ११४।५२, पद्म० आदि० ६।५२ में ओड्र पाठ है।

देश में देवकर्त्ता नामक ब्रह्मा का वर्णन है। उच्छिष्टयाण भी पाठान्तर है। कलिका० ६४।४३-४५ मे 'ओड्राख्यं प्रथमं पीठम्' लिखा है और पूजनविशेष के समय उसका पश्चिम स्थापन लिखकर उसमें ओड्रेश्वरीशिवाकात्यायनी का पूजन तथा ओड्रेशजगन्नाथ का पूजन लिखा है। यह उड्डियान को ओड्र के साथ एक कर रहा है। महापीठनिर्णयमें उत्कल मे नाभिदेश का गिरना और विरजक्षेत्र, विमलादेवी तथा जगन्नाथभैरव का नाम लिखा है। परंच ऊरु के गिरने का वर्णन कहीं भी नहीं है। इससे एक पीठ उड़ीसा मे तथा उसका सम्बन्ध जगन्नाथ के साथ मे भी मानना होगा। एक पाठ मे जगन्नाथ के स्थान मे जयभैरव भी पाठ मिलता है। गंडकी के तट पर गंडकचंडी और जगन्नाथभैरव पाठ है। वह विचार करने पर गंडक के तट पर जगन्नाथ के नाम से प्रसिद्ध देवता के न होने से उचित नहीं प्रतीत होता। एक पाठ उत्कल मे विजयनाभि और अम्बभैरव का वर्णन करता है। वह भी अम्बभैरव के उत्कल मे न होने से ठीक नहीं। एक पाठ में नीलाचलक्षेत्र, भुवनेश्वर, विमला, विरजा, भद्रा और जगन्नाथ-भैरव का वर्णन है। सब प्रकार से उत्कल में जगन्नाथ का होना निश्चित है। जिस पीठ का भैरव जगन्नाथ है, वह पीठ उड़ीसा मे ही हो सकता है। ऐसी दशा में दिनेशचन्द्र सरकार ने अपने 'शाक्तपीठाज्' ग्रन्थ ४१२ पृष्ठ में उड्डियान को उद्यान से एक किया है और उसको स्वातनदी की घाटी मे माना है, वह विचारणीय है। संस्कृत में उद्यान और उड्डियान की आनु-पूर्वी एक नहीं है। उस प्रान्त का नाम भी उद्यान नहीं है; किंतु

वह तो काम्बोज का भाग है। यह बात हस्तनगर के एक भाग राजपुर के होने से निश्चित है, जो कम्बोज की राजधानी मानी गई है (कम्बोज देखिये)। ह्वेनसांग का शब्द उचंगन और फाहियान का उचांग है, जिससे उद्यान शब्द गढ़ा गया है। यदि उद्यान भी मान लिया जाय तो भी उड्डियान नहीं हो सकता। एक पूजनविशेष मे उड्डियान का पश्चिम स्थापन उसको पश्चिमदेश मे नहीं ले जा सकता। वहाँ शब्दो का स्थापन जिस-जिस विशेष प्रयोजन से होता है, उसको तान्त्रिक ही जान सकते है। तन्त्रविद्या से अनभिज्ञ ऊपर-ऊपर उड़नेवाले नहीं समझ सकते। जब कालिकापुराणादि उड्डियान को पूर्वी देश में कह रहे हैं तब उसको पूर्व मे ही मानना होगा। पीठनिर्णय इत्यादिक ग्रन्थ पुराणों के ही आधार पर बने हैं। इसलिये पुराणो के सामने पीठनिर्णयो का भौगोलिक वर्णन कुछ कम प्रतिष्ठा रखता है। परन्तु कुछ-न-कुछ सहायक तो अवश्य है। ह्वेनसांग के लिखे स्थान को मनमाने शब्द से एक करना और उससे मनमानी उड़ानेवाले लोगो के शब्दों का प्रमाण बिना उचित प्रमाण दिये मानने योग्य नहीं है। स्वातनदी की घाटी उत्तरी देश मे है, पश्चिमी मे नहीं। शुद्ध संस्कृत के उड्डियान शब्द को प्राकृत कहना भी भ्रम है। सरकार साहब ने भी पृ० ९७ में उड्डियान के वर्णन मे जगन्नाथ को भैरव माना है और अब भी भैरवीचक्र के चिन्ह जगन्नाथ मे वर्त्तमान है। क्या जगन्नाथ का कोई वर्णन स्वातनदी के पास संस्कृत, पाली, प्राकृत इत्यादि भाषाओं मे सरकार साहब दिखला सकते है? उड्डियान को उद्यान से एक करना त्रिकाल मे संभव नहीं।

उद्यानदेश स्वातनदी के प्रान्त में था, यह बात बिलकुल निर्मूल है। पुराणों[1] मे एक उद्यानदेश का वर्णन है, जो बिन्दुसरोवर से पूर्व दिशा मे है। यह बिन्दुसरोवर गंगा का उत्पत्ति-स्थान है. जो गंगोत्तरी से ऊपर है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्यान-शब्द देशअर्थ में नहीं मिलता। इससे स्वातप्रान्त का उद्यानदेश होना शशश्रृंग के समान सत्ता रखता है। इसपर विद्वान् लोग ठंढे दिमाग से विचार करें। पुराणों[2] मे उड़ीसा का समुद्र और कलिग का समुद्र दक्षिणसागर माना गया है और इन्डोचायना का समुद्र पूर्वसागर माना गया है, इसलिये गगा की धारा का दक्षिणसमुद्र मे गिरना लिखा है।

कश्यपतुङ्ग[3] —यहाँ पर कश्यप ने तपस्या की।

काट—यह कुआँ का नाम है। यह शब्द ऋ० वे० १।१०६।६ मे 'कूप' अर्थ मे आया है।

काम्पील—(१) वे० इ०[4] यह शब्द यजुर्वेद संहिता मे एक स्थान पर काम्पीलवासिनी के रूप मे एक स्त्री के लिये आया है। इसका ठीक अर्थ अनिश्चित है।

---

१. वायु० पू० ४७।५५ यह वर्मा की नदी पावनी (ऐरावती) के तट पर है।

२. वायु० पू० ४५।१२५ यह देश दाक्षिणात्य है। ब्रह्म० २७।५७, गरुड़० पू० ५५।१२ तथा ६८।१७ यह देश पूर्व-दक्षिण में हैं, यहाँ सोने के समान सुन्दर हीरे उत्पन्न होते है।

३. गोपथ ब्राह्मण ७।८

४. तैत्तिरीय स० ७।४।१९. मैत्रायणी स० ३।१२।२०, काठक स० अश्व० ४।८, तैत्तिरीय ब्रा० ३।९।६१, शतपथ ब्रा० १३।२।८।३

(२) वेवर तथा जिमर काम्पील को एक शहर मानते हैं, और यह भी मानते हैं कि यह पञ्चालदेश की राजधानी था, जो साहित्य मे काम्पिल्य नाम से आया है।

(३) (नन्दलाल डे ज्या० डि० पृ० ८८ मे) कांपिल्य कंपिल उत्तर-प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के फतेहगढ़ नामक स्थान से २८ मील उत्तर-पूर्व है। यह बदायूँ और फर्रुखाबाद के बीच में बूढ़ीगंगा के तट पर है। यह दक्षिणपञ्चालनरेश द्रुपद की राजधानी है तथा द्रौपदी के स्वयंवर का स्थान है। (महाभा० आदिपर्व अ० १३८ तथा रामायण आदि काण्ड अ० २३) द्रुपद का महल अत्यधिक पूर्व की ओर एक निर्जन टीले मे बूढ़ीगंगा के तट पर बतलाया जाता है। जनरल कनिङ्हम द्वारा इसका नाम कम्पिल बतलाया जाता है (आरकियो लाजिकल सर्वे रिपोर्ट १।२५५)। डा० फुहरर (एम० एल०) ने इसको विश्वास-योग्य कहा है।

वस्तुतः यह शब्द नगरवाची है। यह महीधर[1] और उव्वट का मत है। सायण[2] 'श्लाघ्य वस्त्रविशेष' अर्थ मानते है। 'काम्पीलवासिनी' शब्द सुभद्रिका का विशेषण है। काम्पीलवासिनी के दोनों अर्थ सम्भव है। फर्रुखाबाद और फतेगढ़ से कम्पिल पश्चिम दिशा मे है और बी० बी० एण्ड सी० आई० आर० के पटियारी स्टेशन के पास है। नन्दलाल डे का पूर्व कहना एकदम उलटा है।

कारपचव—(१) (वे० इ०) यह यमुना के किनारे[3] एक

---

१. यजुर्वेद २३।१८

२ तैत्तिरीय सं० ७।४।१९।१

३. पंचविंश ब्रा० २५।१०।२३

स्थान का नाम है।

(२) वेबर का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक तीर्थ यमुना[1] के तट पर है। पचविश ब्रा०[2] आदि मे इसका उल्लेख आया है। इसे सरस्वती के समीपवाले यमुना के तट पर होना चाहिये। क्योकि ताण्ड्य ब्राह्मण में सरस्वती के उत्तर स्थूलार्मह्रद मे अवभृथ का वर्णन है। यह सरस्वती के निर्गमप्रदेश के समीप शिमला प्रान्त में है। आश्वलायन श्रौतसूत्र[3] मे यह बात स्पष्ट है। कारपावन और कारपचव दोनो नाम मिलते है। पाठ मे अन्तर होने पर भी दोनो एक ही के नाम प्रतीत होते है। महाभा० शल्य० गदा० चि०) ५४।३६ यह तीर्थ प्लक्षप्रस्रवण नामक पर्वत पर है, जो हिमाद्रि का एक भाग है। नाम 'कारपावन' लिखा है।

---

(१) कात्यायन श्रौतसूत्र १८।२०२, ताण्ड्य ब्रा अ० २५ ख० १ ।२. सायण ने इसको जनपद माना है। इसके बीच से यमुना बहती है। कारपचव प्रति यमुनामभ्यवयन्ति। अर्थ—कारपचव के सामने यमुना में अवभृथ करें।

२ ·५।१०।२३, आश्वलायन श्रौतसूत्र १२।६, शांखायन श्रौत सू० ३।२३।२५, कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२ २

(३) आश्वलायन श्रौत सू० षठ अ० षष्ठ खण्ड में प्लांक्ष प्रस्रवणं प्राप्योत्थानम्। ते यमुनायां कारवपचवेवऽभृथ मभ्युपेयुः। सरस्वती के निर्गमस्थान से उठकर यमुना मे कारवपचव नामक स्थान मे अवभृथ करें, यहाँ कारवपचव नाम लिखा है। अवभृथ स्नानविधान से जल में है और शिमला प्रान्त में हैं। कात्यायन श्रोत सू० के टीकाकार कर्कांचार्य इसे देश मानते हैं।

कारस्कर—(१) वे० इ०* एक जाति का नाम है, जो बौधायन श्रौतसूत्र २०।१३।४, आपस्तम्ब २२।६।१८ तथा हिरण्यकेशि सू० १७।६ मे आया है। बौधायन धर्मसूत्र १।२। १४ मे भी आया है।

(२) बूलर और कलन्द का भी यही मत है। (वे० इ०)

(३) जयचन्द्रविद्यालंकार[1] चित्राल शहर और चित्राल नदी के इलाके को कारस्कर देश मानते है।

(४) ज्ञा० डि० पृ० ९३ कारस्कर कारस्करों का देश। यह दक्षिण भारत मे है[2]। महाभा० कर्ण० अ० ४४, बौधायन ध० सू० १।१।२, मत्स्य० ११३ शायद यह मद्रास हाते का दक्षिणकनाडे का कारकल नामक स्थान है। यह एक तीर्थस्थान

---

* कीथमेकडानल निर्मित। जातिअर्थ मे प्रयोग कही भी नहीं है, सर्वत्र देशअथ मे प्रयोग है।

(१) भारतभूमि परिशिष्ट पृ० ३१६ 'चितराल शहर, नदी व इलाके को लोग अब भी काष्कार कहलाते है। बौधायन ध० सू० १।१।३० मे जिन देशों में जाने के बाद प्रायश्चित्त का विधान किया है इनमें कारस्कर भी एक है। यह बात उत्तर-पश्चिम के किसी देश पर घट सकती है। कारस्कर मे काष्कर का बन जाना भी सुगम है। रेफ के कारण 'स' का 'ष' हो जाना, फिर रेफ का लोप, फिर उसके कारण पिछले स्वर का दीर्घ हो जाना बहुत सुगम है।

(विद्यालकारजी ने व्याकरणज्ञान खूब दिखलाया। इससे ज्ञाता लोग केवल हँसेंगे)।

(२) नन्दलाल डे का कथन ठीक नहीं, क्योंकि इसका दाक्षिणात्य होना असंभव है।

है। जैन और बौद्ध यात्रियों के लिये प्रसिद्ध है।

वस्तुतः यह देश है। बौधा० ध०सू० १।७।६, बौधायन श्रौतसूत्र[1] २०।१३ तथा हिरण्यकेशि २२।६।१८ में तथा अन्य पुराणों[2] में इसको देश माना है और श्राद्ध के अयोग्य भी कहा है। स्कन्द० प्रभास० प्र० मा० २०६।३० तथा ब्रह्म० २२०।८, ब्रह्मा० म० उपो० १४।३३ मे जो श्राद्ध के अयोग्य देश लिखे है, उनमे सिंधु के उत्तर के देश और कारस्कर आदि देशो के नाम हैं। चितराल सिन्धु के उत्तर के देशों में है, वह यदि कारस्कर होता तो कारस्कर को पृथक् लिखने की आवश्यकता नहीं थी। इससे जयचन्द्रविद्यालकार का मत ठीक नहीं। वे० इ० का मत भी प्रमाणाभाव से माना नहीं जा सकता।

---

(१) १।२।१५ इस देश मे जाकर स्तोम से यजन करे या सर्वपृष्टि से।

(२) ब्रह्मा० म० उपो० १४।३३ मे यह देश श्राद्ध के अयोग्य है। मत्स्य० ११४।४९ यह देश भारत मे है और पश्चिमी है। वायु० उ० १६।६९ यह देश पापी है। वायु० उ० १६।६२ यह देश श्राद्ध मे मना है। कारकर पाठान्तर भी है। वामन० १३।४२ यह देश कुमार नामक द्वीप (भारत) मे है, पश्चिमी है। मार्कण्डेय० ५४।५१ यह देश भारत मे अपरान्त में है, अर्थात् पश्चिम मे है। महाभार० सभा० ५२। ५२ यह देश है। महाभा० कर्ण (चि०) ४४।४३ (नि०) ३७।५८ यह देश धर्मविहीन है। महाभा० सभा० (नि०) ७७।२१ ये राजे युधिष्ठर के यज्ञ मे वशीभूत के समान शोभित होते थे। विष्णुधर्मोत्तर १।१४ यह देश श्राद्धकर्म में वर्जित है। इन सब प्रमाणों से यह देश पश्चिम मे था। महाभा० कर्णपर्व में शल्य की निन्दा मे आने से इसका पञ्जाब में होना स्पष्ट है।

कारोती—वे० इ० शतपथ ब्रा० ९।५।२।१५ में इसका उल्लेख आया है। यह एक स्थान, यथासंभव नदी है। यहाँ पर तुर कावषेय ने एक अग्निवेदी को, अर्थात् ऐसा आसन जो बहुत ही उच्चकोटि के पराक्रम का हो, बनाया।

वस्तुतः यह एक नदी है। इसके तट पर कावषेय तुर द्वारा देवताओं के लिये अग्न्याधान का वर्णन है। शतपथ मे पाठ है—'तुरोह कावषेयः कारोत्यां देवेभ्योऽग्निं चिकाय'; अर्थात् कवष के पुत्र तुर ने कारोती मे देवताओं के लिए अग्न्याधान किया। मेकडानल और कीथ ने अग्न्याधान को न समझकर मनमाना अर्थ कर डाला है। यहाँ यज्ञ का वर्णन है और अग्न्याधान करके हवन किया जाता है, यह नहीं समझे।

काशि—वे० इ० (१) काशि बहुबचन[1] मे काशी (बनारस) के रहनेवाले लोगों का नाम है। 'काश्य' काशी के राजा के लिये आया है। शतपथ ब्राह्मण[2] धृतराष्ट्र को काशी का राजा मानता है, जो शतानीक सात्राजित से हराया गया है। जिसका फल यह हुआ कि काशीजो ने पवित्र अग्नि का जलाना बन्द कर दिया। सात्राजित एक भरत था। हम लोग अजातशत्रु को भी काशी[3] का राजा सुनते है और इसमें कोई

---

१. शतपथ ब्राह्मण १३।५।४ तथा १६।२१ मे बहुबचन शब्द है। अथर्ववेद के पैप्पलाद भाग ५।२२।१४ मे भी आता है।

(वस्तुतः अथर्ववेद मे काशिशब्द का नाम नही है।)

२. शतपथ ब्रा० १३।५।४।१९

३. बृहदारण्यकोपनिषद् २।१।१ तथा ३।८।२, कौषीतकी० उपनिषद् ४।१

सन्देह नहीं कि भद्रसेन अजातशत्रु जो उद्दालक का समकालिक था, काशी का राजा था। काशीज् तथा विदेहाज् घनिष्ठरूप से संबद्ध थे, जैसी कि भौगोलिक स्थिति थी। काशी और विदेह यह समस्तपद कौषीतकी उपनिषद् मे आया है। बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में गार्गी ने अजातशत्रु को काशी या विदेह का राजा माना है। शांखायन श्रौतसूत्र[2] में एक पुरोहित, जो काशी, कोशल और विदेह तीनों स्थानो मे काम करता था, वर्णित है। बौधायन श्रौतसूत्र[3] मे काशी और विदेह निकटवर्ती रूप मे वर्णित हैं। वेबर[4] के अनुसार काशी और विदेहाज् मिलाकर उसीनराज् बनाते हैं, जो वैदिक साहित्य मे बहुत कम मिलता है। कोशल और बिदेह बहुत निकटवर्ती थे। काशी और कोशल गोपथ ब्राह्मण[5] में समस्तपद काशी कौशल्याज् के रूप मे आये है। यद्यपि काशी बहुत बाद का शब्द है। यह भी बहुत संभव है कि यह नगर काफी पुराना है, जैसा कि नदी वरणावती जो अथर्ववेद[6] में आई है, वाराणसी (बनारस) से संबद्ध हो सकती है, यह स्पष्ट है। जब काशीज्, कोशलाज् और विदेहाज् एक थे तो

(१) ३।८।२

(२) १६।२६।५

(३) २१।१३ (वस्तुतः इसमे कुछ नहीं मिलता।)

(४) तुलना करो वेबर इण्डिश्चेस्टडियन १।२१२–२१३

(५) १।२।६

(६) ४।७।१ जिमर अलटिनडिस्चेज्लिवेन २०, ब्लूम फील्ड हिम्स आफ दी अथर्ववेद ३७६

उनका कोई भी कारण कुरु, पञ्चाल लोगों के साथ अमित्रता का रहा होगा। यह स्पष्ट है कि इन दो प्रकार के लोगो में किसी प्रकार का राजनैतिक तथा संस्कृति मे अन्तर रहा होगा। शतपथ ब्राह्मण[1] आर्यों की सभ्यता का प्रचार कोशल और विदेह पर वर्णन करते हुए इस समय का बहुत स्पष्ट प्रमाण रखता है कि कुरु पञ्चाल देश मे ब्राह्मण-संस्कृति का केन्द्र था (कुरु पंचाल देखिये । कोशल विदेहाज् कुरु पंचालाज् से पुराने बसनेवाले थे, ऐसा उनकी भौगोलिक स्थिति से स्पष्ट है। परन्तु सच्ची ब्राह्मण संस्कृति उन तक कुरु पञ्चाल देश से ही आई। यह सभव है कि पूर्व, पश्चिम से कम आर्य था। ब्राह्मण सर्वोच्च अध्यात्मशक्ति के अन्दर कम आये थे, जैसा कि बौद्ध धर्म का प्रचलन पूर्व से ही हुआ। बौद्ध ग्रन्थ[2] स्पष्ट कहते हैं कि क्षत्रियाज् ब्राह्मणाज् के ऊपर थे। इन प्रमाणों से यह पता चलता है कि उत्तर वैदिक ग्रंथ[3] मगध के लोगों के प्रति असहिष्णुता का भाव प्रकट करते है, जो तर्क से स्पष्ट किया जा सकता है कि ये लोग रूढ़िवादी अथवा अन्धभक्त नहीं थे,

---

(१) १।४।१।१० से आरम्भ, वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।१७० से प्रारम्भ, एजलिङ्सेक्रेन्ड बुक्स आफ दी ईष्ट १२।४२ से प्रारम्भ १०४ एन् १

(२) फिक की डाइ सोशलग्लीडरङ्ग चैप्टर ४ देखिये।

(३) कात्यायन श्रौतसूत्र २२।४।२२, लाट्यायन श्रौतसूत्र ८।६।२८, वेबर इण्डिस्चेष्टडियन १०।९९ देखिये। फिक की वही १४० एन् और मगध देखिये।

जो कि वाजसनेयी संहिता[1] तक इसी दशा मे पाये जाते हैं। सचमुच यह संभव है कि कुरु या पाञ्चालाज् जाति की शाखाएँ कोशल, विदेहाज् तथा काशीज् थीं और वे आदिम-निवासियो पर कम अधिकार पाने के कारण तथा दूरी के कारण ब्राह्मण-संस्कृति को खो बैठी थीं, यह कारण कम संभव होता है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण के आर्यों के चढ़ाव की कथा इसी अभिप्राय की द्योतिका है।

२. (वेबर) काशी और विदेहाज् मिलकर उशीनराज् बनाते है।

वस्तुतः यह शब्द देशवाची[2] है और बहुवचन मे इसका

---

(१) ३०।५।२२ मगध देखिये। एजलिड् सैक्रेड बुक आफ दी ईस्ट १०४ एन् १, ग्रियर्सन जर्नल आफ दी रायल एसियाटिक सोसाइटी १९०८।८३७।११४३, कीथ की वही ८३१।११३८ ओल्डनबर्ग बुद्ध ४०२ से प्रारम्भ।

(२) वायु पु० ४५।११ यह देश भारत के मध्यदेश मे है। पद्म० आदि० ६।२५, ब्रह्म० २७।४१, मार्कण्डेय० ५४।३२ यह देश भारत के मध्यदेश मे है। महाभा० भी० (म) ६।३८ मे काशिकोशला. यह पाठ है। (चि० नि०) ६।४० मे कान्तिकोशलाः यह पाठ है। महाभा० सभा० (चि०) ४६।१३ मे काशयः देशअर्थ मे आया है। श्रीमद् भागवत १०।५७।३२, वाल्मी० अयो० (नि०) १०।३७ (गु०) ३८ परन्तु (इ०) मे पाठ नहीं है। (ला०) १३।१५ मे पाठ है। महाभा० आदि० (म) १०६।११ (चि०) ११३।२६ (नि०) १२२।२६, महाभा० हरिवंश हरि० वि० ३४।१७ तथा १०२।११ इसमे वाराणसीपुरी है। काशिका ४।२।११६ यह एक देश है। गणर० ५।३३२, बृहत्स० १४।७ यह देश भारत मे पूर्व मे है। नैषधीय च० ११।११३ यह देश है,

प्रयोग आता है।[1] इस देश की पूर्वी सीमा मगध, पश्चिमी सीमा उत्तरकोशल, दक्षिणी सीमा वत्स प्रतीत होता है। इसकी उत्तरी सीमा पूर्व कोशल था। यह शब्द जब इस देश के राजा को कहता है तब इसका एक बचन मे 'काश्य' रूप मिलता है और बहुवचन मे राजा के अर्थ मे 'काशि' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसमें रहनेवाला या इससे आनेवाला या इसमें पैदा हुआ पुरुष 'काशिक' कहा जाता है। स्त्री 'काशिकी' और 'काशिका' कही जाती है। शतपथ ब्राह्मण[2] मे यह शब्द बहुवचन काशि के राजा के लिये आया है। वहाँ यह लिखा है कि काशि के राजा धृतराष्ट्र के अश्वमेध के दश महीने घूमे हुए घोड़े को शतानीक नामक राजा ने पकड़ लिया और गोविनत नामक अश्वमेध से उसने यज्ञ किया। उसके बाद काशिदेश के राजाओं ने अश्वमेध

इसकी राजधानी वाराणसी है। सुश्रुतसूत्र स्थान १०२ यह देश है।

(१) पाणिनि ने काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४।२।११६ मे गणपाठ मे 'काशि' शब्द इकारान्त लिखा है। इससे जब वृद्धेत्कोशलाजादाञ्यङ् ४।१।१७१ मे जब ञ्यङ् प्रत्यय होता है तब 'काश्य' शब्द बनता है, जो राजा का बोधन करता है। बहुवचन मे प्रत्यय का लुक् हो जाने से केवल 'काशि' शब्द रह जाता है। उसके प्रयोग मे 'बहुत से राजे' अर्थ होता है। उस देश मे पैदा हुए और उसमे आनेवाले इत्यादि काश्यादि सूत्र से ठञ् ञिठ् प्रत्यय होने से 'काशिक' कहे जाते है। ठञ् प्रत्यान्त से स्त्रीलिङ्ग 'काशिकी' रूप बनता है और ञिठ् प्रत्ययान्त से 'काशिका'।

(२) शतपथ ब्रा० १३।५।४ मे सात्राजित ईजे काश्यस्याश्वमादायततो हैतदर्वाक् काशयोऽग्नीन्नादधत आत्त सोमपीथाःस्म इति वदन्तः। इसमे 'काश्य' शब्द 'काशी के राजा' के अर्थ मे और 'काशयः' काशी के बहुत राजाओ के अर्थ मे आया है।

करना बन्द कर दिया। बृहदारण्यकोपनिषद् २।२।१ में काश्य शब्द एकवचन काशिदेश के राजा के लिये आया है। कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् ४।१।१ मे काशी शब्द देशवाची या नगरीवाची आया है। कौषीतकी उपनिषद् में 'काशीविदेहेषु' ऐसा बचन आया है जो नगरी और देश दोनों को बोधित करता है। विदेह के साथ आने से देश का होना अधिक संभव है। वैदिक इन्डेक्स मे काशी बहुबचन मे बनारस मे रहनेवालो का नाम है, यह लिखा है, वह असंगत है। काशी शब्द के विषय मे शतपथ ब्राह्मण का जहाँ पर प्रमाण दिया है, वहाँ राजाओं के अर्थ मे आया है; न कि काशी के निवासियो के अर्थ मे। काशिजों ने पवित्र अग्नि का जलाना बन्द कर दिया, यह कथन भी सर्वथा सन्दिग्ध है। 'काशिजो' का अर्थ धृतराष्ट्र के बाद के 'काशी के राजे' हो तो ठीक है। अथवा साधारण लोग हो तो अशुद्ध है। 'अग्न्याधान' का अर्थ अश्वमेध है, न कि सामान्य हवन जैसा कि ग्रन्थकार का कथन है।

वैदिक इन्डेक्सकार काशीज् और विदेहाज् का घनिष्ठ सबध करते है। प्रमाण मे भौगोलिक स्थिति देते है। काशिदेश और विदेहदेश की सीमा एक थी, इसमे कोई प्रमाण नहीं। जिन राज्यो की सीमा मिली होती है नीतिशास्त्र के अनुसार परस्पर शत्रु होते है। इस नीति से उन राज्यों की मित्रता कहना ठीक नहीं प्रतीत होता है। काशिदेश-निवासियो की विदेह-निवासियो से घनिष्ठ सम्बद्धता कहने मे कोई प्रमाण वैदिक साहित्यमात्र मे नहीं है और न शत्रुता मे ही है। काशी और विदेह के राजाओं की शत्रुता और मित्रता और घनिष्ठता हो सकती है।

काशी के निवासियो और विदेह के निवासियों को एक जाति मानना और घनिष्ठता कहना केवल कल्पनामात्र है। देश मे एकजाति के लोग नहीं रहते। ये सब बाते आर्यों को घुमक्कड़ बनाने के लिये रची गयी है। उसी की पुष्टि आज तक योरोपियन सभी विद्वान कर रहे हैं। उसी को उनके अनुयायी भी बिना विचारे 'आज्ञा गुरूणामविलङ्घनीया' के सिद्धान्तानुसार बेखटके प्रचार कर रहे है। कौपीतकी ब्राह्मणोपनिषद् मे "गार्ग्योह बालाकिरनूचानः सस्पष्ट आस सोयमुशीनरेषु संवसन् मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशीविदेहेष्विति सहाजातशत्रु काश्यमेत्योवाच ब्रह्म ते ब्रवाणीति।" अर्थः—गार्ग्य बालाकि नाम का विद्वान् ब्रह्मज्ञानी और अभिमानी था। वह उशीनर, मत्स्य, कुरु, पञ्चाल देशों मे रहा। काशी और विदेह देशा मे भी रहा। एक बार काशी के राजा अजातशत्रु के पास आकर वह बोला कि हम आपको ब्रह्म का उपदेश करेंगे। इसमे बालाकि का इन देशो मे बसना लिखा है। काशीविदेहेषु मे द्वन्द्व समास है। पास-पास वालों का ही द्वन्द्व समास होता है, ऐसा कोई नियम भी नहीं है। इस समय भी साथ-साथ शब्द बोले जाते है। वे समीप हों, ऐसा भी कोई नियम नहीं है। कलकत्ताबम्बई के व्यापारी कहने से क्या कलकत्ता और बम्बई नगर समीप समझे जाते हैं? अथवा क्या वहाँ के व्यापारी लोगो को आपस मे कोई घनिष्ठता प्रतीत होती है? घनिष्ठता और शत्रुता मे और कारण होते है; न कि उनको साथ कह देना। वैदिक इन्डेक्सकार कहते हैं कि बृहदारण्यकोपनिषद् मे गार्गी ने अजातशत्रु को काशी या विदेह का राजा माना है, यह भी उनका कथन विचित्र ही है।

तृतीयाध्याय के प्रारम्भ में "जनकोहवैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्रह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्यह जनकस्य वैदेहस्य जिज्ञासा बभूव कःस्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतमः इति सहगवा सहस्रमवरुरोध दशदश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोरावद्धा बभूवुः।" अर्थात् विदेहदेश के राजा जनक ने एक बहुत धन दक्षिणावाला यज्ञ किया। उसमें कुरु और पञ्चाल देश के ब्राह्मण लोग आये। उस समय जनक के चित्त मे यह जिज्ञासा हुई कि इन ब्राह्मणों मे सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी कौन है? इसलिये एक सहस्र गायों के सींगो मे जनक ने ढ़ाई ढ़ाई स्वर्णमुद्राएँ बाँध दीं और ब्राह्मणो से कहा- 'हे ब्राह्मणो! आप लोगो मे जो ब्रह्मिष्ठ हो वह इनको जीतकर ले जाय।' किसी ब्राह्मण की हिम्मत न पड़ी। याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सामश्रवा से गायें घर ले चलने को कहा। इसपर ब्राह्मणो ने क्रोधकर कहा कि याज्ञवल्क्य हमारे सामने कैसे ब्रह्मिष्ठ बनता है? कौन ब्रह्मिष्ठ है, यह निश्चय हो जाय। उसके बाद याज्ञवल्क्य से ब्राह्मणों का शास्त्रार्थ हुआ। पूरा तृतीयाध्याय उस शास्त्रार्थ के वर्णन मे है। ब्राह्मणों के परास्त होनेपर ८वें ब्राह्म० मे वाचक्नवी गार्गी ने ब्राह्मणो से कहा- मैं दो प्रश्न याज्ञवल्क्य से कर रही हूँ। यदि इन दो प्रश्नों का उत्तर याज्ञवल्क्य दे सकें तो आपमे से कोई भी याज्ञवल्क्य को नहीं जीत सकता। हे याज्ञवल्क्य! जिस प्रकार काशी विदेह के दोनों राजे उग्रपुत्र शूरवंश मे पैदा हुए, शत्रु को अत्यन्त वेध करनेवाले बाणो को लेकर खड़े हों और प्रहार करें, उसी प्रकार मै आपके ऊपर दो प्रश्नो का प्रहार कर रही हूँ। इस संवाद मे विदेह का राजा जनक लिखा है; नकि

अजातशत्रु। काशी और विदेह के राजे दृष्टांत मे आये है और भिन्न-भिन्न है, एक नहीं। अजातशत्रु का नाम भी नहीं है। द्वितीयाध्याय के प्रारम्भ मे दृप्तबालाकि और काशिराज अजातशत्रु का संवाद आया है, जो कोषातकी ब्राह्मणोपनिषद् से सर्वथा एक है। उपनिषदों मे प्रधान ब्रह्मज्ञान है, कथाएँ समझाने के लिए हैं। वहाँ कथा पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। केवल ज्ञान मे तात्पर्य रहता है। योरोपियन विद्वान् कथा को ही सर्वत्र प्रधान मानते हैं। कथा देखकर अपनी मनमानी असम्बद्ध कल्पना कर बैठते हैं। अर्थ पर ध्यान न देकर केवल शब्द से ही बेपर की उड़ाते है। वेबर का मत कि काशीज् और विदेहाज् मिलकर उशीनराज् बनाते है यह सर्वथा निर्मूल है। इस बात को वैदिक इन्डेक्स भी अस्पष्ट बतलाता है; न कि स्पष्ट। वह यह कहकर कि साहित्य मे बहुत कम मिलता है चल देता है; लेकिन कहाँ पर मिलता है, इसे नही बतलाता। गोपथ ब्राह्मण १।२।९ मे वैदिक इन्डेक्सकार के मत मे काशी और कोशल समस्तपद काशी कौशल्याज् के रूप मे आये हैं। इसमें १।२।९ मे यह पाठ नहीं है; बल्कि २।१० में है। वहाँ भी 'काशीकौशलेपु' ऐसा पाठ है। वहाँ काशी और कौशल दोनों देशवाची है। वहाँ के मनुष्यों को नहीं कहते। काशी और कोशल देश में लोग अन्न खाते हैं, यह लिखा है। 'वरणावती अथर्ववेद को काशी की वरुणानदी है, इसमे कोई भी प्रमाण नहीं है। वेदिक इन्डेक्स मे है-"यह स्पष्ट है जब कि काशीज्, कोशलाज् और विदेहाज् एक थे तो उनका कोई भी कारण कुरु पञ्चाल लोगो के साथ अमित्रता का रहा होगा।

यह भी स्पष्ट है कि इन दो प्रकार के लोगो में किसी प्रकार का राजनीतिक वैमनस्य तथा संस्कृति में अन्तर रहा होगा।" यह कथन भी विचार करने पर कुछ नहीं ठहरता। ये तीनों पहले एक थे और इनका कुरु पञ्चाल दोनो से विरोध था, यह कथन तब सिद्ध हो सकता है जब कि इन तीनो के एक होने में कोई प्रमाण हो और कुरु पञ्चाल के एक होने में भी प्रमाण हो। कोई भी वैदिक प्रमाण इनके निवासियो को एक मे सम्बद्ध करता ही नहीं है। जो शब्द आये है वे देश-अर्थ में आये है। देश पास मे होने पर भी तीनो के निवासी सम्बद्ध थे, यह कैसे सिद्ध होता है? तीन देशो की दो देशो से शत्रुता हो या सभ्यता भिन्न हो, इसमें कोई भी प्रमाण नहीं है। काशी के राजा का अश्व सत्राजित के पुत्र शतानीक ने पकड़ लिया, इससे दोनो मे वैर है। आपका शायद यह अभिप्राय है कि वह भी शतानीक को भरत मानते हैं। सो भी भरत होने से कुरुओ में हो सकता है या पञ्चालो मे, न कि दोनों मे। काशी के राजा के घोड़े को पकड़ने पर विदेह और कोशल के लोग क्यो शत्रु हुए? अश्वमेध का घोड़ा शत्रुता से नहीं पकड़ा जाता है और न संस्कृति के भेद से। क्योंकि वह तो एक वीरोचित कार्य है। एक वीर से दूसरे वीर की स्पर्धा रहती है। दूसरे का उत्कर्ष न सहना ही वीरता है। अश्वमेध वही करता है जो सर्वोच्च होता है। वह सर्वोच्चता सहायको द्वारा बनाई जाती है और स्वयं भी पैदा की जाती है। अश्वमेध के घोड़े के माथे पर स्वर्णपत्र मे अश्वमेधकर्ता की श्रेष्ठता लिखी रहती थी। उसी श्रेष्ठता का अपहरण करके वीर लोग अपने को श्रेष्ठ बनाते थे। यह काम

शत्रुता और संस्कृति के अन्तर से नहीं होता। शतानीक ने धृत-राष्ट्र के घोड़े से ही अश्वमेध किया। इससे दोनों एक ही संस्कृति के थे। वेदिक इन्डेक्स शतपथ ब्राह्मण मे कोशल और विदेह पर आर्यों की सभ्यता का प्रचार वर्णन करते हुए कहता है "इसका स्पष्ट प्रमाण है कि कुरु पंचालदेश मे ब्राह्मण-संस्कृति का केन्द्र था" (कुरु पंचाल देखिये)।

वस्तुत: शतपथ ब्राह्मण में किञ्चित्मात्र भी ब्राह्मण-सभ्यता के प्रसार का वर्णन नहीं है और न किसी देश में ही सभ्यता के प्रचार का वर्णन है। कहीं यह भी नहीं लिखा है कि कुरु पञ्चाल आर्यों की सभ्यता के केन्द्र थे, कोशल और विदेह में यहाँ से सभ्यता गई और उसका प्रसार हुआ। योरोपियन विद्वानो के इस प्रकार के असंबद्ध प्रलाप का कारण शायद वहाँ पर आई हुई यह कथा हो। "विदेघ माथव के मुख से निकलकर अग्निद्वारा सरस्वती से सदानीरा के तट तक के प्रान्त को भस्म करना। अग्निद्वारा जलाये जाने से उस देश को पवित्र मानना और दूसरो को नहीं मानना। ब्राह्मणो ने यज्ञद्वारा उसे भी पवित्र बनाया।"

शतपथ मे यह कथा इस प्रकार लिखी है:—मधु के पुत्र विदेघ नामक राजा के मुख मे वैश्वानर अग्नि का वास था। वह गर्मी के कारण सरस्वती में पड़ा था। उसका पुरोहित रहू-गण था। उसने विदेघ से कुछ पूछना चाहा। विदेघ के मुख में अग्नि थी, अत: वह बोल न सका। पुरोहित ने अग्नि को बाहर लाकर उसके द्वारा कार्य कराना चाहा। उसने ऋग्वेद के मन्त्रों से अग्नि की स्तुति की। अंतिम मन्त्र मे घृत शब्द आया

है। उसको सुनकर अग्नि विदेघ के मुख से निकल पड़े और पूर्व देश को जलाते हुए चल पड़े। सदानीरा के तट पर आकर अग्नि ठहर गये। उसमें अधिक जल होने से उसे जला न सके। अग्नि के जलाने के कारण सरस्वती से सदानीरा तक का स्थान पवित्र हो गया। ब्राह्मण लोग सदानीरा के पार का स्थान अपवित्र मानते थे, क्योंकि अग्नि ने सदानीरा को नहीं जलाया। उस नदी के पार भी ब्राह्मण लोग अधिकता से बसते थे। वह देश अपवित्र होने से यज्ञ के योग्य नहीं रहा। तब विदेघ ने अग्नि से प्रार्थना की। अनंतर अग्नि ने प्रसन्न होकर कोशल और विदेह दोनो देश पवित्र कर माथव को दे दिये और दोनो माथव के आधीन होने से 'माथव' देश नाम पड़ा। सदानीरा नदी कोशल और विदेह की मर्यादा है। इस कथा का हेतु शतपथ ब्राह्मण मे यह दिखलाया है कि 'घृत' शब्द कहने से माथव के मुख से अग्नि निकल पड़ा। इसलिये जिन मन्त्रों में घृत शब्द आया है, उन मन्त्रों से अग्न्याधान करो। यह कथा माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मण की है। काण्व शतपथ मे भी यही कथा इसी प्रकार आई है। उसमें यह विशेष है कि बाद को ब्राह्मणों ने यज्ञ द्वारा विदेहदेश को पवित्र किया। कुरु-पञ्चालों के साथ कोशल-विदेह दोनों ही माथव है। इसमे यज्ञ के प्रकरण मे इस कथा से अग्न्याधान मे मन्त्रों का निर्णय किया है, अर्थात् जिन मन्त्रों मे 'घृत' शब्द आया है उनसे अग्न्याधान करो। कथा समझाने के लिये कही गई है। कथा का कोई मान नहीं। इसके बल पर आर्य-सभ्यता के प्रसार का प्रमाण देना निराधार है। योरोपियन सिद्धान्त है कि "आर्य-सभ्यता के

केन्द्र कुरु-पञ्चाल थे और कोशल विदेह में सच्ची ब्राह्मण-संस्कृति कुरु-पञ्चाल देश से ही आई। आर्यों के जत्थे के जत्थे बाहर से आये। एक जत्था एक स्थान पर गया। जब दूसरा जत्था आया, तब पहला आगे खिसका। इसी प्रकार समस्त देश में आर्य फैल गये।" इनसे यह पूछना चाहिये कि ये आर्यों के जत्थे जो कोशल और विदेह में गये, इन्हीं में वह ब्राह्मण-संस्कृति फैली या आदिनिवासियों में? यदि आदिनिवासियों में फैली तो वे भिन्न रहे, या आर्यों में मिल गये। यदि मिल गये तो आज भिन्न, जैसा आप मानते हैं, नहीं होना चाहिये। यदि नहीं मिले तो उनमें आर्य-संस्कृति कैसी फैली? वह अपने को (१) आदिनिवासी कहते रहे और आर्यधर्म को अपना धर्म मानते रहे, या (२) आर्यों से अपने को उन्होंने अभिन्न समझा? पहली बात तो नहीं है। यदि दूसरी बात कहें, तो ऐसा आपका सिद्धान्त नहीं है। आपको तो हमलोगों में से कुछ लोगों को आदिनिवासी बनाकर भिन्न करना ही है, जिस भेद के बल पर इन्हें राज्य करना था और उसे पराकाष्ठा पर पहुँचाकर इन लोगों ने पर्याप्त आपसी फूट उत्पन्न कर दी। यदि आर्यों में ही सभ्यता फैली तो क्या वे आर्य जो पहले कोशल-विदेह गये थे, आर्य-सभ्यता से हीन थे? क्या उनको कुरु-पञ्चाल से जब सभ्यता गई तब मिली? यदि वे आर्य-सभ्यता से हीन थे तो आर्य कैसे थे? यदि आप कहें कि आर्य-सभ्यता तो थी परन्तु ब्राह्मण-सभ्यता नहीं थी, तो हमारा पूछना है कि क्या आर्य-सभ्यता और ब्राह्मण-सभ्यता भी भिन्न थी? यदि भिन्न थी तो क्या अन्तर था? यह हमारी समझ में नहीं

आता। आर्य पहले गये और सभ्यता पीछे गई, आपका यह कथन आपके शिष्य भले ही डाक्टर-पद के लालच मे मान ले, किन्तु कोई समझदार तो मानने के लिये तैयार न होगा। आपका कथन है–'यह संभव है कि पूर्वदेश पश्चिम से कम आर्य था।' आर्यता की कमीवेशी की माप क्या थी? आर्य-सभ्यता के अनुसार यदि व्यवहार को कहें तो उनमे वह कौन सभ्यता थी कि जिससे वे व्यवहार करते थे, यह भी आपको बतलाना था जिसकी कमी हुई और आर्य-सभ्यता आ गई। आर्य-सभ्यता न होने पर भी वे आर्य थे, ऐसा आपको भी स्वीकार न होगा इससे उनमे क्या आर्य-सभ्यता थी और उसमे कितनी कमी थी, जिसकी पूर्ति कुरु-पञ्चाल ने की? शायद आप यह कहें कि अध्यात्मशक्ति का ज्ञान उनमें नहीं था, इसमे क्या प्रमाण है? याज्ञवल्क्य जो विदेहवासी थे, उनका नम्बर कितना ऊंचा था, यह बृहदारण्यकोपनिषद् स्पष्ट कह रहा है। काशी के राजा अजातशत्रु का अध्यात्मज्ञान कितना प्रबल था, इसको बृहदारण्यक और कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् स्पष्ट कर रहे हैं। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों के ऊपर थे, यह मानना केवल बुद्धकाल मे सम्भव हो सकता है, जिसे वे बतला सकते हैं। बौद्धों को ब्राह्मणों का शत्रु तो आप लोग ही सिद्ध कर रहे है। उनका कथन ब्राह्मणों के विषय मे असत्य भी हो सकता है। ऋ० वे० मे कीकटों को, जो वर्तमान मगध है, कितना उच्च माना है? फिर उत्तर वैदिक सभ्यता का मगधों के प्रति असहिष्णुता का भाव इत्यादि आपका कथन आप ही समझें क्योंकि ऋ० वे० तो आपके मत से पूर्व वैदिक सभ्यता में है।

इसमे कौन मगध को प्रतिष्ठा मिली है। उत्तर वैदिक मे भी मगधो के साथ कोई असहिष्णुता नहीं है। आपका विचारमात्र है। आप प्रमाण मे लाट्यायन श्रौतसूत्र देते हैं। वह लाट्यायन श्रौतसूत्र हम संसार के सामने रख रहे हैं। श्रौतसूत्र यज्ञों का विधान बतलाते हैं। कर्मकाण्ड किस प्रकार किया जाय? कहाँ किया जाय? कौन करे? कौन कराये? कौन दान के अधिकारी हैं? कौन अनधिकारी हैं, इत्यादि बातो का निर्णय करता है। इसके अनुसार क्रिया विधियुक्त होने से सफल होती है। उसमे जिन बातों को सूत्रकार ऋषियो ने उस काम के अनुकूल समझा, उनके करने का विधान किया और जिनको हानिकारक समझा, मना कर दिया। इस समय लोक मे भी तपेदिक के मरीज को यदि स्त्री-संसर्ग से वैद्य या डाक्टर मना करता है तो वह मरीज के कल्याण के लिये करता है; न कि स्त्रीजाति के साथ द्वेष से। उसको मरीज के कल्याण का ध्यान है, न कि सांसारिक बातो पर। यही दशा श्रौतसूत्र की है। यदि सरस्वती के तट पर यज्ञ की आज्ञा है तो बाकी देशों से द्वेष है, ऐसा कोई नहीं समझता। यदि वेदवेत्ता कर्मकाण्डी को यज्ञ के कार्यों मे नियुक्त करना लिखा है तो मूर्खों से सूत्रकारों का द्वेष था, ऐसा कोई नहीं समझता। यदि दान देने के पात्र तपस्वी, विद्वान् और सच्चरित्र माने गये है तो मूर्ख, कुकर्मी, तपस्यारहितो से सूत्रकार का द्वेष कोई नहीं समझता। परञ्च योरोपियन विद्वान् इससे भिन्न ही मार्गो पर चलते है। यदि सरस्वती के तट पर यज्ञ का विधान है तो ये सरस्वती के किनारे पर रहनेवाले थे, इससे इन्होंने सरस्वती को पवित्र माना। विद्वान् लोग यज्ञ मे

रहें, यह लिखा हो तो बिना पढ़े लोग यज्ञ में न जा सकें—इस द्वेष से सूत्रकारों ने लिखा, यह इनका रिसर्च होता है। लिखनेवाले पढ़े-लिखे थे, तपस्वी थे और ब्राह्मण थे, इसलिये सब ब्राह्मणों के लिये और पढ़े-लिखे तपस्वी (जंगली, असभ्य) लोगों के लिये लिख दिया, यह रिसर्च तैयार होगी। उसमें मुख्य तत्व क्या है? ग्रन्थ किसलिये लिखा गया? इन सब बातों का उल्लेख गन्धमात्र भी रिसर्च में न होगा। क्योंकि उसका समझना भी कठिन है और रिसर्च के विरुद्ध होगा। इससे तत्व की बातों पर विचार का नाममात्र भी न होगा। केवल पुस्तक की पत्र गणना, अक्षर-गणना तथा कौन शब्द कितने बार आया एवं किस शब्द के साथ आया, यही रिसर्चरी क्रिया दिखलाई देगी। यही दशा वैदिक इन्डेक्सकार ने निम्नलिखित सूत्र की की है। वहाँ पर व्रात्यस्तोम यज्ञ का विधान है। व्रात्य लोग उसको करते है। व्रात्य वे कहलाते हैं जो किसी कारण से व्रतभङ्ग होने या ब्राह्मण के योग्य कार्य न करने से ब्राह्मणता से कुछ हीन हो जाते हैं। उनके लिये व्रात्यस्तोम यज्ञ का विधान है। उसमें दान का वर्णन करते हुए ८।६।२८ सूत्र मे "व्रात्येभ्यो व्रात्यधनानि ये व्रात्यचर्याया अविरताः स्युर्ब्रह्मबन्धवेवामागधदेशीयाय यस्या एतद्ददाति तस्मिन्नेवमृजानायान्तीतिह्याह" इसका भाष्य आचार्य अग्निस्वामी ने किया है। उसका भाव यह है कि व्रात्यों का धन व्रात्य लोगों को देना चाहिये, क्योंकि यह व्रात्यों का ही धन है या ब्रह्मबन्धु मागध देशीय को देना चाहिये, ऐसा करने से दाता के पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मबन्धु शब्द का अर्थ यह लिखा है कि ब्रह्म उसके बन्धुओं में है, उसमे नहीं। मागध

शब्द का अर्थ राजादि की स्तुति करनेवाला गवैया, जैसा कि राजदर्बारों में वर्तमान समय में उपस्थित हैं। प्रातः राजा लोगों को जगाने इत्यादि का काम करते हैं। 'मागध' के साथ 'देशीय' शब्द जो लगा है, वह "ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः" ४।३।२७ इस सूत्र से देशीयर् प्रत्यय का है, उसका अर्थ 'न्यून' होता है। 'अच्छी तरह गाना न जाननेवाला' किया है। दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि मगध देश है, उसमें उत्पन्न वह मागध देशीय है और सब पहला ही अर्थ है, इससे मागध देशीय के लिये दान देना लिखा है। कोई असहिष्णुता न सूत्र से प्रकट होती है और न भाष्य में। शुद्ध ब्राह्मण से कुछ न्यून होने से व्रात्यों का दान व्रात्यों को लिखा है। अथवा तपश्चर्या, वेदाध्ययनादि छोड़कर दूसरे की स्तुति करने का पेशा करनेवाले नीच ब्राह्मण को देना लिखा है। शुद्ध के लिये नहीं लिखा, क्योंकि उनकी समानता उन्हीं से थी। सूत्र में मागधदेशीय शब्द लिखा है, मगध-निवासी नहीं लिखा। भाष्यकार ने भी गायक ब्राह्मण अर्थ माना है। कोई लोग मगध-देशनिवासी ब्राह्मण अर्थ करते हैं, भाष्यकार ने इसे अपने विचार से भिन्न विचारवालों का मत लिखा है। उसमें अपनी अरुचि भी प्रकट की है। 'अपरे' शब्द यहाँ 'अरुचि' का द्योतक है। टीकाकारों की प्रथा है कि वह अपने अरुचि-बोधक शब्द लिख देते हैं और उसका कारण पाठक लोग समझ लेते हैं, अथवा गुरु लोग समझा देते हैं। वह कुञ्जी गुरु लोगों के हाथ में रहती है। अरुचि का हेतु निम्न-लिखित है:—

"मगध शब्द देशवाची है। उसमें रहनेवाला मागध कहा

जाता है। सूत्र मे 'मागध' के साथ 'देश' भी है। मगधदेश शब्द की वृद्धसंज्ञा न होने से 'वृद्धाच्छ:' सूत्र से 'छ' प्रत्यय नहीं हो सकता। इसलिये मगधदेश शब्द से स्वार्थ मे अण् प्रत्यय करके मागधदेश शब्द बनाना पड़ता है। तब 'छ' प्रत्यय होकर 'मागधदेशीय' बनता है। इस प्रकार बनाने से शब्द तो बन जाता है, लेकिन क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है। फल कुछ नहीं होता है। इससे भाष्यकार 'अपरे' लिख रहे है, अर्थात्, वह कहते है कि हमारी सम्मति नहीं है। इस प्रकार यह मगध-देश-निवासी ब्राह्मण अर्थ खींचातानी से निकल सकता है। इस अर्थ की सृष्टि बौद्ध काल मे हुई हो, यह संभव है। परञ्च सूत्रकार का उसपर कोई भी विचार नहीं था, यह स्पष्ट है।"

अभिधान चिन्तामणि ९७४ मे इकारान्त काशि शब्द वाराणसी का नाम लिखा है।

काशी—(१) वे० इ० कार इसको पुरानी नगरी मानते हैं और यह लिखते है कि यद्यपि काशी बहुत बाद का शब्द है, तब भी यह बहुत संभव है कि यह नगर काफी पुराना है, जैसा कि वरणावतीनदी जो अथर्ववेद ४।७ मे आई है, वाराणसी (बनारस) से संबद्ध हो सकती है।

(२) जाग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म पृ० ३ अंगुत्तरनिकाय १।२१३,४।२५२।२५५।२५६ के हिसाब से काशी १६ जनपदों मे से थी। इसकी राजधानी वाराणसी थी। इसके नाम सुरुन्धन, सुदस्सन, ब्रह्मवद्धन, पुप्फवटीरम्म (जातक ४।११९-१२०), मालिनी (जातक ४।१५)। इसका क्षेत्रफल १२ योजन है। मिथिला और इन्द्रपत्त का भी ७॥ ली था।

वस्तुतः यह शब्द नगरी और देश दोनों का वाचक है। कौषीतकी ब्रा० उप०[1] मे 'काशीविदेहेषु वसन्' ऐसा प्रयोग आया है। दोनो अर्थ हो सकते हैं। पुराणो[2] मे नगरी के अर्थ मे भी आता है।

वे० इ० कार का 'वरणावती' से इसका सम्बन्ध करना सर्वथा अशुद्ध है। क्योंकि इस नदी का नाम 'वरुणा' है।

काष्ठ—(१) रैप्सन इस शब्द को क्षत्रिय का रूपान्तर मानते हैं। (भा० रू० २।६१७)

(२) हेमचन्द्र चौधरी संस्कृत के कथ अथवा कन्थ को कठ से एक कर रहे हैं। (भा० रू० २।६१७)

---

(१) ४।१

(२) पद्म० उ० २०४।३७ यह उमापति की राजधानी है। पद्म० आ० ३१।१६। यह तीर्थ है। पद्म० उ० १७८।२६ यह गगा के तट पर है। स्कन्द० मा० कौ० ४५।१०९ यहाँ पर यम और कुबेर ने लिङ्गस्थापन किये। स्कन्द० वै० वे० १७।५ यह देश है। स्कन्द० माहे कौ० ९।२८ यह पुरी है। स्कन्द० प्रभा० प्रभास मा० २१९।१५ यह पुरी है। यहाँ सूर्य्य ने शिव को स्थापित किया। नारदीय० पू० ६।३५ इसका नाम वाराणसी और अविमुक्त भी है। नारदीय० उ० ११।७ यह तीर्थ है। अग्नि० ११२।३ यह वाराणसी का नाम है। वाल्मी० बा० (नि०) १३।२३, वाल्मी० उ० (नि०गु०) ३८।१८ यह वाराणसी का नाम है। वायु० उ० २७।१८ यह पुरी है। मार्क० ४१।२७ यह पुरी है। भविष्य० उ० १३०।८२ यह पुरी है। गरु० उ० २८।३ यह पुरी मोक्ष देनेवाली है। देवीभा० ३।२।५४, ९।८।११ तथा १०।६।६ यह तीर्थ है। इसका अविमुक्त भी नाम है। इससे दक्षिण दिशा मे विन्ध्याचल है। शिवमहा० शतरुद्र० २।२८ यह पुरी है। गणेश० उ० १२।७, श्रीमद्भा० १०।६६।१० यह पुरी है।

(३) जौली और जायसवाल के मत मे कठ है (भा० रू० २।६१७)

(४) जयचन्द्र विद्यालंकार भी कठ के ही पक्ष मे है (भा० रू० २।६१७)

वस्तुत: यह पर्वत आजकल पंजाब मे सागला पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। जैमिनीय ब्रा०[1] १।१०५ मे इसका वर्णन आया है। इसके समीप सागला नामक नगर है। इस पर्वत के समीप रहनेवाले काष्ठीय कहे जाते थे। 'काष्ठीय' का अपभ्रंश 'काठीय' बना और उससे 'काठी' बना। सिकन्दर के शत्रु 'कठायिन' यही काठी लोग है, जो लायलपुर और कोटकमालिया के इर्द-गिर्द पाकिस्तान बनने से पहले बसते पाये जाते थे। जो लोग कठायिन का अर्थ कठ मानते हैं, उनका मत ठीक नहीं। क्योंकि वेद की कठशाखा पढ़नेवाले ही कठ कहे जाते थे। यह शब्द ब्राह्मणादि जातिवाची शब्द के समान जातिवाची नहीं है। यह वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इस सूत्र मे स्पष्ट है। और कठ शब्द लड़ाकू जाति के नाम से संस्कृत-वाङ्मयमात्र मे प्रसिद्ध नहीं है। वस्तुत: क्रथ और कन्थ मानना भी ठीक नहीं।

किरात—१. (वे० इ०) यह नाम उन लोगो के लिये आया है जो पहाड़ो की गुफाओ मे रहा करते थे, जैसा कि वाजसनेयी संहिता ३०।१६ तथा तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१२।१ मे किरात को गुहा (गुफा) के दान के लिए तथा अथर्ववेद १०।४।१४ मे

(१) १।११५ में देव और असुरों ने दौड मे इस पर्वत को काष्ठा (हद) माना, इससे इस पर्वत का नाम 'काठ' पड़ा, यह लिखा है।

किरात की लड़की के लिये, जो पहाड़ के किनारे दवा खोदती थी, आया है। इन प्रमाणों से यह प्रकट होता है कि बाद में किराताज् लोग पूर्वी नेपाल में रहते हुए माने गये। परन्तु यह नाम किसी पहाड़ी जाति के लिए संकेत करता है। संभवतः आदिमनिवासी जंगली रहे होंगे। यद्यपि मानवधर्मसूत्र इनको पतित क्षत्रिय मानता है।

२. जिमर, स्मिथ, लासन और लुडविक भी इसी मत के माननेवाले हैं।

३. (जा० डि० पृ० १००) किरात देश टिपारा। उदयपुर में टिपारा पहाड़ियों में त्रिपुरेश्वरी का मन्दिर है। यह टिपारा एक पीठ है (महा० भी० अ० ९, ब्रह्म० अ० २७, विष्णु० २। अ० ३)। यह टालेमी का किर्हडिय है। इसमें शिलहट और आसाम सम्मिलित हैं (देखो राजमाला या क्रानिकल्स आफ टिपुरा जे० एस्० बी० १९।१८५० पृ० ५३६)। सिकिम के पश्चिम मोरङ्ग में अब भी किरात रहते हैं (स्चाफ पेरीप्लस आफ दी ऐरिथ्रियनसी पृ० २४३)। ये नेपाल के भाग से लेकर बहुत पूर्व तक रहते थे (जे० आर० ए० एस्० १९०८ पृ० ३२६)।

वस्तुतः यह एक प्रकार की जंगली जाति है। मानवधर्मशास्त्र[1] इनको क्षत्रिय मानता है। पुराणों में भी इनका वर्णन है। यह शब्द देशअर्थ[2] में भी आता है। रघु० काव्य ४।७६ में

---

(१) मनु० १०।४४ ये क्षत्रिय धीरे-धीरे क्रियाओं के लोप होने और ब्राह्मणों को न देखने से वृषलत्व को प्राप्त हो गये।

(२) स्कन्द० काशी० ६९।१५७ यह एक देश है, जहाँ पर महादेव

भी इनका नाम आया है। वाजसनेयी सं० ३०।१५ में गुहाभ्य किरातम्' ऐसा पाठ आया है। यही पाठ तैत्तिरीय सं० में भी

ने किरातवेष धारण किया था। यहाँ किरातेश्वरमहादेव है। यह हिमालय में इन्द्रकील नाम का पर्वत है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।६० में यह देश भारत के पश्चिम में है, १६।३८ में यह देश पहाड़ी है, १८।५० में यह देश भारत में गंगा के तट पर है तथा १८।५४ में इस देश में ह्लादिनी नदी है। मत्स्य ११४।३५ तथा १२१।४९ यहाँ गंगा है। यह देश मध्य-देश में है, ११४।५६ यह देश भारत में है और पहाड़ी है तथा १२१। ५३ इस देश में ह्लादिनीनदी है। नारदीय० पू० ५६।१४९ यह देश पूर्वमुख कूर्म के बाहुमण्डल में है। मार्कं० ५४।५७ यह देश पर्वताश्रयी है, ५५।५० पूर्वमुख कूर्म के पूर्वोत्तर पाद में है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।५१ तथा ५७, वायु० पू० ५०।१३६ यह देश पर्वताश्रयी और भारत में है। ४७।५२ यहाँ ह्लादिनीनदी है। वामन० १३।५८ यह देश कुमारद्वीप (भारत) में है और पर्वताश्रयी है। श्रीमद्भा० ९।२०।३०, वाल्मी० कि० (इ०) ४४।२० यह देश हिमालय पर है और उत्तर में है। महाभा० सभा० (म) १५।७९।। यह देश है तथा २४।४१।। यह देश उत्तरपूर्वी है। आसाम की गोहाटी के राजा भगदत्त की मदद को किरातों के आने का वर्णन है। तथा २४.७६ यह देश उत्तरी है। तथा (म) ५२।१२३।। (चि०) ५२।८ (नि०) ७८।८४ किरात कई प्रकार के होते हैं। कोई हिमालय के परार्ध में रहते हैं, अर्थात् हिमालय के पश्चिमी आधे हिस्से में रहते हैं। कोई सूर्योदयपर्वत के समीप के हिस्से में रहते हैं। कोई समुद्र के किनारे रहते है। कोई ब्रह्मपुत्र के दोनो ओर रहते है। कोई फल-मूल खाते हैं। कोई चमड़ा पहनते हैं। सभी प्रकार के किरातों ने युधिष्ठिर के यज्ञ की भेंट में चन्दन, अगर और बहुमूल्य दुशाले, चमड़े और बढ़िया सुवर्ण तथा सभी प्रकार की सुगन्धित वस्तुएँ और दस हजार किराती दासियाँ दूर से पैदा हुए सुन्दर मृग, पक्षी और

लिखा है। यह मन्त्र नरमेधयज्ञ के प्रकरण का है। इसका अर्थ गुहा के अधिष्ठातृ देवता के लिए किरात की बलि देते है। इससे किरात गुफा में रहते थे, यह सिद्ध नहीं होता। अथर्ववेद १०।४ में विच्छू के विष दूर करने के उपाय में जो मन्त्र लिखे है, उनमें १।१४ मे किरात की लड़की पहाड़ के शिखरो मे दवा खोदती है—यह लिखा है। इससे पहाड़ो के समीप या पहाड़ो पर रहना हो सकता है। गुफा मे रहना कहाँ से आया? क्या सभी पहाड़ी लोग गुफा मे ही रहते है? बाद मे किरात पूर्वी नेपाल मे रहते हुए माने गये। इससे यह सिद्ध होता है कि पहले वहाँ नहीं थे। क्या नेपाल मे पहाड़ नही है या गुफाएँ नहीं है कि जिनमे रहते? वस्तुत. किरातो के रहने का कोई प्रमाण वैदिक ग्रन्थों मे नहीं मिलता। पुराणग्रन्थ हिमालय पर गढवाल मे, गंगा के तट पर, ह्लादिनी (वर्मा की ऐरावती नदी) के तट पर, ब्रह्मपुत्र के तटपर, समुद्र के किनारे, पश्चिमी हिमालय में, आसाम में रहनेवाले तथा कच्ची मछली खानेवाले इत्यादि नाना प्रकार के किरात मानते है। नेपाल और तिब्बत मे भी हो सकते हैं। यह जाति वीर होने से अब भी अपना क्षत्रियत्व का

पर्वत की विचित्र विचित्र सुन्दर वस्तुओं को दिया। महाभा० उद्यो० (सु०) १९६।७ (चि०) १९५।७ किरातयोद्धा दुर्योधन के पक्षपाती होकर लडने को आये। महाभा० कर्ण० (चि०) ५।१५ (नि०) २।१७ यह सागर के अनूप के रहनेवाले थे। कामरूप और चीन का स्वामी भगदत्त इनका स्वामी था। महाभा० सभा० (चि०) ३२।१७ यह किरात म्लेच्छ हैं और परम दारुण तथा पश्चिमी हैं। बृहत्स० १४।३० यह देश भारत में ईशान में है।

चिह्न सूचित करती है। संस्कार और आचार छूट जाने से इनको म्लेच्छ कहना भी ठीक ही है। मनु इनको प्रारम्भ में आर्य मानते हैं, बाद मे शूद्र होना मानते है। पुराण भी आचार से पतित होने के कारण म्लेच्छ मानते हैं। तब भी भेद के बीज वपन करनेवाले इनको आदिनिवासी ही बनाने की चेष्टा में है।

कीकट—१. (वे० इ०) यह एक जाति का नाम है। ऋ० वे० ३।५३।१४ में केवल एक स्थान पर आता है, जहाँ पर कि वे गानेवालों के विरोध मे दिखलाई पडते हैं। प्रमगन्द के नेतृत्व मे मालूम होते हैं। यास्कनिरुक्त ६।३२ मे कहता है कि कीकट अनार्य लोगों के देश का नाम है।

२. राथ का मत है कि बाद को कीकट मगध का पर्यायवाची शब्द माना गया।

३. जिमर और ओल्डनवर्ग का कहना है कि ये अनार्य लोग थे। ये ऐसे देश मे रहते थे जो पीछे से मगध के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

४. वेबर का मत है कि ये लोग मगध मे रहते हुए माने जाते है; परन्तु आर्य थे। यद्यपि अन्य आर्यजाति से भिन्न थे। संभवतः यह इनकी प्रवृत्तियो के कारण हुआ। क्योंकि बाद मे मगध बौद्ध धर्म का केन्द्र था। परन्तु इनका निवासस्थान अब तक अनिश्चित है।

५. जा० डि० पृ० १०० कीकटमगध (वायु० अ० १०५, ऋ० वे० ३।५३।१४)। तारातन्त्र के अनुसार यह वरणपर्वत से गृद्धकूटपर्वत तक था।

६. वार्ड के मत में यह मगध का दक्षिणी भाग था। (जा० डि०)

वस्तुतः यह शब्द ऋग्वेद में आया है और मगधदेश का नाम है। ऋ० वे० ३।५३।१४ का अर्थ है—इन्द्र से प्रार्थना है कि कीकटदेश में गायें आपका कुछ भी उपयोग नहीं करतीं; अर्थात् वहाँ उनसे यज्ञ का कोई कार्य नहीं होता है। इसलिये उन गायों को हम लोगों को दे दीजिये। व्याज के धन से जो कुल धनाढ्य हैं, उनका भी धन हमें दे दीजिये। जो लोग उच्चजाति में होकर भी नीचजाति में सन्तान पैदा करने लगे हैं, उनका भी धन हमको दे दीजिये। इस मन्त्र का व्याख्यान करते हुए निरुक्त में यास्क ने ६।३२ में "कीकटानाम देशोऽनार्यनिवासः" यह लिखा है। अर्थात् कीकट नाम का देश है और उसमें अनार्य रहते हैं। इस मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि हैं, इन्द्र देवता हैं, गानेवालों से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है और न प्रमगन्द का नेतृत्व ही मालूम पड़ता है। निरुक्त जब इसको अनार्यदेश कह रहा है तब भी यह जातिवाचक शब्द है, यह कहना सरासर धाँधली है। 'बाद में मगध का पर्यायवाची शब्द माना गया' ऐसा कहना तभी बनता है, जब कि पहले किसी दूसरे का नाम हो। क्या कोई कीकट नामक दूसरा देश किसी प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है? यदि है तो उसका क्या नाम है और वह ग्रन्थ कितना पुराना है? यदि नहीं है तो आपको कैसे ज्ञात हुआ कि बाद में मगध का पर्याय हुआ?

जिमर और ओल्डनवर्ग कीकटाज् को अनार्य मानते हैं

और उनका निवासस्थान उस देश को मानते हैं जो पीछे मगध के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वेद में आये कीकट को निरुक्त देश मानता है, उसके विरुद्ध जाति मानना अनुचित है। दूसरे वह देश उस समय मगध नहीं कहा जाता था, बाद में मगध कहा गया—इसमें क्या कोई प्रमाण है? कथनमात्र में कोई बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। कीकट मगध का पर्याय है, यह पुराणादि से निश्चित है। जो लोग 'आर्य लोग पञ्जाब के आगे का भूगोल न जानने से ऋग्वेद में न लिख सके' ऐसा प्रतिपादन करते हैं, उनको ऋग्वेद ३।५३।१४ देखना चाहिये कि ऋग्वेद में मगध का नाम है कि नहीं? यदि है तो स्वीकार करना चाहिये। वेबर का मत है कि ये लोग मगध में रहते हुए माने जाते हैं; परन्तु आर्य थे, यद्यपि अन्य आर्यजातियों से भिन्न थे। जब निरुक्त इस देश को अनार्यनिवास कह रहा है तो आर्यों का निवास यह कैसे हो सकता है? आर्य लोग रहते भी हों और अनार्यनिवास हो, यह तो सम्भव नहीं। 'आर्य थे किंतु दूसरी आर्य जातियों से भिन्न थे'—यह भी प्रमाणाभाव से नहीं माना जा सकता। ओल्डनबर्ग और हिल्लेब्राँट इस बात को स्वीकार नहीं करते सो ठीक ही है। पुराणों[1] में यह देश के

---

(१) पद्म० पा० २०।८५ यह देश है, धर्म में वर्जित है। पद्म० सृ० ११।६६ इस देश में गया है। नारदी० उ० ४७।१४, गरु० पू० ८१।१, ५६।३ तथा ८।२५ यह देश है और इसमें पवित्र गया है। देवी भा० १३।२० यह अपवित्र देश है। तथा ११।६।२२ यहाँ विन्ध्यपर्वत है। कल्कि० ३।१४।२७ यह देश है। स्कन्द० का० ६८।६८, श्रीमद्भा० ११।२१।८, गर्ग० वि० ३।१६, महाभा० कर्ण०

अर्थ मे आया है और मगध का नाम है। यह काव्य[1] और कोषों[2] में भी आता है। स्मृतिओं[3] में भी इसका नाम है।

कुन्ति—१. (वे० इ०) "कुन्तीज् काठकसंहिता २६।९, मैत्रायणी सं० ४।२।६ में एक बिगड़े हुए तथा अस्पष्ट अवतरण (कौन्ते) मे आते हैं। ये लोग पञ्चालाज् से हराये गये थे।

२. वेबर का भी यही मत है।

३. जा० डि० पृ० १०९ कुन्तिभोज यह भोज भी कहलाता है। मालवा का पुराना नाम है। जहाँ पर युधिष्ठिर तथा उनके भाइयो की माता कुन्ती भोजों के राजा कुन्तिभोज के द्वारा लाई और पाली गई थी (महाभा० आ० अ० १११-११२)। यह स्थान एक छोटी नदी जिसका नाम अश्वनदी या अश्वरथानदी था, उसके तटपर था (महाभा० वन० अ० ३०६, बृहत्सं० १०।५।१५)। यह कुन्ति भी कहलाता था (महाभा० भी० अ० ९, विराट प० अ० ९)।

वस्तुतः यह देश है और मध्यदेश मे है। ग्वालियर कमिश्नरी मे मुरैना नामक प्रान्त मे पड़ता है। कुतवार नामक स्थान जो आज इस नाम से प्रसिद्ध है, वही पुरानी कुन्तिभोज की

(नि) ५।१६ यह देश है। स्कन्द० आ० आ० मा० ५०।१५६ यह देश है और इसमे गयातीर्थ, पुनःपुनानदी, च्यवन का आश्रम और पुण्य राजगिरि है।

(१) नैषधीय० च० १२।८८

(२) मेदिनीकोष ट० तृ० ३७, अभिधान चि० ९६०।

(३) देवलस्मृति श्लोक ८ यह देश है और त्रिशकुदेश से उत्तर है।

राजधानी थी जो कि मुरैना जिले में है। यह कुन्तिभोजपुर का अपभ्रंश है। यह आसननदी के तट पर है, जो चम्बल की सहायक क्वाँरीनदी की सहायक है। पुराणों[1] में इस देश का नाम आता है। महर्षि पाणिनि[2] ने इसको जनपदसमान-क्षत्रियवाची माना है; अर्थात् यह देशवाची और क्षत्रियवाची भी है। इसका राजा 'कौन्त्य' कहा जाता है। क्षत्रिय का लड़का एकवचन मे 'कौन्त्य' कहा जाता है। स्त्री 'कुन्ती' कही जाती है। बहुवचन में कुन्ति क्षत्रिय की सन्तान और राजा 'कुन्ति' ही कहे जाते है। अश्वनदी को अश्वरथा कहना ठीक नहीं और मालवा मे मानना भी एकदम असंभव है।

कुभा—१. वे० इ० यह एक नदी है। ऋ० वे० मे ५।५३।९ और १०।७५।६ में वर्णित है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यह वर्तमान काबुल है तथा ग्रीक लोगों की कोफिस है।

---

(१) पद्म० आ० ६।३५ तथा ३८ यह देश भारतवर्ष में है। मत्स्य० ११४।३५ यह देश मध्यदेश में है और भारत मे है। कुन्तला भी पाठान्तर है। वह अशुद्ध है। कुन्तला का मध्यदेश मे सम्भव नहीं। गरु० पू० ५५।१० यह जनपद भारत के मध्यदेश में है। महाभा० भी० जम्बू० (चि० पू०) ९।४० यह देश भारत मे है। श्रीमद्भा० १०। ८६।२० यह देश है और द्वारका से मिथिला जाते हुए मार्ग मे पडता है। गर्ग स० वि० ३।१८ यह देश है। विष्णु ध० १।९।२ यह जनपद भारत के मध्यदेश मे है। महाभा० सभा० (म०) ३५।५९।। ये राजा लोग परशुराम से मारे गये। महाभा० द्रो० (चि०) ७०।११ (नि०) ०।१३ ये क्षत्रिय परशुराम से मारे गये।

(२) महाभाष्य द्वयञ्० ४।१।७०, स्त्रिया० ४।१।१७५

२. जिमर और लुडविक का भी यही मत है। (वे० इ०)

३. जा० डि० पृ० १०५ कुभा कावुलनदी ग्रीकों की कोफेन या कोफेस जो कोहीबाबा के सिरइचश्मा नामक झरने से निकली है और कावुल से ३७ मील पूर्व है। यह कावुल के मध्य से बहकर ठीक अटक के ऊपर सिन्धु मे गिरती है (ऋ० वे० १०।७५)। यह मुसलमान ऐतिहासिक अब्दुलकादिर की नीलाह है। (जे० ए० एस० बी० १८४२ पृ० १२५)

(नं०२) "वह जिला जिसमे से कोफेस या कोफेन या काबुल-नदी बहती है, कावुल कहा जाता है। यह काबुल नाम वैदिक कुभा नाम से निकला है। यह टालेमी (मैक्रिडले की टालेमी ७।१ में सेक्सन २७) और एरियन की कोफेन (मेक्रिंडले की मेगास्थनीज् और एरियन पृ० १९१) काबुलनदी की घाटी निग्रहार या नुनग्निहार कहलाती है। यह पहला शब्द बादवाले का अपभ्रंश है, जो कि नौ नदी बतलाता है। वे ये हैं, सुर्ख रूद, गण्डमक, कुर्रुस्सा, चिपरियल, हैहिसरुक, कोटे, मोमुन्ददुर्रह, कोशकोटे तथा काबुलनदी (जे० ए० एस० बी० १८४२ पृ० ११७)"

वस्तुतः 'कुभा' काबुलनदी है। इसकी सहायक नदियाँ कुनार, पजकोरा आदि हैं। यह सिन्धु की सहायक नदी हिन्दुकुश से दक्षिण है। ऋग्वेद ५।५३।९ में तथा ऋग्वेद १०।७५।६ मे इसका वर्णन है। प्रथम मन्त्र का अर्थ यह है:—हे मरुतो! आपको रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु और सिन्धु निकृष्ट रमण न कराये और पुरीषिणी, सरयु भी मत रोकें। दूसरे का अर्थ यह है:—हे सिन्धो! आप गोमती और क्रुमु से मिलने के लिये

ऽतरीं। पहले तृष्टामा, उसके बाद मे सुसर्तु, उसके बाद रसा, ऽसके बाद श्वेती, उसके बाद त्या प्रसिद्ध कुभा, उसके बाद ोहतनू से मिलीं। इनके साथ आप समान रथ पर चढ़कर ाती हैं। इससे इस नदी का सिन्धु का सहायक होना, और वेती (गिलगित) और मेहतनू (सावान) के बीच में मिलना और पाँचवीं संख्या का होना निश्चित है। नक्शे में सिन्धु ी सहायक पाँचवीं नदी का होना भी इसे काबुलनदी सिद्ध र रहा है।

कुरु—(१) वे० इ० ब्राह्मण-साहित्य में कुरूज बहुत प्रसिद्ध ाति के रूप मे प्रकट होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कुरूज् देश मे थवा मिश्रित कुरु पञ्चालाज् के देश मे ब्राह्मणग्रन्थों की रचना ई। कुरूज् अकेले कम उल्लिखित है। इन दोनों जातियों में निष्ठ सम्बन्ध होने के कारण कुरूज् का नाम पञ्चालाज् के ाथ बहुत रहता है। कुरु या पञ्चाल बहुधा स्पष्टरूप से मिली[२]

---

(१) पचविंश ब्राह्मण के लिये तुलना करो हाप्‌किंस ट्रान्जैक्शन ाफ दी कनेक्टीकूट ऐकाडेमी आफ् आर्ट ऐण्ड साइन्सज १५।४९-५७, बर का इन्डियन लिट्रेचर ६७-६८, ऐतरेय ब्राह्मण और शांखायन ब्राह्मण लिये वेबर की वही पुस्तक ४५, ऐतरेय तथा शांखायन आरण्यक के लिये ेथ की जनरल आफ दी ऐसियाटिक सोसाइटी १९०८।३८७, शतपथ ा० के लिये वेबर की वही पुस्तक १३२, ट्रान्जैक्शन आफ दी बर्लिन काडेमी १८९५।८५९। जैमिनीय ब्राह्मण भी बार-बार कुरु पञ्चालाज् का ल्लेख करता है, जो बाद के शतपथ ब्रा० मे भी आते हैं। तैत्तिरीय ह्मण के लिये १।८।४।१।२ और मैत्रा० सहिता के लिये ४।२।६ देखिये।

(२) जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३।७।६ तथा ८।७ तथा ४।७ २,

हुई जाति के रूप में आये है। कुरु पञ्चालाज् के देश में भाषा का गृह[1] कहा गया है। कुरु पञ्चालाज् की वलि तथा यज्ञ करने की विधि सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ[2] कही गई है। कुरु पञ्चालाज् राजे राजसूय[3] अर्थात् सम्राट्-वलि किया करते थे। उनके राजकुमार शिशिर मे आक्रमण मे जाया करते थे। ग्रीष्मकाल[4] मे वापस आते थे। बाद मे कुरूज् पञ्चालाज् उपनिषदो[5] मे प्रसिद्ध है। वेबर[6] और ग्रियर्सन[7] ने कुछ प्रमाण वैदिक साहित्य में ऐसे खोजे है कि जिनसे दोनो जातियों में मतभेद प्रतीत होता है। ग्रियर्सन इससे इस थ्यौरी का पोषण करता है कि कुरूज् बाद के आये लोगो मे से है जो कि मुख्य तौर से ब्राह्मणो के विरोध मे थे। इस धारणा के पोषण में वेबर काठकसंहिता[8]

कौषीतकी उ० ब्रा० ४।१, गोपथ ब्रा० १।२।९, काठक स० १०।६, वाजसनेयी स० ११।३।३ (काण्वभा०)।

(१) शतपथ ब्रा० ३।२।३।१५

(२) वही १।७।२।८ तुलना करो। कुरु वाजपेय शांखायन श्रौत-सूत्र १५।३।१५, लाट्यायन श्रौत सू० ८।१।१८।

(३) शतपथ ब्रा० ५।५।२।३।५

(४) तैत्तिरीय ब्रा० १।८।४।१।२

(५) जैमिनीय ब्रा० २।७८, जैमिनीय उ० ब्रा० ३।३०।६ तथा ४।६।२, बृहदारण्यक उ० ३।१।१ तथा ९।२० इत्यादि।

(६) इन्डिस्चेस्टडियन ३।४७०, इन्डियन लिट्रेचर ११४।

(७) जर्नल आफ दी एसियाटिक सोसाइटी १९०८। ६०२–६०७ तथा ८३७ ८४४।

(८) १०।६ तुलना करो एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट १२।५१।

की कथा जो कि वकदाल्भ्य तथा धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के मध्य झगड़े से सम्बन्ध रखती है, प्रमाण देता है। वकदाल्भ्य पञ्चाल-वंश के थे। वैचित्रवीर्य कुरु थे। परन्तु कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि जिससे कुरु पञ्चालाज् मे आपस मे विरोध प्रकट हो। प्रत्युत यह झगड़ा केवल एक राजकुमार तथा पुरोहित मे यज्ञक्रियाओ के सम्बन्ध मे हुआ था। इसी स्थान पर कुरु पञ्चालाज् मे नैमिषीय यज्ञ का प्रमाण मिलता है, जिससे दोनो[1] जातियो मे घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। दूसरे वेबर वाजसनेयी सं०[2] में सोचता है कि काम्पिल्य की सुभद्रिका इस जाति के पड़ोस के रहनेवाले एक राजा की स्त्री थी, जिस जाति के राजा के लिये, जिसका संहिता मे वर्णन है, यह अश्वमेध यज्ञ किया गया था। परन्तु इस अवतरण का अर्थ जो वेबर ने किया है, वह सन्देहात्मक[3] है। संहिता[4] के काण्व भाग के एक अवतरण मे, जो राजसूय के विषय मे लिखा गया है, वह बतलाता है कि कुरु पञ्चालज् का एक ही राजा था। शतपथ ब्राह्मण[5] मे प्रमाण मिलता है कि पञ्चालाज् का पुराना नाम क्रिवि था। यह शब्द कुरु के समान ही प्रतीत होता है और

---

(१) कीथ जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सासाइटी १६०८। ८३१–८३६ तथा ११३८–११४२ देखिये।

(२) २३।१८।

(३) एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ४४।३२२।

(४) ११।३।३, तुलना करो वेबर इण्डियन लिट्रेचर ११४ नाट १५।

(५) १३।५।४।७

जिमर[1] ठीक तरह से सोचता है कि कुरूज् और क्रवीज् ऋ० वे० की वैकर्ण[2] जाति को बनाये होंगे। प्रमुखतया ये लोग सिन्धु तथा असिक्नी[3] के किनारे पर पाये जाते हैं। कुरूज् केवल उस क्षेत्र के ही विषय मे, जिसे कुरुक्षेत्र कहते है, वर्णित हैं। हम लोगो को बतलाया गया है कि कुरूज् तथा सृञ्जयाज्[4] दोनों का पुरोहित एक था, इससे ये दोनो अवश्य किसी समय घनिष्ठ सम्बद्ध[5] रहे होगे। छान्दोग्य उपनिषद् मे कुरूज् घोड़ी (आश्वा[6]) से बचाये गये तथा किसी भयानक परिस्थिति मे तूफान[7] आदि मे पड़े हुए माने गये हैं। सूत्रो मे कुरूज् के वाजपेय का वर्णन आता[8] है। वहाँ पर एक शाक का वर्णन आता है, जिससे कुरूज् कुरुक्षेत्र से भागाये गये माने[9] गये है। संभवत इसका सम्बन्ध महाभारत मे कौरवाज् के ऊपर आई आपत्ति से है। ऋग्वेद मे कुरूज् एक जाति के रूप मे नहीं

---

(१) एल्टिन डिस्चेज्लेबेन १०३।

(२) ७।१८।११।

(३) कीथ की वही पुस्तक ८३५।

(४) शतपथ ब्रा० २।४।४।५

(५) तुलना करो वेबर इण्डियन लिटरेचर ११३।

(६) ४।१७।६, अश्वा के लिये बोटलिङ् अपनी पुस्तक मे अत्वा पढ़ता है, जो लिटिल की ग्रामेटिकल इन्डेक्स १ से समर्थित है।

(७) १।१०।१।

(८) शाखायन श्रौतसूत्र १५।३।१५।

(९) वही पुस्तक १५।१६।११, तुलना करो वेबर इण्डियन लिटरेचर १३६।

आते। परन्तु एक राजकुमार कुरुश्रवण (कुरु का ऐश्वर्य[1]) और एक पाकस्थामन् कौरायण[2] का वर्णन है। अथर्ववेद[3] में कुरूज् के राजा परीक्षित का वर्णन आता है, जिसके पुत्र जनमेजय शतपथ[4] ब्राह्मण में अश्वमेधयज्ञ के एक बड़े कर्ता माने जाते है। यह ओल्डेनबर्ग[5] का सम्भव सुझाव है कि कुरु लोग ऋ० वे० में वर्णित कई जातियो से बने। कुरुक्षेत्र उसके नाम से कहा जाता है, जो कुरूज् से सम्बद्ध था। प्रतीत होता है कि ऋग्वेद में त्रासदस्यव (त्रसदस्यु का वंशज) पुरूज् का राजा था। और यह संभव है कि तृत्सु भरताज् जो ऋग्वेद मे पुरूज् के शत्रु के रूप मे प्रकट होते है, बाद मे उनसे मिलकर कुरु[6] जाति का निर्माण किये होगे। चूँकि भरताज् ब्राह्मणग्रन्थों में प्राचीन काल की बहुत बड़ी जाति के रूप मे आते हैं। और बाद का साहित्य उनको जातियो की सूची मे नहीं रखता। इससे यह अर्थ अनिवार्य है कि ये लोग किसी न किसी जाति मे अवश्य मिल गये। इस बात का प्रमाण मिलता है कि भरताज् उसी प्रदेश में थे, जिसमे पीछे से कुरूज् पाये गये। उनमें से ऋग्वेद[7] की एक ऋचा मे दृषद्वती, आपया और सरस्वती के किनारे

---

(१) ऋ० वे० १०।३३।४

(२) ऋ० वे० ८।३।२१

(३) २०।१२७।७ से प्रारम्भ, खिल ५।१०

(४) १३।५।४।११

(५) बुद्ध ४०३ ४०४

(६) वही पुस्तक ४०६-४०९

(७) ३।२३।२

आग जलाने के रूप में पाये जाते है, (अर्थात् कुरुक्षेत्र के पवित्र क्षेत्र मे)। इसी प्रकार देवीभारती (भारताज् से सबद्ध) सरस्वती[1] के साथ आई ऋचाओं मे वर्णित हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भारताज् काशीज्[2] के ऊपर विजयी के रूप मे वर्णित है तथा भारताज् का आक्रमण सत्वन्त के विरोध मे उल्लिखित है। ऐतरेय[3] ब्राह्मण में वर्णित है कि उन्होने गङ्गा यमुना[4] को बलियाँ प्रदान कीं। यह भी बिना महत्व के नहीं है कि भरताज् वाजसनेयी संहिता[5] मे एक स्थान पर कुरु पञ्चालाज् इन दो नामों के रूप मे प्रकट होते हैं। अश्वमेध के कर्ताओं की सूची मे एक कुरु दो भरताज् राजकुमारो का वर्णन आता है, परन्तु वे किन जातियों के राजे थे इसका वर्णन नहीं मिलता है, जब कि और राजाओं के विषय मे यह स्पष्टतया उल्लिखित[6] है। कुरु पञ्चाल का देश ऐतरेय ब्राह्मण मे मध्यदेश[7] के नाम से प्रसिद्ध है। कुरु लोगो का एक भाग, जिसे उत्तरकुरु कहते है, उत्तर में हिमालय के उस पार आज

---

(१) तुलना करो सेफ्टी लोविस्टज् डाईअयोक्रीफेनडेस ऋ वे० १४५।

(२) १३।५।४।११

(३) ऐतरेय ब्रा० २।२५ (तुलना करो हाग्स एडिशन २।११८ एन् ३), ओल्डनवर्ग बुद्ध ४।७ नोट।

(४) वही पुस्तक २१।

(५) ११।३।३ नोट १४ देखिये। ओल्डनवर्ग बुद्ध ४०८।४०९।

(६) ओल्डनवर्ग ४०९ नोट।

(७) १३।१४ तुलना करो ओल्डनवर्ग ३९२ ,९३

भी वर्तमान है। शतपथ ब्राह्मण के एक अवतरण से यह प्रकट होता है कि उत्तरी लोगो अथवा उत्तरीकुरूज् की भाषा और कुरु पञ्चालाज् की भाषा समान थी और शुद्ध[1] समझी जाती थी। इसमें बहुत कम सन्देह मालूम होता है कि ब्राह्मण-संस्कृति कुरु पञ्चालाज् के देश में फैल चुकी थी और यहाँ से ही पूर्व दक्षिण की ओर फैली। पञ्चविंशति[2] ब्राह्मण के व्रात्यस्तोमस् (वह यज्ञ जो अब्राह्मण आर्य को अपनी जाति में प्रवेश कराने के लिये किया जाता है) में इसके प्रमाण देखे जाते हैं। सचमुच शाखायन आरण्यक में ब्राह्मण का मगध[3] में रहना असाधारण सा माना गया है। कुरु पञ्चालाज् ब्राह्मणों का बार-बार उल्लेख भी उनके उपदेशक[4] कार्यों का प्रमाण है। कुरु पञ्चाल की भौगोलिक स्थिति इस बात को सिद्ध करती है कि वे कोशल,

(१) ३।२।३।१५ यह भाव जो यह अर्थ प्रकट करता है कि कुरु पञ्चालाज् उत्तरा बहुत कम हो सकते हैं (ओल्डनवर्ग बुद्ध ३९५) और कौषीतकी ब्रा० ७।६, (इण्डिस्चेस्टडियन २।३०९) उत्तरी लोगों की शुद्ध भाषा के लिये स्वतन्त्र प्रमाण है। तुलना करो एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट १२।६२ एन् , वेबर इण्डियन लिटरेचर ४५, इण्डिस्चेस्ट डियन १।१९१।

(२) १७।१।१ अथर्ववेद १५ के साथ विट्ने का तथा लाङ्मैन के नोटों को देखिये। वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।३३ से प्रारम्भ, इण्डियन लिट्रेचर ६७।७८-०।

(३) ७।१३ ओल्डनवग बुद्ध ४०० नोट, वेबर इण्डियन लिट्रेचर ११२ एन् १२६।

(४) वहा और शतपथ ब्रा० ११।४।१।२ और नोट ६ देखिये। (वस्तुतः शतपथ ब्रा० मे यहाँ कोई प्रमाण नहीं)

विदेह अथवा काशीज्[1] से बाद में आये, जो और पूर्व की ओर अन्य आर्यों को खदेड़ दिये होगे। परन्तु वैदिक साहित्य मे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध हो कि किस समय मे आये। बाद मे आनेवाले आर्य अपने पड़ोसियो मे पश्चिम रहे होगे। केवल भाषा के आधार पर सोचा[2] गया है कि कुरु बाद के आनेवाले थे जो कि नये मार्ग से मौलिक आर्यजाति के मध्य मे, जो पहले से ही पश्चिम से पूर्व तक

(१) यह मत ओल्डनवर्ग बुद्ध ९।३९१।३९८।३९९, लाडमैन सस्कृत रीडर २९७ से प्रारम्भ, शतपथ ब्रा० १।४।१।१० इत्यादि। वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।१७० का वर्णन यह बतलाता है कि कोशल विदेहाज् कुरु पञ्चालज् की शाखाए हैं। परन्तु ओल्डनवर्ग और मैकडानल (सस्कृत लिटरेचर २१४) इसका यह अथ लगाते हैं कि वैदिक साहित्य और सस्कृत का प्रसार हुआ, न कि जातीयता का।

(२) "ग्रियर्सन लैङ्वेज् आफ इण्डिया ५२ से प्रारम्भ। जर्नल आफ दी रायल एसियाटिक सोसाइटी १९०८।८३७ से प्रारम्भ। दूसरी ओर यह समझना गलत होगा कि भरताज् पहले कुरुक्षेत्र के पश्चिम ठहरे होंगे और आर्यों का कार्य केवल पञ्जाब तक ही सीमित था। जब कि वशिष्ठ विपाश् तथा शुतुद्री पार करने की खुशियाँ मनाते हैं (ऋ० वे० ३।३३) तो सभव है कि वे पूर्व से आये होगे, जैसा कि पिशल वेदिस्चेस्टडियन २।२१८ मे सकेत करता है और पश्चिम से नहीं आये। साधारण विचार को लेते हुए हार्प्किस इण्डिया ओल्ड ऐन्ड न्यु ५२ मे यह बतलाना आवश्यक समझता है कि यमुना परुष्णी का दूसरा नाम है। परन्तु इस सुझाव की आवश्यकता उस स्थान पर समाप्त हो जाती है, जब कि यह मान लिया जाता है कि भरताज् कुरुक्षेत्र के प्रदेश मे फैले हुए थे, जिसका कि पूर्वी भाग यमुना बनाती थी। दूसरी ओर हिल्ले ब्राण्ट ने वेदिस्चेमाइथालोजी १।१४२-१४३ मे कुरूज् को कश्मीर मे आजकीया

अधिकार किये हुए थे, आकर मिल गये। तुलना करो कृतवान् से भी। और राजकुमारों के लिये कौरव शब्द देखिए।

के निकट रखा है, जो बहुत दूर हो जाता है। जिमर भी एल्टिन डिस्चेज़्लेबेन १०३ मे और एग्गलिड् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट १२।६३ मे ऐसा ही सोचता है। यह सभव प्रतीत होता है कि कुरूज् कुरुक्षेत्र मे, हिमालय के उत्तर तरफ बहुत दूर फैले हुए थे। सिन्धु और असिक्नी तक इनका फैलाव था। तुलना करो ओल्डनवर्ग बुद्ध ४०० से प्रारम्भ। मेकडालन सस्कृत लिटरेचर १५२-१५७। वानस्क्रोडर इण्डियन लिटरेचर एण्ड कल्चर १६४ से प्रारम्भ, वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।१८७ से प्रारम्भ, इण्डियन लिटरेचर ११४।१३५।१३६. रायस् डेविट्स बुद्धिस्ट इण्डिया २७, पार्जीटर जनरल आफ दी रायल एसियाटिक सोसाइटी १६०८।२२३ से प्रारम्भ। हाप्किस जर्नल आफ दी अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १३।२०५ न०"

(वस्तुतः ऋ० वे० ३।३३ मे वशिष्ठ का नाम भी नही है, न वशिष्ठ का कोई सबध है। प्रत्युत वशिष्ठ के शत्रु विश्वामित्र की कथा उससे झलकती है। विश्वामित्र सोम लेने के लिए शकट (छकडा) पर चढ़कर गये थे। मार्ग मे शुतुद्रि और विपाट् नदियाँ पड़ी। विश्वामित्र ने उनकी स्तुति की। नदियो का जल गाड़ी की रस्सियो के नीचे हो गया, तब विश्वामित्र का शकट पार हो गया। विश्वामित्र ने अपने वशज भरतो के लिये भी उतरने का वर माँगा और भरत भी उतरे। पिशल का प्रमाण लेकर वे० इ० कार जो सिद्ध कर रहे है, वह कहाँ तक सत्य है। तथा हिल्ले ब्रान्टड कश्मीर में आजकीया के निकट कुरुओं को मानते है। जिमर भी यही मानते है। यह एकदम असभव है। आर्जकीया का कश्मीर मे होना असभव है और कुरुओं का वहाँ होना तो उससे अधिक असभव है। वे० इ० कार ने इसका स्वय खण्डन किया है और उन्होने कुरुओं का फैलाव जहाँ तक माना है, वह भी असभव है। उसके प्रमाण मे जो

(२) वेबर—कुरु और पञ्चाल मे वैमनस्य के चिह्न कुछ दिन के लिये मानते है और वाजसनेयी संहिता मे सोचते हैं कि काम्पिल्य की सुभद्रिका कुरुजाति के पड़ोस मे रहनेवाली एक जाति के राजा की स्त्री थी, जिस जाति के राजा के लिये संहिता मे वर्णित अश्वमेधयज्ञ किया गया था। (वे० इ०)

(३) ग्रियर्सन—कुरूज् लोग बाद मे आये हुए लोगो मे से है, जो मुख्य तौर से ब्राह्मणमत के थे और ब्राह्मणमत विरोधी पांचालाज् से इनका मत विरुद्ध था। (वे० इ०)

(४) जिमर—कुरूज् और क्रवीज् ने ऋग्वेद की वैकर्ण जाति बनाई होगी। और कुरूज् को कश्मीर में आर्जकीया के निकट मानते है। (वे० ई०)

(५) हिल्लेब्रान्टड भी कुरूज् को कश्मीर मे आर्जकीया के निकट मानते हैं। और एजलिङ् का भी यही मत है। (वे० इ०)

उन्होंने प्रमाण दिये है, वे सब बिल्कुल निस्सार है। ऋ० वे० मे कुरु शब्द का नाम नहीं है। कुरुश्रवण इत्यादि नामों मे जो कुरु शब्द आता है, उनका कुरु मे कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे ऋ० वे० के आधार पर कुरुओं का विचार करना एकदम योरोपियन विद्वानों का साहसमात्र है और आर्यों का बाहर से आना सिद्ध करने का प्रयत्न है। वे० इ० कार स्पष्ट लिख रहे है कि "वैदिक साहित्य मे पीछे आनेवालों ने पहले आनेवालों को खदेड दिया, इत्यादि। ये कब आए, इस अंश मे कोई भी प्रमाण नहीं मिलता।"

इससे यह सिद्ध होता है कि समयमात्र मे प्रमाण नहीं है, किन्तु बाहर से आने मे है। लेकिन बाहर से आने मे किसी भी भाषा मे प्रमाण नहीं है।

(६) ओल्डनवर्ग, मेकडानल, वान्सक्राउडर, रायसडे. हापूकिस और पार्जीटर का मत है कि कुरूज् कुरुक्षेत्र मे तथा हिमालय के उत्तर बहुत दूर तक फैले हुए थे। सिन्धु तथा असिक्नी तक इनका फैलाव था। (वे० इ०)

(७) कीथ—इनके मत में प्रमुखतया वे दोनों लोग (कुरूज् और क्रवीज्) सिन्धु तथा असिक्नी के किनारे पर पाये जाते हैं। (वे० इ०)

(८) वोटलिङ्—अपनी पुस्तक मे छान्दोग्य के 'अश्वा शब्द के स्थान मे 'अज्ञा' पढ़ते है और लिटिल का भी यही मत है। (वे० इ०)

(९) ओल्डनवर्ग और लाङ्गमैन—यह मानते है कि कुरु पञ्चालाज् कोशल विदेह अथवा काशीज् से बाद मे आये, जो कि पूर्व की तरफ और आर्यों का खदेड़ दिये होगे। यह बात कुरु पञ्चाल की भौगोलिक स्थिति सिद्ध करती है। और कोशल विदेहाज् कुरु पञ्चालाज् की शाखाएँ हैं। (वे० इ०)

(१०) ओल्डनवर्ग और मेकडानल शतपथ के अवतरण का यह अर्थ लगाते है कि वैदिक साहित्य और संस्कृति का प्रसार हुआ; न कि जातीयता का। (वे० इ०)

वस्तुतः यह शब्द जनपदसमानक्षत्रियवाची है; अर्थात देश और क्षत्रिय दोनो को बतलाता है। पाणिनि[१] महर्षि इसके राजा और पुत्र को एक वचन मे 'कौरव्य' कहते हैं और

(१) कुरुनादिभ्योण्यः ४।१।१७२ स्त्रियामवन्ति कुन्ति कुरुभ्यश्च ४।१।१७५ महाभाष्य विभाषा कुरु युगन्धराभ्यां ४।२।१३० काशिका विशिष्ट० २।४।७

लड़की को 'कुरू' कहते हैं। बहुवचन में 'कुरवः' ('कुरु' शब्द के बहुवचन का रूप)। ब्राह्मणों[1], उपनिषदों[2] और पुराणों[3] मे इसका प्रायः देश-अर्थ में प्रयोग आता है, जो उस समय यू० पी० मे मेरठ के जिले मे तथा उसके इधर-उधर था। उस देश की पूर्वी सीमा अहिच्छत्र (उत्तरपञ्चाल) थी और

(१) शतपथ० १३।५।४।७, ऐतरेय० ३८।३, गोपथ० २।१०, जैमिनीय० २।२५३

(२) बृहदारण्यक० ३।१।२ (कुरु पञ्चालाना ब्राह्मणाः) बृहदारण्यक० ६।२।१ (पञ्चालाना परिषदम्), कौषीतकी ब्रा० उ० ४।१।१ (कुरु पञ्चालेषु वसन्)

(३) वायु० पू० ४५।१०९ यह देश भारत मे है और मध्यदेश मे है तथा ४७।४८ यहाँ गङ्गा है। पद्म० आ० ६।३४, विष्णु० २।३।१५, ब्रह्म० १९।१५ यह देश भारत मे है। ब्रह्मा० पू०अ० १६।४० तथा १८।५०, मत्स्य० ११४।३४ यह देश भारत के मध्य मे है और यहाँ गङ्गा है। अग्नि० ११८।८, विष्णुधर्मोत्तर० १।९।२ यह देश भारत मे है और मध्यदेश मे है। कूर्म० ब्रा० पू० ४७।४१, गरु० ५६।१०, बृहत्संहिता १४।४० यह देश भारत के मध्यदेश मे है। महाभा० भी० (चि० नि०) ९।३६ (म०) ९।३७॥ यह देश भारत मे है। श्रीमद्भा० १।११।९ यह देश है तथा १०।५७।१ इसकी सीमा जाङ्गल से भी मिली है और इसमे गजाह्वय नगर है। यह जाङ्गल के साथ भी आता है। वामन० २२।५५ कुरु जाङ्गल की पश्चिमी सीमा सरस्वतीनदी है। मेदिनीकोष र० द्वि० १६ यह शब्द देशअर्थ मे है, बहुवचन है, पुल्लिग है। मनुस्मृति ८।९२ कुरुक्षेत्र का नाम है। वाल्मी० कि० (गु० नि०) ४३।११ (इ) ४४।१२ यह देश है और उत्तर मे है। निरुक्त ६।५२ कुरुङ्ग के व्याख्यान मे 'कुरु गमनाद्वा' यह लिखा है। यह स्पष्ट कुरु को देश मानता है।

उत्तरी सीमा में हिमालय था। पश्चिमी सीमा यमुना तक उशीनर देश के सामने थी और इसके दक्षिण-पश्चिम मे ब्रह्मावर्त था, जिसकी सीमा सरस्वतीनदी बनाती थी। यह शब्द इस देश के निवासियों के भी अर्थ मे आता है। ब्राह्मण[1] ग्रन्थ इस देश को मध्यदेश में मानते है। पुराणो[2] मे भी मध्यदेश मे ही माना गया है। मनुस्मृति[3] इसको ब्रह्मर्षि देश मे मानती है और इसकी सीमा ब्रह्मावर्त से मिली हुई बतलाती है, जो मध्यदेश के ही अन्तर्गत है। इसमे बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञान के वेत्ता रहते थे। पञ्चालदेश के ब्रह्मज्ञान के समान इस देश का भी ब्रह्मज्ञान माना गया है और यह आचार मे भी इसी के समान था। मनु ने जिन देशो के ब्राह्मणों से संसार को सदाचार सीखने की आज्ञा दी है, उनमे यह भी था। पञ्चाल और इसके राजे भिन्न-भिन्न थे। कुरुदेश के राजा 'कुरु' कहे जाते थे और पञ्चाल देश के राजे 'पञ्चाल'। कुरु देश की राजधानी 'हस्तिनापुर' थी और पञ्चाल के दो भाग होने के कारण उत्तरपञ्चाल की राजधानी 'अहिच्छत्र' थी, जो इस

---

(१) ऐतरे० ३८।३ 'मध्यमायां दिशि कुरुपञ्चालाना राजानः' आया है तथा काण्व शाखीय शतपथ ब्रा० ८ (KI।४) ६।७।११ इसमे 'कुरु पञ्चालैस्ते' यह आया है।

(२) पृष्ठ १५८ की टिप्पणी सं० ३ देखो।

(३) सरस्वतीदृषद्वत्यो देवनद्योर्यदन्तरम्। त देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते। कुरुक्षेत्र च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः। एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्व स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व मानवाः।

समय नैनीताल जिले मे काशीपुर के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिणपञ्चाल की राजधानी 'काम्पिल्यनगर' (कम्पिल) और 'आसन्दी' (कन्नौज) फर्रुखाबाद जिले में थी। गंगा से उत्तर-दक्षिण इसका विभाग माना जाता था। पञ्चाल का दूसरा नाम क्रिवि[1] भी था। अथर्ववेद २०।१२७।७ मे परीक्षित का 'कौरव्य' विशेषण आया है और परीक्षित के राज्य का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण[2] में परीक्षित के पुत्र जनमेजय का अश्वमेधयज्ञ आसन्दीनगर मे वर्णित है, जो हस्तिनापुर से कुछ दूर दक्षिण मे था। ऐतरेय ब्राह्मण[3] मे परीक्षित के पुत्र जनमेजय का तुर कावपेय द्वारा ऐन्द्राभिषेक का वर्णन है। इसके द्वारा बलिष्ठ हो जनमेजय के समस्त पृथ्वी के दिग्विजय का वर्णन है। दक्षिण भारत मे जनमेजय के दिग्विजय के समय दिये हुए दो दानपत्र मिले हैं, जिनका वर्णन इन्डियन आन्टिक्केरी[4] और एपीग्राफिया इन्डिका[5] मे है। कुरुदेश[6] के नृप राज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं, इससे अभिषिक्त वे लोग राजा कहे जाते है। उत्तरकुरु देश देवदेश है और हिमालय से उत्तर है। उनसे और कुरुओं से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है। कुरु, पञ्चाल दोनो एक देश भी नहीं थे। विदेह, काशी और कोशल भी एक नहीं

(१) शतपथ० १३।५।४।७
(२) १३।५।४।१
(३) ३६।७।१
(४) इण्डि० आ० १।२ ७७ तथा ३।२६८
(५) ए० पी० आ० ४।३५३
(६) ऐतरेय ब्रा० ३८।३।३

थे। इन लोगो में परस्पर कोई वैमनस्य नहीं था। ग्रियर्सन और वेबर के मत, जो इन दोनो मे विरोध मानते हैं, ग्रन्थ को न समझना घोषित कर रहे हैं। वे० इ० कार इस बात का कण्ठतः खण्डन कर रहे हैं और उनके परस्पर मेल के प्रमाणों को दे रहे हैं। द्वन्द्व में 'कुरुपञ्चालाः' प्रयोग और अलग-अलग 'कुरवः'[1] एव 'पचालाः' प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे इस समय भी कलकत्ता बम्बई, जयपुर जोधपुर, आगरा देहली इत्यादि प्रयोग दो नगरो को साथ-साथ कहते हैं, परंच उनकी घनिष्ठता कोई नहीं है। उसी प्रकार से दोनों शब्द एक साथ बोले जाते थे और उनमे परस्पर कोई घनिष्ठता नहीं थी। प्रायः कुरु, पञ्चाल दोनो शब्द जहाँ द्वन्द्व मे आये है, वहाँ देशवाची हैं, जातिवाची नहीं। ऋग्वेद मे कुरु, पञ्चाल शब्दों का नाम भी नहीं है। वैकर्ण शब्द देशअर्थ में आया है। जिमर कुरूज् और क्रिवीज् से ऋग्वेद की वैकर्णजाति का बनाया जाना मानते है और वेदिक इन्डेक्सकार उनकी पीठ ठोकते हैं, तब इसपर विद्वानो को यह सोचना चाहिये कि ऋग्वेद के समय में कुरु और क्रिवि के होने मे प्रमाणाभाव से ऋग्वेद के बनने से पहले और उसके समय मे आपके सिद्धान्त में कुरु और क्रिवि के संसार मे न होने से उन्होंने ऋग्वेद में वर्णित वैकर्णजाति को कैसे बनाया? इनको यह कहना था कि वैकर्णजाति से ये दोनो जातियाँ बनीं। इससे इनका कथन कैसा है, यह निश्चय करे। पूरु के वंशज होने से ये लोग 'पौरव' भी कहे जाते थे। भरतवंशी क्षत्रियों का निवासस्थान कुरुक्षेत्र था। इसमें ऋग्वेद

(१) ऐतरेय ब्रा० ३६।६।२२

मे अणुमात्र भी प्रमाण नहीं है। ऋग्वेद ३।२३।४ में जिन भरतो के यज्ञ का वर्णन है, वे ब्राह्मण भरतऋषि की सन्तान है। वहाँ 'भारताः' यह प्रयोग आया है। यदि क्षत्रिय की सन्तान होते तो 'भरताः' प्रयोग होता। आप्री ऋचाओं में सरस्वती का विशेषण 'भारती' आया है। वह सरस्वती का नाम है। उससे भरतों का कोई सम्बन्ध नहीं है। शतपथ ब्रा० १३।५।४ मे काशिराज धृतराष्ट्र के घोड़े का पकड़ना जिस शतानीक के द्वारा लिखा है और ऐतरेय ब्रा० (अ० ३९) में भी शतानीक के ऐन्द्राभिषेक और समस्त पृथ्वी का विजय और अश्वमेध का जो वर्णन है, वह सत्राजित का पुत्र था। और भरत दौःषन्ति के अश्वमेध यज्ञो का वर्णन गंगा-यमुना के तट पर है, जो भरत के "प्रतिष्ठान" के राजा होने के कारण प्रयाग मे हुए थे। प्रतिष्ठान 'झूॅसी' का नाम है। अश्विक्न नरेश याज्ञतुर ऋषभ के अश्वमेध का शतपथ मे वर्णन है। वह भी भरतवंशी था। पचालदेश का राजा सत्रासह का पुत्र शोण भी भरतवंशी था, उसके भी अश्वमेध का वर्णन शतपथ मे है। ६०३३ कवचधारी तौर्वश (तुर्वश के वंशज) उसके घोड़े की रक्षा करते थे। सत्वत् वंशज राजो के घोड़े को भरत ने छीन लिया था। सत्वत् वंशवाले दाक्षिणात्य थे, यह ऐतरेय ३८।३।२ मे स्पष्ट है। शतपथ में भरतो के अश्वमेध का वर्णन है और जनमेजय भी कुरुवंश मे होने के कारण भरत ही थे। कुरु, पञ्चाल राजाओ के पूर्वज भरत ही थे। इससे दोनो ही भरत की सन्तान थे। परञ्च राज्य भिन्न-भिन्न थे। इन दोनों देशों का राजा एक हो, ऐसा कभी नहीं था। वाज० काण्व सं० ११।३।३ मे दोनों देशो के राजे

पृथक् पृथक् लिखे है, सायण भाष्य देखना चाहिये। वेबर तथा वे० इ० कार को अक्षरार्थ नहीं लगा। वहाँ का पाठ यह है "कुरवो राजैषवः पञ्चालाराजा" (काण्व सं०)। सायण० 'हे कुरवः वोयुष्माकमेषराजा अस्तु हे पञ्चालाः वोयुष्माकमेष राजा अस्तु'; अर्थात् 'हे कुरु लोगो ! यह तुम लोगों का राजा हो और हे पञ्चालो ! यह तुम लोगों का राजा हो।' उस समय के राजे उन देशो के थे, किसी जातिविशेष के नहीं थे। देशों में सभी जाति के लोग रहते थे। शतपथ ३।२।३।१५ के अवतरण का अर्थ यह है कि 'कुरु, पञ्चाल की भाषा उच्चतर होती है, वहाँ के लोग बड़े बोलनेवाले होते हैं।' उसका यह अर्थ करना कि उत्तरीय लोगो अथवा उत्तरी कुरूज् की भाषा कुरुभाषा के समान थी और शुद्ध समझी जाती थी, यह सरासर संसार को धोखा देना है।

आर्यसंस्कृति का केन्द्र[1] ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश था। इसी से समस्त ससार मे सभ्यता फैली। केवल कुरु पञ्चाल से ही नहीं। यहीं पर पहले सृष्टि हुई। आर्य लोग बाहर से आए, इस विषय मे संस्कृतवाङ्मय मे अणुमात्र भी प्रमाण नहीं है। पश्चिम से जत्थे पूर्व को गये, यह बात कल्पनामात्र और निराधार है। यह कहना कि "प्रमुखतया दोनों लोग सिन्धु तथा असिक्नी के किनारे पर पाये जाते हैं। कुरूज् केवल ही उस क्षेत्र के विषय मे जिसको कुरुक्षेत्र कहते है, वर्णित हैं" यह बिल्कुल ही असबद्ध है। शतपथ ब्रा० १३।५।४।७ में क्रिवि पञ्चाल का नाम लिखा है और कुरु के जनपद केवल कुरुक्षेत्र

---

१ मनुस्मृति २।२०

ही नहीं है, वह तो एक देश है और पञ्चाल से मिला है। सिन्धु के तट पर कुरु का कहना एकदम धाँधली है। असिक्नी के तट पर पञ्चालों का मानना और असिक्नी का अर्थ 'चिनाव' करना भी असंबद्ध है। असिक्नी के तट पर पञ्चाल उस दशा मे हो सकते है जब कि असिक्नी का असली अर्थ कन्नौज की 'कालीनदी' किया जाय। वह भी बिना किसी प्रमाण के नहीं हो सकता। क्योंकि आपके कथन में मूल का नाम नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् के एक प्रसंग मे कुरूज् घोड़ी से बचाये गये तथा किसी भयानक स्थिति मे तूफान आदि मे पड़े हुए माने गये है। यह कथन ठीक नहीं। वहाँ तो यह लिखा है कि मनुष्य-ब्रह्मा यज्ञ की इस प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार युद्ध करनेवाले की घोड़ी रक्षा करती है।

ब्रह्मा यज्ञ की किस प्रकार रक्षा करता है, उसका भाव यह है:—छान्दोग्य उपनिषद् (४।१७।४ से प्रारम्भ) मे यह विचार आया है कि यदि यज्ञ करते समय मन्त्रो के उच्चारण मे अशुद्धि हो जाय तो वह यज्ञ खण्डित हो जाता है। यदि कदाचित् किसी ऋत्विक् की गलती से मन्त्रोच्चारण मे अशुद्धि हो जाय तो उस यज्ञ के अंग को कैसे पूरा किया जाय ? इस प्रश्न का समाधान यह किया गया है कि ब्रह्मा नाम का ऋत्विक् जो यज्ञ के समय में चुपचाप बैठा हुआ मन्त्रोच्चारण को सुनता है, वह यदि ऋ० वे० के मन्त्रोच्चारण मे अशुद्धि हो तो यज्ञ के बाद 'भूः स्वाहा' इस मन्त्र से गार्हपत्य अग्नि मे हवन करे। यदि यजुर्वेद की अशुद्धि हो तो 'भुवः स्वाहा' इस मंत्र से दक्षिणाग्नि में हवन करे। यदि सामवेद की अशुद्धि हो तो 'स्वः स्वाहा'

इस मंत्र से आहवनीय अग्नि मे हवन करे। इससे अशुद्धि-द्वारा जो क्षति होती है, वह पूर्ण हो जाती है। जिस यज्ञ का ब्रह्मा इस बात का ज्ञाता होता है, वह यज्ञ ठीक होता है। (मनुष्य-ब्रह्मा इत्यादि)। यह बात न समझकर 'कुरूज् घोड़ी से बचाये गये'—यह कथा तैयार हो गई। तूफान की कथा भी इस प्रकार है*— कुरुदेश मे एक बार पत्थर गिरने से अन्न के नाश होने से, अकाल पड़ा था। वहाँ कोई तूफान का वर्णन नहीं है और उससे कुरुजाति से कोई सम्बन्ध भी नहीं है।

"ब्राह्मण-साहित्य मे कुरुओं के बहुत प्रसिद्ध जाति के रूप मे प्रकट होने से कुरूज् देश में अथवा मिश्रित कुरु पञ्चालाज् के देश मे ब्राह्मण-ग्रन्थो की रचना हुई। कुरूज् वहाँ जातिरूप मे बहुत प्रसिद्ध हुए, इत्यादि" कथन पर अब हमे विचार करना है। 'कुरु' शब्द प्राय: 'देशअर्थ' मे आया है। और आपके मत मे 'कुरु' शब्द 'जातिअर्थ' मे आया है। तब जाति मे ब्राह्मण-ग्रन्थ कैसे बने ? यदि कुरूज् के आने से कुरूज् का देश लेना है तो पञ्चालाज् तो नहीं आये, उनका देश आपने कैसे लिया? ब्राह्मण-साहित्य मे क्या केवल एक कुरु शब्द ही आया है? उनमे तो और भी देशो के नाम हैं। आपके मत मे वे जातियों के नाम हैं। यदि कुरुजाति के नाम से कुरुदेश मे बनना आप मानते है तो उन देशो मे भी आपको मानना होगा, जिनका वर्णन ब्राह्मणग्रन्थो मे बहुतायत से आया है। ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३ दक्षिण दिशा में सत्वतो के राजे, पश्चिम में नीच्य एवं अपाच्यों के राजे, उत्तर मे उत्तरकुरु एवं उत्तर मद्रदेश (हिमालय

* छान्दोग्य० १।१०।१

के पार) के राजे, मध्यदेश मे कुरु पञ्चालों के राजे, वश और उशीनरो के राजे तथा ३९।७ मे राजाओ ने जो समस्त पृथ्वी जीती उसका वर्णन, ३९।८ मे अगदेश और अवचतुक स्थान के नाम आये है तथा शतपथ ब्राह्मण १३।५।४ मे काशिदेश का नाम, अश्विक्नदेश, क्रिवि और पञ्चाल के नाम, गंगा, यमुना के नाम तथा आसन्दीवत् का नाम आया है। गोपथ ब्राह्मण २।१० मे कुरु, पंचाल, अंग, मगध, काशि, कोशल, शाल्व, मत्स्य, वश, उशीनर और उदीच्य शब्द देशअर्थ मे आये हैं। माध्यन्दिनीय शतपथ १।४।१।१४ मे सरस्वतीनदी, सदानीरानदी, उत्तरगिरि (हिमालय), कोशल तथा विदेह शब्द आये है। काण्वशाखीय शतपथ k II T P।9।7।'4 मे कोशल विदेह, कुरु, पंचाल, सदानीरा, उत्तरगिरि शब्द आये है तथा ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१० मे सरस्वती, कारपचव, यमुना, दृषद्वती और कुरुक्षेत्र शब्द आये है। फिर कुरु पंचाल मे क्या विशेषता है कि उन्हीं मे ब्राह्मण-ग्रन्थों का बनना माना गया है ? शतपथ ब्रा० २।४।४।५ मे पुरोहित एक होने के कारण दोनो राष्ट्रों की घनिष्ठता वेदिक इन्डेक्सकार मानते हैं, सो भी ठीक नहीं। एक डाक्टर जो आवश्यकता पड़ने पर सब के घर जाता है, उसके जाने मे आवश्यकता कारण होती है, न कि मरीजों की परस्पर घनिष्ठता। वह परस्पर मित्रो, परस्पर शत्रुओ तथा परस्पर उदासीनो के भी घर जाता है। उसी प्रकार यदि यज्ञ करानेवाला पुरोहित दोनो राष्ट्रो मे जाता है तो इससे दोनो राष्ट्रों या जातियो में घनिष्ठता कैसे प्रतीत होती है ? कुरुजाति को कई जाति से मिला कहना सर्वथा अनुचित है।

कुरु एक क्षत्रिय था, उसकी सन्तान कुरुवंशी, कौरव्य और कुरु कहलाई। उसी के देश मे रहने के कारण कुरुदेश बना। यह रहते हुए भी यह कैसे संभव है कि एक क्षत्रिय-कुमार कई जाति का हो? 'कुरुक्षेत्र' शब्द से जो 'कुरु का क्षेत्र' अर्थ रखता है, वह कुरु से सम्बद्धों के नाम से बना—इसे कौन बुद्धिमान् मानने को तैयार होगा? तृत्सु भरताज् जो ऋ० वे० मे पुरूज् के शत्रु के रूप मे प्रकट होते हैं, बाद में उनसे मिलकर कुरुजाति का निर्माण किये होगे, इसे संभव बताना तो सर्वथा असंबद्धता की पराकाष्ठा है। पुराण-ग्रन्थ पूरु की सन्तान में कुरु को मानते है। आपकी सम्भावना तथा कल्पना उनको पूरु के शत्रुओ के वंश मे कर रही है। जिस देश का ग्रन्थ हो उसमे उसी देश का इतिहास प्रमाण माना जाता है। इससे पुराण की वशावली सत्य माननी होगी। कल्पना का आधार प्रमाणाभाव से सारहीन होता है। आपका यह कथन भी बड़ा रोचक है कि बाद का साहित्य उनको जातियों की सूची मे नहीं रखता। यदि पुराण देखे जायँ तो भरत का वश उनमें वर्णित है या नहीं, यह एक साधारण पढ़ा-लिखा भी जान सकता है। गीता जो सर्वप्रसिद्ध पुस्तक है, जिसके निर्माण का समय चीनी यात्री ह्वेनसांग महाभारतयुद्ध के पहले मानता है, जो (गीता) महाभारत रूप मुकुट का रत्न है जिसकी व्याख्याएँ संस्कृत-वाङ्मय मे भिन्न-भिन्न संप्रदायो के आचार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न की गई है, कई योरोपियन विद्वानों ने भी जिसकी व्याख्या करने और स्तुति करने में अपना अमूल्य समय दिया है, उसमे अर्जुन के लिये स्थान-स्थान पर 'भारत' शब्द

आया है। 'भारत' भरतवंशी को कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।११ मे काशिदेश के राजा धृतराष्ट्र के अश्वमेध के घोड़े का पकडना शतानीक राजा के लिये लिखा है, उसको भरतो के लिये कहना अनुचित है। यदि वह भरतवंशी था तो सभी भरतवशी समस्त काशिदेश के राजाओ के विजयी हो गये, यह कहा नहीं जा सकता। "भरताज् का आक्रमण सत्वतो के विरोध मे जो ऐतरेय ब्राह्मण मे उल्लिखित है, उनमे से एक ने गंगा और यमुना को वलियाँ प्रदान कीं"—यह कहना भी विचित्र है। शतपथ मे यह उपमा के रूप मे आया है। उसमें लिखा है कि सात्राजित शतानीक ने समस्त पृथ्वी पर घूमते हुए काशिराज धृतराष्ट्र के घोड़े को ऐसे पकड़ा जैसे कि भरत ने सात्वत् लोगो के अश्वमेध का घोड़ा पकड़ा था। इससे सत्वताज् के विरोध मे भरतो का आक्रमण कहना ठीक नहीं। क्योंकि भरत ने स्वयं घोड़े को पकड़ा था, जो स्वयं वशवर्ती राजा था। वह वंशज भरताज् नहीं कहा जा सकता। गंगा-यमुना की वलि कहना भी अनुचित है। गंगा और यमुना के किनारे महाराज दुःषन्त के पुत्र भरत ने १३३ अश्वमेध किये थे, यह लिखा है; न कि गंगा-यमुना की वलियाँ। "व्रात्यस्तोम यज्ञ अब्राह्मण आदि को अपनी जाति मे प्रवेश कराने के लिये किया जाता था", यह कथन भी विचित्र है। वस्तुतः जो व्रतभंग होने के कारण ब्राह्मणता से पतित हो जाता है, वह 'व्रात्य' कहा जाता है। पुनः उसके ब्राह्मणता संपादन के लिये व्रात्यस्तोमयज्ञ किया जाता है; न कि अब्राह्मण को अपनी जाति मे प्रवेश कराने के लिये।

वे० इ० कार त्रासदस्यव को कुरूज् का राजा मानते हैं और त्रसदस्यु को पुरुकुत्स का पुत्र मानते हैं। शतपथ ब्रा० १३।५।४।४ मे पुरुकुत्स को इक्ष्वाकु की सन्तान माना है। हमारी समझ मे यह नहीं आता कि इक्ष्वाकु जो सूर्यवंशियों का मनु के बाद आदिपुरुष है, उसकी सन्तान कुरुवंशियो का राजा किस प्रकार बना? इससे वे० इ० कार का लेख कोई विशेष प्रतिष्ठा नहीं रखता। वे० इ० कार कुरुवाजपेय का सम्बन्ध कुरुओ से लगाते है। परन्तु यह उनकी जबर्दस्ती है। शांखायन श्रौतसूत्र १५।३।१५ मे वाजपेय का वर्णन है। उसमे तीन प्रकार के वाजपेय माने गये है—उत्तम दक्षिणावाला, मध्यम दक्षिणावाला और कम दक्षिणावाला। कम दक्षिणावाला वाजपेय कुरुवाजपेय कहलाता है, उसमे १७ गायों की दक्षिणा है। टीकाकार ने 'कुरुवाजपेय' का अर्थ 'कम प्रतिष्ठावाला' माना है। इससे और कुरुओ से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। 'कुरु' शब्द का अर्थ यहाँ 'कम प्रतिष्ठा' है। कुरुदेश या कुरु की सन्तान अर्थ नही है। पाकस्थामा राजा का पिता कुरयाण था, इससे यह कुरुवंशी नहीं हो सकता। प्रत्युत ऋ० वे० ३।३।२४ मे इसका भोज विशेषण इसको सत्वत्वंशी दाक्षिणात्य राजा कह रहा है। दक्षिण के सत्वत् राजे भोज कहे जाते थे। यह बात ऐतरेय ब्रा० ३८।३।३ मे स्पष्ट है। इसको कुरुवंशी मानना निर्मूल है।

वे० इ० कार "अश्वमेधकर्ताओ की सूची मे एक कुरु, दो भरताज् का वर्णन आता है; परन्तु वे किन जातियो के राजे थे—यह वर्णन नहीं मिलता।" वस्तुतः शतपथ मे जनमेजय और उनके भाई भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन चार कुरुवंशियों

का वर्णन है, वे भी भरतवंशी थे। और भरतवंशियो मे ऋषभ, शोण और शतानीक का वर्णन है। जनमेजय का राज्य कुरुदेश पर था, अन्य भाइयो का कहाँ पर था—यह पता नहीं चलता। ऋषभ का अश्विक्नदेश मे, शोण का पंचाल मे राज्य था। शतानीक का कहाँ था, इसका निश्चय नहीं। जाति पर राज्य का वर्णन कहीं भी नहीं लिखा है। सर्वत्र देशो पर राज्य का वर्णन है। वे० इ० कार की संख्या भी अशुद्ध है।

कुरुक्षेत्र—(१) (वे० इ०) कुरुक्षेत्र (कुरुज का देश)। यह ब्राह्मणग्रन्थो[1] मे एक मुख्य पवित्र देश माना गया है। इसकी सीमा के अन्दर दृषद्वती, सरस्वती तथा आपया[2] नदियाँ बहतीं थीं। यहाँ भी शर्यणावन्त[3] नाम की एक झील प्रतीत होती है, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में अन्यतः-प्लक्षा[4] के नाम से माना गया है। पिशल के अनुसार कुरुक्षेत्र मे परत्या[5] नाम की एक नदी थी जो ऋग्वेद के कुछ स्थानो पर प्राप्त होती है। करुक्षेत्र की सीमा तैत्तिरियारण्यक[6] मे इस प्रकार दी है—

---

(१) पञ्चविंश ब्राह्मण २५।१०, शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१३, ११।५।१।४ तथा १४।१।१।२, ऐतरेय ब्राह्मण ७।३०, मैत्रायणीसहिता २।१।४ तथा ४।५।६, जैमिनीय ब्राह्मण ३।१२६, जर्नल आफ दी अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी ११।१४६, सांखायन श्रौतसूत्र १५।१६।११, आदि।

(२) तुलना करो ऋग्वेद ३।२३, पिशल वेदिस्चेस्टडियन २।२१८

(३) देखो पिशल की वही पुस्तक और 'आर्जीकीया' से तुलना करो।

(४) शतपथ ब्राह्मण ११।५।१।४

(५) पिशल की वही पुस्तक २१६।

(६) ५।१।१ यह जगह कहाँ पर है, यह ठीक नहीं बतलाया जा

दक्षिण में खाण्डव, उत्तर मे तूर्घ्न और पश्चिम मे परीणह है। मोटे तौर पर यह वर्तमान 'सरहिन्द' था।

(२) पिशल के अनुसार कुरुक्षेत्र मे पस्त्या नाम की नदी है।

(३) (कनिङ्घम की ऐन्सियन्ट जाग्राफी पृ० ३७७) स्थानेश्वर सातवीं शताब्दी मे सा० ता० नि० शि- फा- लोपा- स्थानेश्वर एक भिन्न देश की राजधानी थी, जो ११६७ मील के घेरे में थी। वहाँ के किसी राजा का नाम नहीं दिया है। किन्तु राज्य कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के अधीन था। हर्षवर्धन उस समय उत्तर मध्यभारत का एकच्छत्र राजा था। उसकी लम्बाई-चौड़ाई को देखकर जो ह्वेनच्यांग के द्वारा दी गई है, मैं इस नतीजे पर आता हूँ कि यह देश शतलज से गगा तक फैला हुआ होगा। उसकी उत्तरी सीमा शतलज पर हरकीपतन से गंगा के पास मुजफ्फरनगर तक और दक्षिणी सीमा शतलज पर पाकपतन से होते हुए भटनगर और नारनल से गंगा पर अनूपशहर तक थी। इससे इसकी सीमा ९०० मील प्रतीत होती है, जो कि यात्री के द्वारा वर्णित से एक चौथाई कम है। किन्तु यह निश्चित है कि नाप बढ़ाकर बतलाई गई होगी। दूसरी बात यह है कि ह्वेनच्यांग का वर्णन कुछ कुछ गलत है,

---

सकता। मरु को देखो। तुलना करो वानस्क्रोडर इण्डियन्स लिट्रेचर ऐण्ड कल्चर १६४-१६५, मैक्समूलर सेक्रेडबुक्स आफ् दी ईस्ट ३२।३९८-३९९, वेबर इन्डिस्चेस्टडियन १।७८-७९, मेकडानल सस्कृत लिट्रेचर १७४, एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट १२।४१। ऐसा जान पडता है कि कुरुक्षेत्र गगा-यमुना के बीच मे बहुत पूर्व मे है।

क्योकि उसका कथन है कि छोटी रियासते ३७ अलग थीं। किन्तु यह निश्चित है कि छोटी-छोटी रियासतें बड़ी रियासतो मे मिली हुई होगी। इस तरह से मैं विश्वास करता हूँ कि गोविमन और अहिच्छत्र की रियासते मडावर-रियासत में मिली हुई होगी। और वैशाख, कुशपुर और गगा के दोआब की छोटी रियासते अयुटो हयमुख, कोशाम्बी और प्रयाग कन्नौज मे मिली हुई थीं। कुशीनगर कपिल मे था। बदरी और खेदा मालवा के आन्तरिक भाग थे। कुछ स्थानो पर मै विश्वास करता हूँ कि सौ को जगह हजार का प्रयोग कर दिया गया है। विशेषत मैं गंगा के दोआब के नीचे के जिलो के विषय मे कह रहा हूँ। इसी तरह प्रयाग (इलाहाबाद) ८३३ मील के घेरे मे कहा गया है और कोशाम्बी, जो इलाहाबाद से ३० मील की दूरी पर है, ६००० लो या १०१० मील के घेरे मे मानी गई है। दोनो के विषय में ८३ मील और १०० मील मानूँगा, जो कि छोटी-छोटी रियासतो की लम्बाई और चौड़ाई के योग्य होगा। यह निश्चय है कि वे इससे बड़ी नहीं हो सकती थीं, क्योकि वे चारों ओर से प्रसिद्ध रियासतो से घिरी थीं। इन सब बातों से पता चलता है कि ह्वयनच्यांग की नाप बिल्कुल तो सही न थी; परन्तु बहुत गलत भी न थी।

स्थानेश्वर या थानेश्वर नगर मे एक पुराना नष्टप्राय किला है, जो चोटी पर १२०० फोट है। पूर्व मे एक चोटी पर आधुनिक नगर बसा हुआ है। और पश्चिम में एक पर्यन्त भूमि है, जो बाहरी कहलाती है। तीनो छोटी पहाड़ियाँ लम्बाई मे पूर्व से पश्चिम तक करीब एक मील है और चौड़ाई में करीब

२००० फीट। लम्बाई और चौड़ाई १४००० फीट का घेरा बनाती है या २$\frac{2}{3}$ मील से कम, जो कि ह्वयनच्यांग के ३$\frac{1}{3}$ मील के बराबर है। किन्तु मुसलमानो के आक्रमणो से पहले यह निश्चय है कि आधुनिक नगर और झील जिसे दर्रा कहते है, उसके बीच का भाग पुराने नगर का भाग होगा। इस स्थान को दृष्टि मे रखने पर पुराना नगर प्रत्येक तरफ एक वर्ग मील होगा जो कि चार मील का एक घेरा बनायेगा, या चीनी यात्री की नाप से कुछ अधिक। यह कहा जाता है कि इसकी ५२ मीनारें थीं, जिनमें से अब भी कुछ अवशिष्ट है। यह किला राजा दिलीप के द्वारा बनवाया गया था जो कुरु का वंशज था और पांडु के पाँच पीढ़ी पहले था। पश्चिम मे मिट्टी के किले की दीवारें सड़क से ६० फीट ऊँची है। किन्तु भीतरी भाग ४० फीट से ऊँचा नहीं है। पूरी पहाड़ी टूटी हुई बड़ी-बड़ी ईंटों से ढकी है, किन्तु तीन पुराने कुँओ के अतिरिक्त प्राचीनता का कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं है।

स्थानेश्वर या थानेश्वर का नाम या तो स्थान (निवास-स्थान) के ईश्वर (महादेव) से निकलता है या स्थानु+ईश्वर के मिलने से अथवा स्थान+सर (झील) से निकला है। यह सबसे पुराना भारत का प्रसिद्ध नगर है। किन्तु सबसे पहले यह ६३४ ईसवी मे ह्वयनच्याग के द्वारा देखा गया। यद्यपि टालेमी के द्वारा भी यह बटनकैसर के नाम से पुकारा गया है। बटनकैसर के लिये सतानैसर या संस्कृत स्थानेश्वर का प्रयोग होता है। किन्तु महादेव के मन्दिर से अधिक यह पाण्डव के इतिहास के साथ संबद्ध होने के कारण अधिक प्रसिद्ध

है। क्योंकि महाभारत के वीरों की कथा के पश्चात् भारत मे शिव की पूजा आरम्भ हुई। थानेसर के चारो ओर का दृष· द्वती और सरस्वती के मध्य भाग का देश 'कुरुक्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध था; अर्थात् 'कुरु की भूमि' जो नगर के दक्षिण मे झील के तट पर एक बड़ा साधु हो गया। यह झील बहुत से नामो से पुकारी जाती है—यथा, ब्रह्मसर, रामह्रद, वायु या वायवसर और पवनसर। पहला नाम 'ब्रह्म' के ऊपर है। दूसरा नाम 'परशुराम' के नाम पर हुआ जिसने इसके तट पर क्षत्रियों का रुधिर बहाया। अंतिम दोनों नाम 'वायुदेव' के नाम पर है, क्योंकि यहाँ पर जब कुरु तपस्या कर रहे थे, तब अति शीतल और मनोहारी वायु बही थी। अधिकांश यात्रियो के आकर्षण का यह झील मुख्य स्थान है। इसके चारो ओर मीलों तक पवित्र भूमि है। कौरव-पाण्डव तथा अन्य प्राचीन वीरों से सम्बन्धित यहाँ पर असंख्य पवित्र स्थान है। जनसाधारण के विश्वास के आधार पर इनकी सख्या ३६० है। किन्तु कुरुक्षेत्र-माहात्म्य मे दी हुई संख्या १८० है, जिसमे से आधे अथवा ९१ उत्तर मे सरस्वती के तट पर है। किन्तु इस संख्या मे इतने शहर मे छोड़ दिये गये हैं—जैसे, नागह्रद, पुण्ड्री, वसस्थली या व्यासस्थल, बालू मे परसरतीर्थ, सगम पर विष्णुतीर्थ आदि। मैं विश्वास करता हूँ कि प्रसिद्ध ३६० की सख्या बढ़ाकर नहीं कही गई है। चक्र या कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र या 'पवित्र भूमि' भी कहलाती है, जो कि ह्वयनच्वाँग चम्प-ज़ु-वोन्होर का मौलिक रूप है। उसके समय मे यात्रा का घेरा २०० ली था, जो भारतीय योजन के अनुसार २० कोश के बराबर था।

किन्तु अकबर के समय मे घेरा बढ़कर ४० कोश हो गया और मि० ब्राउनिग ने यही माना है। जिस घेरा का चीनी यात्री ने वर्णन किया है, वह ७ या ८ मील के योजन के हिसाब से ३५ या ४० मील से अधिक न होगा। किन्तु जिस घेरे का अबुलफज्ल ने वर्णन किया है और मेरी यात्रा के समय यह ४८ कोश हो गया था, यह ४० कोश भी प्रसिद्ध है। वह बादशाही कोश के १⅓ मील के हिसाब से ५३ मील से कम न हो सका। अकबर के कोश के हिसाब २½ मील के हिसाब से सर एच० इलियट के अनुसार १०० मील से अधिक होगा। इन सब भिन्न मतो का एकीकरण सम्भव है, यदि यात्री की संख्या को १० योजन मे—जो ४० कोश या ८० मील के बराबर है—परिवर्तन कर दे और अबुलफज्ल के ४० कोश को भारतीय पैमाने के अनुसार प्रति कोश को २ मील का मान लें। मैं स्वयं भी यात्री की नाप मे परिवर्तन करने से सन्तुष्ट हूँ। क्योकि उसके घेरे का लघुविस्तार केवल प्रसिद्ध सरस्वती के तट के पृथूदक या पेहोआ के और कौशिकी संगम के दृषद्वती के मन्दिरों को ही नहीं बन्द कर देगा, वरन् दृषद्वतीनदी को ही छोड़ देगा, जो वामनपुराण के अनुसार नगर मे ही स्थित है। "दीर्घक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्त ईजिरे नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः-पुण्यायाः शुचिरोधसः ॥" अर्थात् वे दृषद्वतीनदी के तट पर कुरुक्षेत्रदेश में सत्रन्तयज्ञ कर रहे थे। महाभा० के वन०प० ८३।४ मे यह नदी पवित्र देश की दक्षिणी सरहद कही गई है। "दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च। ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ॥" अर्थात् सरस्वती के दक्षिण और दृषद्वती

के उत्तर मे वे, जो कुरुक्षेत्र मे रहते हैं, स्वर्ग मे रहते हैं। अतः यह सत्य है कि कुरुक्षेत्र का पवित्र स्थान ह्वयनच्वाँग के समय मे दृषद्वती तक अवश्य विस्तृत था। अत: उसकी नाप २० कोश की गलत है। महाभारत (८३। अन्तिम श्लोक) मे एक दूसरे स्थान पर इस पवित्र स्थान का विस्तार और भी दीर्घ बताया है। "तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरम् रामह्रदानांचअचक्रुकस्य। एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपचकं पितामहास्योत्तरवेदिरुच्यते ॥" अर्थात् तरन्तुक, अरन्तुक, रामह्रद और अचक्रुक के मध्य का भाग कुरुक्षेत्र और समन्तपंचक कहलाता है तथा पितामह की उत्तरी वेदी भी कहलाता है। अन्तिम नाम ब्रह्मवेदी बराबर है ब्रह्मावर्त के। मनुस्मृति के आधार पर हम इस तपोभूमि को दृषद्वती तट तक विस्तृत मानते हैं। "सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥" अर्थात् सरस्वती और दृषद्वतीनदी के मध्य का भाग, जो देवताओ के द्वारा निर्मित है, ब्रह्मावर्त कहलाता है।

कुरुक्षेत्र की झील एक दीर्घकाय पानी का टुकड़ा है, जो पूर्व-पश्चिम ३५४६ फीट लम्बी और १९०० फीट चौड़ी है। वराहमिहिर के आधार पर आबूरिहान का कथन कि चन्द्रग्रहण के समय सारे तालाबो का जल थानेसर के तालाब मे आता है, जिससे ग्रहण के समय इस तालाब मे स्नान करनेवाला मनुष्य अन्य तालाबों मे स्नान करने का पुण्य एक साथ प्राप्त करता है। वराहमिहिर का यह कथन हम लोगो को ५०० वर्ष ईसा के पूर्व ले जाता है, जब कि थानेसर का तालाब अति प्रसिद्ध था। किन्तु पौराणिक कथाओं के आधार पर इसकी

प्राचीनता पाण्डव के समय की है। इसके तट पर कुरु जो कौरव और पाण्डव दोनों ही के पूर्वज थे, उन्होने बहुत दिनों तक तपस्या की थी। यहीं पर परशुराम ने क्षत्रियो को मारा था। यहीं पर पुरूरवस् अपनी खोई स्वर्गीय प्रिया उर्वशी से कुरुक्षेत्र मे मिले, जो अन्य चार अप्सराओं के साथ कमलों से सुशोभित सर मे क्रीड़ा कर रही थी। किन्तु अश्वमुख दध्यञ्च या दधीच की कथा सम्भवतः पुरूरवस् की कथा से पुरानी है, जैसा कि ऋग्वेद से संकेतित होता है। अपनी हड्डियो के द्वारा ९ वृत्रो को ९० बार मारा। टीकाकार कहते है कि इन्द्र का वज्र अश्व के शिर से बना था। अश्विन ने उसे दध्यञ्च को दिया था, जिससे वह अपनी कला उसे सिखला दे। पौराणिक कथा के अनुसार दध्यञ्च को अपने जीवन मे असुरो का भय था, जो उसकी मृत्यु के पश्चात् बहुत गुना बढ़ गया और सारे जगत् मे फैल गया। तब इन्द्र ने इस बात का पता लगाया कि वह क्या हो गया और उसके शरीर का कोई भाग बचा तो नहीं है? लोगों ने इन्द्र को सूचित किया कि अश्व का सिर अब भी है; पर किसी को यह मालूम नहीं है कि कहाँ पर है? उसकी खोज हुई और वह शर्यणावत् झील मे कुरुक्षेत्र की सीमा पर पाया गया। मै विचारता हूँ कि कुरुक्षेत्र के महत्सर का यह दूसरा नाम है और यह पवित्र सर उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद। मैं यह भी विचारता हूँ कि चक्रतीर्थ अथवा वह स्थान, जहाँ पर विष्णु ने अपना चक्र भीष्म को मारने के लिये ग्रहण किया था, वास्तव मे वह स्थान है जहाँ पर सबसे प्रथम इन्द्र ने वृत्रो को मारा था। वे

हड्डियाँ जो पाण्डु को दी गई थीं, वृत्रो की थीं। इस प्रमाण को सिद्ध करने के लिये मै यह भी बतलाऊँगा कि चक्रतीर्थ अस्थिपुर (हड्डियो का स्थान) के समीप है। ६३४ A D मे जो अस्थियाँ ह्वयेनच्यांग को दिखाई गई थीं, वे बहुत बड़ी थीं। अस्थिपुर का दृश्य अब भी नगर के पश्चिम मे औजस-घाट के पास विद्यमान् है।

"पेहोआ या पृथूदक।" सरस्वती के दक्षिणी किनारे पर पेहोआ का पुराना नगर स्थित है। यह थानेसर से १४ मील की दूरी पर है। इस स्थान ने यह नाम प्रसिद्ध चक्रवर्ती पृथु से प्राप्त किया है, जो पहला राजा था; अर्थात् जिसने सबसे पहले राजा की उपाधि प्राप्त की थी। विष्णुपुराण के अनुसार उसके जन्म पर प्रत्येक प्राणी (जीवमात्र) प्रसन्न हुए थे। क्योंकि उसका जन्म सारे अत्याचारो और अशान्ति को, जो संसार में फैली थी, समाप्त करने के लिये हुआ था। उसी पुराण में यह भी कथा है कि सरस्वती मे स्नान करने पर राजा वेन का कोढ़ अच्छा हो गया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र पृथु ने उसका श्राद्ध किया और उसके शरीर के दाह के पश्चात् बारह दिनों तक सरस्वती के तट पर बैठे हुए उसने यात्रियो को जल दिया था, इसलिये उस स्थान का नाम पृथूदक पड़ा। वह स्थान (नगर) जिसे उसने उस स्थान पर बनवाया, उसी के नाम से पुकारा जाने लगा। पृथूदक का मन्दिर कुरुक्षेत्र-माहात्म्य मे स्थान रखता है।

'अमीन" थानेसर के दक्षिण पश्चिम मे पाँच मील की दूरी पर एक ऊँची पहाड़ी है, जो अमीन कहलाती है। ब्राह्मणो

का कथन है कि 'अभिमन्युखेर' का यह छोटा रूप है ; अर्थात् अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की पहाड़ी। यह स्थान चक्रव्यूह भी कहलाता है। क्योंकि पाण्डवो ने यहाँ पर अपनी सेना को कौरवों के साथ अन्तिम लड़ाई से पहले एकत्र किया था। यहाँ पर अभिमन्यु जयद्रथ के द्वारा मारा गया, जो दूसरे दिन अर्जुन के द्वारा मारा गया। यहाँ पर अदिति ने पुत्रप्राप्ति के लिये तपस्या की थी। यहीं पर उससे सूर्य उत्पन्न हुए। यह पहाड़ी उत्तर से दक्षिण तक २००० फीट के लगभग लम्बी है और ४०० फीट चौड़ाई मे है तथा २५ से ३० फीट तक ऊँची है। चोटी पर अमीन नामक छोटा-सा ग्राम है, जहाँ पर गौड़ ब्राह्मण रहते है और अदिति का मन्दिर है। पूर्व मे एक सूर्यकुण्ड है और पश्चिम मे एक सूर्य का मन्दिर है। सूर्यकुण्ड उस स्थान को बतलाता है, जहाँ पर सूर्य उत्पन्न हुए थे। अतः जो स्त्रियाँ पुत्रलाभ की इच्छा करती हैं, वे इतवार को अदिति की पूजा करती हैं और बाद मे सूर्यकुण्ड मे स्नान करती है।

(४) जा० ग्रा० डि० पृ ११० "कुरुक्षेत्र थानेश्वर।" यह भाग पहले सोनपत, अमीन, करनाल तथा पानीपत से अपने में शामिल किया गया था तथा उत्तर मे सरस्वती एव दक्षिण में दृषद्वती के मध्य मे था (महाभा० व० अ० ८३)। परन्तु प्रताप-चन्द्रराय की महाभारत देखिये। कौरवो और पाण्डवों के बीच मे युद्ध थानेश्वर और उसके समीप के देश मे हुआ था। थानेश्वर मे 'द्वैपायनह्रद' है। व्यासस्थली (आधुनिक वस्थली) थानेश्वर से दक्षिण-पश्चिम १७ मील है। थानेश्वर से ५ मील दक्षिण अमीन मे अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मारा गया था

तथा अर्जुन के द्वारा अश्वत्थामा हराया गया था और उसका मस्तक फोड़ा गया था। अनिङ्गहम के अनुसार अमीन 'अभिमन्युक्षेत्र' का रूपान्तर है। अमीन मे अदिति ने सूर्य को पैदा किया था। थानेश्वर से पश्चिम ८ मील की दूरी पर 'भोर' नामक स्थान है, जहाँ पर भूरिश्रवा मारा गया था। चक्रतीर्थ मे श्रीकृष्ण ने भीष्म के मारने के लिए अपने रथ का पहिया उठाया था। थानेश्वर से ११ मील दक्षिण-पश्चिम नागड् मे भीष्म का देहान्त हुआ था तथा औजसघाट के दक्षिण में युद्ध में मारे गये वीरों के शरीर इकट्ठे किये गये और जलाये गये थे। उस स्थान का नाम अस्थिपुर है (पद्म पु० सृ० आदि १३), (आरकियो सर्वे रिपोर्ट वालूम १४ पृ० ८६ से १०६ तक)। सोनपत और पानपत शोणप्रस्थ तथा पाणिप्रस्थ के रूपान्तर हैं, जो कि दुर्योधन से युधिष्ठिर द्वारा माँगे गए पाँच गाँवों में से हैं। कुरुक्षेत्र स्थाणुतीर्थ तथा समन्तपंचक भी कहलाता था (महाभा० शल्य प० अ० ५४ तथा वन प० अ० ८३)। थानेश्वर के उत्तर आधे मील की दूरी पर स्थाणुमहादेव का मन्दिर है। इसका यात्रियो द्वारा ११ वीं शताब्दी अर्थात् अलबरूनी के समय में, विशेषतः ग्रहण के समय पर, दर्शन किया जाता था (अलबरूनी की इण्डिया खण्ड २ पृ० १४७, मत्स्यपुराण अ० १९१)।

वस्तुतः यह एक पवित्र तीर्थ है। संहिता[1] ब्राह्मण[2], और

---

(१) मैत्रायणी संहिता २।१।४ तथा ४।५।९ कुरुक्षेत्र मे देवताओं ने यज्ञ किया।

(२) शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१३ कुरुक्षेत्र मे देवताओं के यज्ञ का

पुराणादि[1] मे इसका वर्णन है। मनु (२।१९) इसको ब्रह्मावर्त से लगा हुआ मानते हैं। वहाँ पर इस शब्द का अर्थ कुरुदेश होता है।

वर्णन है तथा ११।५।१।४ मे पुरूरवा राजा ने उर्वशी को अन्यतःप्लक्षा नामक कमलिनी मे फिर पाया, जो कुरुक्षेत्र के समीप में थी। तथा १४।१।१२ देवताओं ने यहाँ यज्ञ किया। ऐतरेय ब्राह्मण ३५।४ यहाँ देवताओं ने यज्ञ किया। बृहद्देवता ६।५८।

(१) वाल्मी० उत्तर (नि०) ११।१४, महाभारत आदि० ३।१ यहाँ परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने यज्ञ किया। तथा वन० (म० चि० सु०) ५।१ यहाँ सरस्वतीनदी और दृषद्वतीनदी है। महाभा० आर० (चि०) यह सरस्वती से दक्षिण और दृषद्वती से उत्तर है। (म०) ६६।१ महाभा० आदि० (नि०) १०१।३८ यह तीर्थ है और इसको कुरु ने बनाया। वामन० २।।२१ यह तीर्थ है। यहाँ पृथूदक तीर्थ है। यहाँ ब्रह्मा की उत्तरवेदी है। इसका समन्तपञ्चक भी नाम है। यह सर्वश्रेष्ठ धर्मस्थान है। यह चारो ओर पाँच-पाँच योजन है। पद्म० सृ० ११।१४ यह तीर्थ है। ब्रह्माण्ड० प्र० ३।१८ यह क्षेत्र है। स्कन्द० काशी० ६९।७ यह तीर्थ है। यहाँ पर स्थाणु नाम के महादेव है। उनके आगे सन्निहिता पुष्करिणी है। वायु० पू० १।१२ यहाँ दृषद्वतीनदी है। महाभा० हरि० भ० ८१।१६ यह तीर्थ है। यहाँ पर परशुराम ने पितृक्रिया की। देवीभागवत १२।६।६० यह तीर्थ है। यहाँ गायत्री देवी है। श्रीमद्भागवत १।१०।३४ हस्तिनापुर से द्वारका जाने मे मार्ग मे आता है। तथा ३।३।१२ यहाँ कौरव पाण्डवों का संग्राम हुआ। शिव महापु० उमा० ४४।४५ यह तीर्थ है। गर्गसहिता विश्व० २२।२१ यहाँ सरस्वतीनदी हैं। अभिधानचिन्तामणि ९४९ यह धर्मक्षेत्र है और बारह योजन मे इसका विस्तार है। बृहत्सहिता ५।७८ यह तीर्थ है। समाससहिता यह मध्यदेश में है। बृहत् पराशरसहिता यह तीर्थ है। मनुस्मृति २।१९ यह ब्रह्मावर्त से लगा है और ब्रह्मर्षिदेश में है। वृद्धशातातपस्मृति ६।१९५ यह तीर्थ है।

यह वर्तमान पञ्जाब के कर्नाल जिले मे है और यहाँ सूर्यग्रहण पर बहुत बडा मेला लगता है। कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक ५।७।१ मे कुरुक्षेत्र तीर्थ है। यहाँ देवताओ की यज्ञ की वेदी थी। खाण्डव उसका दक्षिणार्ध था, तूर्घ्न उत्तरार्ध था, परीणत् जघनार्ध था और मरु उत्कर था—ऐसा लिखा है। पुराणो मे इसकी मर्यादा इस प्रकार है—तरण्ड और कारण्डक का मध्य और रामह्रद और अचक्रुक का मध्य कुरुक्षेत्र है, पम्पातीर्थ इसका द्वार है। ऋग्वेद मे सरस्वती, दृषद्वती, मानुष, आपया और त्रित का जो वर्णन है, उसमे स्थान का निर्देश नहीं है। पुराणो में सरस्वतीनदी, मानुषतीर्थ और आपगा का वर्णन कुरुक्षेत्र मे है। वेद मे 'आपया' है और पुराणो मे 'आपगा' है, अर्थ समान है। आपगा से एक कोश पश्चिम मानुषतीर्थ है और त्रित के स्थान पर त्रितकूप है। इसमे सन्निहितातीर्थ की बड़ी महिमा है। सूर्यग्रहण का मेला यहीं पर होता है। उसको इस समय सिनेत कहते हैं। गजेटियर मे उत्तर की सीमा वर, सरस्वती, घर्घर से थानेश्वर तक, दक्षिण मे सिख से रामराय तक और दृषद्वती का नाम रक्षी लिखा है। शर्यणावत् का नाम सर्वनवथ लिखा है। नारदक का नाम निदेख लिखा है। सरस्वती दृषद्वती का मध्य कुरुक्षेत्र माना है। कनिङ्हम ने स्थानेश्वर नाम माना है, परन्तु इसका शुद्ध नाम स्थाण्वीश्वर है।

वेदव्यासस्मृति ४।१३, बृहत्कथामञ्जरी अलङ्कार० १।७३, राजतर० ८। ९४५, कूर्मपुराण ब्रा० उ० २०।३४ यह तीर्थ है। मार्कं० २।३४ तीर्थ है। यहाँ कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ। नारदीय० उ० ६।४ यह सरस्वती और दृषद्वती के बीच में है। वाराह० ९९।४८ यह तीर्थ है।

यहाँ पर स्थाणु नामक महादेव है, वह जिसके मालिक हों वह देश या स्थान स्थाण्वीश्वर कहा जाता है। यहाँ नाम से स्थान और सर का कोई सम्बन्ध नहीं है। कनिगहम इसकी प्रसिद्धि का कारण महाभारत के वीरो का सम्बन्ध मानते हैं और महादेव की पूजा भारत में महाभारत के वीरो के बाद प्रारम्भ हुई, यह लिख रहे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कनिगहम ने कभी भी महाभारत का मूल या उसका अनुवाद भी नहीं पढ़ा। यदि पढ़ा होता तो महाभारत के वीरों की वीरता जो शिव के कारण ही प्राप्त हुई और प्रसिद्ध हुई, उसे पढ़कर कभी भी ऐसा नहीं कहते। कुरुक्षेत्र का नाम ऋग्वेद मे भी है। मनु ने भी लिया है। इसमे कौरव पाण्डवो के संग्राम से पहले और भी बहुत से संग्राम हुए हैं, जिनका वर्णन महाभारत मे है। शिव की पूजा संसार मे तब से प्रचलित है, जब से कि वह चला। ऋग्वेद में रुद्र का वर्णन शिव का ही वर्णन है। फिर भी कनिगहम 'महाभारत के वीरो की कथा के बाद भारत मे शिव की पूजा प्रारम्भ हुई'—यह कहते हुए जरा भी संकुचित नहीं होते। इनको यह भी ज्ञान नहीं है कि योरप मे भी महादेव का पूजन होता रहा और अब भी होता है। योरप के मर्करी का वर्णन ठीक महादेव से मिलता है और पारा शिववीर्य कहलाता है, मर्करी भी कहलाता है। कनिङ्हम ने कुरुक्षेत्रतीर्थ को ब्रह्मसर और रामह्रद इत्यादि से एक किया है, वह भी ठीक नहीं। क्योंकि पद्मपुराण अ० २६ मे कुरुक्षेत्र नाम का सर भिन्न है। रामह्रद नाम के तालाब भिन्न है और पाँच हैं। सूर्यग्रहण मे लोग जिसमें स्नान करते है, उसको सन्निहितातीर्थ कहते हैं, जो

आजकल सिनेत नाम से विख्यात है। शर्यणावत्सर भिन्न है और अन्यतःप्लक्षा नाम का सर भिन्न है, जिसमे पुरूरवा ने उर्वशी को देखा था। जहाँ पर अभिमन्यु मारे गये, वह स्थान चक्रव्यूह का स्थान है। दुर्योधन को संतुष्ट करने के लिए द्रोणाचार्य ने एक व्यूह (सेना को विशेष रूप से खड़ा करना) रचा था और अर्जुन को संशप्तक योद्धाओ के साथ लड़ने के लिए अलग लगा दिया था। व्यूह रचनाकर युधिष्ठिर को खबर भेजी कि या तो किसी को व्यूह मे लड़ने के लिये भेजो या जंगल को चले जाओ। कौरव और पाण्डवो की सेना मे चक्रव्यूह की लड़ाई को द्रोणाचार्य, श्रीकृष्ण और अर्जुन के बाद कोई नहीं जानता था। युधिष्ठिर के घबड़ाने पर अभिमन्यु ने कहा कि पिताजी ने हमको चक्रव्यूह में प्रवेश करना सिखलाया है, परन्तु निकलना नहीं सिखलाया। हम प्रवेश कर सकते है, निकलना नहीं जानते। भीमसेन ने कहा कि हम लोग तुम्हारे साथ चलेंगे। निकाल लाना हमारा काम है। अभिमन्यु सेना के साथ आगे बढ़ा। परन्तु द्वार पर जयद्रथ नाम का दुर्योधन का बहनोई रक्षा के लिए खड़ा था। अभिमन्यु उसको जीतकर व्यूह मे प्रविष्ट हो गये। परन्तु भीमसेन जयद्रथ को न जीत सकने के कारण द्वार पर ही रुक गये। जयद्रथ को महादेव का वरदान था कि एक दिन तुम अर्जुन को छोड़कर बाकी पाण्डवो को जीत सकोगे। इसी कारण भीमसेन जयद्रथ से दिन भर पार न पा सके। अभिमन्यु अकेला ही चक्रव्यूह मे प्रविष्ट हुआ और दिन भर घोर संग्राम कर कर्ण इत्यादि छः महारथियों द्वारा सायंकाल अन्याय से संग्राम मे मारा गया। जयद्रथ के कारण

ही भीमसेन अभिमन्यु के साथ न जा सके थे, इससे अर्जुन ने क्रुद्ध हो दूसरे दिन जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा की और उसको मारा। कनिङ्घम ने जो कथाएँ लिखीं है, वे महाभारत क्या किसी पुराण के आधार पर सत्य नहीं हो सकतीं। कनिङ्घम ने दध्यञ्च के विषय मे जो लिखा है, वह बिल्कुल निराधार है। दध्यञ्च की कथा सायण ने शाट्यायन से लिखी है। ऋग्वेद और शतपथ मे भी उसका वर्णन मिलता है। हमने उसको शर्यणावान् मे लिखा है।

कुरुपञ्चाल—भारतीय इतिहास की रूपरेखा १।३३७ मे "कुरु पञ्चाल का मिलना" शीर्षक—"सब राष्ट्रों मे धीरे धीरे शान्ति के साथ सुख-समृद्धि भी लौट आई। परन्तु कुरु-राष्ट्र पर फिर एक बड़ी भारी विपत्ति आ बनी। अधिसीमकृष्ण के बेटे निचक्षु के समय मटची कीड़ों (लाल टिड्डियो) के लगातार उत्पात से कुरुदेश मे ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा कि लोगो को पुराना सड़ा हुआ अन्न खा-खाकर गुजर करना पड़ा। उधर गंगा की बाढ़ हस्तिनापुर को बहा ले गई। उस दशा मे कुरु लोगो की एक बड़ी सख्या राजा-सहित उठकर कौशाम्बी मे जा बसी। कौरवो के इस प्रवास से दक्षिणपञ्चाल के लोग भी उनमे मिल गये और वह सम्मिलित जन तब से कुरुपञ्चाल कहाने लगे। उनका राजवश भी तब भारतवश या पौरववंश कहलाया। और भारतो या पौरवो का केन्द्र वत्सभूमि (जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी) हो गई। कुरु लोग पहले जिस प्रदेश मे रहते थे, उसका नाम भी कुरु पड़ ही चुका था। और आज तक उसका पश्चिमी भाग कुरुक्षेत्र कहलाता है।"

वस्तुत: अधिसीमकृष्ण के बेटे निचक्षु के समय मटची कीड़ो के उत्पात का लेख जो ग्रन्थकार ने दिया है, उसमे कोई प्रमाण नहीं दिया। श्रीमद्भागवत ९।२२।३९ मे असीमकृष्ण के पुत्र नेमिचक्र का नाम लिखा है और उसी के समय मे गङ्गा की बाढ़ मे हस्तिनापुर के बह जाने का वर्णन है तथा उसी की राजधानी कौशाम्बी बनी। उसका पुत्र चित्ररथ, उसका पुत्र कविरथ, उसका पुत्र वृटिमान्, उसका पुत्र सुषेण, उसका पुत्र सुनीथ और उसका पुत्र नृचक्षु लिखा है। परच उसके समय मे दुर्भिक्ष का वर्णन नहीं है और नेमिचक्र के समय मे हस्तिनापुर को गङ्गा का बहाना लिखा है। कुरु के दुर्भिक्ष का वर्णन नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् १।१०।१ मे 'मटचीहतेषु कुरुषु' ऐसा मिलता है (परिशिष्ट के देखने से शायद आपने यहीं से लिखा)। परञ्च वहाँ किसी राजा का नाम नहीं लिखा है। उसका निचक्षु के साथ कैसे सम्बन्ध है? यह बात समझ मे नहीं आती। मटची का अर्थ भगवान् शंकराचार्य ने "मटचयोऽशनयः ताभिर्हतेषु नाशितेषु कुरुषु कुरुशस्येषु इत्यर्थः।" मटची (बिजलियाँ) से कुरु-देश की फसल नाश करने पर। आनन्दगिरि की (शाङ्कर भाष्य की) व्याख्या मे "मटच्यो मर्दनहेतव अशनयः पाषाण वृष्टयो वा।" मटची का अर्थ नाशकरनेवाली वस्तु बिजलियो का गिरना या ओलो की वर्षा किया है। कथा इस प्रकार है:—
कुरुदेश के धानो का मटचियों द्वारा नाश होने पर चक्रायण का पुत्र उषस्ति नामक ब्राह्मण धनाढ्यों के गाँव मे रहता था। वह अन्नाभाव के कारण मरणासन्नावस्था को प्राप्त हो गया। अन्न के लिये घूमते हुए उसने किसी धनाढ्य को कुल्माषभट-

बाँस नामक अन्न (यह काला होता है जिसे लोग भूँजकर चबाते है) खाते हुए देखा । उसने उससे अन्न की प्रार्थना की । उसने कहा कि यह अन्न हमारा उच्छिष्ट है, आपको कैसे दें ? ब्राह्मण ने कहा कि जूठा ही दे दो । इसने दे दिया और कहा कि हमारे पास जूठा पानी भी है, क्या इसको भी दें ? ब्राह्मण ने कहा कि पानी बहुत मिलता है, उसे देने की आवश्यकता नहीं । वह अन्न लेकर घर चला आया । उसने उस अन्न को खाया और बचा हुआ ब्राह्मणी को दे दिया । ब्राह्मणी भोजन कर चुकी थी । उसने उस अन्न को रख दिया । प्रातःकाल ब्राह्मण ने कहा कि आज राजा के यहाँ यज्ञ है, वहाँ हम जाना चाहते है । यदि कुछ भोजन होता तो खाकर जाते । ब्राह्मणी ने वह अन्न ब्राह्मण को दे दिया और ब्राह्मण खाकर राजा के यज्ञ मे चला गया । वहाँ उसने अपना पाण्डित्य प्रकट किया और राजा से अन्य ऋत्विजो के समान दक्षिणा पाई । इस कथा मे धनाढ्य के कुल्माष के भक्षण का वर्णन है । उसका अर्थ सड़ा अन्न नहीं होता । राजा का वर्णन है; किन्तु उसका नाम नहीं लिखा है और न कोई समय लिखा है । और राजा के यज्ञ मे जाने का वर्णन है । राजा का वहाँ से भागने का वर्णन भी नहीं; प्रत्युत राजा का स्वस्थ होना लिखा है । निचक्षु के साथ सम्बन्ध कैसे होता है, यह पता नहीं चलता । कुरु लोगो की बड़ी संख्या कौशाम्बी मे जा बसी, इसमे भी कोई प्रमाण नहीं मिलता । निचक्षु के आश्रित ही गये होगे । उनकी संख्या थोड़ी थी या अधिक, इसका निर्णय कैसे हुआ ? उसके साथ दक्षिणपञ्चाल लोग भी गये, इसमे क्या प्रमाण है ? पञ्चालो का जाने से क्या सम्बन्ध ? कुरु,

पञ्चाल दोनों कौशाम्बी (जो वत्सदेश की राजधानी थी) में अथवा उसके प्रान्त मे एक साथ बस गये तो कुरुपञ्चाल नामक एक देश 'कौशाम्बी' कैसे कहलाया ? यदि यह कहें कि वत्स दक्षिणपञ्चाल के अन्तर्गत था, उसमें पञ्चालनिवासी पहले से ही बसे थे और कुरु भी आकर बस गये, इससे कौशाम्बी का भाग कुरुपञ्चाल कहलाया, सो भी नही बनता। कुरु और पञ्चाल शब्दो का प्रयोग ब्राह्मणों[1], पुराणों और उपनिषदो मे भिन्न-भिन्न और साथ-साथ द्वन्द्व समास मे बहुत स्थानो मे मिलता है। वहाँ दोनो भिन्न भिन्न देश माने जाते हैं। आज भी दो शहरो या ग्रामों का नाम एक साथ प्रसिद्ध सुना जाता है। परन्तु दोनो के निवासी दोनों मे परस्पर मिलकर रहते हैं, ऐसा कोई नहीं समझता। उसी प्रकार कौशाम्बी का प्रान्त कुरुपञ्चाल कहा गया, यह बात समझ मे नहीं आती। हस्तिनापुर से कौशाम्बी जानेवाला राजा बहुत पीछे का है। और ब्राह्मणग्रन्थ तथा उपनिषद् उससे पूर्व के है।

---

(१) शतपथ० १३।५।४।७ मे क्रिवयः इतिहवैपञ्चालानानाम तथा छान्दोग्य उपनिषद् मे 'मटचीहतेषु कुरुषु' ऐसा पाठ है। १।१०।१ तथा ५।३।१ मे 'पञ्चाल' शब्द आया है। ऐतरेय ब्रा० ३८।३ ये दोनो देश मध्यदेश मे है और इनके अभिषिक्त नृपति 'राजा' कहे जाते है। यहाॅ 'कुरुपञ्चालाना राजानः' ऐसा लिखा है। गोपथब्राह्मण २।१० मे कुरुपञ्चालेषु' आया है। कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् मे 'कुरुपञ्चाला ब्राह्मणाः' आया है। बृहदारण्यक ३।१।१, शतपथ ब्रा० का० ३ प्र० २ अ० २ ब्रा० २।१५ तथा का० १४ प्र० ४। अ० ६ ब्रा० १।१, जैमिनीय ब्राह्मण २।२७६ 'कुरुपञ्चालाना ब्राह्मणाः'।

महाभारत सब पुराणों के पीछे बना है। महाभारत को राजा जनमेजय ने सुना था। इन पुराणो के समय से कुरु पञ्चाल शब्द एक साथ मिल गये, यह कहना समझ में नहीं आता। उसके बाद ये लोग भारत और पौरव कहे गये, यह भी समझ मे नहीं आता। चंद्रवंशी क्षत्रियो की वंशावली मे ययाति के पुत्रो में पूरु का नाम आता है और उसके बहुत बाद दुष्यन्त के पुत्र भरत का, तदनंतर कुरु का और कुरु के कई पुरुषों के बाद कौशाम्बी की राजधानी बनानेवाले राजा का नाम आता है। 'पौरव' शब्द पूरु की सन्तान होने से पूरु के पुत्रो से ही चला और 'भारत' शब्द भरत के पुत्रों से। कौशाम्बी के राजा भी 'पौरव' और 'भारत कहे जाते थे, न कि कौशाम्बी में बसने के बाद। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को 'भारत' कहा है, जो कौशाम्बी के राजाओ के पूर्वज थे।

वस्तुतः ये दो देश हैं। इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न और द्वन्द्व समास मे आता है। ये दोनो समीप हैं। कुरु की राजधानी हस्तिनापुर थी, जो मेरठ के जिले मे गङ्गा के तट पर आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। पञ्चाल के दो भाग रहे। एक उत्तरपञ्चाल जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी, जो यू० पी० मे नैनीताल के जिले मे काशीपुर के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिणपञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य नगर थी, जो फर्रुखाबाद जिले मे कम्पिल के नाम से गगातट पर वर्तमान है, और आसन्दी (कन्नौज) भी उसकी राजधानी थी।

कुलिशी—यह एक नदी है और शिफा की सहायक है। इसका वर्णन ऋ० वे० १।१०४।४ मे आया है। यह नदी नेपाल

में है। स्कन्द० हिम० ७९।२२, ११४।७३ मे वीरा नाम की नदी लिखा है। यह ऋग्वेद की वीरपत्नी है। ऋग्वेद मे यह और वीरा शिफा में मिलती है। इससे दोनो एक ही प्रान्त मे हैं।

कुल्या—(१) वे० इ० "कुल्या — मुइर के अनुसार ऋग्वेद' के दो अवतरणों में यह शब्द आया है। सम्भवतः कृत्रिम जल-प्रवाह, जो ह्रदो मे गिर रहा है, उसका वर्णन है। 'अवत' देखिये।"

(२) मुइर[2] का भी यही मत है।

वस्तुतः यह नहर का नाम है (बनावटी नदी)। ऋग्वेद में ह्रद मे जानेवाली नालियो के अर्थ मे इसका प्रयोग मिलता है। (ऋ० ३।४५।३ इन्द्र की स्तुति मे) जिस प्रकार कुल्याएँ ह्रद (अगाध जलवाले जलाशय) के सामने जाती हैं, उसी प्रकार सोम आपकी ओर जाते हैं। ऋ० वे० ५।८३।८ में तथा निरुक्त २।२४ में यह शब्द नदी के अर्थ मे आया है। यह मन्त्र पर्जन्य की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है—'हे पर्जन्य! तुम अपने बड़े कोषस्थानीय मेघ को ऊपर लाओ और ऐसा करके नीचे टपकाओ कि कुल्या = नदियाँ खूब खुलकर पूर्वाभि-मुखी होकर बहें। जल से द्युलोक और पृथ्वीलोक को बहुत अधिक गीला करो कि जिससे गायो के लिये खूब सुख से पीने योग्य जल हो जाय।' इस मत्र मे नदियो का पूर्वाभिमुख होकर बहना कहा गया है। पञ्जाब मे और पञ्जाब से पश्चिम कितनी नदियाँ पूर्वाभिमुख बहती है, इसपर विद्वान् लोग ध्यान दें।

---

(१) ३।४५।३ तथा १०।४३।७

(२) संस्कृत टैक्स्ट ५।४६५–४६६

कृत्वान्—(१) वे० इ० "ऋग्वेद०[1] के एक स्थान पर कृत्वान बहुवचन मे आर्जीकाज् तथा अन्य पाँच जातियो के साथ उल्लिखित है। पिशल[2] सोचते है कि यह एक प्रकार की जाति रही होगी। सायण स्पष्ट रूप से लिखते है कि कृत्वान् एक देश[3] के लिये आया है। यह नाम इस रूप मे क्रिवीज तथा कुरुज् से संबन्ध दिखलाता है। हिल्लेब्राट[4] सोचते है कि यह शब्द विशेषण है, जो आर्जीक की विशेषता बतलाता है और इन लोगो को एक विरोधी द्वारा प्रयुक्त किये गये जादूगर का पद देता है। इस धारणा के पक्ष मे ह्वेनसांग के वक्तव्य का उल्लेख करता है। ह्वेनसांग[5] कहता है कि 'पड़ोसी राजाओ ने नीच कश्मीरियो से हर प्रकार का सम्बन्ध तोड़ दिया और उनको कीलीटो अर्थात् कृत्याज् नाम दिया।' यह बतलाता है कि आर्जीकाज् प्राचीन काल मे कश्मीर मे ठहरने के कारण उसी प्रकार बदनाम थे, जिस प्रकार बाद मे उनके उत्तराधिकारी।

(२) हिल्लेब्रांट इस शब्द को आर्जीक का विशेषण मानते है और इन लोगो को जादूगर का पद देते है तथा ह्वेनसाग का प्रमाण देते है।

---

(१) ९।६५।२३

(२) वेदिस्चेस्टडियन २०९

(३) कृत्वन् इति देशाभिधानम्।

(४) वेदिस्चेमाइथालोजी १।१३६-१३७

(५) कनिङ्गहम एन्सियन्ट जाग्राफी आफ इंडिया ९८, तुलना करो राथ सेंट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी।

(३) पिशल इनको एक जाति मानते हैं।

वस्तुतः यह एक देश है। ऋ० वे० मे इसका नाम आया है। यहाँ सोमसाध्य यज्ञ होते थे। लेकिन यह कहाँ पर था, यह निश्चय नहीं। सामवेद उत्त० ८।६ तथा ऋ० वे० ९।६५। १३ में 'जो सोम आर्जीक देश मे तथा कृत्वान् देश मे या नदियो के समीप मे निषादसहित चारों वर्णो से कूटकर निकाले गये है या निकाले जाते हैं' (वे सब सोम हमारे अभिमत को दे, यह आगे से सम्बन्ध है)। इसमे आर्जीक देश दिया है, जो व्यास के तट पर है। कृत्वान् देश दिया है, उसका कोई स्थान निश्चय नहीं है। नदियो का सामान्य नाम दिया है, विशेष का नहीं। और पञ्चजन दिया है, जिसका अर्थ होता है निषाद 'पाँचवे जिनके ऐसे चारो वर्ण। इसमे सोम का अभिषव लिखा है। सोम को कूटकर रस निकालना अभिषव कहा जाता है। यह रस हवन करने के लिये यज्ञो मे निकाला जाता है। इससे यज्ञ होने का जिन स्थानो और लोगों में संभव हो सकता है, वे यज्ञ के योग्य स्थान और पञ्चजन यज्ञ के करनेवाले समझे जा सकते है। यह नाम क्रिवीज् और कुरूज् से सम्बन्ध दिखलाता है, वेदिक इन्डेक्सकार का यह कहना दुराग्रह है। कृत्वान् के आदि में 'क' अक्षर है तो आदि में 'क' अक्षरवालों से सम्बन्ध हो गया, यह कहना कोई भी बुद्धिमान् मानने को तैयार न होगा। आर्जीकाज् देश को जाति कहना भी केवल दुराग्रहमात्र है। यह शब्द देशअर्थ मे प्रयुक्त है, जाति मे नहीं। आर्जीकाज् का विशेषण करने पर अर्थ 'कर्मशील आर्जीक' निकलता है, न कि नीच आर्जीक। हिल्लेब्रांट का

कथन एकदम विचित्र है। आर्जीक का कश्मीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'कश्मीरी इतने नीच थे कि पड़ोसियों ने उनको छोड़ दिया था', यह कहने से क्या यह समझा जा सकता है कि ह्वेनसांग के समय के कश्मीरियों में यदि नीचता आ गई हो तो क्या उनसे लाखो वर्ष पूर्व के कश्मीरनिवासी भी नीच थे? पहले तो आर्जीकदेश-निवासी कश्मीर से आर्जीक मे आये, इसमें अणुमात्र भी प्रमाण नहीं है। इस पर वह इतने नीच थे कि उनकी नीचता उनके चले आने के बाद भी कश्मीरवासियों मे रह गई और ह्वेनसांग के समय स्वयं नीच न रहे, क्योंकि ह्वेनसाग ने व्यासतट के निवासियों की नीचता का वर्णन नहीं किया था। कश्मीरी लोगो ने बौद्ध धर्म को उस समय कश्मीर से निकाल दिया होगा या बौद्ध समझ कर ह्वेनसांग का तिरस्कार किया होगा। इसलिये ह्वेनसाग उनको नीच लिख सकता है। क्योंकि विरुद्धधर्मवाले का तिरस्कार करना या सत्कार न करना मनुष्य का स्वभाव होता है।

कृष्णशिला[१]—यह व्यासनदी के मध्य मे थी और इसपर वशिष्ठ ने तपस्या की थी। इसपर वशिष्ठ का दूसरा आश्रम है।

केकय—(१) वे० इ० "केकय एक जाति का नाम है जो बाद मे तथा संभवतः वैदिक समय में भी उत्तर-पश्चिम सिन्ध

(१) गोपथ ब्रा० २।८

और वितस्ता[1] के बीच मे बस गई थी। वैदिक ग्रन्थो[2] मे केकयाज् अपने राजा अश्वपति के नाम से उल्लिखित है।"

(२) वेबर और पार्जीटर का भी यही मत है। (वे० इ०)

(३) जा० डि० पृ० ९८ "केकय एक देश है, जो शतलज और व्यास के बीच मे बसा है। यह अयोध्या के राजा दशरथ की रानी कैकेयी के पिता का राज्य था। (रामायण अयोध्या का० ६४), देखो—गिरिव्रजपुर"

(४) भारतीय इतिहास की रूपरेखा जि० १।२०१ "चौदह वर्ष बाद रामचन्द्र अयोध्या वापस आये और कोशल का राज्य सँभाला। उनका शासनकाल दीर्घ और समृद्धिशाली था। वे अपने समय के चक्रवर्ती राजा थे। उनके भाई भरत को अपने ननिहाल के केकयदेश का राज्य मिला। आधुनिक गुजरात, शाहपुर और जेलहम जिले प्राचीन केकयदेश का सूचित करते है। उनकी राजधानी उन दिनों राजगृह या गिरिव्रज थी। उसे जेलहमनदी के किनारे आजकल गिरजाक (जलालपुर) बस्ती सूचित करती है[3]। केकय के साथ सिन्धुदेश, डेराजात तथा सिन्धसागर दोआब का दक्षिण भाग भी भरत के अधिकार

---

(१) पार्जीटर जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८। ३१७-३३२। तुलना करो वेबर इण्डियन लिट्रेचर १२०, इण्डिस्चेस्टडियन १।१२६।

(२) शतपथ ब्रा० १०।६।१।२ से प्रारभ। छादोग्योपनिषद् ५।११।४

(३) कनिङ्गहम एन्सियन्ट जाग्रोफी आफ इण्डिया पृ० १६४।

में था[1]। १।३३४ केकयदेश आधुनिक शाहपुर, जेहलम, गुजरात जिले के ठीक पूर्व सटा हुआ है।"

(५) कनिङ्हम ने अपनी एन्सियन्ट जाग्राफी पृ० १८५ में लिखा है कि "गिरझाक मेरी समझ मे कोर्ट साहब का गरी-रखी है। यह अर्थात् गिरझाक जलालपुर के उत्तर एक पहाड़ी के ऊपर एक टूटा-फूटा किला है। यह दादारपुर से ८ मील है। जलालपुर का नगर झेलम के पश्चिमी किनारे पर, जहाँ पर कंडारराह्वा प्राचीन नदी के पेटे का स्पर्श करता है, स्थित है। नदी अब दो मील दूर है। बीच का भाग छोटे-छोटे पेड़ों और बालू से भरा पड़ा है। लोग कहते है कि अकबर के समय में यह एक बहुत प्रसिद्ध और समृद्धिशाली नगर था। लोगों ने इसका नाम भी इसी सम्राट् के नाम से रखा। लेकिन नदी के हट जाने से और पिण्डडाउन बस जाने से यह दिन-प्रतिदिन नष्ट हो रहा है। इस समय इसमें कुल ७३८ घर और कुल ४००० निवासी है। देखने से पता चलता है कि शायद नगर किसी समय आजकल के नगर से तिगुना या चौगुना बड़ा रहा होगा। मकान करीब-करीब आखिरी ढाल पर नमककीपहाड़ी के पूर्वी किनारे पर स्थित है। यह ढाल धीरे-धीरे ऊँची होकर सड़क से १५० फीट ऊँची हो गई है। इसका प्राचीन हिन्दू

---

(१) रामायण के अनुसार भरत दाशरथि को अपने ननिहाल का केकयदेश मिला था। रघुवंश के अनुसार सिन्धुदेश भी। पार्जीटर दोनों मे विरोध देखते है। प्रा० भा० ऐ० अ० पृ० २७८ वास्तव मे दोनों में पूरा सामजस्य है, क्योंकि केकय और सिन्धु साथ लगे हुए थे। देखो, ऊपर पृ० ३४ पर टिप्पणी।

नाम गिर्भाक था। अबुलफजल अपनी 'आईनअकबरी' मे इसको करचक कहते है। हम लोगो के पास प्रमाण मौजूद हैं और सिद्ध कर सकते है कि अकबर के पहले इसका यही नाम था तथा बाद मे इसका नाम बदलकर जलालपुर कर दिया गया। लेकिन लोग मंगलडे की पहाड़ियों के ऊपर की भग्नावशेष दीवालों को गिर्भाक कहते है। ये उपर्युक्त पहाड़ियाँ जलालपुर से ११०० फीट ऊँची हैं। लोकोक्ति के अनुसार गिर्भाक पश्चिम-उत्तर पश्चिम में बघनवाला के मन्दिर तक, जो कि ११ मील है, फैला हुआ है। लेकिन यह केवल अतिशयोक्ति है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि नगर काफी दूर तक फैला हुआ रहा होगा, क्योंकि चारों तरफ आधमील तक टूटे बर्तनों की गुट्टियाँ पड़ी हुई मिलती हैं। इसकी प्राचीनता भी बहुत है, क्योंकि जो सिक्के मिलते हैं वे सिकन्दर के ही वंशवालो के हैं। लेकिन स्थान आदि को देखते हुए पता चलता है कि यह और भी अधिक प्राचीन स्थान है। मेरे विचार से यह रामायण के गिरिव्रज से एक किया जा सकता है। लोगो को कुल एक ही राजा का नाम ज्ञात है।' यह राजा कामकमारथ है और मोग की नींव डालनेवाले मोंग की बहिन के लड़के हैं। मोंगलवेग इस नाम को घिरजेहाक लिखते हैं। उस स्थान के लोगों के द्वारा यह ऐसे लिखा जाता है कि मानों यह गिरिजोहाक या जोहाक पर्वतों से बना हो।"

वस्तुतः यह एक देश है। ब्राह्मण[1], उपनिषद्[2] और

(१) शतपथ० १०।६।१।२। (२) छान्दोग्योपनिषद् ५।११।४ दोनों स्थानों में 'कैकेय' शब्द आया है।

पुराणों[1] मे इसका नाम मिलता है। यह शब्द जनपदसमान क्षत्रियवाची[2] है। इसका राजा 'कैकेय' कहलाता है। केकय का पुत्र

(१) स्कन्द० ब्रह्म० ब्रह्मोत्तर० ५।२२, वाल्मी० बा० (नि०) १३।२४ (गु०) १३।२४, (इटली) ७९।५, (लाहौर) ९।८१ यह देश है। इसकी राजधानी गिरिव्रज या राजगृह है। श्रीमद्भा० ९।२४।१८ तथा १०।२।३ यह देश है। गर्गसहिता वि० ३।१८ यहाँ घोड़े पैदा होते है। महाभा० आदि०, ११३।२१ यह देश है। आरण्य० इन्द्र० ५१।२६ (चि०) ५१।२६ यहाँ के राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे आये। वायु० पू० ४३।११७ यह देश भारत मे उत्तर मे है। ३७।२४ शिवि के पुत्र के नाम से प्रसिद्ध है और बडा है। पद्म० आदि० ६।४३ यह देश भारत मे है। ब्रह्म० १३।२७ यह देश है। ब्रह्माण्ड० पू० अ० १६।४८ यह देश है और उत्तरी है। वामन० १३।३९ यह देश कुमारद्वीप भारत मे है और उत्तर में है। मत्स्य० ४८।२० यह देश बड़ा है औ पाठ 'कैकेया.' है। मार्क० ५४।३७ यह देश भारत मे है और उत्तर मे है। तथा ५५।४२ यह देश पूर्वमुखवाले कूर्म की वाम कुक्षि मे है। महाभा० भीष्म० (चि०) ९।४८ (म०) ९।४६॥ यह देश भारत में है। समाससहिता यह देश है और उत्तरी है। बृहत्सं० १४।२५ और पराशरतन्त्र मे 'कैकेय' यह पाठ है। विष्णुधर्मोत्तर ३।१२१।५ यह देश है। महाभा० सभा० (चि०) ५२।१४ ये क्षत्रिय-कुमार युधिष्ठिर के यज्ञ में आये। महाभा० उ० (सु०) ५६।९ (चि०) ५७।९ ये पाँच भाई लाल ध्वजावाले युधिष्ठिर के पक्षपाती थे। महाभा० उ० (चि० सु०) ३०।२३ ये दुर्योधन के पक्षपाती शूर महाभारत के युद्ध मे आये। काव्यमीमा० १७।१० यह देश उत्तरापथ में है।

(२) काशिका के "न प्राच्य भर्गादि यौधेयादिभ्य" ४।१।१७८ की व्याख्या मे पदमजरीकार हरदत्त ने 'चि' धातु से 'कय' प्रत्यय करके और चकार के स्थान में क आदेश करके बहुलवचन से इत्सज्ञा का अभाव

भी 'कैकेय' कहलाता है। लड़की 'कैकेयी' कहलाती है। बहुवचन मे 'केकयाः' होता है। यहाँ के प्रसिद्ध राजा अश्वपति थे, जो पुराणों मे उत्तरकोशलेश दशरथ के श्वसुर और भरत के नाना थे। ब्राह्मण और उपनिषद् इनको केकय का राजा कह रहे है। यह देश सिन्धु के पार था। इसकी राजधानी गिरिव्रज और राजगृह नाम से प्रसिद्ध थी। ह्वेनसांग ने भी गिरिव्रज उसी प्रान्त मे माना है, जो वर्तमान समय गजनी के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु आधुनिक विद्वान् झेलम जिला को केकय मानते है और जलालपुर के समीप गिर्भाक केकय की पुरानी राजधानी निश्चय करते है। पञ्जाबी भी कीकनाकाजलालपुर इसको कहते है और कीकना का अर्थ लोग केकय समझते है।

वाल्मीकि रा० उ० का० १०१ सर्ग मे केकय के राजा युधाजित् ने अपने गुरु को राम के पास भेजा। नजर मे दश हजार घोड़े और तरह-तरह के रंगीन दुशाले भेजे। और यह

होता है, यह लिखा है। 'विशिष्टलिङ्गोनदीदेशोग्रामाः' २।४।७ के उदाहरण में काशिकाकार और सिद्धान्तकौमुदीकार ने 'मद्राश्च केकयाश्च मद्रकेकयाः' यह उदाहरण दिया। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी मे 'न प्राच्य भर्गादि' ४।१।१७८ के उदाहरण मे 'कैकेयी' उदाहरण दिया है। 'केकय' शब्द को जनपदसमानक्षत्रियवाची मानकर 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' ४।१।१६८ से केकय शब्द से अञ् प्रत्यय करके 'अतश्च' ४।१।१७७ से लुक् की आशका करके 'न प्राच्य भर्गादि यौधेयादिभ्यः' ४।१।१७८ इस सूत्र से निषेध किया है और भर्गादि गणपाठ मे केकय शब्द के रहने के कारण भर्गादि के उदाहरणों में दिया है। इससे यह देश व्याकरण को परिभाषा के अनुसार साफ-साफ रावी के पश्चिमोत्तर देशों में आता है।

संदेशा भेजा कि सिन्धुनदी के दोनों पार्श्वों में शैलूष के पुत्र तीन करोड़ गन्धर्व रहते हैं। उनको जीतकर अपने वश में करके अपने दो नगर बसाइये। राम ने मामा के गुरु के वचनों के अनुसार भरत को भेजा और भरत डेढ़ महीने मे वहाँ पहुँचे। केकय के स्वामी भरत के मामा युधाजित् भी वहाँ आ गये और दोनो गन्धर्वनगर में पहुँचे। गन्धर्वों के साथ सात दिन भरत का युद्ध हुआ। भरत के हाथों से गन्धर्व मारे गये। भरत तक्षशिलानगर बसाकर उसमे तक्ष नामक अपने पुत्र को और पुष्कलावतनगर बसाकर उसमें पुष्कल नामक पुत्र को राजा बनाकर पाँच वर्ष मे वहाँ का ठीक प्रबन्ध करके अयोध्या लौटे। गुजराती प्रेस में मुद्रित वाल्मीकि रा० और रघुवंश सर्ग १५ श्लोक ८७-८९ मे है—"युधाजित् के सन्देश से राम ने सिन्धु नामक देश को भरत के लिये दिया और भरतने वहाँ गन्धर्वों को जीतकर तक्ष और पुष्कल को वहाँ की राजधानियों का राजा बनाया।" परन्तु भरत केकय के राजा थे, यह नहीं मिलता। वह कौन रामायण है, जिसमे भरत केकय के राजा लिखे है? गन्धार और सिन्धु एक है, यह रघुवंश से आता है। युधाजित् केकय के राजा दोनो मे लिखे है। भरत गन्धर्वदेश या सिन्ध के राजा पाँच वर्षो के लिये माने जा सकते है और बाद में उनके पुत्र। जनरल कनिङ्घम ने गिरजाक को जलालपुर के पास की पहाड़ी पर माना है, जो झेलमनदी से दो कोश पश्चिम है। वाल्मीकि रामायण में दो बार इसका मार्ग दिखलाया है। एक घोड़े का मार्ग जो जल्दी पहुँच सके और दूसरा सेना का मार्ग। घोड़े का मार्ग गुजराती प्रेस मे छपी हुई वाल्मी०

अयो० ६८।१२ और निर्णयसागर प्रेस मे छपी ६८।१२ के अनुसार यह है:—"दूत लोग अयोध्या से चलकर अपरताल देश के बिल्कुल नीचे से और प्रलम्ब के उत्तर से मालिनीनदी पर होकर पञ्चाल के बाद मे हस्तिनापुर में गङ्गा के पार हुए। कुरुजाङ्गल देश के मध्य से नाना प्रकार की नदी और तालाबो को देखते हुए शरदण्डानदी पर पहुँचे। वे सत्योपयाचन वृक्ष का दर्शनकर कुलिङ्गापुरी में गये। और वहाँ से अभिकाल को, वहाँ से तेजोभिभवन को गये। वहाँ से निकलकर इक्षुमतीनदी को पारकर वेदपाठी ब्राह्मणो को अञ्जलि से जल पीते देखकर बाह्लीकदेश के मध्य से गये। उन्होंने सुदामापर्वत को देखा। विष्णु के पद को देखते हुए विपाशा और शाल्मलीनदी को देखते हुए तथा तरह तरह के तालाब, झीलें, नदियाँ देखते हुए और हाथी, सिह, व्याघ्र, मृग देखते हुए गिरिव्रजनगर मे पहुँचे।" इटली की छपी पुस्तक अयो० ७०।११ मे ऐसा पाठ है.-दूत अयोध्या से पञ्चाल, बाद मे हस्तिनापुर मे गंगा उतरे। वहाँ से कुरुजांगल, वहाँ से वारुणीतीर्थ के पूर्व से वारुणी को उतरकर, कुरुक्षेत्र में सरस्वती को उतरकर फूलो और कमलवाले ताल और नदियों को देखते हुए शरदण्डानदी पर पहुँचे। उसको उतरकर समूलचैत्य को प्राप्त होकर सत्योपयाचन वृक्ष को प्राप्त हो, उसको नमस्कारकर भूलिगापुरी मे पहुँचे। उसके बाद अजकूल को प्राप्त हो बोधियों के पुर मे गये। वहाँ से इन्दुमतीनदी को गये। उसके बाद बाह्लीकदेश के मध्य से और सुदासो के उत्तर से होकर गये। इसके बाद शाल्मली के बगल से होकर गिरिव्रजनगर मे पहुँचे।" लाहौर मे छपी पुस्तक मे यह है—"दूत

अयोध्या से हस्तिनापुर मे गंगा उतरकर पञ्चाल से होकर कुरु-जांगल में गये। वहाँ वारुणीतीर्थ के पूर्व कुरुक्षेत्र मे सरस्वती-नदी को उतरकर शरदण्डा पर पहुँचे। शरदण्डा को उतरकर समूलचैत्य को प्राप्त होकर सत्योपयाचन वृक्ष को प्राप्त हो प्रणाम कर त्रिलिंगापुरी मे पहुँचे। वहाँ से अजकूल को प्राप्त हो बौद्धों के नगर मे गये। वहाँ शतरुद्रानदी को उतर विष्णुपद को देखकर विपाशा और शाल्मली को उतरकर गिरिव्रजपुर मे पहुँचे।" वहाँ से लौटने का रथ का मार्ग इस प्रकार है—(वाल्मीकि० अयो० (नि०) ७१।१ मे) भरत राजगृह से पूर्व-मुख होकर निकले और सुदामानदी को उतरे। इसके बाद दूर पारवाली नदी शतद्रू को उतरकर अपरपर्वत या अपरपर्पट को प्राप्त हुए। शिला और आकुर्वती नदी को उतरे अथवा शिला नाम की नदी और आकुर्वती नदी को उतरे। आग्नेय और शल्यधर्षण को तथा शिलावहानदी को देखते हुए चैत्ररथवन के सामने महाशैलो को पारकर सरस्वती और सरस्वती के समीप (प्रसिद्ध गंगा से भिन्न) गंगा को प्राप्त हो, वीरमत्स्य के उत्तर भारुण्डवन मे प्रविष्ट हुए। उसके बाद पर्वतो से घिरी हुई वेगवाली कुलिंगानदी को पारकर यमुना को उतरे। उसके बाद यमुना के बड़े जंगलो मे होते हुए गंगा पर पहुँचे, इत्यादि।

निर्णयसागर मे ह्लादिनी शतद्रु से भिन्न है। इटली मे मुद्रित वाल्मी० अयो० ७३।१ के पाठ के अनुसार यह अर्थ है:—भरत पूर्वमुख हो नगर से निकलकर चौड़े पाटवाली और तिरछे प्रवाहवाली शतद्रु को उतरे। उसके बाद बीजधानीनदी उतरकर अपरकण्टक को प्राप्त हो, कर्वटीशिला को उतरकर

आग्नेय और शल्यकीर्तन को गये। शिलावहो को देखते हुए सोमवेश के चैत्ररथवन के सामने आये। इसके बाद वेदिनी, कारवी, चार्वी और पर्वतों से घिरी ह्लादिनी को उतरकर यमुना पर पहुँचकर और उसको पारकर सेना को आश्वासित किया। लाहौर में मुद्रित पाठ के अनुसार:-भरत पूर्वाभिमुख हो नगर से निकले। चौड़ेपाटवाली और तिरछे प्रवाहवाली शतद्रु को उतरे। बीजवाट्यानदी को उतरकर अपरकंटक को प्राप्त हो अकच्छगा, आग्नेयी और शल्यकर्तना को उतरकर शिलावह को देखते हुए चैत्ररथवन के सामने आये और ह्लादिनी के बाद यमुना को उतरकर सेना को आश्वासन दिया, इत्यादि।

एक पुस्तक हस्तलिखित यू० पी० मे जिला इटावा के विधूना तहसील के सहार नामक कस्बे में लालजी नामक पाण्डे के पास मैने देखी है, जो १८६५ विक्रमाद्ब की लिखी थी। इसका पाठ बिल्कुल गुर्जर प्रेस और निर्णयसागर की गोविन्दराज की टीका वाली पुस्तक के अनुकूल मिला। एक प्रति यू० पी० मे फर्रुखाबाद जिले के कन्नौज तहसील में जलालाबाद कस्बे के नीलकंठ पण्डित के पास १९१० संवत् की लिखी मिली, उसका पाठ भी गुजराती प्रेस वाली के समान है। अब, यदि विचार किया जाय तो शतलजनदी और शरदण्डा, विपाशा इत्यादि नदियो के नाम हम जानते है; परञ्च क्रम किसी पाठ मे ठीक नहीं आता है। इससे लाचार होकर हमको इनका मार्ग मे होना मानना पड़ेगा और क्रम मे अविवक्षा माननी पड़ेगी। जनरल कनिङ्गहम के अनुसार गिरिजाक वितस्ता (झेलम) के पश्चिम जलालपुर के नाम से नमककीपहाड़ी के पूर्वी तट पर स्थित है। यह

ढाल धीरे-धीरे ऊँची होकर सड़क से १५० फीट ऊँची है, इत्यादि लिख रहे हैं। किसी भी पाठ में झेलम का प्रसिद्ध वितस्ता नाम नहीं मिलता और अप्रसिद्ध मे भी किसी का नाम हो, यह निश्चय नहीं है। यह नगर झेलम के तटपर था, इसका कोई वर्णन नहीं है। और नगर पहाड़ पर था, इसे भी कोई पाठ नहीं बतलाता। सभी पाठो के अनुसार भरत की यात्रा मे शतलज का उतरना सिन्ध के मिलने से पहले चार धाराओं के संगम के बाद प्रतीत होता है। सेना झेलम के दक्षिण से गिरझाक से शतलज तक सीधी आ सकती है। परञ्च उसके बीच मे ह्लादिनी और सुदामा नदी का आना हमको भ्रम मे डाल देता है और बाह्लीक के मध्य से जाना एकदम हमको पञ्जाब से बाहर फेंक देता है। यदि हम उसे गज़नी मानते है तो बाह्लीक (हींग पैदा होनेवाला प्रदेश) से दूतों का जाना स्पष्टरूप से उसकी साक्षी देता है। साथ ही; इक्षुमतीनदी, जिसे वाल्मीकि ने सांकाश्यनगर के प्रान्त में माना है, इससे उसका यहाँ सम्भव नहीं, (बालकाण्ड देखो)। उसके स्थान मे इन्दुमती पाठ (इटली मु०) हमको सिन्ध के पार ले जाने को विवश कर रहा है। सिन्ध का इन्दुमती नाम था, इस बात को यूनानियों का सिन्ध को इण्डस् कहना पुष्ट कर रहा है। लौटते समय शतलज उतरने से पहले दूरपारा ह्लादिनी बड़े पाटवाली नदी का उतरना सिन्ध की सूचना दे रहा है। और चीनी यात्री का गिरिव्रज उस प्रदेश मे कहना रजिष्ट्री कर रहा है। सुदामापर्वत सुलेमान हो सकता है। सुदामानदी उससे निकली कोई धारा हो सकती है। यह खीवड़ा (नमक

की खान) से १२ मील पूर्व है। सिन्धुदेश का घोड़ा और नमक दोनों सैन्धव कहे जाते है। नमक का पहाड़ झेलम जिले मे है। जलालपुर इसके पूर्वी तट पर बसता है। कटाक्षराज-तीर्थ जो जलालपुर से अधिक दूर नहीं है, उसके महात्म्य मे इस तीर्थ को सैन्धवारण्य मे बतलाया है। ये प्रमाण इस प्रान्त को सिन्ध कह रहे है। केकय के सभी राजे 'अश्वपति' कहलाते थे। भरत के नाना अश्वपति थे। भरत के मामा युधाजित् भी थे। वाल्मी० उत्त० १००।४ यहाँ के घोड़े अच्छे होते थे। दुशाले और ऊनी कामदार सामान भी अच्छा होता था। गजनी इसकी राजधानी थी। गजनी का नाम गिरिव्रज और राजगृह भी है। मगध की राजधानी राजगृह आज भी राजगृही के नाम से प्रसिद्ध है और पहाड़ो से घिरी है। उसी प्रकार गजनी भी पहाड़ो से घिरी है। गजनी के दक्षिण पर्वत है। उसी पर गजनी का किला है। उसी पर्वत के मूल मे गजनी का शहर बसा है। गजनी से पश्चिम एक मील की दूरी पर पर्वत है और उत्तर भी एक मील की दूरी पर पर्वत है। पर्वत तीन दिशाओ मे हैं। पूर्व की दिशा मे कोई पर्वत नहीं है। पर्वतो से घिरे रहने के कारण गिरिव्रज नाम है। भरत का पूर्वाभिमुख होकर निकलना वाल्मीकि का वर्णन है, वह गजनी के होने मे अक्षरशः मिल रहा है।

अब फाहियान को देखिये। फाहियान खुतन से चलकर २५ दिनो मे जीहो मे आया और जीहो से चलकर चार दिनो मे सुलिङ्गपर्वत पर व्यूहेजनपद मे पहुँचा। वहाँ से वह २५ दिनो मे कीचा पहुँच गया। कीचा को केकय का नाम फाहि

यान के अनुवादक मान रहे हैं। कीचा से चलकर उसने सुलिङ्ग-माला पार की। इस देश से १५ दिन दक्षिण-पश्चिम चलकर एक नदी मिली, उसको उसने सिन्धु लिखा है। दिशा गलत है, क्योकि इसकी दिशा कहीं भी ठीक नहीं है।

वस्तुतः अयोध्या से केकय की राजधानी पर्यन्त जो मार्ग वाल्मीकि० के छओ पाठों मे है, उसका सार हमारे मत में यह है:—अयोध्या से अपरताल नामक देश के नीचे के अन्तिम भाग से और प्रलम्बदेश के उत्तर भाग से उत्तरपञ्चाल में दूत पहुँचे। वहाँ से मालिनीनदी पारकर और गङ्गा पारकर हस्तिनापुर मे गये। वहाँ से कुरुजाङ्गल के मध्य से रावी के तटपर पहुँचे। उसको पारकर सत्योपयाचन वृक्ष को प्रणामकर भूलिङ्ग-देश की राजधानी भूलिंगापुरी मे गये। वहाँ से अभिकाल नामक और तेजोभिभवन नामक स्थानों मे होते हुए इन्दुमती (सिन्धु) नदी को पारकर बाह्लीकदेश के मध्य से गये। उसके बाद सुदामापर्वत (सुलेमान पर्वत) को पारकर विष्णु के पदों को देखते हुए शाल्मलीनदी की बगल से होकर सात रातों में गिरिव्रज पहुँचे।

कोशल—(१) वे० इ० "कोशल एक जाति का नाम है जो वैदिक साहित्य मे आता है। आर्य-संस्कृति के फैलाव के विषय मे जो कथा शतपथब्राह्मण[1] में आई है कोशल विदेहाज् विदेघ माथव के वंश के रूप में कुरुपञ्चाल के बाद ब्राह्मणधर्म के प्रभाव मे आए हुए उल्लिखित हैं। उसी अवतरण में सदानीरा इन दोनों जातियो (कोशल-विदेह) की सीमा मानी

(१) १।४।१।१ से प्रारभ

गई है। अन्य स्थानों[1] पर कौशल्य = कोशलराज या आटनार-हैरण्यनाभ अश्वमेधयज्ञ का कर्ता उल्लिखित है। शांखायन[2] श्रौत-सूत्र में काशी और विदेह से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। वेबर[3] दिखलाता है कि आश्वलायन, जो सम्भवतः अश्वलविदेह के पुरोहित का वंशज था, वह प्रश्नोपनिषद्[4] मे कोशल कहा गया है। उत्तर और दक्षिण कोशल का बाद का भेद वैदिक और बौद्ध[5] साहित्य मे प्राप्त नहीं होता। कोशल गगा के उत्तर-पूर्व है और सम्भवतः अवध का क्षेत्र रहा होगा।"

---

(१) शतपथ ब्रा० १३।५।४।४ तुलना करो हिरण्यनाभ एक राज-पुत्र जो प्रश्नोपनिषद् ३।२ तथा शाखायन श्रौतसूत्र १६।६।१३ मे कौशिल्य के रूप मे वर्णित है, जब कि उसी पुस्तक के ११ पैरा मे वैदेह के रूप मे आया है।

(वस्तुतः प्रश्नोपनिषद् में कौशल्य शब्द आया है। उससे हिरण्यनाभ के पुत्र से कोई सम्बन्ध नही है। उसका विशेषण आश्वलायन दिया है। और शतपथ मे हिरण्यनाभ है। अश्वल का पुत्र आश्वलायन कहा है। हिरण्यनाभ का पुत्र हैरण्यनाभ कहा जाता है।)

(२) १६।२६।५

(३) इण्डिस्चेस्टडियन १।१८२।४४१

(४) ६।१ (वस्तुतः यहाँ पर हिरण्यनाभ क्षत्रिय का कौशल्य विशेषण है। प्रश्नोपनिषद् ११।१ और ३।१ मे 'कौशल्य' आश्वलायन' आया है।)

(५) ओल्डनवर्ग 'बुद्ध' ३९३ एन, तुलना करो वानसक्राउडर इण्डियन्स लिट्रेचर ऐन्ड कल्चर १६७, एजलिङ् सेक्रेड्बुक्स आफ् दी ईस्ट १२।९२, वेबर इण्डियन लिट्रेचर ३६।१३२ से प्रारम्भ, मेकडानल संस्कृत लिट्रेचर २१३।२१५, रायस्डेविड्स 'बुद्धिस्ट इण्डिया' २५।

(२) ओल्डनवर्ग, वानस्क्राउडर, एजलिङ्, वेबर, मेकडानल, रायसडेविड के मत मे भी उत्तर और दक्षिण कोशल का भेद वैदिक और बौद्ध साहित्य मे प्राप्त नहीं होता।

(३) कनिङ्हम एन्सियन्ट जाग्राफी श्रावस्ती नं० २८ में लिख रहे है कि "अयोध्या या अवध का प्राचीन क्षेत्र सरयू या घाघरानदी द्वारा दो बड़े सूबों मे बॅटा था। उत्तर का भाग उत्तरकोशल और दक्षिण का भाग बनौधा कहलाता था। इनमे से प्रत्येक दो जिलों में बॅटे थे। बनौधा मे पश्चिमराट् और पूर्वराट् अर्थात् पश्चिमी व पूर्वी जिले और उत्तरकोशल मे राप्ती के दक्षिण मे गौड़ और राप्ती या रावती, जैसा कि अवध में कहा जाता है कि उत्तर मे कोशल था। इनमे से कुछ नाम पुराणो मे पाये जाते है। वायु० के अनुसार राम के पुत्र लव ने उत्तरकोशल मे राज्य किया था। किन्तु मत्स्य, लिङ्ग और कूर्म-पुराणो मे श्रावस्ती गौड़ मे कही गई है। इन प्रत्यक्ष त्रुटियो का सन्तोषजनक अर्थ हमे तब मिलता है, जब हम यह जानते हैं कि गौड़ उत्तरकोशल की प्रतिशाखा है। और यह कि श्रावस्ती के खॅडहर गौड़ के जिले में पाये गये है, जो कि नक्शों में गोंडा है। गौड़ का विस्तार राप्तीनदी के पार पुराने बलरामपुर के नाम से सिद्ध होता है, जो पहले रामगढ़गौड़ था। अतः मेरा अनुमान है कि गौड़ब्राह्मण और गौड़तगस इसी जिले से आरम्भ मे सम्बन्ध रखते होगे, और बङ्गाल के गौड़ नामक मध्ययुग के नगर से नहीं। इस नाम के ब्राह्मण अब भी अजुध्या और घाघरानदी के दक्षिण किनारे जहाँगीराबाद मे, गोंडा पखपुर और बायें किनारे के गोंडा या गौड़ जिले के जैसनीभाग मे

तथा पड़ोस के गोरखपुर सूबे के बहुत से भागो में असंख्य हैं। अतः अयोध्या बनौधा की अथवा घाघरा के दक्षिण भाग मे अवध की राजधानी थी। और श्रावस्ती उत्तरकोशल की अथवा घाघरा के उत्तर में अवध की राजधानी थी।"

(४) जा० प्रा० डि० पृ० १०३ "कोशल अवध (अयोध्या) देखिये। दो राज्यों मे विभाजित था। उत्तरकोशल बहराइच जिला तथा कोशल (रामायण उत्तरकाण्ड १०७, पद्मपु० उत्तर खण्ड ६८, अवदानशतक डाक्टर आर० एल्० मित्रा के संस्कृत बुद्धिस्ट लिटरेचर आफ नेपाल में से) दूसरे भाग की राजधानी कुशावती थी; जो कि कुश के द्वारा बसाई गई थी। तब पहले की श्रावस्ती थी। बुद्धकाल मे ईसा से पूर्व पाँचवीं और छठी शताब्दी मे कोशल एक शक्तिशाली राज्य था जिसमें बनारस और कपिलवस्तु भी थे। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी। परन्तु ईसा से ३०० वर्ष पूर्व यह देश मगधराज्य मे मिल गया। उस समय उसकी राजधानी पटलिपुत्र (पटना) हो गई।"

वस्तुतः यह शब्द देश और क्षत्रिय का नाम है तथा बहुवचन है। वैदिक[1] और लौकिक[2] ग्रन्थ कोशल को देशरूप में

---

(१) शतपथ ब्रा० १।४।१।१७, गोपथ ब्रा० २।१० 'काशिकोशलेषु' ऐसा पाठ है।

(२) (इसमे दोनो कोशलो के प्रमाण है) वाल्मी० बा० ५।५ यह देश बड़ा है। सरयू के तट पर है। इसकी राजधानी अयोध्या है। स्कन्द० माहे० कौ० ३६।१५४ यह देश भारत मे है। इसमे सात लाख गॉव है। स्कन्द० वै० अयो० १८।४३ यह देश है। अग्नि० १३।१० यह देश है। वाल्मी० अयो० (नि० गु०) ५।५ (नि०)१०।३७, (गु०) १०।३८

वर्णन कर रहे हैं। पाणिनि (अष्टाध्यायी—'वृद्धेत्कोशलाजादाञ्ञ्यङ्' ४।१।१७१) इसको जनपदसमानक्षत्रियवाची कह रहे है; अर्थात् 'कोशल' एक क्षत्रिय का नाम है, उसकी पुरुष-सन्तान 'कौशल्य' कहलाती है और स्त्री 'कौशल्या' कहलाती है। कोशल-क्षत्रियो के निवासस्थान के देश का नाम भी 'कोशल' है तथा उसका राजा 'कौशल्य' कहलाता है। बहुवचन मे देशअर्थ मे 'कोशला:' ऐसा प्रयोग होता है। राजा भी बहुवचन मे 'कोशला:' कहे जाते हैं और कोशल की सन्तान भी

इसमे तमसा (मडहा), स्यन्दिनी (सई), वेदश्रुति (विसई) और गोमती नदियाँ है। इसमे अयोध्यानगरी है। किष्किधा (गु० नि०) ४०।२१ (इ०) ३६।२५ यह देश पूर्व दिशा मे है। विष्णु धर्मोत्तर० १।१२।२ यह देश भारत मे पूर्व दिशा मे है। यहाँ सरयू के पास अयोध्यापुरी है। वायु० उ० २६।१६७ यह देश कुश का राज्य है। ब्रह्माण्ड० म० उपो० ६३।१६६ यह देश कुश का राज्य है। इसमे विन्ध्य के ऊपर कुशस्थलीनगरी है। पद्म० उ० १६८ यह देश है। दिलीप का राज्य है। पद्म० उ० २०४।३६ यह देश सरयू के जल की वायु से पवित्र है। वामन० १३।५५ यह देश कुमार नामक द्वीप मे है और विन्ध्य के मूल जडो मे बसता है। ६०।२६ और यहाँ पर महोदयदेव है। श्रीमद्भा० ६।१०।४ यह देश है। वायु० पू० ४५।११० यह देश भारत के मध्यदेश मे है। ब्रह्म० २७।६० यह देश विन्ध्यवासी है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।६४ यह भारत मे विन्ध्यपृष्ठ निवासी है। मत्स्य० ११४।३५ यह देश भारत मे मध्यदेश मे है। मार्क० ५४।३२ यह देश भारत मे मध्यदेश मे है। गरु० पू० ५५।११ यह देश भारत मे पूर्व मे है और ६८।१७ यहाँ हीरा की खान है। यहाँ पीले हीरा पैदा होते है। महाभा० भी० (चि०) ६।४०, वराह० १२६। १०६ यह देश है। ब्रह्माण्ड० उपो० ७४।१०७ यह देश भारत मे है।

'कोशलाः' कही जाती है। शतपथ[1] ब्राह्मण १३।५।४।४ मे अट्णार के पुत्र हैरण्यनाभ नामक कोशल के राजा ने अभिजिदतिरात्र नामक अश्वमेधयज्ञ किया, यह लिखा है। माध्यन्दिनीय[2] शतपथ० और काण्वशाखीय शतपथ० मे एक कथा अग्न्याधान की ऋचा के निर्णय मे आई है, जिसका वर्णन हम 'काशि' के वर्णन मे कर चुके है। उस कथा के बल पर आर्यसंस्कृति के फैलने की कथा की कल्पना करना और विदेघमाथव के वंशज के द्वारा ब्राह्मणधर्म का कोशलविदेह मे

गर्गसंहिता वि० ३।१७ यह देश है। महाभा० हरिवंश भवि० ४६।४६ यह देश है। यहाँ घोडे पैदा होते है। विष्णुधर्मोत्तर० १।६।३ यह देश भारत मे पूर्व देश मे है। बृहत्स० १४।७ यह देश भारत मे पूर्व मे है। १४।८ यह देश आग्नेय दिशा मे है। स्कन्द० वै० वे० १७।५ यह देश है। स्कन्द० प्रभा० प्र० मा० १३६।२६ यहाँ गोपति नाम के सूर्य है। वामन० ६४।१६ यहाँ हिरण्वतीनदी और अयोध्यानगरी है। वायु० ४५।१३३ यह देश भारत मे विन्ध्यपृष्ठनिवासी है। देवीभा० ३।१०।१७ यह देश है और इसमे तमसानदी है। महाभा० सभा० दिग्वि० २६। १६ (म०) यह देश पूर्व मे है। इसकी अयोध्या राजधानी है। काव्यमीमासा १७।२० यह देश है और पूर्व में है। महाभा० सभा० (म०) २७। १२ (चि०) ३१।१२ (नि०) ३२।१३ इसका वर्णन भोजकट और वेणकट के मध्य में आया है। ह्वेनसाग ने कियावसलो (किःआ ओसलो) नाम लिखा है। इसका क्षेत्रफल ५००० ली माना है। इसकी सीमा चारो ओर पहाड़ो, चट्टानो और जगलो से घिरी हुई है। 'राजोवादजातक' यह देश है।

(१) शतपथ ब्रा० १३।५।४।४ "आटणारःकौशल्योराजा"।

(२) शत०-१।४।१।१०

प्रचार मानना और सदानीरा को कोशलविदेह-जातियों की सीमा मानना प्रमाणरहित होने से निर्मूल है। यदि इसी प्रकार कल्पनाएँ की जायँ तो ससार मे कोन ऐसा देश है, जिसकी हिस्ट्री (इतिहास) बिगाड़ी नहीं जा सकती। ऋग्वेद मे इसके मध्य मे बहनेवाली सरयूनदी का वर्णन है। परंच इस देश का नाम नहीं है। उपनिषदो मे 'कौशल्य' शब्द आता है। उसका अर्थ कोशल-देशनिवासी होता है। पुराणो मे उत्तरकोशल और कोशल दोनों प्रकार का वर्णन मिलता है। उत्तरकोशल सूर्यवंशी राजाओं के अधिकार मे था। एक कोशल और मिलता है, जिसका वर्णन देखने से और इस कोशल से न मिलने के कारण इम कोशल से भिन्न उसको मानने के लिए बाध्य करता है। वह दक्षिण में है इससे उसको दक्षिणकोशल भी कहते हैं। दानपत्रो में प्रायः उसी कोशल का वर्णन मिलता है, जिसका वर्णन इसी लेख में आगे मिलेगा। परंच ब्राह्मणग्रन्थो का कोशल उत्तरकोशल ही है। इसकी सीमा शतपथ ब्रा० मे सदानीरा तक लिखी है, जिसको विद्वान् लोग बड़ी गण्डक मान रहे है। परंच सरयू से दक्षिण इसकी सीमा काशिदेश से मिली थी। पश्चिमी सीमा बदायूँ जिले के उजि-हानी कस्बे तक प्रतीत होती है। उसके बाद प्रलम्ब और अपर-ताल देश है। हिमालय की तराई अपरताल प्रतीत होती है और उससे दक्षिण उसी के सामने प्रलम्बदेश है। उत्तरी सीमा हिमालय तक प्रतीत होती है। दक्षिणी सीमा गङ्गा तक प्रतीत होती है। वस्तुतः दक्षिण मे इसकी सीमा का निश्चय नहीं है। कुश की राजधानी रघुवंश में कालिदास ने कुशावती लिखी है। वह कहाँ थी, उसका इस समय क्या नाम है, यह निश्चय नहीं।

परंच रघुवंश में कालिदास ने अयोध्यानगरी का स्वप्न में कुश के पास जाने का वर्णन किया है और कुश का पुनः अयोध्या बसाने का वर्णन है। कुशावती से चलने के बाद कुश की सेना का विंध्यपर्वत मे फैलने का वर्णन है। और वाल्मीकि० मे विंध्य-पर्वत के तट में वर्णन मिलता है। इससे विंध्य से दक्षिण कुशा-वती के होने का अनुमान होता है। इसमे यह निश्चित नहीं होता कि यह दक्षिणकोशल या उत्तरकोशल में था। दक्षिण-कोशल मे हम इसलिये निश्चित नहीं करते कि दक्षिणकोशल मे रामचंद्र के मामा का राज्य था। उत्तरकोशल मे इसलिये नहीं मानते कि उत्तरकोशल और दक्षिणकोशल के बीच पंचाल और वत्स की भूमि पड़ती है। ब्रह्मा० मे इसका 'कुशस्थली' नाम दिया है।

कनिङ्हम साहब का लेख ठीक नहीं। क्योंकि कोशल के दो भाग पुराणों मे मिलते हैं। एक जो सरयू के दोनों तटो पर बसा है, वह उत्तरकोशल है। उसके राजा उत्तरकोशलेश्वर कहे जाते थे। अयोध्या के राजा दिलीप को कालिदास ने रघुवंश ३।५ मे उत्तरकोशलेश्वर लिखा है। दिलीप की राजधानी अयोध्या थी। श्रावस्ती नहीं थी। यदि सरयू का उत्तरभाग ही उत्तरकोशल होता है तो दिलीप को उसकी राजधानी श्रावस्ती मे न रहने से उत्तरकोशलेश कैसे कहा जाता? श्रावस्ती और अयोध्या दोनों उत्तरकोशल में थीं। दक्षिणकोशल विन्ध्य के समीप था, जिसको 'महाकोशल' शब्द से आज लोग समझते है और उसमे हीरे की खान थी। पुराणो में और भारतीय लोगों में विन्ध्य का दक्षिण भाग द्रविड़ माना जाता है और

उत्तर भाग गौड़ माना जाता है। उसको लेकर विन्ध्य के उत्तर में ब्राह्मणों का पंचगौड़ नामक विभाग है। पचद्राविड़ विन्ध्य के दक्षिण मे ब्राह्मणों का विभाग है। गोंड़ा को गौड़ मानना और उसके पास जहाँगीराबाद इत्यादि मे गौड़ो को असंख्य बतलाना कनिङ्हम साहब की अनभिज्ञता है। यह प्रान्त सरयूपाराणब्राह्मणो से परिपूर्ण है। साथ में कान्यकुब्जब्राह्मणौ भा बहुतायत से बसे हैं। गौड़ब्राह्मण अंगुलियों पर गिनने योग्य मारवाड़ियों के सम्बन्ध से इस प्रान्त मे दिखलाई पड़ रहे हैं। बनौधा इत्यादि नाम प्राचीन हैं, इसमे कोई प्रमाण नहीं है और जो गोंड़ा का जिला बना उसको अंगरेजो ने बनाया। अतः वह कैसे गौड़ का भाग समझा गया ? श्रावस्ती भा साहत-माहत नहीं है। वह वस्तुत वस्ती है।

मिस्टर पार्जीटर ने सन् १८९४ ई० मे लंदन के एशियाटिक सोसाइटी जरनल पृ० २३१ मे वाल्मीकीय रामायण और महा भारत के आधार पर श्रीरामचन्द्रजी के वनवास के मार्ग को अयोध्या से लका पर्यन्त बड़े परिश्रम के साथ खोजकर उन-उन पुराने नामो का आधुनिक नामों के साथ ऐक्य करके दिखलाया है। दूर के स्थानो का तो निश्चय करना कठिन है; परच जो हमारे सामने हैं, उनका दिग्दर्शन अयोध्या से प्रयाग तक पाठको के आगे रख रहे है। "गगा और यमुना के उत्तर-पश्चिम का भाग बड़े-बड़े राज्यो मे विभाजित था। सभ्यता और सस्कृति मे उन्नत था। परंतु दक्षिण का भाग अधिकतर वनो से ढका था। वहाँ के रहनेवाले लोग वानर और राक्षसों के बिगड़े नामों से कहे गये है। शाहाबाद का जिला जो गया और काशी के

रूप्य मे है, वह एक बार अवनतरूप मे और दूसरी बार उन्नत-रूप मे वर्णित है (आदिका० २७।१६–२२ 'मलज करूष' पृ० ८३४) । श्रीमतीमहानदी सई के लिये ४६।३ मे है। रामचंद्र बडीनदी से जाकर कोशलदेश पहुँचे। वेदश्रुतिनदी को पारकर अगस्त के प्रदेश को रवाना हुए और बहुत समय बाद गोमती पर पहुँचे। सर्पिकानदी को पार किया। उन्होंने एक बहुत बड़ा प्रदेश देखा, जिसे राजा मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। सरयूजंगल के पास निकले। अयोध्या आजकल अजुध्या या अवध है, जो सरयू या घाघरा के पश्चिमी किनारे पर बसी है। सरयू के पश्चिमी किनारे पर १२ मील पर तमसा या टौंस बहती है। वाल्मीकि इसी के तटपर रहते थे। अगस्त्य का प्रदेश अवश्य दक्षिण होना चाहिये, क्योकि वे दक्षिण-विजेता के नाम से प्रसिद्ध है। गोमती आजकल की गोमती है, जो सरजू से पश्चिम है। शृङ्गवेर जनरल सर कनिगहम ने सिंग्रोर या सिगोर माना है, जो गंगानदी के बाये तट पर स्थित था और इलाहाबाद से २२ मील उत्तर-पश्चिम था। इलाहाबाद को पुराना प्रयाग बतलाया है। रामचन्द्र अयोध्या से चलकर तमसा पर पहुँचे। अयोध्या सरजू के पश्चिमी किनारे पर बसती है। तमसा अयोध्या के पश्चिम से निकलती है। जहाँ पर तमसा काफी चौड़ी थी, वहीं पर राम उसको उतरे थे। राम अवश्य दक्षिण पश्चिम गये होगे। शायद वही मार्ग शृंग-वेरपुर को सीधा जाता होगा। फिर राम उत्तर को गये आदिकाव्य (४४।२५ से २९ तक)। इस रास्ते से चलकर वे सरयूनदी पर पहुँचे हों या उसकी पश्चिमी सहायक नदी

चौका पर पहुँचे होंगे। और कविता मे यह लिखा है कि श्रीमती-महानदी पर पहुँचे; परन्तु श्रीमती नाम की नदी का अस्तित्व संदिग्ध है। क्योकि यह नाम महाभारत के भीष्मपर्व की नदियो की सूची में नहीं है। महानदी शब्द है, लेकिन वह विशेषण है। महानदी की अन्य दो नदियाँ हैं, एक उड़ीसा की, दूसरी फलगू (महाभा० आदि० २१४ पृ० ७८।१८-१९, वनपर्व ८७।८३०७८।९५।८५०१९)। कहीं भी अयोध्या के पश्चिम महानदी नहीं लिखी है। उस सूची मे महानदी गोमती, धूत-पापा और गण्डकी के साथ आयी है। यह संभवत: गण्डकी का विशेषण है। यह श्रीमतीमहानदी सरयू का ही नाम है, जहाँ कि राम पहुँचते। अयोध्या की नदी का ऐसा प्रशंसात्मक वर्णन उचित भी है। यह दोहरा नाम सरयू का वाचक है, जहाँ कि राम स्वाभाविकरूप से पहुँचते। इस सड़क को पारकर उन्होने एक सड़क पकड़ी, जो कोशलों के देश मे पहुँचती थी। इससे यह मालूम होता है कि कोसल या कोशल सरयू के और वेदश्रुति के पूर्व ओर का देश था। क्योकि वेदश्रुति को बाद में पार किया। यह कोशल अयोध्या के उत्तर का भाग था। आदिका० के ५१ श्लोक मे कहा गया है कि कोशल सरयू के किनारे था। दोनो तरह से अयोध्या कोशल के अन्तर्गत था। संभवत: यह सड़क मुख्य सड़क थी, जो सरजू के उत्तर-पश्चिम जाती थी। कोशल से राम ने वेदश्रुतीमहानदी को पार किया। यह वेदश्रुती महाभारतवाली सूची मे तथा मार्कण्डेय पुराण के ५७ वें सर्ग मे पाई जाती है। यद्यपि वेदस्मृता, वेदस्मृती और वेदवती ये नाम पाये जाते है। एकमात्र नदी जिससे वेदश्रुती

का ऐक्य हो सकता है, वह आजकल की चौकानदी है, जो कि सरयू की पश्चिमी सहायक नदी है। लासेन नामक जर्मन विद्वान् इण्डिसे अल्टर टुंस नक्शे मे इस नदी को कालानदी कहते हैं। उसको पारकर राम ने असली रास्ता पकड़ा और दक्षिण तरफ गोमती पर पहुॅचे। आजकल के लखनऊ के थोड़े नीचे सम्भवतः पार किया। शायद वह स्थान उसके समीप होगा, जहाँ पर कि अयोध्या से कन्नौज जानेवाली सड़क ने उसे काटा होगा और वह चौकानदी से ६० या ७० मील की दूरी पर होगा। दूसरी नदी जहाँ पर कि वे पहुॅचे, वह गोमती की सहायक सर्पिका नाम की आधुनिक सईनदी है। लासन ने इसको स्यंदिका बतलाया है। रामचन्द्र ने सम्भवतः इसको राय बरेली के नीचे २५ या ३० मील की दूरी पर पार किया होगा, जहाँ शृगवेरपुर से उत्तर को एक सड़क स्वभावतः जाती होगी। अयोध्या का मैदान जो कि इक्ष्वाकु को दिया गया था, राम से बायें पड़ा होगा और सरयू के जगल सड़क के दक्षिण पड़े होगे। क्योंकि राम का यह पश्चात्ताप कि वे सरयू के जंगलो मे शिकार न खेल सके, इस अर्थ का द्योतक है कि वह उनके प्रदेश का सीमांत था। उस जंगल के किनारे किनारे होते हुए वे शृगवेरपुर पहुॅचे, जो कि गगा के किनारे आधुनिक सिगरोर है।"

वस्तुतः भगवान् रामचन्द्र तमसा पर पहुॅचे। तमसा से थोड़ी दूर पर वृक्षो के पत्तो की शय्या पर उन्होने सीता के साथ शयन किया। लक्ष्मण रात्रि भर सुमन्त सारथि के साथ बातचीत करते रहे (वाल्मीकि रामायण अयोध्या का० ४६।१२-१५)। राम ने प्रातःकाल उठकर लक्ष्मण और सीता को साथ

ले रथपर चढ़कर तमसा को पार किया और सूत से कहा कि तुम पुर के लोगो को भुलावा देने के लिये खाली रथ उत्तर की ओर ले जाओ, जिससे लोग यह समझें कि राम रथ पर चढ़कर अयोध्या चले गये और रथ को फिर घुमाकर ले आओ। सूत ने रथ को तमसा के पार ले जाकर पहले अयोध्या की ओर चलाया और फिर घुमाकर तमसा के पार रास्ते पर पहुँचा दिया। रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता के सहित उसपर चढ़कर चल दिये (श्लोक २४ से ३२ तक)। पहले मंगलार्थ रथ का मुख उत्तर की ओर किया गया। बाद मे रथ का मुख दक्षिण की ओर करके उसे चला दिया। इसमे स्पष्ट तमसा के बाद रथ का उत्तर ले जाना पौर लोगो को भुलावा देने के लिये किया गया था। इससे राम का रथ पर चढ़कर चलना उत्तर नहीं हो सकता। केवल चढ़ते समय प्रारंभ मे रथ को उत्तराभिमुख किया। उसका भी कारण वाल्मीकि ने यात्रा के मंगल का दर्शक बतलाया है। प्रातःकाल जब लोग सोकर जागे तब उन्होने राम का पीछा किया। जंगल मे देखा कि आगे रथ नहीं गया है। इससे आगे मार्ग को न पाकर सब अयोध्या लौट आये। (४७।१३) राम वहाँ से चले और बची-बचाई रात्रि में बहुत दूर निकल गये। (४९।१) प्रातःकाल सन्ध्योपासन कर फिर रथ पर चढ़कर ग्राम, बन इत्यादि देखते हुए कोशल मे बहुत दूर निकल गये। वहाँ उन्होने (४९।९) कल्याण जलवाली वेदश्रुतिनदी को पार किया और अगस्त्य से बसी गयी दिशा (दक्षिण दिशा) को गये। उसके बाद, बहुत देर चलने के अनंतर वे ठण्ढे जलवाली गोमतीनदी पर पहुँचे। उसको पारकर तेज घोड़ेवाले रथ से

स्यन्दिकानदी को पार किया। (४९।११) वहाँ राम ने राष्ट्रों से घिरी हुई बहुत बड़ी भूमि को सीता को दिखलाया और कहा कि यह कोशल की वह भूमि है जिसे मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था, और सूत से कहा कि वह समय कब होगा जब हम फिर भी अपने माता-पिता के साथ मिलकर फूले हुए सरयू के बन मे शिकार खेलेगे। यहाँ तक की भूमि कोशल के राजाओ की जागीर थी। इस वाक्य से वाल्मीकि ने उक्त भूमि मनु द्वारा इक्ष्वाकु को दिये जाने का उल्लेख किया है। राम ने यह भी कहा कि हम सरयू के वन मे शिकार खेलना अधिक नहीं चाहते, तब भी शिकार खेलना राजाओं का कर्म पहले से चला आता है। वह इसलिये है कि चलती हुई वस्तु पर निशाना लगाने का अभ्यास हो। इसी से हम भी शिकार खेलते है। जब जागीर-रूप उक्त भूमि के बाद राम पहुँचे तो राम ने अयोध्या की ओर मुख करके और हाथ जोड़कर कहा कि हे काकुत्स्थ से रक्षित अयोध्यापुरि! हम आप से और आपके समान रक्षा करनेवाले देवताओ से जाने के लिए आज्ञा माँग रहे हैं। बनवास से लौटकर माता-पिता से उऋण होकर, माता-पिता से मिलकर फिर आपका दर्शन करेंगे। अनतर राम ने दक्षिण भुजा उठाकर आँखो मे आँसू भरकर अपने को देखने के लिये आये हुए जनपद-निवासी लोगो से कहा कि आप लोगो ने जैसा कुछ चाहिये, उसी प्रकार हमारा आदर किया है और हमारे ऊपर दया की। बहुत दुःख करना अमंगल है, इससे अब आप लोग चले जाइये। हम भी अर्थसिद्धि के लिये जा रहे हैं। उसके बाद राम ने कोशल के उस विभाग से गमन किया जिसका प्रबंध

और राजे लोग दशरथ की ओर से कर रहे थे। सायंकाल गंगा को देखा और शृंगवेरपुर के सामने गगा के तट पर उतरे। गंगा से थोड़ी दूर पर इंगुदीवृक्ष के नीचे ठहरे (५०।२७)। यह पाठ बबई के गुजरातीप्रेस मे सन् १९१३ ई० मे मुद्रित का है)।

(अब, हम सन १९२८ ई० मे लाहौर के विद्याप्रकाशप्रेस से मुद्रित पुस्तक का पाठ दिखलाते है। सर्ग ४८ मे गुजरातीप्रेस के समान ही पाठ है) राम ने पौरो के मोहन के लिये रथ को तमसा उतरने से पहले उत्तर की ओर भेजा। और उसके लौटने पर सीता-लक्ष्मण-सहित सवार होकर तमसा उतरकर चले। इसमे उत्तर को रथ का मुख करके चढ़, यह पाठ नहीं है। तमसा उतरने के बाद रथ को उत्तर की ओर भेजा, यह भी पाठ नहीं है। किन्तु तमसा उतरने से पहले ही खाली रथ को उत्तर की ओर भेजा और रथ लौटने पर उसपर सवार हो चले गये, ऐसा पाठ है। बहुत मार्ग समाप्त करने पर गोमती को पार किया और सरयू का स्मरण किया। इक्ष्वाकु को दी हुई भूमि को सीता को दिखलाया और सूत से कहा कि हम कब लौटकर सरयू के जङ्गल मे शिकार खेलेगे। हम सरयूतट पर फिर भी माता-पिता के साथ शिकार खेलना चाहते है, इत्यादि बाते करते हुए शृगवेरपुर मे पहुँचे। इसमे तमसा के बाद केवल गोमती का ही वर्णन है, अन्य नदी का नाममात्र तक नहीं है।

अब, हम इटली-मुद्रित पुस्तक का पाठ दिखलाते हैं जो कि वंगपाठ के नाम से प्रसिद्ध है। यही पाठ मिस्टर पार्जीटर ने देखा होगा, क्योकि वे वगाल की ही सिविलसर्विस मे नियुक्त थे। सर्ग ३४ मे पहले गुजरातीप्रेस के ही समान पाठ है। अन्तर

इतना है:—तमसा उतरने के पहले ही राम ने सूत को खाली रथ लेकर उत्तर की ओर भेजा और उसके लौट आन पर उसपर सवार हो तमसा को पार किया। रात्रि मे ही बहुत दूर निकल गये। प्रात:काल होने पर सन्ध्योपासन कर, फिर रथ पर सवार होकर श्रीमती नाम की महानदी को शीघ्र ही पार किया। उसके बाद वेदश्रुति नाम की नदी पार की और दक्षिण की ओर चले। बहुत देर चलने के बाद गोमती को उतरे। उसके बाद सर्पिका को पार किया। वहाँ पर मनु के द्वारा इक्ष्वाकु को दी गई भूमि को सीता को दिखलाया और सूत से कहा कि हम फिर लौटकर माता पिता के साथ सरयू के वन में कब शिकार खेलेगे? इसके बाद आगे बढ़े और सायंकाल शृंगवेरपुर पहुँचे। इसमे रथ का मुख उत्तरकर चढ़ना पाठ नहीं है। बबई मे मुद्रित गोविन्दराज की टीकासहित पुस्तक मे बंबई के गुजराती-प्रेस मे मुद्रित के समान ही पाठ है। गोविन्दराज की पुस्तक और गुजरातीप्रेस के अनुसार तमसा, वेदश्रुति, गोमती और स्यन्दिका ये नदियाँ ही अयोध्या से गगा तक बीच मे पड़ती है। लाहौर मे मुद्रित प्रति के अनुसार तमसा से बाद गोमती ही का नाम मिलता है। वेदश्रुति और स्यन्दिका का नाम नहीं है। इटली मुद्रित के अनुसार तमसा, श्रीमती, वेदश्रुति, गोमती और सर्पिका नाम की नदियाँ बीच मे आती है। तमसा अयोध्या से दक्षिण है और बहुत दूर पहले से बहकर आती है एवं पूर्व-वाहिनी है। वहाँ के निवासी इसको 'मड़हा' कहते हैं और फैजाबाद के नक्शे मे इसका नाम पहले मड़हा ही लिखा है तथा बाद मे उसका दूसरा नाम 'टौंस' भी लिखा है। वेदश्रुति

फैजाबाद के नक्शे मे 'बिसई' नाम से लिखी है। गोमती इसी नाम से प्रसिद्ध है। 'स्यन्दिका' और 'सर्पिका' दोनो एक ही के नाम है और यह नदी 'सई' के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमती-नदी की सत्ता और नाम दोनो मे सन्देह है।

मि० पार्जीटर अयोध्या को सरयू से पश्चिम मानते हैं और अयोध्या से पश्चिम तमसा को बतलाते है। परंतु सरयू अयोध्या के उत्तर पूर्वाभिमुखी है। अयोध्या के बाद सरयू कुछ दक्षिणमुखी हो जाती है। पार्जीटर भगवान् राम को तमसा उतरने बाद दक्षिण-पश्चिम ले जाते हैं और बाद मे उत्तर की ओर ले जाते हैं, जिसमे नाममात्र का प्रमाण नहीं है। फिर सरयू को पार कराते है। श्रीमती के प्रमाण के लिये महाभारत का प्रमाण उद्धृत करते है। क्या महाभारत मे समस्त नदियों के नाम आ गये है? महाभारत में लिखी गई नदियो के बाद क्या और कोई नदी नहीं है? महाभारत मे तो संक्षेप में नदियो के नाम दिये गये हैं। उनमे नाम न आने से नदी नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। वनपर्व मे प्रसिद्ध प्रसिद्ध नदियाँ जो तीर्थ हैं, उनका संक्षेप मे वर्णन है, सब का नहीं। इससे महाभारत का मिलान करना और उसमे नाम न पाकर कभी 'सरयू' कह देना और कभी 'चौका' मान लेना केवल खेलमात्र है, जो प्रमाणिक नहीं माना जा सकता। राम जायँ दक्षिण और उतरें सरयू, और उसके बाद पश्चिम चले और कई कोश के बाद बहरामघाट के पास घाघरा के उत्तर में मिली हुई चौका को उतरे और बिना घाघरा-पार किये ही घाघरा से दक्षिण स्थित गोमती को पार करें—क्या ही सीधा मार्ग है!

मि० पार्जीटर सरयू और वेदश्रुति के पूर्वभाग को कोशल मानते हैं। उनको लिखते समय यह ध्यान न रहा कि ये सब नदियाँ कोशल के मध्य मे ही है। इनके चारो ओर कोशल है। पार्जीटर वेदश्रुति का वेदस्मृति से ऐक्य करते हैं, जो नितांत निरर्थक और असभव है। यदि लासनसाहब ने चौका को कालीनदी माना है तो उनका कथन असंभव होने से माना नहीं जा सकता। चौका का वेदश्रुति मानना सर्वथा असंभव है। अयोध्या से दक्षिण जानेवाले को चौकानदी पर लाना सर्वथा बुद्धिबाह्य है। पार्जीटर ने लखनऊ के कुछ नीचे गोमती को पार कराया और बहुत दिनों के बाद गोमती पर पहुँचाया—ये दोनों बातें मानी नहीं जा सकतीं। क्योंकि राम एक दिन मे तमसा से गंगा तक गये थे। पार्जीटर सई-नदी को राम द्वारा बरेली से नीचे २५ या ३० मील की दूरी पर पार कराते है। अयोध्या के मैदान को जो मनु द्वारा इक्ष्वाकु को दिया गया था, उसे रायबरेली से शृंगवेरपुर जानेवाली सड़क के बाये और सरयू के जंगल को दक्षिण पड़ना कहते है। इस प्रकार सरयू के जगल को रायबरेली से दक्षिण मे मानना और फिर भी उसे सरयूजंगल कहना पार्जीटर की असंबद्ध प्रलापता को स्पष्ट कर रहा है। हमने पार्जीटर का लेख कोशल-विषयक होने के कारण स्थालीपुलाकन्याय से परीक्षा के लिये संसार के सामने रख दिया। इसको देखकर आपके भौगोलिक ज्ञान पर विद्वज्जन विचार करें। नक्शे मे अयोध्या से इलाहाबाद का जिला ठीक दक्षिण है।

दक्षिणकोशल—जा० ग्रा० डि० पृ० १०३ "कोशल

दक्षिण गोंडवाना मध्यप्रान्त के पूर्व भाग को शामिल किये हुए है (ब्रह्म पु० २७)। महाकोशल के समान समय-समय पर इसकी सीमाएँ दक्षिण-पश्चिम की ओर पर्याप्त बढ़ीं। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी मे इसकी राजधानी रत्नपुर थी। इसके पहले राजधानी चिरायु थी (कथासरित्सागर देखिये)। टानी का ट्रान्सलेशन ख० १ पृ० ३७६ जिसमे नागार्जुन तथा राजा सद्वह जो चिरायु भी कहलाता था, उसकी कथा वर्णित है (देखो, बील का आर्० डब्लू० सी० पृ० २१०)। नागार्जुन का सुहृल्लेख (मित्र को पत्र) जो कि उसके मित्र दानपति जिनइनटाका (जेतक) को लिखा गया था और वह दक्षिणभारत के बड़े देश का राजा था, जिसे सद्वाहन या सातवाहन भी कहा जाता था (इत्सिग का रेकार्ड आफ दी बुद्धिस्ट रेलीजन पृ० १५९ ट्रान्सलेट बाई टकाकसू)। जिस प्रकार सातवाहन धानकटक के नरेश अधभृत्यनरेश थे, उस प्रकार का कोई मुख्य व्यक्ति सातवाहन नाम से नहीं था, जो राजा वर्णित है। वह धानकटक का राजा जिनइनटाका अवश्य होना चाहिये। शायद राजधानी का नाम राजा के नाम से भ्रम से पढ़ा गया तथा राजा या तो गौतमीपुत्र शातकर्णिन या उसका पुत्र पुलमायी अवश्य था। बहुत सम्भव है कि पहले ने दूसरी शताब्दी मे राज्य किया, जब कि नागार्जुन प्रतिष्ठित हुआ (धानकटक को देखिये)। संभव है कि यज्ञशातकर्णि का अर्थ यह था कि उसने बुद्धधर्म का पुस्तकालय तथा श्रीशैलपर्वत को नागार्जुन के लिये दान मे दिया। नागार्जुन महायान का प्रवर्तक तथा सुश्रुत का रचयिता है।

प्रोफेसर विलसन के अनुसार शातवाहन शालिवाहन का पर्याय-वाची शब्द है। शकयुग जो कि ७८ ई० मे शुरू होता है, शालिवाहनयुग भी कहलाता है। पर यह गलत है (पंचनद देखिये)। विदर्भ (बरार) बुद्धकाल मे दक्षिणकोशल कहलाता था (कनिङ्हम की आर्जिकल सर्वेरिपोर्ट १६ पृ० ६८)। दक्षिणकोशल रत्नावली अंक ४ मे वर्णित है। वत्स के राजा उदयन ने यहाँ राज्य किया। गोंडवाना मुसलमान-इतिहासकारों का गढ़कटग है। यह मध्यभारत की वीरस्त्री दलपतिशाह की रानी दुर्गावती के द्वारा शासित था। दक्षिणकोशल अशोक के धौली-शिलालेख का तोसली है (तोसली देखिये)। लान्हजी का पुराना नाम चंपनट्ट था। रत्नपुर का नाम मणिपुर था। मण्डला का नाम महिकमति था। यह नगर गढ़मण्डल के हैहयो की राजधानी थी। (गढ़मण्डल के इतिहास के लिये हिस्ट्री आफ दी गढ़मण्डल राजाज् जे. ए. एस्. बी. १८३७ पृ० ६२१ देखिये)[1]।"

जा० ग्रा० डि० पृ० ११७ "महाकोशल—इसके अन्तर्गत वह समस्त देश है जो कि अमरकंटक के उत्तर नर्मदा के उद्गम से लेकर महानदी के दक्षिण तक है; अर्थात् अमरकंटक उसके उत्तर मे है तथा महानदी उसके दक्षिण मे है। और वेनगगा-नदी उसके पश्चिम मे है। हर्द और जोक नदियाँ पूर्व मे है।

(१) वस्तुतः विदर्भदेश कभी भी दक्षिणकोशल नहीं हो सकता। किसी बौद्ध पण्डित ने अज्ञानवश लिख दिया होगा। क्योंकि प्रायः बौद्ध विद्वान् भौगोलिक ज्ञान से अनभिज्ञ पाये जाते है। दक्षिणकोशल कभी भी तोशलदेश नहीं हो सकता। क्योंकि वह पूर्वी देशों मे है।

इनके अनन्तर्गत मध्यप्रदेश का वह भाग भी शामिल है जिसमें छत्तीसगढ़ और रायपुर के जिले है (देखो, तिवरदेव का स्क्रिप्शन फाउन्ड ऐंट राजिम एशियाटिक रिसर्चेस् १५।५०८)। यही दक्षिणकोशल है (कौसेन्ट का ऐन्टीकेरियन रेमेन्स इन दी सेन्ट्रल प्राविंश ऐन्ड बेरार पृ० ५९, कनिङ्गहम की आर्किजिकीयो सर्वेरिपोर्ट ख० १७ पृ० ६८)। यह कलचुरियो का राज्य था (रैप्सन की इण्डियन् काइन्स पृ० ३३)।

एन्सियन्ट जाग्राफी पृ० ५९५, "चीनी यात्री कलिङ्ग से उत्तर पश्चिम की ओर राजधानी के-ओ-सा-लो अथवा कोशल की ओर, जो १८०० या १९०० ली अथवा ३०० या ३१७ मील थी, बढ़ा। सम्बन्ध और दूरी से प्राचीन प्रान्त विदर्भ या बरार था, जिसकी वर्तमान राजधानी नागपुर है, यह पता चलता है। यह कोशल की स्थिति से बिल्कुल ठीक मिलता है, जैसा कि रत्नावली और वायुपुराण मे भी है (एच्० एच्० विलसन विष्णुपुराण हाल्ड्स एडिशन २।१७२ नोट)। पहले मे कोशल का बादशाह विन्ध्ययन पर्वतो से घिरा है और दूसरे मे यह कहा गया है कि राम के पुत्र कुश कोशल मे राज्य करते थे, जिसकी राजधानी कुशस्थली या कुशावती थी, जो विन्ध्ययन की चट्टानों की ढाल पर बसी थी। ये सब एक मत की बाते हमको प्राचीन कोशल तथा नवीन बरार या गोंडवाना प्रान्त की शिनाख्त में सहायक होती हैं। राजधानी की स्थिति बतलाना अधिक कठिन हैं। क्योंकि ह्वेनसाँग ने इसका नाम नहीं बतलाया है। परन्तु चूंकि यह ४० ली या ७ मील के घेरे की दूरी मे है, इससे बहुत सम्भव है कि आजकल के बड़े शहरो में बयान किया गया

हो, जो चाँद, नागपुर, अमरावती और इलिचपुर हैं।"

'चाँद किले-सहित ६ मील के क्षेत्रफल का एक कस्बा है। यह पेनगगा और वरदानदी के संगम पर, गोदावरी के किनारे पर बसे राजमहेन्द्री से २९० मील उत्तर-पश्चिम मे बसा है, जो किस्टन के किनारे पर बसे 'धरनीकोटा' से २८० मील है। अतः इसकी स्थिति ह्वेनसाँग के सम्बन्ध और दूरी से पूर्णतया मिलती है। नागपुर बहुत ही बिखरा हुआ सात मील के क्षेत्रफल का कस्बा है। परन्तु चूँकि यह चाँद से ८५ मील उत्तर की ओर है, इसकी राजमहेन्द्री से ७० मील की दूरी चीनी यात्री के कथानुसार अधिक है। अमरावती भी राजमहेन्द्री से करीब उसी दूरी पर है और इलिचपुर ३० मील और आगे उत्तर की ओर है। अतः चाँद ही एक ऐसी जगह है जो कोशल की राजधानी सातवीं शताब्दी मे होने का दावा कर सकती है। राजमहेन्द्री से १८०० या १९०० ली कही हुई दूरी फिर ९०० धन १००० ली धनकाकाटा जो वास्तव मे किस्टननदी पर बसे धरनीकोटा या अमरावती ही है। अब चाँद और धरनीकोटा की सीधी सड़क की दूरी २८० मील या १६८० ली है। परन्तु चूँकि ह्वेनसाँग पहले ९०० ली दक्षिण-पश्चिम और १००० ली दक्षिण गया। अतः दोनो स्थानों का सीधा रास्ता १७०० ली से अधिक न होगा। ३०० ली या ५० मील राजधानी के दक्षिण-पश्चिम एक ऊँचा पो-लो-मो-लो-की-ली नाम का पर्वत है, जिसके माने 'कालीचोटी' कहे जाते हैं। एम० जूलियन इसको आजकल के बरमुलागिरि से शिनाख्त करते है। किन्तु मैंने इस स्थान को किसी नक्शे या किताब मे नहीं पढ़ा। पर्वत को बहुत

ऊँचा कहा गया है और वगैर किसी उकसाव या घाटी के है, जिससे यह सिर्फ पत्थर का ढेर-सा लगता है। इस पर्वत में राजा सो-टो-पो-हो या सातवाहन ने ५ मंजिल की गुंबज-दार इमारत काटकर बनवाई थी, जो कई दर्जन ली यानी कई मील लम्बी खोखली सड़क पहुँचने के लिए थी। ह्वेनसाँग इस स्थान पर नहीं आया था। क्योंकि उसकी यात्रा के वर्णन में इलएराइवाँ के स्थान पर आनएराइव शब्द आया है। परन्तु जैसा कहा जाता है कि वह पहाड़ी पवित्र बुद्धभिक्षु नागार्जुन के लिये खाली की जा चुकी थी, यात्री ने अवश्य ही इसको देखा होता, यदि यह सिर्फ ५० मील दूर पर ही राजधानी से होती; और यदि दक्षिणी-पश्चिमी सम्बन्ध ठीक है तो वह अपनी दूसरी अंध्र की यात्रा मे इसके बिल्कुल पास ही से निकल गया होगा, जिसको या तो उसी रास्ते मे या दक्षिण मे बतलाया जाता है। इसलिये मैं यह तय करता हूँ कि अनोखा "अस-सुद-उएस्त-डू-राडम" जिसे कि यात्री खोदी हुई शिला के स्थान के निर्दिष्ट करने के हेतु प्रयोग करता है, वह सम्भवतः राज्य की सीमा से सम्बन्धित है। अस्तु; वह स्थान दक्षिणी-पश्चिमी सीमाओ से ३०० ली या ५० मील दूर हो सकता है। यह स्थान देवगिरि की पहाड़ियों के किला से इलोरा के पास सम्भव हो सकता है और पोलो-मोलो-किली या वरमुलागिरि वरुला या इलोरा की प्रारम्भिक सीमा मानी जा सकती है। वृत्तान्तों के भाग जैसे कि पहाड़ी से खोदे हुए लम्बे लम्बे गलियारे, पहाड़ी से झरते हुए पानी के झरने इलोरा मे बौद्धों की स्थापना से अधिक मिलते हैं, देवगिरि से नहीं। परन्तु चूँकि स्थान वास्तव

में ह्वेनसाँग द्वारा नहीं देखा गया था, उसका यह कथन दूसरे यात्रियों के वर्णनों से लिया गया हो सकता है, जिनमे इलोरा और देवगिरि के स्थान मिले एक ही माने गये हैं।"

"वे खुदे हुए शिलाखण्ड पाँचवीं शताब्दी के शुरू में फाहियान द्वारा वर्णित है। उसने इन खुदाइयो को 'फोलोयू' या 'पिजियन के मठ' बतलाये है और इन्हें टेथीसिन के राज्य मे रखा है, जो दक्षिण मे है। इसकी सूचना बनारस मे प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त कोई आश्चर्यजनक स्थान पास मे नहीं छूटता, जिसका विवरण ह्वेनसाँग के विवरण से और अधिक अद्भुत हो। एक कड़ी चट्टान मे खुदा हुआ विहार पाँच मंजिल की ऊँचाई का कहा जाता है। उसकी प्रत्येक मंजिल विभिन्न पशु के रूप मे है। सबसे ऊपर की पाँचवीं मंजिल कबूतर के आकार की है, जिससे कि उस विहार का नाम पड़ा है। अतः चीनी शब्द 'फोलोयू' अवश्य संस्कृतशब्द 'पारावत' एक कबूतर के लिये आया है। एक झरना जो कि सबसे ऊपर की मंजिल से निकलता है, विहार के प्रत्येक कमरे में से होकर उतरा है और फिर फाटक से निकल गया है। इस विवरण मे पचमंजिला चोटी से झरने का गिरना और स्थान का नाम, ये सभी ह्वेनसाँग के वर्णन से मिलते है। भीतर का विशेष स्थान यह है जिसके अर्थ के लिये ह्वेनसाँग का पोलो मोलो-किली 'काली चोटी' के लिये आया है, जब कि फाहियान का 'फोलेयू' का अर्थ 'कबूतर' है। परन्तु और भी एक विवरण है, जो दोनों के बीच का है और उस नाम का तीसरा अर्थ बतलाता है। ५३० ई० मे दक्षिण भारत के राजा ने चीन मे

एक राजदूत भेजा। उससे यह निश्चित किया जाता है कि उसके देश मे किला से युक्त एक शहर है जिसका कि नाम 'पलाई' था और उसका अर्थ 'ऊँचाई पर बसा हुआ' था। ३०० ली या ५० मील पूर्व की ओर दूसरा एक चहारदीवारी से घिरा नगर था, जिसका चीनी अनुवाद मे नाम 'क्यूचोचिंग' या 'विलेसो-माइसे एके क्यू एस्ट-डिटेस्टे' था जो एक प्रसिद्ध साधु की जन्मभूमि थी और उसका नाम 'चूसानहू' या 'मूँगे की मणियाँ' था। अब 'पलामाला' मूँगे का हार या मूँगे की गुरियों की एक लड़ी था। और जैसाकि ह्वेनसाँग के पो-लो-मो लो शब्द से व्यक्त होता है, मै ऐसा अनुमान करता हूँ कि यह वही नाम होगा। मैं ह्वेनसाँग के नामो के अनुवाद को व्यक्त करने मे असमर्थ हूँ, जैसा कि कालोचोटी शब्द का किसी भी उत्तरी बोली मे अनुवाद करना कठिन है। मैं केवल सुझाव दे सकता हूँ कि शायद वह किसी दक्षिणी या द्राविड़ी बोलियो से सम्बन्धित है। कनाड़ीभाषा मे 'माले' 'पर्वत' के लिये प्रयोग होता है और पारा, पारस या स्पर्शमणि दोनों ही काले रंग के होते हैं। अतः 'पार' 'काले' के लिये तथा 'पारमाले' 'काली पहाड़ी' के लिये होगा। एक बहुत ही विषैला सर्प दक्षिण भारत मे पाया जाता है, जो गहरा नीला या बिल्कुल काले रंग का होता है, 'पारगुड्ड' कहा जाता है। इसलिये यह प्रतीत होता है कि निश्चय ही ह्वेनसाँग का अनुवाद किसी दक्षिणी बोली से प्राप्त हुआ है। यह चीनी अनुवादकों का भ्रम निस्सन्देह चीनी शब्दों की दोषपूर्ण शक्ति जो सस्कृत-शब्दो की नकल करने के लिये लगाई जाती है, उसी के कारण है। अतः फाहियान के अनुसार पो-

लो-फा पारावत (कबूतर) पढ़ा जा सकता है। सी-यू की के अनुसार 'परवत' कहा जा सकता है, जिसका अर्थ विषय है। जब कि यह संभव है कि यथार्थ पाठ पर्वत होना चाहिये जिसका अर्थ पहाड़ है, और जैसा कि विहार के बारे मे कहा जाता है कि वह पहाड़ी चट्टान से खोदा गया है, राजधानी का नाम पलाई था। अब चाँद का किला, बालकील या बड़ा-किला कहा जाता है। यह मुसलमानो के द्वारा दिया गया एक फारसी नाम है, जो बहुत संभव है कि प्रारंभिक नाम 'पलाई' के आधार पर है।"

"सभी चीनी अधिकारियो ने चट्टान मे खुदे विहार को साधू से संबद्ध बतलाया है, परन्तु प्रत्येक विवरण मे नाम भिन्न है। फाहियान के अनुसार यह विहार पूर्वकालीन बुद्ध का था, जिनका नाम काश्यपु था। 'सी-यू-की' मे यह मुनि परा-माला की जन्मभूमि कही गई है, जब कि ह्वेनसांग लिखता है कि विहार सातवाहन राजाओं द्वारा प्रसिद्ध नागार्जुन के उपयोग के लिये खुदवाया गया। फाहियान और ह्वेनसांग के वर्णनो के द्वारा हमे सोचना पड़ा कि उनके वर्णन सम्भवत: देवगिरि और इलोरा की वड़ी खुदाइयों को व्यक्त करते हैं। परन्तु यदि ह्वेन-सांग तथा सी-यू-की के द्वारा दी गई दूरी ठीक है तो चट्टान मे खुदा विहार चाँद से ५० मील पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम होना चाहिये। अब इसी स्थिति पर चाँद से करीब ४५ मील पश्चिम एक स्थान है, जो नक्शे मे 'पाण्डुकुटी' या 'पाण्डुओ का घर' कहा जाता है। वह निस्सन्देह प्राचीन स्थान बतलाता है और सम्भवत: किसी चट्टान की खुदाई को व्यक्त

करता है, जैसा कि खुदी हुई चट्टाने, धमनार और खुलवी की गुफाएँ भी पाण्डवो की गुफाएँ कही जाती है, जो बहुधा भीम या अर्जुन की गुफाएँ कही जाती हैं। सभी सूचनाओ के अभाव मे हम अति अद्भुत और संकेतात्मक स्थान के नाम की ओर आपको आकर्षित कर सकते है। पट्टर मे बौद्ध गुफाओ की एक माला है, जो इलिचपुर और अमरावती से ५० मील दक्षिण-पश्चिम है और अजन्ता से ८० मील पूर्व है। इसका किसी ने कभी वर्णन नहीं किया है। अतः सम्भव है कि इनका स्थान फाहियान और ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार खुदे चट्टान के विहार से मेल खाता हो।"

"सातवाहन या सादवाहन राजाओ का वर्णन विशेषतया नागार्जुन के सम्बन्ध मे अत्यन्त रोचक है, जो इसपर प्रकाश डालता है कि पारामाला की बौद्ध गुफाएँ ईसा की पहली शताब्दी की पुरानी गुफाएँ है। सादवाहन एक कुटुम्ब का नाम था, जैसा कि एक गुफा-लेख (नासिक) में वर्णित है। परन्तु सालिवाहन का सुप्रसिद्ध नाम सातवाहन भी है, जिसने ७९ ई० मे शक-संवत् चलाया। अतः हमारे पास दुगुना प्रमाण है कि पारामाला की बौद्ध गुफाएँ पहली शताब्दी मे खोदी गई थीं। सातवाहन और सातकर्णी का संभावित व्यक्तित्व अन्य स्थान पर बतलाया जायगा। हम पश्चिमी गुफा के लेख से यह जानते है कि गोतमीपुत्र सातकर्णी के बड़े राज्य का कोशल एक दक्षिणी भाग था। यदि वह पहली शताब्दी मे था तो सातवाहन या सालिवाहन से निस्सन्देह कोई भेद नहीं। यह कहना यहाँ पर पर्याप्त है कि दक्षिणभारत के इतिहास में यह एक

रोचक स्थान की संभावना कराता है।"

"ह्वेनसांग ने कोशलराज्य को ६००० ली या १००० मील के घेरे का अनुमान किया है, किंतु उसकी सीमाएँ वर्णित नहीं हैं। परन्तु हम लोग जानते हैं कि वह उत्तर मे उज्जैन से, पश्चिम मे महाराष्ट्र से, पूर्व मे उड़ीसा से और दक्षिण मे आन्ध्र और कलिङ्ग देशों से घिरा है। राज्य का विस्तार ताप्ती-नदी पर बसे बुरहानपुर और गोदावरी पर बसे नान्दर तक था और छत्तीसगढ़ मे रत्नपुर और महानदी के उद्गम के पास नवगध तक था। इन सीमाओं के बीच कोशल १००० मील से अधिक है।"

भारतीय इ० रू० जि १ पृ० १९७ "रामचन्द्र का वृत्तान्त। चित्रकूट से चलकर वे गोदावरी के किनारे पञ्चवटी पहुँचे और अपने वास का कुछ समय वहाँ काटा। पञ्चवटी का स्थान आधुनिक नासिक माना जाता है। वहाँ अब भी एक पर्वत रामसेज नाम का है। पञ्चवटी से वह मंडली गोदावरी के निचले काँठे को गई, जहाँ जनस्थान नाम की राक्षसों की एक बस्ती थी। वह आधुनिक छत्तीसगढ़ के रास्ते जनस्थान पहुँची होगी। शायद इसी कारण उस प्रदेश का नाम दक्षिण-कोशल पड़ गया। लङ्का में राक्षसो का एक राज्य था और जन-स्थान की बस्ती शायद वहीं के प्रवासी लोगों की थी, इत्यादि।"

वस्तुतः दक्षिणकोशल और पश्चिमकलिङ्ग एक है। कलिङ्ग का पश्चिमार्ध अमरकण्टकपर्वत है और उसके दक्षिण का भाग भी उसी में सम्मिलित है। दक्षिणकोशल पुराणों मे विन्ध्यपर्वत पर तथा उसके समीप मे माना गया है। इसमें पीले हीरे की

खान का वर्णन मिलता है। गरुड़पुराण इसको कोशल मे बतलाता है और वराहमिहिर बृहत्संहिता मे इसको कलिङ्ग मे कहते हैं। इससे दक्षिणकोशल और पश्चिमी कलिङ्ग एक प्रतीत होता है। वैरागढ़ मे अकबर के समय तक हीरे की खान थी, यह 'आइनेअकबरी'[1] से पता चलता है। इससे वैरागढ़ कोशल मे अवश्य मानना होगा। भोगवतीश्वर सोमेश्वर का दानपत्र जो ए० पी० ग्रा० इ० १०।३० मे छपा है, उसमे सोमेश्वर द्वारा कोशल के ६०००९६ ग्रामो के विजय का वर्णन है। उसमे चक्रकूट का भी नाम है। वेङ्गी के जलाने का वर्णन है और 'वज्रसंभवपुराटवीदव:' यह सोमेश्वर का विशेषण है। जिस नगर मे हीरे पैदा होते थे उसका कोशल मे सोमेश्वर के द्वारा जलाना स्पष्ट है। लेख बहुत कटा है, इससे समस्त पढ़ा नहीं गया। जिस ग्राम के दान का वर्णन है उसका नाम भी कट गया है। वह ग्राम इन्द्रनदी के तट पर था। आरंगा और कपालिका ग्राम उसके समीप थे। इसमे वेङ्गी का जो नाम आया है, वह वेंगी इस कोशल मे न थी; प्रत्युत अन्ध्रदेश मे थी। ए० पी० ग्रा० इ० १०।३९ मे चक्रकोटाराष्ट्र का यह स्थान नाम है। उसमे टेपरा स्थान का वर्णन है। रायबहादुर हीरालाल "कोशल के चक्रकूट नामक स्थान को चित्रकूट के साथ एक करते हैं। अमरकोट और चक्रकोट को अभिन्न मानते हैं और अमरकोटमण्डल के राजपुर को राजापुर से एक करते है। भद्रावती को भद्रपट्टन से एक करते है। भद्रावती का वर्णन वैरागढ़ से मिलता है। ह्वेनसॉग ने इसे दक्षिणकोशल मे माना है। रत्नपुर-लेख मे

(१) 'आईने अकबरी' का उर्दू अनुवाद जिल्द १, भाग २ पृष्ठ ६१६

वैरागढ़ आया है, यह इम्पार्टेन्ट है। दूसरी ओर भण्डक भद्रा वती है। हमारा लेख भद्रावती का सम्बन्ध वज्र से बतलाता है। व्रज वैरागढ़ मालूम पड़ता है। भण्डक के बाद कोई ऐसा स्थान नहीं है जो भद्रपट्टन समझा जाय। यह वैरागढ़ से ७० मील है और पुराना स्थान भी है तथा लोकप्रसिद्धि में इसका भद्रावती नाम है। ह्वेनसाँग ने इसी को देखा था। आरंगा और कपालिका का पता नहीं। इन्द्रनदी इन्द्रावती है जो कुर्सपाल से एक मील है और चक्रकूट मे बहती थी। चित्रकूट चक्रकूट का अपभ्रंश है।" यह सोमेश्वर के दानपत्र के आदि के वर्णन मे अंग्रेजी मे विचार किया गया है, जो ए० पी० ग्रा० इ० के १०।२८ मे छपा है। टेपरास्थान आजकल भी बस्तर-स्टेट मे है और छोटा-सा गाँव है तथा कुर्सपाल के समीप है। यह लेख भी टेपरा के सतीमन्दिर में मिला है। ए० पी० ग्रा० इ० २१।२३२ मे चक्रकोट्ट का कलिङ्ग मे वर्णन है। इसको राजेन्द्रदेव ने भस्म किया था। ए० पी० ग्रा० इ० ९।१८० मे 'चक्रकोट्य मण्डलम्' ऐसा पाठ है। बस्तरस्टेट के नाहरनीगाँव के खेत में यह लेख गड़ा मिला। सी० पी० मे नाहरनीगाँव बस्तरस्टेट में राजपुर से १६ मील है। ए० पी० ग्रा० इ० १०। २८ मे चक्रकूट का आधिपत्य नागवंशी राजाओं को विन्ध्य-वासिनी देवी के प्रभाव से मिला। इससे यह कोशल की राज धानी प्रतीत होता है। ए० पी० ग्रा० इ० २२।६०, ए० पी० ग्रा० कर्ण० ११।२१५ चक्रगोट्ट इस स्थान को विष्णुवर्द्धन ने जीता। चक्रदुर्ग इसके स्वामी को परमार जगद्देव ने जीता। इन सब लेखों से यह पता चलता है कि चक्रकूट, चक्रकोट या चक्रकोट्ट या

चक्रकोट्य या चक्रगोट्ट नाम का एक नगर था, जो किले मे था और इसका इधर-उधर का प्रान्त मण्डल या राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध था। और यह दक्षिणकोशल अर्थात् पश्चिमकलिङ्ग मे था। इन्द्रनदी भी इसी मे थी और टेपरा नामक गाँव आरगा और कपालिका गाँव भी इसी मे थे। ए० पी० गा० इ० ९।१८० मे एक भ्रमरकोट्यमण्डल का वर्णन मिलता है। उसमे राजपुर नामक गाँव का वर्णन है। मधुरान्तकदेव ने सं० ९८७ मे राजपुर को एक ब्राह्मण को दिया। यह दानपत्र सी० पी० के बस्तरस्टेट मे राजपुर से १६ मील नाहरनीगाँव मे खेत मे गड़ा मिला। राजपुर आज भी बस्तर की राजधानी जगदलपुर से २२ मील उत्तर पश्चिम इन्द्रावतीनदी के उत्तर तट पर है और कुछ भग्नावशेष चिन्ह इसके राजधानी होने का द्योतन कर रहे है। रायबहादुर हीरालाल का भ्रमरकोट और चक्रकूट को एक मानना भ्रम है। चित्रकूट और चक्रकूट से वास्तविक कोई सम्बन्ध नहीं और न राजपुर तथा राजापुर से कोई संबंध है। भद्रपट्टन और भद्रावती एक हो सकती है। भण्डक का होना भी सम्भव है। परञ्च भोगवती से कोई सम्बन्ध नहीं। क्योंकि भोगवती नागवंशियों की राजधानी थी। वह कहाँ थी, इसका पता नहीं। नागवंशोद्भव सोमेश्वर ने कोशल को जीता, यह ए० पी० ग्रा० इ० १०।३० का वर्णन है। इससे वह कोशल से बाहर थी। ए० पी० ग्रा० इ० ९।३१४ यह नागवंशोद्भव धारावर्ष की राजधानी थी। यह शिलालेख सी० पी० के छत्तीसगढ़ डिवीजन मे जगदलपुर से २३ मील उत्तर-पश्चिम नारायणपालगाँव के नारायणदेव के मन्दिर में मिला। ए० पी० ग्रा० इ० १४।२७३

भोगवतीनगरी के स्वामी के योद्धा गोविन्द ने ११०३ शक मे श्रीपुरअग्रहार को स्वयम्भुशिव को दिया। ए० पी० ग्रा० इ० ३।३०८ भोगवती प्रत्यण्डक चार सहस्र देश के स्वामी मुंजराजा की राजधानी थी। ये ताम्रपत्र बीजापुर जिले के बीजापुर ताल्लुके मे बीजापुर शहर से करीब १२ मील उत्तर टिडगुडी गाँव मे मिले। ए० पी० ग्रा० इ० ३।२३३ यह भोगवती नाग वशोद्भव पुलिकाल की राजधानी है। ए० पी० ग्रा० इ० १०।२८ भोगवती नागवंशोद्भव धारावर्ष की राजधानी है। यह लेख कुर्सपाल नामक स्थान में मिला, जो बस्तरस्टेट मे है। इस भोग वती और भद्रावती से कोई सम्बन्ध नहीं है। ए० पी० ग्रा० इ० ३।३१६ सोमेश्वर चक्रवर्ती की राजधानी भोगवती है। उसकी रानी गंग महादेवी ने अपने नाम से गगाधरेश्वर और पति के नाम से वीरसोमेश्वर महादेवों की स्थापना की। दोनो की पूजा के लिये केरमरु का ग्राम दिया। शक ११३०। नागपुर से ११६ मील सिरोचा तहसीन मे उसी के पास कोटागाँव मे एक पहाड़ी पर यह लेख मिला, जो राजपुर से १६० मील पर स्थित है। यह स्थान एक मकबरे के समान था। ए० पी० ग्रा० इ० १९।८० कोशलाधिप पृथ्वीदेव ने हस्तियामठ से निकले ऋषि-केशव को बसहागाँव दिया। यह जयपुर विषय मे था। बसहा-गाँव अब भी सी० पी० के विलासपुर तहसील में है। ये ताम्र-पत्र विलासपुर के जाञ्जागिर तहसील से १० मील अमोदागाँव मे मिले। ए० पी० ग्रा० इ० १९।७९ कोमोमण्डल वज्रवर्मा का राज्य है। सी० पी० की पेड्रू जमीन्दारी मे कोमो नामक एक ग्राम है। यह लेख भी अमोदा नामक गाँव मे मिला। इण्डियन

आन्टीक्वेरी १७।१३९ कोमोमण्डल इसमें ७५० गाँव हैं। इसको ठाकुल साहिल के पौत्र देवसिंह ने अपने वश में किया। यह शिलालेख सी० पी० के रायपुर जिले के राजिम नामक कस्बे के रामचन्द्र के मन्दिर मे मिला। ए० पी० ग्रा० इ० ७।१०५ विल्वपद्रकगाँव मे स्थित कोशलाधिप तीवरदेव ने कोशलदेश के सुन्दरिका मार्ग मे मेंकिड्डकग्राम को जामाता नन्नराज की विज्ञप्ति (सिफारिश) से विल्वपद्रक के सत्रभोजी ब्राह्मणादि के नित्य भोजन के लिये दिया। ये ताम्रपत्र सी० पी० के सम्बलपुर जिले मे कालकर जमीन्दारी के बलोदक-बाशिन्दा उदयसिंह के है। महाभारत वनपर्व मे वंशगुल्म से जो कि नर्मदा के उत्पत्तिस्थान का नाम है. कोशला मे जाने का वर्णन किया है। इससे इसका अमरकण्टक (नर्मदाप्रभव) से समीप होने का निश्चय होता है। इसके राजेलोग अपने को त्रिकलिङ्गाधिप भी कहते है। इससे यह देश त्रिकलिङ्गदेश में भी था। त्रिकलिग मे ओड्रकलिग, कोशल और चेदि देश थे। यह निर्णय हम कलिग मे कर चुके हैं। ए० पी० ग्रा० इ० २३। २५१ त्रिकलिगदेशाधिप महाभवगुप्तराजदेव ने आरामनगर में स्थित हो कोशल लुपतुराखण्ड के गोयित्तइकेलाग्राम को खदिरपद्र से निकले हुए सुवर्णपुर मे रहनेवाले कमलवनवणिक् स्थान को दिया। ये ताम्रपत्र उड़ीसा मे सोमपुर राजधानी के खम्भेश्वरी के मन्दिर के सामने गड़े हुए मिले। ए० पी० ग्रा० इ० ३।४७ कोशलदेश के पोवाविषयो में रसड़ाग्राम और अलाँडाग्राम है। ये ताम्रपत्र कटक से भिन्न दिशा मे महानदी के पास चौदवारगाँव मे खेत-जोतते समय मिले। का० इ०

३।२९४ कोशलदेश की पेंठामभुक्ति (जागीर) मे किम्परिपद्रक-ग्राम को महाशिव तीवरराज ने श्रीपुर मे स्थित हो भवदत्त और हरिदत्त को दिया। यह शिलालेख सी० पी० के रायपुर नगर से करीब २४ मील दक्षिण-पूर्व रासिम कस्बे मे नींव खोदते समय मिला। ए० पी० ग्रा० इ० ३।३५६ कोशलदेश मे साखंगद्यन्हा विषय मे गौडसिमिणिल्लग्राम है। इसको त्रिकलिंगाधिप महाभवगुप्तराजदेव ने कोशल के देवीभोग विषय के सिगोश्राग्रामवासी ब्राह्मण को दिया। इण्डियन आएटीक्वेरी ५।५५ कोशलदेश के योधा विषय मे दारएडा और खलाएडर ग्राम है। इनको त्रिकलिंगाधिप महाभवगुप्तराजदेव ने टकारी से निकले हुए कोशल के उर्वसरागाँव मे बसते हुए महमहत्तम को दिया। ये ताम्रपत्र उड़ीसा मे कटक से भिन्न पार्श्व मे महानदी के उत्तरी किनारे पर कटक से ४ मील दूरी पर कपिलेश्वर गाँव में मिले। ए० पी० ग्रा० इ० १९।९८ यह कोशलदेश चोलान्वय सोमेश्वरदेव का राज्य है। इसी देश के सुवर्णपुर नामक पड़ाव मे स्थित सोमेश्वरदेव ने चारोडा विषय मे बणि याबन्ध नामक ग्राम को फुल्लुमुठी और डोहली के सहित साधु उत्सवकर और देवाकर को दिया। ये ताम्रपत्र उड़ीसा के बौद्ध स्टेट मे मिले। ए० पी० ग्रा० इ० ११।९६ त्रिकलिङ्गाधिप महा-शिवगुप्तराजदेव ने निविन्नागाँव को परमेडागाँव मे रहनेवाले और भटपरोलीगाँव से निकले हुए पुण्डरीकशर्मा को दिया। ये ताम्रपत्र जिला सम्बलपुर सोनपुरस्टेट में मिले। शायद ये भी कोशल मे ही हो; क्योकि त्रिकालिंगाधिप कोशलस्वामी भी होता है। अन्यत्र भी सम्भव हो सकता है। ए० पी० ग्रा० इ०

१०.३० मे कोशल मे ६ लाख ९६ गाँव है, इनको भोगवतीश्वर नागवशी सोमेश्वर ने वश मे किया। ए० पी० ग्रा० इ० ११।९४ त्रिकलिगाधिप महाभवगुप्तराजदेव ने लुपतुरा[1] खण्ड मे वक्र-तेतलीग्राम को राधाकम्बल्लिकन्दरग्राम से निकले और मेरंडा मे रहनेवाले मातृरूपशर्मा को सुवर्णपुर-पड़ाव मे स्थित हो दिया। ए० पी० ग्रा० इ० ६।१४१ दक्षिणकोशल मे कोगोद-मण्डल है, इसमे अर्तणि विषय है। इसमे गरस्तम्भागाँव को महाभट्टारिका दण्डिनी महोवी ने भट्टपुरुषोत्तम को दिया। ए० पी० ग्रा० इ० ९।२७१ कोशल देश है। मेकल और मालव के साहचर्य से यह दक्षिणकोशल प्रतीत होता है। ए० पी० ग्रा० इ० २५।२८७ त्रिकलिगदेश के स्वामी इन्द्रवर्मा ने दन्तपुर मे स्थित हो बोखरभोग के जिजगिग्राम को ब्राह्मणो के लिये दिया। 'जिजगि' से कोशल का 'जिजगिरि' नाम का ग्राम प्रतीत होता है जो कि तहसील है। नाट्यशास्त्र १३।४०० रौ० इस देश मे दाक्षिणात्याप्रवृत्ति है। वात्स्यायन कामसूत्र साम्प्र० अ० ५ दशन २७ पृष्ठ १२६ "कोशला: अत्र भवा: नार्य: दृढ प्रह-

(१) वी० सी० एस्० छब्बा एपीग्रा० २३।२५१ के विचार मे लिख रहे है कि लुपतुराखण्ड को रायबहादुर हीरालाल लिप्तुङ्गा मानते है, जो कि पटनास्टेट छटे का है। वह पटनास्टेट मे बोलङ्गीर से ६ मील दक्षिण-पूर्व है। वी० सी० मजूमदार नुप्तर और नुप्तरविम्गि जो कि सोनपुरस्टेट मे है, उनमे एक लुपतुरा है, यह मानते है। मेरी समझ मे नुप्तुरा गॉव पहले का लुप्तुराखड है। और गोत्तइकेला मिस्टर सर्कार सेक्रेटरी सोनपुरस्टेट का गोत्तरकेल है, जो कि सोनपुरनगर से ३ मील के लगभग है।

ग्न योगिन्य: खरवेगा: एवापद्रव्यप्रधाना: अत्र जयमंगल: कोशलायाम् अपद्रव्यप्रधाना: कण्डूतिप्रतीकारार्थं प्राधान्येन कृत्रिमम् साधनमिच्छन्ति ।"

अब, विचारणीय यह है कि वाल्मीकि रामायण में इटली-मुद्रित पुस्तक के आरण्यकाण्ड २२।२७ में जनस्थान पञ्चवटी के समीप था, यह लिखा है। अन्य पाठों में दूर-समीप का वर्णन नहीं है। परञ्च दण्डकारण्य मे लिखा है और बहुत दूर नहीं मालूम पड़ता। पहले तो कथा जो वाल्मीकि इत्यादि संस्कृतग्रन्थों मे मिलती है, उनमे पञ्चवटी में सीताहरण का वर्णन है। जनस्थान मे जो रावण की छावनी थी, उससे खर-दूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसों का १४ सहस्र निशाचरों के साथ राम से युद्ध के लिये जाने और राम के हाथ से मारे जाने का वर्णन है। यहाँ शूर्पणखा की नाक लक्ष्मण ने काटी थी। इससे इसका नाम 'नासिक' पड़ा। यह गणेश० उमा० ८९।१७ मे वर्णन है। नाक कटना पञ्चवटी मे हुआ, इससे पञ्चवटी नासिक मे थी—यह स्पष्ट है। वहीं गोदावरीनदी भी थी, ऐसा स्पष्ट वर्णन वाल्मीकि ने किया है। वहाँ से जन-स्थान जाने मे छत्तीसगढ़ का प्रान्त कैसे पड़ सकता है? गोदा-वरी के निचले काँठे में जनस्थान को बतलाना एकदम असंगत और प्रमाणरहित है। जनस्थान को राम की मण्डली गई, यह भी कहना उल्टा ही है, जबकि जनस्थान के स्वामी ने पञ्चवटी पर चढ़ाई की—यह स्पष्ट है। राम की मण्डली मे राम, सीता और लक्ष्मण थे। उनका मार्ग अधिक से अधिक एक गज चौड़ा हो सकता है। उनके जाने से मार्ग भर कोशल हो सकता है।

पूरा प्रान्त कैसे हुआ ? यदि राम के निकल जाने से ही कोशल नाम पड़ा तो अयोध्या से लङ्का तक राम के जाने में अयोध्या से चित्रकूट तक का प्रान्त, चित्रकूट से नासिक तक का प्रान्त, नासिक से पम्पा तक का प्रान्त और आगे लङ्का तक—सभी को कोशल मानना होगा। नासिक में राम रहे, तब भी नाशिक कोशल नहीं हुआ। जब कि राम की माता का नाम कौशिल्या कोशलदेश के राजा की लड़की के कारण पड़ा तो राम से पहले देश का कोशल नाम था, यह बात स्पष्ट है। 'छतीसगढ़ से होकर राम निकल गये इससे इलाका कोशल हो गया'—यह तर्क बड़ा ही विचित्र है। ग्रन्थकार को भी यह पक्ष अभिमत नहीं है। पार्जीटर इत्यादि किसी योरोपियन विद्वान् का मत ग्रन्थकार ने दिखलाया है। इसी से सर्वत्र 'शायद' शब्द का प्रयोग अपनी बचत के लिये किया है। क्योंकि इस बात को तुलसीकृत रामायण जिसने एक बार भी पढ़ी होगी, वह समझ सकता है।

कौरुपञ्चाल—कुरुपञ्चालदेश में प्रसिद्ध वस्तु। (माध्यन्दिनीय शतपथ १।१।७।२।८)

क्रिवि—(१) वे० इ० "शतपथ ब्रा०' मे पञ्चालाज् के पुराने नाम के रूप मे वर्णित है। यह वक्तव्य क्रैव्य पञ्चालराजा के नाम से जो कि वहीं उल्लिखित है, सत्य सिद्ध होता है। क्रिवीज् ऋग्वेद[2] में सिन्धु और असिक्नी के किनारे ठहरे वर्णित

(१) शतपथ ब्रा० १३।५।४।७।

(२) ८।२०।२४ तथा २२।१२। और स्थानो पर क्रिवि का भाव

हैं। जिमर[1] का सुझाव बहुत ठीक है कि इन लोगों ने कुरूज् से मिलकर वैकर्ण[2] जाति बनाई थी। पञ्चालाज् का महत्व और क्रिवीज् की लघुता इससे जानी जाती है कि कुरुपञ्चालाज् के सम्बन्ध में भरताज् भी शामिल थे। यह भी सम्भव है, जैसा कि ओल्डनबर्ग[3] शतपथ[4] ब्राह्मण में सोचता है कि तुर्वशाज् पञ्चालाज् में शामिल थे, जैसा कि बाद का नाम बतलाता है। सम्भवतः और जातियाँ भी शामिल थीं। अथवा यदि हाप्किस[5] की धारणा मान ली जाय कि तुर्वश् यदूज् का राजा था, जो क्रिवीज् से मिलाकर पञ्चालाज् बनाये गये होंगे।"

सन्देहात्मक है। बहुत से अवतरण १।३०।१, ८।८७।१ तथा ६।६।६ और सम्भवतः १।१६६।६ जहाँ पर क्रिविर्दती विद्युत् के विशेषण मे आया है। ओल्डनबर्ग ऋग्वेद नोटेन १।१६६।३४१ मे सोचता है कि इस शब्द का अर्थ घोडा है। और स्थानो पर (२।१७।६ एवं २२।२ तथा ८।५१।८) वह इसको व्यक्तिवाचक संज्ञा मानता है, जब कि ५।४४।४ मे वह सन्देहात्मक है। अन्तवाले अवतारणो मे यह धारणा ठीक हो सकती है।

(१) एलटिन डिस्चेज्लेवेन १०३।

(२ तुलना करो 'कवष'।

(३) 'बुद्ध' ४०४।

(४) १३।५।४।१६

(५) जरनल आफ दी अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२५८ से प्रारभ। यह धारणा उचित नही है। तुर्वशाज् का लुप्त हो जाना बहुत साधारण रूप से माना जा सकता है कि वे क्रिवीज् के साथ मिलकर पञ्चालाज् को बनाये। क्रिवीज् का नाम गाथा में नही मिलता। ऐसे तुर्वशाज् भी नही मिलता। पार्जीटर जरनल आफ दी एशियाटिक सोसाइटी १६१०। ३८ नोट्स ४-५, तुलना करो मेकडानल संस्कृत लिटरेचर १५५।१५७,

(२) जिमर का मत है कि इन लोगो ने कुरूज् से मिलकर वैकर्णजाति बनाई । (वे० इ०)

(३) ओल्डनवर्ग का मत है कि तुर्वशाज् पञ्चालाज् में शामिल थे, जैसा कि बाद का नाम बतलाता है। सम्भवतः और जातियाँ भी शामिल थीं । (वे० इ०)

(४) हापूकिस का मत है कि तुर्वश् यदूज का राजा था, जो क्रिवीज् से मिलकर पंचालाज् बनाये होगे ।

(५) जा० प्रा० डि० पृ० १०४ यह पंचाल का पुराना नाम है (महाभा० आ० प० अ० १३८) ।

वस्तुतः यह क्षत्रियसमानजनपदवाची शब्द है और पञ्चाल-देश का नाम है। इस क्षत्रिय का पुत्र 'क्रैव्य', स्त्री-सन्तान 'क्रैव्या' कही जाती है और इस देश का राजा भी 'क्रैव्य' कहा जाता है। इस देश का राजा और क्रिवि की सन्तान बहुवचन में 'क्रिवि' कहे जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में परिवक्रानगरी (परिअर, जि० उन्नाव) में क्रैव्य अर्थात् पंचाल के राजा ने अश्वमेधयज्ञ किया और 'क्रिवि' 'पञ्चाल' का नाम है, यह लिखा है। इसमें स्पष्ट 'क्रिवय इति पुरा पंचालानाचक्षते'; अर्थात् क्रिवि पञ्चालदेश का पुराना नाम है। इससे स्पष्ट देशअर्थ मे प्रयोग आता है और 'क्रैव्य' का अर्थ 'क्रिविदेश' का राजा है। यहाँ जातिअर्थ मे प्रयोग नहीं है।

ग्रियर्सन जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८।६०२-६०७, कीथ की वही पुस्तक ८।३१ से आरंभ, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दी ऋ० वे० ३।१५२-१५३, एजलिङ् सेक्रेड् बुक्स आफ दी ईस्ट १२।६१, मैक्स-मूलर सेक्रेड् बुक्स आफ दी ईस्ट ३२।४०७।

ऋग्वेद मे कहीं भी क्रिविशब्द देश या क्षत्रिय-अर्थ में नहीं है और उसमे न तो उनके निवासस्थान का वर्णन ही है। ऋ० वे० ८।२०।२४ मे 'क्रिवि' शब्द का अर्थ 'कुँआँ' है और 'दश-स्यथ' (दिया) क्रिया का वह कर्म है। कोई देनेयोग्य वस्तु जो क्रिवि कही जा सकती है, वह जाति नहीं हो सकती। सिन्धुशब्द समुद्रअर्थ मे है और उसका अवथ के साथ सम्बन्ध है। क्रिवि के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ऋचा का अर्थ यह है— हे मरुतो, वायु के अधिष्ठातृ देवताओ! जिन रक्षण के प्रकारो से आप सिन्धु अर्थात् समुद्र की रक्षा करते है, जिन रक्षण के प्रकारो से स्तुतिकरनेवालो के शत्रुओ को मारते है और जिन प्रकारो से आपने तृष्णज = गोतम के लिये कुँओ का दान दिया था, उन्हीं सब रक्षण-प्रकारो से आप हमारी रक्षा करें। जिसके लिये कुँआँ का दान लिखा है, उसका नाम मूल मे नहीं है। सायण ने लिखा है कि किसी मन्त्र मे वर्णन आया होगा। यदि हम जिसे दान दिया गया उसका नाम न भी जानें तो भी वेदाक्षर 'क्रिवि' शब्द को दान का कर्म 'देने लायक चीज' बतला रहे हैं। वह जाति नहीं हो सकती है। देशअर्थ मे ही दान बन सकता है। परञ्च देशअर्थ मे बहुवचन होना चाहिये। यहाँ एक वचन है। यदि देश मे एकवचन भी मान लिया जाय तो भी क्रिविदेश का दान किसी को मरुतो ने किया, यह अर्थ होगा। यदि सिन्धु का अर्थ सिन्धुनदी ही करे तो भी सिन्धु की रक्षा करना मन्त्र में वर्णित है। क्रिवि के साथ सिन्धु का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि एक ऋचा में दोनों शब्द आ जाने से ही प्रमाण हो गया यह सिद्धान्त है, तो मनमानी कल्पना जो

चाहे हो सकती है। परन्च वह प्रमाण नहीं माना जायगा और ८।२२।१२ मे 'क्रिविवावृधुः' पाठ आया है, जिसका अर्थ 'कुँएँ का बढ़ाना' है। सायण ने अश्विनोकुमारो की स्तुति मे कुँएँ में पानी बढ़ाकर वन्दन नामक एक व्यक्ति का कुँएँ से अश्विनी-कुमारों द्वारा निकाले जाने का अर्थ किया है। मन्त्रार्थ यह है:- हे मनोरथो के देनेवाले अश्विनीकुमारो ! आप सभी देवताओ से वरणयोग्य हमारे हव = बुलाने के अभिमुख हो। उन रक्षण के प्रकारों से यहाँ आयें, जिनसे सबके नेता, हवि की इच्छा करने-वाले, अतिशय धन देनेवाले और युद्धो मे शत्रुओ को नाश करनेवाले आपने कुँएँ के जल को बढ़ाया था। उनसे हमारी रक्षा के लिये आये। सायण ने कूप मे गिरे हुए वन्दन को माया से कुँएँ का जल बढ़ाकर निकाला, यह अर्थ किया है और इसमे ऋ० १।११२।५ मन्त्र प्रमाण दिया है। अश्विनी-कुमार की स्तुति मे यह मन्त्र आया है। उसका अर्थ यह है:— हे अश्विनीकुमारो। आपने जिन रक्षणो से कुँएँ मे बँधे पड़े रेभऋषि को निकाला और वन्दन को जल से निकाला, उन्हीं से हमारी रक्षा कीजिये। इसप्रकार 'क्रिवि' का अर्थ 'कुँआँ' होता है। देश या जाति अर्थ नहीं है। सिन्धु के तट पर बसने मे इन मन्त्रो का प्रमाण देना एकदम निराधार है। अन्य स्थानो मे क्रिविशब्द जातिवाची या देशवाची नहीं है, इसे वे० इ० कार भी स्वीकार कर रहे है। असिक्नी का तो इन मन्त्रो मे नाम भी नहीं है। उसके किनारे कहना तो सर्वथा असंभव है। ऋ० वे० १।३०।१ इन्द्र-स्तुति मे 'हम लोग अन्न चाहते हुए सोम से आपको'

(इन्द्र को) इस तरह तृप्त करते हैं, जैसे क्रिवि = गढ़े को जल से पूरा करते हैं'। ऋ० ८।८७।१ का अर्थ यह है:—हे अश्विनी-कुमारो ! यह द्युम्नी नामक ऋषि सामवेद के स्तोत्रों से आपकी स्तुति करता है। जिस प्रकार वृष्टि होने पर कुँएँ का जल कम नहीं होता उसी प्रकार इसकी स्तुति करने पर आपके स्तोत्र कम नहीं होते। ९।९।६ में सोमस्तुति मे वर्णन है 'जो सोम यज्ञ का वहन करनेवाला और देवताओ को अत्यंत तृप्त करनेवाला है तथा सप्तनदियों को देखता है, वही सोम कूपरूप से पूर्ण स्थित है और नदियों को तृप्त करता है'। १।१६६।६ मे भी मरुत् की स्तुति मे 'क्रिविर्दती' का अर्थ 'विक्षेपणशील दाँत-वाली' बिजली होता है। ऋ० २।२२।२ मे इन्द्रस्तुति मे इन्द्र ने क्रिवि नामक असुर को युद्ध मे मारा, यह वर्णित है। ऋ० ८।५१।८ मे 'क्रिवि' शुष्ण नामक असुर का विशेषण है तथा यहाँ पर क्रिवि का अर्थ पञ्चाल नहीं है। मन्त्रार्थ यह है :— जिस इन्द्र ने शस्त्रो के प्रहार से काटे हुए शुष्ण नामक असुर को शब्द करते हुए चारो तरफ से व्याप्त कर लिया, जिस समय कि उस असुर ने अपने को बढ़ाकर इस द्युलोक को स्तब्ध किया था। उसी समय शीघ्र ही पार्थवअग्नि प्रकट हुआ था; अर्थात् लोगों के प्राणनिरोध से शरीर में जलन पैदा हो गई थी। ऋ० वे० २।२२।२ मे क्रिवि का नाम भी नहीं है।

वे० इ० कार का यह कथन कि "जिमर का यह सुझाव बहुत ठीक है कि ये लोग कुरूज् से मिलकरवैकर्ण जाति बनाये[1] थे" जिमर की पीठ ठोंकना बड़ा ही विचित्र है। ऋ०

(१) इसी का खण्डन 'वैकर्ण' मे वे० इ० कार ने स्वयं किया है।

७।१८।११ मे इन्द्रस्तुति मे परुष्णीनदी के दोनो किनारो के वैकर्ण जनपदो के २१ पुरुषो को सुदास् ने मारा, ऐसा वर्णन है। ऋ० वे० मे क्रिवि शब्द जब देश या जाति के अर्थ मे नहीं मिलता और कुरु भी लापता है तब ऋ० वे० की वैकर्ण-जाति क्रिवि और कुरु ने मिलकर बनायी, यह कहना निराधार है। ऋ० वे० में 'वैकर्णयोर्जनान्' वैकर्ण का द्विवचन दो वैकर्ण का सूचन करता है। पीछे के मन्त्र मे परुष्णी का नाम आया है। इससे परुष्णी के दोनों तटो पर वैकर्णदेश था, यह सिद्ध है। शतपथ ब्राह्मण में क्रिविदेश के राजा क्रैव्य के अश्वमेध का वर्णन है। और क्रिवि पञ्चालदेश का नाम है, यह लिखा है। यदि क्रिवियों ने वैकर्णजाति ऋ० वे० के समय मे बना ली होती तो आपके सिद्धान्तानुसार शतपथ जो पीछे का है, उसमें क्रिवि का नाम आ जाना असंभव होता। किन्तु शतपथ पञ्चाल का पुराना नाम क्रिवि बतलाता है, इससे शतपथ से पूर्व के समय मे अर्थात् ऋ० वे० के समय में जो क्रिविदेश था, वही शतपथ के समय में पञ्चाल भी कहलाने लगा, यह कहना क्रिविदेश का वही स्थान निश्चित करता है जो शतपथ के समय मे पञ्चालदेश का था। वह वैकर्ण मे कैसे पहुँचा? यदि वैकर्ण बनाये तो शतपथ के समय मे कहाँ से आये? यह तो वैकर्ण बन गये। वैकर्ण के वर्णन मे आप भी जिमर का कथन असंभव बतलाते है और यहाँ उसको पीठ ठोंकते हैं। आपका कौन सिद्धान्त ठीक है? यदि क्रिवि ऋ० वे० के समय मे थे तो पञ्चालदेश का भी ऋ० वे० के समय मे आर्यो को ज्ञान था। ऐसी दशा मे 'पञ्जाब के आगे आर्यों को ज्ञान नहीं था'

आपका यह सिद्धान्त खटाई मे पड़ जायगा। यदि आप यह कहें कि वे थे; परञ्च सिन्धु और असिक्नी के तट पर थे, तब यह कहने को प्रमाण ढूँढना पड़ेगा। सिन्धु का नाम मन्त्र मे आ जाने से और कुँआँ के अर्थ मे क्रिवि का प्रयोग उसमे आने पर तथा सिन्धु का दूसरी क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से परस्पर कैसे अन्वय हुआ? क्रिवि का जातिअर्थ कैसे हुआ? असिक्नी का नाम तो दूर तक न होने से उनके साथ कैसे जुड़ गया? वैकर्ण जो परुष्णी के तट पर हैं, उनमे क्रिवि कैसे पहुँच गये—इस प्रश्नो का क्या उत्तर होगा? शतपथ ब्राह्मण मे क्रैव्य के बाद सात्रासहशोण नामक पञ्चालराजा के यज्ञ के वर्णन मे ६०३६ तौर्वश क्षत्रियो ने कवच धारणकर घोड़े की रक्षा की, ऐसा वर्णन है। इसके आधार पर ओल्डनवर्ग सोचते है कि "तुर्वशाज् पञ्चालाज् मे शामिल थे" और वे० इ० कार इसको सम्भव मानते और यह कहते हुए कि, "जैसा कि बाद का नाम बतलाता है सम्भवत: और जातियाँ भी शामिल थीं" उसे पुष्ट करते है। परन्तु ओल्डनवर्ग को यह भी सोचना चाहिये कि पञ्चाल जब अलग लिखें हैं और तौर्वश क्षत्रिय अलग लिखे है तब कैसे शामिल हो गये? सेना मे तौर्वश थे, इससे उनमें शामिल थे—यह कहना निराधार है। नौकर रहे हों या मित्रता मे आये हों, यह भी सम्भव हो सकता है। परंच पञ्चालों से भिन्न थे। पञ्चालो में मिले नहीं थे। उनका अलग कहना आपके सिद्धान्त को निराधार सिद्ध कर रहा है। उसी प्रकार पञ्चालों मे कई जातियाँ मिली हैं, आपका यह कहना भी कोई प्रमाण नहीं रखता। 'क्रिवि पंचाल में मिल

गए' ऐसा कहनेवालो को शतपथ का यह कथन कि क्रिविदेश का नाम पञ्चालदेश पड़ गया, उन्हें अनर्गल प्रलापी सिद्ध कर रहा है। हापकिंस की धारणा कि तुर्वश् यदूज् का राजा था, जो क्रिवीज् से मिलकर पञ्चालाज् बनाये गये, इसे भी वे० इ० कार सत्य मानते हैं। ऋ० वे० मे तुर्वश् और यदु दोनों का नाम राजा के रूप मे आया है। यदु की सन्तान 'यादव' और तुर्वश् की सन्तान 'तौर्वश कही जाती है। 'तुर्वश् यदूज् का राजा था'—यह कहना तो सर्वथा उपहास्यास्पद है। शतपथ तौर्वशो को पञ्चालों से भिन्न कर रहा है और क्रिवि पञ्चालों का नाम कह रहा है। तब भी हठात् आप तौर्वशो को पञ्चालो मे मिला रहे है। अभिन्न क्रिवि को भी मिला रहे हैं। व्यक्ति के अभिन्न होने पर ही एक के दो नाम हो सकते हैं। मिलान दो वस्तुओ का होता है। क्रिवि और पञ्चाल यदि भिन्न होते तो वे मिल सकते थे। शतपथ पञ्चाल का पुराना नाम क्रिवि कहता है। इससे दोनो एक ही है, नाममात्र बदल गया। आज-कल यह देश यू० पी० के फर्रुखाबाद आदि जिलो मे है। उत्तर मे नैनीताल जिले तक चला गया है। इसकी पुरानी राजधानी अहिच्छत्रा थी, जो आजकल काशीपुर कही जाती है। यह उत्तरपञ्चाल मे थी। पञ्चाल को गंगानदी दो भागों में बाँटती है। उत्तरी भाग उत्तरपञ्चाल था। दक्षिणी भाग की राजधानी 'कम्पिल्यनगर' थी जो फर्रुखाबाद जिले मे कम्पिल नाम से कायमगंज के समीप प्रसिद्ध गङ्गा से दक्षिण थोड़ी दूर पर है। वर्षाऋतु मे गङ्गा इसके प्राचीन दुर्ग तक आ जाती हैं। खोदते समय गङ्गा के कुण्ड से जले हुए जौ निकलते हैं। लोग उस

कुण्ड को द्रौपदी का उत्पत्तिस्थानवाला कुण्ड कहते है। इस नगर की यह विशेषता लोग अब भी बतलाते हैं कि अश्वत्थामा के क्रोध के कारण इस नगर मे क्षत्रिय की वृद्धि नहीं होती। यदि क्षत्रिय आकर बस जाता है तो उसका नाश हो जाता है। इसमे कोई क्षत्रिय नहीं रह पाता है।

क्रुमु—(१) वे० इ० "ऋ० वे० मे दो बार आई हुई एक नदी का नाम है। एक बार पञ्चममण्डल[1] मे और दूसरी बार अन्त[2] मे नदीस्तुति मे आया है। इसमे बहुत कम सन्देह है कि यह नदी वर्तमान कुरुम है, जो सिन्धु[3] की पश्चिमी सहायक नदी है।"

(२) राथ, जिमर और लुडविक का भी यही मत है। (वे. इ.)

वस्तुतः पुराणो मे एक क्रुमु नाम की नदी लिखी है। वह इससे भिन्न है। क्रमु ऋक्षपर्वत से निकलती है। वस्तुतः क्रुमु कुर्रम ही है। यह सिन्धु की सहायक नदी है। आजकल इसका नाम कुर्रम है और गोमती (गोमल) के बाद सिन्धु मे मिली है। यह सिन्धु की सातवीं सहायक नदी है।

क्रौञ्च—(१) वे० इ० "यह एक पहाड़ का नाम है, जो केवल बाद[4] के वैदिक साहित्य मे आता है।"

---

(१) ऋ० वे० ५।५३।९

(२) १०।७५।६

(३) राथ निरुक्त एरलन्टरजन ४३, जिमर एलटिन डिस्चेज्लेबेन १४, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ ऋ० वे० ३।२००।

(४) तैत्तिरीयारण्यक १।३१।८, वेबर इण्डियन लिट्रेंचर ९३, इण्डिस्चेस्टडियन १।७८ देखो।

(२) वेबर का भी यही मत है। (वे० इ०)

(३) जाग्राफिकल डिक्शनरी पृ० १०४ "क्रौञ्चपर्वत कैलास का वह भाग है जिसमें मानसरोवर स्थित है। रामायण किष्किन्धा काण्ड अ० ४४ इसमे क्रौञ्चरन्ध्र है।"

वस्तुतः क्रौञ्चपर्वत मानसरोवर से दक्षिण मे है। हरद्वार से मानसरोवर जाने के लिए हंस-क्रौञ्चरन्ध्र को पार करके जाते हैं। यह कैलास का भाग नहीं हो सकता। यह हिमालय[1] का एक शिखर है और कैलास के दक्षिण है।

---

(१) बृहत्सहिता १४।२४ यह पर्वत उत्तर दिशा मे है। स्कन्द० नागर० २६४।३३ यहाँ पर स्कन्दाश्रम है। लघु शिवपुराण ३७।२१ यह पर्वत है और यहाँ पर स्कन्द रहते है। शिवमहा० रु० पा० २३।६ यह पर्वत है। कुमार० १६।३ स्कन्द यहाँ रहते है। मल्लिकार्जुन महादेव भी स्कन्द से ३ योजन पर इसी पर्वत पर है। शिवम० को० रु० १५।५ श्रीशैल का नाम है। यहाँ पर स्कंद मल्लिकार्जुन से ३ योजन पर रहते है। स्कन्द० आव० अव० ५८।२३ यह महापर्वत मैनाक का पुत्र है और अग्निष्वात्त पितरो का निवास है। वामन० ५८।८८ यह पर्वत है। मेदिनी-कोष च० द्वि० ४ एक पर्वत है। महाभा० आर० २२५।३३ स्कन्द ने इसको वाणो से वेधा था। यह हिमालय का पुत्र है। इसी के छिद्र से हस जाते है। यह श्वेतशैल (कैलास) के समीप मे है। महाभा० शल्य० गदा० ४७।८२ (नि० सा० चि०) ४६।८२ इस पर्वत को स्कन्द ने शक्ति से भेदन किया। विक्रमाङ्कदेवचरित १८।३५ इसमें परशुराम ने वाण से छिद्र कर दिया। मेघदूत पूर्वार्ध ५७ मे क्रौञ्च के छिद्र का वर्णन है। और कनखल (हरद्वार) के समीप से कैलास जाने मे मार्ग मे आता है। उसी से हस मानसरोवर को जाते है। तैत्तिरीयारण्यक १।३१।२ इस महागिरि मे वैश्रवण (कुवेर) का नगर है।

ख—(१) वे० इ० "ख शब्द ऋ० वे०[1] तथा बाद के[2] साहित्य मे पहिये के छेद के लिये, जिसमे धुरा लगा रहता है, आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गाड़ी (अनस्) तथा रथ[3] के पहिये के छेद में अन्तर था। इस समय भी प्रत्येक वस्तु के छिद्र मे अन्तर होता है। एक ही बन्दूक के छिद्र नाना प्रकार के बनते हैं। उन्हीं के अनुसार गोलियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से निकलती हैं। परन्तु वहाँ धुरावाला छेद नहीं; किन्तु पहियो के बीच के काठ मे जो छिद्र होते है, वह अर्थ है। 'युग' शब्द भी देखिये।"

(२) जिमर और गेल्डनर भी रथ और गाड़ी के पहिये के छेद मे अन्तर मानते है। (वे० इ०)

वस्तुत: 'ख' शब्द का अर्थ 'आकाश' है। ऋग्वेद में और अन्यत्र भी आकाशअर्थ मे आया है। प्रकरण से रथ के पहिये का छेद, गाड़ी के पहिये का छेद, जुआँ का छेद इत्यादि अर्थ हो जाते है। छेद मे आकाश ही है। ऋ० वे० मे रथ का नाम, गाड़ी का नाम और युग (जुये) का नाम जो इन्द्रस्तुति में आया है, उसमे उनके छिद्रो मे अन्तर था, यह

---

(१) ८।७७।३, ६१।७ तथा १०।१५६।३ जहाॅ पर केवल 'ख' आया है। तुलना करो विशेषण 'सुख' (जिसका सुन्दर धुरा हो) या आसानी से सुन्दर दौडनेवाली। बाद मे चित्त के अनुकूल अर्थ आता है।

(२) बृहदारण्यक० ५।१२।१ (माध्यन्दिनि ५।१०।१ काण्व)

(३) जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० १।३।६, गेल्डनर वेदिस्चेस्टडियन २।२३३, तुलना करो जिमर एलटिन् डिस्चेजलेवेन २४७।

बतलाने को नहीं आया है। किन्तु इन्द्रस्तुति ८।७७।३ में और्णा-नाभ और अहीशुव नामक असुरो को इन्द्र ने जकड़ दिया, जैसे रथ की पहिया के मध्य की लकड़ी के छेद मे अराओ को जकड़ देते है। 'अरा' उसे कहते हैं जो पहिये के बीच मे डण्डे लगे रहते हैं। उनको बीच के काठ के छेदो मे गाड़ देते हैं। यहाँ ख शब्द जिसमे धुरा डाला जाता है उस अर्थ मे नहीं है; किन्तु पहिये के बीच के काठ के छेद के अर्थ मे है। ऋग्वेद ९१।७ मे इन्द्र ने अपाला नामक ब्रह्मवादिनी को अपने रथ के छिद्र मे और जुआँ के छेद मे तीन बार रगड़कर उसकी त्वचा के दोष को दूरकर सूर्य के समान कान्तिवाला बना दिया। यह सूक्त ऋ० वे० मे कुष्ठादि त्वचा के रोगो में उनके नाश करने के लिये आया है। इन रोगो का रोगी यदि इसका पाठ करे तो उसे अवश्य लाभ हो सकता है। वैद्य लोगो को भी यह सूक्त जान लेना चाहिये। चर्मरोग के रोगियो को इसे सस्वर सुनाना चाहिये। हमने अर्थ देखकर ऋग्वेद के मन्त्रों के अनुष्ठान जिन-जिन बातो में कराये, वे सफल हुए। ऋ० १०।१५६।३ मे 'ख' शब्द 'अन्तरिक्ष' अर्थ मे आया है। अग्नि की स्तुति में 'हे अग्ने! अन्तरिक्ष को वृष्टि के जलो से सींचो। अथवा अन्त-रिक्ष को अपने नेत्रो से प्रकाशित करो।' यहाँ पर 'ख' शब्द अन्तरिक्ष = आकाश अर्थ मे है। विशेषण नहीं है। और न तो यह सुन्दर धुरावाले या आसानी से दौड़नेवाले इत्यादि के अर्थ मे आया है। बृहदारण्यक० ५।१२।१ मे 'ख' शब्द नहीं है। उपनिषदो मे 'ख' शब्द 'आकाश' के अर्थ मे आता है और उसका ब्रह्म से अभेद प्रतिपादन है। छान्दोग्य० ४।१०।४ मे

'खं ब्रह्म' इत्यादि से ब्रह्म का प्रतिपादन है, अर्थात् ख=आकाश को ब्रह्म समझना लिखा है। सुखपूर्वक गाड़ी के पहिये चलने इत्यादि के अभिप्राय से वैदिक साहित्यमात्र मे 'ख' शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं है। ब्रह्मज्ञान के वर्णन मे उपनिषदों मे आता है और उसका आकाशअर्थ होता है। जैमिनीयोपनिषद् ब्रा० मे 'दिव्' शकट के छिद्र के समान है, यह अर्थ है। पहिये का छिद्र अर्थ नहीं है।

खाण्डव—(१) वे० इ० "यह तैत्तिरीयारण्यक[1] मे कुरुक्षेत्र की एक सीमा के लिये आया है। यह निश्चयरूप से महाभारत का खाण्डववन है। यह नाम पञ्चविंश[2] ब्राह्मण तथा शाट्यायन[3] में आता है। (पञ्चविंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मण का नाम है)।"

(२) मैक्समूलर और वेबर का भी यही मत है। (वे० इ०)

(३) जा० ग्रा० डि० पृ० ९९ "खाण्डवप्रस्थ उसी प्रकार से जैसे इन्द्रप्रस्थ यानी पुरानी देहली। (महाभा० आ० प० अ० २०७) खाण्डववन मुजफ्फरनगर मेरठ के उत्तर मे थोड़ी दूर पर है, जो कि पुराने कुरुक्षेत्र को अपने मे सम्मिलित करता है। यह नार्थ वेस्टर्न रेलवे का स्टेशन है। पाण्डवो मे अर्जुन ने इस स्थान पर अग्निदेव की क्षुधा बुझाई थी। मेरठ कमिश्नरी मे

---

(१) ३।२।४

(२) ५।१।२।१५, १४।१।२।१७, २।२।३०

(३) तुलना करो मैक्समूलर ऋग्वेद २।४ से, तथा तुलना करो वेबर इंडिस्चेस्टडियन १।७८।

एक बड़े भाग अर्थात् बुलन्दशहर से सहारनपुर तक का यह नाम है। (कलकत्तारिव्यू मे हरद्वार १९७७ पृ० ६७) खाण्डव-वन अश्वरथानदी के तट पर था। (महाभा० वन प० अ० १६०, पद्मपु० उत्तर ख० ६४ के अनुसार) खाण्डववन यमुना के किनारे था। तथा इन्द्रप्रस्थ भी खाण्डवप्रस्थ कहलाता था, जो कि उसका एक भाग था।"

(४) भारतीय इतिहास की रूपरेखा जि० १ पृ० २०९ 'खाण्डववन को जलाकर पाण्डवो ने इन्द्रप्रस्थनगर बसाया, जिसे आधुनिक देहली के पास इन्दरपतगाँव सूचित करता है। इन्द्रप्रस्थ की समृद्धि शीघ्र बढ़ने लगी। पाण्डव भी महत्वाकांक्षी थे। चुपचाप बैठनेवाले न थे। उनके प्रदेश के साथ लगता शूरसेन-देश था। इसमे जरासन्ध की तूती बोलती थी। उस दशा मे जरासन्ध और पाण्डवो में वैर होना स्वाभाविक था। और दुर्योधन से जरासन्ध से सहानुभूति होना तथा कृष्ण का पांडवो की तरफ होना भी। कृष्ण की सहायता से भीम-अर्जुन ने जरा-सन्ध को मार डाला। इसप्रकार उत्तरभारत में सबसे शक्ति शाली मगध के सम्राट् को मार देने से पाण्डवो की धाक जम गई। पाण्डवो ने मगध की गद्दी पर जरासन्ध के पुत्र सहदेव को बैठाया। पर उसके कई प्रतिद्वन्द्वी थे। और पाण्डवों की सहायता होने पर भी वह केवल पश्चिमी मगध पर अधिकार रख सका, गिरिव्रज और पूर्वी भाग पर उसका अधिकार न रहा। दुर्योधन ने अङ्गदेश का शासक कर्ण को बनवाया था। कर्ण के हाथ मे वङ्ग, पुण्ड्र आदि पूर्वी राज्यो की नायकता आ गई। उधर चेदि का राजा शिशुपाल अपने पड़ोसी कारुष आदि

राज्यों मे प्रमुख हो उठा, इत्यादि ।"

वस्तुतः यह एक प्रान्त का नाम है । तैत्तिरीयारण्यक ३।२।४ मे इसको कुरुक्षेत्र का दक्षिणार्ध माना है । पुराणों[1] मे भी

(१) कालिका० ६२।४२ यह वन तीस योजन विस्तीर्ण और १०० योजन लम्बा था । काशी के राजा विजय ने खाण्डवी नगरी का नाशकर उसके स्थान मे इसको बनाया था (श्लोक १३२) । महाभा० आ० १।१४४ यह वन है, २१३।१६ यह वन इन्द्रप्रस्थ के समीप यमुना के तट पर था । महाभा० हरिव० विष्णु० ११५-११६, कालिका० ३३।१३६ खाण्डवारण्य हिमालय के समीप है । परञ्च मुजफ्फरनगर उसी स्थान पर है, यह कहना प्रमाण न होने से प्रमाणित नहीं हो सकता । महाभारत मे इसको दिल्ली से कुछ दूर यमुना के तट पर माना है । और अश्वरथा-नदी के तट पर इन्द्र और अर्जुन का युद्ध हुआ था । इससे अश्वरथा-नदी यमुना की सहायक कोई नदी प्रतीत होती है, जो दिल्ली से कुछ दूरी पर हो सकती है । वह नदी वन के बीच मे थी या किनारे पर थी, यह कहना प्रमाणाभाव से असभव है । यह वन दिल्ली के कुछ दूर से लेकर यमुना के किनारे हिमालय तक फैला था, ऐसा प्रतीत होता है । परञ्च इसके स्थान का निर्देश करना प्रमाणाभाव से असभव है । देवीभा० ६।२५।५५ तथा महाभा० आदि० २।६४ खाण्डवप्रस्थ पाण्डवो को धृतराष्ट्र से दिया गया । श्रीमद्भा० १०।७३।३२ यह देश है, इसमे इन्द्रप्रस्थनगर है । महाभा० आ० (म०) ५०।२८ इन्द्रप्रस्थ युधिष्ठिर की राजधानी है । महाभा० आ० (म०) १६८।४३ यह आयु, पुरूरवा इत्यादि पौरव राजाओ की राजधानी थी । पुरूरवा के लोभाक्रान्त होने पर ब्राह्मणो ने इसको नष्ट कर दिया था । युधिष्ठिर ने फिर इसको बसाया । इसी मे इसका एक भाग खाण्डववन भी था, जिसको अर्जुन ने जलाया था । इन्द्रप्रस्थ का नाम खाण्डवी नगरी भी था । कालिका० ६२।४७ तथा महाभा० आदि० (म०) २१३।१३ यह वन यमुना के तट पर था और इन्द्रप्रस्थ के समीप था ।

इसका नाम है। खाण्डवप्रस्थ प्रान्त का नाम है। इसका वन खाण्डव नाम से प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध है, जो महाभारत के संग्राम से पूर्व महाराज युधिष्ठिर की राजधानी थी और आज भी दिल्ली के नाम से राजधानी हो रही है। यह ताण्ड्य ब्राह्मण मे हति और वातवान् की यज्ञ-भूमि के लिये आया है। 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' का लेख विचित्र है। महाभारत मे इन्द्रप्रस्थनगरी बसाने के बाद अग्नि का अर्जुन के पास आना वर्णित है। अर्जुन की सहायता से अग्नि का खाण्डववन के जलाने का वर्णन है। परञ्च विद्यालंकारजी नगरी के बसने से पूर्व ही खाण्डववन को जलवा रहे हैं, उसके स्थान पर नगरी बसवा रहे है तथा शूरसेन मे ही जरासंध की तूती बुलवा रहे हैं, जिसकी तूती भारत के यवन इत्यादि देशों मे भी बोल रही थी। यवनदेश का राजा काल-यवन भी जरासंध की आज्ञा मान रहा था। यदुवशी जरासंध के दामाद शूरसेन के राजा कंस के कारण और कौरव राजा भीष्म के कारण जरासंध से सताये नहीं गये थे। परंच अङ्गदेश पर कौरव राजाओं का ही अधिकार था। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्गदेश का राजा बनाया था। पूर्वी देशो के राजे भिन्न थे; मरंच जरासन्ध का शासन मानते थे। जरासन्ध और पाण्डवो में किसी प्रकार का वैर न था। जरासन्ध का मित्र शिशुपाल पाण्डवों का प्रेमी था। कृष्ण से वैर होने से जरासंध से पाण्डवो से वैर था, यह भी नहीं हो सकता। क्योंकि जरासंध का मित्र शिशुपाल पाण्डवो का मित्र था। मित्रता-शत्रुता अपने-अपने व्यवहार पर थी। किसी के मित्र अथवा शत्रु होने

पर नहीं। दुर्योधन से जरासंध की सहानुभूति मे कोई प्रमाण नहीं है और न पाण्डवो से जरासंध के वैर मे। बल्कि जरासध की लड़की नकुल के साथ ब्याही थी। जरासंध के मारे जाने पर जरासध का पुत्र सहदेव गिरिव्रज का राजा नहीं रहा, इसमे भी कोई प्रमाण नहीं है। बल्कि उसके सबल होने मे ही प्रमाण है। वह महाभारत के युद्ध मे एक अक्षौहिणी सेना लेकर आया था और युधिष्ठिर के तरफ से लड़ा। पूर्वी देशो के राजे जरासंध के समय मे भी थे और बाद मे भी रहे। अङ्ग के राजा कौरव जरासंध के अधीन कभी भी न थे और कर्ण भी जरासंध के अधीन न था। बल्कि कर्ण के युद्ध से सतुष्ट होकर जरासंध ने कर्ण को मालिनीनगरी इनाम मे दी थी। अन्य देशो के राजे जरासन्ध के अधीन थे। जरासंध के मारे जाते ही स्वाधीन हो गये या उसके वंशजो को मानते रहे, इसका कोई वर्णन नहीं है। जरासंध के मारे जाने पर कर्ण के हाथ मे नायकता आ गई, यह कथन भी एकदम निराधार है। नायकता पाण्डवो के हाथ मे आई और राजसूय में समस्त संसार के राजों ने युधिष्ठिर के यज्ञ में आकर यज्ञ की शोभा बढ़ाई। राजसूय के बाद जुआँ मे पाण्डवो के राज्य हार जाने पर दुर्योधन उनके राज्य का भी स्वामी बना, न कि कर्ण। कर्ण ने दुर्योधन के किये यज्ञ मे समस्त संसार का विजय किया। परन्तु राजा अङ्गदेश का ही रहा, और न जरासंध के मारे जाने मे अर्जुन की सहायता की। केवल भीमसेन ने उसे मारा था। मारने की तरकीब बतलाने मे श्रीकृष्ण का हाथ था। केवल उत्तरभारत में पाण्डवों की धाक जम गई, यह भी बात

ठीक नहीं है। जरासन्ध को मारकर पाण्डवो ने राजसूययज्ञ किया। चेदि के पड़ोस मे कारूषदेश भी नहीं है। वह तो घाघरा-गङ्गा के संगम से दक्षिण है। वहीं पर ताड़का को रामचन्द्र ने मारा था। वाल्मीकि रामा० बा० का० मे अयोध्या से विश्वामित्राश्रम तक का मार्ग देखिये।

गङ्गा—(१) वे० इ० "गङ्गा, वर्तमान गङ्गा। ऋ० वे० की नदीस्तुति[१] मे केवल एक बार उल्लिखित है। परन्तु यह उरुकक्ष[२] के विशेषण गाङ्ग्य[3] के रूप मे भी उल्लिखित है। इस नदी का नाम दूसरी संहिताओ मे नहीं आता। परन्तु शतपथ ब्रा०[४] मे जहाँ पर भरत दौःषन्ति के गङ्गा और यमुना पर विजयो का उल्लेख है, वहाँ आता है। तैत्तिरीयारण्यक[५] मे गङ्गा और यमुना के मध्य मे रहनेवालो के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया गया है। लुड्विक[६] का गङ्गा को आपया[७] मानना निरा-

(१) १।७५।५। (२) ६।४५।३१।

(३) गङ्गा का प्रसग। यदि हम लोग ओल्डनवर्ग (ऋ० वे० नोटेड १।३६६) के साथ इसका अर्थ झाडी माने और व्यक्ति का नाम न माने तब भी रहता है। (वेकर नेजल एल्टिन डिस्चेज्ग्रामेटिक २।२८८) वेबर के प्रोसीडिक्स आफ दी वर्लिन एकाडेमी १८६८।५६३ एन० ए० को देखिये।

(४) १३।५।४।११ गङ्गा पर की विजय भरत अथवा कुरु के साम्राज्य की सबसे अधिक दूरी बतलाती है। ऐतरेय ब्रा० ८।२३ और वैतानसूत्र ३४।६ की ऋचा जहाँ पर सरस्वती का उल्लेख आया है।

(५) २।२०

(६) ट्रान्सलेशन आफ दी ऋ० वे० ३।२००, तुलना करो जिमर अल्टिनडिस्चेज्लेबेन ४।५। (७) ऋ० वे० ३।२३।४।

धार है। 'आपया' देखिये।"

(२) लुड्विक गङ्गा को आपया मानते है। (वे० इ०)

वस्तुत: यह एक पवित्र नदी है। ऋ० वे० की नदीस्तुति में इसका वर्णन है। इससे सभी भारतवासी परिचित है। अतः इसके विषय मे विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं। लुड्-विक गङ्गा का अर्थ आपया (कुरुक्षेत्र की नदी) करते है, वह निर्मूल है। शतपथ ब्रा० मे दुःषन्त राजा और शकुन्तला के पुत्र महाराज भरत के समस्त पृथ्वीविजय के अनन्तर सहस्रो अश्व-मेधो का वर्णन है। उसमें गङ्गा के तट पर भी ५५ अश्वमेधों का वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण मे दीर्घतमा नामक ऋषि द्वारा ऐन्द्राभिषेक से दुःषन्तपुत्र के अभिषिक्त होने का वर्णन है। ऐन्द्राभिषेक के कारण बलिष्ट होकर भरत ने समस्त पृथ्वी को जीता और अश्वमेधो को किया। उनमें गंगा के तट पर ५५ अश्वमेध किए। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणो मे गंगा और यमुना के तट पर भरत के अश्वमेधो का वर्णन है। पुराणो मे दु.षन्त की राजधानी 'प्रतिष्ठान' ('झूसी' प्रयाग के पास) का वर्णन है। इससे ये अश्वमेध प्रयाग मे गंगातट पर हुए होंगे और यमुनावाले प्रयाग मे यमुना के तट पर। ऋ० वे० मे कक्ष का गाङ्गय विशेषण दिया है, जिसका अर्थ गंगा के तट का कक्ष होता है। वेदिक इन्डेक्स मे गंगा का अर्थ प्रसिद्ध गंगा ही माना है। तैत्तिरीयारण्यक मे गंगा और यमुना के मध्य के निवासी ऋषियो की बड़ी स्तुति की है। वेदिक इन्डेक्सकार इस आरण्यक के बनने का स्थान गंगा और यमुना का मध्य मानते हैं। परंच प्रमाण कोई भी नहीं देते। इससे उनका कथन कोरी कल्पनामात्र है।

गन्धार :—(१) वे० इ० "यह ऋग्वेद तथा अथर्ववेद मे आई हुई गन्धारी नामक जाति का बाद का नाम है। छान्दोग्य[1] उपनिषद् में गान्धाराज् लेखक से दूर माने गये हैं। 'गान्धार' देखिये।"

(२) ओल्डनवर्ग, वेबर गन्धाराज् को लेखक से दूर मानते है। (वे० इ०)

(३) मैक्समूलर गन्धाराज् को लेखक के समीप मानते हैं। (वे० इ०)

(४) भारतभूमि पृ० ३९ "उपनिषदों के समय (आठवीं-नौवीं शताब्दी ई० पू०) मे ही हम काशी और मिथिला से गन्धार जानेवाले रास्ते की बात सुनते है। वह इतना चलता था कि कोई आदमी गाँव से गाँव पूछता हुआ गन्धार पहुँच सकता। (छान्दोग्य उपनिषद् ६।१४।२)।"

(५) कनिगहम की एन्शेन्ट जा० पृ० ५४ "गन्धार या 'परशावर'। सिकन्दर के इतिहासकारो ने गान्धार के प्रान्त का नाम भी नहीं लिखा। लेकिन स्ट्रैवो ने गांडैरिटिस् के नाम से उसका सुन्दर वर्णन किया है। उसके अनुसार वह कोफेसनदी के तट पर कोफेस और सिन्धु के मध्य में है। उसी स्थान पर टालेमी गांडारी को लिखते है और उनके देश मे कोफेस के दोनो तट सिन्धुनदी के संगम से ठीक ऊपर शामिल है। सब चीनी

---

(१) ६।१४।१-२ ओल्डनवर्ग 'बुद्ध' ३९९ एन् देखिये। वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।२१९ एन्। दूसरी ओर मैक्समूलर की सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट १५।१०६ के एक अवतरण में यह भाव आता है कि गन्धाराज् लेखक के समीप थे।

यात्री इसको कीइन्टोलो या गान्धार लिखते हैं। वे सब उसे एकमत से सिन्धु के पश्चिम में नहीं रखते हैं। उसकी राजधानी से 'पुलुशापुलो' या 'पुरुषपुर' का सिन्धु से ३ या ४ दिन का रास्ता है और यह एक बड़ी नदी के तट पर है। यह पेशावर का ठीक वर्णन है। 'पेशावर' का यह 'परशावर' नाम अकबर के समय से अब तक चला आ रहा है। इसी नाम से अबुल-फजल और बाबर तथा इनसे भी पुराने अबूरिहान और दशवीं शताब्दी के अरब के भूगोलकारो ने भी इसका यही नाम लिखा है। फाहियान इसको केवल 'फोलुशा' या 'परशा' लिखते है और बतलाते है कि राजधानी 'नगरहार' से सोलह योजन या ११२ मील है। ह्वेनसांग इस फासले को ५०० ली या ८३ मील बतलाते है। यह निस्सन्देह एक गलती है। क्योंकि जलालाबाद और पेशावर का सीधा फासला १०३ मील है। जलालाबाद के पश्चिम मे 'वेग्राम' है, उसकी स्थिति २ मील और जोड़ना चाहिये। इस प्रान्त की सीमा का कुछ वर्णन नहीं किया गया। लेकिन उसका परिमाण १६६ मील पूर्व से पश्चिम मे और उत्तर से दक्षिण मे १३३ मील है। संभवत: यह ठीक है। क्योंकि लम्बाई चाहे वारानदी से लेकर तोर्वला तक देखे या कुनार से तोर्वला तक देखें। वह सडक के रास्ते-से १५० मील, और सीधे रास्ते से करीब १२० मील होगी। इसी प्रकार से अगर चौड़ाई बाजार से बुनीर की पहाड़ियो के किनारे के पास से लेकर कोहाट की दक्षिणी सीमा तक सीधे रास्ते से १०० मील और सड़क से करीब १२५ मील है। इन बातो से गान्धार की सीमा को हम लोग इस प्रकार से कह सकते हैं कि पश्चिम

मे लमघान और जलालाबाद, उत्तर में स्वात और बुनीर की पहाड़ियाँ, पूर्व में सिन्धु और दक्षिण मे कालबाघ की पहाड़ी है। इन सीमाओं के अन्दर प्राचीन भारत के बहुत से प्रसिद्ध स्थान है जो न केवल सिकन्दर के इतिहास मे ही, किन्तु कनिष्क-कालिक बौद्ध इतिहास में भी प्रसिद्ध है।''

''गान्डारीदेश के नगर जिनको कि टालेमी ने लिखा है, वे ये है—नौलीब, इम्बोलिमा और इसकी राजधानी जो प्रोक्लैश कहलाती है। ये सब कोफेस के उत्तर मे हैं। इसी प्रकार से ओरा, बजारिया एवं ओर्नोस भी है। पेशावर अकेला कोफेस के दक्षिण मे है। मैं नौलीब और ओरा का कुछ हाल नहीं कह सकता। 'नौलीब' संभवत. 'नीलाब' है। यह एक प्रसिद्ध नगर है। सभवतः इसका नाम सिन्धुनदी से पड़ा है।''

कनिगहम ए० जा० पृ० ५६ ''पुष्कलावती या पिडके लोटस। गान्धार की प्राचीन राजधानी पुष्कर की बसाई हुई पुष्कलावती थी। इसका यूनानी नाम 'पिडके लोटस' या 'पिउको-लेटस' जो पाली का 'पुक्कलौती' का एक रूप है।...स्ट्रबो और एरियन इसको सिन्धु के समीप बतलाते हैं; लेकिन संस्कृत की 'पुष्कलावती' है। एरियन इसको 'पिउकेलस' और निवासियों को 'पिउकेली' कहते है। यह केवल पाली के 'पुक्कल' का एक रूप है। टालेमी का 'प्रोक्ले' हिन्दी के पोखर को उसी प्रकार रखने का एक प्रयत्न है।''

''एरियन के अनुसार यह एक बड़ा नगर है। सिन्धु के निकट है। यह एस्टेस या हस्ति नामक एक शासक की राजधानी थी। टालेमी इसका स्थान ठीक प्रकार से लिखते हैं। उनके अनुसार

यह स्थान सुयाम्टीन या पंजकोरा या स्वात के पूर्व तट पर है। पेशावर से यह १७ मील है। बीच मे एक बड़ी नदी है। नदी संभवतः कोफेस या काबुल होगी। इस वृत्तान्त और दूरी से मालूम होता है कि बीच में परंग और चारसाद है। ये हश्त-नगर के भाग हैं या आठ नगर हैं। यह हश्तनगर स्वातनदी के पूर्व तट पर है। ये नगर टांगी, शिर्पो, उम्रजई, तुरंगजई, उसमानगजाई, राजुर, चारसाद और परङ्ग हैं। ये पन्द्रह मील तक फैले हैं। अंतिम दो नगर नदी के मोड़ मे है। सम्भवत. एक बड़े नगर के भाग रहे होंगे। हिसार का किला पुराने किले के खँड़हरों मे राजुर के सामने है। यह नगर हश्तनगर की अपेक्षा हस्तिनगर हो सकता है। प्रारम्भ मे यह नगर राजा के नाम से बसाया गया होगा। किन्तु आगे चलकर लोगों ने उसे हश्तनगर कर डाला। इसी तरह से मेरी समझ मे नगरहार का प्राचीन नाम नगनिहार रहा होगा।"

(६) जा० ग्रा० डि० पृ० १६३ "पुष्कलावती या 'पुष्करावती' गान्धारों की राजधानी है, जिसे रामचन्द्र के भाई भरत ने अपने पुष्कल नामक लड़के के नाम से बसाया था और वह वहाँ का राजा बनाया गया था (रामा० उत्तरकाण्ड अ० १०१-११४, लासन जे० ए० एस्० बी० ८४० पृ० ४७६)। सिकन्दर महान् ने इसको आस्टेस (हस्ति) से छीन लिया था और उसके स्थान पर संजोएस् (संजय) को बैठाया था। संभवतः यह अष्टनगर या हश्तनगर (चारसद्दह) था, जो पेशावर से १८ मील उत्तर था और लाण्डी (स्वात और पंज-कोरा नदियों के संगम से बनी) काबुलनदी के संगम पर था,

जो कि पेशावर के जिले मे है। यह यूनानियो का 'पिउकेलोटस' सिन्धुनदी पर अवस्थित था और काबुलनदी से १५ मील दूर उत्तर-पूर्व की ओर था ('गांधार' देखिये)। पुष्कलावती या पुष्करावती का पुराना नाम उत्पलावती (उत्तरापथ) मे था, जहाँ पर बुद्ध ने अपने पूर्वजन्म के ब्रह्मप्रभा साधुरूप मे अपने शरीर को भूखी बाघिन को दिया था, जो अपने तुरंत उत्पन्न हुए बच्चो को खाने जा रही थी (दिव्यावदानमाला डाक्टर आर० मिस्टर की संस्कृत बुद्धिस्ट लिट्रेचर आफ नेपाल मे से पृ० ३१६)।"

(७) भारतीय इतिहास की रूपरेखा १।२०१ 'भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर थे। इन दोनो ने गन्धारदेश जीता और तक्षशिला और पुष्करावती नगरियाँ बसाई। उनकी सन्तान आगे चलकर गान्धार द्रुह्यु लोगों मे मिल गई।"

वस्तुतः यह एक[1] देश है और सिन्धुनद के दोनो पार्श्वों मे

---

(१) स्कन्द० प्रभा० ख० प्रभा० माहा० १३६।२३ यह एक देश है और यहाँ क्षोभणादित्य नाम के सूर्य है। वायु० पू० ४५।११६ यह देश भारतवर्ष के उत्तर मे है। ४७।४५ यहाँ सिन्धुनदी है। ३१।१० यह गान्धार विषय भी कहा जाता है और गान्धारराजा के नाम से प्रसिद्ध है। पद्म० आ० ६।४८ यह देश भारतवर्ष मे है। ब्रह्म० १३।१५६ यह देश है। इसमे बहुत सुन्दर घोडे पैदा होते है। २७।४५ यह देश उत्तर में है। ब्रह्माण्ड० पू० अ० १६।४७ यह देश उत्तरी है। १८।४७ इसमे सिन्धु-नदी बहती है। ब्रह्मा० म० उपो० ७४।१० यह देश बड़ा है और इसके घोडे अच्छे होते है। मत्स्य० ४८।७ यह देश बडा है और इस देश के आरट्टज (आरट्ट देश के) घोडे अच्छे होते है। ११४।४१ यह देश

बसा है। इसका नाम गन्धर्वदेश भी है। वाल्मी०[1] में इसका विजय भरत ने किया है और इसकी दो राजधानियाँ अपने पुत्र तक्ष और पुष्कल के नाम पर स्थापित कीं। 'तक्ष' की राजधानी 'तक्षशिला' बनी और 'पुष्कल' की 'पुष्कलावती'। ये दोनों सिन्धु के भिन्न-भिन्न पार्श्वों में थीं। रघुवंश[2] मे कालिदास ने इसे सिन्धु ही माना है। छान्दोग्य उपनिषद्[3] में इसका

उत्तर मे है। १२१।४६ इसमे सिन्धुनदी बहती है। वामन० १३।३८ यह देश कुमारद्वीप मे उत्तरी है। मार्कण्डे० ५४।३६ यह देश उत्तरी है और भारत मे है। ५५।४६ यह देश पूर्वमुख कूर्म की बाई कुक्षि मे है। गरुड० पू० ५५।१७ यह देश उत्तरी है और भारत मे है। देवीभा० ४। २२।४० यह देश भारत मे है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।५३ (म) ६।५२॥, अग्नि० २७७।३ यह देश है। गर्गसंहिता वि० ३।२० यह देश है और यहाँ के घोड़े अच्छे होते है। बृहत्स० १६।२५ तथा १४।२८ यह देश उत्तर मे है। विष्णुधर्मोत्तर० १।६।६ यह देश उत्तरी है और भारत में है। राजतरङ्गिणी १।६ यह देश है। इसकी राजधानी सिन्धु के तट पर है। और कश्मीर की राजधानी से बहुत दूर नही है। महाभा० हरिवं० वि० ३४।२० यहाँ का राजा जरासन्ध के साथ मथुरा लडने को गया था। महाभा० आदि सम्भ० (म०) १२४।२६॥ यह देश है। महाभा० शान्ति० (चि० नि०) १०।५ यहाँ के पुरुष बलिष्ठ एवं निडर होते है और नखर एवं प्रास अस्त्रों से लड़ते है। काशिका और पदमजरी के सूत्र 'सिन्धु तक्ष०' ४।३।६३ मे 'गन्धार' ऐसा पाठ है।

(१) उत्तरकाण्ड १००।११ से प्रारम्भ। यहाँ इसका नाम 'गन्धर्वदेश' लिखा है।

(२) १५।८७।८६

(३) ६।१४।१।२

नाम देश रूप में आया है। महाभारत[1] मे यहाँ के राजा शकुनि को पर्वतीय राजा माना है। इससे महाभारत के समय में इसकी राजधानी पहाड़ पर थी, ऐसा प्रतीत होता है।

मैने कनिङ्घम का विचार पढ़ा। परंच मैं पूर्णरूप से उससे सहमत नहीं हूँ। क्योकि महर्षि वाल्मीकि ने गन्धर्वदेश को सिंधु के दोनों तटो पर माना है। इससे सिन्धुनदी इस देश की पूर्वी सीमा नहीं हो सकती। तक्षशिला जो तक्ष की राजधानी है, वह भी गान्धार मे ही है। अतः तक्षशिला से पूर्व कहीं पर इस देश की पूर्वी सीमा माननी होगी। चीनी यात्रियों के बल पर सीमा का या दिशा का अथवा दूरी का निर्णय करना एक नींव-रहित दीवाल का बनाना है। चीन के यात्री, जो भाषा भी नहीं समझते थे, अपनी यात्रा के समस्त स्थानो की परस्पर दूरी, देशो की सीमा, रहन-सहन, सभ्यता, वेषभूषा, पैदावार इत्यादि कैसे जान सकते है ? ह्वेनसांग[2] का गगा के पानी को काला लिखना, सकिशा से कन्नौज को उत्तर-पश्चिम[3] लिखना (जो कि उत्तर-पूर्व है), कन्नौज की राजधानी[4] के पश्चिम गंगा को बतलाना (जो कि उत्तर मे है), कन्नौज का कुसुमपुर नाम लिखना (जो कि पटना का है), साथ ही; फाहियान का कौशाम्बी[5] को काशी

(१) महाभा० उद्यो० (सु०) ३०।२७, (चि०) ३०।२८।

(२) ह्वेनसांग का भारतभ्रमण अ० ४ पृ० १६१। इसका मि० वील ने 'नीला' अर्थ किया है। मि० वाटर 'गॅदला' अर्थ कर रहे है।

(३) वही पुस्तक अ० ४ पृ० २११।

(४) ,, ,, ५ पृ० २१२।

(५) ,, ,, ५ पृ० २१३।

से उत्तर लिखना इन लोगों के भौगोलिक ज्ञान की साक्षी दे रहा है कि उसकी कितनी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। टालेमी के लेख से कुभा (काबुल) नदी के पार तक इस देश का विस्तार था, यह सत्य माना जा सकता है। पुष्करावती कहाँ पर थी, इसका निश्चय भी जो हुआ है—वह भी संदिग्ध है। एरियन पुष्कलावती को सिन्धु के समीप मानता है, यह भी ठीक मालूम होता है। परंच स्वातनदी के तट पर 'चारसद्दा' को 'पुष्कलावती' मानना एकदम प्रमाण-रहित है। 'हस्तनगर' वस्तुतः 'हश्तनगर' है। 'हस्तिनगर' मानने मे कोई भी प्रमाण नही। 'हश्त' का अर्थ पारसी मे 'आठ' होता है। संभवतः पश्तो मे भी 'आठ' ही अर्थ है। इस नगर मे 'आठ नगरों' का समुदाय होने से इसका नाम 'हश्तनगर' पड़ा। जिनको कनिगहम भी भाग मान रहे हैं। इनमे एक का नाम राजुर है, जो राजपुर का अपभ्रंश है और महाभारत मे कंबोजनगर की राजधानी मानी गयी है। इससे हश्तनगर के कम्बोज मे होने से उसका भाग पुष्कलावती नहीं हो सकता। इन भागों से भिन्न स्थान पर पुष्कलावती हो सकती है। 'कुभा' सिन्धुसंगम के समीप के उत्तरी भाग गन्धार में कहीं 'पुष्कलावती' होगी। छान्दोग्य उपनिषद् मे काशी से और मिथिला से गान्धार जानेवाले रास्ते का नाम भी नहीं है। योरोपियन विद्वान् वक्ता से दूर या समीप का अनुमान करते हैं। परन्तु अन्य लोग काशी और मिथिला से गन्धार जाने की बात सुनते हैं। क्या न चलते हुए मार्ग मे गाँव से गाँव पूछता हुआ कोई नहीं जा सकता? प्रत्युत चलते मार्ग मे पूछने की आवश्यकता नहीं होती। छान्दोग्य का संदर्भ वक्ता के समीप या

दूर 'गान्धार' के बोध कराने के लिये नहीं प्रवृत्त हुआ है। उसका अर्थ यह है कि 'जैसे डाकू लोग किसी को गन्धारदेश से आँख पर पट्टी बाँधकर घोर जंगल मे पकड़ ले जायँ और वहाँ छोड़ दे। आँख-बँधा हुआ वह पुरुष वहाँ चिल्लाये और कोई दयालु उसकी पट्टी खोलकर यह कह दे कि इधर गन्धार है, चले जाओ, तो वह उसकी बात स्मरण रखता हुआ गाँव से गाँव मे जाता हुआ गन्धारदेश मे पहुँच जाता है। उसी प्रकार अज्ञान से अन्धा पुरुष जब अच्छे गुरु को प्राप्त कर लेता है तो गुरु उसका अज्ञान दूरकर ब्रह्मप्राप्ति का जो मार्ग है, उसे बत लाता है। उससे ज्ञानवान् हो पुरुष धीरे-धीरे ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।' इसमे वक्ता और गान्धार से कोई सम्बन्ध नहीं है। वक्ता से दूर और समीप कहनेवाले दोनों ने ही उपनिषद् के अर्थ पर ध्यान नहीं दिया। यह देश पुराणों में भी वर्णित है। 'गन्धार' और 'गान्धार' दोनों पाठ मिलते हैं।

'भारतीय इतिहास की रूप रेखा' का कथन ठीक नहीं। वाल्मीकि रामायण में तो भरत ने गन्धार को जीता और नगरियाँ बसाईं। द्रुह्यु राजा चन्द्रवशी था। भरत सूर्यवंशी हैं। ये लोग द्रुह्यु की सन्तान में मिल गये, इसमे कोई प्रमाण नहीं है और न चन्द्रवंशी सूर्यवंशी हो सकते हैं। द्रुह्यु के गान्धार क्षत्रिय होने में भी कोई प्रमाण नहीं है।

'ओर्नोस' पर विचार—(१) कनिंगहम ए० जा० पृ० ६७—'ओर्नोस'। "सिन्धुनदी के पश्चिम के देशों का वर्णन करते समय यह मेरा कर्तव्य है कि मैं 'ओर्नोस' के बारे मे भी कुछ लिखूँ। सन् १८३६ ई० मे जनरल कार्ट लिखते है कि

ओर्नोस संभवतः एक किला है और अटक से दूसरी दिशा में है। उसको हम लोग एक पर्वत के ऊपर देखते है। कहा जाता है कि राजा होडी ने इसे बसाया होगा। सन् १८४८ ई० मे मैने कहा था कि रानीघाट का बड़ा दुर्ग जो नोग्राम के छोटे से गाँव के ठीक ऊपर स्थित है, और जो ओहिन्ड से करीब १६ मील उत्तर-पश्चिम है, ओहिन्ड के स्ट्रैवो एरियन डायोडोरस द्वारा किए गए वर्णनों से बिल्कुल ठीक-ठीक मिल जाता है। केवल उँचाई नहीं मिलती। इसकी उँचाई १००० फीट है और इतनी उँचाई एक किले के लिये बहुत ज्यादा है। १८५४ ई० मे जनरल जे० एम० अबोर के अनुसार महावन की पहाड़ी संभवतः ओर्नोस के स्थान पर है। १८६३ ई० मे लोवेन्थाल ने इस मत का विरोध किया। उन्होने यह बात फिर स्थापित की कि यह राजा होडी का किला है और अटक के दूसरी तरफ है। मेरी समझ मे ओर्नोस एक यूनानी शब्द है, किन्तु यह किसी देशी शब्द का अनुवाद रहा होगा। लोवेन्थाल के अनुसार यह सस्कृत के वाराणसी के अपभ्रंश बनारस शब्द से बना है। सम्भवतः यूनानी लोग बिना एक स्वर लगाये उसका उच्चारण ठीक प्रकार से नहीं कर सकते थे। इस कारण उसको 'अबारानस' कर दिया और इस प्रकार यह आसानी से 'ओर्नोस' हो गया। यदि बनारस या वाराणसी इसका आदि नाम था तो हम लोगों को एरियन के अनुसार काकेशश के उत्तर मे एक दूसरे वाराणसी (बनारस) को ढूंढ़ना पड़ेगा। एरियन के अनुसार सिकन्दर द्रप्सक या अन्द्राव को पार करके ओर्नोस और वक्त्र की ओर गया। यह दोनों बैक्ट्रियन्स के प्रसिद्ध

नगर हैं। जब ये दोनो नगर जीत लिये गये तब सिकन्दर ने ओर्नोस का घेरा डाल दिया। टालेमी के नक्शा को देखने से यह मालूम पड़ता है कि उसके (एरियन के) वक्त्र और ओर्नोस एक ही है। और टालेमी के जरिआस्पा और वक्त्ररेगिया एक ही हैं। दूसरा नाम यानी वक्त्ररेगिया वर्नीदेश मे लिखा है। इससे मेरी समझ मे 'ओर्नोस' 'वर्नोस' का थोड़ा-सा बदला हुआ रूप है। यूनानियों ने इसको केवल यूनानी रूप देने के लिये ही ऐसा कर डाला होगा। इसी प्रकार मैं दूसरे को राजा वर से सम्बन्ध रखनेवाला समझता हूँ। राजा वर का नाम हश्तनगर और ओहिन्द के बीच के सभी टूटे-फूटे किलो से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार पुराना पहाड़, किला और तख्ते-बहाई का शहर जो हश्तनगर से १५ मील उत्तर-पूर्व मे है, राजा वर के रहने का स्थान था। लेकिन उसका नाम रानीघाट के पहाड़ी किले से जो नोग्राम के ऊपर है, विशेष प्रकार से सम्बन्ध रखता है। रानीघाट या रानी की पहाड़ी किले के उत्तरी ओर एक छोटी सी पहाड़ी है। कहा जाता है कि राजा वर की रानी इस पहाड़ी पर आकर बैठा करती थी। यह किला राजा वर का किला कहा जाता था और किले के नीचे पहाड़ी पर के कुछ खँडहर राजा वर के अस्तबल कहे जाते है। कुछ लोग इसको राजा विराट भी कहते है। वे लोग पाँच पाण्डवो की कहानी के साथ सम्बन्ध बतलाते है। हमारी समझ मे कहानी को रुचिकर बनाने के लिये नाम बदल दिया गया। विराट की असली स्थिति मत्स्य या माचेरी मे थी, दिल्ली के दक्षिण मे। और सब बाते गलत हैं। मेरी समझ मे यह

ओर्नोस का किला राजा वर का किला है। रानीघाट का टूटा-फूटा किला सिकन्दर का ओर्नोस है। जनरल एबट की महावन की पहाड़ी या राजा होडी का किला जैसा कि जनरल कोर्ट और मिस्टर लावेन्थल कहते है, मैं इसको महावन का प्रतिनिधि निम्नलिखित कारणो से नहीं मानता हूँ:—

(१) यह एक बड़ा पर्वत है और इसपर बहुत आसानी से चढ़ा जा सकता है तथा सिन्धुनदी की ओर बिल्कुल ढालू नहीं है।

(२) महावन परिधि मे ५० मील से कम नहीं होगा। किन्तु ओर्नोस एरियन के अनुसार २२ मील और डाय.डोरस के अनुसार ११ मील ही है। महावन को ह्वेनसाँग ने ६३० ए० डी० मे देखा है और इसे सिर्फ एक बड़ा पहाड़ कहा है, जो महावन विहार से लिया गया है। जिसमे बुद्ध पहले जन्म मे सर्वदराज के नाम से रहते थे। विहार पर्वत की चोटी पर था। हम छोटे छोटे कथनो से जानते है कि वह पहाड़ से ३० या ४० ली की दूरी पर मसुरा-विहार से उत्तर पश्चिम की ओर था।"

"मेरी समझ मे यह स्थान और चुम्लाघाटी का सुरा नाम का गाँव एक ही है। यह स्थान महावन की सबसे ऊँची घाटी से १० मील दूर है। यदि कोई किला पहाड़ की चोटी पर स्थित होता तो यह निश्चय है कि यात्री उसके नाम को अवश्य बतलाता, जैसा कि उसके वर्णन मे शकल और खास स्थानो के नाम आये है। उसका बिल्कुल चुप रहना महावन की चोटी पर किले के विषय मे सन्देह डाल देता है। लोवेन्थाल की इन्कायरी सैनिक प्रमाणो से है। वह यह कहते है कि महावन की

पहाड़ी तुच्छ मालूम पड़ती है। इस बात से केवल यह बात स्पष्ट होती है कि एक पढ़ा लिखा आदमी कैसे एक गलत, किन्तु अपने पक्ष की युक्ति मानने के लिए तैयार हो जाता है। जनरल एवट ने इसका उत्तर दिया और उनके उत्तर छपने के कुछ साल पहले मैंने भी इसपर प्रकाश डाला। मैंने उत्तर दिया कि इस पर्वत पर करीब-करीब वे ही सब बाते मिलती है, जो एक विजित देश के लोग चाहते हैं। इस पर्वत पर उन लोगों की रक्षा हो सकती है, जो लोग इसपर शरण लेने के लिये जाते है। यह स्थान बिल्कुल रास्ते के बाहर है और ऐसे स्थान पर है जहाँ पर कोई छिपने के लिये नहीं जायगा। और न सिकन्दर ऐसे स्थान पर अपने समय को नष्ट करने जायगा। इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि सिकन्दर का मुख्य ध्येय सिन्धु का मार्ग था। सिकन्दर के चरित्रो से यह मालूम पड़ता है कि वह दुश्मन को कभी भी न आगे और न तो पीछे ही रखना चाहता था। इसी कारण से ऐरिया, ड्रेन्जि-याना और अराकोशिया को जीतने के लिये उसने वेसस का पीछा करना छोड़ दिया था, और इसी कारण से स्पिटेमीन्स की मृत्यु तक २ वर्ष उसने सोग्डियाना और वैक्ट्रियाना मे व्यतीत किये थे और किसी भी दुश्मन को जीवित नहीं छोड़ा। इसी कारण से उसने सिन्धु का रास्ता छोड़ दिया और उन लोगो का, जो लोग ओर्नोस के किले मे भागकर छिप गये थे और सिकन्दर की अधीनता नहीं स्वीकार करते थे, पीछा किया। इसी से उसने हाइड्रोटस को फिर से पार किया और एक जंगली अकेली सांगल नाम की पहाड़ी पर आक्रमण

किया। लोवेन्थाल अपनी युक्तियो से सिद्ध करते है कि राजा होडी का किला सिकन्दर का ओर्नोस है। विशेष करके यह एकता वर्ण-साहश्य ही पर है। और उन्होने अपनी युक्तियो मे चैम्बरलेन का यह विचार स्वीकृत किया है कि "खैराबाद की ऊपर की पहाड़ी दुश्मन और दोस्त दोनो के लिये बहुत जटिल-सी है और यह एक ऐसे स्थान पर है जिसका सिन्धु के अटक के मार्ग को लेने के पहले लेना आवश्यक है। दूसरी युक्तियो के लिये दो बाते जैसी की तैसी ग्रहण करनी पड़ेगी। पहली बात यह है कि सिकन्दर ने सिन्धुनदी को अटक के पास पार किया। और इस कारण से राजा होडी के किले को जीतकर अपने मार्ग को निश्चित बना लिया होगा। फिर इस देश के लोगो ने ओर्नोस मे अपनी रक्षा के लिये प्रवेश किया होगा।" किन्तु ऐसा नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि एरियन के अनुसार बजारिया के लोग भागकर के ओर्नोस नामक पहाड़ी पर रक्षा के लिये चले गये। यहाँ पर हम लोग स्पष्टरूप से देखते है कि बजारिया के लोग सिकन्दर के आक्रमण को रोकना नहीं चाहते थे; किन्तु उससे हट जाना चाहते थे। इससे हम लोग यह बात निकाल सकते है कि ओर्नोस उस रास्ते पर नहीं स्थित था, जिसको सिकन्दर ने नावो के पुल पर जाने के लिये चुना था। लेकिन सब वृत्तान्त यह कहते है कि सिकन्दर का आक्रमण कोफेस या काबुलनदी के उत्तर के देश मे सिन्धु-नदी को पार करने के पहले ही हुआ होगा। और यह बात तो निश्चित-सी है कि न तो ओर्नोस और न नावो का पुल अटक के पास होगा। इन्हीं सब बातो से मै यह समझता हूँ कि राजा

होडी का टूटा फूटा किला सिकन्दर के ओर्नोस से एक नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह उसका नाम ही एकता मिटाने के लिये पर्याप्त है। क्योंकि लोग इस स्थान को 'राजा होडोडा गढ़ी' या 'होड़ीगढ़ी' कहते हैं। इस नाम मे 'ओर्नोस' से एक भी अक्षर मिलता हुआ नहीं है।"

"इन सब बातो का पूर्णरूप से विचार करने से यह पता चलता है कि ओर्नोस यूसुफजाईदेश के पूर्व के कोने मे है। इसी स्थान पर लोग अब भी आक्रमण के समय जाकर छिप जाते हैं। इसी स्थान पर वह दुर्ग है जिसका सिकन्दर के इतिहास लिखनेवालो ने खूब बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया है। सिकन्दर के इतिहासकार बहुधा असंबद्ध और परस्पर विरुद्ध लेख लिखते है। लेकिन हम उनके लेखो को शुद्ध कर सकते है और समझा भी सकते है। जहाँ पर वे एक दूसरे से मिलते हैं उनको हम विश्वास के साथ मानते हैं, जैसा कि सिकन्दर के ओर्नोस पहुँचने के पूर्व का वृत्तान्त। एरियन कहते है कि सिकन्दर गुरअस-नदी को पार करके फौरन अस्साकेनी की राजधानी मैस्सागा को गया और उसको विजय करके उसने कोइनस को बजारिया भेजा। कर्शियस कहते है कि सिकन्दर ने चइसनदी को पार किया, और कोइनस को बजारिया की ओर भेजा तथा स्वयं सेना लेकर मैजागे की ओर बढ़ा। एरियन कहते है कि बजारिया के बाद सिकन्दर दूसरी ओर जानेवाला था, किन्तु हिन्दुस्तानी सिपाहियो का ओरा की ओर भागना सुनकर वह ओरा की ओर चढ़ गया और उसको एक ही धावे मे जीत लिया। कर्शियस के अनुसार सिकन्दर ने ओरा का घेरा पोलिसवर्शन

के सिपुर्द कर दिया था और स्वय छोटे छोटे गाँवो को ले लिया, जिनके निवासी ओर्नोस मे भाग गये थे। एरियन कहते है कि बजारिया के लोग ओर्नोस मे रक्षा के लिये भाग गये थे। इन सब बातो से पता चलता है कि ओर्नोस बजारिया के पार था। कर्शियस और एरियन के लेखो से पता चलता है कि इम्बोलिमा सिन्धुनदी के तट के ऊपर है और ओर्नोस के पार है। टालेमी उसको उसी स्थान पर बतलाते है। इन बातो पर विचार करते हुए मै विश्वास करता हूँ कि बजारिया, ओर्नोस और इम्बोलिमा—बाजार, रानीघाट और ओहिन्ड से एक किये जा सकते है। बाजार यह एक बड़ा गाँव है और काल्पन या कालीपानी-नदी के ऊपर बसा हुआ रुस्तमनगर के, जो एक बहुत बड़े मिट्टी के ढेर के ऊपर बसा है, निकट है। यह मिट्टी का ढेर काफिर या हिन्दुओ के समय का है। लोकोक्ति के अनुसार इसी स्थान पर बाजार का पुराना नगर था। यह एक आवश्यक स्थान है तथा सिन्धु और स्वातनदियो के आधे रास्ते पर है। यह पुराने समय से काबुल और स्वात नदियो के प्रसिद्ध नगरो का व्यापारिक केन्द्र है। इसके नाम 'बाजार' ही से मालूम होता है कि यह निःसन्देह एक आवश्यक स्थान और 'बजारिया' से वर्णों मे भी मिलता है।"

"रानीघाट के किले के टूटे फूटे खण्डहर सम्भवतः ओर्नोस ही के स्थान पर हैं। सन् १८४८ ई० में मैने रानीघाट की ऊँचाई का अन्दाज किया और उसको मैदान से १००० फीट ऊँचा पाया। मेरे इस अन्दाज को लेवेन्थाल ने भी सही बतलाया। एरियन, फिलोस्ट्रेटस और डायोडोरस इसी ऊँचाई

को क्रमशः ६६७४ फीट १५ स्टैडिया, ९१०८ फीट १६ स्टैडिया और ९७०८ फीट लिखते है। डायोडोरस के अनुसार इसके नीचे के भाग की परिधि केवल १०० स्टैडिया होगी। इस भाग की परिधि एरियन ने डायोडोरस से आधी ही लिखी है। मेरी समझ मे ऊँचाई भी इसी परिमाण मे होगी जिसको हम १६ के बजाय ६ पढ़ने से प्राप्त करेगे। यह निश्चित है कि डायोडोरस की एक संख्या अवश्य ही गलत है। क्योंकि १०० स्टैडिया या ६०६७५ की परिधि से नीचे भाग का व्यास १९२०० फीट या ऊँचाई ९७०८ से दूनी होगी। जब कि इन दो प्रमाणिक लेखको मे इतना अधिक अन्तर, इतनी अधिक अतिशयोक्ति है तब हम लोग किसी भी बात को निश्चित ही नहीं कर सकते।"

"ग्वालियर के दुर्ग के विषय मे भी इसी प्रकार बड़ा गड़बड़ है। विलियम फिन्च के अनुसार यह परिधि मे ६ कोश, और दूसरों के अनुसार ११ कोश है। ओर्नोस के बारे मे ऐसा मालूम होता है कि यूनानियो ने इसका इतना विस्तृत और असंबद्ध वर्णन केवल अपनी बहादुरी के लिये किया होगा। मेरी समझ मे इस पर्वत का तिरछा भाग २३०० फीट, नीचे का भाग १९०० फीट और सीधी ऊँचाई १२५० फीट होगी। ओर्नोस के जितने वृत्तान्त मिले है, सब उसे एक ऊँची ढालू पहाड़ी मानते है। डायडोरस, स्ट्रैबो, एरियन, कर्शियस और फिलोस्ट्रेटस सब उसे पहाड़ी किला कहते हैं। उसका पर्वतीपन एक विशेष प्रकार का रहा होगा। एरियन के अनुसार वह पहाड़ी साधारण प्रकार से नहीं चढ़ी जा सकती थी। उसकी

चोटी पर बहुत सुन्दर जल की एक छोटी सी नदी है । उसकी चोटी एक हजार आदमियों के खेती करने के लिये पर्याप्त भूमि का अर्थ एक करोड़ स्कायर फीट होगा; यानी ४००० फीट लम्बी और २५०० फीट चौड़ी । यदि यह दुर्ग इतना बड़ा होता तो जनरल कोर्ट और एवट अपनी इन प्रान्तों की खोज मे इसको नही छोड़ जाते । मेरी समझ मे यह एक और अतिशयोक्ति है ।"

"अब यह देखना चाहिये कि इसके कौन-कौन से स्थान, जिन्हें योरोपनिवासियों ने देखा है, एक समान हो सकते है । महावन पर हम लोग शास्त्रार्थ कर चुके है । अब, (१) तख्तयेबहाई के खंडहर, (२) कारमार की ऊँची पहाड़ी, (३) पंजपीर की पहाड़ी और (४) रानीघाट का भग्न दुर्ग देखेगे । इनमे से पहला जगह "तख्तयेबहाई" एक अकेली पहाड़ी पर बाजार और हश्तनगर के बीच आधे रास्ते मे स्थित है । लेवेन्थाल इसका वर्णन करते है कि यह एक उजाड़ पहाड़ी है । और कहते है कि बिल्कुल ऊँची नहीं है और चतुष्कोण को तीन भुजाओ को बनाता है और उत्तर पश्चिम खुला है । तख्तयेबहाई समुद्र से केवल १८५९ फीट और यूसुफजाई मैदान से ६५० फीट ऊँची है । यह सिन्धु से ३५ मील है और इस पर चढ़ना बहुत ही आसान है । लेकिन इसको हम अस्वीकार कर सकते है; क्योंकि इम्बोलिमा के स्थान से बहुत दूर है । "कारमार की पहाड़ी" का स्थान बाजार से ६ मील दक्षिण है और ओहिन्ड से उत्तर पश्चिम १८ मील है । समुद्र से ३४८० फीट और यूसुफजाई मैदान से २२८० फीट ऊँची है । लेकिन

न तो उसपर कोई खँडहर है और न तो कोई इसके बारे में लोकोक्ति है। "पंजपीर" भी इसी प्रकार की है; लेकिन कुछ छोटी है। यह समुद्र से २१४० फीट ऊँची है। इसके ऊपर इमारत है और उसका सम्बन्ध पंजपीर (मुसलमानों के पाँच साधुओं) से है। इनमें से सबसे पुराने बहाउद्दीन जकरिया मुलतानवाले हैं। इनका प्रसिद्ध नाम बहावलहक है। लेकिन हिन्दू कहते हैं कि यह स्थान पंचपाण्डु का है। पाण्डु से इनका तात्पर्य महाभारत के पाण्डवों से है। "रानीघाट" एक पहाड़ी के ऊपर और ठीक नोग्राम के गाँव के ऊपर स्थित है। नोग्राम, बाजार के दक्षिण-पूर्व १२ मील और ओहिन्ड से १६ मील उत्तर है। यह एक ऐसे स्थान पर है, जहाँ पर यह और ओर्नोस बहुत आसानी से एक किया जा सकता है। यह महावन की पहाड़ी का एक सिलसिलेदार सिरा है। इस पहाड़ी के नीचे का भाग उत्तर से दक्षिण २ मील से अधिक लम्बा है और करीब आध मील के चौड़ा है। लेकिन पहाड़ी का शिखर लम्बाई में १२०० फीट होगा और चौड़ाई में ८०० फीट होगा। सन् १८४८ ई० में मैंने इसकी उँचाई का अन्दाज किया और मैंने उसको १००० फीट पाया। लोगों का कहना है कि यह पंजपीर से ऊँची है और मेरी समझ में वह १२०० फीट से कम नहीं होगी। इस पहाड़ी की दोनों तरफें बड़े-बड़े पत्थरों से ढकी हुई हैं। इसकी चोटी तक जाने के लिये पहाड़ काटकर एक ही रास्ता बनाया गया है। एक ही ओर रास्ता है। यह रास्ता बहुत कठिन है। ओर्नोस का भी यही हाल है। टालेमी इसकी चोटी पर एक कठिन मार्ग से गया था और

सिकन्दर इस पर्वत पर एक सरल मार्ग से गया था। रानीघाट पर एक किले का वर्णन है। यह किला ५०० फीट लम्बा और ४०० फीट चौड़ा है। यह तीन तरफ पश्चिम, उत्तर और दक्षिण मे पहाड़ी ढालो से ढका हुआ है, जो महावन की नीची पहाड़ी से निकलती है। किले का पहाड़ चारो ओर से कटा हुआ है। दो ओर दो खण्डो से अलग किया गया है, जो उत्तर की ओर १०० फीट गहरा है और पश्चिम की ओर ५० से १५० फीट तक गहरा है। किले के पश्चिम-उत्तर के कोने मे एक पानी का तालाब है, जिसमे पानी इकट्ठा रहता है। किला और रानीघाट के बीच मे तीन चौकोर कुएँ है। लोवेन्थाल लिखते है कि इस पहाड़ी की चोटी पर एक पठार है और इस पर चारो तरफ इमारते बनी है। इमारते पत्थर की बहुत सुंदर बनी हुई है। ये इमारते सिन्धु के पार की हिन्दू-इमारतो से बहुत-कुछ मिलती है। इस समय ये इमारते टूटी-फूटी अवस्था मे है। किन्तु चौहद्दी की इमारते इस समय भी किसी न-किसी रूप मे स्थित है। प्रधान दरवाजा जो दक्षिण की ओर है, वह प्रचीन ढग का बना हुआ देख पड़ता है। रास्ता ठीक ऊपर को नहीं है, किन्तु कुछ दक्षिण की ओर झुका हुआ है। फिर वह बाईं ओर घूमकर सहन में पहुँच जाता है। पहले यह पूरा स्थान पटा हुआ था और उसपर महराबे बनी हुई थीं। बीच का भाग या दुर्ग मेरी समझ मे राजा का निवासस्थान रहा होगा। उत्तर की ओर कुछ सीढ़ियाँ-सी उतरी थीं। ये सीढ़ियाँ नीचेवाले पहाड़ी भाग की ओर जाती थीं, जो मेरी समझ मे दूसरा सहन था। ऊपरवाला सहन २७० फीट लम्बा १००

फीट चौड़ा है। दूसरा सहन करीब आधे पैमाने का है। इसमें बुद्ध और दूसरे देवताओ के चित्र तथा एक पीपल के नीचे 'माया' के दर्शन होते है। यहाँ पर और भी बहुत से ऐसे चित्र है जिनका कि धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब चित्र एक काली-नीली स्लेट मे लिखे हुए है। इन सब मे सर्वोत्तम बुद्ध का एक शिर है। यह जमालगढ़ी मे मिला था।"

"मैं ऊपर यह लिख चुका हूँ कि रानीघाटी की पहाड़ी चारो तरफ से पत्थर के बड़े-बड़े ढोको से ढकी हुई है और ये ढोके साइज मे बहुत बड़े है। कहीं-कहीं चोटी पर के ढोके उखाड़ लिये गये है, उनसे बड़ी-बड़ी गुफाएँ बन गई है। इनमे से कुछ गुफाएँ सादी है और कुछ के अन्दर काम भी हैं। इनमे से सबसे सुन्दर स्थान कत्रीकार अर्थात् गल्ला के सौदागरो का घर है। मै इसकी और आर्नोस की एकता करने पर तुला हुआ नहीं हूँ। केवल इतना कहता हूँ कि रानीघाट के खण्डहरो और ओर्नोस का वर्णन बहुत कुछ मिलता है। साइज के अतिरिक्त सब बातो मे इन दोनों बातो का वर्णन पूर्णरूप से मिलता है। बाजार और ओहिन्ड के बीच मे इसके स्थान के होने मे भी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। राजावर के साथ इसके सम्बन्ध से मालूम होता है कि इसका नाम उनके नाम से पड़ गया होगा और सम्भवत. ओर्नोस भी उसी नाम का एक यूनानी रूप हो।"

"सिकन्दर की अस्सकेनस के ऊपर चढ़ाई जाड़े के दिनो मे हुई थी और सिकन्दर के साथी तक्षशिला मे वसन्तऋतु मे घुसे। इससे यह मालूम होता है कि सिकन्दर ने ओर्नोस पर घेरा घोर

जाडों में डाला होगा। ऐसी ऋतु में यूनानी लोगो ने इसका खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया होगा। इस कारण से हम लोग निश्चयपूर्वक कह सकते है कि 'रानीघाट' ही 'ओर्नोस' है।"

(२) जनरल कार्ट रानीघाट को ओर्नोस मानते है। (जा० डि०)

(३) लावेन्थाल का भी यही मत है। (जा० डि०)

(४) डा० स्टाइन पंजपीरपहाडी को ओर्नोस मानते है। (जा० डि०)

(५) कैप्टन जे० एम्० अबाट महावनपर्वत को ओर्नोस मानते हैं। (जा० डि०)

(६) भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ६१४ "मस्सग, वीरकोट और ऊडेग्राम के पतन के बाद अस्सकेन लोग सिन्धु के किनारे एक दुर्भेद्य पहाड़ी गढ़ मे घुसकर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करते थे। उस गढ़ का नाम यूनानियो ने अओर्न, अवर्ण लिखा है। और डा० स्टाइन ने उसकी ठीक स्थिति खोज निकाली है। वह सिन्धुनदी के पश्चिम पीर नामक पहाड़ पर था, जिसकी पश्चिमी ढाँग अब भी 'ऊणसार' कहलाती है। 'ऊण' 'अओर्न' के पुराने नाम का स्पष्ट रूपान्तर है। सिकन्दर पुष्करावती से सिन्धु के तट पर अम्बुलि नामक घाट पर, जिसे शायद आधुनिक अम्ब सूचित करता है, पहुँचा। किन्तु सिन्धु नदी पार करने के पहले अवर्ण को लेना आवश्यक था। इसलिये सेनापति गोलमाय को आगे भेज स्वयं पीछे उसी की तरफ बढ़ा। घोर युद्ध के बाद वह पहाड़ी गढ़ भी लिया। जीतने के बाद सिकन्दर ने शशिगुप्त को वहाँ का पति बनाया।"

(७) जा० ग्रा० डि० पृ० ९ "ओर्नोस=रानीघाट । पञ्जाब के पेशावर जिले में ओहिन्ड के उत्तर-पश्चिम १६ मील है (कनिङ्हम ऐन्शियन्ट जाग्राफी आफ इण्डिया पृ० ५८)। परन्तु कैप्टेन जेम्स अबाट के अनुसार यह महावनपर्वत के ऊपर शाहकोटे में है, जो सिन्धुनदी के पश्चिम तट पर है तथा पेशावर से करीब ७० मील उत्तर-पूर्व है । यह निश्चित है । आधुनिक खोजों ने अबाट की पहचान को सही सिद्ध किया है (स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० ६८)। शायद यह पाणिनि के 'वरण' का रूपान्तर है । अब भी एक स्थान 'वरना' नाम से कहा जाता है, जो अटक के दूसरी ओर सिन्धुनदी के पश्चिमी तट पर है (इण्डियन आण्टीक्वेरी १।२२)।"

वस्तुतः यह 'वरना' ही पाणिनि का 'वरण' नामक नगर है और इसी को सिकन्दर के साथियों ने 'ओर्नोस' के नाम से लिखा है । कनिङ्हम का 'रानीघाट' का नाम ठीक नहीं । आबाट का कहना भी ठीक नहीं है । यदि यहाँ पर कोई पहाड़ी है तो सिकन्दर के साथियों का पहाड़ पर इस नगर का विजय करना ठीक ही है । यदि नहीं है तो भी दूर से काव्य लिखते समय स्थान की कठिनाई का प्रदर्शन कर देना और उसके विजय में सिकन्दर की बहादुरी अधिक दिखलाने के लिये ही उनका यह कृत्य ठीक ही है । पर्वत उन्होंने अपनी तरफ से जोड़ दिया या जिससे सुना हो—उसने जोड़ दिया हो । दोनों बातें हो सकती हैं । परन्तु मैं इससे सन्तुष्ट नहीं हूँ । इससे अपना भी विचार प्रकट कर रहा हूँ । विद्वान् लोग इन दोनों मतों की कसौटी हैं । सिकन्दर के समकालिक पाटलिपुत्र

के राजा नन्द माने जाते है। इनके ही समय में महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। यह कथासरित्सागर से स्पष्ट है। चीनी यात्रियो ने महर्षि पाणिनि का जन्म-स्थान 'शलातुर' सिन्धुनद के समीपवर्ती प्रान्त मे ही माना है। और कनिङ्हम ने भी इसे पेशावर के प्रान्त मे स्थित लाहौर नामक ग्राम् से एक किया है। उन्हीं पाणिनि महर्षि ने अपने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ मे 'वर्णादिभ्यश्च' ४।२।८२ से 'वरण' नामक नगर की सिद्धि की है। यह शब्द पुल्लिङ्ग है, बहु-वचन मे बोला जाता है और नगर का नाम है। वरण नामक वृक्षों के अदूरभव (जो दूर मे न हो) नगर को 'वरणाः' कहते है। 'वरण' मे बहुवचन है। वह वरण वृक्षो का वन प्रतीत करता है। वरण के वृक्षो के वन के समीपी नगर का नाम 'वरणाः' है, ऐसा व्याकरण से सिद्ध होता है। यह नगर अवश्य वरण नामक वृक्षों के वन के समीप था। 'ओर्नोस' की आनुपूर्वी हमको 'वरणा' के समान प्रतीत होती है, जो उच्चारण मे असमर्थ यूनानियो द्वारा बनाई गई है। महावन हमारी समझ मे वरण वृक्षों का वन है और 'बहुत बड़ा' होने से 'महावन' कहा जाता है। उसके समीप का पर्वत भी 'महावन' कहलाया। यह नगर महावन के बाहर उसके एक तट पर था। किस दिशा मे था, यह कहा नहीं जा सकता। परंच घने वन के पास होने से आपत्ति के समय मनुष्य वन मे छिप सकते है। यह सम्भावना करके सिकन्दर के भय से भागे लोग यहाँ आ सकते हैं और आक्रमण के समय वन की शरण ले सकते है, इतना तो निर्विवाद है। इससे

'ओर्नोस' निश्चित 'वरण' नगर है। इसका वर राजा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पर्वत या भूमि पर इसके होने में कोई भी प्रमाण न होने से यह नगर दोनो स्थानों पर हो सकता है। यूनानियो के लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगर और इसका किला पहाड़ पर था। सिकन्दर के साथियो ने जब इसे पर्वत पर लिखा है तो किले के साथ नगर भी पर्वत पर ही होना चाहिये। परंच उनका वर्णन उस प्रान्त के किसी भी पहाड़ पर सम्भव नहीं है। इससे हम नगर को नीचे और किले को पहाड़ पर मानते है। कनिङ्गहम सिकन्दर के साथियो के लेखो को परस्पर विरुद्ध और असंबद्ध मानते है, जो सिकन्दर की विजययात्रा के साथ उनके न होने मे स्पष्ट गवाही दे रहा है। और उनकी कौन सी बात सत्य और कौन सी असत्य है, इसका भी निश्चय नहीं होने देता। यह प्रतीत होता है कि इन लोगो ने सिकन्दर को प्रसन्न करने के लिये उसके विजय का काव्य बनाया हो और व्यवसायियो द्वारा स्थानों के नाम का ज्ञान किया हो। साथ ही; अपनी अपनी कल्पना द्वारा विजय-चरित्रो का उसमे निवेश किया हो। उसमे अतिशयोक्ति प्रधान-रूप से काम मे लाई गई हो। ऐसा मानने से इन लेखको की परस्पर विरुद्ध और असंबद्ध कल्पनाएँ दोषावह नहीं हैं। इससे यह नगर गन्धारदेश मे गदाब और सिन्धु के बीच मे और काबुलनदी के उत्तर मे अटक से बहुत अधिक दूर न था, यह निश्चित है। सिकन्दर के साथी यदि सच्चे भी मान लिये जायँ तब भी उनका वर्णन अत्यन्त अतिशयोक्ति के कारण पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। इससे किला अवश्य पहाड़ी पर

हो सकता है। परंच नगर नीचे ही था। क्योंकि यहाँ पर कोई भी ऐसी पहाड़ी नहीं है जिसपर नगर हो सके। 'वरणा' के साधुत्व में पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र लिखे हैं :—

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि (४।२।६७)
तेन निर्वृत्तम् (४।२।६८)
तस्य निवासः (४।२।६९)
अदूर भवश्च (४।२।७०)

इन चारों सूत्रों से चार अर्थों में प्रत्यय होते हैं। इस प्रकरण को चातुरार्थिक कहते हैं। जैसे कि पंचालों के निवास जनपदअर्थ में षष्ठ्यन्त पंचाल शब्द से (४।२।६९) से 'अण्' प्रत्यय किया। कृत्तद्धित० (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा करके सुपोधातु० (२।४।७१) से विभक्ति का लुक् करके 'जनपदे लुप्' ४।२।८१ से अण् का लुप् करके 'लुपियुक्तवद् व्यक्तिवचने' (१।२।५१) से प्रकृति की तरह लिंग वचन से 'पञ्चालाः' यह रूप बनता है और इसका अर्थ पञ्चालदेश होता है। इसी प्रकार 'वरणा' शब्द से अदूरभव-अर्थ में अण् प्रत्यय करके इसके जनपद न होने से 'जनपदे लुप्' से लुप् न होने के कारण पाणिनि ने वरणादिभ्यश्च (४।२।८२) सूत्र का निर्माणकर जनपद से भिन्न नगरअर्थ में प्रत्यय का लुप् किया। 'वरणा' शब्द विग्रह में बहुवचन है और पुल्लिंग है। इससे बहुवचन और पुल्लिंग में ही 'वरणाः' यह प्रयोग बनता है। नगर के एकवचन और नपुंसक होते हुए भी वरणाशब्द एकवचन और नपुंसक लिंग में नहीं बोला जाता। काशिका—'वरणादिभ्यश्च' (वरणानामदूरभवम् नगरं वरणाः)। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी

की बालमनोरमा टीका मे काशी के समीपवाली वरणा को यहाँ पर वरणा मानकर उसके समीप के नगर को स्त्रीलिंग और बहुवचन माना है। वह टीकाकार का प्रमाद है। क्योंकि 'वरणा' शब्द नदी अर्थ मे एकवचन है और विग्रह मे बहुवचन दिखलाया है। अवयवाभिप्राय और पूजा मे बहुवचन नहीं है। इस प्रकार जब नगर है और नगर का अर्थ कस्बा है या शहर है तो किलामात्र 'वरण' कहा जाय, यह संभव नहीं। नगर इस स्थान के पहाड़ो पर नहीं हो सकता तो उसके नीचे समीप मे मानना होगा। और किला नगर के समीप पर्वत पर था उसके नीचे मानना होगा। इससे रानीघाट की पहाड़ी यदि किले के लिये 'ओर्नोस' है तो उसके नीचे का 'नोग्राम' अवश्य 'ओर्नोस नगर' मानना होगा। यदि इस आनुपूर्वी से मिलता जुलता कोई कस्बा या ग्राम है तो वही ओर्नोस होगा। नहीं तो वह नष्ट हो गया, यह मानना होगा। अबूरिहान के समय तक इसी नाम से प्रसिद्ध था।

एरियन ने इसके ऊपर एक छोटो सी नदी मानी है, परन्तु रानीघाट मे कोई भी नदी नहीं है। इससे रानीघाट की पहाड़ी पर ओर्नोस का किला मानना एरियन के विरुद्ध है। इससे ओर्नोस का किला रानीघाट पर हो, यह युक्तिसंगत नहीं है। वस्तुतः नन्दलाल डे ने जो स्थान इन्डियन आन्टीक्वेरी १।२२ के अनुसार सिंधनदी के पश्चिमी तट पर माना है और आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, वही वरण नामक स्थान सिकन्दर का 'ओर्नोस' और पाणिनि का 'वरणा' है।

नन्दलाल डे का चारसद्दा को हश्तनगर मानना और पुष्क-

रावती सिन्धु के तट पर मानना उचित प्रतीत होता है। क्योंकि पुष्करावती रामायण मे सिन्धु के समीप प्रतीत होती है। वह चारसद्दा नहीं हो सकती। क्योंकि चारसद्दा इत्यादि आठ स्थान मिलकर ही हश्तनगर बनता है। इसका एक भाग 'राजपुर' भी है, जो कि कम्बोज की राजधानी थी। आजकल 'राजुर' नाम से प्रसिद्ध है।

पुष्कलावती को चारसद्दा मानने मे कोई भी प्रमाण नहीं है। पुष्कलावती गधार मे सिन्धुनदी के पश्चिम थी, इतना तो निश्चित है। परंच कहाँ पर थी, यह कहने मे कोई भी प्रमाण नहीं है। चारसद्दा तो कम्बोज मे होने के कारण कम्बोज का नगर है, इससे गन्धार मे भी नहीं हो सकता। उसका पुष्कलावती होना तो दूर रहा।

गंधारि—१. वे० इ० "यह जाति उत्तर-पश्चिम भारत की रहनेवाली थी। ऋ० १।१२६।७ मे गान्धारि के भेड़ो का ऊन अच्छा होता है, यह वर्णित है। अथर्व० ५।२२।१४ मे मूजवन्तस् अंगाज् मगधाज् के साथ उल्लिखित है। बाद की दो जातियाँ कवि के ज्ञान की पूर्वी सीमा बनाती है। और पहले की दो जातियाँ उत्तरी सीमा बनाती है। गधारीज[1] अथवा गान्धारीज[2] श्रौतसूत्र[3] मे वर्णित है।"

२. जिमर[4] का मत है कि "ये लोग वैदिककाल मे कुभा के

(१) हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र १७।६, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र २२।६।१८।

(२) बौधायन श्रौतसूत्र २१।१३।

(३) कलन्द की जेट्सचरिटडेर ड्यूट्सचेनमार्जेन, लाण्डे स्चेनजेसेल्चेफ्ट ५६।५५३ देखिये। (४) एल्टेन डिस्चेजलेबेन।

दक्षिणी किनारे पर सिंधनदी तक बसे हुए थे और सिंध के पूर्वी किनारे पर भी कुछ दूर तक बसे थे। बाद को वे लोग पर्शियन साम्राज्य के एक भाग हो गये और गांधारियन्स के कुछ लोग जेरजस के ग्रीस पर आक्रमण में साथ थे। (वै० इ०)

३. राथ[1] और लुडविक[2] का भी मत जिमर के अनुसार ही है। (वै० इ०)

वस्तुतः यह एक देश है। इसका नाम अथर्ववेद ५।२२।१४ में आया है। तक्मा नामक ज्वर को दूर करने के लिये कई मंत्र दिये हैं, उनमें इसका भी नाम है। यह देश ज्वर का निवासस्थान है, इससे वहाँ जाने को कहा गया है। उन देशों से शत्रुता के कारण नहीं। यह गन्धार ही का नाम है।

वस्तुतः कोई भी प्रमाण संस्कृतसाहित्य में उपलब्ध नहीं होता, जो इस देश की चौहद्दी बना सके। इतना अवश्य है कि यह देश सिंधु के दोनो तटों पर था। जिमर जब तक कोई प्राचीन प्रमाण न दें तब तक उनका कहना साहसमात्र ही माना जायगा। जिमर कहते हैं इसलिये सत्य है—यह मानने का समय [illegible] गया। वैदिक इंडेक्स टिप्पणी २ "अथर्व० ५।२२।[illegible] [illegible] दो जातियाँ कवि के ज्ञान की पूर्वी सीमा बनाती हैं और पहले की दो जातियाँ उत्तरी सीमा बनाती हैं।" ('अथर्ववे[illegible] [illegible]न्धारीज, मूजवन्तम्, अंगाज् और गंधाज् साथ [illegible]")

(१) की[illegible] [illegible]रेयारण्यक २३।
(२) लु[illegible] —ट्रान्सलेशन आफ ऋग्वेद ३।२०६।

वस्तुतः ग्रन्थकार को यहाँ चार जातियाँ ही सीमा बनाने की मिलीं। सूक्त मे यह १४ वाँ मन्त्र है। इससे पहले मूँजवन्त, महावृष और बह्लिक और अन्य क्षेत्र शब्द भी आये है और इस मन्त्र मे गन्धारि, मूँजवन्त, अङ्ग और मगध शब्द आये हैं। बह्लीक जो वास्तव मे हींग की उत्पत्ति का प्रदेश है और योरोपियन विद्वानो का बलख है, वह गन्धार वर्तमान पेशावर प्रदेश से दक्षिण-पश्चिम है। अब, विचार यह है कि यह प्रकरण ज्वर के दूर करने के उपाय मे है। तक्मन् ज्वर से जिन देशो मे वह पैदा हुआ, वहाँ जाने की प्रार्थना है। जिन देशो मे वह पैदा नहीं हुआ उनका नाम लेना अप्रासंगिक होता। इसलिये अन्य देशो का नाम नहीं लिया गया। यह सूक्त नक्शा बतलाने के लिये तो लिखा नहीं गया था, इससे यदि अप्राकरणिक अन्य देशो के नाम न हो तो उन देशो का ज्ञान कवि को नहीं था—यह नहीं कहा जा सकता। प्रकरण की बात यदि न लिखी जाय तो वह लेखक के ज्ञान मे नहीं थी, यह कहा जाता है।

'गन्धारि' शब्द जनपदसमानक्षत्रियवाचक है। इस क्षत्रिय का पुत्र 'गान्धार', पुत्री 'गान्धारी' और राजा 'गान्धार' कहा जाता है। बहुवचन मे देश, राजा और सन्तान अर्थ में 'गान्धारि' शब्द ही आता है। ऋग्वेद मे इस देश की भेड़ों के ऊन की उपमा आई है। 'गन्धारीणामिवाविका' = मेरे शरीर मे ऐसे रोम हैं जैसे गन्धारिदेश के भेड़ो के होते हैं। यहाँ शरीर के घने रोओ के लिये उपमा है। ऊन बढ़िया होता है, इसलिये नहीं। अथर्ववेद में 'गन्धारिभ्यः' ऐसा पाठ मिलता है और उस देश मे जाने के लिये ज्वर से प्रार्थना

है। ज्वर का निवासस्थान गन्धारिदेश मे माना है। इसी लिये उससे वहाँ जाने को कहा है; न कि वहाँ के निवासियो के साथ शत्रुता से। लोक मे 'गन्धारि' के स्थान मे 'गान्धारि' पाठ मिलता है, इसीलिये अष्टाध्यायी 'साल्वेय गान्धारिभ्याञ्च' ४।१।१६९ तथा 'विषयोदेशे' ४।२।५२ के महाभाष्य के कैयट मे 'गान्धारीणां विषयो देशः गान्धारः' यह लिखा है। 'गन्धार' और 'गान्धारि' दोनो शब्द देशअर्थ मे है और उस देश के निवासी क्षत्रिय को भी कहते हैं। पुराणो मे 'गान्धारि' शब्द का नाम नहीं है। 'गन्धार' और 'गान्धार' ही प्रयोग आता है।

गय—ऋग्वेद ७।१८।१३ तथा १९।१ मे यह शब्द 'घर' के अर्थ मे आया है।

गव्यूति—१. वे० इ० "ऋग्वेद[1] मे राथ[2] के अनुसार इसका अर्थ पशुओ के चरने का घास का मैदान है, जिस अर्थ मे गव्य भी पाया[3] जाता है। वहाँ से यह पंचविश[4] ब्राह्मण मे दूरी नापने का अर्थ प्राप्त करता है।"

२. गेल्डनर[5] सच्चे[6] तथा अलंकृत[7] रूप मे इसका अर्थ

---

(१) ऋग्वेद १।२५।१६, ३।६२।१६, ५।६६।३ तथा ७।७७।४ इत्यादि।

(२) सैन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी।

(३) ऐतरेय ब्राह्मण ४।२८, सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी।

(४) पञ्चविंश ब्राह्मण १६।१३।१२।

(५) वेदिस्चेस्टडियन २।२६०-२६१।

(६) ऋग्वेद १।२५।१६।

(७) ऋग्वेद ६।४७।२० तथा १०।१४।२।

सड़क मानते है। इसका अर्थ दूरी[1] की नाप होगा और अन्त मे इसका अर्थ भूमि हुआ। (वे० इ०)

बस्तुतः यह शब्द ऋग्वेद[3] मे गोष्ठ (गायों के रहने का स्थान) और अति विस्तृत मार्ग[4] तथा दो कोश अर्थ में आया है। तथा ताण्ड्य ब्राह्मण मे दो कोश के अर्थ मे आया है। और अमरकोश[5] भी दो कोश अर्थ प्रकट करता है। ऋग्० ६।४७।२० मे 'अगव्यूति' शब्द संचाररहित देश के अर्थ मे (जहाँ गायें भी न जायँ) आया है। ७।६२।५ मे गायो के जाने के मार्ग में आया है। ६५।४ में भूमि के अर्थ मे आया है।

गाङ्ग्य—१ वे० इ० "गंगा पर रहनेवाला, यह उरुकक्ष[6] का दूसरा नाम है। अथवा झाड़ी[7] के विशेषण के रूप मे ऋग्वेद[8] में आया है।"

२. राथ, बेकर नेजिल और वेबर इसको उरुकक्ष का दूसरा नाम मानते है। (वे० इ०)

३. ओल्डनवर्ग और वेबर इसको झाड़ी का विशेषण मानते हैं। (वे० इ०)

---

(१) ऋग्वेद ८।६०।२० और न० ४।

(२) ऋग्वेद ३।६२।१६ तथा ७।६२।५।

(३) १।२५।१६ तथा ३।६२।१६।

(४) ५।६६।३।

(५) २।१।१८।

(६) राथ सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी। तुलना करो बेकर नेजिल आल्टिनडिस्चेग्रामेटिक २।१८८, वेबर एपिश्चेन वेदिश्चेनरिचुअल २८।

(७) ओल्डेनवर्ग ऋग्वेद नोटेन १।३६८।

(८) ६।४५।३१, तुलना करो वेबर इन्डिस्चेस्टडियन २।२९१ एन्।

वस्तुतः इसका अर्थ गगा के तट पर पैदा हुआ (कक्ष) है। ऋग्वेद ६।४५।३१ मे यह शब्द आया है। मन्त्रार्थ यह है:—"पणियो के तक्षा बृबु ने भरद्वाज को दान दिया। इससे बृबु गगा के तट पर पैदा हुए झाड़ के समान विस्तीर्ण हो गया।" अर्थात् जाति से पतित होने पर भी दाता होने से पुरुष प्रतिष्ठित हो जाता है।

'ऊरूःकक्षो न गाङ्ग्यः' ऐसा पाठ ऋग्वेद मे है। 'ऊरु' अर्थात् 'विस्तीर्ण होकर' यह अर्थ है। ऊरुकक्ष किसी का नाम नहीं है और गाङ्ग्य शब्द कक्ष का विशेषण है।

गान्धार—१. वे० इ० "गान्धार का राजा जिसका नाम नग्नजित् है, ऐतरेय ब्राह्मण[1] मे उल्लिखित है। शतपथ[2] ब्राह्मण मे प्रमाण मे वह या उसका वशज स्वर्जित् नाग्नजित अथवा नग्नजित् के रूप मे आता है और धार्मिक क्रियाओ के विषय मे राय देता हुआ पाया जाता है। यह क्रिया अस्वीकार की गयी है, क्योकि उसका बनानेवाला एक राजवशज था (राजन्य-बन्धु)।"

२. जा० डि० पृ० ६० "यह देश काबुलनदी के तट पर कुनार (कोरपीज) तथा सिंधु के मध्य मे है। इसमे उत्तरी पंजाब के पेशावर और रावलपिण्डी के जिले भी शामिल है। इसकी राजधानियाँ पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) तथा तक्षशिला (यूनानी ऐतिहासिकों की तक्शिला) थीं। टालेमी पश्चिमी सिन्धु-

---

(१) ७।३४ उन अध्यापको की सूची मे आया है जिन्होने उस वस्तु को मालूम किया जो सोम के बदले मे रखी गई।

(२) ८।१।४।१०

नद को गन्डारी की सीमा कहता है। विहिस्तान शिलालेख मे जो पारस के राजा दारि के द्वारा ईसा पूर्व ५१६ मे उसके शासन के ५ वे वर्ष मे लिखवाया गया था, उसमे गदार या गन्धार उसके राज्य मे वर्णित है। (उसके शिलालेख की नकल के लिये राविसन की हिरोडोटस खण्ड ३ पृष्ठ ५९० देखिये)। कसरसीज की सेना मे गन्डारियन और ददिकेस एक सेनापति के नीचे थे (हिरोडोटस ७।६)। यह ह्वेनसाँग का 'कियान्टोलो' है। यूनानी भौगोलिको तथा स्ट्रिबो का 'कुण्डार गैन ढिडो' है। आइनेअकबरी मे यह 'पुकेली' का जिला बनाता है, जो कश्मीर और अटक के बीच मे है (जे० ए० एस० बी० वालूम १५।१८४६)। गंधार केवल आधुनिक पेशावर तथा रावलपिण्डी जिलो को ही अपने मे शामिल नहीं करता है; बल्कि स्वात और होतीमर्दान जो यूसुफजाईदेश कहा जाता है, उसे भी अपने मे शामिल करता है। यह देश सिधु और पंजकोरा के मध्य मे है, जहाँ पर कि रानीघाट, संघाऊ और नुट्टे मे खोजे हुई हैं तथा कनिष्क के काल की कला तथा मूर्तियाँ मिली है, जो ईसा की पहली शताब्दी की है। मिस्टर कोले ने इसकी खोज की थी (मेरेडम आफ इंशेन्ट मोमेन्टस् आफ यूसुफजाई)। पुरानी पत्थरकला के चिन्ह पेशावर जिले के यूसुफ जाई परगने के जमालगिरि मे मिले है। जमालगिरि पेशावर से ३० मील दूर है (जे० ए० एस० बी० १८५२ पृ० ६०६)। यूसुफजाईदेश उत्तर मे चितराल तथा यासीन से पश्चिम मे, बेजवार तथा स्वातनदी से पूर्व मे, सिंध से तथा दक्षिण मे काबुलनदी से घिरा है (आरकीयो लाजिकल सर्वेरिपोर्ट वालूम ५)।

पुष्कलावती या पुष्करावती (पुकेली) इसकी पुरानी राजधानी थी । रामायण मे इसे गन्धर्वदेश बतलाया है । कथासरित्सागर (अध्याय ३७) में इसे विद्याधरो की पुष्करावत नाम की राजधानी कहा है । महाभारत तथा बुद्धकाल का गंधार वाल्मीकि के गन्धारदेश का रूपान्तर है (रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ११३, ११४) । मेजर कोल कहते है कि कोरिन्थियन ढंग का कलाकौशल यूसुफजाई मे मिलता है तथा कश्मीर मे डोरिक तथा तक्षशिला या शाहडेरी तथा अटक और रावलपिण्डी के बीच मे आयोनिक मिलता है (सेकन्ड रिपोर्ट आफ दी क्यूरेटर आफ इंशेन्ट मोमेन्ट्स इन इण्डिया फार १८८२, ८३ पृ० ११६) । अशोक ने २४५ ईसा पूर्व में मज्झंतिक नाम के बौद्ध धर्मोपदेशक को यहाँ पर भेजा था (महावंश अध्याय १२) । गंधारदेश चन्द्रगुप्त तथा अशोक के राज्य मे था । ऐसा मालूम होता है कि अगथोक्लेस ने इसको जीता और मौर्यों को निकाल दिया । कर्नल राबिसन के अनुसार ५ वीं शताब्दी मे गांधार लोग सिंध से गंधार गये (हिरोडोटस पृ० ६७५ नोट) ।

वस्तुतः यह शब्द शतपथ ब्राह्मण मे गांधारिदेश के राजा नग्नजित् के लिये आया है । गान्धारि शब्द से 'साल्वेय गान्धारिभ्यां च' ४।१।१६९ से अञ् प्रत्यय होकर 'गान्धार' बनता है । इसका नाम नग्नजित् लिखा है । ऐतरेय ब्राह्मण में भी 'नग्नजिते गान्धाराय' प्रयोग आया है । वहाँ 'गान्धारि' देश के राजा के अर्थ मे आया है । वेदिक इंडेक्स का यह कथन कि ऐतरेय ब्राह्मण ७।३४ के उन अध्यापकों की सूची में आया है

जिन्होंने उस वस्तु को मालूम किया जो सोम के बदले रखी गई थी। परंच ऐतरेय ब्राह्मण अ० ३५ ख० ८ में हवन के बाद के सोम के भक्षण को ऋषियों ने जिन राजाओं को बतलाया, उनकी सूची है। वह इस प्रकार है:—रामऋषि ने विश्वन्तर राजा को, कावपेयतुर ने जनमेजय को, पर्वत और नारद ने सहदेव के पुत्र सोमक को और सृञ्जय के पुत्र सहदेव को, देववृध के पुत्र बभ्रु को, बिदर्भ के राजा भीम को और गान्धारि के राजा नग्नजित् को फलचमस का भक्षण बतलाया। औरों के भी नाम लिखे हैं। वे सब फलचमस का भक्षण करके महत्व को प्राप्त हुए और महाराजा हुए। वैदिक इंडेक्सकार को ऐतरेय ब्राह्मण के अर्थज्ञान में भ्रम हो गया। शतपथ ब्राह्मण में गाधार नग्नजित् का मत ठीक न होने से नहीं माना गया। क्षत्रिय होने से नहीं माना गया, यह वहाँ नहीं लिखा है। वह ठीक नहीं कहता है, इसलिये राजन्यबन्धु कहकर उसकी निन्दा की है। वैदिक इन्डेक्सकार वहाँ के अर्थ को समझने में भ्रम में पड़ गये या क्षत्रिय ब्राह्मणों का वैर सिद्ध करने के लिये अथवा क्षत्रियों की निकाली बात को ब्राह्मण नहीं मानते थे, इस सिद्धान्त को संसार के सामने रखने के लिये उन्होंने जान-बूझकर वैसा अर्थ किया।

गिरि—१. वे० इ० "गिरि पहाड़ अथवा ऊँचाई एक शब्द है जो कई बार ऋग्वेद[1] में आता है। इस प्रकार पहाड़ियों पर वृक्षों का उल्लेख आया है, जो वृक्षरूप बाल रखनेवाली कही

(१) १।५६।३, १।६१।१४, १।६३।१, ४।२०।६ तथा ६।२४।८ इत्यादि।

गई है (वृक्षकेशाः[१])। और नदियाँ पहाड़ो से निकलकर समुद्र[२] मे गिरती है, ऐसा भी उल्लेख है। यह शब्द बहुधा विशेषण रूप मे पर्वत[३] के साथ वर्णित है। ऋग्वेद मे पहाड़ियो[४] से आते हुए पानी का वर्णन है। अथर्ववेद[५] मे बर्फ से ढके हुए पहाड़ो का वर्णन है। इन पहाड़ो के नाम, जैसे—मूँजवन्त, हिमवन्त, त्रिककुद् बहुत कम वर्णित है। क्रौंच, महामेरु तथा मैनाक तैत्तिरीय ब्राह्मण तक ही सीमित हैं, जब कि नावप्रभ्रंशन कहीं भी व्यक्तिवाचक[६] संज्ञा नहीं हो सकता।"

२. ओल्डनवर्ग भी ऋग्वेद मे पहाड़ियो से आते हुए पानी का वर्णन मानते है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह शब्द ऋग्वेद[७] मे पर्वतअर्थ मे आया है।

(१) ऋ० ५।४१।११।

(२) ऋ० ७।९५।२ ~~(वस्तुतः ९६ चाहिये)~~।

(३) ऋ० १।५६।४ तथा ८।६४।५, अथर्व० ४।७।८, ६।१२।३ तथा १७।३, ९।१।१८ इत्यादि।

(४) ऋ० ६।६६।११, इस अवतरण पर ओल्डनवर्ग ऋग्वेद नोटेन १।४११ तथा ८।३२।४ तथा १०।६४।१ इत्यादि देखो।

(५) १२।१।११ 'हिमवन्त' देखो।

(६) अथर्व० १९।३७।८ ह्विटने के नोट के साथ उसके ट्रान्सलेशन मे देखो। मेकडानल जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०७।११०७, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन ४७।

(७) १।५६।३, १।६५।६, १।६१।१४, १।६३।१, ४।२०।६ तथा ७।९६।२ (इसमे सरस्वतीनदी का पर्वतो से निकलकर समुद्र मे गिरने का वर्णन है)। ५।४१।११ तथा १।५६।२।

ॅंचाई के अर्थ मे कहीं भी नहीं आया। कहीं कहीं मेघअर्थ[1] मे भी आया है। अथर्ववेद में भी गिरि शब्द बिच्छू के विष को दूर करने के उपाय के मन्त्र मे आया है। वहाँ पहाड़ो मे मधु होता है। पर्वतो के शिखरों पर किरात की लड़की औषधि खोद रही है, यह अर्थ होता है। परंच 'बर्फ से ढके' यह अर्थ नहीं है। बर्फीले पहाड़ों के नाम अवश्य है, जैसे त्रिककुद्। ऋग्वेद मे गोमन्तपर्वत का भी नाम है, जो सह्यपर्वत (पश्चिमी-घाट) का एक भाग है या शेष के तट पर है। यजुर्वेद मे हिमवान्[2] और हिमवन्त[3] शब्द बर्फीले पहाड़ों के नाम से आये हैं। गिरि शब्द के साथ पर्वत शब्द का अर्थ 'तहवाला' हो जाता है। ऋग्वेद ६।६६।११ में तथा ८।३२।४ मे 'गिरि' शब्द का अर्थ 'मेघ' है, पहाड नहीं है।

गुङ्गु—१. वे० इ० "गुङ्गु की सन्तान गुङ्गुस् कहलाती है। यह शब्द ऋग्वेद[4] के एक मन्त्र मे आया है और यह अतिथिग्व के मित्र हैं। सम्भव है कि यह एक मनुष्यजाति है।"

२. लुडविक का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुत: यह एक देश का नाम है। ऋग्वेद १०।४८।८ में इसका वर्णन आया है। यह देश कहाँ पर था, इसका पता

---

(१) ८।६४।५ तथा ६।६६।११।

(२) शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता २४।३०, ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३।

(३) वाजसनेयी सहिता २५।१२।

(४) १०।४८।८, तुलना करो लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋ० ३।१६५।

नहीं। मन्त्रार्थ यह है.—(इन्द्र कहते हैं) "मैंने गुङ्गु नामक जनपदो की रक्षा के लिये रक्षक और शत्रुओ के हिसक अतिथिग्व दिवोदास की प्रजाओ के मध्य मे, अन्न जिस प्रकार उनको भोजन के लिये मिले, उस प्रकार रखा। कब? जब कि पर्णय नामक असुर और करंजह नामक असुर के मारण से युक्त बड़े संग्राम मे मैं सुना गया।"

गुङ्गुवास[1]—एक स्थान का नाम है, जहाँ गुङ्गु नामक ऋषि ने तपस्या की थी। यह कहाँ पर था, यह पता नहीं।

गोमती—१. वे० इ० "गायो को रखनेवाली। यह ऋग्वेद[2] के १० वें मण्डल की नदीस्तुति मे एक नदी के रूप मे उल्लिखित है। उसी ऋचा मे एक नदी जो सिन्धुनदी मे गिरती थी, इसी अर्थ से आती है और इसका वर्तमान[3] रूप गोमल दिया जा सकता है। यह नदी सिधनदी की पश्चिमी सहायक नदी है, इसमे कोई सदेह नहीं। ऋग्वेद[4] मे दूसरे स्थान मे गोमती का उच्चारण नदी का अर्थ प्रकट करता है। यह संभव है कि तीसरे[5] स्थान पर 'गोमतिः' से 'गोमती' हो गया हो। गेल्डनर[6] का मत है कि

(१) गोपथ ब्राह्मण २।८।

(२) १०।७५।६

(३) जिमर अल्टिन डिस्चेज्लेवेन १४, लुडविक् ट्रान्सलेशन आफ दी ऋग्वेद ३।२००।

(४) ८।२४।३०।

(५) ५।६१।१६, ओल्डनवर्ग का ऋग्वेद नोटेन १।३५५-३५६ देखिये।

(६) वेदिस्चेस्टडियन ३।१५२ एन्० २।

अंतिम दोनों स्थानों मे गोमती अथवा उसकी चार ऊपरी सहायक नदियो का अर्थ है, इसी लिये बहुवचन है। इसका सम्बन्ध शब्द के बाद के प्रयोग से है और साधारणतया इस नदी का कुरुक्षेत्र मे होना आवश्यक है। क्योंकि कुरुक्षेत्र वैदिक[1] सभ्यता का केन्द्र था।"

२. जिमर और लुडविक इसको 'गोमल' मानते है। (वे० इ०)

३. ओल्डनबर्ग 'गोमतिः' से 'गोमतीः' हो गया, ऐसा मानते है। (वे० इ०)

४. पिशल, हापूकिंस और गेल्डनर कुरुक्षेत्र को वैदिक सभ्यता का केन्द्र मानते हैं। (वे० इ०)

५. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ७० "गोमती (१) अवध मे गोमतीनदी है (रामायण आदिकाण्ड ४९)। लखनऊ इसके तट पर है। (२) गोदावरीनदी के उद्गम के समीप, जहाँ पर कि त्र्यंबकमहादेवजी का मंदिर है (शिवपुराण बी० १ अध्याय ५४)। यह गौतमी भी कहलाती है; क्योंकि यहाँ पर गौतमऋषि की कुटी थी (वही ५४)। (३) गुजरात मे एक नदी है, जिसपर द्वारका बसी है (स्कन्दपुराण अवन्ति खण्ड अध्याय ६०)। (४) मालवा मे चम्बल की सहायक नदी है, जिसके तट पर रिनतम्बुर स्थित है (मेघदूत १।४७)। (५)

(१) पिशल वेदिसचेस्टडियन २।२१८, हापूकिंस जरनल आफ दी अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १६,१६ से आरम्भ, मेकडानल संस्कृत लिट्रेचर १७४, कीथ जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८।११४१।

अफगानिस्तान की अराकोशिया में गोमल नाम की नदी है (ऋग्वेद १०।७५ और लासन का इंडिशेआल्टर थम्बस्कन्डे)। यह सिन्धुनदी मे डेराइस्माइलखाँ तथा पहाड़पुर के बीच मे गिरती है। (६) पंजाब के काँगड़े जिले मे एक नदी है (इंडियन आन्टीक्वेरी २२।६७४)।

वस्तुत. यह नदी सिंधुनद की सहायक नदी है। इससे गोमल की आनुपूर्वी कुछ कुछ मिलती है, इससे यह सिंधु की सहायक गोमल ही है। पुराणो मे कई गोमतियो का वर्णन है, लेकिन वे इससे भिन्न है। ऋग्वेद मे बहुवचन से ३ या उससे अधिक गोमतियाँ हो सकती है। पुराणादि[१] मे उन्हीं का नाम

(१) काशिका 'एङ् प्राचा देशे' १।१।७५ यह नदी प्राच्यदेश मे, अर्थात् रावी से दक्षिण-पूर्व देश मे है। काशिकाविवरण पंजिका गोमती-नदी प्राक्देश मे है। महाभा० हरि० वि० ११६ यह उत्तरापथ की नदी है। महाभा० आर० (चि०) ८७।७ यह नदी नैमिष मे है। ८४।८१ यह नदी मार्कण्डेयतीर्थ के पास गगा मे गिरती है। कालिका० २३।१३५ यह महानदी हिमालय से दक्षिण है। वाल्मी० अयो० (गु०) ४६।११ यह नदी उत्तरकोशल मे वेदश्रवा (बिसई) से दक्षिण और स्यन्दिका (सई) से उत्तर है और पूर्ववाहिनी है। अयोध्या से शृङ्ग-पुर जाने के मार्ग मे पड़ती है। स्कन्द० प्रभा० द्वार० ३२।६ यह नदी पूर्ववाहिनी है और द्वारका की गोमती से भिन्न है। वायु० पू० २।७ यह नदी नैमिष मे है। पद्म० आदि० ६।१४ यह नदी भारतवर्ष मे है। ब्रह्म० २७।२६ यह नदी भारत मे है और हिमालय के पाद से निकली है। स्कन्द० प्रभा० द्वार० ३३।५ यह नदी द्वारका मे उत्तर दिशा मे है। कालिका० २३।१३५ यह नदी हिमालय के पर्वत के दक्षिण पार्श्व मे स्थित महाकाल-सर से निकली है। ब्रह्मा० प्र० २।६ यह नदी नैमिष मे

आता है, इसका नहीं। उनमे एक गगा की सहायक है। ऋग्वेद ८।२४।३० मे वरु राजा की दानस्तुति मे गोमती के तट पर इसका वर्णन मिलता है। परंच यह गोमती कहाँ पर थी, इसमे कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऋग्वेद के दशम मण्डल मे गोमती से सिधु का संगम लिखा है। इससे सर्वत्र गोमती से गोमल ही ली जाय, यह सिद्धान्त स्वीकार करने पर यहाँ गोमल अर्थ करना भी संभव है। यदि दशम मण्डल मे श्रुति के कहने से वहाँ की दोनो ऋचाओ मे गोमल ही मान ली जाय तब भी अन्यत्र* नैमिष की गोमती अथवा द्वारका की गोमती का संभव

है, (पू० आ०) १६।२६ यह नदी हिमालय के पाद से निकली है। मत्स्य० ११४।२२ यह नदी हिमालय के पार्श्व से निकली है। स्कन्द० वै० का० ४।२६ यह पवित्र नदी है। वाराह० ८५। ° यह नदी भारत मे है और हिमवत्पाद से निकली है। वामन० १३।२२ यह नदी कुमारद्वीप मे है और हिमवत्पाद से निकली है। कूर्म० ब्रा० पू० ४७।२६ यह नदी भारत मे हिमवत्पाद से निकली है। मार्क० ५४।१७ यह नदी हिमवत्पाद मे निकली है। गरुड० पृ० ५५।७ यह नदी भारत मे है। देवीभा० ६।१२।४ यह नदी है और तीर्थ है। इसके तट पर देवी के स्थान है। महाभा० आर० (म०) २४६।६८॥ इस नदी के तट पर राम ने दश अश्वमेधयज्ञ किये। पद्म० १७६।३५ यह नदी द्वारका मे है। इसके तट पर रुक्मिणीवल्लभ हरि है। यहाॅ पर ५ कृष्ण है। मत्स्य० २२।३१ यह नदी श्राद्ध के योग्य है। स्कन्द० माहे० अरु० उ० २।८ इसके किनारे शिवलिग हैं। स्कन्द० वै० ब० १।२८ यह नदी द्वारका मे है। नारदी० उ० ६।२८ यह तीर्थ है। अग्नि० १०६।११ यह नदी द्वारका मे है। महाभा० भी० (चि०) ६।१८ (म०) ६।१७ यह नदी भारत में है।

* इसकी टिप्पणी पृष्ठ ३०१ की टिप्पणी मे सम्मिलित है।

है। क्योकि ऋग्वेद ६।६१।१९ मे 'गोमती:' मे बहुवचन का रूप आया है और रथवीति के आश्रमो का पर्वतों पर या उसके समीप गोमतियो के किनारे होना माना गया है। योगबल से रथवीति कई पर्वतो की कई गोमतियो पर रहते थे, यह स्पष्ट प्रतीत होता है। क्योकि इस मन्त्र मे 'पर्वतेषु' और 'गोमती:' दोनो मे बहुवचन है। एक पुरुष एक ही आश्रम मे रहता है। परन्तु यहाँ का बहुवचन योगबल से एक काल मे सर्वत्र लोगो से देखे जाते थे अथवा भिन्न-भिन्न काल मे भिन्न-भिन्न आश्रमो मे चले जाते थे, यह प्रतीत करता है। सायणाचार्य 'गोमती:' मे बहुवचन देखकर 'नदियाँमात्र' अर्थ करते है। परन्तु 'गोमति:' से 'गोमती.' हो गया, यह वेदिक इंडेक्स का कथन यहाँ पर संभव नहीं है। क्योकि यहाँ पर 'गोमतीरनु' ऐसा पाठ है। 'अनु' के योग मे द्वितीया विभक्ति आ सकती है, प्रथमा नहीं। 'गोमती' शब्द यहाँ पर 'अनु' के साथ आया है और 'अनुर्लक्षणे' १।१।८४ सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञावाला है। अत: 'कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति ही उससे हो सकती है, प्रथमा नहीं। द्वितीया के बहुवचन में 'गोमती:' रूप बनता है। और गोमत् शब्द मतुप् प्रत्ययान्त है, इससे 'उगितश्च' ४।१।६ सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर ईकारान्त शब्द ही बन सकता है, इकारान्त नहीं। इससे जो लोग "गोमति: के स्थान मे गोमती: हो गया"—यह कह रहे हैं, वे संस्कृत के व्याकरण से अपरिचित हैं। गेल्डनर बहुवचन से कई गोमतियों के मानने मे ठीक है। परंच गोमती की सहायक नदियों को गोमती मानने मे प्रमाणाभाव से सहा-

यताहीन होने के कारण भ्रमपूर्ण है, और कुरुक्षेत्र मे इसके मानने से एकदम असंबद्धवक्ता है। क्योंकि कुरुक्षेत्र वैदिक सभ्यता का केन्द्र था, इससे वेद मे आई हुई सभी नदियाँ कुरुक्षेत्र मे होंगी—ऐसा कहना निराधार है। क्या गंगा, सरयू, वितस्ता, असिक्नी, आर्जीकीया इत्यादि कुरुक्षेत्र की नदियाँ है? गेल्डनर के सिद्धान्तानुसार इन्हें कुरुक्षेत्र मे मानना होगा। परंतु है नहीं।

नन्दलाल डे ने नम्बर ४ मे गोमती के विषय मे मेघदूत का प्रमाण दिया है। परन्तु जो श्लोक लिखा है, उसमे चम्बलनदी का वर्णन है, गोमती का नहीं। वस्तुतः समस्त मेघदूत मे गोमती का नाम नहीं है।

गोमन्त—१. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ७० "गोमन्तगिरि एक शून्य पर्वत, जो पश्चिमीघाट मे है। यहाँ पर कृष्ण और बलराम ने जरासंघ को हराया था (हरिवंश अध्याय ४२)। गोमन्तगिरि के शिखर पर गोरक्षतीर्थ है। यह पहाड़ गोआ प्रदेश मे है। कोकण गोमन्त का देश कहलाता है। पद्मपुराण आदिखण्ड अध्याय ६, हरिवंश० अध्याय ९८।९९ गोमन्त को उत्तर कनाडा में बतलाते हैं।"

२. "गुजरात मे रैवतपर्वत गोमन्त कहलाता है (महाभारत सभापर्व अध्याय १४)।"

वस्तुतः इसका वर्णन ऋग्वेद ४।१।१५ में पर्वत के रूप मे आया है। एक गोमन्तपर्वत हिमालय का शिखर-विशेष है और सिन्धुनदी की सहायक शेवकनदी के समीप है। दूसरे को हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय ३८,३९ मे दाक्षिणात्य

पर्वत माना[1] है। और इसके समीप के संग्राम में मगधराज जरासंघ को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसा पराम्त किया कि वह साहस छोड़कर चुपचाप घर बैठ रहा। जिस जरासंध की आज्ञा मे यवनदेश का राजा कालयवन भी भृत्य के समान चलता था और बंदी के समान उसके गुणो का गान करता था। संसार के सभी राजे जिसके वश मे थे। इस युद्ध मे बलभद्र ही श्रीकृष्णचन्द्र के सहायक थे। यह पर्वत उत्तरी कनाडा जिले की पूर्वी सीमा पर सिरसी कस्बे से ३० मील आग्नेय दिशा में स्थित मैसूरराज्यान्तर्गत वनवासीगाँव से दक्षिण सह्याद्रि की एक चोटी है। सह्याद्रि आजकल पश्चिमीघाट के नाम से प्रसिद्ध है। विजयनगर के राजा हरिहर के कनिष्ठ भ्राता मारप के १३४७ ई० के एक ताम्रपत्र मे इस पर्वत का गोमन्त नाम से उल्लेख है। हरिवंश मे श्रीकृष्णचन्द्र का दक्षिणापथ में गोमन्त-पर्वत तक जाने का मार्ग इस प्रकार बतलाया गया है—वेणा-[2] नदी, करवीरपुर[3] (आधुनिक कोल्हापुर), यज्ञगिरि[4], खट्वाग

---

(१) विशेष देखना हो तो 'भारतीय अनुशीलन' खण्ड ८ पृष्ठ १० से देखो।

(२) वेणानदी सतारा जिले के महाबलेश्वरपर्वत से निकलकर सतारा के पूर्व में माहुलीगाँव के समीप कृष्णानदी से मिलती है।

(३) आधुनिक कोल्हापुर।

(४) यह सह्याद्रि की एक शाखा है।

नदी[1], क्रौञ्चपुर[2], अनडुह् तीर्थ[3] और गोमन्त।

गौरी—१. भारतभूमि खण्ड १ पृ० १२८ "पंचकोरा जो कि काबुल (कुभा) नदी की एक सहायक नदी है।"

२. हिन्दी-विश्वकोश "मल्लिनाथ ने गौरीगुरु का अर्थ हिमालय लगाया है; किन्तु उस स्थल पर गौरीगुरु यह स्वतत्र पर्वत समझ पड़ता है। प्राचीन पाश्चात्य भौगोलिक टालमी ने गोरिया नामक एक जनपद का उल्लेख किया है। इसी जनपद के मध्य गौरीनदी प्रवाहित है। यह नदी वर्तमान काबुलनदी मे जा गिरती है। फिर उसे ऋग्वेद और महाभारत मे गौरीनदी ही लिखा है। उसके चारो ओर पर्वतमाला खड़ी है। कालिदास ने इसी पर्वतमाला को गौरीगुरु कहा है। विशेषत: इसी पर्वत से गौरीनदी निकलती है। उक्त पर्वतीय देश को टालमी ने गोरिया बतलाया है। रघुवश की उक्त वर्णना से समझ पड़ा कि कम्बोज देश सिधु से उत्तर और गौरीगुरुपर्वत के निकट रहा। मार्कण्डेय पुराण मे गौरग्रीव और महाभारत मे सुवास्तुनदी के साथ गौरीगुरु का उल्लेख मिलता है। यह सुवास्तु और गौरीनदी वर्तमान पजाब के उत्तरस्थ स्वातप्रदेश मे अवस्थित है। सुतरां रघुवश का अर्थ मानते वर्तमान सिधु और लन्दई नदी के उत्तरांश मे पूर्वकाल मे कम्बोज नामक जनपद रहा। पहले कम्बोजवासी संस्कृतभाषा बोलते थे।"

(१ यह घटप्रभा का नाम है। वेलगॉव जिले मे है। यह गोकाक से वायव्यकोण पर १७५ फीट ऊँची पहाड़ी मे गिरती है। यह सदिग्ध है।

(२) ठीक निश्चय नही।

(३) ठीक निश्चय नही।

वस्तुतः यह एक नदी (सतहत्रपातापी) का नाम है, जिसमे कि सोम पैदा होता है। यह नदी ऋग्वेद ९।१२।३ मे वर्णित है। इस मंत्र का अर्थ सिधु मे है। मेदिनीकोष र द्वि मे इसको नदीविशेष माना है तथा अग्निपुराण २२०।७१ तथा महाभा० भी० (चि०) ९।२५ मे इस नदी को भारत मे माना है। भवि० ४।२६ मे इसे तपतीनदी माना है और विष्णुधर्मोत्तर० १।२०७। ४३ मे शतद्रु (शतलज) का नाम है। पजकोरा का नाम हो, इस अंश मे कोई भी प्रमाण नहीं है। हिन्दी विश्वकोष के लेखक ने हिस्ट्री के पुराने सिद्धान्तानुसार जो कुछ सुना था, उसी को लिखा है। संस्कृत से अनभिज्ञ प्रतीत होता है। यदि उन्होने रघुवंश पढ़ा होता तो ऐसा कभी न लिखते। रघुवंश में द्वितीय सर्ग के २६ वे श्लोक मे 'गंगाप्रपातान्तविरूढ़शष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश' यह लिखा है। वशिष्ठ की नन्दिनी नाम की गाय दिलीप के भाव की परीक्षा करने के लिये गगा के करार पर जमी है घास जिसमे, ऐसे गौरीगुरु, अर्थात् हिमालय की खोह मे घुस गई। यहाँ 'गगा' शब्द साथ है, तब भी यहाँ गौरीगुरु शब्द का अर्थ गौरीगुरुपर्वत है, हिमालय नहीं—इस बात को मानते है। इनको इस बात का पता नहीं है कि कालिदास ने कुमारसंभव नामक महाकाव्य रचा है, उसमे पार्वती को हिमालय की लड़की माना है। 'गौरी' पार्वती का नाम है, उनके पिता गौरीगुरु हिमालय कहे जाते है। 'गौरीनदी के पिता' यह अर्थ नहीं है। रघुवंश मे कहीं भी कम्बोज के निकट गौरीगुरु का वर्णन नहीं है। महाभारत मे सुवास्तु के साथ गौरीगुरु का उल्लेख भी नहीं है। ऋग्वेद मे गौरीनदी कहाँ पर थी,

यह भी नहीं लिखा है और न कोई परिचायक शब्द भी उसके साथ लिखा है। टालमी ने गोरिया नामक जनपद लिखा है तो पंजकोरा जनपद के नाम से गौरी कैसे हो गई ? टालमी के शब्द स्फुट नहीं है। उनके अर्थ अंदाजिया लगाये जाते है। उनका स्थान भी अन्दाजिया कल्पन करना पड़ता है। इसी को टालमी ने बतलाया कि यह भी निश्चित नहीं है, तब पंजकोरा का गौरी नाम था—यह कैसे निश्चित हुआ ? सुवास्तुनदी का यहाँ सम्भव नहीं है। वह तो रूस के सिवास्टोपोल नामक नगर के मध्य मे बहती हुई चोरनाया नाम से प्रसिद्ध है।

ग्राम—१. वे० इ० "जिमर का कहना है कि ग्राम एक विश् जाति और परिवार के बीच की एक चीज है। इनके मतानुसार एक ही प्रकार के लोगों का एक जत्था है; परन्तु एक ही परिवार के रहने की जगह नहीं है। किन्तु बहुत प्रकार के लोगों के रहने का स्थान है।"

२. हापकिस् रेलिजेन्स आफ् इंडिया २६।२७ मे "भरताः संतरेयुः, गव्यन् ग्रामः' इस ऋग्वेद के प्रतीक के 'गव्यन् ग्रामः' शब्दो का अर्थ लूटनेवाला गिरोह कर रहे है। (वे० इ०)

वस्तुत. यह शब्द ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण और छान्दोग्योपनिषद्[1] मे गाँव के अर्थ मे आया है। वेदिक इंडिक्सकार ने जिमर के अर्थ का खण्डन स्वयं किया है कि इसका अर्थ गाँव है, सब लोग गाँव से परिचित है। इससे जिमर के कथन का तारतम्य समझ सकते है। महाभाष्यकार[2] ने ग्रामशब्द का

(१) छान्दोग्योपनिषद् ४।२।४, ऐत० १४।६।

(२) 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' १।१।२० के महाभाष्य में।

अर्थ निम्न प्रकार से किया है:—(१) मकानो का समुदाय ग्राम कहा जाता है, जैसे गाँव जल गया (२) वाटपरिक्षेप प्राकार से घिरा हुआ भाग, जैसे गाँव मे प्रविष्ट हो गया। (३) मनुष्यसमुदाय, जैसे गाँव भाग गया अथवा आ गया। (४) जंगल, खेत, तालाब, चौहद्दी के घर सभी भाग गाँव कहे जाते हैं। ऋग्वेद २।१२।७ में ग्रामशब्द जनपदअर्थ में आया है तथा १।४४।१० तथा १०।१४९।४ मे ग्रामशब्द गाँव के अर्थ मे आया है। ऋग्वेद ३।३३।११ मे ग्रामशब्द समूहअर्थ मे है। इसमे विश्वामित्र ने नदियो से स्तुति की है। उसमें 'भरता: सन्तरेयु' गव्यन् ग्राम:' यह कहा है। इसका अर्थ यह है:—हे नदियो! आप लोगो ने मेरे उतरने की अनुज्ञा दे दी है, तो मेरे बाद भरत; अर्थात् हमारे वंश के लोग भी (भरत लोगो का समूह भी) उतरने की इच्छा से आये तो आनन्द से उतर जायँ। हाप्‌किस् 'गव्यन् ग्राम.' का 'लूटनेवाला गिरोह' अर्थ कर रहे है, वह बिल्कुल असंभव है।

चित्रायु—एक नदी का नाम है, जो आजकल चित्राल के नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद ६।४९।७ मे इसका वर्णन है। मंत्रार्थ कन्या मे है। आश्वलायन श्रौतसूत्र ७।३ यह एक नदी है।

चेदि—१. वे० इ० "यह एक जाति का नाम है, जो अपने राजा कशु के साथ दान-स्तुति में ऋग्वेद[1] के अन्त की एक ऋचा मे आता है। वहाँ पर उनकी उदारता असीम कही गई है। बाद मे गाथा मे वे मत्स्यादि के साथ आते है और बुन्देलखण्ड[2]

(१) ८।५।३७-३९।

(२) लासन इण्डिस्चेआल्टर फिम्स कुण्ड १२।६८८ एन् ३, जिमर

में रहते थे। वैदिक काल में भी वे उसी क्षेत्र में बसे थे।

२. जिमर, लासन और ओल्डनवर्ग का भी यही मत है। और पार्जीटर का भी मत है। (वे० इ०)

३. जाग्राफी अर्ली बुद्धिष्ट पृष्ठ १६ "प्राचीन चेदिदेश यमुना के पास था और कुरु से मिला हुआ था, जो आजकल के बुन्देलखण्ड और उसके आसपास के हिस्से मे था। चेतीय जातक ४२२ मे कहा गया है कि यहाँ की राजधानी सोत्थिवतीनगर था, जो महाभारत की शुक्तिमती व शुक्तिसाह्व से मिलता है। अंगुत्तरनिकाय ३।३५५ में चेदिराज्य के मुख्य नगर सहजाति और त्रिपुरी लिखे है। वेदभव जातक ४८ मे काशी से चेदि तक जो सड़क थी, उसपर चोर लोग रहते थे, ऐसा लिखा है। वेस्सतर जातक ६।५१४-५१५ मे कहा गया है कि चेत्तिरट्ठ जेतुत्तरनगर से ३० योजन दूरी पर था। जेतुत्तरनगर बसुवार की जन्मभूमि थी। चेदि मे डिबरपार्क (हरिणों का बगीचा) था, यह प्राचीन वंशस्थान मे लिखा है। ससुक्त निर्वाण ५।४३६ मे लिखा है कि चेदि मे सहनञ्चनिक नामक स्थान था।"

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ४८ "चेदि बुन्देलखण्ड तथा मध्यप्रदेश का कुछ भाग है। यह पश्चिम मे कालीसिंधु और पूर्व मे टौंस से घिरा हुआ है। यह बौद्धों की चेटि है। चँदेरी चेदि (चन्द्रावती) या यूनानियों की संद्रावति को कहते हैं, यह टाड का मत है (राजस्थान १।४३ नोट)। यह बुन्देल-

आल्टिन डिस्चेजलेवेन १२६, पार्जीटर जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी १९०८।३३२, ओल्डनवर्ग बुद्ध ४०२।

खण्ड मे एक नगर है, जो कृष्ण द्वारा मारे गये शिशुपाल की राजधानी था (जे० ए० एस० बी० वालूम १५ और ७१ पृ० १०१)। यह ललितपुर से १८ मील पश्चिम है। चॅदेरी के खण्डहर आधुनिक नगर से ८ मील उत्तर पश्चिम हैं (जे० ए० एस० बी० १९०२ पृ० १०८ नोट)। आइनेअकबरी मे चॅदेरी एक पुराना नगर और किला बतलाया गया है। डाक्टर फुहरर् (एम० ए० आई०), जनरल कनिंगहम (आरकीयो लाजिकले सर्वेरिपोर्ट ९।१०६) और डाक्टर बूलर (विक्रमाङ्कचरित १८। ९५) के अनुसार डाहल मण्डल या बुन्देलखण्ड पुराना चेदि है। डाहल नर्मदा से प्रारम्भ होता है। स्कन्दपुराण रेवाखण्ड अध्याय ५५ मे मण्डल चेदि का दूसरा नाम कहा गया है। मण्डल या टालेमी का मण्डली एक राज्य था, जो शोण तथा नर्मदा के उद्गम की उच्चभूमि मे अवस्थित था (मैक्क्रिन्डले का टालेमी पृ० १६८)। गुप्तनरेशो के काल मे चेदि की राजधानी कलंजर थी तथा महाभारतकाल मे शुक्तिमती थी। चेदि त्रिपुरी भी कहलाती थी और उसकी राजधानी तेवर थी, जो जबलपुर से ६ मील है (एपीग्राफिया इण्डिका १।२२०। २५३ तथा हेमकोश)। तेवर डाहल की राजधानी थी (अलबरुनी की इंडिया खण्ड १ पृ० २०२)। अनर्घराघव (७।११५) के अनुसार महिष्मती कलचुरियो के काल मे चेदि मण्डल की राजधानी थी।

नन्दलाल डे ने पृ० १०१ मे कोलाहलपर्वत को इस प्रकार माना है.—(१) गया मे ब्रह्मयोनिपर्वत (वायुपुराण १।४५, डा० आर० एल० मित्रा का बुद्धगया' पृ० १४-१५)। इसमें

मुण्डपृष्ठपहाडी भी है, जिसमे गदाधर के चरणचिह्न है। (वही दो अध्याय ५०, श्लोक २४)। (२) चेदिदेश मे पर्वतीय श्रेणी (महाभारत आदिपर्व अध्याय ६३)। मिस्टर बेगलर ने बिहार की कावाकोलश्रेणी को माना है (आरकीयोलाजिकल सर्वेरिपोर्ट वालूम ८ पृ० १२४)। परंच यह पता ठीक नहीं मालूम होता। वह तो बुन्देलखण्ड की दक्षिण-पश्चिम की बन्देरे की श्रेणी है, जिससे केननदी (पुरानी शुक्तिमतीनदी) निकलती है (महाभारत आदिपर्व अध्याय ६३)।

कनिगहम ने चेदि का नाम नहीं लिखा है, परंच जजहोती नाम का एक देश माना है, जो इस प्रकार है। (पृ० ५५०) ह्वेनसांग चिचिटो के देश को उज्जैन के उत्तर-पूर्व मे १००० ली या १६७ मील की दूरी पर मानता है। क्योकि इस नाम का पहला और दूसरा अक्षर चीनी भाषा का है। अत. यह निश्चित है कि इसका सम्बन्ध दो भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं से होगा। चिचिटो को आबूरिहान ने जजहोती या जभौती माना है, जो राजधानी को कजूराहहझौ कहता है और इसे ३० परसंग मानता है या कन्नौज के दक्षिण-पूर्व मे ९० मील मानता है। वास्तविक स्थिति दक्षिण मे है और दूरी ६० परसंग या १८० मील है। सन् १३३५ ए० डी० मे इस राजधानी मे इब्नबतूता आया था, जो इसको कजूर कहता है। उसका कथन है कि "यहाँ पर एक झील भी है, जिसकी लम्बाई एक मील है। इसके चारो ओर मूर्ति के मन्दिर भी हैं। वे अब भी खजूराहो मे हैं और उत्तरी भारत के सारे मन्दिरो मे वे ही सबसे सुन्दर और विशाल हैं। "आबूरिहान और इब्नतूता के वर्णन से यह

स्पष्ट है कि जजहोती का बुन्देलखण्ड से संबंध है। चीनी यात्री के अनुसार चिचिटो का घेरा ४००० ली या ६६७ मील है। इस समय बुन्देलखण्ड में गंगा और यमुना के दक्षिण का सारा देश शामिल है। पश्चिम मे बेतवानदी से विन्ध्यवासिनी के मन्दिर तक, पूर्व में चॅदेरी, सागर तथा बिलारी के जिले शामिल है और दक्षिण मे नर्मदा तक। किन्तु यह सीमा जज-होतिया ब्राह्मणों की भी है, जो बचनन के मतानुसार उत्तर मे यमुना तक और दक्षिण मे नर्मदा तक फैली थी तथा पश्चिम मे बेतवानदी पर स्थित उर्च से पूर्ण मे बुन्देलताला तक। बेतवानदी एक पानी की धारा है, जो बनारस के पास गङ्गा मे गिरती है। गत २५ वर्षो में मैं देश की प्रत्येक दिशा मे घूमा और यह मालूम किया कि जजहोतिया ब्राह्मण सारे प्रान्त मे फैले है। किन्तु बेतवा के पश्चिम तथा यमुना के उत्तर मे एक भी जजहोतीब्राह्मणकुल नहीं है। मैने उन्हें उर्च के पास बर्वसागर मे तथा यमुना पर स्थित हमीरपुर के पास मोहदा में, केननदी के पास राजनगर और खुजराहो मे तथा चॅदेरी और भीलस्थ के मध्य मे उदयपुर, पठारी और ईरान मे पाया। चॅदेरी मे भी जजहोतिया बनिये है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि यह नाम किसी खास कुल का नहीं है, किन्तु इसमे साधारणतः बहुत से लोग आ जाते है। ब्राह्मणो को यह नाम यजुर्होत से मिला। किन्तु यह नाम बनियो तथा ब्राह्मणों के लिये प्रयुक्त होता है, अतः यह निश्चय है कि यह नाम उनको उनके देश जजहोती के कारण मिला है। यह मत ब्राह्मणो के जातिभेद के आधार पर और भी पुष्ट होता है। जैसे कन्नौज से कन्नौजिया, गोड़ से

गौड़, सरजूपार से सरजूपारिया या सरवरिया, दक्षिण मे द्रविड़ से द्राविड़, मिथिला मे मैथिल, इत्यादि। ये उदाहरण इस बात को अच्छी तरह पुष्ट करते है कि जितने भेद ब्राह्मण जातियों मे पाये जाते हैं, वे भिन्न-भिन्न देशो के कारण ही हैं। अतः मेरा विश्वास है कि यह देश जजहोति ही है, जहाँ पर जजहोतिया ब्राह्मण रहते थे। खजुराहो १६२ घरो का एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ पर १००० से कम की आबादी है। यहाँ पर जजहोतिया ब्राह्मणो की भिन्न भिन्न सात श्रेणियाँ और उनके घर हैं। ११ घर चंदेल राजपूतो के हैं, जिनके सरदार का कथन है कि हम पृथ्वीराज के विरोधी राजा परमालदेव के वशज है। गाँव के चारो ओर मंदिर हैं और ये पश्चिम, उत्तर तथा उत्तर दक्षिण तीन भागों मे विभाजित है। पश्चिम भाग जो ब्राह्मणों के मन्दिरो से बना है, शिविसागर के तट पर है, जिसकी लम्बाई वर्षा मे उत्तर से दक्षिण तक ¾ मील हो जाती है और गर्मी मे ६०० फीट से अधिक नहीं होती। यह ग्राम से ¾ मील दूर है और दक्षिण पूर्व मे जैनी मन्दिरों से एक मील दूर है। क्योंकि पश्चिमी भाग और खजूरसागर के मध्य में कुछ नहीं है। अतः प्राचीन नगरी की सीमा झील के पश्चिमी तट से आगे विस्तृत न रही होगी। झील के तीन किनारों पर नष्टप्राय भाग फैले है, जो उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई मे ४५०० फीट मे और पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई मे २५०० फीट मे है, तथा उनका घेरा १४००० फीट या ¾ मील है। यह ह्वेनसाँग द्वारा वर्णित ६४१ ए० डी० मे राजधानी के नाम से मिलती है। किन्तु कुछ समय पश्चात् खजुराहो का नगर

पूर्व और दक्षिण मे खजूरनाले तक फैला था और इस समय का घेरा ३½ मील से कम न था। क्योकि महोबा और खजुराहो की एक ही नाप थी। अतः यह बतलाना कठिन है कि ह्वेनसाँग के समय वहाँ की राजधानी कौन थी? महोबा या महोत्सवनगर का नाम चंदेलराजवंश की उन्नति के साथ सबद्ध है। मेरे विचार से खजुराहो जजहोतिया ब्राह्मणो की राजधानी रहा होगा। अतएव ह्वेनसाँग के आने के समय यह जजहोति की राजधानी अवश्य रहा होगा। यह उज्जैन से ३०० मील से अधिक है, अर्थात् यात्री की बतलाई हुई दूरी से दुगुनी दूर। अतएव यात्री की १००० ली २००० ली में या ३३३ मील मे बदल देनी चाहिये, जिससे यह वास्तविक माप से मिल सके। ह्वेनसाँग के विचार से जजहोतीराज्य का घेरा ४००० ली या ६६७ मील है। अतएव इस राज्य मे सिंधु से दोन तक फैला हुआ स्थान सम्मिलित था। उत्तर मे गंगा से लेकर दक्षिण मे न्यासराँय और बिल्लहारी तक। इसमे कालिंजर का प्रसिद्ध किला भी था। जब मुसलमानो द्वारा महोबे का विजय किया गया तब यह किला चदेल राजाओ की राजधानी बन गया। चँदेरी का प्रसिद्ध किला भी इसी मे था, जो कि पूर्वी मालवा के मुसलमानों की राजधानी बन गया।" (इसके बाद महोबानगर का वर्णन है)।

५. भारतीय इतिहास की रूपरेखा जिल्द १ पृ० २०६ मे "वसु ने यादवो का चेदिराज्य जीत लिया। इसलिये उसे चैद्योपरिचर (चैद्य + उपरि + चर = चैद्यो के ऊपर चलनेवाला) की पदवी मिली।"

वस्तुतः यह एक देश[1] का नाम है और यह शब्द क्षत्रिय-समानजनपदवाची है। इसका राजा 'चैद्य' कहा जाता है। एक-वचन मे 'चैद्य' रूप बनता है, बहुबचन मे 'चेदयः' ऐसा रूप बनता है। दोनो रूप ऋग्वेद मे दानस्तुति मे आये है। चेदि-देश के राजाओ के दान की स्तुति है। कशु के दान की प्रशसा और वीरता की भी प्रशसा है। कशु ने दश राजाओ को जीत-कर ब्रह्मातिथिऋषि की सेवा मे लगाया था। यह चेदिदेश यमुना से नर्मदा तक फैला हुआ था। प्रयाग के पास यमुना इसकी उत्तरी सीमा थी और जालौन जिले मे यह यमुना के पार भी था। यह वत्सदेश से मिला था। दक्षिणी सीमा नर्मदा थी। इसकी राजधानी महाभारत के समय शुक्तिमतीनगरी थी, जो आजकल चँदेरी के नाम से प्रसिद्ध है। और आज से एक हजार वर्ष पूर्व त्रिपुरी थी, जो आजकल नर्मदा से तीन कोश दक्षिण तेवर नाम से जबलपुर के समीप

---

(१) वायु० पू० ४५ यह देश भारत मे है। पद्म० आदि० ६।३५ यह देश भारत मे है। मार्क० ५५।१६ यह देश पूर्वमुख कूर्म के दक्षिण पाद मे है। गरु० पू० ५४।११ यह देश भारत मे पूर्व दिशा मे है। महा-भा० भी० (नि० चि०) ६।४० यह देश भारत मे है। अष्टाध्यायी 'वृद्धे-त्कोशला जादाञ्यङ्' ४।१।११७। महाभा० आदि० (म०) ५३।२३ (नि० चि०) ६३।१२, विष्णु० ध० १।६।३ यह देश पूर्व मे है। २। १७।२२ यहाँ लोहे की खाने है। बृहत्सहिता १४।८ तथा १६।३ यह देश भारत मे है। पाराशरस० यह देश आग्नेय मे है। बृहत्कथासग्रह ५।५६ इस देश के निवासियो ने वत्सराज के व्रत के साथ व्रत किया। कथासरित्सागर लावणक लम्बक ५।५८ दिग्विजय के प्रारम्भ मे उदयन ने सिधुवर्मा को

प्रसिद्ध है। इसकी पश्चिमी सीमा निषधदेश था। पूर्वी सीमा का निश्चय नहीं। महाभारत आदिपर्व (म०) ५३।२३ (नि०) ६३।१२ (चि०) ६३।१२ में एक कथा लिखी है कि कोलाहल-गिरि ने चेतनायुक्त हो शुक्तिमतीनदी को घेरा। वसु राजा ने पैर से पर्वत का ताड़न किया। उस प्रहार से पर्वत मे छिद्र हो गया और शुक्तिमतीनदी पर्वत पारकर निकल गई। यह कथा शुक्तिमती-नगरी के समीप मे हुई। चदेरी के समीप अब भी बेतवानदी एक पर्वतमध्य से काटकर पार करती है। इससे स्पष्ट चदेरी शुक्तिमतीनगरी है और उसके समीप का पर्वत कोलाहलगिरि है तथा शुक्तिमतीनदी बेतवा का ही नाम है। यह देश यमुना के समीप है; क्योंकि चेदि के राजो परिचरःनामक राजा ने यमुना की मत्स्य से उत्पन्न बालक को स्वयं ले लिया और लड़की मल्लाह को दे दी। यह कथा महाभारत[1] मे है। यू० पी० के जालौन जिले मे कालपी के आग्नेय दिशा मे बेतवा के तट पर बसा हुआ परा-सन नामक गाँव पराशर का स्थान आज भी लोगो के द्वारा कहा जाता है। महाभारत मे वसु के शिकार का वर्णन यमुना के उत्तर है। और पक्षी द्वारा वीर्य भेजना और वीर्य का यमुना मे गिरना, यमुना के मत्स्य द्वारा उसका खाया जाना और उससे गर्भ का होना, और उन बालक-बालिकाओं को वसु को देना—चेदिदेश मे यमुना के होने और यमुना के उत्तर भी चेदिदेश के होने के प्रमाण दे रहे है। यू० पी० के जालौन जिले मे कालपी-

---

चेदिदेश दे दिया। बृहत्कथासग्रह ६।५ नरवाहनदत के जन्म का उत्सव चेदि और वत्स मे हुआ।

(१) महाभा० आदि० (सु०) ५७।१ से आरम्भ।

नगर के पूर्व यमुना के उत्तर तट पर यमुना से कुछ मील दूर पर व्यास का स्थान कहा जाता है। नन्दलाल डे ने जो चेदि की सीमा पश्चिम में कालीसिंधु और पूर्व मे टौंस को बतलाया है, उसमे कोई प्रमाण न होने से उसका माना जाना संभव नहीं। कोलाहलगिरि जिस पर्वतश्रेणी को माना है, वह भी ठीक नहीं। क्योंकि उस पर्वत का किसी नदी द्वारा भेदन नहीं हुआ है, जैसा कि महाभारत आदिपर्व मे दिखलाया गया है। वह चँदेरी के समीपवाला पर्वत ही हो सकता है, जिसको काट-कर बेतवानदी निकली है। बेतवा ही शुक्तिमतीनदी है। केन-नदी को शुक्तिमती मानना निर्मूल है। चँदेरी ही शुक्तिमती-नगरी है। कथासरित्सागर के अनुसार इसकी उत्तरी सीमा वत्सदेश से मिली मालूम पड़ती है और उसका विभाग यमुना के द्वारा होता है। महाभारत के सभापर्व मे भीम के दिग्विजय ने कालंजर के विजय का वर्णन न होना कालंजरदेश चेदि के अवान्तर मे प्रतीत होता है। जागराफी अर्ली बुद्धिष्ट मे चेदिदेश की सीमा कुरुदेश से मिली थी, यह कहा है। यह बात सरासर प्रमाणाभाव से निर्मूल है। चेदि को बुन्देलखण्ड मे मानना और मेरठ जिले मे कुरुदेश को मानना और दोनों की सीमा को एक करना समझ मे नहीं आता। यदि मिली थी तो बीच का पंचाल कहाँ गया?

जनरल कनिंगहम ने चेदि शब्द नहीं लिखा, तब भी उसके स्थान मे जजहोती नाम का देश माना है और उसको भी अपनी मनमानी युक्तियो से निश्चित किया है, जो करीब-करीब दूसरा चेदि ही कहा जा सकता है। कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं

है जो जजहोतीया नाम का देश और उसे जजहोतिया ब्राह्मणों की राजधानी सिद्ध कर सके। इस देश का घेरा जो कनिगहम द्वारा दिया गया है, वह भी कनिगहम की बुद्धि द्वारा निर्मित और निर्मूल है। भारतीय इतिहास की रूपरेखा का कथन ' वसु ने यादवों का राज्य जीत लिया, इसलिये उसे चैद्योपरिचर पदवी मिली"-यह कथन प्रमाणाभाव से माना नहीं जा सकता। 'चैद्योपरिचर' शब्द का अर्थ भी चैद्यो के ऊपर चलनेवाला नहीं है। महाभारत[1] मे 'राजोपरिचर' राजा का नाम लिखा है और 'चैद्य' उसका विशेषण है। उसका 'चेदिदेश का उपरिचर नामक राजा' ऐसा अर्थ है। श्रीमद्भागत ९।२२।५ मे वसु का पुत्र उपरिचर लिखा है; न कि वसु की चैद्योपरिचर पदवी थी।

वैदिक इन्डेक्सकार ने चेदिजाति का वैदिक काल मे भी बुन्देलखण्ड मे ही बसना माना है। इससे 'ऋग्वेद के काल मे आर्य लोग पंजाब के आगे का भूगोल नहीं जानते थे'-इसके समर्थको का मत निर्मूल है। (माघ काव्य सर्ग २ मे) चेदि के राजा शिशुपाल की राजधानी माहिष्मती मानी है और यहाँ हम उसको शुक्तिमती लिख रहे है, इससे विद्वानों को भ्रम न हो जाय। महाभारत सभापर्व (मद्रास) अध्याय २६ श्लोक १२॥ की (ग॰) टिप्पणी मे 'शिशुपालपुरं राजन् ययौमाहिष्मतींपुरीं' अधिकः पाठः—यह लिखा है। शायद यही पाठान्तर माघ को देखने को मिला हो। इससे उन्होंने माहिष्मती नाम लिख दिया हो। परन्तु चित्रशालाप्रेस, पूना, निर्णयसागर, बम्बई और सुथंकर, पूना तथा मद्रास की पुस्तको के मूलपाठ मे राजधानी

(१) महाभा० आ० (सु०) ५७।१ से प्रारम्भ।

का कोई नाम नहीं लिखा है। महाभारत आश्वमेधिक (चि०) ८३।३, निर्णयसागर ८४।२ मे शुक्तिमती का 'शुक्तिसाह्वया' नाम मिलता है, जो शिशुपाल के पुत्र शरभ की राजधानी थी। महाभा० आश्व० अर्जु० (चि०) २२।५० (म०) १८।४८ में शुक्तिमती शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु की राजधानी लिखी है। ऐसा भी सभव है कि छपते समय प्रथम पुस्तक मे शुक्तिमती ही पाठ हो और संशोधक के प्रमाद से शुक्तिमती का माहिष्मती पाठ हो गया हो और तब से वही अन्धपरंपरा चली आती हो। क्योंकि माहिष्मती अनूपदेश की राजधानी थी और नर्मदा के तट पर थी। वह चेदि की राजधानी नहीं हो सकती। दोनों पाठो मे छन्द एक ही रहता है। कोषकारो ने इस देश का नाम 'डाहल' भी लिखा है।

जन—१. वे० इ० "इसका अर्थ एक व्यक्ति के सिवाय सामूहिक रूप में भी आता है। साधारणतया यह ऋग्वेद[1] तथा बाद के साहित्यो मे लोग अथवा जाति के अर्थ मे आता है। इस प्रकार ५ जातियाँ (पंचजनाः पचजनास.) विभिन्नरूप में उल्लिखित है। ऋग्वेद की एक ऋचा मे यदु लोग (यादव जन) तथा यदूज् (यादवाः) पर्यायवाची शब्द है। पुनः राजा (राजन्) लोगो की (जनास्य[2]) रक्षा करनेवाला गोपाः बतलाया गया है। राजा और जन[3] के और बहुत से उल्लेख

(१) ८।६।४६-४८।

(२) ऋग्वेद ३।४३।५, इसलिये सोम 'गोपति जनस्य' लोगो की रक्षा करनेवाला ऋ० ६।३५।५ मे कहा गया है।

(३) ऋग्वेद ५।५८।४।

मिलते हैं। भरताज् लोग (भारतजन[1]) उल्लिखित है। हाप्-किस[2] की तरह यह सोचना कि जन लोगों से भिन्न एक क्लान अथवा गिरोह (ग्राम) रहा होगा, उचित नहीं। यह कहना कठिन-सा है कि लोग किस प्रकार विभाजित थे। जिमर[3] ऋग्वेद[4] के एक अवतरण से यह युक्ति पेश करता है कि लोग

(१) ३।५३।१२ और भरत को भी देखिये, और १०।१७४।५ बराबर अथर्ववेद मे १।२६।६ को भी देखिये। (वस्तुतः अथर्ववेद मे भी 'जन' शब्द 'लोग' अर्थ मे ही है)

(२) हाप्किस रेलीजन्स आफ इडिया २६।२७ यह सत्य है कि भरताज् गव्यन् ग्रामः (लूटनेवाला गिरोह) पाया जाता है। ऋग्वेद ३।३३।११ परन्तु ग्राम वहाँ साधारणतया प्रयोग मे आता है, न० १० को देखिये।

(३) एल्टिन्डिस्चेज्लेवेन १५६।१६०।

(४) २।२६।३।

(वस्तुतः इसका अर्थ यह है—जो यजमान श्रद्वायुक्त मन से देवताओ के पालक ब्रह्मणस्पति की हवि से अर्थात् पुरोडाश आदि से सेवा करता है, वही यजमान जन से अर्थात् लोगो से और विश् से अर्थात् बनियो या प्रजा से अन्न द्वारा सेवा किया जाता है। और वही जन्यना=अपने बन्धुजन और पुत्र=अपने पुत्रो से धन से पूर्ण किया जाता है और वही नृ=मनुष्यो से अर्थात् नौकर-चाकर आदि मनुष्यो द्वारा अन्न से बढ़ाया जाता है। इसमे आये हुए शब्द जनृ, विश्, जन्मन, पुत्र और नृ क्रम से है। अगर जन को बडा माने और विश् को उससे छोटा माने, और विश् से जन्मन को, उससे पुत्र को छोटा माने और उससे नृ को छोटा माने तो वह भी नही बनता। क्योकि पुत्र से छोटा नृ परिवार नही हो सकता। और नृ को बड़ा माने और उससे पुत्र को छोटा माने और उससे जन्मन को, उससे विश् को छोटा माने और विश् से जन को छोटा माने, यह भी

विश् मे विभाजित थे और विश् परिवारो से मिले हुए ग्राम अथवा वृजन मे और ग्राम छोटे छोटे परिवारो मे विभाजित थे। वह सोचता है कि चार भाग एक स्थान पर जन, विश्, जन्मन तथा पुत्रा–पुत्र से किये गये प्रश्न मे है। और वह तर्क करता है कि प्रत्येक गाँव के लोग अपने सम्बन्धो पर आधारित थे। परन्तु यह बहुत सन्देहात्मक है कि यह विभाग ठीक से माना जा सकता है। जन का विभाग विश् मे संभव प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी पुष्टि ऋग्वेद[1] मे दूसरे अवतरण मे होता है, जो विश् लोगो को लड़ाकू लोगो का एक प्रदेश मानता है। और इस प्रकार जैसे हामरिक समय और प्राचीन जर्मनी मे संबंध का आधार सैन्य व्यवस्था थी। परन्तु विश् का और विभाजन जो बहुत से ग्रामो मे हुआ, वह संदेहात्मक है। जिमर[2]

नही बन सकता। इससे जिमर का आधार निराधार है। इसमे 'ग्राम' शब्द का पता भी नहीं है। इसके बल पर जिमर की कल्पना केवल साहसमात्र है)

४ इसके लिये ऊपर की टिप्पणी देखो।

(१) १०।८४।८ विशः भी अन्य अवतरणो मे वही अर्थ रखता है। ४।२४।४ तथा ५।६१।१ तथा ६।२६।१ तथा ७।७९।२ तथा ८।१२।२९। परन्तु यह कोई आवश्यक नही है कि वही अर्थ निकले। लेकिन १०।९१।२ मे विश् तथा जन में साफ अर्थो की असमानता है।

(वस्तुत ४।२४।४ मे विशः का अर्थ प्रजा होता है। युध्मा विशेषण से युद्ध करनेवाला अर्थ होता है। ६।२६।१ में विश् का अर्थ मनुष्य है। शूरसातौ का अर्थ सग्राम है। ७।७९।२ मे भी प्रजाअर्थ है। ८।१२।२९ मे भी प्रजाअर्थ है)।

(२) वही पुस्तक १६१। यह भी ऋग्वेद ५।५३।११ जहाँ पर मरुत्स शर्धव्रातगण में विभाजित है पर विश्वास करता है। परन्तु ये शब्द

भी मानता है कि ग्राम[1] अथवा वृजन[2] दोनों मे से कोई भी विश् का विभाजन अर्थ नहीं रखते, जब कि विश् युद्ध के लिये प्रयोगों मे लाया जाता है। क्योंकि दोनों शब्द हथियारबन्द जत्थे का अर्थ प्रकट करते है। वह ग्राम जत्थे का और नाम जैसे व्रा[3] अथवा व्राज[4] मे पाता है।"

"परन्तु यह कहना काफी है कि पहला अवतरण बहुत ही संदेह योग्य[5] है, और बाद का अवतरण युद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इससे यह सोचना बहुत कठिन है कि ग्राम का वैदिक समय मे विश् और गोत्र से क्या सम्बन्ध रहा होगा? ग्राम और विश् का अर्थ स्पष्ट न होना परेशानी को

अस्पष्ट है।

(वस्तुत: वायु के ४६ भेद माने है, उनके सात-सात के सात गण है। ऋग्वे० मे यह मन्त्र मरुत की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है कि हे मरुत! आपके उन बलो और उन समुदायों का हम स्तुतियों के साथ हविःप्रदानरूप कर्म से अनुगमन करे। इस मत्र मे वायु के व्रात और गणो का वर्णन है। मनुष्यो के समुदाय से कोई तात्पर्य नहीं। फिर भी जिमर मनुष्यो मे खींच रहे है)।

(१) ऋग्वेद ३।३३।११ न० ५ देखिये।

(२) ऋग्वेद ७।३२।२७ तथा १०।४२।१० (वस्तुत ७।३२।२७ मे वृजन का अर्थ 'हिसक' है और १०।४२।१० मे 'बल' है)

(३) ऋग्वेद १।१२६।५ (विश्या इव व्राः)। (वस्तुतः यहाँ पर सायण ने 'विशाव्राताः' अर्थात् 'प्रजाओ के समूह' अर्थ किया है)

(४) ऋग्वेद १०।१७६।२ बराबर अथर्व० ७।७२।२। (वस्तुतः इस मत्र मे 'व्राज' शब्द का अर्थ 'घर' होता है। शब्द 'व्राजपति' है, उसका अर्थ 'गृहस्वामी' है)

(५) जिमर वेदिस्चेस्टडियन २।१२१।३१६ से तुलना करो।

कहलाता है। यदि विश् एक निश्चित क्षेत्र का भाग है, तो ग्राम निस्सन्देह एक जिला का भाग है। परन्तु यदि विश् सम्बन्ध का एक यूनिट रहा होगा, तो ग्राम मे विभिन्न विशो के परिवार शामिल रहे होगे। अथवा कभी-कभी विश् के समान रहा होगा किवा विश् के एक भाग से बना रहा होगा। परन्तु किसी भी दशा मे राज्य अपने प्राचीन रूप मे जातिप्रथा के अभ्युदय से अवश्य सुधारा गया होगा और राजनीतिक दृष्टि से जातीय विधान रखा गया होगा। लोग परिवारो मे विभाजित थे। व्यक्तिगत परिवार एक घर (कुल) मे रहते हुए या तो मिश्रित परिवार (भाइयो) से बनकर बना अथवा पुत्र ने पिता के साथ रहते हुए परिवार बनाया और जाति से बाद के गोत्र में। उसमें वे सब लोग शामिल थे, जो एक ही पितामह से उत्पन्न थे। गोत्र शब्द लैटिन शब्द 'जेन्स' तथा ग्रीक शब्द 'एवास्' का तात्पर्य दिखलाता है। सभवतः विश् क्यूरिया के समान का शब्द है। ओष्नटान तथा जन, ट्राइवस तथा ओबा[1] के समान हो सकता है। ये तीनो भाग विश्, जन्तु तथा दस्यु ईरानियन संसार के शब्दो मे देखे जाते है। जहाँ पर विश् शब्द का प्रयोग वहाँ भारतीय विश् की भाँति बतलाता है कि इस मुख्य प्रान्त के लोगो मे रक्त-संबन्ध रहा होगा। सभवतः विचस, पैगस, चिवितस जर्मन राजनातिशास्त्र के शब्द जो टेसीटस की जर्मेनियाँ[2] में वर्णित है (इन शब्दो में भी हम वही अर्थ देख

(१) तुलना करो वही पुस्तक २।३६२ से।

(२) चेप्टर ७, जिमर और भी बहुत से उद्धरण देता है, जिसके लिये प्रमाण इस्कडर की प्रिहिस्टारिक एन्टीक्विटीज ३६३ से प्रारम्भ।

सकते है)। परिवार जन के तीसरे भाग के रूप में ऋग्वेद[1] के एक स्थान पर आता है, जहाँ पर गृह शब्द जन तथा विश् के विरोधात्मक अर्थ में लिखा गया है। संभवतः दूसरा[2] अवतरण अध्वर अथवा परिवार का यज्ञ-जन अथवा विश मे उलटे रूप मे आते हैं। जैसा कि जिमर[3] सोचता है कि "ग्राम बड़ी दो यूनिटस् के साथ रहा होगा," ऐसा नहीं। परन्तु यह वैदिक आर्यों का महत्वपूर्ण विषय है कि राजा एक जातीय पवित्र

अभी इसकी निश्चित समानता ज्ञात नही हो सकी है।

(१) १०।६१।२ जहॉ पर कि जनम् जनम्, विशम् विशम् शब्द आते है और जहाँ पर असमानता का अर्थ अवश्य आता है।

(वस्तुतः यह मत्र ऋग्वेद मे अग्नि की स्तुति मे आता है। इसका अर्थ यह है कि दर्शनीय विभूतिवाला अतिथिभूत अग्नि (यजमानो के) घर-घर मे तथा वन-वन मे शोभित होता है और मनुष्यो का हितकारी अग्नि प्रत्येक जन, अर्थात् मनुष्य को छोड़कर नही जाता है। और विश् मनुष्यो का हितकर वह अग्नि मनुष्यो के पास रहता है। इसमें 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' और 'मनुष्य' है और 'जन' शब्द का अर्थ 'मनुष्य' है। दोनो शब्द लोग या प्रजा को कह रहे है)

(२) ऋग्वेद ७।८२।१

(वस्तुतः यह मन्त्र इन्द्र और वरुण की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है कि हे इन्द्रावरुण! आप दोनो हमारे विश्; अर्थात् सेवक लोग जो जन (लोग) पुत्र-पौत्रादि रूप है उनको यज्ञानुष्ठान के लिये कल्याण दे। और जो हमको मारना चाहते है, उन दुष्टाभिसधियो को हम सग्राम मे जीते। यहॉ पर भी 'जन' शब्द का अर्थ देश का कोई भाग अर्थ नही है, प्रत्युत प्रजा, वैश्य और लोग ही अर्थ है)

(३) आल्टिन डिस्चेजलेवेन ४३५।

अग्नि रखता था तो उसमें कोई ऐसा प्रमाण[1] नहीं मिलता जो राजा तथा व्यक्तिगत परिवार के मध्य का काम कर रहा हो।"

"वास्तव मे एक राज्य के भाग गोत्र और जन है, जैसे कि अन्त में जेन्स और ट्राइवस, एबास और ओबा वही मुख्य है। यह हो सकता है कि पुराने ग्रन्थो मे विश् उसी रूप से आया हो, जो कि बाद को गोत्र कहा गया (विश् देखिये)। यह स्पष्ट हो जाता है जब कि ब्राह्मण-काल मे समाज का विधान निर्मित होता है। जाति अथवा लोग अब भी हैं और बहुत पहले भी थे। परन्तु भाग विश् लुप्त हो गया। वास्तविक विभाजन अब विभिन्न जातियों पर रहा। परन्तु हरएक जाति मे जो नाना प्रकार वे विभाग है, वे प्राचीन गोत्र पर निर्धारित है।"

२. हापकिस् का मत है कि जन लोगो से भिन्न एक क्लान अथवा गिरोह (ग्राम) रहा होगा। (वे० इ०)

३. जिमर "लोग विश् मे विभाजित थे और विश् परिवारो से मिले हुए ग्राम अथवा वृजन मे, और ग्राम छोटे-छोटे परिवारों में विभाजित थे। वह यह सोचता है कि चार भाग एक स्थान पर जन, विश्, जनमन तथा पुत्राः यह पुत्र से किये गये प्रश्न में हैं और वह तर्क करता है कि प्रत्येक गाँव के लोग अपने सम्बन्धो पर आधारित थे।" (वे० इ०)

वस्तुत इस शब्द का अर्थ 'लोग' है। वैदिक और लौकिक

---

(१) हिल्लेब्रान्ट वेदिस्केमाइथालोजी २।१२६, तुलना करो मेक डानल संस्कृत लिटरेचर १५८, वानस्क्राउटर इन्डियनस् लिटरेचर ऐण्ड कल्चर ३२।३३, जाली जेट्स चेरिफ्ट ड्यू श्चेन मार्गेन लान्डिश्चेन जेसलेस् चेफ्ट ५०।५१२ से प्रारम्भ।

संस्कृत में जहाँ कहीं 'जन' शब्द आया है, 'लोग' अर्थ मे ही प्रयुक्त है। ऋग्वेद ८।६।४६ मे तिरिन्दर राजा के दान का वर्णन है। उसमे यादव अर्थात् यदुवंशी राजाओ का जो धन बलपूर्वक अपहरण किया था, उसको उसने काण्ववत्स को दिया। ४७ वीं ऋचा मे तिरिन्दर राजा ने और ऋषियो के लिये जो दान किया, उसका वर्णन है। और ४८ वीं ऋचा मे तिरिन्दर के कण्व के लिये स्वर्णभार से युक्त चार ऊँटो के दान का वर्णन है और सेवा के लिये यदुवंशी लोगो के देने का वर्णन है। इसमे 'याद्वं जनं' शब्द आये हैं जिनका अर्थ 'यदुवंशी लोग' है। ऋग्वेद ३।४३।५ मे 'कुविन्मागोपाकरसे जनस्य' ऐसा पाठ है। यह मंत्र इन्द्र की स्तुति मे है। हे इन्द्र! आप हमको जनों का रक्षक बनाये, यह अर्थ है। तथा जन का हमको राजा बनाये, इत्यादि इन्द्र से प्रार्थना है। ऋग्वेद ९।३५।५ मे सोम की स्तुति मे सोम का विशेषण 'जनस्य गोपति' दिया है, जिसका अर्थ है 'सोम लोगो का स्वामी है'। ऋग्वेद ५।५८।४ मे मरुत् की स्तुति मे मरुत् से प्रार्थना है कि आप इस जन (यजमान) को ऐसा पुत्र दें जो राजा हो। ऋग्वेद ३।५३।१२ मे 'भारत जनम्' ऐसा पाठ आया है। अर्थ यह है कि विश्वामित्र से किया गया स्तोत्र भारत जन (भरत की सन्तान के लोगो) की रक्षा करता है। ऋग्वेद ३।३३।११ मे विश्वामित्र ने नदियो की प्रार्थना की है कि हमारे वश के भरत लोग यदि समूहरूप मे उतरने आये तो सुख से उतर जायॅ। इस मंत्र मे 'ग्राम' का अर्थ 'समूह' है, लुटेरो का गिरोह नहीं है। ३।३३।१२ मे भरतो के उतरने का वर्णन है। 'जन'' शब्द संस्कृतवाङ्मयमात्र

में किसी देश या भूमि के भाग, मनुष्यों के भाग के अर्थ में नहीं आता और लोग जनरूप मे विभाजित थे, यह भी कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद १०।८४।४ मे विश् शब्द का अर्थ प्रजा है। क्रोध के अभिमानी देवता से प्रार्थना है कि आप हमारी विरोधिनी प्रजा को आपस मे लड़ने के लिये तेज कर दे। यहाँ पर विश् शब्द देशवाची नहीं हो सकता। और सर्वत्र भी विश शब्द का अर्थ वैश्य या प्रजा होता है। कहीं भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि लोग विश् मे विभाजित थे और विश् परिवारो से मिले हुए ग्रामो में विभाजित था। सर्वत्र विश् शब्द का अर्थ जिमर ने जो कल्पन किया है, वह असम्भव है। 'पंचजनाः' मे 'जन' शब्द का प्रयोग 'लोग' अर्थ मे ही है, पाँच लोग, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ। इस प्रकार 'संसार के सभी लोग' होता है। जिनमे वर्णव्यवस्था थी, वे आर्य कहे जाते थे और वर्णव्यवस्थारहित लोग म्लेच्छ कहे जाते थे। जन और विश् दोनो शब्दो का 'देश' अर्थ मानना एकदम आकाश मे चित्रलेखन है। जिमर इत्यादि के कथन को वेदिक इन्डेक्सकार ने मुक्तकंठ से अस्वीकार किया है।

जनपद—१. वे० इ० "ब्राह्मणो मे यह शब्द राजा[1] के विरोध मे लोगों के लिये तथा पृथ्वी अथवा विस्तार[2] के लिये

---

(१) ऐतरेय ब्राह्मण ८।१४ (बहुवचन)। शतपथ ब्राह्मण १३। ४।२।१७।

(२) तैत्तिरीय ब्राह्मण २।३।६।६, बृहदारण्यकोपनिषद् २।१।२०, छान्दोग्योपनिषद् ५।११।५ तथा ८।१।५।

आता है। प्रजा[1] भी जनपद विशेषण से प्रकट होता है।"

वस्तुत. यह शब्द देशवाची है। शतपथ ब्राह्मण १३।४।२।१७ मे देशअर्थ मे इसका प्रयोग है। बृहदारण्यकोपनिषद् २।१।१८ मे देशअर्थ में प्रयोग है। छान्दोग्योपनिषद् ५।११।५ तथा ८।१।५ मे देशअर्थ मे प्रयोग है। शतपथ ब्राह्मण १४।५।१।२० मे जनपद के रहनेवाले चेतनाचेतन सभी जानपदे कहे जाते है। ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३।३ मे 'परेण हिमवन्तम् जनपदा.' अर्थात् उत्तर दिशा मे हिमालय के बाद जो जनपद हैं, वे उत्तरकुरु और उत्तरमद्र कहे जाते हैं। इसमे भी 'जनपद' का 'देश' अर्थ मे प्रयोग है।

जामदग्नि[2]—एक स्थान का नाम है, जहाँ पर वशिष्ठ और जमदग्नि ने तपस्या की थी।

तूर्घ्न—१. वे० इ० "तैत्तिरीयारण्यक ५।१ मे कुरुक्षेत्र[3] के उत्तरी भाग के रूप मे उल्लिखित है। इसका निश्चित स्थान अभी तक मालूम नहीं किया जा सका।"

२. बेबर का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुत. यह कुरुक्षेत्र का उत्तरी भाग है।

तूर्णाश—वे० इ० "ऋग्वेद[4] में एक पहाड़ी सोते के लिये आया है।"•

---

(१) शतपथ ब्राह्मण १४।५।१।२०।

(२) गोपथ ब्राह्मण २।२।८।

(३) तुलना करो वेबर इन्डिस्चेस्टडियन १।७८।

(४) ८।३२।४, तुलना करो निरुक्त ५।१६।

(वैदिक इन्डेक्सकार का मत ठीक नही; क्योकि निरुक्त इसका अर्थ

वस्तुतः यह जल का नाम है।

तृष्टामा—१. वे० इ० "ऋग्वेद" की नदी-स्तुति में उल्लिखित एक नदी का नाम है। इसका वर्तमान रूप ज्ञात करने का साधन प्राप्त नहीं है।[1]

२. जिमर का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुतः सिंधु की सहायक यह पहली नदी है। आजकल जासकार नाम से प्रसिद्ध है और कश्मीर में लद्दाख प्रान्त मे है। ऋग्वेद १०।७५।६ मे इसका वर्णन है। मंत्रार्थ यह है —"हे सिंधो! आप क्रुमु और गोमती नदियो के पास जाने के लिये उतरीं। पहले तृष्टामानदी से मिलीं। उसके बाद सुसर्तु, रसा, श्वेत्या और प्रसिद्ध कुभा तथा मेहलू से मिलीं, जिनके साथ आप समान रथ पर चढ़कर जाती है।" नक्शे मे सिंधु का संगम सबसे पहले जासकारनदी से है, जो कि दक्षिण दिशा से आकर सिंधु मे मिलती है। पुराणों मे इसका नाम नहीं है।

'जल' कर रहा है। निरुक्त ५।१६ "तूर्णाशमुदक भवति तूर्णाश न गिरेरधीत्यपि निगमो भवति।" इसकी टीका दुर्गाचार्य ने की है "यथा—तूर्णाशमुदक गिरेरधिभि मेघस्योपरि वर्तमान आह्वयन्ति वर्षार्थिनो जनाः एव माह्वयामि इति एवमत्र गिरि सम्बन्धात् तूर्णाशमुदकमित्युपपत्तिः"। ऋग्वेद मे यहाँ पर 'गिरि' का अर्थ 'मेघ' है। यह दृष्टान्त मे आया है। जैसे धूप मे तपा पुरुष मेघों से जल माँगता है, यह अर्थ है। इस प्रकार वेदिक इंडेक्सकार का मत निरुक्त मे विरुद्ध है और युक्ति से भी विरुद्ध है। लोग ग्रीष्म से व्याकुल हो वर्षा चाहते है, न कि पहाडी सोते को)।

(१) १०।७५।६, तुलना करो जिमर एल्टिन डिस्वेज्लिवेन १४।

त्रिककुद्—१. वे० इ० "त्रिककुद्[1] अथवा त्रिककुभ्[2] (तीन चोटियोवाला) यह अथर्ववेद तथा बाद के साहित्यों मे हिमालयपर्वत मे एक पर्वत का नाम आता है। इसको वर्तमान त्रिकोत कहते है, जिससे आँजन[3] आया, जो कि वृत्र की आँख से निकला हुआ माना गया है।"

२. लुडविक, जिमर, हिल्लेब्रान्ट, ब्लूमफील्ड का भी यही मत है। (वे० इ०)

३. जाग्राफिकल डिक्शनरी पृ० २०५ त्रिकूट यमुनोत्तरी पर्वत।

वस्तुत. यह एक हिमालय के शिखर-विशेष का नाम है; अर्थात् तीन चोटीवाला पर्वत। वेदिक इन्डेक्सकार इसका 'त्रिकोत' वर्तमान नाम मान रहे हैं। अथर्ववेद ४।९।८ मे आँजन की स्तुति मे इसका वर्णन है। आँजन सुर्मा का नाम है। त्रिककुन्पर्वत पर इसकी उत्पत्ति लिखी है और ज्वरवलास = कफरोग और सर्पविष की यह दवा है। ९ वीं मे हिमालय के

---

(१) अथर्ववेद ४।६।८, शतपथ ब्राह्मण ३।१।३।१२।

(२) मैत्रायणी सहिता ३।६।३, काठक सहिता २३।१, वाजसनेयी सहिता १५।४, पचविश ब्राह्मण २२।१४

(३) इससे त्रैककुद् कहलाया अथर्व० ४।६।९-१० तथा १४।४४।६ इत्यादि। (वस्तुत. अन्तिम यहाँ पर नही मिलता, इससे ज्ञात होता है कि अशुद्ध छप गया। शतपथ ब्राह्मण वही, मैत्रायणी और काठक सहिता वही। तुलना करो लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दी ऋग्वेद ३।१९८, जिमर अल्टिनडिस्वेजलिवेन ५।२९-३०, हिल्लेब्रान्ट वेदिश्चेमाइथालोजी ३।२३९ एन्० ४, ब्लूमफील्ड हिमस् आफ दि अथर्ववेद ३८१।

ऊपर त्रिककुद् नामक आँजन का वर्णन है। १० वे में इसके दो नाम दिये गये हैं—(१) यामुन और (२) त्रैककुद्। यामुन= यमुना मे पैदा होनेवाला, इससे स्पष्ट यमुनोत्तरीपर्वत ही त्रिक कुद्पर्वत है, जहाँ पर यमुना के भीतर और आसपास सुर्मा पैदा होता है। यह सुर्मा 'त्रैकाकुद्' और 'यामुन' दोनो नामों से कहा जाता है। शतपथ ब्रा० ३।१।३।१२ मे त्रैककुद् शब्द का व्याख्यान इस प्रकार किया है:—इन्द्र ने वृत्रासुर को मारकर उसकी आँख को त्रिककुद्पर्वत बना डाला। इससे वहाँ उत्पन्न त्रैककुद् को आँख के रोगो मे लाभकारी समझना चाहिए। यदि त्रिककुद् से पैदा हुआ सुर्मा न मिले, तो उसी के समान जो दूसरा सुर्मा होता है, उसे काम मे लायें, क्योकि वह भी उसी का बन्धु है। बन्धु मे बन्धु के समान गुण होते हैं। वेदिक इंडेक्सकार त्रिककुम् को त्रिककुद् का पर्याय समझ रहे हैं और प्रमाण भी दे रहे है। परन्तु कुछ स्थानो मे उनका भ्रम है, जैसे कि वाजसनेयी संहिता १५।५ मे 'त्रिककुप् छन्दः' ऐसा पाठ है। महीधर ने 'त्रिककुप्' शब्द का अर्थ 'उदानवायु' किया है। हिमालय के शिखर 'त्रिककुद्' से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार पञ्चविंश ब्राह्मण २२।१४ मे लिखा है कि अग्नि-ष्टोम छः बार किया जाता है। उनमे तीन के बाद जो 'उकथ्या-नुष्ठान' है, वह 'त्रिककुप्' कहा जाता है। उसका यहाँ त्रिककुद्-पर्वत से कोई संबन्ध नहीं। परन्तु मैत्रायणी संहिता ३।६।३ मे इन्द्र ने वृत्र को मारा। उसकी कनीनिका गिरी, वह त्रिककुभ्-पर्वत पर गई। यहाँ भकारन्त शब्द लिखा है, इससे दकारान्त और भकारान्त दोनों शब्द हैं। कत्यायन श्रौतसूत्र ३०६।६२ मे

त्रिककुद् पर्वत है। उसमे उत्पन्न आँजन 'त्रैकाकुद' कहा जाता है। अथर्व० ५।२३।९ मे त्रिककुद् शब्द आया है। वहाँ वह क्रिमि का विशेषण होने से पर्वतअर्थ मे नहीं है, एक प्रकार के कीड़ा के अर्थ मे है—उसके तीन सिर तीन ककुद होते है। अष्टाध्यायी ५।४।१४७ मे 'त्रिककुत्पर्वते' यह सूत्र है। जिस पर्वत के तीन शिखर हो, वह त्रिककुद् कहलाता है–यह अर्थ है।

त्रिपुर—वे० इ० "त्रिपुर तीन दीवालोवाला पुष्ट स्थान। यह ब्राह्मणो[1] मे सुरक्षित स्थान के लिये आया है। चूँकि यह अवतरण काल्पनिक है, इसपर कोई विश्वास किया नहीं जा सकता, जैसा कि तीन दीवालो के लिये किले का प्रमाण आता है।"

वस्तुतः तीन दीवालो का नगर यह शब्द शतपथ ब्राह्मण ६।३।३।२५ मे पशु के पर्यग्निकरणसंस्कार मे लिखा है और ऐतरेय ब्राह्मण ७।१।१ मे भी पर्यग्निकरणसंस्कार मे यह शब्द है। पर्यग्निकरणसंस्कार यह है कि पहले यूप मे जब पशु बाँधा जाता है, उससे पूर्व उसका संस्कार किया जाता है। अध्वर्यु कुशयुक्त पाकड़वृक्ष की शाखा से मन्त्रपूर्वक उस पशु का स्पर्श करता है और पशुरूप से स्वीकार करता है। इसका नाम 'उपाकरण' है। बाद मे पशु जब यूप मे बाँधा जाता है, वहाँ 'नियोजन' नाम का सस्कार होता है। उसके बाद आप्री नामक ११ ऋचाओ से उसका पूजन 'आप्रीणन' कहलाता है। उसके बाद

---

(१) शतपथ ब्राह्मण ६।३।३।२५, ऐतरेय ब्राह्मण २।११, कौषीतकी ब्राह्मण इंडिस्चेस्टडियन २।३१० मे, तैत्तरीय सहिता ६।२।३, काठक सहिता २४।१० इत्यादि और लेवी ला डाक्ट्रिन डू सैक्रिफाइस देखिये ४६ न० १।

ऋत्विक् जलते हुए कुश हाथ में लेकर उसकी तीन प्रदक्षिणा करता है। इसी का नाम 'पर्यग्निकरण' है। ऐतरेय ब्राह्मण ५।१।१ से पर्यग्निकरण का प्रयोजन दिखलाते हुए एक कथा लिखी गई है। वह यह है—देवताओं ने यज्ञ का विस्तार किया। असुर लोग यज्ञ के विघ्न को आये। जिस समय पशु का आप्रीणनसंस्कार हो गया, उस समय असुर लोग यूप के समीप पहुँच गये। देवताओं ने उस पशु की रक्षा के लिए अग्निमय त्रिपुर खड़ा कर दिया। अर्थात् जैसे प्राकार की तेहरी दीवालें नगर की रक्षा करती है, उसी प्रकार अग्नि की तेहरी दीवालें खड़ी कर दीं। असुर भाग गये। इसी प्रकार प्रत्येक यज्ञ मे असुरो से रक्षा करने के लिये जो जलते हुए कुशों को लेकर घूमा जाता है, वह अग्नि की तीन दीवारे खड़ी की जाती हैं। इस प्रकार त्रिपुर शब्द का अर्थ तीन प्राकारवाला पुर होता है। प्राकार तेहरा होने से दृढ़ता अधिक होती है। वेद, ब्राह्मण, पुराण, उपनिषदादि की कथाएँ पदार्थ के समझाने के लिये लिखी गई है, कहीं भी कथाओं में इतिहास बोधन ग्रन्थकारों का तात्पर्य नहीं है। जैसे बालक को अध्यापक दो + दो = चार होते है, यह दिखाते समय मोहन-सोहन की कथा कहकर सिखाता है, उस समय जोड़ सिखाने मे अध्यापक का तात्पर्य होता है, मोहन सोहन मे नहीं। उसी प्रकार वेद और उपनिषद् आदि मे भी, उनमे प्रतिपादित ज्ञान में ही तात्पर्य होता है, कथाओं मे नहीं। यह ब्राह्मण भाग 'पर्यग्निकरण' संस्कार की आवश्यकता द्योतन करता है, कथा मे इसका तात्पर्य नहीं। वह कथाएँ काल्पनिक है या सत्य हैं, यह विचार दूसरा है। वहाँ दोनो का संभव है।

योरोपियन विद्वानो के सिद्धान्त मे वेदादि ग्रन्थो की कथाएँ सत्य है, उनके भीतर वर्णन का किया हुआ पदार्थ कूड़ा है—इसलिये सर्वत्र इतिहास की खोज है। इनका विचार उसमें सत्य और संभव का ठेकेदार है। जिन ऋषियो ने जीवनभर कभी झूठ न कहा, वे असत्यभाषी और झूठी कल्पनाकारी हैं और ये लोग प्रत्येक असत्य को 'पालसी' कहकर असत्यभाषी होने पर भी प्रामाणिक हैं। तेहरी दीवालो का किला मनुष्यो की रक्षा के लिये बनता था, यह तो आपकी कल्पना है। ब्राह्मण तो पशु-रक्षा के लिये अग्नि की रक्षा बतला रहा है। तीन दीवालो के किले बनाये जाते थे, यह नहीं लिख रहा है।

त्रिप्लक्ष—वे० इ० "यह शब्द पुल्लिग बहुवचन तीन अजीर के वृक्षों के लिये आया है। यह शब्द एक स्थान के लिये आता है, जहाँ पर यमुना के निकट दृषद्वती लुप्त हो जाती है। पंचविंश[1] ब्राह्मण के अनुसार यह वही स्थान है।"

वस्तुतः यह देश है और यमुना के तट पर दृषद्वतीनदी के उत्पत्तिस्थान के समीप है। पंचविंश ब्राह्मण २५।१३।४ में लिखा है कि आग्नेय अष्टाकपाल से यजनकर दृषद्वती के दक्षिण किनारे से जाय और त्रिप्लक्षदेश के सामने यमुना में अवभृथ स्नान करे। कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२३० मे दृशद्वती के तट से जाकर त्रिप्लक्षावहरण के सामने यमुना मे अवभृथ स्नान करे। लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१९।५।१५ मे दृशद्वती के दक्षिण तट से जाय और उसके उत्पत्तिस्थान अर्म नामक स्थान पर प्राप्त होकर

(१) २५।१३।४, तुलना करो शाखायन श्रौतसूत्र १३।२९।३३, लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१९।९, कत्यायन श्रौतसूत्र २४।६।३९।

वहाँ यज्ञकर त्रिप्लक्षावतरण के सामने अवभृथ स्नान करे। यदि यमुना वहाँ से दूर हो तो कहीं पर इष्टि कर ले और सामवेद गाता हुआ यमुना मे जाकर अवभृथ करे और बाद में नगर मे न जाय। इन प्रमाणों से दृशद्वतीनदी के उत्पत्तिस्थान के समीप यह देश है तथा दृशद्वती और यमुना दोनों नदियाँ इसके एक-एक पार्श्व मे है।

वस्तुतः 'तदेव मनुष्येभ्यान्तिरोभवति'—इस वाक्य का सायण ने जो अर्थ पहले किया है उसी को देखकर दृषद्वती का लुप्त होना वेदिक इन्डेक्सकार भी मान बैठे। परन्तु सायण ने धानञ्जय का प्रमाण देते हुए 'ग्राम मे फिर न जाय' यह अर्थ किया है, उसपर ध्यान नहीं दिया। दृषद्वती का लुप्त होना शास्त्र और प्रत्यक्ष दोनों से विरुद्ध है।

त्रिप्लक्षाव(ह)रण[1]—यह एक देश है। दृषद्वती और यमुना के बीच मे है। दृषद्वती के उत्पत्तिस्थान के समीप मे है। इसका त्रिप्लक्ष भी नाम है। महाभारत मे वर्णित प्लक्षावतरण[2] नाम का तीर्थ यही प्रतीत होता है। कात्यायन श्रौतसूत्र मे त्रिप्लक्षावहरण पाठ है।

त्रैकाकुद—वे० इ० 'त्रिककुद्' देखो।

वस्तुत. यह त्रिककुद्पर्वत पर उत्पन्न हुए आँजन का नाम है। इसका दूसरा नाम 'त्रैकाकुभ' भी है। यमुना में उत्पन्न

---

(१) कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२३०, लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१६। ५।१५।

(२) महाभारत आरण्य० (चि०) ६०।४ यह तीर्थ यमुना मे है। सारस्वत यज्ञो से यजनकर यहाँ पर अवभृथ स्नान करते है।

होने के कारण यह 'यामुन' भी कहा जाता है। अथर्ववेद ४।९।९ में इसके त्रैकाकुद् और यामुन दोनों नाम दिये हैं और हिमालय के ऊपर उत्पत्ति बतलाई है। शतपथ ब्राह्मण ३।१।३।१२ मे त्रैकाकुद् शब्द है और इसका त्रिककुद् के ऊपर पैदा होना वर्णन है। कात्यायन श्रौतसूत्र ६।६२ मे त्रैककुद् पाठ है। मैत्रायणी संहिता ६।६।३ में त्रैककुभ शब्द लिखा है।

दक्षिणा—यह शब्द ऋग्वेद १०।१७।९ मे दक्षिणदेश के अर्थ में आया है। मन्त्रार्थ यह है:—जिस सरस्वती को दक्षिणदेश से आकर यज्ञ मे चारों ओर से व्याप्त होते हुए पितर लोग आह्वान करते हैं, वह सरस्वती इस यज्ञ मे बहुतों से पूजनीय अन्न के भाग को और धन की पुष्टि को यजमान में धारण करे।

दक्षिणापथ—१. वे० इ० 'शाब्दिक अर्थ दक्षिण जानेवाला मार्ग। संभवत: यह बौधायन धर्मसूत्र[१] के ही समय से सौराष्ट्र के साथ दक्षिणी भारत का दूसरा नाम है। इसी प्रकार एक शब्द दक्षिणापदा भी है। ऋग्वेद[२] मे इसी रूप मे आया है, इसका शाब्दिक अर्थ दक्षिण की ओर पैर के साथ है। यह उस स्थान की ओर संकेत करता है, जहाँ पर कि देशनिकाला (परावृज्) होता था। इसमे कोई संदेह नहीं कि इसका सकेत उन प्रदेशों से है जो आर्यों के ज्ञान के बाहर थे और जो कौषीतकी[३]

(१) १।१।२।१३, तुलना करो ओल्डेनवर्ग 'बुद्ध' ३६४ एन् और बौधायन गृह्यसूत्र ।।१३।

(२) १०।६१।८।

(३) २।१३, तुलना करो जिमर एल्टेन डिस्चेज़लिवेन १८५, वेबर

उपनिषद् काल तक विंध्य पर्वतों से घेरे हुए के रूप मे माना गया है। ओल्डेनबर्ग, जिमर, वेबर, रायस्डे और कीथ का भी यही मत है।

वस्तुतः यह शब्द देशवाची है। विन्ध्य के दक्षिण भाग का नाम है। बौधायन धर्मसूत्र[४] में इसका नाम आया है। पुराणों[५] मे भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद ८।३।२४ में 'भोज' शब्द आया है, जो दाक्षिणात्य राजाओं की पदवी है। ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३ में दक्षिण दिशा के सात्वत राजा लोग भोज कहे जाते थे, यह स्पष्ट लिखा है। वेदिक इंडेक्सकार एक दक्षिणापदा शब्द भी गढ़कर तैयार कर लेते हैं और उसको ऋग्वेद मे मानते भी हैं, जैसा कि ऊपर लिखा गया है तथा यह कहते हैं 'इसमे कोई संदेह नहीं...' इत्यादि। यह लेख बड़ा विचित्र है कि आर्य लोग उसको जानते भी नहीं थे और फिर भी उसे लिख गये। योरोपियन सिद्धान्त ऋग्वेद के समय पंजाब तक आर्यों का ज्ञान

इन्डिस्चेस्टडियन १।४०८, रायस्डेविड्स् इंडिया ३०, कीथ शाखायन आरण्यक २८ एन् १, ऐतरेय आरण्यक २००।

(४) १।१।२।१३।

(५) वायुपुराण पू० ४५।१२४, वाराह० १७५।१५ तथा वाल्मीकि० अ० (नि० पु०) १०।३७, श्रीमद्भागवत् ६।१।४१।

नाट्यशास्त्र १४।३७ महेन्द्र, मलय, मेखल, सैह्य, कालपजर इन पर्वतों के मध्य का देश दक्षिणापथ है। बड़ोदा की छपी पुस्तक में 'मेखल' के स्थान मे 'मेकल' और 'कालपंजर' के स्थान मे 'कालमजर' पाठ है। कामशास्त्र वात्स्यायनसूत्र साम्प्रयोगिकाधिकरण पचमाध्याय दशनच्छेद्य प्रकरणसूत्र २८ की टीका में जयमगल ने नर्वदा से दक्षिण के देश को दक्षिणापथ लिखा है।

मानता है। दक्षिण का ज्ञान आर्यों को नहीं था; परन्तु वेदिक इंडेक्सकार ऋग्वेद मे 'दक्षिणापदा' शब्द लिख बैठे और इस बात को मान रहें हैं। बिना ज्ञान के भी लिखा गया, यह सिद्धान्त नया और विचित्र है। यदि इस वाक्य का अर्थ यह है कि दक्षिण-देश जानते थे; परन्तु विशेषरूप से नहीं जानते थे—यह भी नहीं बन सकता। क्योकि दूसरा वाक्य 'कौषीतकी उपनिषद्-काल तक विन्ध्यप-र्वतो से घेरे हुए के रूप मे माना गया है'—यह जो लिख रहे हैं, वह उससे विरुद्ध होता है। ऋग्वेद मे दक्षिणापदा शब्द ही नहीं है, केवल वेदिक इंडेक्सकार की कल्पना ही उसको गढ़कर तैयार कर देती है।

ऋग्वेद १०।६१।८ मे "सरत् पदान् दक्षिणा परावृड्" ऐसा पाठ है। 'दक्षिणा' और 'पदा' शब्द पास-पास तक भी नहीं है। मंत्रार्थ मे 'परावृक्' शब्द का अर्थ 'देशनिकाला' भी नहीं है। 'दक्षिणा' शब्द का अर्थ 'दक्षिण दिशा' भी नहीं है। यह मंत्र जिन सूक्तो के नाभानेदिष्ठ ऋषि हैं, उनमे आया है। ऐतरेय ब्राह्मण २२।९ मे लिखा है कि नाभानेदिष्ठ जब पढ़ने गये थे तब उनके पिता ने अपना धन अपने पुत्रो मे बाँट दिया। नाभा-नेदिष्ठ जब पढ़कर आये तो भाइयो से अपना हिस्सा माँगा। भाइयो ने कँहा कि तुम्हारा हिस्सा पिता के पास है। नाभानेदिष्ठ अपने पिता के पास गये और अपना भाग माँगा। पिता ने कहा कि आँगिरस लोग सत्र कर रहे हैं, वहाँ जाकर तुम सूक्तों का पाठ करो। यज्ञ समाप्त होने पर वे लोग बचा धन तुमको दे देंगे। नाभानेदिष्ठ आँगिरस सत्र मे गये और सूक्तों का पाठ किया। जिन-जिन सूक्तो का पाठ नाभानेदिष्ठ ने किया, उनके

ऋषि नाभानेदिष्ठ हुए। यज्ञसमाप्ति के बाद बचा वह धन नाभानेदिष्ठ को मिला। धन लेते समय रुद्र ने आकर कहा कि यह धन हमारा है, तुम्हारा इसमे कोई अधिकार नहीं है। तुम अपने पिता से जाकर पूछो कि यह धन किसका है? तब नाभानेदिष्ठ पिता के पास गये और पूछा कि यह धन किसका है? पिता ने कहा—यह धन रुद्र का है, तुम्हारा नहीं। नाभानेदिष्ठ ने पिता के वचनों को जैसे-का-तैसा रुद्र से आकर निवेदन कर दिया। नाभानेदिष्ठ की सत्यभाषिता पर प्रसन्न हो रुद्र ने वह धन नाभानेदिष्ठ को दे दिया। ऋग्वेद १०।६१।८ का अर्थ यह है—"इन्द्र ने संग्राम मे नमुचि के वध के लिये जिस प्रकार फेना फेंका था, उसी प्रकार मनोरथो के देनेवाले वास्तोष्पति ने मेरे मारने के लिये जलों को मेरी ओर फेका था। फिर सत्य कथन से सन्तुष्ट हो वास्तोष्पति ने मेरी ओर से जलों को लौटा लिया। दक्षिणार्थ दी गईं गाये इत्यादि का लौटानेवाला अल्पमनस्क पुरुष कुछ पैर नहीं चलता, यह तो हमारे सम्मुख आ रहा है, इससे ऋषियों ने जो गायें मुझे दक्षिणा मे दी हैं उनको ग्रहण नहीं करेगा।' इस मंत्र में 'देशनिकाले' का वर्णन नहीं है और न 'परावृक्' का अर्थ ही 'देशनिकाला' है। केवल योरोपियन कल्पना ही है। 'ऋग्वेद के समय आर्य लोग पंजाब तक ही जानते थे'—यह कथन ठीक नहीं। क्योंकि ऋग्वेद ८।३।२४ मे "पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवं" ऐसा पाठ है। इसमें पाकस्थामा राजा का 'भोज' विशेषण है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ३८ खण्ड ३ में लिखा है कि दक्षिण दिशा के सत्वतों के राजे 'भौज्य' के लिये अभिषिक्त होते हैं। अभिषिक्त इन

राजाओं को 'भोज' कहना चाहिए। इस प्रकार पाकस्थामा राजा का 'भोज' विशेषण उसको दक्षिणदेश का राजा बतला रहा है। यदि आर्य लोग दक्षिण को नहीं जानते थे तो ऋग्वेद मे दक्षिण का वर्णन कैसे आया? ऋग्वेद ८।२१।१७ में चित्र राजा का वर्णन है। बृहद्देवता ६।५८ में चित्र को आखुदेश का राजा कहा है। 'आखु' का अर्थ 'मूषक' होता है। मूषक देश दक्षिण मे था, यह खारवेल के लेखों से स्पष्ट है। प्रोफेसर काशीप्रसाद जैसवाल ने 'असिक' को अशुद्ध कर 'मूषिक' शब्द शुद्ध है, यह सिद्ध किया है। इस दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा माहिष्मतीपुरी थी, यह काव्यमीमांसा १७।२ मे राजशेषर ने लिखा है। यह माहिष्मती नगरी इस समय नर्मदा के तट पर माहेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर इन्दौर की महारानी अहल्याबाई का बनवाया हुआ महादेव का मंदिर प्रसिद्ध है। इसके पूजन इत्यादि का प्रबन्ध बहुत सुन्दर है। कोई-कोई मान्धाता को ही माहिष्मती मानते हैं, वह ठीक नहीं। क्योकि मान्धाता का नाम मान्धातृपुर है।

भारतीय इतिहास की रूपरेखा २।६८६ "पाण्ड्य"। "डाक्टर भण्डारकर ने सिद्ध किया है कि पाण्ड्यराज्य एक आर्य-उपनिवेश था, जो अशोक के समय से करीब दो शताब्दी पहले स्थापित हुआ था। ताम्रपर्णी भी निश्चय उसी तरह का उपनिवेश था और चोल, चेर (केरल) और सतीपुत्र भी सभवतः।"

भा० रू० १।५७३ "सिंहली दन्तकथा और बौद्ध अनुश्रुति सिहल में विजय के पहुँचने की घटना को बुद्ध के निर्वाण के

कुछ ही पहले हुआ बतलाती है। इसी से पता मिलता है विजय के समय से पहले पाण्ड्य राष्ट्र मौजूद था। पाण्ड्य राष्ट्र की स्थापना का समय प्रोफेसर डा० भंडारकर ने बड़ी ही योग्यता से निर्धारित किया है। बहुत ही स्पष्ट प्रबल विरोधी प्रमाणों के बिना उसको टाला नहीं जा सकता। उन्होंने दिखलाया है कि पाणिनि के व्याकरण से पाण्ड्य शब्द सिद्ध नहीं होता। कात्यायन ने उसके लिये एक विशेष वार्तिक बनाया है। इसलिये पाण्ड्यराष्ट्र की स्थापना पाणिनि और कात्यायन के बीच मे हुई थी।"

वस्तुतः प्रोफेसर डाक्टर भण्डारकर का सिद्धान्त विचित्र है। यदि वार्तिक के आधार पर पाण्ड्य की सिद्धि से पाणिनि के समय पाण्ड्यदेश नहीं था, यह कल्पना सिद्ध मानी जाय तो "कम्बोजाल्लुक्"=इस सूत्र पर "कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्" इस वार्तिक द्वारा बने और पाणिनिसूत्र से न बननेवाले चोल, शक, केरल, यवन भी पाणिनि के समय मे नहीं थे, वे कात्यायन और पाणिनि के बीच में बने—यह भी मानना होगा। परन्तु यवन की सत्ता पाणिनि ने स्वयं इन्द्र वरुण इत्यादि सूत्र में मानी है और 'यवन' शब्द से 'यवनानी' शब्द बनाया है। परन्तु यह शब्द पाणिनि के सूत्रो से नहीं बनता। वार्तिककार ने भी "यवनाल्लिप्याम्" इस वार्तिक द्वारा उसका संशोधन करके यवनो की लिपि 'यवनानी' है—यह सिद्ध किया। यह कैसे संभव है कि पाणिनि उसको न जाने और लिखे। इससे यवन को पाणिनि के समय में मानना होगा। शक लोग भी पाणिनि और कात्यायन के बीच में मानने होंगे। इसी प्रकार पूरोर्वोरण् वक्तव्यः इस

वार्तिक द्वारा जो पूरु शब्द से अण् प्रत्यय करके कात्यायन ने 'पौरव' बनाया है, उस पौरव राजे और ऋग्वेद मे बारंबार आनेवाले पूरु की सत्ता भी पाणिनि और कात्यायन के बीच मे माननी होगी। इसी प्रकार "प्रवत्सतर इत्यादि" वार्तिक से बनने वाला 'दशार्ण' देश भी पाणिनि और कात्यायन के बीच में बसा मानना होगा। प्रो० भंडारकर केवल पाण्ड्य पर ही चिढ़े हैं। यदि उनका सिद्धान्त मान्य हो तो पाणिनि के समय मे संयोगान्त यण् का लोप होने से कात्यायन के पहले सुद्ध्युपास्य: के स्थान पर सुधुपास्य: बोला जाता था और कात्यायन के समय मे यण् के लोप न होने से सुद्ध्युपास्य: बोला जाने लगा, यह भी मानना होगा। अन्य करोड़ो प्रयोगो मे अन्तर माना पड़ेगा। पाणिनि और कात्यायन ने शब्दो को नहीं बनाया; बल्कि शब्द पहले से ही वर्तमान थे। पाणिनि इत्यादि ने शब्दो का ज्ञान संक्षेप से हो, इसलिये व्याकरण बनाया। पाणिनि की त्रुटि को कात्यायन ने पूरा किया, कात्यायन की त्रुटियो को पतञ्जलि ने पूरा किया। पतञ्जलि ने जहाँ तक बना कात्यायन के वार्तिकों को कम किया और वार्तिको का काम पाणिनि के सूत्रो द्वारा ही निकाला, इस बात को व्याकरण के सभी विद्वान् जानते है। प्रोफेसर साहब की पुस्तकें उनके व्याकरण-ज्ञान के लिये प्रसिद्ध है, उनका ऐसा लेख शोभा को नहीं बढ़ाता।

इतिहास के विद्वानो का सिद्धान्त है कि पाणिनि और कात्यायन का समय भिन्न था, जिसके आधार पर प्रोफेसर साहब ने पाणिनि और कात्यायन के बीच के समय मे पाण्ड्य देश बनाया। हिस्ट्री के विद्वानो का सिद्धान्त है कि महर्षि कात्या-

यन का समय स्पष्टरूप से महाराज अशोकवर्धन के बाद का है, क्योंकि उन्होने "देवानांप्रिय इति च मूर्खे" यह वार्तिक बना डाला, जो बौद्धमतानुयायी अशोकवर्धन का नाम था और उसका अर्थ मूर्ख करके उन्होंने बौद्ध और ब्राह्मणों के द्वेष को स्फुट कर दिया। महर्षि पाणिनि उनसे प्राचीन हैं, क्योंकि उन्हीं के सूत्रों पर वार्तिक लिखे गये। यह सिद्धान्त इस समय संदेहरहित और सर्वमान्य है तथा पढ़ाया भी जाता है। परन्तु गुणाढ्य के पैशाची भाषा मे लिखे हुए बृहत्कथा नामक ग्रन्थ के सोमदेव द्वारा किये गये संस्कृतानुवादस्वरूप कथासरित्सागर के ४।२० से २६ तक कात्यायन का पटना नामक नगर मे नन्दशासन के समय मे वर्ष नामक आचार्य के पास जाकर पढ़ने का वर्णन है और बाद मे पाणिनि का पटना जाकर पढ़ना और कात्यायन द्वारा पराजित हो शंकर की तपस्या द्वारा व्याकरण के पाने का वर्णन है। ४।२३ मे पाणिनि और कात्यायन के शास्त्रार्थ का वर्णन और पराजित कत्यायन का तपस्या के लिये जाना और महादेव के वरदान द्वारा वार्तिको का बनाना और योगानन्द के मंत्री होने इत्यादि का वर्णन है। यह ग्रन्थ महाराज सातवाहन के दरबारी गुणाढ्य द्वारा निर्मित है। इसका निर्माण-समय अब से सहस्रो वर्ष पूर्व का है। उस समय के विद्वानों ने झूठ लिखा हो, इसमे कोई प्रयोजन समझ में नहीं आता। अब, हम हिस्ट्री के विद्वानों की युक्ति की परीक्षा कर रहे है। यदि कोई महर्षि पतंजलि-रचित महाभाष्य के 'षष्ठ्याआक्रोशे' ६।३।२१ को खोलकर देखे तो वहाँ वार्तिक का स्वरूप 'देवानांप्रियः' इतना ही मिलेगा, वहाँ वार्तिक के साथ 'मूर्खे' नहीं मिलेगा। बाद मे महाभाष्य

के टीकाकार सुप्रसिद्ध विद्वान् कैयट ने उसके साथ 'मूर्ख' को जोड़ दिया। बाद मे भट्टोजिदीक्षित ने कैयट के भक्त होने के कारण उसको वैसे ही लगा रहने दिया। महर्षि कात्यायन का इसमे अणुमात्र भी अपराध नहीं है, जिसके बल पर भारत में फूट के बीज बोनेवाले विद्वानों ने बौद्ध धर्म में अधिक श्रद्धा रहने पर भी अपने लेखो मे ब्राह्मणों के सत्कार की आज्ञा देने-वाले महाराज अशोकवर्धन को भी महर्षियो तक का शत्रु बना डाला। परन्तु कैयट ने क्यो जोड़ा, इसका विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि देवानाम्प्रियः शब्द का अर्थ मूर्ख ही होता है और महर्षि पतञ्जलि ने 'अजेर्व्यघञपोः' २।४।५६ सूत्र मे मूर्खअर्थ मे देवानाप्रिय शब्द का प्रयोग किया है। कश्चित् वैयाकरण आह—"कोऽस्य रथस्य प्रवेता इति" (किसी वैया-करण ने कहा कि इस रथ का प्रवेता कौन है)? सूत आह—"आयुष्मन् अहमस्य प्राजितेति" (सारथि ने कहा—हे आयुष्मन् मैं इस रथ का प्राजिता हूँ)। वैयाकरण आह—'अपशब्द. इति' (वैयाकरण ने कहा-प्राजिता यह अशुद्ध है)। सूत आह—"प्राप्तिज्ञो देवानाप्रिय न तु इष्टिज्ञः इष्यते एतद् रूपं" (सूत ने कहा कि सूत्र की प्राप्तिमात्र जाननेवाला देवानांप्रिय (मूर्ख) है, वह इष्टि को नहीं जानता, ऐसा ही रूप इष्ट है)। इसी पर कैयट ने प्राप्तिज्ञ का अर्थ "सूत्राणां प्राप्तिज्ञः सौत्रीमेव प्रवृत्ति भवान् जानाति आचार्याणाम् इत्यर्थः। देवानांप्रिय इति देव शब्दो मूर्खवाची मूर्खाणां प्रियाः मूर्खा एव भवन्ति" यह लिखा है; अर्थात् आप सूत्रो की प्रवृत्तिमात्र जानते है। आचार्यों की प्रवृत्ति आपको ज्ञात नहीं। देवानांप्रियः मे देव शब्द मूर्खवाची है, मूर्खों के प्रिय

मूर्ख ही होते हैं। इस महाभाष्य में अशोक से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु देवानांप्रिय शब्द मूर्खअर्थ में व्यवहार किया गया है, जो मूर्खअर्थ मे इसका प्रयोग होता था—यह बतला रहा है।

अब, यह विचार करना है कि देवानांप्रिय शब्द का अर्थ मूर्ख कैसे होता है। वेदान्त-सिद्धान्त है कि संसार में ज्ञान द्वारा ही मोक्ष होता है। कर्म द्वारा किये गये यज्ञादि विनाशी स्वर्ग-फल को ही देते हैं। वे नित्यमोक्षफल को नहीं देते, इसलिये यज्ञादि को न कर ज्ञान ही मे प्रयत्न करना चाहिये। कर्मों द्वारा प्राप्त स्वर्गादि फल विनाशी होने से उनके यज्ञो के कर्ता पुण्य नष्ट होने पर पृथ्वी पर फिर आते है। जब प्रयत्न समान है और फल मे भेद है, तो बढ़िया वस्तु छोड़कर मामूली वस्तु लेने-वाला मूर्ख समझा जाता है। देवताओं ने मोक्ष छोड़कर स्वर्ग-फल चाहा। पुण्य के नष्ट होने पर वे फिर पृथ्वी पर जन्म लेंगे। यदि ज्ञान किया होता तो मोक्षप्राप्त सर्वदा सुखी रहते, इससे देवता मूर्ख हैं। उन देवताओ को प्रसन्न करने के लिये जो यज्ञ करते हैं, वे ही देवताओ के प्रिय हैं और मूर्ख है। जहाँ पर इस शब्द का अर्थ मूर्ख होता है, वहीं 'देवानांप्रियः' कहा जाता है। जहाँ पर देवताओं का प्रिय अर्थ है, वहाँ 'देवप्रिय' बोला जाता है। महर्षि कात्यायन का वार्तिक देवानांप्रियः प्रयोग को सिद्ध करने के लिये है। महाराज अशोकवर्धन को मूर्ख बनाने के लिये नहीं है। महाराज अशोकवर्धन ने इस शब्द का अर्थ जानते हुए भी इसी अर्थ में इस शब्द को अपने लिये प्रयोग किया है। उसका कारण अपनी नम्रता का द्योतन करना है, जैसा कि आज-कल लोग 'विद्यार्थी' इत्यादि शब्दो को अपने साथ लगाते है।

यह प्रणाली पुरानी है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रारंभ में अपने को मूर्ख कहा है।

पाण्ड्य[1], चोल, केरल देशों के नाम पुराणों मे आये हैं।

---

(१) वाल्मीकि० कि० (इ०) ४१।१५ यह देश दक्षिण दिशा में है और पहाडो से घिरा हुआ है। (नि० गु०) ४१।४२ यह देश दक्षिण दिशा मे है। महाभा० आदि० १८२।१५ यह देश दक्षिण दिशा में है। महाभा० सभा० (नि०) ७८।२२ (म०) ५२।६१॥ पाण्ड्यदेश का राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे शख और दर्दुरपर्वत के ऊपर पैदा होनेवाले चन्दनो को लाया। महाभा० हरि० ह० ३२।१२३ यह देश बडा है। महाभा० उ० (मु० चि०) १६।६ पाण्ड्यदेश का राजा समुद्र के तट पर बसनेवाले योद्धाओ से घिरा हुआ युधिष्ठिर के पास सहायता के लिये महाभारत-सग्राम मे आया। महाभा० भीष्म० (म०) ६।६३॥ यह देश भारत मे है। महाभा० सभा० (म०) २७।७१ (चि०) ३१।७१ (नि०) ३२।७३ यह देश दक्षिण मे है। महाभा० आर० (चि०) ८८।१३ यहाँ अगस्त्यतीर्थ है, (म०) ७१।१० यहाँ वरुणतीर्थ है। महाभा० आर० (नि०) ८३।२१ (म०) ६६।१६॥ (चि०) ८५।२१ यह देश है। सुश्रुत सूत्रस्थान १३।८ यह देश है, यहाँ की जोंके बड़े शरीरवाली, बलवाली, शीघ्र पीनेवाली, बहुत खानेवाली और निर्विष होती है। ब्रह्मवै० श्रीकृष्ण ० ११।७ पाण्ड्यदेश है। अग्नि० २७७।२ यह देश है। स्कन्द० माहे० अरु० उ० २२।६ यह देश है। स्कन्द० वै० वे० ६।१७ यह देश है। स्कन्द० ब्रह्म० से० ३५।३ तथा ४८।२ यह देश है। वायु० पू० ४५।१२४ यह देश भारत मे है और दक्षिण मे है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।५६ यह देश दाक्षिणात्य है। ब्रह्मा० मा० उपो० ७४।६ यह देश है। मत्स्य० ४८।५ यह बडा देश है। ११४।४६ यह देश दक्षिण भारत मे है। मार्क० ५४।४५ दक्षिणापथवासी यह देश भारत मे है। मार्क० ५५।३१ यह देश भारत मे है और पूर्वमुख

महाभारत आदिपर्व मे अर्जुन की तीर्थयात्रा मे अर्जुन का दक्षिण समुद्र के तट पर पाण्ड्यदेश मे जाना और वहाँ के राजा की लड़की के साथ पाण्ड्य की राजधानी मणलूरु में विवाह का होना और उससे बभ्रुवाहन¹नामक पुत्र का पैदा होना वर्णित है। महाभारत उद्योगपर्व (सु० चि०) १९।९ मे पाण्ड्यदेश के राजा का युधिष्ठिर की सहायता मे आना और द्रोणपर्व में द्रोणाचार्य द्वारा मारा जाना और महाभारत के बाद आश्व० में युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ मे पाण्ड्यराज बभ्रुवाहन के साथ

कूर्म के दक्षिण अपर पाद में है। वायु० पु० ४५।१२४ दाक्षिणात्य देशो में पाण्ड्य, केरल और चोल का नाम है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।५६ में दाक्षिणात्य देशों में पाण्ड्य, केरल और चोल का नाम है। मार्क० ५४।४५ मे दाक्षिणात्य देशों मे पाण्ड्य, केरल और चोल देशो का नाम है। (चोल देश , पद्म० उ० ११०।५ यह देश है। वायु० पू० २६।१४१ यह क्षत्रियगण है। इसका धर्म सगर ने नष्ट किया था। अग्नि० २७७।३ चोल यह देश है। कल्कि० ३।१४।२६ यह देश है। वाल्मीकि० कि० (इ०) ४१।१८ (गु० नि०) ४१।१२ चोल जनपद दक्षिण दिशा मे है। महा-भा० सभा० (म०) ५२।६२ (नि०) ७८।२३ चोल का राजा अनन्त चन्दन और अगर, मुक्ता, वैदूर्य इत्यादि युधिष्ठिर के यज्ञ मे लाया।

(केरल) महाभारत आर० (चि०) २५४।१५ केरल जनपद दाक्षि-णात्य है। स्कन्द० वै० वे० १७।५ यह देश है। वायु० पू० ४५।१२४ यह देश भारत मे है और दाक्षिणात्य है। पद्म० आदि० ६।५३ यह देश दक्षिणभारत मे है। ब्रह्म० २७।५४ यह देश दाक्षिणात्य है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।५६ यह देश दक्षिणभारत मे है। मत्स्य० ४८।५ यह देश बडा है। ११४।४६ यह देश भारत मे है और दाक्षिणात्य है। वामन० १३।४७ यह देश दक्षिणभारत मे है। मार्क० ५४।४५ यह देश दक्षिणा-

अर्जुन के युद्ध का वर्णन मिलता है। अन्य पुराणों मे भी चोल, पाण्ड्य, केरल शब्द दक्षिणभारत मे मिल रहे हैं। फिर भी यह देश नया बसा है, यह कहना भेद डालने के लिये योरोपियन विद्वानों की कपोलकल्पना की नकल ही है। जिस कपोलकल्पना का फल यह है कि वहाँ के निवासी उस कपोलकल्पना को सत्य मानते हुए अपने को वहाँ का प्राचीन निवासी और ब्राह्मणो को अपने से भिन्न उत्तर से आये हुए आर्य समझकर और स्वयं आर्य होते हुए भी अपने को अनार्य मानकर परस्पर मैत्री को वैर रूप मे परिणत कर रहे हैं। यदि वे लोग अपने को एक समझते होते तो इस परस्पर वैर के स्थान पर भ्रातृभाव से एक दूसरे को सहायता देते हुए परमोन्नति को प्राप्त हो जाते।

यदि पुराणो को गुप्तराज्य के बाद बना बतलाकर और गुप्तराज्य का कात्यायन के बाद होने से पुराणो का लिखा कात्यायन से पीछे का है, इस सिद्धान्त को लेकर कोई हिस्ट्री का अंधविश्वासी विद्वान् पुराणो को प्रमाण न माने और पुराणों मे लिखे राजाओ के काल के बाद पुराणों के बनने का काल माने और भविष्यज्ञान को पीछे से लिखा हुआ कहे, तो उसको उचित है कि वह मत्स्यपुराण के अनुषंगपाद को खोलकर पढ़े और देखे कि उसमे अंग्रेजी (गोरण्ड) राज्य का वर्णन है या

पथवासी है। महाभा० भीष्म० (चि० ६।५८ (म०) ६।६३।। यह देश दक्षिण में है। इस प्रकार पाण्ड्य, केरल और चोल तीनो देश प्राचीन है और दाक्षिणात्य हैं।

नहीं। उसमें गोरण्डराज्य का समय ३५० वर्ष दिया है। उसके १३ राजे लिखे हैं। उसके अवान्तर एक राज्य का चलना वर्णित है। उसका नाम वृषलराज्य है। उस राज्य का शक्तिशाली होना 'वृषलाः भोद्‌यन्ति भेदिनीं' से प्रतिपादन किया है। उसी के साथ 'तथान्या म्लेच्छ जातयः' से मुसलमानीराज्य का भी साथ मे चलना लिखा है। वृषल का अर्थ शूद्र है और धर्मनाशक है। इससे यह राज्य शूद्रो की वृद्धि और धर्म का नाश करेगा, यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कोई भी पार्टी शासन करे, ये बातें अवश्य होंगी। यह स्वराज्य मिलने से पहिले छपी हुई पुस्तकों मे प्रतिपादित है। यह राज्य जो स्वराज्य नाम से कहा जाता है, वह अंग्रेजीराज्य का अवांतर वृषलराज्य है। अंग्रेज-राजाओ की गणना इस प्रकार प्रतीत होती है। पहला राजा कम्पिनी है, दूसरा राजा रानी विक्टोरिया, तीसरा राजा महा-राज सप्तम् एडवर्ड, चतुर्थ राजा महाराज पञ्चमजार्ज, पंचम राजा अष्टम एडवर्ड, षष्ठ राजा महाराज जार्ज षष्ठ तथा सप्तम राजा महारानी एलिजाबेथ है। इस प्रकार इनका पुराणो के वर्णन के अनुसार मिलना ऋषियो के भविष्यद्‌ज्ञान को प्रत्यक्ष कर रहा है। इस प्रकार की घटना जिस प्रकार पुराणो के वर्णन को सत्य कर रही है, उसी के अनुसार गुप्तकाल के बाद के राजाओ के नाम ऋषियो ने योगबल से जानकर लिखे हैं, इस बात को सत्य कर रही है। अतः पुराणो की रचना आज से ५००० वर्ष पहले हुई, यही सिद्धान्त सत्य है। और पुराणो मे लिखे देश पाणिनि से पहले के बसे है, इस बात मे अणुमात्र भी संदेह नहीं है।

दम—(१) वे० इ० 'दम' शब्द घर के अर्थ मे ऋग्वेद[1] मे कई बार आया है। राथ के अनुसार वह समय, वह स्थान जहाँ कि मनुष्य अपनी आसीमित शक्ति को लगाता है।

(२) राथ—जहाँ मनुष्य अपनी असीमित शक्ति लगाता है, वह समय या स्थान। (वे० इ०)

वस्तुतः ऋग्वेद १।४३।४ मे घर के अर्थ मे आया है।

दीर्घारण्य—वे० इ० "वन का बहुत बड़ा प्रदेश ऐतरेय०[2] तथा शतपथ[3] ब्राह्मण मे उस बड़े जंगल के लिये आता है जो समस्त उत्तरीभारत को ढके हुए था। ऐतरेय[4] के एक अवतरण में कहा गया है कि पूर्व मे बहुत ग्राम सन्निकट बसे हुए हैं, परन्तु पश्चिम मे कम है।"

वस्तुतः यह बड़े जंगल का नाम है। ऐतरेय ब्राह्मण १४।६ मे अग्निष्टोम के अनुष्ठान में शीघ्रता का निषेध किया है। उसमे लिखा है कि जैसे प्रथम और द्वितीय सवन मे शीघ्रता को छोड़कर कार्य करते हैं इससे उसके अङ्ग ठीक होते हैं उसी प्रकार तृतीय सवन मे शीघ्रता छोड़ उचित प्रकार से कार्य करें, जिसमे उसके अंग पूरे हों। यदि अंग पूरे होंगे तो कार्य सिद्ध होगा, यदि शीघ्रता करेंगे तो अंग अधूरा होने से यज्ञ ठीक नहीं होगा। यदि यज्ञ ठीक होता है तो यजमान की अपमृत्यु नहीं होती।

---

(१) १।१।८, १।६१।६, १।७५।५, १।१४३।४, २।१।२ इत्यादि, वाजसनेयी सहिता ८।२४।

(२) ३।४४ तथा ६।२३।

(३) १३।३।७।१०। (४) ३।४४।

यदि यज्ञ में गड़बड़ हुआ तो यजमान की अपमृत्यु होती है। इसीलिये पूर्वदेश के ग्रामों के समूह मनुष्यों से भरे-पूरे है और पश्चिम के गाँव दीर्घारण्य (बड़े जंगल) अर्थात् जनसमूह से शून्य हो रहे हैं। ऐतरेय ब्राह्मण २९।८ में सामवेद के गानेवालों से सोम बढ़ाया जाता है, वहाँ पर बहुत ऋचाओ से अतिशंसन मे यह फल लिखा है कि जैसे दीर्घारण्य (बहुत बड़े जंगलो) में जाते हुए पुरुष को विश्रामस्थान न होने से बड़ा प्रयास होता है, उसी प्रकार बहुत ऋचाओं से अतिशसन मे कष्ट होता है। इसमे कहीं भी उत्तरभारत मे बहुत बड़ा जंगल था, यह नहीं लिखा है। और "पूर्व में ग्राम समीप थे और पश्चिम मे जंगल है" यह भी नहीं लिखा है। पूर्व के गाँव जनसंख्या से पूरे थे और पश्चिम के गाँव उजाड़ थे, यह तो प्रतीत होता है। शतपथ १३।३।७।१० मे "एष वैदीर्घोनामयज्ञः तत्रैतेन यज्ञेनयजन्त आदीर्घारण्य जायते" इसका अर्थ यह है कि इस यज्ञ का नाम दीर्घयज्ञ है, इस यज्ञ को लोग जहाँ करते हैं उस स्थान पर चारों ओर घना जंगल हो जाता है। इसमे कहीं भी 'उत्तरी भारत को बड़ा जंगल ढके था', यह नहीं लिखा है।

दुन्दुभि—बौधायन श्रौतसूत्र २।५।५ मे यह शब्द देश-अर्थ मे आया है।

दुरोण—ऋग्वेद १०।३७।१० मे घर के अर्थ मे आया है।

दुर्य—यह शब्द ऋग्वेद ७।१।११ मे 'घर' के अर्थ में आया है और बहुवचन है।

दृषद्वती—१. वे० इ० "(पत्थरवाली) यह एक नदी का नाम

है जो कुछ दूर तक सरस्वती के समानान्तर बहती हुई उसी में गिरती है। ऋग्वेद[1] में इसका उल्लेख सरस्वती और आपया के साथ भरत राजाओं के कार्यक्षेत्र में आया है। पंचविंश[2] ब्राह्मण तथा बाद के[3] साहित्य मे दृषद्वती तथा सरस्वती यज्ञ करने का प्रमुख स्थान हो गई थी। मनु[4] में ये दोनों नदियाँ मध्यदेश की पश्चिम सीमा का निर्माण करती हैं।"

२. जिमर, वेबर और मेकडानल—सरस्वती और दृषद्वती ये दोनों नदियाँ मध्यदेश की पश्चिम सीमा का निर्माण करती हैं।

३. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ७९ में इसका नाम घग्घर लिखा है।

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ५७—यह कग्गर (घगर) नदी अम्बाला और सरहिंद के बीच से बहती थी। इस समय राजपूताने के रेगिस्तान मे समाप्त हो जाती है (ए० बी० फिशन और टाड जे० ए० एस० बी० ६ पेज १८१)। जनरल कनिंगहम इसको रक्षीनदी मानते हैं, जो थानेश्वर के दक्षिण-पूर्व बहती है (आर्की स० रि० वालूम १४)। यह कुरुक्षेत्र की दक्षिणी सीमा बनाती है (कुरुक्षेत्र में देखो)। दृषद्वती प्रसिद्ध चित्रंग, चौतंग या चितंग है जो सरस्वती तक जाती है (इम्पी-

---

(१) ३।२३।४।

(२) २५।१०।१३।

(३) कात्यायन श्रौतसूत्र २४।६।६।३८, लाट्यायन श्रौत० १०।१६।४

(४) २।१७, तुलना करो जिमर अल्टेनडिश्चेजलेवेन १८, वेबर इंडिश्चेस्टडियन १।३४, इंडियन लिट्रेचर ६७।१०२, मेकडानल वेदिक माइथालोजी पृ० ८७।

रियल गजटियर आफ इण्डिया पेज २६, रैप्सन इन्सेन्ट इण्डिया पेज ५१)। यह ठीक मालूम पड़ता है (जे० एस० बी० १८९३ पेज ५८)। नदी फल की वन मे है (वामनपुराण अ० ३६)।

५. ए० ली फिशन और टाड इसको कग्गर या घगर मानते हैं। (जाग० डिक्श०)

६. रैप्सन इसे चित्रंग, चौतंग या चितंग मानते है। (जा० डि०)

७. कनिंगहम इसे रक्षी मानते हैं। (जा० डि०)

वस्तुतः इन्शेन्ट जागरफी मे दृषद्वती का कोई नाम नहीं लिखा है। दृषद्वती नाम से ही व्यवहार है। गजेटियर मे 'रक्षी' नाम लिखा है। इससे नन्दलाल डे के कथन सन्दिग्ध हैं।

वस्तुतः यह कुरुक्षेत्र की एक नदी का नाम है जो सरस्वती की सहायक है। आजकल वह 'रक्षी' नाम से कही जाती है, ऐसा गजेटियर मे लिखा है। यह सरस्वती से दक्षिण की नदी है। जो लोग घग्घर कहते हैं, उनका मत ठीक नहीं। क्योंकि घग्घर सरस्वती से उत्तर है। यह ब्रह्मावर्त की दक्षिण सीमा की नदी है और मध्यदेश में है। मनुस्मृति २।१७ तथा २१ मे इसका नाम आया है। इसका नाम अश्मन्वती भी है। ऋग्वेद ३।२३।४ में एक मन्त्र अग्निस्तुति मे आया है और भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात इस सूक्त के ऋषि हैं। अर्थ यह है:—'हे अग्ने ! इला=गोरूपधारिणी पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान मे, दिनों के बीच में सुन्दर दिन (जिस दिन इन्द्रादि देवश्रेष्ठ देवताओं का पूजन होता है, वही श्रेष्ठ दिन है) मे हम आपका स्थापन करते हैं। वे उत्तम स्थान कौन हैं—दृषद्वतीनदी, मानुषतीर्थ,

आपयानदी और सरस्वतीनदी ।' इस मंत्र मे यज्ञस्थानों में दृष-द्वती का नाम आया है और भरतवंशियों के द्वारा यहाँ यज्ञ का वर्णन है । इस मंत्र में यज्ञ करने के प्रमुख स्थान होने में इन चारों का ही वर्णन है। किन्तु जैसा वेदिक इंडेक्सकार कहते है कि "पंचविश ब्राह्मण और बाद के साहित्य में सरस्वती और दृषद्वती यज्ञ करने का प्रमुख स्थान बन गई"-इसमें कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु दो भरतवंशियो के यज्ञ का वर्णन है। मनु ने सरस्वती के विनशन को मध्यदेश की पश्चिमी सीमा माना है। वेदिक इंडेक्सकार दोनो नदियो को मध्यदेश की पश्चिमी सीमा मनु को मनवाते हैं, यह उनका भ्रम है। लाट्यायनश्रौत-सूत्र १०।१९।४ मे सरस्वती-दृषद्वती के संगम पर अष्टाकपाल आग्नेय पुरोडाश से यज्ञ का प्रारम्भ लिखा है, ८ मे दृषद्वती के दक्षिण तीर से जाना लिखा है और ९ मे दृषद्वतो के उत्पत्ति स्थान अर्म तक जाना लिखा है। कात्यायन श्रौतसूत्र २४।१९८ मे 'दृषद्वत्यप्यय' शब्द आया है, 'दृषद्वती सगम' अर्थ है। २४।२३० मे दृषद्वती तट का वर्णन है। शौनकीय बृहद्देवता २।२।१२७ यह एक नदी है। ताण्ड्यब्राह्मण २५।१०।१४ में 'दृषद्वती के तट पर' ऐसा लिखा है। लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१ में 'यदि सोदका स्यात्,' २ म 'अप्यनुदकायां' मे सोदका, अनु-दका दोनो विशेषण इसे वर्षावहा नदी बना रहे हैं। इसका वर्णन पुराणो[1] में भी है।

---

(१) वायु० ४५।६५ यह नदी हिमालय के चरण से निकलती है। पद्म० आदि० ६।१२।२५ से २७ तक यह नदी भारतवर्ष में है। ब्रह्म० २७।२६ यह नदी भारत में है और हिमालय के चरण से निकलती है।

मत्स्य० २२।२० यह नदी पितृवल्लभा और श्राद्ध में करोड़ गुना फल देनेवाली है। ५०।६७ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। ११४।२१ यह नदी हिमालय के पार्श्व से निकलती है। वाराह० ८५।० यह नदी भारत मे है और हिमालय के पाद निकलती है। पाद समीपवाले पर्वत को कहते है। वामन० १३।२२ यह नदी कुमारद्वीप (भारत) में है और हिमवत्पाद से निकलती है। २२।४७ यह नदी कुरुजांगल की सीमा पर है। ३३।६ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। ३४।८ यह नदी वर्षाकाल में बहनेवाली है। नारदीय० उ० ६०।३० यह नदी तीर्थ है। ६४।६ यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है और भारत मे है। ६५।८ यह नदी कुरुक्षेत्र में है और वर्षाकाल में बहती है। ६५।७८ यह नदी फलकीवन में है। कूर्म० ब्राह्मी० पू० ४७।२६ तथा मार्क० ५४।१७ यह नदी भारत में है और हिमवत्पाद से निकली है। भवि० ब्रा० ७।६० यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है। देवीभागवत ११।१७ यह नदी भारत में है। श्रीमद्भागवत ५।१६।१८ यह नदी भारत में है। महाभा० भीष्म० ६।१५ यह नदी भारत में है। ब्रह्मा० प्र० १६।२६ यह नदी हिमवत्पाद से निकलती है। ब्रह्मा० उपो० १६।५६ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। इसपर किया श्राद्ध अक्षय होता है। वामन० ३६।४८ यह नदी कुरुक्षेत्र के फलकीवन में है। श्रीमद्भागवत १०।७१।२२ यह नदी सरस्वती से दक्षिण है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारका से दिल्ली आते हुए इसको उतरकर सरस्वती को उतरे। कालिकापुराण ५१।२ यह नदी ठंढे और स्वच्छ जलवाली है और तुरन्त तोड़े हुए सुरमे के समान रगवाली और पापनाशिनी है। स्कन्द० आव० चतुर्दश० ७४।२६ यह नदी पुण्या है। महाभा० शान्ति० (चि०) ५८।३० यह नदी कुरुक्षेत्र में है और हस्तिनापुर से भीष्मशरशय्या के स्थान तक आने पर बीच में पड़ती है। महाभा० आर० (चि०) ८३।४ (म०) ६६।१६५॥ यह नदी कुरुक्षेत्र के दक्षिण भाग में है। विष्णुधर्मोत्तर० १।११।६ यह नदी भारत में

दृषद्वती तीर[1]—यह दृषद्वती के तट का नाम है।

दृषद्वती प्रभव्य—यह दृषद्वती के उत्पत्तिस्थान का नाम है। इसको अर्म भी कहते हैं। यह यमुना के समीप है और हिमालय के प्रत्यन्त पर्वत पर है। (लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१९।९)

दृषद्वत्यप्ययः[2]—यह दृषद्वती के संगम का नाम है और यह सरस्वती का सगम है।

दृषद्वत्या अप्यय[3]—सरस्वती के साथ संगम का नाम है।

देश—१. वे० इ० "देश = पृथ्वी। यह एक शब्द जो उपनिषद् और सूत्रकाल[4] तक प्रयोग में नहीं आता है, केवल ब्राह्मणकाल[5] में सबसे बादवाले समय में एक बार तथा वाजसनेयी[6] संहिता मे पूर्णरूप से वर्णित है। एक अवतरण में जहाँ

है और हिमवत्पाद से निकली है। ३।२।३३ तथा ६५ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। मेदिनीकोष त० च० २० यह एक नदी है। अभिधानचिन्तामणि यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। सौर० ५७।७३ यह नदी है। नीलवत् पु० १३।३१ यह नदी कुरुक्षेत्र में है।

(१) कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२।३०

(२) कात्यायन श्रौतसूत्र २४।१६८, ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०।१५

(३) लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१७।१

(४) जहाँ पर इसका प्रयोग साधारण हो गया था। बृहद् आरण्यकोपनिषद् ४।१।१६ तथा २।३, शांखायन श्रौतसूत्र ४।१४।६, कात्यायन श्रौतसूत्र १५।४।१७ आदि। इसीलिये देशीय विशेषण (पृथ्वी से संबद्ध) कात्यायन श्रौतसूत्र २२।४।२२, लाट्यायन श्रौतसूत्र ८।६।२८।

(५) ऐतरेय ब्राह्मण ८।१०। बहुत बाद का अवतरण।

(६) ३४।११।

कि सरस्वती की पाँच शाखाएँ बतलाई गई हैं, आता है। यह अवतरण इस धारणा का विरोध करता है कि सरस्वती सिंधुनदी का दूसरा नाम है। क्योंकि यहाँ पर देश शब्द का प्रयोग यह संकेत[1] करता है कि ऋचा के ऋषि ने सरस्वती को मध्यदेश में रखा, जो यजुर्वेद[2] के सभी भौगोलिक प्रमाणों से सिद्ध होता है।"

२. जिमर "यह शब्द ग्रन्थ में उस स्थान पर आया है कि जहाँ पर सरस्वती का मूलअर्थ सिंधु तथा उसकी सहायक पाँच नदियाँ हैं।" (वे० इ०)

३. मेकडानल के मत में सरस्वती मध्यदेश की नदी है।

वस्तुतः इस शब्द का 'स्थान' या 'जनपद' अर्थ में प्रयोग होता है। वाजसनेयी संहिता ३४।११ मे यह शब्द 'स्थान' अर्थ में आया है। इस मन्त्र में सहायक नदियों के साथ सरस्वतीनदी की महिमा का वर्णन है। अर्थ यह है:—पाँच नदियाँ सरस्वती का अनुगमन करती हैं। वही सरस्वती ही पाँच रूपों में बँट गई हैं और सरस्वतीनदी देश मे भी नदीरूप मे है; अर्थात् सरस्वती नाम की नदी भिन्न भी है। और पाँच नदियाँ सरस्वती के समान प्रतिष्ठावाली हैं। इससे वे सरस्वती ही हैं। अर्थात् सरस्वती के यज्ञ उनपर भी होते हैं तथा सारस्वतयज्ञ विशेषकर सरस्वती पर होते हैं। इससे स्पष्टतः सरस्वती इन पाँचों से भिन्न है और पुण्य में सरस्वती से इनकी समानता

---

(१) तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १०। यह सोचता है कि यह शब्द ग्रन्थ में उस स्थान पर आया है जहाँ पर सरस्वती का मूलअर्थ सिंधु तथा उसकी सहायक पंजाब की पाँच नदियाँ है।

(२) मेकडानल संस्कृत लिट्रेचर १७४।

है। परन्तु सरस्वती का दर्जा ऊँचा है। इसमें सरस्वती कहाँ है, यह प्रतीत नहीं होता। सिंधु का दूसरा नाम सरस्वती है, यह कथन सर्वथा निर्मूल है। जिमर पाँच नदियों का सरस्वती में जाना समझकर सिंधु का नाम सरस्वती मानते हैं और पाँचों नदियाँ पंजाब की पाँचों नदियों को समझते हैं, सो प्रमाणाभाव से सर्वथा निर्मूल है। सरस्वती की सहायक नदियाँ दृषद्वती इत्यादि इस मन्त्र मे वर्णित हैं। वही सरस्वती की अनुगामिनी पाँच नदियाँ हैं और समान पवित्रतावाली हैं। मन्त्र उनको सरस्वती ही कह रहा है। ऐतरेय ब्राह्मण अ० ३७।६ में 'अवान्तरदेश' शब्द आया है, उसका अर्थ 'बीच का हिस्सा' है। उत्तर और पूर्व दिशा के अवान्तरदेश; अर्थात् ईशान दिशा से तात्पर्य है। लाट्यायन श्रौतसूत्र ८।६।२८ में 'मागध देशीयाय' शब्द आया है। अग्निस्वामी ने अपने भाष्य में मागध का अर्थ वन्दी किया है और 'ईषन् मागधः मागध देशीयः' ऐसा अर्थ दिया है। मागध शब्द से देशीयर् प्रत्यय माना है और कोई लोग मगधदेश के निवासी को मागधदेशीय कहते हैं, यह भी लिखा है। जब देशीयर् प्रत्यय है तब देश शब्द ही नहीं और जब देश शब्द है तो मागध जनपद अर्थ स्पष्ट है। पृथ्वी से संबद्ध यह अर्थ कदापि संभव नहीं। बृहदारण्यकोपनिषद् ८।४।४।२ में 'शरीर देशेभ्यः' शब्द आया है और 'शरीर के स्थान' अर्थ है। तथा ४।१।६ तथा २।३ मे देश शब्द नहीं है।

द्वीप— वे० इ० "द्वीप = आइलैंड। यह ऋग्वेद[1] तथा

---

(१) ऋग्वेद १।१६६।३।

बाद[1] के साहित्य मे उल्लखित है। यह सोचने के लिये कोई भी कारण नहीं है कि द्वीप[2] एवं गङ्गा तथा सिंधु ऐसी बड़ी नदियों के बालू के ढेरों के सिवाय किसी और का प्रसंग है। वैदिक साहित्य मे ऐसा कोई भौगोलिक आधार का ज्ञान नहीं मिलता कि जिसके अनुसार पृथ्वी मेरुपर्वत के चारों ओर ४, ७ या १३ द्वीपों से मिलकर बनी।"

वस्तुतः यह शब्द 'टापू' अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिसके दोनों ओर जल हो, वह द्वीप कहलाता है। ऋग्वेद १।१।६९।३ मे जल जिस प्रकार द्वीप को धारण करते हैं उसी प्रकार वृष्टि के जल सस्यादि अन्नो को धारण करते है, यह वर्णितहै। शतपथमे भी 'द्वीप' शब्द का अर्थ 'टापू' ही है। जल के बीच की भूमि टापू कही जाती है, चाहे जहाँ हो। केवल गङ्गा और यमुना में ही मानना ठीक नहीं। यह समुद्र में भी होता है।

द्वैतवन—१. वे० इ० "द्वितवन का वंशज मत्स्यो के राजा ध्वसन का पैतृक नाम है, जिनके अश्वमेध अथवा अश्वयज्ञका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।९ में मिलता है।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ ५८ "द्वैतवन, देवबन्द मेरठ के उत्तर मे उत्तरप्रदेश के सहारनपुर जिले मे मेरठ से पचास मील दूर है। पूर्वी कालीनदी से ढाई मील पश्चिम तथा मुजफ्फरपुर नगर से करीब १६ मील दूर है। यहाँ पर

---

(१) काठक स० १३।२, शतपथ ब्राह्मण १२।२।१।३, लाट्यायन श्रौतसूत्र १।६।१०।

(२) जिमर अल्टिनडिस्चेजलेवेन २५६।

राजा युधिष्ठिर राज्य हारने के बाद अपने भाइयों के साथ रहे थे (महाभारत वनपर्व अध्याय २४, कलकत्ता रेव्यू १८७७ पृ० ७८ नोट)। कस्बे से आधे मील की दूरी पर एक छोटी-सी झील है, जो देवीकुण्ड कहलाती है। उसके तट मंदिरों, घाटों और सती के चौरो से घिरे है। बहुत से यात्री यहाँ आते है। (इम्पीरियल गजटियर आफ इण्डिया वालूम ४)। द्वैतवन मीमांसादर्शन के रचयिता जैमिनि की जन्मभूमि है।"

वस्तुतः यह एक वन है और सरस्वती के तट पर है। यहाँ पर द्वैतवन नाम का एक सर है, उसके तट पर द्वैतवन, ध्वसा और संग्रामजित् नामक मत्स्यदेश के राजा ने त्रिवृदग्निष्टोम नामक १४ अश्वमेधयज्ञ किये। इसी से इसका द्वैतवन नाम पड़ गया। यह बात शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।९ मे लिखी है। महाभारत[1] मे यहाँ पर महाराज युधिष्ठिर के बहुत समय तक रहने का वर्णन है। यह वन हिमालय पर है और इसी मे स्थित प्लक्षप्रस्रवण से सरस्वतीनदी निकली है, यह वामन० पु० अ० ३२ से स्पष्ट है। यह स्थान सरस्वतीनदी के तट पर होने के कारण त्रिकाल मे देवबन्द नहीं हो सकता।

द्वैतवन—यह एक तालाब है, जो द्वैतवन नामक वन में है। इसके तट पर मत्स्यदेश के राजा द्वैतवन ध्वसा संग्रामजित् ने १४ त्रिवृदग्निष्टोम नामक अश्वमेधयज्ञ को किया। इससे इस सर का नाम द्वैतवन पड़ गया। यह शतपथ ब्राह्मण १३।५

(१) महाभारत आ० २।१३६ (सुथ०) २५।१०-१६ यह एक वन है। महाभारत शल्य० गदा० (चि०) ३७।२७ यह तीर्थ है। यहाँ पर बलभद्र पावनतीर्थ से गये।

४।९ में लिखा है। महाभा० आर० २३।९।२९ यह सर द्वैत-वन में है, ४०।१२ यह सर मयूरों के शब्द से मनोहर और भौरों से युक्त सप्तपर्ण, उन्नाब और मौलसिरी के वृक्षों से शोभित है। (सु० २५।१०-१३)

धन्व—१. वे० इ० "धन्वन्त=रेगिस्तान। यह अनेक बार ऋग्वेद[1] तथा बाद[2] के साहित्य में आता है। इन रेगिस्तानो में प्यास से मृत्यु होना साधारण[3] था और रेगिस्तान में किसी चश्मे के मिलने पर बड़ी प्रशंसा[4] की जाती है। ऋग्वेद[5] की एक ऋचा में सिंधु तथा शुतुद्रि के पूर्व मे एक बहुत बड़े रेगिस्तान का वर्णन आया है।"

२. जिमर सिंधु तथा शुतुद्रि के पूर्व मे एक बहुत बड़े रेगिस्तान का वर्णन मानते हैं।

वस्तुतः यह शब्द निर्जलप्रदेश को कहता है। ऋग्० २।३८।७ मे यह मन्त्र सूर्य की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे सवितः! आपसे अन्तरिक्ष मे अथवा जलाधार में रखे गये भी जल के भाग को निर्जलप्रदेशों में, जंगलों में ढूँढ़ते हुए हिरण चारों तरफ से स्थित होते है। किन्तु और भी आपने

---

(१) ऋग्वेद २।३८।७, ३।४५।१, ४।१७।२१, १६।७।३३।७, ५।५३।६, ८३।१० इत्यादि। १।११६।४ में समुद्र के रेत का वर्णन आया है।

(२) अथर्व० ५।१३।१, ६।१००।१, ७।४१।१ इत्यादि।

(३) ऐतरेय ब्राह्मण २।१६।

(४) ऋग्वेद १०।४।१, तुलना करो ६।३४।७ इत्यादि। अथर्व० १।६।४, १६।२।२।

(५) १०।८६।२०, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेज़लेवेन ४७।४८।

पक्षियों के लिए निवास करने को वृक्षों को दिया। इस सविता देवता के कर्मों को कोई भी हिंसित नहीं करता। ३।४५।१ यह मन्त्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे इन्द्र! आप मयूर के रोम के सदृश रोमवाले, मतवाले बनानेवाले घोड़ों से युक्त हो हमारे यज्ञ मे आइये। आपको कोई मार्ग में न रोके। (प्रतिबन्ध मे दृष्टान्त)—जैसे हाथ मे पाशवाले व्याध लोगजाते हुए पक्षी को पकड़ लेते हैं, उस प्रकार आपको न रोके। तथा और भी, जिस प्रकार यात्री लोग मरुदेश को शीघ्रता के साथ उल्लंघन करते हैं, उसी प्रकार गमन के प्रतिबन्धकों को दूरकर आप शीघ्र आइये। ४।१७।२ यह मंत्र भी इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—हे इन्द्र! दीप्तमान् आपके जन्म होने पर अन्तरिक्ष आपके कोप से काँप गया तथा पृथ्वी कम्पमान् हुई। बड़े-बड़े मेघ धान इत्यादि को वृष्टि-प्रदान के लिए नियामक आपसे बाधित हुए तथा मेघों ने प्राणियों की पिपासा रूप पीड़ा का नाश किया तथा मेघ धन्व = जलरहित प्रदेशों मे जल पहुँचाते हैं। ४।१९।७ यह मन्त्र भी इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है—इन्द्र ने धन्व = निर्जल और उन्नत प्रदेशों को वृष्टि से भर दिया। ४।३३।७ यह मन्त्र ऋभुस्तुति मे आया है। ऋभु किरणों का नाम है। जिस समय सूर्य १२ आर्द्रादि वृष्टिनक्षत्रों के ऊपर होता है, उस समय ऋभु अर्थात् सूर्य की किरणें सूर्य के घर मे अतिथिसत्कार प्राप्तकर सुख से निवास करती हैं। उस समय शून्य क्षेत्रों को वृष्टि से सस्यादि से समृद्ध बनाती हैं। नदियो को बहने की प्रेरणा करती हैं। उसी समय मे औषधियाँ धन्व (उदकरहित) स्थानों का आश्रय करके स्थित होती हैं;

अर्थात् वर्षा के जल से वहाँ पर अन्न उत्पन्न होता है, नीचे स्थानों मे जल स्थित होता है। ५।५३।६ यह मन्त्र मरुत् की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—नेता और सुन्दर दानवाले मरुत् जब मेघ को यजमान के लिए नीचे लाते हैं और पर्जन्य को पृथ्वी और आकाश का अनुसरण करके छोड़ते हैं, उस समय धन्वना=सर्वत्र जानेवाले जल के साथ वृष्टि देनेवाले वायु सर्वत्र व्याप्त हो जाते है। इसमे धन्वशब्द का अर्थ निर्जलप्रदेश नहीं है, सर्वत्र जानेवाला है। ५।८३।१० यह मन्त्र पर्जन्य की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे पर्जन्य! आपने वृष्टि की और अब उत्कृष्ट वृष्टि का परिहरण करो। धन्व = निर्जलप्रदेशों को आपने जलवाला बनाया। आपने औषधियो को पैदा होने के लिए ऐसा किया। और औषधियों को भोग के लिए बनाया। इन सब स्थानो में 'धन्व' शब्द का अर्थ 'पानी से रहित देश' है। केवल ५।५३।६ मे इसका अर्थ यह नहीं है, प्रत्युत 'सर्वत्र जानेवाला' अर्थ है। १।११६।४ यह मंत्र अश्विनीकुमारो की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे अश्विनीकुमारो! आपने सेना के सहित जल में डूबे हुए भुज्यु को तीन दिन-रात मे चलते हुए तीन रथो से वहन किया। समुद्र के मध्य मे धन्व=जलरहित प्रदेश में, उदक से आर्द्र समुद्र के पार मे सौ पहियो से युक्त ६-६ घोड़े मचे हुए रथों से पहुँचाया। इसमे भी धन्व का अर्थ पानी से रहित रेगिस्तान है। समुद्र के बीच के टापू का वर्णन है, न कि समुद्र के बालू का वर्णन है। अथर्व० ५।१३।१ मे साँप के विष को दूर करने में यह मंत्र आया है। यहाँ धन्व शब्द का जलरहितप्रदेश ही अर्थ है। तथा अथर्व० ६।१००।१ में

भी धन्वशब्द का जलरहितप्रदेश ही अर्थ है। ७।४१।१ में भी धन्व का अर्थ मरुभूमि है और उसमे भी जिस प्रकार वृष्टि हो, उस प्रकार सूर्य वर्षा करें, यह प्रार्थना है। अथर्व० १९।२।२ में महाशांति के वर्णन मे 'आपका कल्याण मरुदेश में होनेवाले जल करें,' यह अर्थ है। चश्मे की प्रशंसा का गन्ध भी नहीं है। ऋग्० १०।४।१ यह अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे अग्ने! मैं आपके लिये हवि देता हूँ और आपकी स्तुति करता हूँ। सबसे वन्दना के योग्य आप हमारे आह्वानो मे जिस प्रकार सन्निहित हो, उसी प्रकार मैं आपको हवि दूँ और आपकी स्तुति करूँ। हे पुराने और जगत् के स्वामी अग्ने! आप यजन की इच्छा करनेवाले मनुष्य के लिये और हवियो से देवताओं को तृप्त करनेवाले मनुष्य के लिये धन्व=मरु मे प्रपा के समान सुख देनेवाले होते हैं, जैसे उदकरहित स्थान मे प्रपा (प्याऊ) उदकप्रदान से लोगो को सुखदा होती है, उसी प्रकार मनुष्य के लिये आप धन-धान्य से सुख देनेवाले होते हो। यहाँ पर 'प्रपा' का अर्थ 'जल पिलाने का स्थान' है। पानी का चश्मा अर्थ नहीं है और पानी के चश्मो की इसमे प्रशंसा भी नहीं है। ऋग्० ६।३४।४ यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। उस इन्द्र को पुरोडाश आदि हवियो के साथ स्तुतियाँ इस प्रकार बढ़ाती हैं, जिस प्रकार धन्व=मरुदेश मे सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हुए जल प्राणी को बढ़ाते हैं; अर्थात् मरुदेश में प्राप्त हुए जल प्राणी को बढ़ाते हैं। अथर्व० १।६।४ यह जलस्तुति में आया है। अर्थ है कि मरुभूमि में पैदा हुए जल शुभकारी हों। इसी प्रकार और भी जलों से शुभ की प्रार्थना है। इस मंत्र में मरुभूमि के

चश्मे की प्रशंसा नहीं है, किन्तु मरुभूमि के जल से सुख की प्रार्थना है। ऋग्वेद १०।८६।२० यह मंत्र इन्द्र कह रहे हैं। अथ यह है:—हमारे शत्रु के स्थान और हमारे गृह के मध्य मे कुछ योजन स्थित धन्व=निरुदक जंगल हैं। इसीलिए अतिशय करके समीपस्थ शत्रु के स्थान से हे वृषाकये आप हमारे घर को आयें और आकर यज्ञगृहो मे स्थित हों। इसलिये कि मैं इन सबसे उत्कृष्ट हूँ। इसमें सिंधु और शुतुद्रि का नाम नहीं है और इसके इधर-उधर भी दूर तक ये दोना शब्द नहीं दिखलाई देते हैं। तब भी जिमर और वेदिक इन्डेक्सकार सिंधु और शुतुद्रि से पूर्व एक बहुत बड़े रेगिस्तान को देख रहे हैं।

धेना—ऋग्० ७।२१।३ मे यह शब्द नदी सामान्य अर्थ में आया है।

नगर—वे० इ० "पूर्व वैदिक साहित्य मे नगरिन् ऐसा व्यक्तिवाचक संज्ञा के विशेपणरूप मे आया है; परन्तु तैत्तिरीयारण्यक १।११।१८ तथा ३१।४ मे यह शहर के रूप मे आया है और बाद के साहित्य मे भी कई बार इसी अर्थ मे आता है।"

वस्तुतः ऐतरेय ब्राह्मण २५।६ मे 'नगरी जानश्रुतेयः' ऐसा लिखा है। 'नगरी' का अर्थ 'नगरवासी' होता है और नगरी जानश्रुते का विशेषण है। यहाँ पर वैदिक इन्डेक्सकार नगरी का पूर्व वैदिक साहित्य मे होना स्वीकार कर रहे है। जब तक 'नगर' न हो 'नगरी' नहीं बन सकता। इससे पूर्व वैदिक काल में नगरो का होना उनको स्वीकार है। फिर भी कीट साहब 'आर्य लोगों को नगरों का ज्ञान नहीं था, इससे मोहनजोदड़ो आर्यसभ्यता से पूर्व का है'—यह कहते हैं। वेदिक इन्डेक्स में

तो नगर आर्यों के ज्ञान मे होना स्वीकार करें और मोहनजोदड़ो का आर्यों से पूर्व का मानते समय आर्यों को नगर-ज्ञान नहीं था, यह कहें—यह कितनी विचित्र बात है। उनका कौन सिद्धान्त माना जाय, यह निश्चय करना कठिन है।

नद— १. वे० इ० "नद ऋग्वेद[1] के कई अवतरणों मे उल्लिखित है; परन्तु अर्थ अब भी अस्पष्ट है। पिशल[2] द्वारा यह शब्द नड माना गया है और वह एक अवतरण[3] मे इसका अर्थ नड की बनी नाव मानते हैं, जो कि टूट गई और उसके ऊपर पानी बह रहा है। दूसरे अवतरणों[4] मे यह नद का अर्थ कोड़ा बतलाता है जिसका तेज शिर, कर्ण=घोड़ों के दौड़ाने के काम में आता है। और अवतरणों[5] मे अलंकृतरूप से लिंग अर्थ मानते

---

१. १।३२।८, १।१७६।४, २।३४।३ तथा ८।६६।२ तथा १०।११।२ तथा १०।१०५।४, तुलना करो निरुक्त ५।२।

(२) जेट्स् चेरिफ्ट डेर ड्यूस्चेनमार्गेन लान्डिस्चेनजेसेल्सचेफ्ट ३५।७१७ से प्रारम्भ, वेदिस्चेस्टडियन १।१८३ से प्रारम्भ।

(३) १।३२।८, यहाँ पर कलन्द और हेनरी की एल अग्निष्टोम ३१२ एन मे नलम् पढा जावेगा। वैकर नेगल की आल्टिनडिस्चेज ग्रामेटिक १।१७३ देखिये।

(४) २।३४।३, मेक्समूलर की सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्टस् ३२।३०१ भी इसी धारणा का पोषक है, जो कि आशुभिः अर्थात् तेज को कर्णैः के साथ, जैसा कि पिशल् वेदिस्चेस्टडियन १।१६० में कहते है, नही मानते। वह १०।११।२ मे अर्थ नड मानता है, परन्तु १०।१०५।४ में घोड़ा अर्थ मानता है।

(५) १।१७६।४ तथा ८।६६।२।

हैं। राथ[1] के अनुसार उसका अर्थ बैल है। शाब्दिक अथवा अलंकृतरूप में केवल एक बार[2] हिनहिनानेवाला (नद्धातु से जिसके माने शब्द करना होता हैं) अर्थात् इन्द्र का घोड़ा अर्थ निकलता है। 'नदस्य कर्णैः' ऐसे पद में घोड़े के कान द्वारा (अर्थात् आज्ञा सुनने के लिये कान उठाकर तैयार) अर्थ होता है। ये घोड़े मरुत्स के रथ के हैं जो शीघ्रता से जाते हैं। तुरयन्ताशुभिः।"

२. पिशल इस शब्द को नड़ मानता है और ऋग्वेद १। ३२।८ के पाठ मे इसका अर्थ नड़ की बनी नाव मानता है। और १०।११।२ में नड अर्थ मानता है; परन्तु १०।१०५।४ में घोड़ा अर्थ मानता है। २।३४।३ में नड का अर्थ कोड़ा बतलाता है, जिसका तेज सिरा (कर्ण) घोड़ों के दौड़ाने के काम में आता है, एवं १।१७९।४ तथा ८।६९।२ में अलंकृतरूप में लिंग अर्थ मनता है।

३. कलन्द, हेनरी और बेकर नेगिल १।३२।८ में नलम् ऐसा पाठ मानते हैं।

४. मैक्समूलर २।३४।३ में नल का अर्थ कोड़ा मानते हैं,

---

(१) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी—बैल का अर्थ ८।८६।२ में प्रतीत होता है, जहाँ पर कि यह १।१७६।४ मे आता है और वहाँ पर बैल मनुष्य की ओर सकेत करते पाया जाता है। सभवतः १।३२।८ मे भी ऐसा है। परन्तु नड और भी उचित मालूम पड़ता है।

(२) १०।१०५।४ और १०।११।२ मे बाद का अवतरण यह बतलाता है कि अर्थ यहाँ नदी हो सकता है। तुलना करो ओल्डेनवर्ग ऋग्वेद नोटेन १।३२।१७८ तथा २१५।

जो आशुभिः; अर्थात् तेज को कर्ण के साथ, जैसा कि पिशल वेदिस्चेस्टडियन १।१९० मे कहते है, नहीं मानते।

५. राथ इसका अर्थ ८।८९।२ मे बैल मानते हैं, जहाँ पर कि यह १।१७९।४ मे आता है और बैल मनुष्य की ओर संकेत करते पाया जाता है, तथा संभवतः १।३२।८ में भी ऐसा ही है। १।३४।३ मे हिनहिनानेवाला नद धातु से जिसके माने शब्द करना होते हैं; अर्थात् इन्द्र का घोड़ा अर्थ निकलता है। 'नदस्य कर्णैः' ऐसे पद मे घोड़े के कान द्वारा (अर्थात् आज्ञा सुनने के लिये कान उठाकर तैयार) अर्थ होता है। ये घोड़े मरुत्स के रथ के है, जो शीघ्रता से जाते हैं। तुरयंता आशुभिः १०।१०५।४ तथा १०।११।२ मे बाद का अवतरण यह बतलाता है कि यहाँ पर नदी अर्थ हो सकता है।

वस्तुतः यहाँ पर 'नद' शब्द है और पुल्लिग है। इसका अर्थ योरोपियन विद्वानों ने कई प्रकार का किया और पाठ भी दकार के स्थान में डकार बदल डाला। इससे वास्तविकता के विषय मे निश्चय करने मे असमर्थ होकर वेदिक इंडेक्सकार ने इसके अर्थ को अस्पष्ट कहने मे ही सुविधा पाई। ऋग्० १०। ११।२ मे 'नद' शब्द का अर्थ कोई नद नामक मनुष्य है। ऋग्० १।३२।८ मे 'नद' शब्द का अर्थ 'नदी' है। मंत्रार्थ यह है:—जैसे वृष्टिकाल मे बढ़े हुए जल नद के कूल को भेदनकर अतिक्रमण करके जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर पड़े हुए मृत वृत्र के ऊपर से जल बहकर जाता है। यहाँ पर पिशल ने 'नड' शब्द माना है और उसका अर्थ नड की बनी नाव माना है। कलन्द, हेनरी और बैकर मेगिल यहाँ पर 'नलम्' पाठ

मानते हैं, वह भी मानने योग्य नहीं। यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है और वृत्र को मारकर इन्द्र द्वारा वर्षा करने का वर्णन है। इसमे नदन् यह उपमा मे आया है। वृत्र शब्द भी आया है। नाव का संबंध कोई नहीं है। २।३४।३ मे यह 'शब्द करते हुए' अर्थ मे आया है। २।३४।३ मे पिशल नड़ पाठ मानता है और उसका अर्थ कोड़ा करता है और कोड़े को नुकीला मानता है, जो कि घोड़ों को दौड़ाने के काम मे आता है। पिशल का नद के स्थान में नड पाठ मानना प्रमाणरहित है। मंत्रार्थ यह है—मरुत्, अश्व = व्याप्तलोको को उस प्रकार सींचते हैं जैसे कि संग्राम मे चलनेवाले घोड़ो को पानी से सींचते हैं (उनकी थकावट दूर करते हैं) और ये मरुत् शीघ्र चलनेवाले नद = शब्द करते हुए मेघ के कर्ण = मध्यप्रदेश से शीघ्र जाते हैं; अर्थात् वृष्टि करने के लिए शीघ्र जाते है। हे सोने के मुकुटवाले, समान मनवाले अथवा समान क्रोधवाले मरुतो! आप वृत्तों को कॅपाते हुए हविरूप अन्न देनेवाले यजमान के पास श्वेत बिंदुवाली मृगियों अथवा घोड़ियों से जायॅ। इसमे 'नद' शब्द का अर्थ 'शब्द करनेवाला मेघ' है और 'कर्ण' शब्द का अर्थ 'मध्यप्रदेश' है। पिशल का अर्थ ठीक नहीं। ८।६९।२ मे 'नद' शब्द दो बार आया है, उनमे पहले का अर्थ 'उत्पादक' है और दूसरे का अर्थ 'शब्द करानेवाला' है। १०।१०५।४ मे नद शब्द का अर्थ शब्द करनेवाले प्रकरण से हिनहिनानेवाले; अर्थात् घोड़े हैं। १।१७९।४ तथा ८।६९।२ मे पिशल अलंकृत-रूप से लिग अर्थ मानता है। पहले का मंत्रार्थ यह है:—(अगस्त्य अपनी स्त्री लोपामुद्रा से कह रहे है) हे जाये! नद-

स्य = जप करते हुए और ब्रह्मचर्य में स्थित मेरे पास तुम्हारे संगम के कारण तथा वसतादि काल के कारण काम आया। यह लोपामुद्रा वीर्य के प्रवर्तक मुझको निरंतर प्राप्त हों। किं च धीमान् नियम से अविचलित महाबलिष्ठ मुझको कातरा यह स्त्री उपभोग करे। इसमे नद शब्द का अर्थ शब्द करनेवाला; अर्थात् जप करनेवाला है। लिंग अर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि 'नद' धातु 'अव्यक्त शब्द' अर्थ में है, उससे बना 'नद' शब्द 'शब्द करने' के अर्थ को ही कहेगा, लिंग अर्थ को किसी प्रकार भी नहीं कह सकता। ८।६९।२ में यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे यजमानो! हम उषा के उत्पादक इन्द्र को; अर्थात् सूर्य को आपके लिए आह्वान करते है और सर्वत्र मिलानेवाली नदियो को शब्द करानेवाले और गायों के स्वामी इन्द्र का आपके लिए आह्वान करते है। हे यजमानो! आप दूध से तृप्त करनेवाली गाये तथा अन्नों को चाहते हैं। इसमें नद शब्द का अर्थ शब्द करानेवाला है, लिङ्ग नहीं है। राथ सर्वत्र बैल कहते है, वह उनका बलात्कार है। १०।१०५।४ में नद शब्द का अर्थ शब्द करनेवाला है, प्रकरण से यहाँ पर इन्द्र का घोड़ा अर्थ होता है। इसलिये राथ यहाँ पर ठीक हैं। परंच २।३४।३ मे उसका अर्थ बिल्कुल मनमाना और असंगत किया है। इन्हीं अर्थों को देखकर वेदिक इन्डेक्सकार अपने समय तक इसका अर्थ अस्पष्ट मानते है। यदि वास्तविक विचार किया जाय तो अर्थ पूर्णतः स्पष्ट है। लोक में भी 'भिद्योद्धौ नदे' इस सूत्र मे पाणिनि ने नद शब्द को नदीवाचक माना है। और शोण, सिंधु और ब्रह्मपुत्र नद कहे जाते है। 'नदी सरिति

शोणादौ ना' मेदिनी ८ द्वि ६, 'शोण कृशानौ शोनाके लोहिताश्वे नदे पुमान्' ण द्वि ३१।

नदी—वे० इ० "नदी का उल्लेख ऋग्वेद[1] मे तथा बाद[2] में मिलता है। नदी के मध्य छिछले भागों (गाध[3]), दूसरे किनारे (पार[4]) तथा चश्मों[5] मे घोड़ो के स्नान करने का प्रसंग मिलता है। पर्वतो[6] के निकट-सम्बन्ध में भी नदी का उल्लेख मिलता है। एक स्थल पर नदीपति 'नदियों का स्वामी'[7] शब्द 'समुद्र' अथवा 'समुद्र के जल' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।"

वस्तुतः यहाँ नदी और पर्वतो से परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है।

नदीपति—यह समुद्र[8] का नाम[9] है।

---

(१) १।१५८।५, २।३५।३, ३।३३।४ तथा ५।४६।६ इत्यादि।

(२) अथर्व० ३।१३।१ तथा १४।१।४३।

(३) ऋग्० ७।६०।७।

(४) शतपथ ब्राह्मण ११।१।६।६। (५) ऋग्० ८।२।२।

(६) ऋग्० ५।५५।७ तथा १०।६४।८ (वस्तुतः ऋग्० ६।८८।५ में यह शब्द सामान्य नदीअर्थ में आया है। तथा ऋग्० १५८।५ तथा २।३५।३ तथा ३।३५।४ तथा ७।५०।३४, गौतम धर्मसूत्र पृष्ठ ४६६ आठ सहस्र धनुष् बहनेवाली नदी कही जाती है)

(७) शतपथ ब्राह्मण ५।३।४।१०।

(८) वाजसनेयी संहिता २४।३४ मत्स्यस्ते नदीपतये=समुद्र के लिये मछली यह अर्थ है। कात्यायन श्रौतसूत्र १५।१०८, पद्म० सृष्टि० ४२।१५४, वाल्मीकि० बाल० (गु०) ३५।१३, महाभारत आर० (चि०) ८३।३६ में समुद्र का नाम नद-नदी-पति आया है।

(९) शतपथ ब्राह्मण ५।३।४।१०।

नाडपित्—वे० इ० "शतपथ"[1] ब्राह्मण मे भरत के जन्म-स्थान के लिये आया है। यह शब्द भरत की माता[2] के नाम के रूप मे नाडपिती पढ़ा जा सकता है। परन्तु यह संभव नहीं।"

२. वेबर नाडपिती पाठ को शुद्ध मानता है और शकुन्तला का नाम बतलाता है। (वे० इ०)

३. लेडमन का भी यही मत है।

वस्तुतः यह शब्द सप्तम्यन्त और ईकारान्त दोनो समझा जा सकता है। ईकारान्त पाठ मे हरिस्वामी का भाष्य जो इस स्थान पर छपा है—वह खण्डित है। नाडपिति (१ तामुपलि Cod) स्थाने कण्वाश्रमे लक्ष्मी वेंकटेश्वर मे मुद्रित शतपथ के भाष्य मे हरिस्वामी के भाष्य मे 'शकुन्तला नामाप्सरा नाडपिती सा पडस्थाने कण्वाश्रमे भरतं पुत्र दृष्ट्वा तम् लब्ध्वा दधे' ऐसा छपा है। शतपथ के मूल मे 'नाडपित्यप्सरा' ऐसा छपा है। हमारी समझ मे लक्ष्मी वेंकटेश्वरवाले पाठ में 'नाडपिती' स्पष्ट शकुन्तला का विशेषण है और उसका अर्थ यह है कि पडस्थान नामक कण्वाश्रम मे भरत को देखकर उसको लेकर शकुन्तला ने पाला है। हमारी समझ से लेखक के भ्रम से सा नाड्पितीस्थाने कण्वाश्रमे के स्थान मे नाडपिती सा पड-स्थाने कण्वाश्रमे यह लिख गया। सशोधक ने ज्ञानाभाव से वैसा ही रहने दिया अथवा मारे पण्डिताई के बप्तिस्तमिशन प्रेस, कलकत्ते मे १९६० की मुद्रित पुस्तक के अशुद्ध पाठ को शुद्ध करके अपना प्रबल पाण्डित्य दिखलाया है। शतपथ के नाड

(१) १३।५।४।१३।

(२) वेबर एपिस्चेजइमवेदिश्चेन ऋचुअल ६ न० ३।

पित्यप्सरा पाठ में नाडपिती अप्सरा और नाडपिति अप्सरा दोनों पदच्छेद का संभव है। परंच कलकत्ते की पुस्तक में नाड॰पिति इस पाठ के मिलने से नाडपिति अप्सरा ऐसा पाठ ही शुद्ध मालूम पड़ता है और वह कण्वाश्रम का नाम प्रतीत होता है। परंच बम्बई की पुस्तक मे नाड़पिती सा पडस्थाने कण्वाश्रमे ऐसा पाठ मिलने से नाडपिती शकुन्तला का विशेषण प्रतीत होता है। वेबर प्रथमान्त पाठ के ही पक्षपाती हैं—और नाडपिती शकु॰न्तला का नाम मानते हैं। वेदिक इन्डेक्सकार उसे असंभव कहते हैं। सायणाचार्य ने मूल का अन्वयमात्र करके ही छोड़ दिया है। उससे कुछ पता नहीं चलता है।

नार्मिणी—१. वे० इ० ऋग्वेद[1] में यह पुर अर्थात् किले के विशेषणरूप मे आता है। स्पष्टरूप से या तो एक किले[2] का नाम है, या किसी नर्मन या नर्मण राजकुमार[3] का नाम है।"

२. लुडविक इसको किले का नाम मानते हैं।

३. आल्डनवर्ग इसका राजकुमार अर्थ मानते हैं।

४. राथ का भी यही मत है।

वस्तुतः यह शब्द यजमान सम्बन्धी उत्तरवेदी का नाम है। यह मंत्र १।१४९।३ अग्निस्तुति मे आया है और सायण ने यह

(१) ऋग्० १।१४६।३।

(२) लुडविक ट्रान्सलेशन आफ ऋग्वेद ३। २०४।

(३) राथ सेन्टपीटर्सवर्ग डिक्शनरी, सभवतः यह पद दो शब्द रखता हो। न (नहीं) अथवा तरह और अर्मिणी इसका चाहे जो कुछ अर्थ हो, ओल्डेनवर्ग की ऋग्वेद नोटेन १।१४८, सेक्रेडबुक्स आफ दि ईस्ट ४६।१७७ भी देखिये।

अर्थ किया है—'जो अग्नि नार्मिणी यजमानो की संबन्धिनी उत्तरवेदीस्वरूप स्थान को दीप्त करता है, वह कैसा है—अत्यय अपेक्षित देश में जानेवाला, क्रान्तदर्शी आकाश मे उत्पन्न वायु के समान रणकुशल और सैकड़ों स्वरूपवाला और सूर्य के समान दीप्तिमान् अग्नि उत्कृष्ट वर्त्तमान है।' मन्त्र के अग्नि-स्तुति मे होने से सायण का अर्थ ठीक है। 'पुर' शब्द का अर्थ 'किला' कहीं भी नहीं है।

नावप्रभ्रंशन—१. वे० इ० "जहाज का चलना या खिसकना, यह ह्विटनी तथा राथ के अथर्ववेद[1] के ग्रन्थ मे मिलता है। वेबर[2] तथा अन्य लोगो[3] ने इसका सम्बन्ध 'मनोरवसर्पण' से दिखलाया है। यह नाम शतपथ ब्राह्मण[4] मे उत्तरीपर्वत के लिये आया है, जहाँ पर प्रलय के बाद मनु का जहाज ठहरा था। किन्तु ब्लूमफील्ड[5] और ह्विटनी[6] संकेत करते हैं कि यह

---

(१) १६।३६।८ जहाँ पर नावप्रभ्रंशन पाठ काल्पनिक है। हस्त-लिखित सहिताओ मे दो उच्चारण है, नावप्रभ्रंशन उनमे से एक नावः प्रभ्रशन।

(२) इडिश्चेस्टिफेन १।११।

(३) तुलना करो लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१९८, एजलिड् सेक्रेडबुकस् आफ दि ईस्ट १२।१२८ एन्, जिमर आल्टिन डिस्चेज्लेवेन ३०।

(४) १।८।१।६।

(५) हिम्स आफ दि अथर्ववेद ६७६।

(६) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ९६१।

अर्थ असंभव है, और यह मत मेकडानल[1] को भी मान्य है। पदपाठ तथा टीका मे समानरूप से व्याख्यान 'न अवभ्रशन' मिलता है और किसी भी स्थान मे नाव या जहाज[2] के उतरने के प्रसंग मे नहीं पाया जाता।"

२. राथ तथा ह्विटनी के मत मे 'नावप्रभ्रंशन' शब्द है। (वे० इ०)

३. वेबर, लुडविक, एजलिङ् और जिमर इसका संबन्ध 'मनोरवसर्पण' से मानते हैं। यह नाम शतपथ ब्राह्मण मे उत्तरीपर्वत के लिये आया है, जहाँ पर कि प्रलय के बाद मनु का जहाज ठहरा था। (वे० इ०)

४. ब्लूमफील्ड और ह्विटनी इस अर्थ को असंभव मानते हैं। (वे० इ०)

५. मेकडानल भी इसी मत को मानते हैं।

वस्तुतः यह किसी स्थान का नाम नहीं है। ब्लूमफील्ड और ह्विटनी का मत सत्य है। लुडविक, जिमर, वेबर तथा एजलिङ् का मत असंगत है। सायणाचार्य भी 'यत्राद्युलोके न अपभ्रंशनं तत्रत्यानाम् सुकृतिना अवांग्मुखः प्रभ्रंशो नास्ति'— यह लिख रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस द्युलोक मे नीचे

---

(१) जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०७, ११०७, जहाँ उनका वेवर का अर्थ मानना (सस्कृत लिटरेचर १४४) हटा दिया गया है।

(२) नौ शब्द जहाज कभी सयुक्त शब्द के आदि में नाव रूप मे नहीं आता है, जब कि प्रभ्र श कभी नाव के चलने के अर्थ मे नही प्रयुक्त किया गया है और उस अर्थ में प्रयोग करना अनुचित होगा।

को मुँह करके गिरना नहीं होता है। अर्थात् यहाँ पर 'न अपप्रभ्रंशन' दो शब्द हैं।

नाव्या—ऋग् १।१२१।१३ में यह शब्द आया है और नाव से उतरने योग्य नदियाँ इसका अर्थ है। ९० नदियाँ लिखी हैं और उनके पार जाने का नाव द्वारा वर्णन है।

निचुम्पुण—यह शब्द निरुक्त अध्याय ५ पाद ३ खण्ड ६ (५।१८) मे सोम, समुद्र और अवभृथ के अर्थ मे आया है। ऋग्० ८।९३।२२ मे सोम के अर्थ मे आया है।

निपाद्—वे० इ० "निपाद ऋग्० ५।८३।७ मे नीचे की भूमि; अर्थात् पहाड़ी = उद्वत् के उलटे घाटी के अर्थ मे आता है—निवत् से तुलना करो।"

वस्तुतः इसका अर्थ नीचे की भूमि है। उद्वत् का अर्थ ऊँचा है, पहाड़ी नहीं है।

निवत्—वे० इ० "घाटी। यह ऋग्[1] और बाद के साहित्य[2] मे घाटी के लिये आता है।"

वस्तुतः यह नीचें के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ऋग्० १।१६१।११ मे 'नीचा स्थान' अर्थ है। ऋग्० ३।२।१० मे भी 'नीचा स्थान' अर्थ है। ऋग्० ७।५०।४ मे 'निवतः' नदी का विशेषण है और 'नीचे प्रदेश में जानेवाली' अर्थ है। १०।१२७।२ मे 'नीचे के लता-गुल्म' इत्यादि अर्थ है। अथर्व० ६।२२।३ मे 'निम्नगामिनी' नदी अर्थ है। सर्वत्र 'घाटी' अर्थ नहीं है।

निषाद्—वे० इ० "निषाद बाद की संहिताओ और

---

(१) १।१६१।११, ३।२।१०, ७।५०४, १०।१२७।२ तथा १४२।४।

(२) अथर्व० ६।२२।३, तैत्तिरीयसहिता ३।२।४।४ इत्यादि।

ब्राह्मणों[1] मे आता है। यह शब्द उतना किसी जाति का अर्थ नहीं बतलाता। वरन् यह अनार्य जातियो के लिये साधारण शब्द था। वे जातियाँ जो कि आर्यों के अधिकार से बाहर थीं, जैसे कि शूद्र थे। क्योंकि औपमन्यव[2] ने पाँच प्रकार के लोग (पंचजना:), चार वर्ण (चत्वारोवर्णाः) और निषादाज् को माना है। महीधर (यजुर्वेद के टीकाकार) वाजसनेयी-संहिता[3] में इसका अर्थ भील अथवा भिल्ल करते हैं। लाट्यायन[4] श्रौत-सूत्र में निषादाज् का एक गाँव उल्लिखित है। कात्यायन[5] श्रौतसूत्र मे निषादस्थपति=किसी प्रकार का नेता आया है। एक ब्राह्मण में भी उद्धरण के रूप में आया है। वेबर[6] सोचता है निषादाज् बसे हुए आदिनिवासी थे ('नि:' नीचे से और 'वस्' बसना)। विश्वजित्यज्ञ[7] की क्रियाये निषादाज् के रहने से सबद्ध हैं। इस तथ्य से उस अर्थ का समर्थन होता है। क्योकि निषादाज् जो कि आर्यों को अपने मध्य मे कुछ

---

(१) तैत्तिरीय सहिता ४।५।४।२, काठक सहिता १७।१३, मैत्रायणी संहिता २।६।५, वाजसनेयीसहिता १६।२७, ऐतरेय ब्राह्मण ८।११, पंचविंश ब्राह्मण १६।६।८, इत्यादि।

(२) यास्क निरुक्त ३।८ मे।

(३) १६।२७, तुलना करो ३०।८।

(४) ८।२।८।

(५) १।१।१२, वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १०।१३।

(६) इडिस्चेस्टडियन ६।३४०, तुलना करो १०।१३।१६।

(७) कौषीतकी ब्राह्मण २५।१५, लाट्यायन वही। पचविंश ब्रा० वही।

दिनो तक रहने की आज्ञा देंगे, अवश्य ही आर्यप्रभाव मे आ गये होगे। परन्तु यह नाम बहुत आसानी से पूरे जगली आदिनिवासियो के लिये जो आर्यो से अलग रहते थे, आ सकता है। बानश्क्राडर[1] सोचता है कि निषादाज् न्यसंस थे जो कि ग्रीक प्रमाणों के अनुसार अलेक्जेन्डर के पास अपना दूत भेजे थे। परन्तु यह समानता सदेहपूर्ण है।"

२. वेबर निषादाज् बसे हुए आदिनिवासी थे (वे० इ०)

३. बानश्क्राडर तथा जिमर निषादाज् न्यसन्स थे, ऐसा मानते हैं। (वे० इ०)

४. फिकडाई यह जंगली मछली मारनेवाले तथा शिकारी है, यह मानता है। (वे० इ०)

५. मुइर का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुत: यह शब्द कई अर्थों मे मिलता है। महर्षि यास्क निरुक्त ३।८ मे 'पचजन' शब्द का व्याख्यान करते हुए लिखते हैं 'पंचजना: ममहोत्र त्विषजुद्ध्वम्। गन्धर्वा: पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके। चत्वारो वर्णा. निषाद: पंचम इत्यौपमन्यवो

---

(१) इडियन्स लिटरेचर ऐएड कल्चर ३६६, तुलना करो जिमर इरिडस्चेजलेवेन ३६।११६। बाद की प्रथाओ मे (मनु १०।८) निषाद एक ब्राह्मण और शूद्र-स्त्री से उत्पन्न है, जब कि बराह मिहिर की वृहत्संहिता (१४।१०) मे मध्यदेश के दक्षिणपूर्व मे निषादों का एक राष्ट्र स्वीकार करती है। पाली टेक्स (फिकडाई सोशल ग्लियडरङ्ग १२।१६०। २६० से प्रारम्भ) ये जगली तथा मछली मारनेवाले शिकारी है, यह मानता है। मुइर भी सस्कृत टेक्स १२, ३०१।३०३। ३६६ एन् १६४। ४०३।४८१ मे इसी को मानता है।

निषाद. कस्मान्निषण्णम् अस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः।' दुर्गाचार्य 'निषध्यहन्तीति निषादाः प्राणिवधजीविनः।' अथवा 'निषण्णमस्मिन् पापकमिति निषाद सौधन्वनाः इत्येके मन्यन्ते स च रथकारः।' निरुक्त का अर्थ–पचजन का अर्थ गन्धर्व, पितर, देवता, असुर, राक्षस यह किसी का सिद्धांत है। चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। निषाद इस लिये कहा जाता है कि उसमे पाप बसता है, ऐसा नैरुक्त लोग मानते है। दुर्गाचार्य निरुक्त की टीका करते हुए कहते हैं कि प्राणियो की हिंसा करनेवाला निषाद कहा जाता है। अथवा निषाद का अर्थ यह है कि जिसमें पाप बसे, अर्थात् सौधन्वन, यह कोई मानते हैं। वह सौधन्वन रथकार है।

वाजसनेयी संहिता १६।२७ मे नमोनिषादेभ्यः' का व्याख्यान करते हुए महीधर ने 'निषादामात्स्यिका.' मछली से जीवन करनेवाला अर्थ किया है। उव्वट भी महीधर के समान हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र १।१।१२ का व्याख्यान करते हुए कर्क ने लिखा है कि जब गाँव के पशुओ को महामारी मारे तब शांति के लिये गाँव में 'रौद्रगवेधुक' नाम के चरु का निर्वपण करे और 'निषादस्थपति यजन' करे। बाद में निषादों का स्थपति = स्वामी या निषाद ही—इनमे स्थपति का कौन-सा अर्थ है -यह संदेह करके 'निषादरूप स्थपति' अर्थ माना है। इससे निषाद का अर्थ स्पष्ट यज्ञ करने के योग्य जातिवाला होता है। लाट्यायन श्रौतसूत्र ८।२।८ मे 'निषादेपुतिस्रोवसतीति पार्श्वतो निषाद ग्रामस्य वसेत्' विश्वजित्यज्ञ करनेवाले यजमान के विषय मे निषादेपुतिस्रोवसति का अर्थ दिखलाया है कि निषादगाँव के

पास में तीन दिन बसे। इसमें निषादो के एक गाँव का वर्णन नहीं है। मनु ने १०।८ मे ब्राह्मण से विवाहित शूद्र कन्या में उत्पन्न पुत्र को निषाद माना है।

वेदिक इंडेक्स का कथन कि 'निषाद बाद की संहिताओं और ब्राह्मणों मे आता है। यह शब्द उतना किसी जाति का अर्थ नहीं बतलाता; वरन् वह अनार्य जातियों के लिये एक साधारण शब्द था। वे जातियाँ, जो आर्यों के अधिकार के बाहर थीं; जैसा कि शूद्र।' इस संबंध मे ऊपर के प्रमाणों से पढ़नेवाले समझ सकते हैं कि किसने अनार्य के लिये इस शब्द का प्रयोग किया? निरुक्त जब चार वर्ण और पाँचवाँ निषाद कहता है, तब चार वर्णों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र भी आते हैं। फिर शूद्र कैसे चारो वर्णों से बाहर है? वेदिक इण्डेक्सकार लिख भी रहे हैं—'जैसे शूद्र', और फिर भी उन्हें आर्यों के अधिकार के बाहर कह रहे हैं। शूद्र तो चार वर्णों के भीतर ही हैं और आर्यों के अधिकार से कभी भी बाहर नहीं थे, और न हैं। निषाद का अर्थ जहाँ प्राणिवधजीवी है या मत्स्यजीवी है, वहाँ पर हिंसक होने से उसमे पाप का वास शास्त्रकार मानते हैं, सो ठीक ही है। हिसा करना पाप है, यह वैदिक॰ सिद्धान्त है। कहीं पर 'रथकार' अर्थ है, वह भी आर्यों के अधिकार से बाहर कभी नहीं था और चार वर्ण के भीतर ही शूद्र वर्ण मे है। वर्णसंकर निषाद जिसका दूसरा नाम 'पार्शव' है, वह अनुलोमसंकर होनेसे अनार्य नहीं है और न आर्यो के अधिकार से बाहर ही है। वेदिक इंडेक्सकार के इस असंबद्ध कथन पर 'क्योकि औपमन्यव ने पाँच प्रकारके

लोगों को पंचजनाः, चार वर्ण चत्वारोवर्णाः और निषादाज् को माना है।' हमको हँसी आती है कि वे चार वर्णोंको मानते भी जाते हैं और शूद्रो को चार से अलग भी कह रहे हैं। शूद्र से भिन्न चौथा वर्ण कौन है? शूद्र ही तो चौथा वर्ण है, फिर वह कैसे निषाद हुआ? प्रमाण मे भी चार वर्ण दे रहे हैं और स्वयं भी चार मान रहे है। फिर भी शूद्र चार से बाहर है, यह कहते हुए जरा भी संकुचित नहीं होते। वेदिक इंडेक्सकार कहते हैं 'टीकाकार महीधर बाजसनेयी संहिता मे इसका अर्थ भील अथवा भिल्ल करते हैं।' महीधर ने 'मात्स्यिकाः' लिखा है। मात्स्यिक का अर्थ भिल्ल नहीं होता; किन्तु मछली से जीविका करनेवाला होता है। वे० इ० कार का कथन कि लाट्यायन श्रौतसूत्र मे निषादाज् का 'एक' गाँव उल्लिखित है। सूत्रार्थ ऊपर दिया जा चुका है। उसमे 'निषादो का गाँव' अर्थ है, 'एक' गाँव अर्थ नहीं है। वे० इ० कार का यह कथन कि 'कात्यायन श्रौत्रसूत्र मे निषादस्थपति किसी प्रकार का नेता माना है' इस प्रकरण का अर्थ हम ऊपर दिखला चुके हैं। वहाँ अर्थ 'निषादरूप स्वामी' है, किसी प्रकार का नेता नहीं है। निषादों के गाँव मे जब पशु मरें तो निषादस्वामी उसकी शान्ति मे रुद्र के लिये गवेधु नामक मुन्यन्न से हवन करे।

वे० इ० कार कहते हैं 'वेबर सोचता है कि निषादाज् बसे हुए आदिनिवासी थे (नि=नीचे से और सद्=बसना)। विश्वजित्यज्ञ की क्रियाएँ निषादाज् के रहनेसे संबद्ध हैं। इस तथ्य से उस अर्थ का समर्थन होता है। क्योकि जो निषादाज् आर्योंको अपने मध्य मे रहने की आज्ञा देंगे, अवश्य ही आर्यों

के प्रभाव मे आ गये होगे। परन्तु यह नाम बहुत आसानी से पूरे जगली आदिनिवासियों के लिये आ सकता है।' वेबर का यह सोचना एकदम निराधार और असंगत है। 'आदि निवासी थे और बसे हुए थे' इसका क्या तात्पर्य है ? क्या ऐसे भी आदिनिवासी थे जो एक जगह नहीं रहते थे ? जो एक जगह रहते थे वे यदि निषाद थे, तो जो घुमक्कड़ थे, उनका क्या नाम था ? लाट्यायन श्रौतसूत्र मे निषादो के गाँव के पास बसना यजमान को लिखा है कि तीन दिन बसे, इससे निषादों का वश्वजित्क्रिया में क्या सम्बन्ध आया ? विश्वजित्यज्ञ वही करता है जो पहले समस्त संसार को जीत ले। क्या संसार का विजेता निषादो से आज्ञा लेकर उनके पास बसने जायगा ? ये आर्य लोग जिन्हें आप लोग घुमक्कड़ और विदेशी सिद्ध करने के लिए प्राणपण से कटिबद्ध है, क्या वे इतने दुर्बल थे कि जीतते हुए बाहर से आये और फिर भी निषादो से आज्ञा लेकर उनके गाँव के समीप बसे और निषादराज् उनके प्रभाव से प्रभावित हो गये। आपका यह लेख तो अमेरिकन मिशन की भाँति आर्यो का भारत मे आना बतला रहा है; न कि विजेता के रूप मे। लाट्यायन श्रौतसूत्र के आधार पर जो विश्वजित् यज्ञ बतला रहा है, आर्यों के निषादो के गाँव मे बसने को कैसे बतलायेगा ? आर्यों से तो वहाँ कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

वे० इ० कार स्वयं वानस्क्राइडर के मत का खण्डन कर रहे हैं, इससे हमे उसपर कुछ नहीं कहना है।

पुराणों[1] में निषाद को वेन के शरीर मथने से पैदा हुआ माना है। श्रीमद्भागवत् ४।१४।४४ और निषाददेश को

---

(१) विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः। ममन्थुरूरुतरसातत्रासीद्वाहुको नरः।४३। काककृष्णोति ह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः। ह्रस्वपान्निम्न नासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः।४४। त तु तेवनत दीन कि करोमीति वादिनम्। निषीदेत्यब्रुवंस्तात सनिषादस्ततोऽभवत्।४५। तस्यवशास्तु नैषादागिरिकाननगोचराः। येनाहरज्जायमानोवेन कल्मषमुल्वणम्।४६। अर्थात् वेन एक बड़ा अधर्मी राजा था। ऋषियों ने उसको शाप देकर मार डाला। उसकी माता ने उसके शव को तेल में रख दिया। बाद में अराजकता के कारण ऋषियों ने वेन की जाँघ को मथा और उससे एक पुरुष पैदा हुआ। उसका शरीर कौवे के समान काला और छोटा था। उसके हाथ-पैर छोटे थे, ठोढी बड़ी थी, नाक चपटी थी, आँखे लाल थीं और बाल ताँबे के समान रगवाले थे। उसने दीन होकर प्रार्थना की कि हम क्या करें? ऋषियों ने 'निषीत'='बैठ जाओ' यह कहा, इससे उसका नाम 'निषाद' पड़ा। उसके वंशज पहाड़ों और जगलों में रहते है। महाभा०आर० (चि०) १३०।४ (म०) १०४।४ में निषादराष्ट्र का द्वार विनशन में लिखा है और निषादों के द्वेष से सरस्वती लुप्त हो गई, यह भी लिखा है। महाभा० गदा० शल्य० ३७।१ में शूद्राभीरों के प्रति द्वेष से सरस्वती लुप्त हो गई, यह भी लिखा है। इससे शूद्राभीरदेश भी निषाद का नाम है, यह सिद्ध होता है। महाभा० शान्ति० (चि०) ५९।९५ वेन की दाहिनी जाँघ से उत्पन्न निषाद जंगल और पहाड़ों में रहते है, बड़े क्रूर है। विन्ध्य-पर्वत पर रहते है। सभापर्व में है कि नकुल के दिग्विजय में सरस्वती के तट पर शूद्राभीर और मछली से निर्वाह करनेवाले रहते है। पद्म० आदि० ६।४६ यह देश है। महाभा० भीष्म० (चि०) ९।५१ यह देश है। ब्रह्म० ४।४७ वेन के शरीर से उत्पन्न निषाद विन्ध्य पर रहते है और अन्य पर्वतों पर भी रहते है। उनके भेद तुषार, तुबर इत्यादि है।

सरस्वती विनशन के सामने माना है। विनशन निषाददेश का द्वार है। इससे यह देश सरस्वती लुप्त होने के स्थान से नैर्ऋत्य दिशा में निश्चित है। बृहत्संहिता में लेखक के प्रमाद से दक्षिण-पश्चिम के स्थान में दक्षिण पूर्व हो गया होगा, जैसा कि कश्मीर उत्तर-पश्चिम के स्थान में उत्तर-पूर्व हो गया है। परन्तु यह भ्रम वराहमिहिर का नहीं है। इस प्रकार के भ्रम लेखकों के प्राय: कम पढ़े होने के कारण और पंडितों के देश-विषयक ज्ञान के शिथिल हो जाने से बहुधा दिखलाई पड़ते है। ऐतरेय ब्राह्मण ३।७।७ में वे ऋत्विक् जो कहे हुए अभिषेक के प्रकार को नहीं जानते और क्षत्रियों को यजन कराते हैं, वे उनका अपकार ही कराते है। जैसे धनवाले पुरुष को जंगल मे पकड़कर निषाद से लगा और पापकृत् किसी अन्धकूप इत्यादि मे डालकर उसका धन लेकर भाग जाता है, उसी प्रकार अनभिज्ञ ऋत्विक् यजमान को नरकहेतु दुरनुष्ठान (गलत अनुष्ठान) मे डालकर दक्षिणारूप से उसका धन लेकर अपने घर को चले जाते हैं। इसमे निषाद, से लगा और पापकृत् तीन प्रकार के जंगली डाकू बतलाये हैं। सायणाचार्य ने 'निषाद' का अर्थ नीच जातिवाले, 'से लगा' का अर्थ चोर और 'पापकृत' का अर्थ हिंसक किया है।

निषिध—१. वे० इ० "नैषिध शतपथ० २।३।२।१।२ में नड़ दक्षिण के राजा के विशेषण के रूप मे आया है। इस शब्द का सबसे बाद का रूप नैषध है। सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी मे यह संकेत होता है कि मूलरूप नैषिध है।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १४१, "निषध नं०१ मारवाड़ नल राजा की राजधानी (टाड का राजस्थान ख० १ पृ०

१४०, महाभा० वनपर्व अध्याय ५३) नर वर नल पुर का रूपान्तर मानते है। यह पुराणो के अनुसार नौ नागो का राज्य था। यह ग्वालियर से दक्षिण-पश्चिम ४० मील दूरी पर सिधुनदी के दाहिने किनारे पर है। लासन निषध को बरार के उत्तर-पश्चिम सतपुड़ापहाड़ के किनारे नल का राज्य कहते हैं। वर्गेस भी मालवा के दक्षिण इसे मानते हैं (वर्गेस की एन्टीकुटीज् आफ काठियावाड़ ऐन्ड कच्छ पृ० १३१)। नं० २—वह पर्वत जो गन्धमादन के पश्चिम और काबुलनदी के उत्तर है, तथा यूनानियो द्वारा परोपमिसोस कहलाता था एवं अब हिन्दुकुश कहलाता है, वही है (लासन की हिस्ट्री ट्रैकड फ्राम बैक्ट्रियन ऐन्ड इन्डोस्कैथियन क्वाइस जे० ए० एस० बी० मे खण्ड ९ (१८४०) पृ० ४६९ नोट)। परोपमिसोसपर्वत उपनिषद् का भाग है, शायद पारिपात्र का रूपान्तर है। पारिपात्र सबसे पश्चिमी निषध-पर्वत की चोटी है (ब्रह्माण्ड पु० ४४।९)। पामीर शायद पारिपात्र का रूपान्तर है। परोपमिसोस, हिन्दुकुश तथा कोहईबाबा हिमालय की पश्चिमी शृंखला के विभिन्न नाम हैं।''

३. टाड के मत मे माड़वार का नाम निषध था। (जा० डि०)

४. लासन बरार के उत्तर पश्चिम सतपुड़ापहाड़ के किनारे निषध देश मानते हैं, जो नल का राज्य था। (जा० डि०)

५. वर्गेस इसको मालवा के दक्षिण-पश्चिम मे मानते हैं। (जा० डि०)

६. लासन हिन्दूकुश को पारिपात्र से एक करते है और पारिपात्र को निषधपर्वत की सबसे पश्चिमी चोटी मानते हैं। (जा० डि०)

वस्तुतः यह एक देश है। शतपथ ब्राह्मण २।३।२।१।२ मे

इस देश के राजा नड़ का वर्णन है। वहाँ पर 'नड़ोनैषिधः' ऐसा प्रयोग आया है। पुराणों मे इस देश का नाम निषध है और विन्ध्य[1] पर इसका वर्णन है। यह देश नर्मदा के दक्षिणी तट पर है। अमरेश्वर महादेव जो कि इन्दौर राज्य के बड़वाह के समीप नर्मदा के दक्षिण तट पर हैं, वे इसी में हैं। इनसे उत्तर दक्षिणी नर्मदा के तट पर ॐकारनाथ महादेव हैं। वामन पु० ८३।२४ में अमरेश्वर का निषधदेश मे वर्णन है। यह देश चेदि से पश्चिम मे था। इसकी उत्तरी सीमा नर्मदा थी, दक्षिणी सीमा यमुना प्रतीत होती है और पश्चिमी सीमा का पता नहीं। नल की राजधानी निषध को मानना और पूरे देश को माड़वार कहना एकदम असंभव है। इससे टाड का मत माना नहीं जा सकता। निषधदेश नल का राज्य था, वह नल की राजधानी नहीं कहा जा सकता। बरार से उत्तर पश्चिम निषध नहीं हो सकता, इससे लासन का मत नितान्त निःसार है तथा मालवा से दक्षिण-पश्चिम मानना प्रमाणाभाव से पूर्ण असम्भव है।

---

(१) वायु० पू० ४५।१३३ यह देश भारत में है और विन्ध्यवासी है। पद्म० आ० ६।४६ यह जनपद भारत मे है। वामन० ८३।२४ यह देश है और यहाँ अमरेश्वरदेव है। मार्क० ४४।५४ यह देश विन्ध्यपृष्ठ-निवासो है। और भारत मे है और पूर्वमुख कूर्म के दक्षिण पाद में है। महाभा० भीष्म० (चि० नि०) ६।५१ यह देश भारत में है। (म०) ६।४८ में पाठ नही है। श्रीमद्भागवत १०।२।३ यह देश है। शिव लघु० ५५।८४ यह देश है। शिव म० कोटि० ३०।३४ यह देश है। गणेश० उ० ५२।२ यह देश है। वामन० १३।५५ यह देश कुमारद्वीप; अर्थात् भारत मे है और विन्ध्य के मूल में बसा है।

इसलिये वर्गेस का मत मानने योग्य नहीं। यह बात महाभारत[1] वनपर्व मे जहाँ कि दमयन्ती जंगल मे घूमी है, उससे और वामनपुराण से स्पष्ट है। यह निषद्देश नर्मदा और यमुना के बीच में है और आजकल लोग इसकी राजधानी को नरवर कहते हैं। यह जिला भी है। इसका किला विंध्य के एक शिखर पर है और आसपास से इतना ऊँचा है कि उसपर चढ़ाई नहीं हो सकती थी। महाराज ग्वालियर इसको लड़कर न पा सके। इसके निवासी घेरा डालने से तंग होकर शरणागत हुए थे। किला अब भी दर्शनीय है। किसने बनवाया था, इसका पता नहीं। यह शब्द वेद में 'नैषिध' है और लोक मे 'नैषध' है। दोनो का अर्थ निषधदेश का राजा है। पद्म० अर० ३०।१ में इस देश की राजधानी का नाम निषधनगर आया है। शिव महा० शत० २८।२९ मे तथा शिव लघु० ६१।४७ में नल के पिता वीरसेन की राजधानी नैषधनगर लिखी है।

२. एक निषधपर्वत पुराणो मे वर्णित है। उसका यहाँ सम्बन्ध नहीं हो सकता। वह तो पुराणों के अनुसार हिमालय से उत्तर रूस की टंड्रा मे है। उसको काबुलनदी के उत्तर मानना और हिन्दूकुश से एक करना तथा पारिपात्र से अभिन्न बतलाना अज्ञान लोगों के सामने पंडित बनना मात्र है एवं एकदम पुराणों से विरुद्ध होने के कारण अनुचित भी है। पुराणों में लिखे हुए पर्वत का नाम लेना और पहिचान के समय पुराणों

(१) महाभा० आर० (म०) ५।४७ मे निषध से विदर्भ का मार्ग इस प्रकार दिया है—विन्ध्य, पयोष्णीनदी, उससे दक्षिण अवन्ती, उसके बाद ऋच्छवान्पर्वत।

के विरुद्ध मनगढ़े हुए प्रमाणों को देना तथा अपने मनमाने स्थान पर सिद्ध करना धाँधली भी है।

शतपथ में नड शब्द दक्षिण के राजा का विशेषण हो, ऐसा नहीं है। किन्तु दक्षिणाग्नि से इसकी समता दी गई है और इन्द्र आदि से समता दिखलाई गई है। इसलिये वे० इ० कार का कथन ठीक नहीं।

नीच्य—वे० इ० "नीच्य (नीचे रहनेवाले) यह पश्चिम की कुछ जातियों का नाम है। नीच्याज् ऐतरेय ब्राह्मण ८।१४ मे मध्यदेश के लोगो से विभिन्नरूप मे उल्लिखित हैं। और निश्चयरूप से इसका अर्थ पंजाब तथा सिन्धनदी के किनारे रहनेवाले हैं।"

वस्तुतः यह शब्द ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ३८ ख० ३ में आया है—"प्रतीच्यां दिशि येच केच नीच्यानां राजानः येऽपाच्यानां स्वराज्यायैवते भिषिच्यन्ते स्वराडित्यनेनाभिषिक्तानाचक्षत।" अर्थात् पश्चिम दिशा मे जो कोई नीच्य लोगों के राजा हैं, वे स्वराज्य के लिये ऐन्द्राभिषेक करते हैं और अभिषिक्त इन राजाओं को स्वराट् कहना चाहिये। सायण ने 'निकर्षभवन्तीति नीच्याः अपकर्षभवन्तीति अपाच्याः जात्यानिकर्षः व्यवहारेण अपकर्षः' अर्थात् जो जाति मे नीच हैं परन्तु व्यवहार मे अच्छे है, वे नीच्य कहे जाते है और जो जाति में उच्च है और व्यवहार में अच्छे नहीं, वे अपाच्य कहे जाते हैं। इससे पश्चिम भाग के निवासी दो भागों मे बाँटे गये, इतना तो स्फुट है। ये मध्यदेश के पश्चिम के रहनेवाले हैं। परंच यह कहाँ के रहनेवाले हैं, यह निश्चय नहीं होता। मध्य-

देश से पश्चिम पंजाब और सिन्धनदी के किनारे तक ही समाप्त नहीं होता, वह तो इनसे भी पश्चिम जो पृथ्वी का भाग पड़ेगा, वहाँ तक संभव है। जैसा कि वहीं पर उत्तर मे हिमाद्रि के पार उत्तरकुरु को माना है, जो उत्तरसमुद्र के तट पर है।

नैचाशाख—१. वे० इ० "नैचाशाख ऋग्वेद[1] के एक अवतरण में आता है, जहाँ पर कि सायण इसको नीचे वंश का मानता है। परन्तु और स्थानों[2] पर एक देश का नाम माना गया है। ग्रासमैन और लुडविक द्वारा पहली धारणा का समर्थन किया गया है। जिमर[3] भी इसी को मानता है। परन्तु हिल्लेब्रान्ट[4] बतलाता है कि नीची शाखाओंवाला सोमवृक्ष है, कीकट तथा प्रमगन्द देखिये।"

२. ग्रासमैन, लुडविक और जिमर इसको नीचे वंश का मानते हैं। (वे० इ०)

३. राथ इसको एक देश मानते हैं। (वे० इ०)

४. हिल्लेब्रान्ट इसको नीची शाखाओवाला सोमवृक्ष मानते हैं। (वे० इ०)

५. बोथलिङ् इसके एक व्यक्ति मानता है। (वे० इ०)

---

(१) ऋग्० ७।५३।४, (सख्या अशुद्ध छपी है, '३।५३।१४ उचित है)।

(२) सेन्ट पीटरवर्ग डिक्शनरी देखो।

(३) एल्टेन् डिस्चेज्लेवेन ३१।

(४) वेदिस्चेमाइथालोजी १।१४।१८, २।२४१।२४५, जहाँ पर कि वह बोथलिङ् की धारणा का विरोध करता है। बोथलिङ् इसको एक व्यक्ति का नाम मानता है।

वस्तुतः यह शब्द ऋग्० ३।५३।१४ में वेदस् के विशेषण-रूप में आया है। वेदस् का अर्थ धन है। अर्थात् 'नीचासु शूद्रयोनिषु उत्पादिताः शाखाः पुत्रपौत्रादि परंपरा येन'; नीचों मे अर्थात् शूद्र योनियों मे पैदा की गयी हैं शाखा पुत्रपौत्रादि परंपरा जिससे उसका धन नचाशाख कहा जाता है। मंत्रार्थ हम 'कीकट' के प्रकरण मे लिख चुके हैं। इन्द्र से प्रार्थना है कि नीचाशाख का धन हमको दीजिये। सायण ने ऋग्० भाष्य भूमिका पृ० ४ मे इसे पूर्व पक्ष में नगर माना है। देशअर्थ मानने मे कोई प्रमाण नहीं है। सोमवृक्ष का यहाँ सम्भव नहीं। इससे सोमवृक्ष अर्थ करनेवाले मंत्रार्थ से अपरिचित मालूम पड़ते हैं।

नैतन्धव—वे० इ० "पंचविंश[1] ब्राह्मण तथा सूत्रों[2] में सरस्वती के किनारे एक स्थान का नाम है।"

वस्तुतः सरस्वती के किनारे कई नैतन्धव नाम के ह्रद हैं। ये कुरुक्षेत्र से पहले ही हैं। पंचविंश ब्राह्मण तथा लाट्यायन श्रौतसूत्र मे जलरहित नैतन्धव मे दार्शद्वृतुइष्ट्ययन में वर्ष भर अग्न्याधान का विधान है। बाद मे कुरुक्षेत्र मे, उसके बाद सरस्वती एवं दृषद्वती के संगम पर जाना लिखा है। ताण्ड्य ब्राह्मण की टीका मे सायण ने लिखा है कि सरस्वती के तट पर नैतन्धव में नाना प्रकार के नगर और ग्राम हैं, उनमे जलरहित

---

(१) २५।१३।१।

(२) लाट्यायन० सू० १०।१८।१३ (वैदिक इडेक्स में १६ लिखा है, वह अशुद्ध पाठ है)। शाखायन श्रौतसूत्र १३।२६।३१, कात्यायन श्रौतसूत्र २४।६।२३।

नैतन्धव मे अग्न्याधान करे। इससे सायणाचार्य नैतन्धव को देश मानते है। परन्तु लाट्यायन कहते हैं कि नैतन्धव नाम के कई ह्रद है।

नैमिष या नैमिश—वे० इ० "नैमिशीय[1] या नैमिषीय[2] नैमिषवन मे रहनेवालो की ओर संकेत है। काठक संहिता और ब्राह्मणो मे वे एक विशेष प्रकार की पवित्रता के लिए उल्लिखित हैं। अतः एपिक मे यह कहा गया है कि नैमिषवन[3] मे महाभारत ऋषियों को सुनाया गया।"

२—वेबर का मत है कि इसी वन मे महाभारत ऋषियों को सुनाया गया।

वस्तुतः यह एक वन है और पुराणो मे इसी नाम से प्रसिद्ध है तथा आजकल उत्तरप्रदेश के अवधप्रान्त के सीतापुर जिले मे ई० आई० आर० की शाखा का एक स्टेशन है। यह आज भी प्रतिष्ठित तीर्थ माना जाता है। पहले यह नैमिषारण्य कहा जाता था। परन्तु अब वहाँ पर एक ग्राम उस नाम से प्रसिद्ध है और उस क्षेत्र का विस्तार ८४ कोस का माना जाता है। फाल्गुन अमावस्या से पूर्णिमा पर्यन्त उस प्रान्त की परिक्रमा होती है, जिसकी समाप्ति मिसरिख नामक स्थान मे होती है।

---

(१) पचविश ब्राह्मण २५।६।४, जैमिनीय ब्रा० १।१६३, जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी २६।१९२।

(२) कौषीतकी ब्रा० २६।५ तथा २८।४, छान्दोग्योपनिषद् १।२। १३ नैमिषीय नैमिष्य, काठक सं० १०।६ (इण्डिश्चेस्टडियन ३।४६९) मूर्धन्य ष बाद को अधिक व्यापक हो गया।

(३) वेबर इण्डियन लिट्रेचर ३४।४५।५४ तथा ६८।७०।१८५।

दशमी से पूर्णिमा पर्यन्त मिसरिख की ही परिक्रमा होती है। मिसरिख का पुराना नाम 'मिश्रकतीर्थ' है। यहाँ दधीचिकुण्ड मे स्नान करने के बाद परिक्रमा समाप्त होती है। इसी परिक्रमा मे लक्षो साधु और गृहस्थ सम्मिलित होते हैं। पंचविंश ब्राह्मण मे "नैमिशीय" शब्द 'नैमिश के ऋषियों' के लिए आया है और शांखायन श्रौतसूत्र २६।६ मे 'नैमिषीयाः' यह 'ऋषियों' के लिए आया है। और जैमिनीय ब्राह्मण १।३६४ मे 'नैमिश' शब्द आया है और १।१६३ मे 'नैमिशीया सत्रिषः' ऐसा प्रयोग आया है। छान्दोग्योपनिषद् १।२।१३ में 'नैमिषीय' शब्द 'नैमिष के ऋषियों' के लिये आया है। सभी पुराणों में इसका नाम है और प्रायः सभी पुराण यहीं पर ऋषियों को सुनाये गये हैं। वेदिक इंडेक्सकार और वेबर महाभारत का नैमिषवन मे ऋषियो को सुनाना कह रहे है। इससे पता चलता है कि वेदिक इंडेक्सकार और वेबर ने महाभारत को नहीं देखा। यदि देखा होता तो ऐसा नहीं लिखते। महाभारत तो वैशम्पायन ऋषि ने महाराज परीक्षित के पुत्र महाराज जनमेजय को तक्षशिला में सुनाया था। यह महाभारत के प्रारम्भ से स्फुट है। सुथंकर के महाभारत मे तक्षशिला से लौटने पर सुनाया गया, यह लिखा है। परंच यह पाठ हरिवंश से विरुद्ध है। हरिवंश महाभारत का अन्तिम भाग है। उसके अत मे लिखा है कि महाराज जनमेजय हरिवंश सुनने के बाद तक्षशिला से हस्तिनापुर आये। यह जनमेजय युधिष्ठिर के भाई अर्जुन के प्रपौत्र, अभिमन्यु के पौत्र, महाराज परीक्षित के पुत्र हैं। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणो मे इनके अश्वमेधो का वर्णन है। इनके दो दानपत्र

इण्डियन आन्टीक्वेरी और एपीग्राफिया इण्डिका में छपे है, जिनमें महाराज युधिष्टिर के संवत् पड़े हैं। ये दानपत्र दक्षिण-विजय के समय दिये गये हैं। महाभारत कर्ण० (चि०) ४५। १४ (नि०) ३८।१४० में नैमिष देश का नाम लिखा है। पद्म० उ० २।४।४० यह गोमती के तट पर है।

पक्थ—वे० इ० "पक्थ ऋग्०[1] में आई हुई एक जाति का नाम है, जहाँ पर कि वे उन जातियों मे से एक के रूप में आते हैं जिन्होने तृत्सु भरताज् का दाशराजन्; अर्थात् दश राजाओं के युद्ध में विरोध[2] किया था। जिमर[3] उनकी तुलना आक्तूज (Aktues) से करता है, जिनका कि देश अक्तिवक्त (Aktunkn) हेरोडोटस[4] द्वारा उत्तरी पश्चिमी भारत में स्थित उल्लिखित है। वह इस देश की तुलना पूर्वी अफगानिस्तान के पख्तून से करता है और इस धारणा का पोषण करता है कि वे जाति थे। यह सभव है, क्योंकि भरताज् मध्यदेश अथवा बीच के देश को कब्जे में किये हुए के रूप मे मालूम पड़ते हैं। ऋग्०[5] के तीन अवतरणो मे इनका नाम आया है। एक में

---

(१) ऋग्० ७।१८।७।

(२) राथ जुएरलिट्रेचर ऐण्ड जेम् चिच्टे डेसवेड ६५-मे सोचता है कि पख्ताज् तृत्सूज के मित्र थे, परन्तु यह धारणा अवश्य ही झूठी है। तुलना करो हाप्किस जनरल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२६०।

(३) अल्टेन डिस्चेज्लेवेन ४३०।४३१।

(४) ७।६५ (अक्तूज) तथा ३।१०२ और ४।४४ (आक्तिवक्त)

(५) ८।२२।१०, ४६।१० तथा १०।६१।१।

पक्थ अश्विन के दूसरे नाम के रूप में उल्लिखित है। दूसरे मे वे त्रसदस्यु से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं, जिनकी जाति पूरुस्-सुदास् के ऊपर आक्रमण करने मे पख्ताज् से सहायता प्राप्त किये थी। तीसरे अवतरण में तूर्वायण सा प्रतीत होता है और च्यवान[1] का विरोधी प्रतीत होता है। इसलिये संभवतः पक्थाज् प्रत्येक रूप से पक्थजाति के राजा थे।"

२. राथ का मत है कि पख्ताज् तृत्सूज् के मित्र थे। (वे० इ०)

३. हाप्किंस का विचार राथ से विरुद्ध है। (वे० इ०)

४. जिमर इनकी तुलना आक्तूज़ से करता है, जिनका देश अक्तिवतन हेरोडोटस द्वारा उत्तरी-पश्चिमी भारत में स्थित उल्लिखित है और इस देश की तुलना पूर्वी अफगानिस्तान के पख्तून से करता है। और इस धारणा का पोषण करता है कि वे जाति थे। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक जनपदसमान क्षत्रियवाचक शब्द है। पक्थ एक राजा है। ऋग्वेद ७।१८।७ मे बहुवचन मे इसका प्रयोग आया है। वहाँ पर 'पक्थ की सन्तान' अर्थ है। मंत्रार्थ यह है—पक्थो ने, भलानो ने, अलिनों ने और विषाणियो ने इन्द्र की स्तुति की और सोम से मतवाले इन्द्र ने आर्य कर्मशील के गोसमूह को तृत्सुओ से लाकर दिया। शत्रुओ को मारा और स्वयं गोसमूह को ग्रहण किया। इसके पहले मन्त्र में तुर्वश ने सुदास् के ऊपर चढ़ाई की थी और इन्द्र ने सुदास् की

---

(१) पिशल वेदिश्चेस्टडियन १।७१–७७।

तुर्वश को मारकर रक्षा की थी, यह वर्णन है। उसी के आगे का यह मन्त्र है—सुदास् पर चढ़ाई के समय तुर्वश के सहायक पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी और शिवों ने तुर्वश के मारे जानेपर प्राणरक्षार्थ इन्द्र की स्तुति की, यह आता है। इस मन्त्र में तुर्वश के सहायको मे से पक्थ थे और तृत्सु भी सुदास् से विरुद्ध होने से पक्थो के अविरोधी थे; अर्थात् मित्र थे। यदि मित्र न थे तो उदासीन अवश्य होगे। इसलिए वेदिक इन्डेक्स-कार का कथन बिल्कुल निस्सार है और राथ का कथन उनकी अपेक्षा कुछ अच्छा है। वे० इ० कार इसको दाशराज्ञयुद्ध में सम्मिलित करते हैं सो ठीक नहीं। क्योकि दाशराज्ञयुद्ध मे कौन-कौन राजा सुदास् के विरुद्ध थे, इसका निश्चय नहीं है। परन्तु इतना निश्चित है कि वे राजे अयाज्ञिक थे। परंच पक्थ राजा इन्द्र और अश्विनीकुमार के भक्त होने का कारण याज्ञिक था। ऋग्० ८।२२।१० मे इस बात का वर्णन है। मन्त्रार्थ यह है:—हे अश्विनीकुमारो! आपने जिन रक्षाओ से पक्थ राजा की रक्षा की थी और जिन रक्षणो ने अध्रिगु राजा की रक्षा की थी तथा जिनसे सोम से तृप्त करते हुए बभ्रुराजा की आपने रक्षा की थी, उन्हीं रक्षणो मे से शीघ्र आकर हमारी रक्षा कीजिये और रोगादिसहित मेरे पुत्र, पौत्र आदिकी दवा कीजिये। ऋग्० ८।४९।१० मे यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—हे इन्द्र! आपने जिस प्रकार कण्वराजा के लिये गायों से युक्त और सोने से युक्त सुख को दिया तथा पक्थ, दश-व्रज, त्रसदस्यु, गोशर्य और ऋजिश्वा राजाओं को गायों से युक्त और सोने से युक्त सुख दिया, उसी प्रकार हमें भी दीजिए।

इस प्रकार पक्थ के याज्ञिक होने से दाशराज्ञयुद्ध में पक्थराजा अथवा उसकी सन्तान के होने का संभव नहीं। और ७।१८।७ में दाशराज्ञयुद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है और इस मंत्र मे तृत्सु और पक्थ की संतान से आपस मे कोई सम्बन्ध नहीं है। पक्थ लोग तुर्वश के सहायक थे और तृत्सुओ ने सुदास् की गायों का हरण किया था, वे दोनों कार्य भी एक समय मे हुए या भिन्न समय में इसका कोई निश्चय नहीं। ऐसी दशा मे वे दोनों परस्पर मित्र और उदासीन हो सकते है। पक्थ अश्विन के दूसरे नाम के रूप में उल्लिखित है, इस बात मे वे० इ० कार ८।२२।१० को प्रमाण मे देते हैं। इस मंत्र का अर्थ हम अभी ऊपर लिख चुके हैं। इसमें अश्विनीकुमार द्वारा पक्थ की रक्षा का वर्णन है। अश्विन के दूसरे नाम के रूप मे पक्थ उल्लिखित नहीं हैं। वे० इ० कार कहते हैं "दूसरे अवतरण मे पक्थ त्रसदस्यु सम्बद्ध प्रतीत होते हैं जिन त्रसदस्यु की जाति पूरुस् सुदास् के ऊपर असफल आक्रमण करने मे पखताज् से सहायता प्राप्त किये थी।" इसमे ऋग्० ८।४९।१० प्रमाण मे दिया है। हम इस मंत्र के अर्थ को अभी ऊपर लिख चुके है। इसमें त्रसदस्यु और पक्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है। त्रसदस्यु और पूरु से भी कोई सम्बन्ध नहीं है और पूरु की सन्तान की सुदास् के ऊपर चढ़ाई में भी पक्थाज् ने कोई सहायता नहीं की। वे० इ० कार कहते हैं:—"तीसरे अवतरण में तूर्वायण सा प्रतीत होता है और च्यवान का विरोधी-सा प्रतीत होता है।"। वह प्रमाण मे १०।६१।१ मंत्र देते हैं। इस मन्त्र में पक्थ शब्द का अर्थ छठा-छठा दिन है। इसमें तूर्वायण और च्यवान से कोई संबंध

नहीं। इसलिये विशल और वे० इ० कार का मत ऋग्० से बिल्कुल विरुद्ध है। वे० इ० कार जिमर के कथन की पुष्टि मे कहते है—'जिमर इनको आक्तूज़ और इनके देश को अक्सिवक्ष से मिलान करता है, जिसके बारे में हिरोडोटस ने उत्तरी-पश्चिमी हिन्दुस्तान में उल्लेख किया है, जो प्रसिद्ध पूर्वी अफगानिस्तान के पख्तून हैं और यह भी सिद्धान्त कि उत्तरी देश की जाति हैं। यह संभव है कि भरताज् मध्यदेश अथवा बीच के देश को कब्जे मे किये हुए के रूप मे मालूम होते हैं।" इस प्रकार वे० इ० कार जिमर के कथन को पुष्ट करते हैं। वस्तुतः जिमर और वेदिक इन्डेक्सकार के कथन में अणुमात्र भी प्रमाण नहीं है। पूर्वीय अफगानिस्तान तो कम्बोज था, यह हम 'कम्बोज' के प्रकरण में निश्चित कर चुके है। इससे यह पक्थ-देश नहीं हो सकता। ये तुर्वश के सहायक थे, इसलिये तुर्वश के समीप के रहनेवाले होंगे। मध्यदेश मे भरत कब्जा किये थे, इसमे कोई प्रमाण नहीं। यदि उनका कब्जा मान लिया जाय तो मध्यदेश के इधर-उधर भी संभव हो सकता है। भा० रू० १।२०५ "शिवियों के साथ लगा हुआ पक्थों[२] अर्थात् आधुनिक पश्तोभाषी पठानो के पूर्वजो का देश था।" टि० २ "सिवी को पठान लोग अब भी अपने देश की परम्परागत सीमा मानते हैं और यहाँ हम ऋग्० ७।१८ के इस संदर्भ मे भी शिवि और पक्थ का उल्लेख साथ-साथ पाते हैं। इसीलिए सिवी या सिविस्तान भी प्राचीन शिविजाति का उपनिवेश जान पड़ता है।" विद्यालंकारजी ऋग्वेद के 'शिव' शब्द को अकारान्त रहते हुए भी इकारान्त 'शिवि' शब्द से एक कर रहे हैं और

पक्थ का अर्थ पश्तोभाषी कर रहे हैं। परन्तु वास्तविक विचार करने पर शिवि और शिव भिन्न-भिन्न हैं तथा पक्थों से और शिबियो से कोई सम्बन्ध नहीं है। पश्तों को पख्तो की भाषा बनाने में पहले वह पख्तो बनानी पड़ती है, फिर पश्तो के स्वरूप मे आती हैं। इसकी अपेक्षा ऋग्० का 'पस्त्या' शब्द यदि पश्तो से एक कर दिया जाय और 'पस्त्यानदेश' पश्तोभाषियों का देश मान लिया जाय तो बड़ी सरलता हो। इसी पर विद्वान् लोग विचार करें। वस्तुतः पक्थदेश कहाँ था, यह प्रमाणाभाव से निश्चित नहीं हो सकता।

पंचनद्—१. वे० इ० "पंचनद जिसमे पाँच सोते हों, यह एपिककाल तक पंजाब के नाम के लिये नहीं आया। पंजाब पहले साहित्य मे कोई स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। ऋग्० के जन्मस्थान[१] के रूप मे पजाब का महत्व बहुत हाल के अनुसंधानो से कम कर दिया गया है। हाप्किंस[२], पिशल[३], गेल्डेनर[४] विभिन्न आधारो पर कारण दिखलाकर विश्वास दिलाते है कि ऋग्वेद का बहुत बड़ा भाग बहुत पूर्व मध्यदेश में बना, जो कि मध्यदेश स्वीकृतरूप से उत्तर वैदिक सस्कृति का गृह था। हिल्लेब्रॉट[५] यह सोचता है कि ऋग्वेद का कुछ हिस्सा

---

(१) जिमर एल्टेन डिस्चेजलेवेन ३२ से प्रारम्भ।

(२) जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १६।१६। २८, तुलना करो मेकडानल सस्कृत लिटरेचर १४५।४४१।

(३) वेदिश्चेस्टडियन २।२१८। (४) वही ३।१५२।

(५) वेदिश्चेमाइथालोजी १।९८ से प्रारम्भ। लेकिन दिवोदास देखिये और तुलना कीजिए वेबर इन्डिश्चेस्टडियन १।१८६ से भी।

पंजाब में बना और कुछ अराकोशिया मे तथा कुछ मध्यदेश मे बना।"

२. जिमर का मत है कि ऋग्वेद पंजाब मे बना। वे० इ०

३. हापूकिंस, पिशल और गेल्डेनर ऋग्वेद के बहुत बड़े भाग को मध्यदेश मे बना मानते है। (वे० इ०)

४. हिल्बेब्रांट ऋग्वेद का कुछ भाग पंजाब मे, कुछ अरा· कोशिया मे तथा कुछ मध्यदेश में बना मानते हैं। (वे० इ०)

५. वेबर भी हिल्लेब्रांट से सहमत हैं। (वे० इ०)

६. भारतीय अनुशीलन मे 'नकुल का पश्चिम दिग्विजय' नामक लेख मे जयचन्द्र विद्यालंकार लिखते हैं—"पंचनद का अर्थ पंजाब मान लिया गया है। वास्तव मे इसका अर्थ पंजनद करना चाहिये। सिंध से मिलने से पहले और सब नदियों के पानी के लेने के बाद सतलज पंजनद कहलाता है और उसके काँठे का नाम भी पंजनद है। मत्स्योपजीवी देश से कलातकी अधित्यका के चढ़ने के बाद पंजनद पर उतरना स्वाभाविक था।"

वस्तुतः यह 'देश' और 'नगर' के नाम से महाभारत में आया है। वेदिक इन्डेक्सकार 'एपिककाल तक पंजाब के लिए यह शब्द नहीं आता'—यह प्रतिज्ञा कर रहे हैं। महाभा० सभा० (म०) २८।१० तथा (चि०) ३२।११ मे पंचनद शब्द आया है और 'कृत्स्नं पंचनद' ऐसा शब्द आया है। जय· चन्द विद्यालकार इसको 'पंजनद' के अर्थ मे आया हुआ मानते हैं, वह सतलज के काँठे का नाम मानते हैं, जो कि सब नदियों के पानी लेने के बाद सतलज के तट से प्रारम्भ होता है। और सिंधु से मिलने से पहले तक भाग का नाम है, यह भी मानते

हैं। परंच विचार करने पर उनका यहाँ पर भ्रम है और पंजाब ही अर्थ उचित है, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि वहाँ पर 'कृत्स्नं' शब्द 'पंचनद' का विशेषण दिया गया है, जिसका अर्थ 'पूरा पंजाब' होना चाहिए। 'पूरा सतलज का काँठा' अर्थ करना ठीक नहीं। झेलम के मिलने के स्थान से सिंधु-संगम तक कोई ऐसा बहुत बड़ा प्रदेश नहीं है, जिसके लिए 'पूरा' विशेषण दिया जाय और आगे पंजाब के बहुत से भागो का विजय भी नहीं दिखलाया गया है। इससे समस्त पंचनद कहकर पूरे पंजाब का लेना ही उचित है। महाभा० उद्योग० (म०) ४।१५ (चि०) ४।१९ में 'पंचनदाः' और 'पांचनदाः' शब्द पंजाबी राजाओ के लिये आये है। महाभा० कर्ण० (चि०) ४५।१६ से ३० तक, (नि०) ३७।१६ से ३० तक, (म०) ३७।१६ से ३० तक में पंजाब का 'पंचनद' नाम स्पष्ट है। महाभा० उद्योग० १९।२९ मे हस्तिनापुर मे स्थान न होने के कारण दुर्योधन के पक्षपाती राजा लोग पंचनद मे ठहराये गये थे। महाभा० मौसलपर्व (म०) ७।४६ तथा (चि०) ८।४५ मे द्वारका से श्रीकृष्ण के परिवार को साथ लाते हुए अर्जुन को पंचनद के रहनेवाले आभीरो ने लूटा था। बाद में कुरुक्षेत्र का वर्णन होने से यह कुरुक्षेत्र से पहले नक्शे का झेलम और सतलज के संगम के समीप लिखा हुआ पंचनद प्रतीत होता है। वाल्मी० कि० ४३।२१ मे यह शब्द देशअर्थ मे आया है और पञ्जाब का नाम है। गुजरातीप्रेस की पुस्तक मे यह पाठ नहीं है। परन्तु मद्रास, चित्रशालाप्रेस पूना, बम्बई इत्यादि में है। विष्णु० ५।३८।११ तथा ब्रह्म० २१२।१२ मे भी आभीरों

द्वारा अर्जुन का पराजय पंचनद में ही दिखलाया गया है। स्कन्द० प्रभा० मा० १०१।२८ में पंचनद मे चोरों ने अर्जुन को लूटा। मार्कं० ५५।३५ भारत मे पूर्वमुख कूर्म की पुच्छ मे पंचनद नामक देश है। राजतरंगिणी ४।२४८ यह देश है।

पञ्चाल—१. वे० इ० "पञ्चाल यह ऋग्वेदिक क्रिविजाति का बाद[1] का नाम है। पंचालाज् कुरूज् के सम्बन्ध के सिवाय बहुत कम उल्लिखित हैं। ऐतरेय[2] ब्राह्मण मे कुरुपंचालाज् के राजा उल्लिखित हैं। काठकसंहिता[3] मे पंचालाज् केशिन्दाल्भ्य लोगो के रूप मे आते हैं। उपनिषदों तथा बाद के साहित्य[4] में पंचालाज् के ब्राह्मण दार्शनिक तथा शब्दवैज्ञानिक वादविवाद में भाग लेते हुए पाये जाते हैं। संहितोपनिषद्[5] ब्राह्मण मे प्राच्य पांचालाज् का उल्लेख आया है। निस्सन्देह पांचालाज् में क्रिवीज् के सिवाय और भी जातियाँ शामिल थीं। यह नाम पाँच जातियो की ओर सकेत करता है, और यह भी कहा[6]

---

(१) शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।७।

(२) ८।१४।

(३) ३०।२ (इडिस्चेस्टडियन ३।४७१)।

(४) बृहदारण्यकोपनिषद् ६।१।१, (माध्यन्दिन=६।२।१ काण्व), छान्दोग्योपनिषद् ५।३।१, ऋग्० प्रातिशाख्य २।१२।४४, निदानसूत्र १। ६, शांखायन श्रौ० सू० १२।१३।६ आदि।

(५) २ तुलना करो इडिस्चेस्टडियन ४।३७५ एन् तथा ८।६२ एन् १।

(६) वेबर इडिस्चेस्टडियन १।२०२, गेल्डनर वेदिस्चेस्टडियन ३।१०८ एन् १, तुलना करो वेबर की यही पुस्तक १।१६१ के प्रारम्भ से। इन्डियन लिटरेचर १०।६०।११४।११५।१२५।१३५।१३६।

जाता है कि पंचालाज् ऋग्वेद की पाँच जातियाँ हैं। परन्तु यह धारणा संभव नहीं। वैदिक साहित्य मे पचालाज् का दक्षिण तथा उत्तर एषिक विभाजन का कोई चिन्ह नहीं मिलता। शतपथ[1] ब्राह्मण मे उनके नगर परिचक्रा का वर्णन है। दूसरे शहर जिनका कि उल्लेख प्रतीत होता है, काम्पील तथा कौशाम्बी[2] थे। इनके राजा तथा सर्दार कुरुपांचालाज् के राजाओं से विभिन्न क्रैव्य, दुर्मुख, प्रवाहण, जैवालि और शौण सुनाई पड़ते हैं।"

२. वेबर और गोल्डनर का मत है कि पंचालाज् में ऋग्० की पाँच जातियाँ शामिल थीं। (वे० इ०)

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १४५ "पंचाल रुहेलखंड, पांचाल वस्तुतः दिल्ली के उत्तर-पश्चिम हिमालय की तराई से चम्बलनदी तक था। परन्तु बाद मे दो भागों मे उत्तर, दक्षिण पांचाल के नामो से गंगा के द्वारा विभाजित हुआ। उत्तरी की राजधानी अहिच्छत्रा और दक्षिणी की काम्पिल्य थी। दक्षिणी पांचाल का राज्य राजा द्रुपद का था, जिसकी लड़की द्रौपदी पाँचों पाण्डवो को व्याही थी। दक्षिणी पांचाल की दूसरी राजधानी माकन्दी थी। दक्षिणी पांचाल गंगा के दक्षिणी तट से चम्बल या चर्मण्वती तक फैला था (महाभारत आदि पर्व अध्याय १४०) तथा उत्तरी पांचाल गंगा से हिमालय तक था। बुद्धकाल मे पांचाल की राजधानी कन्नौज भी थी (रिस डेविड की बुद्धिष्ट इण्डिया पृ० २७)।"

वस्तुतः यह शब्द जनपद समान क्षत्रियवाची है। इसका

---

(१) १३।५।४।७।
(२) 'कौशाम्बेय' देखिये।

देशअर्थ[1] में जब प्रयोग होता है तब बहुवचन में होता है।

---

(१) चरक विमानस्थान ३।३ पचालक्षेत्र यह द्विजातियों से बसा गया है और इसकी राजधानी काम्पिल्य है, जो कि गगा के तट पर है। वायु० पू० ४५।१०६ यह देश भारत के मध्यदेश में है और यहाँ गगा हैं। पद्म० आदि० ६।३४, विष्णु० २।३।१६ तथा ४।१६।५० यह देश है। ब्रह्म० १३।६६ यह देश है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।४० यह देश भारत के मध्यदेश में है। १८।५१ यहाँ गंगा हैं। मत्स्य० १२१।५० यह देश भारत मे है और यहाँ गंगा है। नारदी० पू० ५६।७४० यह देश पूर्वमुख कूर्म के नाभिमण्डल में है। अग्नि० ११८।८ यह देश भारत में है। मार्क० ५५।८ यह देश भारत में है और पूर्वमुख कूर्म के मध्य में है। भवि० ब्रा० यह देश है और ब्रह्मर्षिदेश का भाग है। गरु० पू० ५५। १० यह देश भारत मे है और मध्यदेश में है। देवीभागवत ३।१६।४७ यह देश है। श्रीमद्भागवत १।१०।३४ यह देश है और हस्तिनापुर से द्वारका जाने के मार्ग मे आता है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।३६, (म०) ६।४१ यह देश है। काव्यमीमासा ३।१५ यह देश मध्यदेश में है और इसमे महोदयनगर है। वायु० उ० ३७।१६१ मुद्गल, सृञ्जय, वृहदिषु, यवीयान्, काम्पिल्य इन पाँच भाइयो द्वारा रक्षा किया गया। ये पाँचो भाई संरक्षण में समर्थ थे, इससे पंचाल नाम पड़ा। व्याकरण महाभाष्य ५।१।११५ 'पूर्वे पञ्चालाः उत्तरे पञ्चालाः'। गरु० पू० १४५। १३ पचालविषय यहाँ द्रुपद की राजधानी थी। महाभा० आदि० (म०) २।६१ यह देश है। महाभा० हरि० हरि० २०।४५ यह देश है और इसमें काम्पिल्यनगर और अहिच्छत्रराज्य हैं। गणे० उ० ३२।२२ यह देश है। गर्ग० विश्व० यह देश है और इसमे कान्यकुब्जनगर राजधानी है। वाल्मी० अयो० (गु०) ६८।१३ (इ०) ७०।११ (ला०) ७४।११ यह देश है और अयोध्या से हस्तिनापुर जाते समय इसका कुछ भाग मार्ग में आता है। विष्णु धर्मो० १।६।२ यह भारत के मध्य-

इसका राजा पांचाल कहा जाता है। इस नाम के क्षत्रिय की संतान भी पांचाल कहलाती है। बहुवचन में क्षत्रियसंतान, राजा और देश तीनों पंचाल ही कहे जाते हैं। पुराणों में भर्म्यश्व राजा के मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और संजय नाम के पाँच पुत्र थे। भर्म्यश्व ने कहा कि पाँचो पुत्र पाँच देशों के रक्षण मे अलं; अर्थात् समर्थ हैं। इससे इस देश का नाम पंचाल पड़ गया, यह लिखा है। इस देश की पश्चिमी सीमा ब्रह्मावर्त[1] से मिली थी। उत्तरी सीमा में हिमालय था। पूर्वी सीमा गंगा से दक्षिण वत्स से मिली थी। दक्षिणी सीमा चम्बलनदी थी। इसके दो भाग थे। गंगा से दक्षिण का भाग दक्षिणपंचाल कहा जाता था, उसकी राजधानी काम्पिल्यनगर और आसन्दी (कन्नौज) थी और गंगा से उत्तर का भाग उत्तरपचाल[2]

देश में है। बृहत्संहिता १४।३ यह भारत के मध्यदेश मे है। टीकाकार भट्टोत्पल ने पराशर का ग्रन्थ उदाहरण में दिया है, उसमें उत्तरपचाल और दक्षिणपचाल दो भेद माने है। समाससहिता में भी यह देश है। कथासरित्सागर शशाकवती लम्बक ५।२०५, बृहत्कथामजरी शशाकवती लम्बक १।५०० यह देश है। मेदिनीकोष यह शब्द देशवाची पुल्लिग और बहुवचन है।

(१) मनु २।१६, यद्यपि 'ब्रह्मावर्तादनन्तरः' का अर्थ कुल्लूक भट्ट 'ब्रह्मावर्तात्किंचिदूनाः' 'ब्रह्मावर्त से कुछ कम' करते हैं, तथापि 'ब्रह्मावर्त के अनन्तर' अर्थात् 'अव्यवहित' जो वास्तविक अर्थ है, वही करना चाहिये।

(२) महाभा० आदि० (नि०) ११०।३२, (म०) ६७।२७ उत्तरपंचाल पहले द्रुपद के अधीन था। बाद में अर्जुन ने जीतकर द्रोणाचार्य को दे दिया था।

कहलाता था और उसकी राजधानी अहिच्छत्रनगर था, जो कि आजकल[1] काशीपुर के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरपंचाल का नाम 'अहिच्छत्रविषय' भी था। इसका पश्चिमी भाग कुरुदेश से मिला था। पूर्वी भाग प्रलम्ब और अपरतालदेश से मिला था (वाल्मीक अयो० गु० ६८।१२)। उत्तरी भाग हिमालय था। दक्षिण मे गंगा थी। यू० पी० के फर्रुखाबाद जिले में काम्पिल्यनगर आज भी काम्पिल नाम से प्रसिद्ध है। इस देश के निवासी पांचाल कहलाते थे और राजा भी पांचाल[2] कहा जाता था। फर्रुखाबाद और बरेली जिलो से दिल्ली करीब-करीब १५० मील पश्चिम है। उससे उत्तर-पश्चिम हिमालय की तराई कुरुदेश में हो सकती है। इससे नन्दलाल डे का कथन 'दिल्ली के उत्तर-पश्चिम हिमालय की तराई से' इत्यादि एकदम प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। ऋग्० मे पंचाल शब्द नहीं आता और इसका पर्याय क्रिवि भी देशअर्थ में नहीं आता। ऋग्० मे क्रिवि[3] का अर्थ कुआँ है। शतपथ[4] ब्राह्मण मे क्रिवि पंचाल का नाम है, यह लिखा है। और क्रैव्य पांचालराजा के अश्वमेध का परिवक्रा नामक नगर मे वर्णन है, जो कि आजकल यू० पी० के उन्नाव जिले मे परियर के नाम से गंगा के तट पर प्रसिद्ध है। इस समय वह नगर नहीं है, ग्रामरूप मे ब्रह्मावर्त

(१) रामनगर मानना एकदम गलती है। 'अहिच्छत्र' देखिये।

(२) अष्टाध्यायी ४।१।१६८, वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी 'जनपद शब्दाच्छत्रिपादञ्'।

(३) 'क्रिवि' देखिये।

(४) १३।५।४।७।

विठूर के ठीक सामने दूसरी ओर है और उसमें सात्रासह-शोण नामक पांचालराजा के अश्वमेध का वर्णन है, जिसके घोड़े की रक्षा ६०३३ कवचधारी तौर्वश क्षत्रिय करते थे। शत-पथ मे 'पांचाल' शब्द देश और राजा दोनों के लिये आया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐन्द्रमहाभिषेककी प्रशंसा में पांचाल (पांचाल देश के राजा) दुर्मुख के ऐन्द्रमहाभिषेक का बृहदुक्थ नामक ऋषि द्वारा वर्णन है और उससे बलिष्ठ हो पांचाल दुर्मुख के समस्त पृथ्वी के विजय का वर्णन है। बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१ में आरुणेय श्वेतकेतु का पांचालों की सभा में जाने का वर्णन है और पंचालदेश के राजा जैगल का भी वर्णन है। ३।१।१ में कुरुपंचालदेश के ब्राह्मणो का जनक के यज्ञ में जाने का वर्णन है। छान्दोग्योपनिषद् ५।३।१ मे आरुणेय श्वेतकेतु का पचालों की सभा में जाने का वर्णन है और पंचालराज प्रवाहण जैबलि का भी वर्णन है। मनु ने उसे ब्रह्मर्षिदेश का भाग माना है और मध्यदेश में लिखा है। ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश मे पैदा हुए ब्राह्मणों से संसार को अपना-अपना चरित्र सीखना चाहिये, ऐसा मनु का उपदेश भी है।

"पंचाल यह ऋग्वेदिक क्रिविजाति का बाद का नाम है"—वेदिक इंडेक्सकार का यह कथन ठीक नहीं। क्योंकि ऋग्वेद मे क्रिवि शब्द कहीं भी जाति या देश के लिये नहीं आया है। जहाँ जहाँ आया है सर्वत्र क्रिवि का अर्थ कुँआँ है। वे० इ० कार का यह कथन "निस्संदेह पंचालाज् में क्रिवीज् के सिवाय और भी जातियाँ सम्मिलित थीं," यह शतपथ से विरुद्ध है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि क्रिविदेश पंचालदेश

का पुराना नाम है। इससे क्रिवि ही पंचाल हैं और कोई भी जाति पंचाल में शामिल नहीं थी। पंचाल के साथ और जातियों के शामिल करने में कोई भी प्रमाण नहीं हैं। वे० इ० कार कहते हैं "दूसरे शहर जिनका कि उल्लेख प्रतीत होता है काम्पील और कौशाम्बी थे।" वस्तुतः काम्पील शब्द का अर्थ महीधर के अनुसार नगर है और सायण इसका अर्थ श्लाघ्य वस्त्रविशेष मानते हैं। यदि काम्पील नगर है तो काम्पिल्य से आनुपूर्वी मिलने से काम्पिल माना जा सकता है। परन्तु कौशाम्बी जो वत्सदेश की राजधानी थी, उसका पंचाल या कुरुदेश में कैसे संभव हो सकता है? वे० इ० कार कहते हैं "उनके राजा तथा सर्दार कुरु पांचाल राजाओं से विभिन्न क्रैव्य, दुर्मुख, प्रवाहण, जैवलि और शोण सुनाई पड़ते हैं।" विचार करने पर यह देश विचित्र मालूम पड़ता है। शतपथ ब्रा०, ऐतरेय ब्रा०, छान्दोग्योपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् मे ये लोग स्पष्ट पंचालदेश के राजा लिखे हैं। कुरुओ से कोई संबन्ध नहीं है। कुरु राजाओं से विभिन्न सुनाई पड़े, वह ठीक ही है। परन्तु पांचालों से कैसे विभिन्न हैं, यह समझ में नहीं आता।

परिरथ्य—१. वे० इ० "यह शब्द अथर्ववेद[1] मे एक बार आया है और इसका अर्थ सड़क[2] या रथ का भाग है,—जैसा लुडविक[3] और विटने[4] ने कहा है।"

(१) ८।८।२२।
(२) ब्लूमफील्ड हिम्स आफ़ दि अथर्ववेद ५८७, महाभारत ८।१४८७ में नीलकण्ठ के परिरथ्य के उदाहरण के अनुसार।
(३) ट्रान्सलेशन आफ़ दि ऋग्वेद ३।५२८।
(४) ट्रान्सलेशन आफ़ दि अथर्ववेद ५०६।

२. लुडविक और विटने का यही मत है। (वे० इ०)

परिणोहि[1]—यह स्थान कुरुक्षेत्र मे है। यह 'परीणत्' भी कहा जाता है।

परिचक्रा—१. वे० इ० "परिचक्रा शतपथ[2] ब्राह्मण में एक पाठ के अनुसार पांचालदेश के एक शहर का नाम है। वेबर ने बाद के एकचक्रा जो काम्पील[4] के निकट था, उसको माना है। इसके परिवक्रा[5] इत्यादि बहुत से रूप है।"

२. वेबर इसको एकचक्रा मानता है, जो काम्पिल्य के निकट था। स्कोलिपाष्ट तथा एजलिङ् इसका परिवक्रा रूप मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक नगरी है और पंचालदेश मे है। इसका नाम इस समय 'परियर' है। यह यू. पी. के उन्नाव जिले मे गगा के उत्तर है। लखनऊ के प्रसिद्ध रईस नवलकिशोर के सुपुत्र प्रयागनारायण

---

(१) कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२२६ 'परीणत्' देखिये।

(२) १३।५।४।७।

(३) इन्डिस्चेस्टडियन १।१६२।

(४) महाभारत १।६६४ (वस्तुतः महाभारत तथा सभी पुराणों मे काम्पिल्य शब्द आया है। काम्पील शब्द तो वाजसनेयी सं० और तैत्तिरीय सं० का पाठ है। वैदिक शब्द काम्पील है और लौकिक काम्पिल्य है। महीधर और उब्बट दोनो काम्पील का अर्थ काम्पिल्य मानते है। सायणाचार्य काम्पील शब्द का अर्थ चिकना और सुन्दर वस्त्र करते हैं और वही ठीक प्रतीत होता है)

(५) स्कोलियास्ट तथा एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ४४। ३९७ से समर्थित है।

ने इसे अपने गोमतीतट के काठपुल से पूर्वस्थित कृष्णमंदिर और नवलकिशोर-विद्यालय एवं धर्मादा इत्यादि के खर्चे के लिये ट्रस्ट मे लगा दिया है। यह प्राचीन समय में उत्पलावर्तकारण्य में थी। उत्पलावर्त के दो भाग गंगा द्वारा होते हैं। उत्तरी भाग में आजकल यह नगरी है। पहिले गंगा से दक्षिण थी, ऐसा प्रतीत होता है। यहाँ सीता की बहुत प्राचीन मूर्ति है। दक्षिण भाग मे बिठूर (कानपुर जिले मे) है जो आजकल ब्रह्मावर्त के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ बाजीराव पेशवा अंतिम समय में नजरबन्द करके रखे गये थे। शतपथ ब्रा० १३।५।४।७ मे क्रैव्य पांचाल (क्रिवियो के राजा) ने परिवक्रा नामक नगरी मे अश्वमेधयज्ञ किया था और एक लक्ष अशर्फियाँ ब्राह्मणो को दक्षिणा मे दी थीं। मूल में 'परिवक्रा' पाठ है। हरिस्वामी ने 'परिचक्रा' पाठ माना है। वेबर 'एकचक्रा' को 'परिवक्रा' मानते हैं और काम्पिल्य के समीप कहते हैं, सो ठीक नहीं। क्योंकि एकचक्रा नगरी आजकल यमुना के तट पर चक्रनगर के नाम से प्रसिद्ध है और इटावा जिले मे है। वह काम्पिल्य के समीप भी नहीं है। दोनो मे लगभग ५० कोस का अन्तर होगा और वह काम्पिल्य से आग्नेय मे है। परियर गंगा के तट पर काम्पिल्य से पूर्व लगभग ५० कोस है। गंगा का माहात्म्य यमुना से बड़ा है और परियर स्वयं तीर्थ है और परियर की आनुपूर्वी भी परिवक्रा से मिलती है। एकचक्रा से बिल्कुल नहीं मिलती। एकचक्रा तीर्थ नहीं है; प्रत्युत बकासुर के निवासस्थान होने के कारण एक अपवित्र स्थान है। इससे अश्वमेध के लिये चक्रनगर से परिवक्रा ही श्रेष्ठ है।

परिवक्रा—वे० इ० "परिवक्रा शतपथ ब्राह्मण १३।५।४।७ में स्कोलियास्ट तथा एजलिङ् द्वारा परिचक्रा का दूसरा पाठ स्वीकार किया गया है, जो कि एपिक की एकचक्रा द्वारा समर्थित है।"

परिवाहिणी[1]—उस नदी का नाम है, जो नदी के प्रवाह से निकलकर पृथक् बहने लगे और आगे चलकर उसी प्रधान धारा मे मिल जाय।

परिसारक—वे० इ० "एक स्थान का नाम है। ऐतरेय ब्राह्मण २।१९ में एक कथा के अनुसार एक द्वीप का, जिसके चारो ओर सरस्वती बहती थी, वर्णन आया है।"

वस्तुतः यह एक सरस्वती के तीर्थ का नाम है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ८ खण्ड १ में इस प्रकार वर्णन है:—एक समय ऋषियों ने सरस्वती के तट पर सत्र किया। उसमें इलूष के पुत्र कवष को यह कहकर कि यह दासी का पुत्र और जुआरी है अतः हमारे बीच में दीक्षित नहीं रह सकता, उसे निकालकर सरस्वती से दूर जाकर डाल दिया जिससे वह मरुभूमि में प्यास से मर जाय और सरस्वती के जल को न पी सके। वहाँ डाले जाने के बाद कवष ने प्यास से व्याकुल हो 'अपोनप्त्रीय प्रदेवत्रा' इत्यादि सूक्त को वेद के मध्य मे विचारकर देखा और उसने उसे जपा। इससे जलाभिमानिनी देवता उसके ऊपर प्रसन्न हो गया और इसके बाद सरस्वती की धारा ने वेग से उस स्थान को चारों ओर से घेर लिया। सरस्वती ने कवष के

---

(१) शतपथ ब्राह्मण ५।३।४।६।

स्थान को चारों ओर से घेर लिया, इससे उसका नाम 'परिसारक' हो गया।

परीणत् (परीणह्)—वे० इ० "परीणह् पंचविंश ब्राह्मण,[1] तैत्तिरीयारण्यक[2] तथा सूत्रों[3] में वर्णित कुरुक्षेत्र मे एक स्थान का नाम है।"

वस्तुतः यह एक कुरुक्षेत्र की ऊँची भूमि का नाम है। यह स्थान नैतन्धव के समीप प्रतीत होता है और सरस्वती एवं दृषद्वती के मध्य मे है। अग्निस्वामी ने 'स्थली' शब्द का 'ऊँची भूमि' अर्थ किया है। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयारण्यक प्रपा० ५ अनु० १ पृ० ३६३ में कुरुक्षेत्र का जघनार्ध; अर्थात् नीचे का हिस्सा 'परीणत्' है। इसके भाष्य मे सायणाचार्य ने लिखा है कि पुराण-प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र देवताओ की वेदी थी। उस वेदी का जघनार्ध पवित्र भूदेश 'परीणत्' कहा जाता था। ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१३।१ में यह स्थली कुरुक्षेत्र में है। कात्यायन श्रौतसूत्र २४।२२६ मे 'परिणोहि' नामक स्थल कुरुक्षेत्र मे है, वहाँ अग्न्याधान करना चाहिये। लाट्यायन श्रौ० सू० १०।१९।१ परीणत् नामक स्थल कुरुक्षेत्र में है, वहाँ अग्न्याधान का वर्णन है।

परुष्णी—वे० इ० "परुष्णी नदीस्तुति[4] (नदियों की

(१) २५।१३।१

(२) ५।१।१।

(३) लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१६।१, कात्यायन श्रौ० सू० २४।६। ३४, शांखायन श्रौ० सू० १३।२६।३२।

(४) १०। ५।५।

स्तुति) में वर्णित एक नदी का नाम है। यह देश राजाओ[1] के ऊपर सुदास् की विजय में वर्णित है। जिस युद्ध मे नदी का पानी बढ़ जाने से तमाम शरणार्थी[2] डूब गये थे, जिससे युद्ध और भी भयानक हो गया था। इन अवतरणों मे तथा ऋग्वेद[3] की आठवीं पुस्तक में जहाँ पर कि यह नदी महानदीनदी कही गयी है, यह निश्चितरूप से एक नदी के नाम के रूप में आती है और वह बाद को यास्क[4] से स्वीकृत रावी (इरावती) कहलाई। पिशल[5] इसका प्रसग ऋग्०[6] के और दो अवतरणो मे

(१) ७।१८।८।६।

(२) सूक्ष्मरूप से यह निश्चय करना कि नदी ने उस युद्ध में क्या भाग लिया, यह असंभव है। यह अधिक माना है कि सुदास् के शत्रुओ ने नदी को मोड़ना चाहा; परन्तु असफल रहे और उसी मे डूब गये। जिमर एल्टेन् डिस्चेजलेवेन ११, मेकडानल सस्कृत लिट्रेचर १५४, गेल्डनर ऋग्वेद कोमेन्टल १०३ मे बतलाते है कि सुदास् दोनो विरोधी सेनाओं के मध्य मे पकडा गया और परुष्णी से बचकर निकला। उसके शत्रुओ ने नदी को मोड़कर आसानी से आक्रमण करना चाहा। परन्तु असफल रहे और डूब गये। हापकिंस 'इडिया ओल्ड ऐन्ड न्यू' ५२ से आरम्भ मे इस थ्योरी को कि नदी को मोड़ने का प्रयत्न किया गया, यह गलत मानने मे ठीक है। यद्यपि जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५। २६१ से प्रारम्भ में उसने इसी परंपरागत धारणा को स्वीकार कर लिया है।

(३) ८।७४।१५।

(४) निरुक्त ६।२६।

(५) वेदिस्चेस्टडियन २। २०८ से २१० तक।

(६) ४।२२।२ तथा ५।५२।६।

देखता है, जहाँ पर कि ऊन (ऊर्णा), परुष्णी से सम्बद्ध है और इसका मतलब नदी से है। यह मैक्समूलर[1] कथा ओल्डेन-[2] वर्ग द्वारा समर्थित है। यद्यपि वे इस अवतरण के अर्थ से पूर्णरूप से सहमत नहीं हैं। पिशल[3] बतलाता है कि यह नाम ऊन के झुंड (परुष्) से उत्पन्न होता है; न कि जैसा निरुक्त समझता है कि नदी के मोड़ से अथवा राथ समझता है कि उसके सिवार से।"

"परुष्णी और यमुना का उल्लेख उस ऋचा मे आया है, जहाँ पर कि सुदास् की विजय मनाई गई है। इस उल्लेख ने हापकिंस[4] की कल्पना को अवसर दिया कि यमुना उस ऋचा में परुष्णी का दूसरा नाम है। और गेल्डनर[5] की कल्पना है कि परुष्णी वहाँ पर यमुना की एक शाखा है; परन्तु इसमे से कोई भी अर्थ न तो संभव है और न आवश्यक है। ऋचा बहुत सूक्ष्म है और सुदास् के दो विजयो का समारोह बनाती है। अथर्ववेद[6] में भी परुष्णी का एक सन्देहपूर्ण प्रसंग है।"

२. जिमर, मेकडानल और गेल्डनर का मत है कि सुदास् दोनों विरोधी सेनाओं के मध्य मे पकड़ा गया और परुष्णी से

(१) सेक्रड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३१५।३२३।

(२) ऋग्० नोटेन १।३४८।

(३) सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी ४ ए।

(४) वही, ५२।

(५) ऋग्वेद्ग्लासर १०६।

(६) ६।१२।३, तुलना करो ब्लूमफील्ड हिम्स आफ दि अथर्व० ४६२, विटने ट्रांसलेशन आफ दि अथर्ववेद २८६।

बचकर निकला। उसके शत्रुओं ने नदी को मोड़कर आसानी से आक्रमण करना चाहा; परन्तु असफल रहे और डूब गये। हापकिंस् ने (जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२६१ से प्रारम्भ में) इसी परम्परागत धारणा को स्वीकार कर लिया है। परन्तु हापकिंस 'इंडिया ओल्ड ऐंड न्यू' ५२ से प्रारम्भ में नदी को मोड़ने का प्रयत्न किये जाने की इस थ्योरी को गलत मानता है। हाप्किंस परुष्णी का दूसरा नाम यमुना मानते हैं और गेल्डनर यमुना की एक शाखा परुष्णी को मानते हैं। (वे० इ०)

३. पिशल परुष् (अर्णा) से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम परुष्णी मानते हैं। मैक्समूलर और ओल्डेनबर्ग का भी यही मत है। (वे० इ०)

४. राथ कहते हैं कि सिवार से इसका संबन्ध होने के कारण इसका नाम परुष्णी है।

५. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १५० "पंजाब में रावी (इरावतीनदी)। ऋग्वेद १०।७५ यह परुष्णी भी कहलाती थी। आर्यों के आगमन के प्रारम्भिक भाग में संघपति दशमित्र राजाओं का महायुद्ध इसी के तट पर लड़ा गया था। और तृत्सुओं के राजा और इस संघ के अग्रणी सुदास ने पुरुओ के राजा कुत्स और उनके मित्रों पर विजय पाई। पुरु बाद मे कुरुओ के नाम से प्रसिद्ध हुए (रिगोजिन का वैदिक इण्डिया पृ० ३२६ F)। (२) गोदावरी की एक सहायक नदी (ब्रह्म पु० अध्याय १४४)।

वस्तुतः यह नदी है और आजकल रावी नाम से प्रसिद्ध

है। ऋग्० १०।७५।५ में इसका नाम आया है और गगा इत्यादि नदियों से हमारे स्तोत्र के सुनने की प्रार्थना है। इसी मंत्र के निरुक्त ९।२६ में यास्क ने 'इरावतीं परुष्णीत्याहुः पर्व-वती (भास्वती कुटिल गामिनी)' ऐसा लिखा है। इसका अर्थ दुर्गाचार्य ने इस प्रकार किया है—"पेयमिरावतीतिलोके प्रसिद्धा तामिमामेतस्तिन् मत्रे मन्त्रार्थविदः परुष्णीत्याहुः। साकस्मात्पर्ववती किमुक्तं भवति कुटिल गामिनी इति, तदस्याः पर्ववत्वम् यानि कुटिलानि तानि पर्वाणीवतस्यास्तैस्तद्वतीति।" निरुक्तकार इसको रावीनदी कहते हैं। कुटिलगामिनी; अर्थात् घूम-घूमकर बहनेवाली कहते हैं। दुर्गाचार्य भी यही मानते हैं। वृहद्देवता ६।९७ मे इसको महानदी माना है। ऋग्वेद ८।७४। १५ में भी इसको महानदी माना है। सुदास् के युद्ध मे भी इस नदी का वर्णन है।

ऋग्वेद ७।१८।८ मे यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—दुष्टाभिसन्धि और मन्दबुद्धिवाले सुदास के शत्रुओ ने बहुत पानी से भरी हुई परुष्णीनदी के किनारे को काट दिया। इन्द्र की प्रशसा से प्राप्त महिमावाला सुदास् वहाँ की भूमि मे व्याप्त हो गया। उसके बाद सुदास् का शत्रु चायमान (चय मान का पुत्र) कवि नामवाला सुदास् से मारा गया। दूसरे मन्त्र मे इन्द्र ने परुष्णी के टूटे हुए किनारों को ठीक कर दिया। उसके बाद परुष्णी अपने पूर्वप्रवाह मे बहने लगी और बहुत शीघ्र सुदास् का घोड़ा अपने प्राप्तव्य स्थान को पहुँच गया। इन्द्र ने मनुष्यलोक में बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले शत्रुओं को सुदास् के वश में कर दिया। दशवें मन्त्र में इन्द्र जब सुदास्

की सहायता को गये, उसी समय मरुत् लोग भी इन्द्र की सहायता को पहुँचे। ग्याहरवें में सुदास् ने परुष्णी के दोनों तटों पर स्थित वैकर्ण जनपद के रहनेवाले अन्नेच्छा या धनेच्छा से आये हुए २१ शूरो को स्वयं मारा। जैसे अध्वर्यु यज्ञ मे कुशों को तोड़ता है उसी प्रकार युवा सुदास् ने शत्रुओं को काटा। उसी युद्ध मे इन्द्र ने मरुतो को सुदास् की सहायता मे किया। बारहवें मे इसके बाद वज्रबाहु इन्द्र ने श्रुत, कवष, वृद्ध, और द्रुह्यु को क्रम से पानी मे डुबा दिया और शेषो ने इन्द्र की स्तुति कर इन्द्र से मैत्री कर ली। इस ऋग्वेद के वर्णन से सुदास् ने परुष्णीनदी के तट पर रहनेवाले कवि चायमान पर चढ़ाई की। चायमान के पक्षपातियो ने परुष्णी के तटो को काटकर सुदास् के मार्ग में अडंगा लगाने की कोशिश की। परंच इन्द्र की सहायता से सुदास् की विजय हुई और शत्रु कवि चायमान मारा गया। इसके बाद परुष्णी की धारा इन्द्र ने पहले के समान कर दी। दूसरा युद्ध परुष्णी के दोनो तटो पर स्थित वैकर्ण नामक जनपद मे हुआ। इसमे सुदास् की सहायता को मरुतो के साथ इन्द्र आये और सुदास् ने वहाँ के निवासी २१ शूरो को मारा तथा उनके सहायक श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु को इन्द्र ने क्रम से परुष्णी के पानी मे डुबो दिया, या तो ये संग्राम छोड़कर भागते हुए नदी मे डुबो दिये गये, या इन्द्र ने पकड़कर उनको पानी में डुबो दिया और शेषो ने इन्द्र की स्तुति-कर इन्द्र से मैत्री कर ली। योरोपियन विद्वानों ने इस अर्थ को ठीक न समझकर इस कथा को मनमाना रूप दिया है और उनके पिछलगुओं ने उन्हीं का अनुसरण कर सुदास् के संग्राम

से भागने इत्यादि का वर्णन किया है। योरोपियन विद्वान् इस युद्ध और दाशराज्ञयुद्ध को एक करते हैं। वह उनका भ्रम है। दाशराज्ञयुद्ध का ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णन है। ऋग्० ७।८३।६ का अर्थ है:—दोनो प्रकार के लोग (सुदास् और उनके मित्र तृत्सु लोग) इन्द्र और वरुण का आह्वान करते है। किस लिये, धन लाभ के लिये, जिन संग्रामो मे दशराजाओं से मिलकर, घेरकर तृत्सुओ के साथ मारे जाते हुए सुदास् की आप दोनो (इन्द्र और वरुण) ने रक्षा की। सातवें का अर्थ यह है:—हे इन्द्र और वरुण! यज्ञ न करनेवाले दशराजाओं ने इकट्ठे होकर सुदास् पर चढ़ाई की; परन्तु आपसे अनुगृहीत सुदास् पर प्रहार न कर सके। उस समय ऋत्विजों के स्तोत्र सफल हुए और सभी यज्ञो मे देवता प्रकट हुए। आठवे का अर्थ यह है:—दशराजाओ से चारों ओर से घेरे गये सुदास् को आप लोगो ने बल दिया। जिस देश मे निर्मल और जटा धारण करनेवाले कर्म से युक्त तृत्सु नामक वसिष्ठ के शिष्यो ने अन्न से युक्त हवियों से युक्त स्तुतियो से आपकी सेवा की, उसी देश मे आपने सुदास् को बल दिया। इस प्रकार दाशराज्ञयुद्ध का वर्णन मिलता है। परंच यह दशराजे कौन है जिनसे युद्ध हुआ, यह निश्चित नहीं होता। केवल दशराजाओ का 'अयज्वानः' यह विशेषण उनको यज्ञ न करनेवाला बतला रहा है। ऋग्० ७।१८।५ मे तुर्वश का 'यक्षु' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ यज्ञ करनेवाला होता है। जो लोग इसको यदु का घृणित रूप मानते हैं, वे लोग संस्कृत-व्याकरण से अपरिचित है। ऋग्० १।१०८।८ मे इन्द्र और अग्नि से प्रार्थना है कि यदि आप यदुओ, तुर्वशो, द्रुह्युओ,

अनुओं तथा पुरुओं के यहाँ हो, तो भी सभी स्थानो से हमारे यज्ञ मे आकर सोमपान करें। इन वर्णनों से ये लोग यज्ञ करनेवाले प्रतीत होते है। इन लोगो का नाम जिन युद्धो में आया है, वे युद्ध दाशराज्ञ नहीं हो सकते। इससे परुष्णी के तट के युद्ध में द्रुह्यु का नाम आने से वह युद्ध दाशराज्ञ नहीं कहा जा सकता और ७।१८।५ में भी तुर्वश का 'यक्षु' विशेषण होने से वह युद्ध भी दाशराज्ञ नहीं हो सकता। इससे परुष्णी के युद्ध को दाशराज्ञयुद्ध कहना असंबद्ध प्रलाप है। ऋग्० ४। २२। २ यह मन्त्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:— मनोरथो की वर्षा करनेवाला मेघभेदन द्वारा वर्षा करते हुए चार धाराओ से युक्त वज्र को हाँथो से फेकता हुआ वलिष्ठ और अतिशय करके नेता तथा कर्मवान् इन्द्र ऊर्णा=आच्छादन करनेवाली (अर्थात् जिसकी घाटी मे वे लोग छिप सकें) परुष्णीनदी को आश्रयण के लिये सेवन करता है। जिस नदी के पर्व=टूटे हुए घुमाववाले स्थान मित्रता के लिये संवृत किये हैं। ऋग्वेद ५।५२।९ यह मरुत् की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है—वे वायु जो परुष्णीनदी मे है, जो दीप्तियुक्त शुद्ध करनेवाले सबका आच्छादन करते है और अपने रथ के चक्र के बल से मेघ या पर्वत का भेदन करते है। इन मन्त्रो में 'ऊर्णा' शब्द आया है जो कि 'ऊर्णुञ् आच्छादने' धातु से बना है। इससे इसका अर्थ ढकनेवाली होता है। ऊन भी ढकती है, इसलिये ऊर्णा कही जाती है। इन मन्त्रो मे ऊर्णा शब्द से मेष के रोम रूप ऊर्णा से कोई तात्पर्य नही है और न परुष् शब्द का अर्थ ऊर्णा का ढेर ही है। इससे परुष्णी शब्द का अर्थ निरुक्त ने

जो किया है, वही ठीक है। निरुक्त, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र इत्यादि की सहायता से वेदार्थ होता है। इसलिये निरुक्त के विरुद्ध वेदार्थ करना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। परुष्णी के युद्ध और यमुना के युद्ध को एक करना भी असम्भव है। ऋग्० ७।१८।१९ मे जिस इन्द्र ने भेद नामक सुदास के शत्रु को मारा, उस युद्ध मे यमुना ने इन्द्र की स्तुति की और तृत्सु के पुरुषों ने, अजजनपद निवासियो ने, शिग्रु जनपद निवासियों ने और यक्षु की संतान ने इन्द्र को बढ़िया घोड़े भेंट मे दिये। इस युद्ध मे परुष्णी के युद्ध से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। तब भी हापकिस और गोल्डेनर द्वारा परुष्णी का दूसरा यमुना नाम मानना अथवा परुष्णी को यमुना की शाखा मानना ठीक उसी प्रकार की कल्पना है जिसके अनुसार इंग्लैंड का अर्थ जर्मनी मानना अथवा जर्मनी को एक नगर बतलाना। इस अर्थ को अशुद्ध मानते हुए वेदिक इन्डेक्सकार स्पष्ट कह रहे है कि इन दोनों अर्थों मे कोई भी सम्भव नहीं है और आवश्यक भी नहीं है। जो लोग परुष्णी का सिवारवाली अर्थ करते है, वह भी ठीक नहीं। राथ का यह अर्थ देखकर वेदिक इन्डेक्स-कार अथर्ववेद मे भी परुष्णी का एक सन्देहपूर्ण प्रसंग है, ऐसा कह रहे हैं। अथर्व० में इसका वर्णन इस प्रकार है। ६।१२।३ में यह शब्द आया है, मन्त्र विष दूर करने के प्रयोग मे आता है। अर्थ यह है:—मधुर=विष को दूर करनेवाला अमृत तुम्हारे शरीर मे संपृक्त कर रहा हूँ। नदियाँ (गंगादि), पर्वत (हिमालय इत्यादि बड़े-बड़े पहाड़ अथवा जिनमे ढोके निकलते हैं) और गिरि (पर्यन्त के पहाड़ अथवा जिनमे पटियाँ निक-

लती हैं) रूप विषहर तुम्हारे शरीर में सींच रहा हूँ। सिवार से युक्त परुष्णी नाम की नदी मधु का आसिचन करे, इस प्रकार विष को दूर करनेवाला अमृत तुम्हारे सुख के लिये हो। इससे प्रतीत होता है कि परुष्णीनदी के भीतर पैदा होनेवाला सिवार विषनाशक होता है। यहाँ पर मन्त्र में शीपाल शब्द देखकर परुष्णी नाम सिवार से हो गया—यह राथ का कथन वेदिक इन्डेक्सकार को स्वीकार न होने से वह उसे सन्देहपूर्ण कह रहे हैं। क्योकि वे जानते हैं कि सिवार सभी नदियो मे होता है। यदि सिवार के कारण ही परुष्णी नाम पड़ा तो सभी नदियाँ परुष्णी कही जायँगी। वस्तुतः दाशराज्ञयुद्ध में दशराजे कौन थे, यह निश्चय नहीं और वे दशराजे किन्हीं संघों के स्वामी थे, इसमें भी नाममात्र का प्रमाण नहीं। और दशराजाओं से सुदास् का युद्ध हुआ था, इससे संघपति दश राजाओं मे सुदास् नहीं आ सकता। वे राजा लोग सुदास् से भिन्न थे और उस पुरु और कुत्स के पुरुवों मे होने मे भी नाममात्र का प्रमाण नहीं है। याज्ञिक होने से कुरु और उसकी सन्तान का इस युद्ध मे संभव नहीं है और न सुदास् तृत्सुओं के राजा ही थे, न इस युद्ध का आर्यों के आगमनकाल में प्रमाण ही है। इससे नन्दलाल डे का लेख एकदम असंबद्ध है।

पर्शु—वे० इ० "यह ऋग्वेद[1] का दानस्तुति मे एक आदमी के नाम के रूप मे आता है। अतः यह निश्चय नहीं कि वह तिरिन्दर ही था। परन्तु शांखायन[2] श्रौतसूत्र मे तिरिन्दर पार्श-

(१) ऋग्० ८।६।४६।
(२) १६।११।२०।

व्यवत्स काण्व के आश्रयदाता के रूप में आता है। वृषाकपि[1] ऋचा के दूसरे अवतरण मे पर्शु मानवी आत्मा है, जिसका अर्थ मनु की लड़की, स्त्री है। परन्तु यह कहना असभव है कि कौन स्त्री थी। इन दोनो को छोड़कर ऋग्वेद में कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता, जिसमे कि यह शब्द व्यक्तिवाचक माना जाय।"

"लुडविक[2] बहुत से स्थानों मे पर्शूज् की ओर संकेत करता है। इस प्रकार ऋग्वेद[3] के एक अवतरण मे वह पर्शूज् द्वारा कुरुश्रवण के पराजय का प्रसंग पाता है। दूसरे[4] मे वह पृथूज्

(१) "१०।८६।२३, स्पष्ट रूप से वार्तिक २ पाणिनी ४।१।१७७ मे जहाँ पर कि पर्शु स्त्रीलिग मे पर्शूज् की राजकुमारी का अर्थ करते हुए इस अवतरण की ओर सकेत करता है। तुलना करो गेल्डनर वेदिस्चेस्ट-डियन २।४२ तथा ऋग्वेद ग्लासर १०७ और तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।२।२।२ जहाँ पर यह पद आता है। परन्तु अर्थ इसका बड़ा ही सदेहपूर्ण है।"

(वस्तुतः ऋग्वेद में यहाँ 'मृगी' अर्थ है और पर्शु की राजकुमारी से कोई भी सम्बन्ध नही है। पाणिनि राजकुमारीअर्थ मे इसको नही बनाते; किन्तु पर्शु जाति के क्षत्रिय की लड़की के अर्थ मे पर्शू बनाते है। ऋग्० १०।८६।२३ मे 'पर्शु' शब्द उकारान्त है और पाणिनि का 'पर्शू' शब्द स्त्रीलिग में ऊकारान्त है। दोनो मे बड़ा अन्तर है। दोनो को एक मानना और उदाहरण देना मनमानी उड़ाने की पराकाष्ठा है)

(२) ट्रान्सलेशस आफ दि ऋग्वेद ३।१८६ से आरम्भ।

(३) १०।३३।२, यहाँ पर अर्थ निस्संदेह ऊपर की हड्डी है। देखो गेल्डनर की वही पुस्तक २।१८४ न० ३ तथा बर्गेने रेलीजन वैदिक २।३६२ एन्।

(४) ७।८३।१ 'पृथु पार्शवः' जिसका अर्थ सचमुच बड़ी हड्डी-

तथा पर्शूज् अर्थात् पार्थिअन्स तथा पर्शिअन्स का प्रसंग आता है। यह एक ऋचा[1] में पाये गये पार्थव शब्द मे पार्थिअन्स का सकेत पाता है। यही धारणा वेबर[2] की भी है, जो यह मानता है कि यहाँ पर पार्सियन्स से ऐतिहासिक संबन्ध का उल्लेख आया है। परन्तु जिमर[3] कहता है कि यह निष्कर्ष ठीक

वाला जैसा कि राथ सायण के साथ मानते है। या तो जैसा कि जिमर मानते है, उसका अर्थ बहुत बड़ी कुल्हाड़ियोवाला है।

(वस्तुतः जिमर यह नही जानते कि कुल्हाडी-अर्थ मे 'परशु' शब्द है और यहाँ पर 'पर्शु' शब्द है, इससे अर्थ पसली ही होगा)।

(१) ६।२७।८।

(२) इन्डिस्चेस्टडियन ४।३७६, इडियन लिट्रेचर ४ तथा एपिस्चेज इम वेदिस्चेन रिचुअल २६ से प्रारम्भ। वह अपनी धारणा ऋग्वेद ८।६।४६ के पर्शु तथा पर्शियन्स को समान मानने तक सीमित रखता है। हिल्लेब्रान्ट जो कि प्राचीनकाल मे ईरान से सम्बन्ध स्थापित करता है (पणिपारावत और सृञ्जय को देखिये) इस सम्बन्ध मे पर्शु का बिल्कुल उल्लेख नही करता। यद्यपि यह पार्थव का उल्लेख करता है, परन्तु उनका सकेत पार्थियन्स की ओर नही मानता (वेदिस्चेमाइथालोजी १।१०५)। ब्रनहोफर अपनी बहुत-सी स्वीकृतियो मे (ईरान ऐन्ड तूरान १८।८६ तथा पान्तुस्विस्जुम इन्डस १२६० इत्यादि) वेद मे ईरान की घटनाओ का प्रसग पाता है, परन्तु इसकी थ्योरी अवश्य ही अवैज्ञानिक माननी चाहिये। इसी प्रकार हाप्किंस जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२६४ एन् को भी देखिये।

(३) एल्टिन् डिस्चेजलेवेन १३४ से प्रारम्भ ४३३, वही पुस्तक ४३४-४३५। वह लुडविक की असाधारण धारणा का पृथु तथा पर्शु एक ही शब्द के दो रूप है, विरोध करता है।

नहीं। पर्शूज् एक लड़ाकू जाति की हैसियत से पाणिनि[1] को भी मालूम थे। दक्षिण-पश्चिम मध्यदेश मे पार्शवाज् एक जाति थी और पेरीप्लस[2] उत्तरीभारत में पर्थोई नामक एक जाति को जानता है। अधिक से अधिक यह अर्थ निकाला जा सकता है कि बहुत पहले भारतीय लोग और ईरानियन्स आपस मे संबद्ध हुए। परन्तु वास्तविक ऐतिहासिक सम्बन्ध किसी भी अंश तक निश्चित नहीं किया जा सकता।"

२. लुडविक परशूज् की ओर संकेत देखते हैं और उनको एक जाति मानते है तथा उनका अर्थ पर्शियन्स करते हैं। इसी प्रकार पृथूज् से पार्थियन्स मानते हैं और उसका आधार पार्थव शब्द मानते और दोनो को एक मानते हैं।

३. वेबर भी लुडविक के समान ही धारणा रखते हैं और यह मानते हैं कि यहाँ पर पार्शियन्स से ऐतिहासिक संबन्ध का उल्लेख आया है।

४. जिमर का मत है कि लुडविक और वेबर की धारणा ठीक नहीं। पर्शूज् एक लड़ाकू जाति की हैसियत से पाणिनि को भी मालूम थे। दक्षिण-पश्चिम मध्यदेश मे पार्शवाज् एक जाति थी।

५. पेरीप्लस उत्तरीभारत मे पर्थोइ नामक एक जाति को जानता है।

वस्तुतः यह एक क्षत्रियसमान जनपदवाची शब्द है। यह शब्द ऋग्० ८।६।४ में एक राजा के लिये आया है, जो पर्शु

(१) ५।३।११७।
(२) सी० ३८।

के पुत्र तिरिन्दर के दानस्तुति मे है। अर्थ यह है:—तिरिन्दर से हमने यदु की संतान से जीतकर लाये हुए सौ सहस्र धनों को प्राप्त किया। शांखायन श्रौतसूत्र मे तिरिन्दर का 'पार्शव्य' विशेषण उसको 'पर्शु की संतान' कहता है। ऋग्० १०।८६।२३ में पर्शुमानवी का वर्णन है। यहाँ पर पर्शु नामक मृगी है, पर्शु नामक कोई पुरुष नहीं है। इसके बाद ऋग्० मे कहीं भी पर्शु शब्द मनुष्यवाचक नहीं आया है। लुडविक ऋग्० के बहुत से अवतरणों मे पर्शूज् की ओर संकेत देखता है और जैसे १०।३३।२ में मंत्रार्थ यह है:—(कवष ऋषि कह रहे हैं कि) देवता के प्रसाद से रहित मुझको अन्नाभाव, दुर्बलता और खराब शयन से पर्शवः (पसलियाँ) सपत्नी के समान दुःख दे रही हैं। यहाँ पर्शु शब्द का अर्थ पसली है, पर्शु राजा या उसकी संतान नहीं है। लुडविक का कथन यहाँ पर पूर्णतः अग्राह्य है। ऋग्० १०।३३।२ मे लुडविक पर्शूज् द्वारा कुरुश्रवण के पराजय का स्वप्न देखता है, वह निष्प्रमाण है। वैदिक इंडेक्सकार भी यहाँ पर 'अर्थ निस्सन्देह ऊपर की हड्डी है' यह स्वीकार करते हुए इसे स्फुट कह रहे है और गेल्डनर तथा बर्गेने को भी प्रमाण मे दे रहे हैं। ऋग्० ७।८३।१ मे लुडविक पृथूज् तथा पर्शूज्, अर्थात् पार्थियन्स तथा पर्शियन्स का प्रसंग पाता है। यहाँ का मन्त्रार्थ यह है:—हे नेताओ इन्द्र और वरुण! आपमे बन्धुभाव को देखते हुए और अपने लिये गायों को चाहते हुए यजमान लोग 'पृथुपर्शवः' विस्तीर्ण है पसली की हड्डी जिनकी ऐसे होकर पूर्वाभिमुख जाते हैं; अर्थात् घोड़े की पसली की हड्डी को लेकर कुश लेने को जाते हैं। क्योकि तैत्ति-

रीयारण्यक में घोड़े की पसली को लेकर कुश लाने का विधान है। यहाँ 'घोड़े की बड़ी पसलीवाले' यह अर्थ है, पार्थियन्स और पर्शियन्स अर्थ नहीं है। इस बात को वैदिक इन्डेक्सकार स्पष्ट स्वीकार करते हैं और राथ तथा सायण को गवाही मे पेश करते हैं। जिमर इसका अर्थ बहुत बड़ी कुल्हाड़ीवाला मानते है। परंच वह यह नहीं समझते कि कुल्हाड़ी के अर्थ मे परशु शब्द है। ऋग्० ६।२७।८ मे पाये गये पार्थव शब्द मे लुडविक पार्थियन्स का संकेत पाता है। यही धारणा वेबर की भी है, जो यह मानते हैं कि यहाँ पर पर्शियन्स से ऐतिहासिक सम्बन्ध का उल्लेख आया है।

वस्तुत: ऋग्वेद मे पार्थव शब्द से पृथु की संतान अर्थ होता है। परंच पर्सिअन्स कैसे होता है, यह समझ मे नहीं आता। इसलिये लुडविक और वेबर का मत ठीक नहीं है। 'पृथु और पर्शु एक ही शब्द के रूप है'—लुडविक की इस धारणा का वैदिक इन्डेक्सकार स्फुट खंडन कर रहे हैं और जिमर को गवाह बनाते है। जिस वेद मे एक ही शब्द स्वर बदलने से दूसरा अर्थ कहता है, वहाँ इतने अन्तरवाले शब्द को भी एक कहना कहाँ तक ठीक है, इसे पाठक स्वय समझ लें।

वे० इ० 'पर्शूज् एक बहादुर लड़ाकू जाति की हैसियत से पाणिनि को भी मालूम थे। दक्षिण पश्चिम मध्यदेश मे पार्शवाज् एक जाति थी।' वस्तुत: पाणिनि ने 'पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ' ५।३।११७ यह सूत्र बनाया। इसका अर्थ है 'आयुधजीवि संघवाची पर्श्वादि और यौधेय आदि से स्वार्थ मे अण् और अञ् प्रत्यय हों।' पाणिनि पर्शु शब्द को देश और क्षत्रियवाची दोनों मानते

हैं। इससे संतानअर्थ में 'द्वयञ्मगध' इत्यादि सूत्र से अण् प्रत्यय करके पार्शव रूप बनाते है और स्त्री संतान अर्थ मे पर्शू शब्द बनाते है। बहुवचन मे संतान और राजाअर्थ मे प्रत्यय का लुक् करके पर्शु ही रखते हैं। बाद मे स्वार्थ मे 'पर्श्वादि' सूत्र से अण् करके पार्शव बनाते हैं। इसका अर्थ एक पार्शव नामक गण होता है। बहुवचन में पर्शु ही रूप रहता है। इस प्रकार पर्शु और पार्शव दोनो शब्द आयुधजीवी=हथियार से जीने वाले संघ के नाम है। यह गण क्षत्रिय है। इसका पूर्वपुरुष पर्शु था जो क्षत्रिय था, इसमे संदेह नहीं। व्याकरण के ग्रन्थ इतना ही कहते है। परंच यह कहाँ रहता था, यह निश्चय नहीं करते। परंच पंजाब के संघो मे नहीं था, यह प्रतीत होता है। यह मध्यदेश के दक्षिण-पश्चिम भाग मे था, इसमे भी कोई प्रमाण नहीं। मध्यदेश का दक्षिणी पश्चिमी भाग विन्ध्य के तट पर होगा। वह भाग तो पंजाब के बाद होने के कारण आर्य लोग नहीं जानते थे, उसके निवासी पर्शुओं को कैसे लिख गये ? यह योरोपियन विद्वानो के सामने बहुत बड़ी चिन्ता की बात होगी। पेरीप्लस के पर्थोई और पर्शूज् से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। पर्थोई तो पार्थव का बोधक हो सकता है, न कि पार्शव का।

वस्तुतः पर्शु एक देश का नाम है और उस देश के निवासी क्षत्रिय का भी नाम है। उस क्षत्रिय की सतान पार्शवगण रूप मे परिणत हो गई और उनका निवासस्थान भी पार्शवदेश के नाम से पुराणो मे प्रसिद्ध हुआ। बृहत्संहिता १४।१८ मे वराह मिहिरने इसको भारत के नैऋत्य दिशा मे माना है। और

८०।२ मे मोती की खान का वर्णन है। यहाँ के मोती श्वेत, गुरु (तौल मे भारी) और बड़े गुणवाले होते हैं। मोती की खान इसको समुद्रतट पर बतलाती है। अत्रिस्मृति ७।२ मे एक प्रकार के मनुष्य मान रही है। गरुड़ पुराण पूर्वार्ध ६९।२३ मे इसको समुद्र में मोती की खान मानता है। मार्कं० ५५।३१ यह देश है और पूर्वमुख कूर्म के पिछले दक्षिण पाद मे है। इन सब प्रमाणों से यह नैऋर्त्य भारत में समुद्र के तट पर प्रतीत होता है। इससे यह आनुपूर्वी मिलने कारण बसरा का नाम प्रतीत होता है। क्योंकि वह नैऋर्त्य भारत मे भी है और वहाँ का मोती भी अच्छा होता है।

पस्त्य—१. वे० इ० "पस्त्या स्त्री ऋग्वेद[1] के बहुत से अवतरणों मे आया हुआ एक शब्द है। राथ[2] इसका अर्थ स्थान अथवा रहने का घर करते हैं तथा घर मे रहते हुए परिवार का भी अर्थ करते है। यह धारणा जिमर[3] द्वारा भी स्वीकार की गई है। दूसरी ओर पिशल[4] दो अवतरणों[5] में

(१) ऋग्० १।२५।१०, ४०।७, १६४।३०, ४।१।११, ६।४६।६, ७।६७।५, ८।६५।२३, १०।४६।६, ८।५५।३, ८।२७।५, जहाँ पर पस्त्या एक देवी के रूप में प्रगट होती है, देखिये।

(२) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी।

(३) एल्टिन डिस्चेजलेवेन १४६, तुलना करो वेबर, अब्रर्डेन राजसूय ४३। न० ४ तथा ६३।

(४) वेदिस्चेस्टडियन २।२११।२२२, गेल्डनर ऋग्० ग्लासर १०७।

(५) ६।४६।६ तथा ७।६७।५, जहाँ पर अर्थ (गृहस्थ या गृहिन), जैसा कि सायण समझता है।

नपुंसकलिंग पस्त्य जो पस्त्यसद् और पस्त्यावन्त के रूप में आता है (जहाँ पर इस शब्द की लम्बाई बहुत पहले की नहीं) जो सचमुच ऋग्वेद[1] मे रहने के अलकृतरूप मे पाया जाता है और नैघण्टुक[2] में इसी रूप मे आता है। दूसरे अवतरणो[3] में वह इस शब्द का अर्थ नदी या पानी मानते है, जहाँ कि पस्त्याज्[4] के मध्य मे सोम का वर्णन आया है। वह कुरुक्षेत्र तथा उसकी सभी नदियाँ[5] सरस्वती, आपया, दृषद्वती (पस्त्या

---

(१) ऋग्० १०।६६।१०, ११। १०।६६।१० मे राथ पस्त्योः को सोम निचोड़नेवाली मशीन के दोनो भाग सकेत पाते है। परन्तु पिशल २।२११ मे सायण का अर्थ (स्वर्ग तथा पृथ्वी को) स्वीकार करते है। अग्नि के त्रिपस्त्य ऋग्० के ८।३६।८ मे, तथा पूषन् का वाजपस्त्य ६।५८।२ में तथा सोम का ६।६८।१२ में, और वीरपस्त्य ५।५०।४ में आदि शब्द पस्त्य रहा होगा, न कि पस्त्या। (बहुव्रीहि समास होने से 'पस्त्या' और 'पस्त्य' दोनो शब्दो का सम्भव है। इससे यह लेख इनके व्याकरण-ज्ञान को सूचित करता है)

(२) नैघण्टुक ३।४ जो कि सायण द्वारा ऋग्० १।१५१।२ मे पस्त्या के लिये गलत तरीके से प्रमाणित किया गया है और जब यह सचमुच पस्त्य का प्रयोग लाता है।

(३) ऋग्० १। २५। १०, तैत्तिरीय सहिता १। ८। १६ बराबर मैत्रायणी सहिता १।६।२, २।६।१२, ७।१६ तथा ४।४। ६ बराबर वाजसनेयी सहिता १०।२७, ऋग्० १।४०।७ तथा १६४। ३० (अग्नि के गृह के लिए प्रयोग मे आया है) ४। १। ११, ६। ६५। २३ तथ १०। ४६। ६, तैत्तिरीय सहिता १। ८। १२। १ बराबर मैत्रायणी स० २। ६। ८ बराबर वाजसनेयी सं० १०।७।

(४) ऋग्० ६।६५।२३। (५) ऋग्० ३।२३।४।

वंत) का प्रसंग पाते है और कुछ अवतरणों[1] मे वह पस्त्या का अर्थ नदी का नाम मानते है, जैसा कि सिन्धु का पहला अर्थ नदी तथा बाद मे इन्डस हुआ।"

२. राथ इसका अर्थ रहने का स्थान अथवा घर करते है तथा घर के रहते हुए परिवार का भी अर्थ करते हैं। ऋग्० १०।९६।१० मे पस्त्य को सोम निचोड़नेवाली मशीन के दो भागो का संकेत मानते है।

३. "जिमर राथ की धारणा को स्वीकार करते है।

४. विशल दो अवतरणो मे अर्थात् ६।४९।९ तथा ७।९७।५ मे नपुंसकलिग में पस्त्या, जो पस्त्यसद तथा पस्त्यावन्त के रूप मे आता है, राथ के अनुसार घर अर्थ मानते है। और ऋग्० १।२५।१० मे वह इस शब्द का अर्थ नदी अथवा पानी मानते है, मुख्यतया जहाँ पर (ऋग्० ९।६५।२३) पस्त्याज् के मध्य मे सोम का वर्णन आया है। ऋग् ३।२३।४ मे कुरुक्षेत्र तथा उसकी सभी नदियाँ आपया, दृषद्वती, सरस्वती (पस्त्यावन्त) का प्रसंग पाते है। और कुछ अवतरणो ऋग्० ४।५५।३ तथा ८।२७।५ और पस्त्यावन्त ९।९७।१८ में वह पस्त्या का अर्थ नदी का नाम मानते हैं।

५. वेबर राथ की धारणा को स्वीकार करते हैं।

६. गेल्डनर भी राथ के अनुसार धारणा रखते हैं।

वस्तुतः यह शब्द नपुसकलिंग तथा स्त्रीलिंग है। कई अर्थों मे इसका प्रयोग मिलता है। वेद और लोक मे इसका प्रयोग

---

(१) ऋग्० ४।५५।३ तथा ८।२७।५ और पस्त्यावंत ९।९७।१८ मे देखिये।

'गृह' अर्थ में आता है। कहीं-कहीं प्रकरणवशात् 'गृहस्वामी' भी हो जाता है। कहीं कहीं 'पस्त्या' शब्द का अर्थ 'नदी' होता है और प्रकरणवशात् कहीं 'नदीतट' भी हो जाता है। कहीं कहीं 'आने जाने योग्य' भी अर्थ होता है। कहीं कहीं 'एक भाषा' का भी नाम है, जो आजकल भी 'पश्तो' के नाम से कही जाती है। राथ १०।९६।१० मे पस्त्या का अर्थ सोम निचोड़ने की मशीन का भाग अर्थ करते है, सो ठीक नहीं। क्योकि सोम पत्थरों से कूटकर निकाला जाता था। उसके लिये कोई मशीन नहीं थी। वस्तुतः यहाँ पर 'पस्त्य' या 'पस्त्या' शब्द भी नहीं है; किन्तु इकारान्त 'पस्ति' शब्द है और उसका अर्थ 'पृथ्वी' और 'आकाश' है और द्विवचन मे 'पस्त्यो' यह पाठ है। ऋग्० १।२५।१० मे 'पस्त्या' शब्द का अर्थ 'दैवी प्रजा' है। वाजसनेयी सहिता १०।२७ मे भी प्रजा ही अर्थ है। ऋग्० १।६४। ३० मे पस्त्या शब्द घर के अर्थ मे आया है, नदीअर्थ का संभव नहीं। इससे पिशल का अर्थ नहीं माना जा सकता। मंत्रार्थ यह है.—जीता हुआ, स्वॉस लेता हुआ, अपने व्यापार के लिये चलता हुआ वर्तमान होता है और मरने के बाद निश्चल होकर गृहो के बीच मे सोता है। ४।१।११ मे 'यजमानो का घर' अर्थ है। ९।६५।२३ मे 'नदी'अर्थ है। यहाँ पर कुरुक्षेत्र ही की नदियाँ अर्थ नहीं है, सभी सरस्वती इत्यादि पवित्र नदियाँ अर्थ होता है। ऋग्० १०।४६।६ मे 'यागगृह' अर्थ होता है, नदी-अर्थ नहीं होता। वाजसनेयी संहिता १०।७ मे गृहअर्थ होता है, नदीअर्थ नहीं। ३।२३।४ मे पस्त्या शब्द ही नहीं है। ४। ५५।३ का अर्थ यह है:—पस्त्या = सबसे जाने योग्य, अदिति =

अदीन देवमाता सिधु बहनेवाली नद्यभिमानिनी देवी स्वस्ति= सुख से रहनेवाली देवी की हम अनुकूल होने के लिये मंत्रो से स्तुति कर रहे है। यहाँ पर पस्त्या अदिति का विशेषण है। ऋग्० ८।२७।५ में पस्त्या का अर्थ घर है।

पस्त्यावान्—१. वे० इ० "पस्त्यावन्त ऋग्०[1] के अवतरण मे सुषोम, शर्यणावन्त और आर्जीक के साथ आता है। प्रकटत: यह किसी स्थान की ओर संकेत करता है, जैसा कि पिशल[2] बतलाता है कि यह प्रान्त नदियो के मध्यवाले क्षेत्र (मध्ये पस्त्यानाम्) से बना है। और जगहों[3] मे सोम के जन्मस्थान के रूप मे उल्लिखित है। पिशल[4] के अनुसार इसका मतलब पटियाला से है। यद्यपि वह दोनों शब्दो की समानता पर कोई विचार प्रकट नहीं करता। पटियाला के उत्तर मे ऐसी पहाड़ियाँ हैं, जहाँ पर कि सोम पैदा हुआ होगा। राथ[5] के अनुसार सोम तैयार करनेवाली मशीन से इसका सम्बन्ध था।"

२. राथ इसका सम्बन्ध सोम तैयार करनेवाली मशीन से मानते हैं। (वे० इ०)

---

(१) ८।७।२६।

(२) वेदिस्चेस्टडियन २।२०६।

(३) ऋग्० ६।६५।२३।

(४) वही पुस्तक २।२१६।

(५) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी, मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ् दि ईस्ट। ३२।२६०।३६८-३६६ मे पस्त्यावन्त को एक स्थान का नाम मानता है। परन्तु यह सोचता है कि पस्त्या शब्द के माने छोटा ग्राम है अथवा अदिति के विशेषण के रूप मे इसकी तरफ घर की स्त्री के रूप में सकेत करता है। (ऋग्० ४।५५।३ तथा ८।२७।५)।

३. मैक्समूलर इसको एक स्थान का नाम मानते हैं। परन्तु यह सोचते हैं कि पस्त्या शब्द का अर्थ छोटा ग्राम है अथवा अदिति के विशेषण के रूप में इसके तरफ घर की स्त्री के रूप में संकेत करते हैं। (वे० इ०)

४. पिशल किसी स्थान की ओर संकेत करते हैं कि यह प्रान्त नदियों के बीचवाले क्षेत्र से बना है। ऋग्० ९। ६५। २३ में सोम के जन्मस्थान के रूप मे मानते हैं और उनका मतलब पटियाला से है।

वस्तुत: यह एक देश का नाम है, जहाँ पर सोम उत्पन्न होता है। कौन देश है, यह निश्चित नहीं। परंच नाम से इसमे नदियों की प्रचुरता प्रतीत होती है। पटियाला और उसके उत्तर की पहाड़ियों पर सोम उत्पन्न हुआ होगा, यह कथन प्रमाणाभाव से माननीय नहीं हो सकता। सोम लेने के लिये विश्वामित्र का शकट लेकर जाने का वर्णन है, इससे गाड़ी जाने योग्य स्थान पर होना चाहिये। वास्तविक विचार करने पर पस्त्या शब्द से पस्त्यावान् देश की भाषा भी प्रतीत होती है, और उसका अपभ्रंश रूप आज 'पश्तो' के रूप मे संसार में स्थित है। इससे पश्तोभाषा बोलनेवाला ही पस्त्यावान् देश है। जो लोग पश्तो को पक्थ का अपभ्रंश मानते हैं, वे लोग विचार करे कि 'पश्तो' के मौलिक रूप 'पस्त्या' मानने में जो सामंजस्य है, वह सामंजस्य क्या 'पक्थ' से बनाने में हो सकता है?

पारावत—वे० इ० "यह ऋग्वेद के बहुत से अवतरणों में

आता है। राथ[1] सोचता है कि बहुत से स्थानों[2] पर इसका अर्थ बहुत दूर से आता हुआ है। परन्तु दो अवतरणों[3] मे यह यमुनानदी के किनारे रहनेवाली एक जाति बतलाता है। यह निश्चित है कि पंचविंश ब्राह्मण में आये हुए पारावताज् उस नदी पर बसी हुई एक जाति है, ('तुरश्रवस्' से तुलना करो)। हिल्लेब्रान्ट[4] हर अवतरण[5] मे जाति का अर्थ मानता है। टालेमी[6] की पायुक्तो से समानता करता है, जो कि जेडरेसिया अथवा पायूनया के, जो अपिया[7] मे पाया जाता था, उत्तरी किनारे पर बसे हुए थे। यह बतलाता है कि ये लोग पहले पहाड़ी थे (तुलना करो 'पर्वत' से)। लुडविक[8] की धारणा भी ऐसी ही है। गेल्डनर[9] भी जाति मानता है। पारावताज्

(१) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी।

(२) ऋग्० ५।५२।११, ८।१००।६, अथर्व० २०।१३५।१४, (वस्तुतः ११—यहाँ पर इसका अर्थ कबूतर है, दूर से आता नही) (सरस्वती पारावतघ्नी) ऋग्० ६।६१।२।

(३) ऋग्० ८।३४।१८, पचविश ब्राह्मण ६।४।११, तुलना करो हापकिंस ट्रान्जेकशन्स आफ दि कनेक्टिकट एकेडेमी आफ आर्टस् ऐन्ड साइंस १५।५३।

(४) वेदिस्चेमाइथालोजी १।६७ से प्रारम्भ, तथा ३।३१०, ब्रन्होफर ईरान ऐन्ड तूरान ६६ का अनुगमन करता है।

(५) २ और ३ नोट देखिये।

(६) ६।२०।३ हिल्लेब्रान्ट द्वारा यह बतलाया गया है कि हिरोडोटस ३।६१ का आनउताई भी एक ही चीज है।

(७) टालमी ६।१७।

(८) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१६२।१६७।

(९) ऋग० ग्लासार १०६, तुलना करो हापकिंस जरनल आफ दि

के सम्बन्ध में ऋग्० मे सरस्वती का वर्णन पंचविंश ब्राह्मण में यमुनानदी के किनारे उनकी स्थिति का परिचायक है।"

२. राथ बहुत से स्थानों पर इसका अर्थ 'बहुत दूर से आता हुआ' मानता है। परन्तु दो अवतरणों में यह यमुनानदी के किनारे रहनेवाली एक जाति मानता है। (वे० इ०)

३. हिल्लेब्रान्ट हर अवतरण मे जाति का अर्थ मानता है और टालमी की पायुक्तो से समानता करता है, जो कि जडरेसिया अथवा पायूतया के (जो कि आरिया मे पाया जाता था) उत्तरी किनारे पर बसे हुए थे। वह बतलाता है कि वे पहले पहाड़ी थे।

४. लुडविक की भी धारणा ऐसी ही थी। (वे० इ०)

५. गेल्डनर भी जातिअर्थ मानते हैं। (वे० इ०)

६. ब्रनहोफर हर अवतरण मे जाति मानते हैं।

वस्तुतः 'परावत' का पुत्र 'पारावत' कोई राजा था और उसकी संतान भी 'पारावत' थी। परावत का धन भी पारावत कहा जाता है। दूर मे स्थित भी पारावत कहा जाता है। नदी के दोनों किनारे भी पारावत कहे जाते है। ऋग्० मे इन सब अर्थों में पारावत का प्रयोग मिलता है। पारावत नाम का देश भी था। ऋग्० ८।३४।१६ में वसुरोचिषों को पारावत द्वारा घोड़ो के देने का वर्णन है और १८ वे का अर्थ यह है कि वसुरोचिषो का सहस्र कह रहा है कि हम वन मे परावत के

अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १७।६१, मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३१६।

दानों मे शीघ्र चलनेवाले घोड़ो को लेकर सुख से स्थित हैं। इसमें परावत की सन्तान पारावत राजा अवश्य प्रतीत होता है। पंचविंश ब्राह्मण ९।४।१० मे तौरश्रवस साम की उत्पत्ति मे लिखा है कि तुरश्रवा ऋषि और पारावत = परावत की सतान दोनो ने यज्ञ करने के लिये यमुना के तट पर सोम को साथ ही साथ तैयार किया। इसके वाद तुरश्रवा ऋषि ने इन दोनो सामो को देखा और देखकर उनसे स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो इन्द्र ने तुरश्रवा के लिये यमुनातट पर स्थित पारावतो के हवि इत्यादि को अपने शस्त्र से अपहरण करके दे दिया। इस प्रकार पारावनों के यज्ञ करने का सामान यमुनातट पर इकट्ठा करने का वर्णन है। परंच यह कहाँ रहते थे, यह निश्चय नहीं होता। ऋग्० ८।३४।१८ का अर्थ हम अभी लिख चुके हैं। इसमे पारावतों का कोई स्थान नहीं लिखा है। इससे इन दोनों अवतरणो के बल पर राथ का इस जाति का यमुना के तट पर बसना मानना निराधार है। हिल्लेब्रान्ट हर अवतरण मे जाति का अर्थ मानता है और टालमी के पायुक्तो से समानता करता है, जो कि जड-रेसिया अथवा पायूतमा के (जो अपिया मे पाया जाता था) उत्तरी किनारे पर बसे हुए थे। वह कहता है कि ये लोग पहले पहाड़ी थे। लुडविक की भी धारणा ऐसी ही है; गेल्डनर जाति मानते हैं। हापकिंस और मैक्समूलर का भी यही अर्थ है। वस्तुतः हिल्लेब्रांट यदि आदि मे पकार देखकर, पकार आदि का शब्द 'पायुक्त' मानता है और टालमी के शब्द को, जिसका कि अर्थ अटकलपच्चू लगाकर लोग समझते हैं, एक करता है—यदि यह प्रामाणिक हो तो बहुत से शब्द पकारादि

वाले अन्य भाषाओं में.मिलेंगे, उनसे भी समानता हो सकेगी। इससे हिल्लेब्रान्ट का कथन निःसार है और उसके अनुगामी अन्य लोग भी उसी प्रतिष्ठा के योग्य हैं। जो लोग 'पर्वत' से 'पारावत' बनाकर ऐसा कहते हैं, वे एक दम संस्कृतव्याकरण से अनभिज्ञ हैं। पर्वत से पारावत नहीं बन सकता। वैदिक इन्डे-क्सकार पारावताज् के सम्बन्ध मे सरस्वती का वर्णन पंचविंश ब्राह्मण में यमुनानदी के किनारे उनकी स्थिति का परिचायक बतलाते है। ऋग्० ६।६१।२ का अर्थ यह है :—यह सरस्वती शोषक अपने बलों से और बड़ी-बड़ी तरंगो से पर्वतो के शिखरों को अनायास इस प्रकार तोड़ देती है, जिस प्रकार कि कमल के भसीड़े खोदनेवाला पुरुष कीचड़ को अनायास हटा देता है। और पारावतघ्नी (दोनो तटो को तोड़नेवाली) सरस्वती की हम रक्षा के लिये सेवा करें। इसी मंत्र की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार यास्क ने २।२४ मे 'पारावतघ्नी' का 'पारावारघातिनी' यह अर्थ किया है, जिसका अर्थ 'दोनों किनारे तोड़नेवाली' होता है। इसी को वे० इ० कार पारावताज् के सम्बन्ध में सर-स्वती का वर्णन कहते हैं, जो निरुक्त के प्रमाण से बिल्कुल असं-भव है। ऋग्० ५।५२।११ का अर्थ यह है :—अभिमत वृष्टि इत्यादि के नेता मरुत् संसार को वहन कर रहे हैं और स्वयं मिलानेवाले होकर चलते हैं। और पारावत=दूर देश में स्थित मेघादि को धारणकर चल रहे हैं। इस प्रकार वायु के नानाप्रकार के रूप अपने व्यापारों से दर्शनीय होते हैं। इसमें 'पारावत' शब्द 'दूर देश मे स्थित को धारण करनेवाले' के अर्थ में है। 'दूर से आते हुए' अर्थ मे, जैसा कि राथ कहते हैं, नहीं है।

ऋग्० ८।१००।६ मे यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है :—हे मघवन्! आपने यज्ञो मे सोम का अभिषव करते हुए यजमानों के लिये जो कर्म किये हैं, वे कहने मे अनंत है। और आपने पारावत=परावत-सम्बन्धी धन जिस प्रकार बहुत इकट्ठा हो उस प्रकार शरभ ऋषि के लिये खोल दिया। इसमे 'पारावत' शब्द का अर्थ 'परावत का धन' है। राथ का माना हुआ 'बहुत दूर से आता हुआ' अर्थ नहीं है। वामनपुराण १९।३९ मे कुमारद्वीप (भारत) मे पारावत नाम का देश उदीच्य है, ऐसा कहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि पारावत लोग जिस देश में रहते थे, वह पारावत कहा जाता था और उत्तर मे था। कहाँ था और अब क्या नाम है, यह निश्चित नहीं।

पावीरवी[1]—एक नदी है।

पुण्ड्र—१. वे० इ० "पुण्ड्र ऐतरेय[2] ब्राह्मण में आये हुए एक प्रकार की धर्मबहिष्कृत जाति है। उनका नाम सूत्रों[3] मे भी आता है। एपिक मे उनका देश बंगाल और बिहार का क्षेत्र बतलाया गया है।"

---

(१) ऋग्वेद ६।४६।७ तथा १०।६५।१३, आश्वलायन श्रौतसूत्र ३।७।

(२) ७।१८ शांखायन श्रौतसूत्र १५।२६।

(३) बौधायन धर्मसूत्र १।२।१४, तुलना करो कलन्द जेट्स चेरिफ्ट डेरडयूश्चेन मार्गेन लाण्डिस्चेन जेसेल्स चेफ्ट ५६।५५३, बूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १४।१४८, ओल्डेनवर्ग बुद्ध ३६४ एन्। पुण्ड्राज् की बाद की भौगोलिक स्थिति के लिये पार्जीटर जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८।३३३ में नक़्शे को देखिये।

२. कलन्द, बूलर, ओल्डेनवर्ग और पार्जीटर इनको जाति मानते हैं। (वे० इ०)

३. ह्वेनसाँग ५२५ "पुन्नफटन्न (पुण्ड्रवर्धन) कैचुहो· इखीली कजूघिर या कजिघर से पूर्व गगानदी पार करके लग· भग ६०० ली पर पुन्नफटन्नराज्य है। इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४०00 ली और राजधानी का क्षेत्रफल ३० ली है। यह बहुत घनी बसी है। तड़ाग, सुरम्य स्थान और पुष्पोद्यान स्थान· स्थान पर बने हुए हैं। भूमि समतल, चिकनी और सब प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करनेवाली है। यहाँ पर पनस की बड़ी प्रतिष्ठा है और बहुतायत से होता है। प्रकृति कोमल और लोग विद्या· व्यसनी हैं। यहाँ २० संघाराम हैं। विरोधियो के कई सौ देव· मदिर भी है। राजधानी से पश्चिम लगभग २० ली पर पोचि· पश्रो संघाराम हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक अशोकस्तूप है। इसके निकट चारों बुद्धों के तपस्यास्थान है। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक विहार मे अवलोकितेश्वर बुद्ध की मूर्ति है।"

४. प्रोफेसर विल्सन साहब लिखते हैं कि "प्राचीन पुण्ड्र· देश मे राजशाही, दीनाजपुर, रगपुर, नदिया, वीरभूम, बर्द- वान, मिदनापुर, जंगलमहाल, रामगढ़, पाचित, पलमन और कुछ भाग चुनार का सम्मिलित था। यह ईरव (पुण्ड्र का देश) है। पौण्ड्र देशवासियो का नाम संस्कृतग्रन्थो मे बहुत आया है। और पुण्ड्रवर्धन इस देश का एक भाग है।"

५. मिस्टर वेस्टमकाट "पुण्ड्रवर्धन का निश्चय रंगपुर से ३५ मील उत्तर-पश्चिम दीनाजपुर मे बर्धनकुटी (या खेन्ताल) और पाँजर के जिलो और परगनो के साथ करते है, और यह

भी विचार प्रकट करते हैं कि गौड़ा से १८ मील उत्तर पूर्व और मालदा से ६ मील उत्तर-पूर्व फिजूंपुर या फिरूजाबाद, जिसका प्राचीन नाम पोण्डुवा अथवा पोरोबा था, पुण्ड्रवर्धन का अपभ्रंश है।"

६. मि० फरगुसन रंगपुर के निकट इसका होना निश्चय करते हैं।

७. कनिंगहम साहब ने राजधानी का स्थान बगरहा से सात मील उत्तर की ओर बर्धनकुटी से १२ मील दक्षिण मे करतोया के निकट महास्थानगढ़ निश्चय किया है। पुण्ड्रदेश उत्तरी बंगाल मे था।

८. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १५४ "पुण्ड्र यही पुण्ड्रवर्धन है। यह पुण्ड्रदेश भी कहलाता है। बाली के पुत्र पुण्ड्र के नाम से इसकी प्रसिद्धि है। ('सुह्म' को देखिये)। पूर्व मे यह कारतोयानदी से घिरा था। परन्तु मिस्टर बैस्टमेकाट का मत है कि देश ब्रह्मपुत्र से घिरा हुआ था (जे० ए० एस० बी० १८७५ पेज ३)। इसके पश्चिम में कौशिकी (कोशी) नदी है। उत्तर मे हिमालय का शिखर हेमकूट है। दक्षिण में गंगानदी है। यह वासुदेव का राज्य था, जो श्रीकृष्ण का विरोधी था। (हरिवंश अ० २८१, २८२, पद्म० उत्तर ख० अ० ९४, ब्रह्माण्ड० पू० अ० ५५) पुण्ड्रदेश और पौण्ड्र ये दोनो देश के नाम थे और पौण्ड्रवर्धन शायद राजधानी थी। यह करूष भी कहलाता था। (भागवत पु० १० अ० ६६) यह बंगाल के मालद जिले में पाण्डुवा है। यह महानन्दा के ऊपर स्थित था। महानन्दा अब ४ मील पश्चिम चली गई है। यह प्रसिद्ध आदिनाह मसजिद

तथा सतसगढ़, जो राजमहल माना जाता था, उससे युक्त था। मिस्टर पार्जीटर इसको एक अलग देश मानते हैं (महाभारत सभापर्व अ० ५१ और भीष्मपर्व अ० ९)। पौण्ड्र गंगा के दक्षिण मे तथा पुण्ड्र अंग बंग के बीच में गंगा के उत्तर में था। और पौण्ड्र मे संथाल परगने तथा बीरभूम जिले और हजारी-बाग जिले का उत्तरी भाग अवश्य शामिल था (एन्शेन्ट कन्ट्रीज़ इन ईस्टर्न इण्डिया इन जे० ए० एस० बी० १८९७ पृ० ८५)।"

पुण्ड्रदेश पृ० १६१ "यह पौण्ड्र तथा पुण्ड्रवर्धन की तरह गौड ही है। (बागेह की डिक्शनरी वालूम ३ पृ० १०९, ११०) पुण्ड्र का नाम सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण मे आता है। मि० पार्जीटर के अनुसार पुण्ड्र और पौण्ड्र दो अलग-अलग देश थे और उनमें पहला मालदा का जिला, पुर्निया का कोशीनदी के पूर्व का भाग तथा दीनाजपुर राजशाही का भाग ('पुण्ड्र' को देखिये)। (इन्शेन्ट कन्ट्रीज इन ईस्टर्न इण्डिया इन जे० ए० एस० बी० १८७७ पृ० ८५)।"

पुण्ड्रवर्धन पृ० १६१ (नं० १) "पाण्डुआ जो बाद में फिरोजाबाद कहलाया, मालदा से ६ मील उत्तर तथा गौड़ से २० मील उत्तर पूर्व है। (सर एच्० इलिट की हिस्ट्री आफ़ इण्डिया वालूम ३ खण्ड ३ पृ० २९८, गरुड़ पुराण १ अध्याय ८१) यह पहले महानन्दानदी के किनारे बसा हुआ था, जो आज चार मील पश्चिम बहती है। यह पुण्ड्रदेश या पौण्ड्र की राजधानी था ('पौण्ड्र' देखिये), जिसमे पाटलीदेवी का मंदिर था (पद्म पु० उत्तर ख० अ० ५८)। प्रोफेसर विलसन के अनुसार पुण्ड्रदेश में राजशाही, दीनाजपुर, रंगपुर, मालदा,

बोगरा तथा तिरहुत के जिले शामिल थे (विष्णु पु० २।१३४। १७०)। कुछ विद्वानों के अनुसार पुण्ड्र या पुण्ड्रवर्धन महानन्दा तथा करतोया के मध्य मे था। मि० फर्गुसन के अनुसार दीनाजपुर, रंगपुर और बोगरा के भाग पुराने पुण्ड्रवर्धन माने जाते थे। यह उत्तरी बंगाल का भाग था। मि० वेस्टमकोट पंजर तथा वर्धानकुटी (खेट्टल) को दीनाजपुर मे मानते हैं (जे० ए० एस्० बी० १८७५ पृ० १८८ तथा नोट्स आन दि जागराफी ओल्डेन बंगाल इन जे० ए० एस्० बी० १९०८ पृ० २६७)। कनिंगहम ने महास्थानगढ़ जो बोगरा जिले मे करतोयानदी के तट पर बर्धनकुटी से १२ मील दक्षिण और ७ मील बोगरा और पवना ('बरेन्द्र' देखिये) से उत्तर है, इसको पुरानी राजधानी माना है। सुमागधावदान तथा क्षेमेन्द्र की बोधिसत्वावधान कमलता अध्याय ९३ में पुण्ड्रवर्धन श्रावस्ती से १०६ योजन; अर्थात् ६४० मील पूर्व है, यह लिखा है। पुण्ड्रवर्धन का राज्य चाहे जितना बड़ा रहा हो; परन्तु मालदा जिला उसमें था। यह बात जेम्स टाइलर ने अपनी 'रिमार्कस् आन दि सी सीकेलटू दि पेरीप्लस आफ दी एरियन' नामक पुस्तक में लिखा है (जे० ए० एस्० बी० वालूम १५) विकेशवसेनप्लेट जो कि फरीदपुर जिले के एदिलपुर मे पाया गया था, विक्रमपुर पौण्ड्र का एक भाग है। (जे० ए० एस्० बी० १८३८ पृ० ४५ से ५० तक मे प्लेट की नकल देखिये)। ऐतरेय ब्रा० ७।१८ में पुण्ड्रों का वर्णन है। राजतरंगिणी (बुक ४) के अनुसार पुण्ड्रवर्धन ८ वीं शताब्दी मे गौड़ की राजधानी था, जब कि इसे जयन्त के राज्यकाल मे कश्मीर के राजा जयापीड़

ने देखा था। इलियासशाह द्वारा बड़े झगड़े के बाद पूर्वी बंगाल की राजधानी सोनारगाँव (ढाका के समीप) थी तथा पश्चिमी बंगाल की राजधानी सातगाँव (१३५२ ई० मे) थी। प्रान्तीय राजधानी पाण्डुवा बनाई गई। फीरोजशाह ने उसका अपने नाम से फीरोजाबाद नाम रखा। वह १४४६ ई० तक राज्य करता रहा और उसको अपनी राजधानी बनाया (लेनपूल की मेडिकल इण्डिया अण्डर मोहम्मडन रूल पेज १६४)" (नं० २) "पुण्ड्रदेश की तरह"। कनिंगहम की इशेन्ट जाग्राफी पृ० ५४९ 'पौण्ड्रवर्धन'। "कान्कजोल से यात्री ने गंगानदी पार की और उत्तर मे ६०० ली या १०० मील चलने पर पुं न-न-फ-तन ना के देश मे पहुँचा। इसी को स्टैनिलाज जूलियन पौण्ड्रवर्धन कहता है। विविषन डी सेन्ट मार्टिन इसे बर्दवान मानता है; किन्तु बर्दवान अन्तिम स्टेशन के दक्षिण में है तथा गंगा के एक ही किनारे पर है, जिसका संस्कृत नाम वर्धमान है। पिछले उदाहरणों की ही भाँति दिशा की असमानता गलती से हो गई है। बर्दवान को तथा ह्वेनसाँग द्वारा वर्णित स्थान को एक ही मान लेना बड़ा ही हानिकारक होगा। मैं पुद्न्नर को मानूँगा, जो कान्कजोल से १०० मील की दूरी पर है और गंगा के दूसरे तट पर स्थित है। उसकी स्थिति पूर्व की अपेक्षा पूर्व दक्षिण मे है। कश्मीर के इतिहास[१] के

१ राजतरंगिणी चतुर्थ ४२१ पृष्ठ। क्वार्ट ओरियन्ट मैगजीन तृतीय १८८ पृ०। पौण्ड्रदेश का वर्णन जो कि विल्सन (एच्० एम्०) ब्रह्माण्ड से लिया है, देश का मुख्य भाग गंगा के उत्तर मे था, जिसमे गौड़-पुत्र भी थे।

आधार पर पौण्ड्रवर्धन इसका वास्तविक नाम था, जो गौड़ के राजा जयंत की राजधानी थी। उसने ७८२ से ८१३ तक शासन किया। बोलचाल की भाषा में 'पौण्ड्रवर्धन' का छोटा रूप 'पोवधन' है। अब भी कुछ लोग इसको यही कहते हैं। ह्वेनसाँग के अनुसार इसका घेरा ४००० ली या ६६७ मील था, जो उस देश से मिलता है जिसके पश्चिम में महानदी थी। ब्रह्मपुत्र पूर्व मे तथा गंगा दक्षिण मे थी। ए० पी० इ० १३। २९० यह देश है और वरेन्द्री प्रान्त का नाम है। यहाँ बालग्राम है। उत्तरी बंगाल मे पुण्ड्रनगर इसकी राजधानी का नाम था। सिले० इ० पृ० ८२ में पुण्ड्रनगर का वर्णन एक शिलालेख में है, जो बंगाल के बोगरा जिले के महास्थान नामक नगर में मिला है। उसमें पुडनगलते = पुण्ड्र नगरत: ऐसा लिखा है। (टि० २ यहाँ यह लेख मिलने से महास्थान का पुराना नाम पुण्ड्रवर्धन समझा गया)। दानपत्रो में पुण्ड्रवर्धन भी नाम मिलता है। सिले० इ० ३४६ मे बंगाल के राजशाही जिले के पहाड़पुर मे मिला ताम्रपत्र छपा है, उसमे लिखा है कि संवत् १५९ मे पुण्ड्रवर्धन मे स्थित आयुक्तकों ने बटगोहाली पृष्ठिम-पोत्तक, गोषाटपुञ्जक, नित्वगोहाली मे भूमि दी। ए० पी० इ० १५।२९७ मे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (जागीर) के ब्राह्मणीमण्डल के विषमपुर ग्राम मे महाराज विग्रहपाल ने खोदुलदेव शर्मा को दण्डेश्वर सहित कुछ हिस्से दिये। यह दानपत्र बंगाल के दीनाजपुर जिले मे आमगाछी नामक गाँव में एक सड़क की मरम्मत होने के समय गाँव के समीप भूमि मे गड़े मिले। ए० पी० ग्रा० इ० २६।८ गौड़ाधिप बल्लालसेन ने पुण्ड्रवर्धन

भुक्ति के अन्तर्गत नाश्चश वृत्ति के कुटुम्बी चतुरक ग्राम को कविली चुञ्चाली गंडोली, देहिया खण्डक्षेत्र समेत, पद्मनाभदेव शर्मा को दिया। गाँव की पूर्वी सीमा खावोलापाण्डि, दक्षिण में जलदण्डि, पश्चिम मे सुजनवी और उत्तर में पित था। ए० इ० १५।१३० कुमारगुप्त के राज्य मे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति है। उसमें कोटिवर्ष विषय है। ए० इ० २०।६१ पुण्ड्रवर्धन मे स्थित आयुक्तक नाथदत्तशर्मा के दान की घोषणा की। ए० इ० १५।२८३ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति मे खादि विषय है। वहाँ घाससंभोग मे भाट्टवड्ग्राम है। उसमे मध्यदेश से निकले हुए उदयकरशर्मा को विजयसेन ने भूमि दी। यह दानपत्र बंगाल के चौबीसपरगने जिले के बर्रकपुरकण्ट के समीप छोटे से गाँव में मिले। ए० इ० १४।३२७ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति मे कोटिवर्ष विषय है, उसमें गोकलिका-मण्डल है। उसमे कुरटपल्लिका ग्राम को महीपालदेव ने कृष्णादित्यशर्मा को दिया। यह दानपत्र बगाल के दीनाजपुर जिले मे उजड़े हुए बानराजा के गढ़ बानगढ़ नामक स्थान मे खेत मे मिला। ए० पी० इ० ४।२४९ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति मे व्याघ्रतटी मण्डल के महन्ताप्रकाश विषय मे महाराज धर्मपालदेव ने महासामन्ताधिप नारायणवर्मा से स्थापित नुन्ननारायणदेव को क्रौञ्चश्वश्वभ्र नामादि चार गाँवों को दिया। यह बिहार के भागलपुर डिवीजन के मालूध जिले के खालिसपुरगाँव के खेत मे मिला। ए० इ० १५।१३० पुण्ड्रवर्धन भुक्ति मे कोटिवर्ष विषय है, उसमें कुमारगुप्तराज्य के संवत् १२४ मे डोगा से उत्तर-पश्चिम मे ब्राह्मण को भूमि दी गई। इण्डियन आन्टीक्वेरी १४।१६७ पुण्ड्रवर्धनदेश मे कोटिवर्ष विषय है। वहाँ विग्रहपालदेव ने

खोभूतशर्मा को एक गाँव दिया। गाँव का नाम कट गया है। इण्डियन आन्टीक्वेरी १२।२५१ मान्यखेट राजधानी मे स्थित सुवर्णवर्षवल्लभ नरेन्द्र ने रामपुरीसप्तशतांतर्गत लोहग्राम को पुण्ड्रवर्धन नगर से निकले हुए केशवदीक्षित के लिये दिया। इसी के साथ विचार मे लिखा है "यह शहर वही होगा जिसे ह्वेनसाँग ने पुन्नफटन्न कहा है। जुलियन साहब पौण्ड्रवर्धन कहते हैं। कनिगहम इसे पुदन या पोदन मानते हैं, जो कि बंगाल मे गंगा के तट पर है। बाद में इसको महास्थान मानते हैं, जो करतोया से ७ मील उत्तर है और उत्तरीबंगाल मे है।" ए० इ० २१।८५ पुण्ड्रनगर एक नगर है। ए० पी० ग्रा० इ० २६।७९ पुण्ड्रवर्धन से निकले हुए ब्राह्मण को देवनन्ददेव ने लम्बेवगाँव दिया। यह ताम्रपत्र उड़ीसा मे धेनकनलस्टेट के राजा से मिला। व्याख्यान मे लिखा है कि पुण्ड्रवर्धन उत्तरी-बंगाल मे है। सिले० इ० ३२४ बुधगुप्त के राज्य मे उपरिक ब्रह्मदत्त के शासन मे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति है। उसमे पलाशवृन्द-ग्राम, चण्डग्राम और वागिक ग्राम हैं। बंगाल के दीनाजपुर जिले के दामोदरपुर मे यह ताम्रपत्र मिला। इसी के व्याख्यान में पलाशवृन्दक नामक आजकल पलाशवारी नाम के तीन गाँव हैं। एक गाँव दीनाजपुर से करीब १० मील उत्तर पूर्व है और दानपत्र मिलने के स्थान दामोदरपुर से करीब १० मील के है और पुलिसस्टेशन फुल्लवारी से ८ मील है। यह फुल्लवारी ईस्टर्न रेलवे के उत्तरी सेक्शन में रेलवेस्टेशन भी है। यह बंगाल में दीनाजपुर जिले के बादशाही डिवीजन मे है। दूसरा गाँव सोलह मील उत्तर-पूर्व दीनाजपुर से है और दामोदरपुर से

करीब २० मील के है। तीसरा गाँव दीनाजपुर से करीब ९ मील उत्तर-पश्चिम है और दामोदरपुर से करीब ११ मील दक्षिण पूर्व है, जिसका आजकल का नाम पलाशदाँगा है। ए० इ० १५।१३३ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति है। सिले० इ० २८४।२८५ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति कुमारगुप्त के राज्य मे उपरिक चिरादत्त के शासन मे गुप्तसवत् १२४ में है। व्याख्यान मे लिखा है–"यह बोगरा जिले का महास्थान है। राजशाही दीनाजपुर प्रान्त मे उत्तरीबंगाल में यह भुक्ति मानी गई है। कुछ दिनो बाद बंगाल का उत्तरी-पश्चिमी भाग इसमे मिल गया।" सिले० इ० २८४, २८६ कोटिवर्ष विषय पुण्ड्रवर्धन भुक्ति मे है और कुमारगुप्त के राज्य मे है। व्याख्यान मे लिखा है—"आजकल यह बाणपुर है। बाणपुर=बाणनगर प्रसिद्ध बाणगढ़, देवीकोट वर्तमान दीनाजपुर जिले मे है।" डाक्टर दिनेशचन्द्र सर्कार शाक्तपीठाज् पृ० ९४ मे महास्थान को पुण्ड्रवर्धन मानते हैं।"

वस्तुत. ऐतरेय ब्राह्मण ३३।६ में विश्वामित्र की संतान में दस्युवों का भेद लिखा है और विश्वामित्र के शाप से इसका अत्यन्त नीच जाति हो जाना लिखा है। यह देश भी था, जो आजकल उत्तरीबगाल मे है और दीनाजपुर इत्यादि का प्रान्त इस नाम से प्रसिद्ध था। यह गौड़देश का नाम है, ऐसा राजतरंगिणी से प्रतीत होता है। पुराणादि मे इसका नाम इस प्रकार मिलता है। काशिकाकार ४।२।८१ इसको क्षत्रियसमान जनपदवाची मानते हैं। यहाँ के निवासियों को 'पुण्ड्र' नाम के क्षत्रिय मानते हैं, और देश भी 'पुण्ड्र' है तथा इसका राजा 'पौण्ड्र' कहा जाता है। पुराणो मे देशअर्थ मे 'पुण्ड्र' और 'पौण्ड्र' दोनों शब्द

मिलते हैं। पुराणों में इसका नाम पूर्वी देशों में आता है। कल्कि० ३।१४।२६ इसमे इसका पौण्ड्र नाम लिखा है। वाल्मीकि० कि० (नि०) ४०।२१ यह देश पूर्व दिशा मे है। महाभा० सभा० (म०) १५।१९।। यह देश है। महाभा० हरिवं० भवि० ४६।५६ यह देश है। महाभा० सभा० ७८।५२ यहाँ के राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे कालेयक, चन्दन, चाँदी, कपड़े, अगर, बिल्लोरी-पत्थर, हाँथीदाँत, जायफल, तक्कोल, लौंग और कपूर इत्यादि द्रव्यो को लेकर आये। महाभा० सभा० (नि०) ३१।२२ (चि०) ३०।२२ (म०) २६।३८।। यह देश पूर्व मे है। भीमसेन मोदा गिरिपति को जीतकर यहाँ गये। मोदागिरि मुगेर का नाम है। ब्रह्मा० म० उपो० ७४।१९७ तथा मत्स्य० ६३।७३ में पौण्ड्र देश भारत मे है। महाभा० हरि० ९२।१ मे इस देश के स्वामी पौण्ड्र की राजधानी को 'पौण्ड्रस्य नगरम्' लिखा है। लिंग० ५४।५७ यह देश है। नारदी० पू० ५६।४२ यह देश पूर्वमुख कूर्म के पादमण्डल मे है। पाठ 'पौण्ड्र' है। पद्म० सृ० ८२। १६५, विष्णु० २।३।१६ मे 'पौण्ड्र पाठ' है और यह जनपद भारत मे है। महाभा० सभा० (म०) ५२।१३६।। पुण्ड्र नामक राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे आया। महाभा० सभा० (म०) ६६।५९।। ये क्षत्रिय ब्राह्मणों को न देखने से शूद्र हो गये। महाभा० आर० (म०) ४३।२२ यह राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में आया। काशिका ७।३।१४ पुण्ड्रनगर प्राच्यदेश मे है। बृहत्संहिता १४।७ यह देश पूर्व मे है। विष्णुधर्मोत्तर० १।९।४ यह देश भारत में पूर्व दक्षिण मे है। बौधायनस्मृति १।३२ यह देश है। यहाँ जाकर स्तोम से यज्ञ करे या सर्वपृष्टि से यज्ञ करे।

मेदिनी० र द्वि यह देश है। गरुड़० पू० ६८।१७ पौण्ड्र देश है। यहाँ हीरे की खान में काले हीरे उत्पन्न होते हैं। बृहत्संहिता ७९।७ पौण्ड्र देश है। इसमें काला हीरा पैदा होता है। मनु० १०।४४ पौण्ड्रक ये क्षत्रिय धीरे-धीरे क्रियाओं के लोप होने और ब्राह्मणों को न देखने से शूद्र हो गये। कथासरित्० लावा० ४।२५४ पौण्ड्रवर्धननगर ताम्रलिप्ति (तमलुक) से पश्चिम में है। राजतरंगिणी ४।४२१ यह नगर गौड़राजाश्रित है और जयन्तराजा से रक्षित है। यहाँ कार्तिकेय का मंदिर है। ४।४२२ किसी नदी के तट पर है और गौड़देश की राजधानी है। कथासरि० शशांक० १९।२७ यह पुण्ड्र विषय देश है। यहाँ पुण्ड्रवर्धन नाम का नगर है। बृहत्कथामंजरी लावा० १।२९४ यहाँ पुण्ड्रवर्धन नगर है और पटना से दूर नहीं प्रतीत होता। क्योंकि देवदास ने रात्रि मे पुण्ड्रवर्धन मे खजाना सुना और रात्रि ही मे पटना पहुँच गया। (वास्तव मे यह लेख बृहत्कथामंजरीकार की दोनों नगरों की अनभिज्ञता सूचन कर रहा है)। दशकुमारचरित पृ० १६३ पुण्ड्र देश है। काव्यमी० ३।५ यह देश पूर्व मे है। व्याक० महाभा० 'विषयोदेशे' ४।२।५२ के कैयट मे यह पुण्ड्रो का निवासस्थान पुण्ड्र है। महाभा० सभा० (म०) ५२।१६ ये सैकड़ों क्षत्रिय युधिष्ठिर के यज्ञ मे धन लाये। वैजयन्तीकोष भू० दे० ३ में यह देश पूर्वी है और बरेन्द्री प्रान्त का नाम है। विश्वकोष रा० द्वि ६६ यह देश है। शाश्वतकोष ५४६ यह देश है। त्रिकाण्डशेषभूमि ७ यह देश है और बरेन्द्री प्रान्त का नाम है।

इन सब विचारो से यह देश उत्तरबंगाल में दीनाजपुर के

चारों ओर था, यह निश्चित होता है। परंच कहाँ से कहाँ तक था, यह निश्चय नहीं होता। पार्जीटर पुण्ड्र और पौण्ड्र दो भिन्न-भिन्न देश गङ्गा से दक्षिण उत्तर मानते हैं, जो प्रमाणाभाव से निस्सार है। नन्दलाल डे इसको और करूष को एक मानते हैं, वह उनका भ्रम है। क्योंकि करूषदेश बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड (नि०) २४।१७ (इ०) २७।२१ (ला०) २२।१६ में गंगा सरयू संगम से दक्षिण लिखा है। यह स्थान त्रिकाल मे भी पुण्ड्र में नहीं हो सकता। नाम के साम्य से पुंड्रवर्धन पाण्डुबा प्रतीत होता है। महास्थानगढ़ मे दानपत्र मिलने के कारण महास्थानगढ़ पुण्ड्रवर्धन नहीं हो सकता। क्योंकि दानपत्र दूसरे स्थान से भी वहाँ जा सकता है। कनिंगहम का पुदन या पोदन भी पुण्ड्रवर्धन नहीं हो सकता। क्योंकि वह किसी नदी के तट पर नहीं है। पुण्ड्रवर्धन मे नदी थी। यह राजतरंगिणी ४।४४४ से निश्चित है। तिरहुत को पुण्ड्र मे मानना विलसन का भ्रम है। क्योंकि वह विदेह है, यह निश्चित है। गंगा के दक्षिण पुण्ड्र को जो मानते हैं, उनके मत साररहित हैं। वीरभूम, संथाल परगने, पुरलिया, हजारीबाग इत्यादि भी पुण्ड्र में नहीं थे।

पुर—१. वे० इ० "यह एक शब्द ऋग्वेद[1] तथा बाद[2] के साहित्य में किला तथा मजबूत स्थान के लिये आता है। इस प्रकार की किलेबन्दी अवश्य ही बड़े पैमाने पर समय-समय पर होती रही होगी। जैसा कि एक को पृथ्वी=चौड़ा और उर्वी[3] = चौड़ा कहा गया है। अन्य स्थानो[4] पर पत्थर का एक किला बना हुआ (अश्ममयी) उल्लिखित है। कभी-कभी लोहे के

(आयसी) मजबूत स्थानों का भी प्रसंग[५] आया है। परन्तु केवल अलंकाररूप में आया है। एक किला गायों से भरा हुआ (गोमती) उल्लिखित[६] है। इसका तात्पर्य है कि ये जानवरों के रखने के प्रयोग में आते थे। शारदी किले स्पष्टरूप से दासों के प्रतीत होते है। इसका प्रसंग उस मौसम में आर्यों के आक्रमणों से बचने के लिए अथवा नदी की बाढ़ से बचने के लिए दासों द्वारा निवास किये गये किलों से हो सकता है। १०० दीवारों के किले शतभुंज भी वर्णित[७] हैं। मध्यकालीन समय की तरह सर्वदा सुरक्षित तथा सुसज्जित किला उन्हें मानना गलती होगी। यह संभवतः कड़ी जमीन की खाइयाँ (देही आक्रमणों से बचने के लिए स्थान) थीं। पिशल और गेल्डनर[८] सोचते हैं कि वहाँ पर पाटलिपुत्र की भाँति लकड़ी की दीवारों का नगर था, जो पाटलिपुत्र मेगस्थनीज[९] द्वारा वर्णित तथा पालीग्रन्थो[१०] में वर्णित है। यह सभव है, परन्तु इसके लिये सबूत मिलना बहुत कठिन है। नगर शब्द का बाद का आना कम महत्व का नहीं है। यह पाना बहुत ही कठिन है कि वैदिक समय मे नागरिक जीवन बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। एपिक मे हाप्किंस[११] के अनुसार नगर (शहर), ग्राम (गाँव) और घोष (पशु का फार्म) उल्लिखित हैं। वैदिक साहित्य मे ग्राम से अधिक वर्णन मिलना कठिन है। यद्यपि बाद के समय मे बहुत-कुछ सुधार हुआ है। किलों का घेरा संहिताओं और ब्राह्मणो[१२] मे उल्लिखित है। ऋग्वेद[१३] के अनुसार अग्नि का प्रयोग होता है* ।"

---

* वे० इ० के इस प्रकरण की टिप्पणियाँ, इस लेख मे आगे उनपर विचार करते समय यथाक्रम उल्लिखित हैं। पाठकगण उन्हे वहाँ देख ले।

२. पिशल और गेल्डनर का मत है कि पाटलिपुत्र की भाँति लकड़ी की दीवारोंवाले नगर शतभुजी होते थे।

३. हाप्किंस का मत है कि एपिक में नगर, ग्राम और घोषों का वर्णन मिलता है।

४. जिमर का मत है कि ग्रामों की सीमा के अन्दर ही पुर् बना हुआ होगा। शारदीपुर आर्यों के आक्रमणों तथा बाढ़ से सुरक्षित रहने के लिए था।

५. कीथ, मुइर और लुडविक कई दरवाजों के किले होते थे, यह मानते हैं।

वस्तुतः इस शब्द का अर्थ 'नगर' है। ऋग्० मे नगर का वर्णन 'पुर्' शब्द से बहुत स्थानो में मिलता है। लोक और वेद मे 'पुर्' शब्द 'नगर' के लिये ही आता है। किले के लिये कहीं नहीं आया। जो लोग पुर् शब्द का अर्थ किला करते हैं, वे बेपर की उड़ाते है। अनादिकाल से 'पुर्' शब्द 'नगर' अर्थ मे प्रयुक्त होता आया है और आज भी होता है। अब हम वेदिक इन्डेक्सकार की दी हुई टिप्पणियो मे दिये हुए प्रमाणों पर क्रमशः विचार कर रहे हैं।

वे० इ० "यह एक शब्द ··उर्वी = चौड़ा कहा गया है।" (टि० १) ऋ० ५३।७, ५८।८, १३१।४, १६६।८, ३। १५।४ तथा ४।२७।१ आदि। (टि० २) तैत्तिरीय ब्राह्मण १। ७।७।५, ऐतरेय ब्रा० १।२३ तथा २।११, शतपथ ब्रा० ३।४।४। ३, ६।३।३।२५ तथा ११।१।१।२।३, छान्दोग्योपनिषद् ८।५।३ आदि। (टि० ३) १८९।२।

विचार—(ऋग्वेद १।५३।७) यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया

है। अर्थ यह है:—"हे इन्द्र ! शत्रुओं के नाशक आप युद्ध में जाते हैं और आपने शत्रुओं के 'नगर' के साथ इस 'नगर' को भी बल से नष्ट किया है। और सहायक वज्र से दूर देश में स्थित नमुचि नामक मायावी असुर को मारा।" इसमे 'पुर्' शब्द का अर्थ 'नगर' है, 'किला' नहीं है। (ऋ० १।५८।८) यह अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे बल के पुत्र, अनुकूल दीप्तिवाले अग्ने ! स्तुति करनेवाले हम लोगों के लिये इस कर्म में अच्छे (विनाशरहित) सुखो को दीजिये, और हे अन्न के पुत्र अग्ने ! आज आपकी स्तुति करते हुए हम लोगों की आयसीभिः पूर्भिः = लोहे के समान दृढ़ 'पालनों के प्रकारो' से पाप की रक्षा कीजिये।" यहाँ 'पुर्' शब्द का अर्थ 'पालन का प्रकार' है, 'किला' नहीं। (ऋ० १।१३१।४) यह मंत्र इन्द्र-स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे इन्द्र ! जो यजमान आपके वीर्य के माहात्म्य को जानते हैं, वे आपकी ही पूजा करते हैं। हे इन्द्र ! जिस लिए आपने ससहाय वहाँ के निवासियों को पीड़ा देते हुए शत्रुओं की शारदीपुरियों का नाश किया है। हे इन्द्र ! मरणधर्मा, यज्ञ न करनेवाले यज्ञविघाती राक्षसों का आपने शासन किया है। हे बल के पालक इन्द्र ! आपने बहुत बड़ी पृथ्वी तथा इन जलो को उनसे बलपूर्वक छीना है।" शारदीपुरी वह कही जाती है जो वर्ष भर सुख दे; अर्थात् प्रत्येक ऋतु में सुख देनेवाली हो। शरत्काल का किला अर्थ करना एकदम अनर्गल है। (ऋ० १।१६६।८) यह मरुतों की स्तुति में आता है। अर्थ यह है:—"हे मरुतो ! आप असंख्यात भोगो से युक्त पालनो के प्रकारो से अथवा शत्रुओं के नगरों से

उसकी रक्षा करें। किसकी ? जिस जन की तिरस्कार के कारण कुटिल स्वभाववाले पापों से आप रक्षा करते हैं। हे बड़े तेजवाले, बलवाले, नाना प्रकार की स्तुतिवाले ! आप पुत्र-पौत्र आदि पदार्थ देते हुए यजमान की रक्षा करें।" (ऋ० १।१५।४) यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने ! आप शत्रुओं से पराजित और मनोरथों की वर्षा करनेवाले है। इस प्रकार के आप सम्पूर्ण शत्रुओं की 'नगरियाँ' और उनके उत्तम धनों को अच्छी तरह अपनी ज्वालाओ से जला दें। ज्योतिष्टोम-यज्ञ के नेता = हविर्वहन और देवताह्वान आदि क्रियाओ के निर्वाहक हो।" यहाँ पर 'पुर्' शब्द का अर्थ 'नगरियाँ' हैं, 'किला' नहीं है। (ऋ० ४।२७।१) यह मत्र वामदेव ऋषि ने गर्भ मे स्थित हो कहा है। अर्थ यह है:-"गर्भ में ही विद्यमान् मैंने इन इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओ के जन्मो को आनुपूर्वी से जान लिया; अर्थात् परमात्मा के प्रकाश से सभी देवता उत्पन्न हुए, यह जाना। इससे पहले सैकड़ों आयसी = अयोमय अभेद्य पुर् = शरीरो ने मेरी रक्षा की; अर्थात् जिस प्रकार शरीर से भिन्न आत्मा को मै न जानूँ, उस प्रकार रक्षा की। इस समय श्येन के समान स्थित हो मैं वेग से निकला; अर्थात् अनावरण आत्मा को जानता हुआ शरीर से निकला।" इस मंत्र मे 'आयसीः पुर.' का अर्थ 'अभेद्य शरीर' है, 'किला' अर्थ नहीं है। ऐतरेय ब्रा० अ० ४ ख० ६ मे असुर और देवताओं के नगरों का वर्णन है और 'महापुर' तक का भी वर्णन है, जिसका अर्थ 'बहुत बड़ा शहर' होता है। शतपथ ब्रा० ३।४।४।३ में भी देवता और असुरो के नगरो का वर्णन है। ६।३।३।२५

में भी 'पुर्' शब्द का अर्थ 'नगर' है। ११।१।१।२,३ में भी 'पुर्' शब्द का अर्थ 'नगर' है, किला नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् ८।५।३ में 'ब्रह्मपुर' शब्द आया है और उसका अर्थ 'ब्रह्म का नगर' है, किला नहीं। ऋग्० १।१८९।२ मे अग्नि से प्रार्थना है :—"हे स्तुत्य अग्ने ! आप अनुष्ठान करनेवाले हम लोगो को अत्यन्त पूजित यज्ञसाधनों द्वारा दुर्ग=दुःख से पार करने योग्य पापों से पार करें और हमको पृथ्वी=बहुत बड़ी पूः=नगरी को भी दें और उर्वी=भूमि भी बहुला=बहुत बड़ी हो, और संतान के लिये सुख देनेवाले हो। रोगो को और भयों को शान्त करें।" इस मंत्र मे पृथ्वी पुर का विशेषण है तथा उर्वी और पुर से कोई संबन्ध नहीं है। 'उर्वी' का अर्थ 'भूमि' है और 'पूः' का अर्थ 'नगर' है, किला नहीं। अग्नि से नगर और भूमि की प्रार्थना है।

वे० इ०—"अन्य स्थानो पर पत्थर का एक किला शतभुजी भी वर्णित है।" (टि० ४) ऋग्० ४।३०।२० सभवत: आमा से सूखी ईंट (कच्ची अथवा बिना पकी) २।३५।६ में आती है। (टि०५) ऋग्वेद १।५८।८ तथा २।२०।८ तथा ४।२७।१ तथा ७।३।७ तथा १५।४ तथा ९५।१ तथा १०।१०१।८, मुइर की संस्कृतटेक्स्ट २,२।३७८ से प्रारम्भ भी देखिये। (टि० ६) अथर्ववेद ८।६।२३।(टि० ७) ऋग० १।१६६।८,७।१५।१४।

विचार-(ऋ० ४।३०।२०) यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:-"इन्द्र ने हवि देनेवाले यजमान दिवोदास के लिये अश्मन्मयी=पाषाणो से बनाये गये सौ नगरो को नष्टकर दिया।" इस मंत्र मे शंबर का नाम नहीं है। तब भी अन्यत्र

इन्द्र द्वारा शंबर के १०० नगरों का नाश मिलने से ये शंबर के नगर माने जायँगे। ये नगर जयपुर इत्यादि के समान पत्थर के मकानों से युक्त थे और इन नगरों का प्राकार नगरों की समृद्धि के अनुसार होता था। कहीं-कहीं ईंट का होता था तथा कहीं-कहीं पत्थर का भी होता था। इससे पत्थर के प्राकारवाले नगर भी अश्मन्मयी माने जायँगे। इस मंत्र में अलंकृतरूप से वर्णन नहीं है। वे० इ० कार के कथनानुसार अलंकृतरूप से इसका वर्णन होना एकदम असंभव है। ऋग्० २।३५।६ मे 'आमासुपूर्षु' का अर्थ 'कच्ची ईंट या सूखी ईंट का किला' नहीं है। यहाँ पर 'बिना पका हुआ जल' अर्थ है। यह मंत्र अपानपात् की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"इस अपान-पात् संज्ञक देव में घोड़े काजन्म होता। इसी मे सम्पूर्ण जगत् का जन्म होता है। इस प्रकार के आप हिंसक और द्रोह करनेवाले के सम्पर्क से स्तुति करनेवाले हम लोगो की रक्षा करें। अपरिपक्व जलों के ऊपर स्थित अप्रमृष्य=जिसका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, ऐसे देव को अदाता पुरुष प्राप्त नहीं होते। और मायावी राक्षस भी प्राप्त नहीं होते।" १।५८।८ का अर्थ हम ऊपर (टि० १ के प्रकरण मे) लिख चुके हैं। यहाँ पर 'पुर्' शब्द का अर्थ 'पालन' है, 'किला' नहीं है। (ऋ० २।२०।८) यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है :—देवनशील स्तुति करनेवालों से उदकलाभ को निमित्त होने पर उस इन्द्र के लिये बलवर्धन हवि निरंतर दिया जाता है। स्तूयमान् इंद्र जिस समय दस्युवध के लिये वज्र को धारण करता है, उस वज्र से दस्युओं को मारकर उनके आयसी नगरों

को इन्द्र नष्ट करता है।" यहाँ पर भी अलंकृतरूप में प्रयोग नहीं है और 'पुर्' का अर्थ 'नगर' है, 'किला' नहीं। 'आयसी' का अर्थ 'लोहे के बने हुए के समान दृढ़ नगर या लोहे से बना हुआ नगर' है। पुराणो में त्रिपुरासुर के नगर का लोहे से बने हुए नगर के रूप मे वर्णन है। (४।२७।१) का अर्थ भी पहली टि० के प्रकरण में लिखा जा चुका है। उसमे भी 'पुर्' का अर्थ 'किला' नहीं है; किन्तु 'शरीर रूपी नगर' है। (ऋ० ७।३।७) यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है :— "हे अग्ने ! जिस प्रकार हम घृत-सहित हव्यो से आपकी परिचर्या करें, उसी प्रकार आप भा अपरिमित तेजों तथा आयसी सोने की बनी 'नगरियों' से हम लोगों की रक्षा करे।" यहाँ पर 'पुर्' शब्द 'नगर' है। (ऋ० ७।९५।१) यह मत्र सरस्वती की स्तुति में आया है। अर्थ यह है—"यह दृश्यमान् नदीरूपा सरस्वती लोहे से बने हुए नगरो के समान जल को धारण करनेवाली धारक जल से दौड़ती है। स्यन्दनशीला वह सरस्वती और सब नदियों को अपनी महिमा से बहुत दबाती हुई सड़क के समान विस्तीर्ण होकर जाती है। अथवा जिस प्रकार रथी अपने मार्ग मे स्थित वस्तु को चूर्ण करता हुआ जाता है, उसी प्रकार अपने वेग से मार्ग में स्थित वस्तुओ को पीसती हुई जाती है।" इसमे भी 'पुर्' शब्द 'नगर' अर्थ में है, 'किला' अर्थ मे नहीं है। (ऋ० १०।१०१।८ में वैश्वदेव पक्ष में) "शत्रुओ के प्राणों को पीनेवाले हमारे योद्धाओ के कवचो को बहुत और मोटे, जिस प्रकार हो, करो और पुरीः आयसीः = नगरो को अन्यो से अधृष्य (नुकसान न पहुँचाया जा सकने योग्य) करो।" इसमे भी 'पुर्' का अर्थ

'नगर' है, 'किला' नहीं। अथर्व० ८।६।२३ मे पुर् शब्द तक नहीं है। इसमें गायों से युक्त पुर्=किले का वर्णन नहीं है और न गोमतीशब्द ही आया है। (ऋ० ७।१५।१४) यह मंत्र अग्नि-स्तुति मे आया है। अर्थ यह है :—"हे अग्ने ! औरो से तिरस्कार के अयोग्य आप हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिये बहुत बड़ी लोहे से बनी शतभुजी अत्यन्त विस्तृत सौगुनी पुरो हो जायँ। जिस प्रकार लोहे से बनी पुरी शत्रु से रक्षा करती है, उसी प्रकार आप हमारी राक्षसो से रक्षा करें।" पहले ७।१५।४ जो वेदिक इन्डेक्स मे लिखा है, वह ७।१५।१४ प्रतीत होता है। यहाँ पर 'पुर्' शब्द का अर्थ 'नगरी' या 'दीवाल' इत्यादि भी संभव है। 'शतभुजी' का अर्थ 'सैकड़ों रक्षा के प्रकारवाली' है। 'शारदी' का अर्थ 'वर्ष भर सुख देनेवाली' है, 'शरत्काल के किले' अर्थ नहीं है। किले मे सौ दीवारें बनती थीं, यह बात नहीं है। 'शतभुजी' मे सौ भुजा का तात्पर्य 'जिनमें सैकड़ो बचाने के उपायो का संभव हो' हो सकता है। (ऋग्०१।७३।४) यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है :—"हे अग्ने ! पूर्वोक्त गुणो से युक्त आपको यज्ञ के नेता यजमान लोग ध्रुवासु क्षितिषु=चलनरहित भूमियो मे; अर्थात् निरुपद्रव ग्रामो मे अपने घर मे निरंतर समिधो से प्रज्वलित करके सेवा करते हैं।" इसमे 'यजमान लोग निरुपद्रव ग्रामों के घरों मे नित्य अग्निस्थापनकर हवन करते हैं' से 'सौ दीवारोवाले किले' की क्या तुलना हुई ?

वे० इ० "मध्यकालीन समय की तरह आक्रमण से बचने के लिये स्थान थे।"

विचार—वस्तुतः पहले तो 'पुर्' शब्द का अर्थ 'किला' ही नहीं

है। फिर भी जब नगरो का वर्णन 'शारदीरूप' मे आता है जिसका अर्थ 'वर्ष भर सुख देनेवाला' होता है, ऐसे नगरों में प्राकार उनकी रक्षा के लिये नहीं थे, इसे कौन बुद्धिमान् सोच सकता है? जो नगर में रहते हैं, वे क्या अपनी रक्षा कड़ी जमीन मे खाइयाँ खोदकर करते हैं? यह सभी लोग जानते हैं कि अब से २०० वर्ष पहले गाँव गाँव में प्राकार थे।

वे० इ०—"पिशल और गेल्डनर सोचते हैं...अग्नि का प्रयोग होता है।"

वस्तुतः पाटलिपुत्र का लकड़ी का घेरा कहाँ तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। पुराण, काव्य आदि में कहीं भी पाटलिपुत्र के काठ के घेरे का वर्णन नहीं है। यदि था, तो वह काठ का क्यों था—इसका हेतु आज तक किसी ने प्रकट नहीं किया। लाखो वर्ष बाद बसे पाटलिपुत्र का घेरा, जो एक राज्यविशेष के समय में हुआ, ऋग्वेद मे वर्णित नगरों के प्राकार की पुष्टि नहीं कर सकता। परच यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो 'आयसी' और 'अश्मन्मयी' दोनों शब्द नगर के घेरों को पत्थर से बनाया या लोहे से बनाया अथवा उसके समान पुष्ट बतला रहे है। और नगरो को पुर् स्पष्ट कर रहे हैं। ग्राम, पुर, महापुर इत्यादि शब्द भी संहिताओ और ब्राह्मणो मे मिल रहे हैं। मान्धाता का राज्य समस्त संसार में था ('मन्धातृ-क्षेत्र' देखो)। समस्त पृथ्वी के विजेता राजाओं का वर्णन ब्राह्मणग्रन्थ कर रहे हैं। अथर्व० मे 'अयोध्या पू०' शब्द भी मिल रहा है। राजधानी राजाओं के रहने का स्थान थी, यह सभी जानते है। सैकड़ो नगरों का विजय सुदास् के लिये इन्द्र

द्वारा किया गया, यह ऋग्० मे वर्णन है। तब भी 'गाँव से अधिक वैदिक साहित्य मे सम्भव नहीं है' यह राग अलापा जाता है और खुदाई मे मिले नगरो को 'आर्यों से पूर्व बनाना' सिद्ध करने की लोग प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं और उनकी सिद्धि के लिये 'पुर्' शब्द का अर्थ 'किला' बना रहे हैं। यह मनमनी की पराकाष्ठा है। 'घोष' का अर्थ 'अहीरों का गाँव' होता है, पशुओं का फार्म मात्र नहीं।

वे० इ० कार का कथन है किलों का घेरा संहिताओं और ब्राह्मणो में उल्लिखित है।" वस्तुतः ऐतरेय ब्राह्मण अ० ४ ख० ६ में प्राकार से वेष्टित (चहारदीवारी से घिरे हुए) पुरों का वर्णन है। वहाँ 'नगरो का घेरा' अर्थ है, 'किलों का घेरा' अर्थ नहीं। और महापुर का भी वर्णन है। क्या 'महापुर' बड़े शहर नहीं हो सकते ? शतपथ ब्रा० ३।४।४।३ मे पुरो का वर्णन है। 'अयस्मयी' शब्द 'लोहे का घेरा' बतलाता है। गोपथ ब्रा० २।२।७, तैत्तरीय सहिता ६।२।३।१ और मैत्रायणी सं० ३।८।१ में तीन नगरों का वर्णन है।

वे० इ० कार कहते हैं "ऋग्वेद के अनुसार अग्नि का प्रयोग होता है।" इसकी टिप्पणी १३ मे लिखते हैं "ऋग्वेद ७।५।३, संभवतः कुछ दशाओं में वह स्थान काटो की झाड़ी अथवा फूसों के अलावा और कुछ नहीं है।" वस्तुतः यह मंत्र अग्नि-स्तुति में आया है। अर्थ यह है—"हे वैश्वानर ! जब पूरु राजा के लिये दीप्यमान् होकर आपने शत्रुओं के 'नगरों' को फाड़ते हुए जलाया तब आपके भय से काले वर्ण की प्रजायें परस्पर फूटी हुई, भोजन और धनो को छोड़कर आईं।" इसमे स्पष्ट

अग्नि द्वारा पूरु के शत्रुओं के 'नगरों' का जलाने का वर्णन है। काटों की झाड़ियाँ और फूस का संभव नहीं। यहाँ पर नगर-स्थित वस्तुओ को जलाने का तात्पर्य है।

जिमर का यह कथन "पुर ग्रामों की सीमा के अन्दर ही बना हुआ होगा। शारदो पुर् केवल बाढ़ से सुरक्षित रहने को था"--इसे वे० इ० कार स्वयं यह कहते हुए कि 'निश्चितरूप से ठीक कहा नहीं जा सकता', खण्डन कर रहे हैं।

वस्तुतः जिमर का यह कहना कि 'पुर ग्रामों की सीमा के अन्दर ही बना होगा' एकदम उपहास्य है। क्या नगर गाँव की सीमा के अन्दर बसते हैं? जिमर का शारदीपुर से बाढ़ की रक्षा कहना तो नितांत असंगत ही है। बाढ़ वर्षा मे आती है, इससे बाढ़ से बचानेवाले 'वार्षिकपुर' कहे जा सकते हैं। शरद् में वर्षा के अभाव से बाढ़ तो आती ही नहीं। ऐसी अवस्था में बाढ़ से बचानेवाले से क्या प्रयोजन? जो 'शारदीपुर' केवल बाढ़ से सुरक्षित रहने के लिये था, वह 'वार्पिकपुर' हो सकता था; न कि 'शारदी'।

वे० इ० कार का ऋग्० १।१३१।४, १।१७४।२ तथा ६।२०।१० से विशेषतः उन किलो का पुरूज् के सिधुनदी के दोनों तरफ रहने के साथ आये हुए वर्णन को उन किलो से सम्बद्ध करना उचित नहीं। यह मानना कि जंगली जातियो पर पुरुकुत्स का आक्रमण उस किले के विरुद्ध हुआ था, जिनमे वे नदी की बाढ़ से अपने को बचाते थे, उचित नहीं।

वस्तुतः ऋ० १।१३१।४ का अर्थ हम टिप्पणी १ के खंडन मे लिख चुके है। ऋ० १।१७४।२ का अर्थ यह है:—'हे इन्द्र!

वृत्र-सम्बन्धी सात नगरों के भेदन के समय में आपने उनकी प्रजाओं को ऐसा दबाया कि वे मृध्रवाक् = मधुरभाषी होकर ही सुखी हुईं। कब ? जब कि असुरप्रजाओं ने अत्यन्त भयंकर शब्द किया। कब किया ? जब कि आपने शारदी वर्षभर सुख देनेवाले शारदी सात नगरों को विदीर्ण किया, और हे निन्दारहित इन्द्र ! आपने उनके तालाबों को भी भंग किया जब कि पुरुकुत्स के लिये आपने वृत्र को मारा।' (ऋ० ६।२०।१०) यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले हमलोग आपके रक्षण से आपसे दिये गये नवीनतर धन को प्राप्त हों। मनुष्य लोग इस स्तोत्र से युक्त यज्ञो से आपकी स्तुति करते है। जिस लिये दासी = दाससम्बन्धिनी प्रजाओं का नाश करते हुए आपने पुरुकुत्स के लिए धन दिया और शारदी सात नगरियों को वज्र से विदारण किया।' इनमे कहीं भी पुरूज् के सिंधुनदी के दोनो तरफ रहने का वर्णन नहीं है और जंगली जाति पर पुरुकुत्स का आक्रमण भी नहीं है। जिमर का कथन गढ़न्तमात्र है। वे० इ० कार भी जिमर के इस कथन का स्पष्ट खण्डन कर रहे हैं।

प्रो० डा० आ० वैरिडेल कीथ ने एडिनबरा यूनिवर्सिटी में 'भारतीय अनुशीलन' पृष्ठ ५९ मे जो लेख दिया है; उसपर विचार:—

कीथ साहब का कथन है:—"(न० १) मोहनजोदड़ो की सभ्यता नागरिक थी। ऋग्वेदिक ऋचाओं के समय की सभ्यता ग्राम्य है। उनमे नागरिक जीवन की अभिज्ञता का प्रमाण नहीं। दस्युओं के जिन पुरों का वर्णन आता है. वे भी

मोहनजोदड़ो ऐसे बड़े-बड़े नगर थे—इसकी कोई सम्भावना नहीं। यदि प्राग्वैदिक या वैदिक आर्य्य ही मोहनजोदड़ो के निर्माता होते तो पीछे से वैसे बड़े-बड़े नगर बनाना क्यों भूल गये ? (नं० २) ऋग्वेद में सोने का तो काफी वर्णन है; पर चाँदी का नहीं। इधर मोहनजोदड़ो में सोने की अपेक्षा चाँदी का चलन ज्यादा दीखता है। (नं० ३) ऋग्वेद में कवच और शिरस्त्राण का जिक्र है, गदा का नहीं। पर मोहनजोदड़ो में कवच और शिरस्त्राण दोनों अज्ञात हैं। गदा का प्रयाग बहुत ज्ञात होता है। पीछे अथर्व० और यजु० मे गदा का निर्देश आता है। (नं० ४) सिंधु लोग मछली खाते थे, पर वैदिक आर्यों के आमिषभोजी होते हुए भी ऋग्वेद मे मछली का खाद्य पदार्थ के रूप मे निर्देश नहीं है। अतः या तो वे तब तक ऐसे देश मे थे, जहाँ मछली दुर्लभ थी या मछली खाना निषिद्ध था। (नं० ५) मोहनजोदड़ो मे घोड़े का अभाव है। (नं ६) शाक्त धर्म की प्रधानता एवं स्त्रीदेवता की मुख्य तौर से पूजा मूर्तिपूजा इत्यादि ऋग्वेद में अविहित धार्मिक प्रथाओं की प्रमुखता। सिंधु लोग जिस शिव की पूजा करते थे, वह ऋग्वैदिक रुद्र से भिन्न है। उसकी समता यजुर्वेदीय तथा पिछले शिव से है। जो रुद्र और अनार्य भावो के मेल से बना है। (नं० ७) गाय ऋग्० मे प्रधान है। मोहनजोदड़ो में गाय की जगह बैल की अधिक महिमा जान पड़ती है।

विचार—यही कीथ साहब वेदिक इन्डेक्स में पुर् शब्द का अर्थ 'किला' मान रहे हैं और मोहनजोदड़ो के वर्णन मे 'पुर्' का अर्थ 'नगर' मान रहे हैं। जब ऊपर लिखे प्रमाण से पुर्

शब्द ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर मिलता ह और तैत्तिरीय संहिता ६।२।३।१, काठकसं० २४।१०, मैत्रायणी सं० ३।८।१, ऐतरेय ब्रा० १।२३।२ तथा गोपथ ब्रा० २।२।७ में 'महापुर' शब्द मिलता है और 'गाँव' अर्थ में ऋग्० १।४४।१०, १।११४।१, २।१२।७ इत्यादि, बाजसनेयी सं० ३।४५ तथा ११।१७ और ऐतरेय ब्रा० ३३।३ में 'ग्राम' शब्द मिलता है तब 'ग्राम' और 'नगर' भिन्न थे। इनमे कुछ अन्तर अवश्य होगा। आजकल जिस प्रकार गाँव से और कस्बे से शहर भिन्न होता है उसी प्रकार ग्राम, पुर और महापुर मे अवश्य अन्तर होगा। जब पुर और महापुर थे तो उनमे सभ्यता ग्राम्य होगी या नागरिक, इसे एक साधारण बुद्धिवाला भी समझ सकता है। परंच यह विद्वान् मोहनजोदड़ो को आर्यों के आने से पहले का सिद्ध करने मे व्यग्रतावश 'पुर्' का अर्थ 'नगर' मान बैठे। यह ध्यान न रहा कि वेदिक इन्डेक्स में हम 'पुर्' का अर्थ 'किला' करते हैं। कीथ का कथन "दस्युओ के नगर मोहनजोदड़ो के से थे, इसकी संभावना नहीं।" कीथ का यह कथन विचित्र है। यदि वे मोहनजोदड़ो ऐसे बड़े नहीं थे, तो वे नगर नहीं थे और न नागरिक सभ्यता उनमे थी। कलकत्ता के बराबर लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर इत्यादि यदि बड़े नहीं हैं तो क्या नगर नहीं है? और उनकी सभ्यता भी क्या नागरिक नहीं है? क्या कोई बुद्धिमान् इसे मान सकता है? ऋग्वेद मे मनु, उरूरवा, नहुष, ययाति, मान्धाता, सुदास् इत्यादि राजाओ का वर्णन है। ऐतरेय ब्रा० ३९।८।९ मे ऐन्द्राभिषेक की श्रेष्ठता दिखलाते हुए कई राजाओ का समस्त पृथ्वी का विजय दिखलाया है। क्या

उनकी राजधानियाँ नगर नहीं थीं ? क्या वे ग्राम्य थे ? क्या उनकी सभ्यता ग्राम्य थी ? शतपथ ब्रा० में जिन राजाओं के अश्वमेधों का वर्णन है, वे राजा क्या ग्रामो मे रहते थे ? अथर्व० १०।२।३१ मे 'अयोध्या पूः' लिखा है। क्या अयोध्यापुरी 'ग्राम' थी और उसके सभ्य राजाओ की सभ्यता 'ग्राम्य' थी ? पुराणों मे अयोध्या, लंका, द्वारका, हस्तिनापुर, काशी, इन्द्रप्रस्थ इत्यादि का वर्णन है। क्या वे ग्राम थे ? क्या युधिष्ठिर के सभा-भवन के समान आज तक कोई सभ्यदेश कोई सभाभवन बना सका है ? क्या मेगस्थनीज के समय पटना नगर नहीं था ? क्या उसके काठ के प्राकार तथा खाईं का वर्णन आप लोग सत्य नहीं मानते ? फिर भी आर्य लोग बाद मे बड़े बड़े नगर बनाना भूल क्यों गये ?

सांकाश्यनगर जो राजा संकाश द्वारा निर्मित किया गया था, जिसके वर्णन मे महर्षि वाल्मीकि ने बाल० (नि०) ७०।२-३ 'वार्या फलक पर्यन्ताम्' नगरी का विशेषण दिया है; अर्थात् जिस नगरी मे पानी मे चारों ओर से तख्ते पड़े हुए हैं, यह लिखा है। वहाँ आज भी भूमि के नीचे पानी की सतह पर जो लकड़ी के तख्ते मिलते हैं और बढ़ई द्वारा उनको काटने पर पानी का जो स्रोत निकलता है, वह क्या कम वैचित्र्य है ? आर्यों की कारीगरी का वह नमूना है। यू० पी० के फर्रुखाबाद शहर से जो रेलवेलाइन शिकोहाबाद को जाती है, उसपर स्थित मोटा नामक स्टेशन से ३,४ कोश दूर संकिशा नाम का एक प्रसिद्ध स्थान है और वह बौद्धों का तीर्थस्थान भी है। ऋग्वेद मे शारदीपुरों का वर्णन है। जो नगर वर्ष भर; अर्थात्

सब ऋतुओं मे सुखद होते हैं—वे शारदी कहे जाते हैं।

(नं० २) ऋग्० १०।१०७।७ मे चाँदी का वर्णन है। बौधायन श्रौ० सू० ९।११ मे सुवर्ण और चाँदी का 'चन्द्र' नाम लिखा है। ऋग्० १०।१०७।७ मे दक्षिणा का वर्णन है। मन्त्रार्थ यह है :—"दक्षिणा देनेवाले को घोड़ा देती है, गाय देती है, चाँदी देती है, सोना देती है और अन्न देती है। इसलिये हमारी आत्मा (मन) दक्षिणा को कवच जानती हुई ऋत्विजों को दक्षिणा देती है। जिस प्रकार कवच संग्राम मे योद्धा की रक्षा करता है, उसी प्रकार देनेवाले की विपत्ति में दक्षिणा रक्षा करती है।" ऋग्० ८।२५।२२ मे 'रजत' शब्द 'चाँदी' के अर्थ मे आया है, मन्त्रार्थ 'हर्याण' मे है। जब वेदो मे चाँदी का वर्णन स्पष्ट है, तब चाँदी के बल पर मोहनजोदड़ो को आर्यनगर होने से आप अलग नहीं कर सकते। वस्तुतः ऋग्वेद का वर्णन सोने-चाँदी के वर्णन के लिये नहीं है। उसमे तो देवताओं की स्तुतियाँ और यज्ञों का वर्णन है। उसमे दूसरा कुछ झलक जाय, यह दूसरी बात है। चाँदी का वर्णन नहीं तो चाँदी के अज्ञान का आपको ज्ञान हो गया। चाँदी के वर्णन से क्या सम्बन्ध है, जो उसका वर्णन किया जाय? उसमे प्रासंगिक चाँदी का वर्णन है। इससे चाँदी का वर्णन नहीं कहना एकदम संसार को धोखा देना है।

(नं० ३) "ऋग्वेद मे गदा का वर्णन नहीं है…।" वस्तुतः इनके सिद्धान्त से ऋग्वेद के समय गदा का ज्ञान आर्यों को नहीं था तथा यजुर्वेद और अथर्ववेद के बनने के समय था। मोहन-जोदड़ो मे गदा का बहुत प्रयोग है तो मोहनजोदड़ो अथर्व०

और यजुर्वेद के बनने के समय का है, यह निश्चित होता है। और मोहनजोदड़ो ऋग्वेद के बाद बसा, यह निश्चित होता है।

(नं० ४) "ऋग्वेद मे मछली का खाद्य पदार्थ...।" वस्तुतः योरोपियन विद्वान् मुक्तकण्ठ से ऋग्वेद के बनने का समय और आर्यों के भारत मे आने का समय एक ही मानते हैं और उनका निवासस्थान ईरान मानते हैं। मनुष्य बिना पानी के जीवित नहीं रहता, इससे जहाँ पानी होगा वहाँ आर्य लोग रहते थे। जहाँ पानी हो और मछली न हो, ऐसा कौन सा प्रान्त संसार मे है? जब ईरान है, तो क्या ईरान मे किसी जलाशय का न होना संभव है? जलाशय हो और उसमें मछलियाँ न हो, क्या ऐसा कभी हो सकता है? फिर ईरान से वे लोग पंजाब तक आये। मार्ग मे जो नदियाँ मिलीं, उस समय तक उनमें मछ-लियाँ नहीं थीं—ऐसा कोई बुद्धिमान् क्या मान सकता है? ऋग्० मे सरयू, गंगा, यमुना, सिंधु, यव्यावती, असिक्नी, वितस्ता, शुतुद्रि इत्यादि नदियो के नाम तथा चारो समुद्रो के नाम आये हैं, जहाँ कि आर्य लोग बस रहे थे। क्या उस समय तक उन नदियों और समुद्रों में मछलियाँ नहीं थीं? ऋग्० मे तो मछली के नाम पर 'मत्स्यदेश' का ही वर्णन है। क्या ऋग्० मे कोई ऐसा प्रकरण है जहाँ आर्यो के भोजन का वर्णन हो और उसमे मछली का खाद्य पदार्थ के रूप मे निर्देश नहीं है? सिंधु लोग पहले मछली खाते थे, इसमे किसी प्रत्यक्षदर्शी मनुष्य को आप प्रमाण दे सकते है? आप तो थे नहीं, इससे आपने देखा नहीं और किसी आप्त ने लिखा भी नहीं, तब आपने कैसे जाना? यदि आप कहें कि इस समय खाते हैं तो पहले भी खाते होगे और

वे सिंधु के निवासी वही हैं जिनके पूर्वजों ने मोहनजोदड़ो को बसाया—इसमें आपके पास क्या प्रमाण है ? आपके सिद्धान्तानुसार तो वे दूसरे ही थे और आज वहाँ आर्य बस रहें हैं। ये आर्य लोग मछली खाते हैं तो इनके पूर्वज भी मछली खाते थे, इस कल्पना से आप क्यों भाग रहे हैं ? अतः कीथ की यह कल्पना भी निस्सार है।

(नं० ५) "मोहनजोदड़ो मे घोड़े का भी अभाव है।" इससे यह आर्यों से पहले का है, इसका क्या मतलब है ? क्या घोड़े की हड्डियाँ नहीं मिलीं ? अथवा तसबीर या मूर्ति नहीं मिली ? कितने जानवरो के वहाँ रहने का प्रमाण आपको मिलता है ? कुत्ते, बिल्ली, हाँथी, ऊँट, खच्चर गदहे, सुअर, छिपकली, गिरगिट, मक्खी, भौंरे, मधुमक्खी इत्यादि के होने में आपको क्या प्रमाण मिला, जो उनकी सत्ता आपने मान ली। सिंधु का घोड़ा 'सैन्धव' नाम से प्रसिद्ध था, और जब यह नगर सिंधु मे है तो इसमें घोड़ा नहीं होता था, यह माना नहीं जा सकता। लखनऊयूनीवर्सिटी के हिस्ट्री के सुप्रसिद्ध विद्वान् चरणदास चटर्जी का कहना है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो मे घोड़े होने के बहुत से प्रमाण मिल रहे हैं। बिन्टरनीज का कहना है कि अथर्व० में व्याघ्र का मिलना बंगाल मे अथर्ववेद बना कह रहा है, क्योंकि वहीं रहकर आर्यों ने व्याघ्र को देखा। सिद्धान्तानुसार मोहनजोदड़ो मे व्याघ्र की प्रतिमा मिलने से आपके मत मे मोहनजोदड़ो तब बसा, जब आर्य लोग बंगाल में पहुँच चुके थे। व्याघ्र की प्रतिमा यहाँ मिलने से आर्यों को व्याघ्रज्ञान इसको देखने पर भी नहीं हुआ। इसका कारण आर्यों के आने

के समय में यह नगर नहीं था और बाद में अथर्ववेद के समय बसा, यह भी मानना होगा। अन्यथा यहाँ व्याघ्र रहते हुए भी आर्यों ने क्यों नहीं जाना ?—यह प्रश्न आपको मूक बना देगा।

(नं० ६) शाक्त धर्म की प्रधानता.. ... ।" वस्तुतः ऋग्वेद की नदीस्तुति में नदियों की प्रशंसा है तथा उषा, अदिति, इला, सरस्वती, सिंधु, पृथ्वी, द्यौः स्त्री ही है। इनकी स्तुतियाँ रहते हुए भी स्त्रीदेवताओं की मुख्यता नहीं है, यह कहना केवल अनभिज्ञो की प्रतारणा है। पहले तो आपके बहुत से पुराने मित्र यह मानते चले आते हैं कि ऋग्० मे रुद्र देवता ही नहीं हैं, इसके फलस्वरूप हिस्ट्री के बहुत से अध्यापक रुद्र को वैदिक देवता नहीं पढ़ाते है। एक समय 'जुबलीकालेज' मे इन्ट्रेन्स में पढ़ते समय मेरे स्वर्गीय पुत्र जगदीशचन्द्र ने आकर कहा कि रुद्र और राम वैदिक देवता नहीं है, आज ऐसा हमारे अध्यापक महाशय ने पढ़ाया है। मैंने उसे यजुर्वेद का १६ वाँ अध्याय रुद्र के वैदिक देवता होने के प्रमाण मे दे दिया। साथही, मास्टर साहब संस्कृत के अभिज्ञ या अनभिज्ञ हैं, इस परीक्षा के लिये एक स्थान मे 'राम' शब्द को भी दिखला दिया, जो कि वास्तव में देवताअर्थ मे वहाँ पर नहीं था। लड़के ने जाकर मास्टर साहब को पुस्तक दिखलाई। मास्टर साहब देखकर बोले कि यह तो यजुर्वेद संहिता है, वेद नहीं। इसमें लिखा हुआ वेद मे लिखा माना नहीं जा सकता। एक बार लखनऊनगर के हिन्दी के प्रमुख विद्वान् अंग्रेजी के बी० ए० मिश्रबन्धुओ मे से एक श्री श्यामबिहारी मिश्र महाशय ने यूनीवर्सिटी के हिन्दीविभाग में व्याख्यान देते हुए कहा कि ऋग्० मे रुद्र का नाम नहीं है।

और रामचन्द्र के बाद दक्षयज्ञ के विध्वंस करने से रुद्र ने लोगो को धमकाकर अपने को पुजवा लिया, इसी से यजुर्वेद में रुद्र को देवता माना है। इसी से यजुर्वेद रामचन्द्र के बाद बना, यह सिद्ध होता है। इन लोगों के ज्ञान पुराने योरोपियन विद्वानो की कृतियों में रुद्र के वैदिक देवता होने का अभाव कह रहे हैं। परंच आप ऋग्वेद और यजुर्वेद के रुद्रों को भिन्न-भिन्न मानते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उनका रुद्र ऋग्वेद के रुद्र से नहीं मिलता है और यजुर्वेद के रुद्र से मिलता है। इससे मोहन-जोदड़ो के निवासी लोग यजुर्वेद के समय के हैं, यह सिद्ध होता है। मोहनजोदड़ो तब बसा, जब यजुर्वेद बना। इससे मोहन-जोदड़ो आर्यों ने बसाया, यह स्पष्ट है।

(नं० ७) "ऋग्वेद मे गाय प्रधान है। मोहनजोदड़ो में गाय की जगह बैल की प्रधानता है।" कीथ का यह कथन भी निस्सार है। क्योंकि ऋग्वेद में जहाँ-कहीं वृष या वृषभ शब्द आया (जैसे २।३०।११ मे) उसका अर्थ मनोरथों की वर्षा करनेवाला है। ऋ० १।१२६।२ मे स्वनय राजा का कक्षीवान् ऋषि के लिये १०० बैलो के दान का वर्णन है। सायणाचार्य "पुंगवानाम् बलीवर्दानां" ऐसा लिख रहे हैं। उसके अगले मंत्र मे गायों के दान का वर्णन है। यदि बैल के दान की प्रतिष्ठा न होती तो बैल का दान क्यों दिया जाता? बौधायन श्रौ० सू० १४।११ मे "धेनुमनुड्वद्रं वा दद्यात्" तुरंत की ब्यानी अच्छी गाय वा बढ़िया बैल दे। तथा २।२१ में "मिथुनौ गावौ ददाति" गाय और बैल के जोड़े को दे। इसमे गाय और बैल की प्रतिष्ठा समान है। ऐतरेय ब्राह्मण ३।३ में सोम को गाड़ी

से उतारते समय एक बैल को खोल देने का नियम बतलाया है, और कहा है कि जो बैल खुला है वह यजमान के पुत्रादि का रूप है और जो बँधा है वह वैदिक और लौकिक क्रियाओं का रूप है। ऋ० ८।३।२४ मे पाकस्थामा राजा के लाल बैल के दान का वर्णन है। इस प्रकार बैल की प्रतिष्ठा वेद में स्पष्ट है।

पुरीषिणी—वे० इ० " ग्र०[1] की एक ऋचा में या तो किसी नदी[2] का नाम है या सरयु[3] का विशेषण है। जिसका अर्थ संभवत. पानी में घेरने वाली अथवा बढ़ी[4] हुई या पत्थर[5] को ले जानेवाली है।"

२. राथ इसको नदी अथवा सरयु का विशेषण मानते हैं। (वे० इ०)

३. जिमर और गेल्डनर इसको सरयु का विशेषण मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक नदी का नाम है। ऋग्० ५।५३।९ में इसका नाम आया है। मरुतो से प्रार्थना है। अर्थ 'कुभा' मे है। सायण ने पुरीषिणी का अर्थ जलवाली किया है, इससे सरयु का भी विशेषण संभव है। परंतु जब सभी नदियाँ भिन्न-भिन्न हैं तो पुरीषिणी को भी भिन्न ही मानना चाहिये।

पुलिन्द—१. वे० इ० "पुलिन्द एक बहिष्कृत जाति का

---

(१) ५।५३ ६।

(२) राथ द्वारा सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी मे यह मत दिया गया है।

(३) जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १७, गेल्डनर ऋग्वेद ग्लासर १११।

(४) गेल्डनर की वही पुस्तक।

(५) राथ की वही पुस्तक।

नाम है, जिसका ऐतरेय[1] ब्राह्मण में आन्ध्रो के साथ जिक्र है। लेकिन शांखायन[2] श्रौतसूत्र मे शुनःशेप की कहानी के साथ वह नहीं आता। अशोक[3] के समय पुलिन्द आँध्रो के साथ आते हैं।"

जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १६१ "पुलिन्द देश, इसमे बुन्देलखण्ड तथा सागर जिले का पश्चिमी भाग शामिल है (वामन पु० अ० ७६)। कथासरित्सागर मे शवर तथा पुलिन्दो को एक ही कहा है (आरकाओ लाजिकल सर्वे रिपोर्ट वालूम १७ पृ० ११३ से १३९ तक)। टालेमी के अनुसार फुल्लिटो (पुलिन्दाज्) आगरा (सागर) था। इस जाति की एक शाखा पोडस् बंगाल मे रहती थी। तारातत्र के अनुसार पुलिन्द सिलहट के पूर्व कामरूप के उत्तर मे है।"

२. हरिद्वार के उत्तर - पश्चिम एक देश (महाभा० वन० अ० १३९)।

वस्तुतः यह विश्वामित्र की संतान मे विश्वामित्र के शाप से पतित दस्यु जातियों में एक का नाम है। ऐतरेय ब्रा० ३३।६ तथा पुराणादि[4] मे यह देशअर्थ मे आता है। यह देश

---

(१) ७।१८।

(२) १५।२६।

(२) विन्सेन्टस्मिथ जेस्चिफ्ट डेरडिस्चेन मार्गेन लान्डिस्चेन जेस्ल स्चेफ्ट ५६।६५२।

(४) महाभा० सभा० (सु०) ४८।२० टि० ४७५ ये राजे युधिष्ठिर के यज्ञ में आये। महाभा० सभा० (म०) ५२।१३७ पुलिन्द नाम के गण युधिष्ठिर के यज्ञ में आये। (चि०) ५२।२२ पाठ नही है। महाभा०

उड़ीसा के समीप प्रतीत होता है और इसका कुछ भाग मगध के समीप पड़ता है। वस्तुतः सागर का जिला चेदि मे है। वह पुलिन्द में नहीं हो सकता। हरद्वार के उत्तर-पश्चिम भी इसका

उद्योग० (सु०) १५८।२० ये योद्धा दुर्योधन के पीछे चले। काशिका० आयुध० ५।३।११४ यह एक आयुधजीविसंघ है, पंजाब से बाहर है और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय से भिन्न है। विष्णुधर्मोत्तर० ३।२७।२१ यह देश भारत में है। यहाँ के लोग प्रायः काले होते है। महाभा० सभा० २७।१६ यह देश और इसके राजा दोनों दाक्षिणात्य है। वायु० उ० १६।६६ यह पापदेश है, तथा पू० ४५।१२६ यह देश भारत मे है और दाक्षिणात्य है। पद्म० आ० ६।४७ यह देश भारत में और दक्षिण मे है। मत्स्य० ११४।४१ यह देश भारत में है और उत्तर मे है। ११४।४८ यह देश भारत मे है और दक्षिण मे है। इस पाठ से ४१ का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है। किसी दूसरे के स्थान पर पुलिन्द लिख गया। वामन० १३।४६ यह देश कुमारद्वीप (भारत) मे है और दाक्षिणात्य है। मार्क० ५६। ७४३ यह देश पूर्वमुख कूर्म के पादमंडल में है। ५४।४७ यह देश दाक्षिणात्य है। महाभा० भीष्म० ६।३६ तथा ४०।६२ में यह पाठ तीन बार आया है। एक स्थान में दाक्षिणात्य लिखा है। कल्कि० ३।१४।२६ यह एक देश है। वाल्मी० कि० (इ०) ३६।२१ कलिंग के पहले पुलिन्द का नाम है। ४१।१७ मे दक्षिण वर्णन मे भी है। गुर्जरप्रेस और निर्णयसागर प्रेस मे मुद्रित पुस्तको में पाठ नही है। वामन पु० ७६।२५ हिमाद्रि और कलजर के बीच मे पुलिन्दो का निवासस्थान है। अमर० शूद्र० श्लोक २० किरात, शबर, पुलिद तीनो म्लेच्छजाति के है और चाण्डालो के भेद है।

(१) नाट्यशास्त्र २३।१०२ (पृ० २६१) तथा १४।४५ यह देश है और भारत मे है। यहाँ के लोग काले होते है। यहाँ की प्रवृत्ति औड्र मागधी है।

संभव नहीं। महाभारत वनपर्व (चि०) १४०।२५ में सुबाहु का राज्य, जो कुणिन्ददेश कहा जाता है—उसका वर्णन है। उसका विशेषण "पुलिन्दशत संकुल सुबाहु विषयं" ऐसा मिलता है। प्रकरण देखने से वह पुलिन्दो का देश नहीं था। वह कुणिन्द था, यह पता चलता है। उसमे किरात, तंगण और पुलिन्द लोग रहते थे। यह हृषीकेश का प्रान्त है। हृषीकेश के पास वीरभद्र के मंदिर के समीप की भूमि कुणिन्दनरेश की राजधानी और दुर्ग की परिचायक है। महाभारत सभा० (म०) २६।११ मे पुलिन्दनगर का वर्णन है, जो भीमसेन द्वारा जीता गया था और इसे जीतकर भीमसेन चेदि को जीतने गये थे। इस वर्णन से यह देश हजारीबाग के पूर्व मे प्रतीत होता है, जो संथाल परगने इत्यादि को अपने मे सम्मिलित करता है।

इसके निवासी कोल लोग ही पुलिन्दजाति के है। वीरभूम इत्यादि बारहों भूम और मिदनापुर का प्रान्त भी इसी मे था।

पुष्करिणी—कमलो से युक्त तालाब। ऋ० ६।१६।१३ मे यह शब्द आया है। 'पुष्कर' का अर्थ 'कमल' है।

पृशन—१. वे० इ० "इसका उल्लेख ऋग्०[1] मे एक पद मे मिलता है। लुडविक[2] के अनुसार एक स्थान का नाम है, जहाँ कि युद्ध हुआ था।

२. लुडविक और गेल्डनर इसको एक स्थान का नाम मानते हैं, जहाँ पर युद्ध हुआ था।

वस्तुतः यह शब्द ऋग्० ९।९७।५४ मे 'बाहुयुद्ध' के अर्थ में

(१) ९।९७।५४।

(२) गेल्डनर ऋग्वेद ग्लासर।

आया है। यह मंत्र सोमस्तुति में आया है और अर्थ यह है:— "इस सोम के वर्षण और नमन दो काम सुखकर होते हैं। कहाँ? घोड़ों के युद्ध मे अथवा बाहुयुद्ध मे शत्रुओं को मारनेवाले होते है। वह सोम धीरे-धीरे शब्द करते हुए शत्रुओ को सुलाता है; अर्थात् मारता है और शत्रुओं को संग्राम से भगाता है। हे सोम! आप हमारे शत्रुओं को भगाएँ तथा अग्निचयन न करनेवाले नास्तिकों को भी भगाएँ।" इसमें युद्धस्थान का वर्णन नहीं है।

प्रपा—वे० इ० "प्रपा ऋग्वेद में जहाँ पर मिलता है, वहाँ एक झरने का आशय प्रकट करता है, जो कि रेगिस्तान[1] मे है। अथर्व०[2] में इसका आशय केवल पान (मदिरापान) से है।"

वस्तुतः इसका अर्थ 'प्याऊ' है; अर्थात् जहाँ पर लोगों को पानी पिलाया जाता है। यह शब्द ऋग्वेद १०।४।१ मे आता है और यह अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे अग्ने! आप जन की इच्छा करनेवाले हवियो से देवताओं को पूरे करनेवाले यजमान के लिये मरु में प्रपा के समान सुख देनेवाले होते है। जैसे मरुदेश मे जल देने से 'प्रपा' लोगों को सुख देनेवाली होती है, उसी प्रकार धन-धान्यो से प्रजाओं को आप सुख देनेवाले होते हैं।" यहाँ 'प्रपा' का अर्थ 'प्याऊ' है, 'रेगिस्तान का झरना' नहीं। अथर्व० ३।३०।६ मे यह मंत्र परस्पर प्रेमकामना से ग्राम के मध्य में एक संस्कार किया जाता है,

(१) ऋग्वे० १०।४।१।

(२) ३।३०।६, तुलना करो तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।१।२।

उसमें है। अर्थ यह है:-हे परस्पर प्रेम की कामना करनेवालो! आप लोगों की प्रपा (पानीशाला) एक हो और अन्नभाग भी साथ ही-साथ हो, इत्यादि। इसमें 'प्रपा' का अर्थ 'प्याऊ' है, 'मदिरापानगृह' नहीं। तैत्तिरीय ब्रा० ३।१०।१।२ में 'प्रपा' 'कृष्ण पक्ष की सप्तमी' का नाम लिखा है, 'मदिरापान' से कोई संबंध नहीं।

प्रभभव[1]—एक स्थान का नाम है, जहाँ पर गौतम और भरद्वाज ने तपस्या की थी। गोपथ के मूल में 'गौतम भरद्वाज सिंहौ प्रभवे' ऐसा पाठ है। टि० ए में 'सिंहो' पाठ है और प्रभव के स्थान में 'प्रभ्व' पाठ है। हमारी समझ में यहाँ 'सिंही प्रभव' पाठ होना चाहिये। यहाँ 'प्रभव' का अर्थ 'उत्पत्तिस्थान' है और ऊपर विपाट् का वर्णन होने से विपाट् का उत्पत्तिस्थान अर्थ है। गौतम और भरद्वाज का सिंह विशेषण है। यदि 'सिंही प्रभाव' पाठ हो तो 'सिंही प्रभव' नामक स्थान में दोनों ने तपस्या की, यह अर्थ होगा।

प्लक्षप्राश्रवण—१. वे० इ० "एक स्थान का नाम है, उस स्थान से जहाँ कि सरस्वती लुप्त होती है ४४ दिन का रास्ता है। पंचविंश[2] ब्रा० और जैमिनीयोपनिषद्[3] ब्राह्मण में इसका उल्लेख है। उत्तरकालिक ग्रन्थो में ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वी

---

(१) गोपथ ब्रा० २।८।

(२) २५।१०।१६।२२, कात्यायन श्रौ० २४।६।७, लाट्यायन श्रौ० १०।१७।१२।१४।

(३) ४।२६।१२।

का मध्यमाग उसके उत्तर का प्रदेश है। ऋग्० के सूत्रों[१] में उस स्थान को प्लाक्षप्रस्रवण कहा है, और बाह्यरूप से वस्तुतः वह सरस्वती का उद्‌गम प्रकट करता है; न कि उसकी पुनर्जागृति का स्थान।"

२. हापकिस् का भी यही मत है।

वस्तुतः यह सरस्वती के उत्पत्तिस्थान का नाम है। वह सरस्वती का किनारा[२] अनुष्ठान करने से स्वर्गलोक को पहुँचाता

(१) आश्वलायन श्रौ० १२।६।१, शाखायन श्रौ० १३।२६।२४, तुलना करो हापकिस की पुस्तक ट्रेन्सैक्शन्स आफ दि कोनेक्टिकट एकाडेमी आफ आर्टस् ऐन्ड साइस १५।३१ न० २।

(२) ताण्ड्य ब्रा० २५।१०।१६ में लिखा है कि ४४ दिन मे घोड़े पर चढ़कर जितनी दूर जाया जा सकता है, उतनी दूर पर प्लक्षप्रास्रवण से सरस्वती का विनशन, अर्थात् लुप्त होने का स्थान है। वह सरस्वती का किनारा अनुष्ठान करने से स्वर्गलोक को पहुँचाता है, इससे स्वर्ग का मार्ग कहा जाता है। महाभा० शल्य० गदा० (चि०) ४४।११, १२ यह प्लक्षप्रस्रवणतीर्थ हिमालय पर है और सरस्वती का उत्पत्तिस्थान है। महाभा० शल्य० गदा० (चि०) ५४।३६, (नि०) ५५।३६, यह प्लक्षप्रस्रवणपर्वत हिमाद्रि का भागविशेष है। यहाँ पर प्लक्षप्रस्रवण नाम का तीर्थ है और कारपचन (कारपावन) तीर्थ भी है। यहाँ पर मित्रावरुण का आश्रम भी है। विष्णुध० २।२२।१५५ यह तीर्थ है। महाभा० श० गदा० (चि०) ४२।३०, (नि०) ४३।३० सरस्वती का उद्‌गमस्थान पितामहसर है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाकर के वृक्ष से सरस्वतो का जल निकलकर पितामहसर मे इकटठा हुआ, बाद में धारारूप मे चला। इस प्रकार प्लक्षप्रस्रवण उद्‌गम का नाम पड़ा। आश्वलायन श्रौतसूत्र उत्तरपटक षष्टाध्याय सप्तम खण्ड मे प्लाक्षप्रस्रवण पाठ है। महाभारत मे प्लक्षप्रस्रवण पाठ है।

है। इससे सरस्वती के किनारे को 'स्वर्ग का मार्ग' कहते हैं। यह हिमालय के ऊपर द्वैतवन में है।

बद्धा (बद्धन्)—वै० इ० "बद्धन्, यह शब्द पंचविंश ब्राह्मण[1] १।१।४ मे आता है, जिसका आशय एक काज़्वे से है। (भींगी भूमि पर रास्ता, पुल इत्यादि ऐसा कहा जाता है)। यह मामूली सड़क से बहुत मजबूत होता है।"

वस्तुतः इसका अर्थ स्थिर है अथवा देवयजनमार्ग का नाम है। यह शब्द 'बद् स्थैर्ये' धातु से बनता है, इससे इसका अर्थ 'स्थिर' है। सड़क, पुल इत्यादि अर्थ असबद्ध है। देवयजनमार्ग का अर्थ देवताओं के पूजन का मार्ग; अर्थात् यज्ञ है। पंचविंश ब्रा० का अर्थ यह है:—हे देवयजनमार्ग! आप अन्य लौकिक मार्गों से दृढ़तर हैं या आपका नाम बद्धा है। लाट्यायन का अर्थ यह है कि देवयजनगामीमार्ग को प्राप्त हो 'बद्धा नामासि' इस यजुर्वेद का पाठ करे।

बह्लिक—१. वै० इ० "बह्लिक एक मनुष्य का नाम है, जो अथर्व०[2] मे मिलता है, जहाँ पर कि हे ज्वर (तक्मन्) मूजवन्तो और महावृषो के पास जाओ। निश्चयरूप से कहा जा सकता है कि मूजवन्त उत्तरी जाति थी। और जैसा कि ब्लूमफील्ड[3] बतलाते हैं कि इस पद के दो आशय हैं। बह्लिक से विदेशी का संकेत होता है, क्योंकि बहिस् का अर्थ बाहर का होता है। फिर भी इसमें संदेह नहीं है कि यह उत्तरी जातियों से

(१) तुलना करो लाट्यायन श्रौ० १।१।२३।

(२) ५।२२।५, ७, ६।

(३) हिमस् आफ दि अथर्ववेद ४४६।

लिया गया है। परन्तु राथ[1] और वेबर[2] का मत जिसको कि एक समय जिमर[3] ने स्वीकार किया था, कि ईरानियन जाति का संकेत है तुलना करो 'बलख' से, यह बिल्कुल ही संभव नहीं है। क्योंकि जिमर[4] सोचता है कि कोई ऐसा कारण नहीं है कि हम ईरानियों के प्रभाव को मान लें।"

२. ब्लूमफील्ड बह्लिक का अर्थ बाहरी और उत्तरी जाति मानते हैं।

३. राथ और वेबर बह्लिक को ईरानियन मानते है।

४. जिमर पहले बह्लिक ईरानियन जाति मानते थे और बाद मे उसको असंभव मानने लगे।

वस्तुत: यह एक देश का नाम है, जहाँ पर हींग पैदा होती है। बह्लिकदेश में पैदा होने के कारण हींग का बह्लिक नाम है। बह्लिक बलख का नाम मानने मे कोई भी प्रमाण नहीं है। यह शब्द पुराणों मे देशअर्थ मे आता है। अथर्व० ५।२२।५,७ तथा ९ मे 'बह्लिकान, बह्लिकेषु' पद मिलते है। ये देशवाची होने से बहुवचन में आते हैं। तक्मा नामक ज्वर की शान्ति के प्रयोग में यह सूक्त आता है। इसमे पाँचवें में मूजवन्त और महावृष देश तक्मा के घर हैं और बह्लिक मे तक्मा के घूमने

---

(१) जुर लिट्रेचर ऐन्ड जोश्चिट् डेस्वेड ४१।

(२) इडिस्चेस्टडियन १।२०५, प्रोसीडिंग्स् आफ दि बर्लिन एकेडेमी १८५२।६८५ से ६६५ तक।

(३) एल्टेनडिस्चेजन्लेवेन १३०।

(४) वही पुस्तक ४३१ से ४३३ तक। तुलना करो विट्ने ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्ववेद २६०, हाप्किस ग्रेट एपिक आफ इडिया ३७३।

का स्थान बतलाया गया है। सातवें में प्रार्थना है कि हे तक्मन! आप मूजवन्त या बह्लिक या दूर के देशों में चले जाइये। नवें में है कि और स्थानों पर आपको अच्छा नहीं लगता, इससे आप बह्लिक में चले जाइये, इत्यादि। इन उदाहरणों मे बह्लिकशब्द देशअर्थ मे आता है। पुराणों मे 'बाह्लाक' पाठ मिलता है। वे० इ० कार का कथन कि एक मनुष्य का नाम है, प्रमाणरहित है और अथर्व० से विरुद्ध है। क्योकि उसमे लिखा है कि 'और स्थानों मे आपको अच्छा नहीं लगता, इसलिये बह्लिक मे आप चले जाइये' और बह्लिक मे घूमने का वर्णन है। अतः उसका मनुष्य मे संभव नहीं। बह्लिक से विदेशी का संकेत मानना ब्लूमफोल्ड की व्याकरण की अनभिज्ञता प्रगट कर रहा है। 'बहिषष्टिलोपोयञ् च' वार्तिक से 'बाह्य' और 'बाहीकः' दो प्रयोग बनते है; 'बह्लिक' नहीं बनता। अमरकोष क्षत्रियवर्ग ४५ में बह्लिकदेश मे उत्पन्न घोड़े का नाम बह्लिक दिया है। रभसकोष और त्रिकाण्ड में 'बह्लिक' और 'बाह्लाक' दोनो शब्द 'हींग' अर्थ में नपुंसकलिंग लिखे है। घोड़े और देशअर्थ मे पुल्लिग लिखे हैं। हींग जिन प्रान्तो मे होती है, वहाँ के घोड़े भी अच्छे होते है। वाल्मी० बा० (गु० नि०) ६।२२ यहाँ के घोड़े अच्छे होते हैं। अयोध्या० ६८।१८ में केकय जाने के मार्ग में सिन्धुनद के बाद इस देश का वर्णन है। इटलीमुद्रित मे 'सिंधु' का नाम 'इन्दुमती' लिखा है। महाभा० आदि० ५८।७ में यहाँ के घोड़े अच्छे होते हैं, ऐसा वर्णन है। महाभा० सभा० (म०) २४।७३ यह देश उत्तरी है। भीष्म० ९।४७ मे यह जनपद भारत में है। काशिका

३।२।८१ में यहाँ के निवासियों के लिये 'सौवीरपायिनः बाह्लीकाः' यह लिखा है; अर्थात् सौवीर को पीते हैं। न्यासकार ने लिखा है कि यहाँ के निवासी सौवीर पीकर बारम्बार नीरोग होते हैं। इसी लिये वे सौवीर पीते हैं, अथवा अन्य पानान्तर के अभाव से अगत्या ताच्छील्य के अभाव में भी पीते है। सौवीर 'काँजी' का नाम है। महाभा० सभा० (म०) ५२।१५ यहाँ उष्णीष (शिर के वस्त्र) और कम्बल (दुशाले) लम्बाई और चौड़ाई में बड़े, रंग में अच्छे और स्पर्श में बहुत मुलायम बनते हैं। यहाँ बाह्ली नाम दिया है। व्याक० महाभाष्य ४।२।९९ में बाह्लीदेश में पैदा हुई द्राक्षा (अंगूर) को 'बाह्लायनी' कहा है। इससे उस प्रान्त में अंगूर भी होता है। गवर्नमेन्टप्रेस के छपे मे पवर्गीयादि, और काशी के छपे मे दन्तोष्ठ्यादि पाठ है। काशिकापदमंजरी और न्यास में पवर्गीयादि पाठ है। बृहत्संहिता के टीकाकार भट्टोत्पल ने १४।१७ से १९ तक में जो पराशरग्रन्थ दिया है, उसमें इसको नैर्ऋत्य में लिखा है। समाससंहिता—यह देश है। विष्णुधर्मो० ३।२७।२१ यह देश उत्तरी है। यहाँ के लोग प्रायः गौर वर्ण के होते है। अत्रिस्मृति ७।२ और चरकसूत्रस्थान २६।५ में इसको देश माना है। वामन० १३।३७ तथा ब्रह्माण्ड० पू० अ० १६।४०६ मे यह देश भारत में है और उत्तरी है। मार्क० ५४।—, मत्स्य० ११४।४० तथा गरुड़० पू० ५५।१७ यह देश भारत में है और उत्तरी है। स्कन्द० माहे० कौ० ३९।१५५ यह देश भारत में है। पद्म० आदि० ६।४२ से ४९ तक यह देश भारत में है। पाठ 'बाह्लिक' है। महाभा० भीष्म० ९।४७ यह देश

भारत में है। काव्यमीमांसा ३।१५ यह देश है। १०।१० यह उत्तर के देशों में है। 'बाह्लीक' पाठ है। बाल्मी० बाल० ६।२४ बाह्लि देश में घोड़े अच्छे होते हैं।

बाहीक—१ वे० इ० "बाहीक शब्द शतपथ[1] ब्रा० में मिलता है और पंजाब[2] के पश्चिमी लोगों लिये आया है। जो कि प्राच्य या पूर्व के बसनेवालों से भिन्न हैं। ये लोग अग्नि को भव कहते थे।"

वेबर और एजलिङ् इनको पंजाब के पश्चिमी भाग के बसनेवाले मानते हैं।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १५ "बाहीक, केकय के उत्तर में व्यास तथा सतलज नदी के बीच का देश, इसका दूसरा नाम बाह्लीक भी है। अर्जुन ने इसे जीता था (महाभा० सभा० अ० २७)। महाभारत के अनुसार बाहीक लोग मुख्यतः सिंधु और सतलज के बीच में रहते थे (कर्णपर्व अ० ४४)। परन्तु विशेषतः रावी तथा आपगा (अपुकनदी) के पश्चिम में रहते थे। उनकी राजधानी शाकल थी। वे अनार्य जाति के थे। तथा बैक्ट्रिया की राजधानी बलख से संभवतः आये थे। पाणिनि और पतंजलि के अनुसार पंजाब का दूसरा नाम बाहीक

(१) १।७।३।८।

(२) तुलना करो महाभा० ८।२०३० से प्रारम्भ। बाहीकाज् वे लोग कहे जाते है, जो पंजाब और इन्डस में रहते हैं। यह बात शतपथ ब्रा० से मिलती है; क्योंकि उसमें सरस्वती का पूर्व भाग मध्य बतलाया गया है। तुलना करो वेबर इन्डिस्चेस्टडियन १।१८६।२।३७, एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १२।२०१ नं० २।

था (४।२।११७ तथा ५।३।११४, इंडियन आन्टीकेरी १।१२२ 'वृक्कदेश' देखिये)। बाहि और हिक दो असुरों के नाम थे, जो व्यासनदी के तट पर रहते थे। इन्हीं के कारण देश का बाहीक नाम पड़ा (महाभारत कर्ण० अ० ४५)। (आरकीओ लाजिकल सर्वेरिपोर्ट बालूम ५) ये लुटेरे थे। (रामायण अयो० अ० ७८ के अनुसार) बाह्लीकदेश अयोध्या और केकय के बीच में था।"

पृ० १९ 'बाह्लीक'—(नं० १) "केकय के उत्तर में शतलज और व्यास नदी के बीच का देश (रामायण अयोध्याकाण्ड अ० ७८)। त्रिकाण्डशेष मे बाह्लीक और त्रिगर्त एक ही देश के नाम हैं ('त्रिगर्त' देखिये)। (महाभा० कर्ण० अ० ४४) बाह्लीकों का निवास रावी तथा आपगा नदियों के पश्चिम में है। यह जिला झंग में पड़ता है ('बाहीक' देखिये)। मद्र की राजधानी शाकल (यूनानियो की सांगल) थी। वे लोग बाहीक भी कहलाते थे। बाहीक बाह्लीक का रूपान्तर है। दिल्ली के लोहस्तम्भ के लेख मे सिन्धु के बाह्लीकों का वर्णन है (जे० ए० एस्० बी० १८३८ पृ० ६३० 'बाहीक' देखिये)।"

(न० २) "बलख यूनानियों का वैक्ट्रियाना है, जो कि तुर्किस्तान में है। (बृहत्संहिता अ० १८ और जे० ए० एस० बी० १८३८ पृ० ६३०) करीब ईसा से २५० वर्ष पहले थिओडोटस या डिओडोटस जैसा कि वह पुकारा जाता था, वैक्ट्रिया का शासक था। उसने सेल्यूसिड नरेश एन्टिओकस थिअस के विरुद्ध विद्रोह किया था तथा अपने को राजा घोषित किया था। ग्रीकों का वैक्ट्रियन उपनिवेश ईसा से पूर्व १२६ वर्ष पहले

तातारों की एक जाति यूची के द्वारा घेर लिया गया था। ('शाकद्वीप' देखिये) बलख बैक्ट्रिया की राजधानी थी। उसमें आधुनिक काबुल, खुरासान और बुखारा शामिल थे। (जेम्स प्रिसेप की इन्डियन आन्टीक्विटीज् वालूम १) ईसा के पूर्व छठी और दशवीं शताब्दी के बीच में वितता अथवा गुस्तास्प के समय में जोरोस्टर बैक्ट्रिया में रहा था, जो बैक्ट्रियन राजवंश का था। मि० कुएटे के अनुसार जुरथुम् (जोरोस्टर) जरत्त्वष्ट्र का; अर्थात् त्वष्टृ का प्रशंसक रूपान्तर है। त्वष्टृ देवताओं के शिल्पकार हैं। कुएटे की विसिसि टुडेम् आफ आर्यन सिविलिजेशन इन इण्डिया पृ० ५५)। (ब्र० पु० अ० ८९। १३२ के अनुसार) त्वष्टा और विश्वकर्मा एक ही प्रतीत होते हैं तथा उनकी कन्याएँ सूर्य की पत्नी उषा तथा संज्ञा एक ही प्रतीत होती है। कुछ पृथ्वी के टीले पुरानी बैक्ट्रिया के चिह्न माने जाते हैं। ये स्थान उमडलबिड अथवा नगरो की माता और कुब्बतुल्स्लाम (स्लाम का घर) पुकारे जाते हैं। इसमें एक प्रसिद्ध अग्निमंदिर था। बैक्ट्रियन के राजाओं तथा ग्रीकों के बैक्ट्रियन अक्षरों को जानने के लिये देखिये, जे० ए० एस्० बी० ९-१८४० पृ० ४४९, ६२७, ७३३ और बैक्ट्रियन सिक्कों के लिये जे० ए० एस्० बी० १०-१८४२ पृ० १३० ।"

वस्तुत: वाहीक और बाहीक दोनो एक ही हैं और उस प्रान्त के नाम हैं। यह पंजाब की पाँच नदियो और सिंधु के बीच मे बसा है। और बह्लीक और वह्लीक उस प्रान्त का नाम है, जिसमे हींग पैदा होती है। इसी कारण से हींग को 'बाह्लीक' कहते हैं। इस देश का दूसरा नाम 'रमठ' भी है। इससे हींग

को 'रामठ' भी कहते हैं। दाक्षिणात्य पाठ सर्वत्र बाहीक के स्थान में बाह्लीक तथा मथुरा के स्थान में मधुरा मिलते हैं, यह उन लोगों का प्रमाद है। शतपथ ब्रा० १।७।३।८ में यह शब्द देश-अर्थ में आया है। और व्याकरण महाभाष्य के पस्पशाह्निक में भी देशअर्थ में आया है। यहाँ के निवासी अग्नि को 'भव' कहा करते है, ऐसा लिखा है। महाभारत में 'पंचानां सिंधु षष्ठानामन्तरा ये बसन्ति हि। बाहीकानां ते देशाः'—ऐसा कर्ण-पर्व में लिखा है। वे० इ० कार तथा एजलिङ् भी टिप्पणी २ मे इस बात को स्वीकार करते हैं। परन्तु सरस्वती का पूर्व भाग मध्य बतलाया गया है, यह कह रहे हैं। यह उनका भ्रम है। क्योकि मनु ने सरस्वती के विनशन से पूर्व भाग को मध्य माना है। पर उसमें कुछ भाग पंजाब प्रान्त का भी आ जाता है। परंच वह बाहीक और मध्य दोनों समझा जाता है, शतपथ में पवर्गीयादि पाठ है, अष्टाध्यायी महाभाष्य और पुराण आदि में दन्त्योष्ठ्यादि पाठ है। नन्दलाल डे ने केकय के उत्तर में व्यास तथा शतलज के बीच का भाग केकय माना है। परंच यह उनकी कनिंगहम इत्यादि की नकल है। केकयदेश की राजधानी गजनी थी। उससे उत्तर में व्यास और रावी के बीच का होना असंभव है। 'अर्जुन ने रावी और व्यास के बीच के देश को जीता' यह कहना तो महाभारत को न समझने का प्रमाण है। इस प्रान्त को नकुल ने जीता था, यह सभापर्व में स्पष्ट है। अर्जुन ने तो पंजाब का उत्तरी पहाड़ी इलाका जीता और कश्मीर के बाद सिंहपुर को जीता, जो रावलपिंडी के प्रान्त में है। उसके बाद बाह्लीक को जीता, जो हींग का प्रान्त है। परन्तु

रावी और आपगा का प्रान्त जिसके राजा नकुल के मामा शल्य थे और उनकी शाकल राजधानी थी, उसमें अर्जुन गये भी नहीं। शल्य ने नकुल को प्रेमपूर्वक कर दिया था। इस प्रान्त में कभी भी अनार्य जाति के लोग नहीं रहते थे और न कभी वैक्ट्रिया की राजधानी बलख से आकर लोग बसे ही थे। इससे वहाँ के निवासियों को अनार्य जाति कहना और बलख से लाकर बसाना दोनों बातें प्रमाणाभाव से निस्सार हैं। सिंधु और शतलज के बीच का पूरा देश बाहीक कहा जाता था। लुटेरे लोग भी वहाँ सर्वदा रहते थे, इसमें प्रमाण नहीं। ह्वेन-सांग को लुटेरों ने लूट लिया और कनिंगहम को भी लूटने के लिये लोग रात में आये, तो प्रान्त का प्रान्त कैसे लुटेरा कहा जा सकता है? सफर करते हुए किसी विदेशी की जेब यदि लखनऊ में कट जाय तो क्या पूरे हिन्दुस्तानी गिरहकट कहे जा सकते हैं? रामायण में अयोध्या से केकय जाने के मार्ग में जो बाह्लीक का वर्णन है, उसमें वह बाह्लीकदेश है, जिसमें हींग पैदा होती है। त्रिकाण्डशेष में जो बाह्लीक और त्रिगर्त को एक कहा है, वह ग्रन्थकार का भ्रम है। कर्णपर्व में राजा शल्य की बातों से चिढ़कर अंगराज कर्ण ने जो बाहीक लोगों के दोष दिखलाये हैं, वे छींटे पूरे पंजाब पर थे; न कि केवल मद्र ही पर थे। क्योंकि कर्ण ने शतलज से प्रारम्भ किया था। वहाँ के टक्क और वाहीक इत्यादि शब्द पूरे पंजाब के वाचक थे, न कि केवल मद्रमात्र के। यदि कोई बंगाली कलकत्ते में लखनऊ-निवासी पुरुष को यू० पी० कहकर गाली देता है, तब वहाँ यू० पी० का अर्थ पूरा प्रान्त होता है; न कि लखनऊमात्र।

इसी प्रकार कर्णपर्व में वाहीक शब्द का अर्थ पूरा पंजाब होगा; न कि शल्य का राज्य मद्रमात्र। "मद्र की राजधानी ाकल यूनानियों का सांगल है"—यह कथन भी एकदम निस्सार है। 'सांगल' पाणिनि का 'सांकल' और आजकल का पंजाबी 'सांगला' है, इसके लिये 'मद्र' देखना चाहिये।

ब्रह्मर्षिदेश—१. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ४० "ब्रह्मावर्त तथा यमुना के मध्य का देश। इसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल तथा शूरसेन शामिल हैं (मनु सहिता २।१९)।"

२. वे० इ० 'मध्यदेश' देखिये।

वस्तुतः यह देश ब्रह्मावर्त से बिल्कुल मिला हुआ है। इसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेनक देश हैं। मनु० २।१९ 'ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश के पैदा हुए ब्राह्मण से संसार के सभी मनुष्य धर्म सीखे।' कुल्लूक भट्ट ने 'ब्रह्मावर्तादनन्तर:' का अर्थ "ब्रह्मावर्त से पुण्य मे कम है"—ऐसा किया है। हमारे मत में देश का वर्णन होने से ब्रह्मावर्त से अव्यवहित अर्थ ठीक है। नन्दलाल डे ने जो यमुना और ब्रह्मावर्त के मध्य का देश माना है, वह समझ मे नहीं आता कि यह अर्थ कहाँ से लाये। यदि कहें कि ये सब देश ब्रह्मावर्त और यमुना के मध्य में ही हैं, सो भी सम्भव नहीं।

ब्रह्मावर्त—जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ४० "(नं० १) सरस्वती तथा दृषद्वती के मध्य का देश, जहाँ पर आर्य लोग पहले-पहल आकर टिके थे। यहाँ से उन्होने वह देश जीता जो ब्रह्मर्षिदेश कहलाता है (मनु० अध्याय २)। बाद में यह कुरुक्षेत्र कहलाया। यह सरहिन्द से विशेषकर समानता रखता है

(रैप्सन की इन्शेन्ट इण्डिया पेज ५१)। इसकी राजधानी दृषद्वती के तट पर करवीरपुर नामवाली थी (कालिकापुराण अ० ४८, ४९)। बर्हिष्मती इसकी राजधानी थी (भागवत ३।२२)। (नं० २) गंगा के तट पर कानपुर जिले में बिठूर नामक स्थान का एक घाट ब्रह्मावर्त कहलाता है, जो तीर्थयात्रियों का प्रसिद्ध स्थान है।"

वस्तुतः यह देश सरस्वती और दृषद्वती नदी के मध्य में है। उस देश में संकीर्ण पर्यन्त ब्राह्मण आदि वर्णों का जो आचार है, वह सदाचार कहा जाता है। यह मनु० २।१८ मे लिखा है। ब्रह्मर्षिदेश में जब ब्रह्मावर्त के चारों ओर का देश शामिल है, तो ब्रह्मावर्त में पहुँचने के समय आर्य लोग क्या आकाशयान से ब्रह्मर्षिदेश का उल्लंघन कर ब्रह्मावर्त पहुँचे थे, जो पश्चिमी भाग को बिना जीते ही ब्रह्मावर्त मे पहुँच गये और बाद में उसे जीता? क्या कोई ऐसा प्रमाण है, जो आर्यों को बाहर से आने-वाला सिद्ध कर सके? और कुरुक्षेत्र में रहकर जिस देश को उन्होंने जीता, वह ब्रह्मर्षिदेश कहा जाता है—इस बात को सिद्ध कर सके? मनु ने तो ब्रह्मर्षिदेश की पवित्रता, ब्राह्मणों की धार्मिकता, जगत् को ज्ञान देने की सामर्थ्य तथा जगद्गुरु की पदवी की योग्यता बतलाई है। इसमे तो लड़ाई की गन्धमात्र भी नहीं है। उसमें रहकर आस पास के प्रान्त को जीता और वह ब्रह्मर्षिदेश कहलाया, यह किस अक्षर का अर्थ है—यह समझ में नहीं आता।

भरतदेश—पंचविंश ब्रा० १४।३।१३ में विश्वामित्र का शकट पर चढ़कर यहाँ जाने का वर्णन है। यह देश कहाँ पर

था, यह ठीक निश्चय नहीं।

भलानस्—१. वे० इ० "भलानस् बहुवचन, ऋग्०[1] में यह नाम मिलता है। पाँच जातियों में एक जाति का नाम है। पक्थस्, भलानसेस्, अलिनस्, विषाणिन्स्, शिवस् जो कि (दाशराज्ञ) दशराजाओं के युद्ध मे सुदास् के शत्रुओ के पक्षपाती[2] थे। इनके विपक्ष में नहीं, जिस प्रकार कि राथ[3] और एक समय मे जिमर विचार करते थे। जिमर[4] पूर्वी काबुलिस्तान को उनका असली घर बतलाते हैं। बोलनदर्रा से समता करते हुए यह मति युक्त मालूम पड़ती है।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी "भलानस=बोलनदर्रा। (मेकडानल और कीथ वेदिक इंडेक्स आफ नेम्स ऐन्ड सब्जेक्टस् वालूम २ पेज ९९)

३. जिमर "पूर्वी काबुलिस्तान को इनका असली घर बतलाते हैं। और इनको दाशराज्ञयुद्ध की पाँच जातियो में से एक और सुदास् के शत्रुओ का विपक्षी मानते हैं। और बाद में

(१) ७।१८।७।

(२) हाप्किस जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२६०,२६१ जो कि इस नाम का रूप भलान समझता है। किन्तु ऋग्० में हमें भलानासः मिलता है, और जिमर की विचारधारा को अनसुना करता है।

(३) जुर लिट्रेचर ऐन्ड गेस्चिचिटेडेस् वेद ६५।

(४) जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवन १२६।

(५) वही पुस्तक ४३१, तुलना करो लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१७३।२०७।

इनको सुदास् का विपक्षी समझते हैं।"

४. राथ इनको एक जाति मानते हैं। और दाशराज्ञयुद्ध में सुदास् के विपक्षियो का विपक्षी मानते हैं।

५. हापकिंस इस शब्द का रूप भलान मानते हैं।

६. लुडविक इसको पूर्वी काबुलिस्तान का निवासी मानते हैं।

वस्तुतः यह शब्द बहुवचन मे ऋग्० ७।१८।७ मे आया है। सायण ने 'भद्रमुखाः' अर्थ किया है। ये लोग क्षत्रिय हैं और तुर्वश के सहायक होकर इन्होंने सुदास् नामक राजा पर चढ़ाई की थी। इन्द्र की सहायता से तुर्वश पर सुदास् के विजयी होने पर इन लोगो ने इन्द्र की स्तुति की। यह ऋग्० मे लिखा है। ये लोग पूर्वी काबुलिस्तान मे रहते थे, इस अंश मे अणुमात्र भी प्रमाण नहीं है। पूर्वी काबुलिस्तान तो कम्बोज में था। उसमे इनको कहना ठीक नहीं।

वस्तुतः इनके स्थान के निर्णय मे कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऋग्० मे सुदास् के कई युद्धो का वर्णन है। परंच यह युद्ध जिसमें कि भलानस् का संम्बन्ध है, तुर्वश से युद्ध होने के कारण दाशराज्ञ नहीं हो सकता। तुर्वश ने धन के लिये सुदास् पर चढ़ाई की थी। इसी युद्ध मे ये लोग सहायक थे। तुर्वश का 'यक्षु' विशेषण उसको यज्ञ करनेवाला सिद्ध कर रहा है। दाश-राज्ञयुद्ध के कर्ता यज्ञ करनेवालो से भिन्न थे। इससे दासराज्ञ-युद्ध से इस युद्ध को एक करना लबड़धौंधौं के अतिरिक्त कुछ न होगा। ये लोग सुदास् के शत्रु और तुर्वश के पक्षपाती थे। इस मंत्र का अर्थ हम 'पक्थ' मे लिख चुके हैं। जिमर व राथ का मत कि ये लोग सुदास् के शत्रुओ के विपक्षी थे, इसका

खण्डन वे० इ० कार स्वयं कर रहे हैं। 'भलानसः' को जो 'भलान' का रूप कहता है, वह व्याकरण से अपरिचित है और जो ऋग्० मे 'भलानासः' पाठ बतलाता है, वह भी व्याकरण से अनभिज्ञ है। यदि 'भलानासः' पाठ होता तो 'भलान' शब्द ही होता। भलान का ही भलानासः बन सकता है। परंच ऋग्० मे 'भलानसः' पाठ है। जागराफिकल डिक्शनरी में परंपरा के अनुसार बोलनदर्रा अर्थ करना ठीक ही है। परंच जो बोलनदर्रा अर्थ कर रहे हैं, वह बिल्कुल असंबद्ध है। क्योंकि भलानस् लोगो के युद्ध का वर्णन है। क्या बोलनदर्रा जड़ होने से युद्ध कर सकता है? यदि उसके निवासी तक कहा होता तो निवासस्थान मे ही गड़बड़ी होती; न कि अर्थ ही असंभव हो जाता—जैसा कि अब है।

भवानी[1]—एक नदी का नाम है। इसके तट पर नृसिंह की मूर्ति है और यह दक्षिणभारत[2] मे है।

भौज्य—वे० इ० "ऐतरेय[3] ब्राह्मण मे यह एक राजकुमार के पद अथवा स्थान का संकेत करता है, जो कि भोज की उपाधि ग्रहण करता है।"

वस्तुतः यह एक प्रकार की पदवी है, जिसके लिये दक्षिण के सत्वत् राजे ऐन्द्रमहाभिषेक करते थे। अभिषेक के बाद उससे

---

(१) बृहज्जाबालोपनिषद् ६।१।

(२) एपी० ग्राफिया इन्डिका १६।२२४, भवानी नदी है और चेबूरकोट्ट मे है। इसके तट पर माधवदेव है।

(३) ७।३२, ८।६।१२ तथा १४।१६।

युक्त हो भोज कहे जाते[1] थे। ऋग्० ८।३।२४ मे पाकस्थामा राजा का विशेषण भोज दिया है। वह पाकस्थामा को दाक्षिणात्य सत्वतो के वंश मे उत्पन्न कह रहा है। ऋग्० मे दाक्षिणात्य राजा का वर्णन पंजाब अथवा मध्यदेश मे ऋग्० की उत्पत्ति हुई, इस सिद्धान्त को असत्य घोषित कर रहा है। स्थान अर्थ करना निःसार है।

मगध—१. वे० इ० "मगध, यह समस्त वैदिक साहित्य में एक जनसमूह का नाम मिलता है तथा जो अत्यधिक प्रशंसनीय नहीं है। यद्यपि वास्तव मे यह नाम ऋग्०[2] में नहीं मिलता तथापि अथर्व०[3] मे मिलता है, जहाँ कि ऐसा चाहा जाता है कि ज्वर गन्धारिस् मूजवन्तस् के पास जायॅ। उत्तर में रहनेवाले तथा अङ्गो के पास और मगध के पास तथा पूर्वनिवासियों के पास जायॅ। पुनः पुरुषमेधयज्ञवाले पशुओं की सूची मे यजुर्वेद[4] मे इसका नाम मिलता है। मागध या मगधदेशवासी शामिल है, जो कि समर्पित किया जाता था। अतिक्रुष्ट (तेज तुमुलनाद, जब कि अथर्व०[5] के व्रात्यमंत्र में व्रात्यों का मित्र कहकर व्रात्यों के साथ मगध को जोड़ा जाता था। संपर्क का प्रकार उसके मित्र के रूप मे, उसके मन्त्र के रूप मे, उसकी हॅसी के स्वरूप में

---

(१) ऐतरेय ब्राह्मण ३८।१ तथा ३८।३।

(२) 'कीकट' देखिये।

(३) ५।२२।१४, जहॉ पर कि पैप्पलाद पाठ मे मयेभिः है, जो कि एक भद्दी गलती है। लेकिन अङ्गस् की जगह काशिस् को रखता है।

(४) वाजसनेयी सं० ३०।५।२२ तथा तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१।१।

(५) १५।२।१४।

और चतुर्दिश मे उसके बिजली के समान। श्रौतसूत्रों[1] में व्रात्यों की विशेषता दी हुई कही गई है (ब्रह्मबन्धु मागधदेशीय) जहाँ पर कि व्रात्य आर्य ब्रह्मसमाज मे भरती हुए एक बुरे ब्राह्मण की भाँति मगध मे रहते हुए मिलता है। किन्तु यह सिद्धान्त पंचविंश[2] ब्राह्मण मे नहीं मिलता। इसके अलावा दूसरी तरफ वहाँ पर कभी-कभी आदरणीय ब्राह्मण भी रहते थे। क्योंकि कौषीतकी आरण्यक[3] मध्यमप्रातीबोधी पुत्र को मगधवासिन् कहता है। ओल्डनबर्ग[4] इसको असाधारण मानने मे प्रत्यक्षरूप से उचित है। बौधायन और अन्य सूत्रों[5] में और संभवतः ऐतरेयारण्यक[6] मे भी मगधाम् प्रत्यक्षरूप से जन हैं। इसलिये जिमर[7] 'यजुर्वेद और अथर्व' मे मागध मगध का मनुष्य नहीं है। लेकिन एक मिश्रित जाति का सदस्य है, जो कि वैश्य और

---

(१) लाट्यायन श्रौ० ८।६।२८, कात्यायन श्रौ० २२।४।२२, तुलना करो पचविंश ब्रा० पर सायण से १७।१।१६, १७।

(२) १७।१।१६।

(३) ७।१३, पहले ऐतरेयारण्यक में इसका उल्लेख नही है।

(४) 'बुद्ध' ४०० एन्०, वेबर इडियन लिट्रेचर ११२ एन्०।

(५) बौधायन धर्मसूत्र १।२।१३, बौधायन श्रौतसूत्र २०।१३, आपस्तम्ब श्रौ० २२।६।१८, हिरण्यकेशि श्रौ० १७।६ देखिये कलन्द जेटस्च्रिफ्ट डेर ड्यु स्चेन मार्गेन लाण्डिस्चेन गेसेल्सचिफ्ट ५६।५५३।

(६) २।१।१, देखो कीथ ऐतरेयारण्यक २०० तथा शाखायनारण्यक ४६ नं० ४।

(७) अल्टेन डिस्चेजलेवेन ३५, तुलना करो सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी २ सी।

क्षत्रिया[1] से उत्पन्न हुई'—ऐसा विचार करने में जिमर सही है, यह बिल्कुल असम्भव है। लेकिन यह मिश्रित जाति कल्पना अथवा नीति हर तरह से कुछ संदेह के वशीभूत होते हुए स्वीकृत नहीं की जा सकती, जब कि इतने प्रत्यक्षरूप से साफ जातियों के नामों को, जैसे मगध को बयान करती है। यह बात कि मागध बाद मे एक गवैया है, जिसकी पुष्टि हमे मिलती है—यह देश गवैयों का स्थान था और घूमते हुए भाँड़ (कवि) मगध से निःसंदेह अधिक संख्या में पश्चिमी स्थानों को जाते थे। इस वर्ग को उत्तरकालिक ग्रन्थ एक जाति समझते हैं, जो कि पुरानी जातियों से वैवाहिक संबंध द्वारा एक उत्पत्ति का आविष्कार करते हैं। यह मगधों के प्रति अश्रद्धा, जो कि ऋग्० की कही जा सकती है, थी। क्योंकि कीकटास् सभवतः मगधस् के एक ही नमूने थे, जैसा कि ओल्डनवर्ग[2] विचार करता है। यह इसलिये हर सूरत में था कि मगधस् वास्तव में ऐसे थे कि जिनमें ब्राह्मणत्व नहीं था। जब कि बहुत पहले कोशल और विदेह भलीभाँति से ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं हुए थे और मगध उससे भी कम ब्राह्मणत्व को पाप्त हुए थे, इस शतपथ[3] के प्रमाण

(१) मनु० १०।११, गौतम धर्मसूत्र ४।१७, उसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण पर सायण को भी, वही पुस्तक मागध को समझाता है। और महीधर वाजसनेयी स० मे समझाता है।

(२) 'बुद्ध' ४०० एन्०।

(३) १।४।१।१० इत्यादि, वेबर इण्डिस्चेस्टडियन १।१७० इत्यादि, ओल्डेनवर्ग वही पुस्तक ३९८। कोशल यहाँ पर विदेह से अधिक ब्राह्मणत्व रखता हुआ मालूम होता है। नोट कीजिये, जब कि

से सहमत है। वेबर[1] दो प्रमाण और देता है। जिन्होंने इस स्थिति पर प्रभाव डाला उनमें पहला आदिमजाति के रक्त का प्रवाह है और दूसरा बुद्धधर्म की उत्पत्ति। बादवाला प्रमाण यजुर्वेद और अथर्व० पर कठिनाई से लागू होता है। किन्तु ओल्डनवर्ग के सिद्धान्तानुसार यदि इसके स्थान पर भूमि का अपूर्ण ब्राह्मणत्व रखा जाय तो इसमें कुछ शक्ति बढ़ जायगी। पहला कारण ओल्डनवर्ग के सन्देह के बावजूद भली प्रकार मालूम होता है। पार्जीटर[2] संकेत करते हुए इतनी दूर चले गये कि मगध में आर्य लोग आक्रमणकारियों के एक समूह से मिले और मिश्रित हुए। यह आक्रमणकारियों का समूह पूर्वसमुद्र से आया था। यद्यपि इस विचार के लिये वैदिक ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं है, तथापि ऐसा विचार करना बुद्धि से युक्त है। क्योंकि ज्यों ज्यों आर्य लोग अधिक पूर्व की ओर प्रवेश करते गये त्यों-त्यों आदिनिवासियों पर अपना प्रभाव कम डाल सके। वर्तमान मनुष्यजाति की वर्णनविद्या जो कि अनुभव से परे (ए प्रापोराई) कल्पनामात्र से रची गई थी, इस विचार को पुष्टि देती है। इसलिये जैसा कि यह दिखलाता है, ज्यों ज्यों भारत

वैदेह मगध की भाँति एक उत्तरकालिक थ्योरी मे इसका प्रयोग एक मिश्रितजाति के नाम से हुआ है। कौशल्य इतना नीच नहीं है (ओल्डनवर्ग ३९६ न०)।

(१) देखो इन्डियनस्टडियन १।५२।५३, १४५, १०।६६। इडियन लिट्रेचर ७६ न० १।१११।११२।

(२) जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८ पृ० ८५१ से ८५३ तक। तुलना करो रिस्डेविस् बुद्धिस्टइडिया ६।२४।२६०, २६७।

का पूर्वी भाग समीप में आता है त्यों-त्यों आर्यों की प्रणाली की शिथिलता सी प्रतीत होती जाती है। यद्यपि इस प्रकार का प्रमाण कि भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग मिले हैं, इस दृष्टिकोण में निर्णयात्मक नहीं है।"

जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ११६ "मगध—यह बिहार अथवा विशेषकर दक्षिणबिहार का सूबा है। (रामायण आदि-काण्ड अ० ३२, महाभा० सभा० अ० २४) इसकी पश्चिमी सीमा शोणनदी थी। मगध का पहले-पहल नाम अथर्वसंहिता ५।२२।१४ और १५।२ मे आता है। मगध की पुरानी राज-धानी जरासध के समय मे गिरिव्रजपुर (प्रसिद्ध राजगिर्) थी, जो पाँचपाण्डवो मे से भीम द्वारा मारा गया। बाद मे पाटलिपुत्र राजधानी बनाई गई, जो उस समय मामूली पाटलि-ग्राम था। यह नगर बुद्ध के समकालिक मगध के राजा अजा-तशत्रु द्वारा वैशाली के वृज्जियो को भगाने के लिए बढ़ाया गया था। अजातशत्रु के पौत्र उदयाश्व ने राजधानी को पाटलिपुत्र से हटाकर राजगृह को बनाया। (वायु० २ अ० ३७, ३६९) एक बार मगधदेश गंगा के दक्षिण बनारस से मुंगेर तक तथा दक्षिण मे सिंहभूम तक फैला हुआ था। लोग अब भी पटना और गया जिले को 'मगा' कहते है, जो मगध का रूपान्तर है। ललितविस्तर (अ० १७) मे गया शीर्षमगध मे रखा गया है। यह आरम्भ मे चेर और कोलो द्वारा बसा था, जिनको आर्य लोग असुर कहते हैं। पाटलिपुत्र के अन्ध्र भृत्यो के बाद मगध में गुप्तो ने राज्य किया ('पटना' देखिये)। कनिंगहम के अनुसार गुप्तयुग ३१९ ई० से प्रारम्भ होता है, जब कि महाराज

गुप्त सिहासन पर बैठते है । डा० फ्लीट् के (कार्पस इंस्पृक्शन इन्डिकेरम वालूम ३ पेज २५) के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम मगध के सिंहासन पर ३२० ई० मे बैठे ।"

३. जिमर "वाजसनेयी संहिता मे और अथर्ववेद में 'मागध' मगध का मनुष्य नहीं है, लेकिन एक मिश्रितजाति का सदस्य है, जो कि वैश्य और क्षत्रिया से पैदा हुई थी ।"

४. राथ भी जिमर के अनुकूल हैं । (वे० इ०)

५. कलन्द मगधास् को प्रत्यक्षरूप से जन मानते हैं । (वे० इ०)

६. ओल्डनवर्ग "मगधस् वास्तव में ऐसे थे जिन मे ब्राह्मणत्व नहीं था और शतपथ के प्रमाण से सहमत हो कोशल और विदेह भलीभाँति से बहुत पहले ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं हुए थे । मगध उससे भी कम ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे ।" (वे० इ०)

७. वेबर दो प्रमाण देते हैं, जिन्होंने इस स्थिति पर प्रभाव डाला । पहला आदिमजाति के रक्त का प्रवाह और दूसरा बुद्धधर्म की उत्पत्ति । इसका मतलब यह है कि मगधो मे जो रक्त का प्रवाह है, वह आदिमनिवासियो से मिलता है, आर्यो से नहीं । दूसरा मगध मे बुद्धधर्म की प्रवृत्ति से मगध लोग आर्यों से नीच दृष्टि से देखे गये । (वे० इ०)

वस्तुत: 'मगध' शब्द पाणिनि द्वारा जनपदसमानक्षत्रियवाची माना गया है । इससे मगधक्षत्रिय का पुत्र 'मागध', लड़की 'मागधी' एकवचन और द्विवचन मे कहे जाते हैं । मगधदेश का राजा भी एकवचन और द्विवचन मे 'मागध' कहा

जाता है। बहुवचन में मगधक्षत्रिय की पुरुषसंतान, मगधदेश के राजा और मगधदेश 'मगध' शब्द से कहे जाते हैं। मगध की सभी वस्तुएँ 'मागध' कही जाती हैं। एक वर्णसंकर जाति भी, जो कि क्षत्रिया मे वैश्य से उत्पन्न हुई है, वह 'मागध' कही जाती है। एक बन्दीगण का भेद भी 'मागध' कहा जाता है। अथर्ववेद संहिता में मगधशब्द देशअर्थ मे आया है। यजुर्वेद संहिता में मागध शब्द का अर्थ मगधदेशनिवासी, वर्णसंकरजाति और बंदीगण का भेद—इन तीनों अर्थों का 'मागध' शब्द से संभव है। श्रौतसूत्रों में कुछ कम मागध या मगधदेशनिवासी ब्राह्मण दोनों का संभव है। वैदिक इन्डेक्सकार इतना होते हुए भी, और मगध और मागध का अन्तर होते हुए भी, सर्वत्र एक ही मगध जन है; अर्थात् एक मगध नाम का मनुष्यसमूह है, यह कहकर सब को एक ही मानते हुए व्यवहार कर रहे हैं। हम उन्हीं के अनुसार आगे व्यवहार करेंगे।

वस्तुतः अथर्ववेद मे यह एक देश का नाम है। आज भी बिहारप्रान्त में पटना का प्रान्त इसी नाम से समझा जाता है। इसकी प्राचीन राजधानी गिरिव्रज थी। इसका दूसरा नाम राजगृह भी था, जो आजकल राजगृही नाम से प्रसिद्ध है। बाद मे पाटलिपुत्र के बसने पर पाटलिपुत्र मगध की राजधानी बना। पाटलिपुत्र आजकल पटना के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी पूर्वी सीमा अंगदेश, उत्तरी सीमा गंगा और पश्चिमी सीमा शोणभद्र है। दक्षिणी सीमा का निश्चय नहीं। इस देश का दूसरा नाम कीकट भी था। ऋग्० में कीकटशब्द देशअर्थ में ही आया है। यह शब्द देशअर्थ में बहुवचन है और एकवचन

भी मिलता है । मागधशब्द भी देशअर्थ में दिखलाई पड़ता है। अब हम वे० इ० कार के कथन पर यथाक्रम विचार करते हैं।

वे० इ० का कथन है—"मगध समस्त वैदिक साहित्य में ...प्रशंसनीय नहीं है।"

वस्तुत: यह शब्द वैदिक साहित्य में देशअर्थ में ही आया है। जनसमूह का नाम कहना अनुचित है, जैसा कि अथर्ववेद ५।२२।१४ मे मगधशब्द देशअर्थ में ही आया है। जहाँ पर तक्मा नामक ज्वर के नाश करने को शान्ति का प्रयोग वर्णित है, वहाँ पर गन्धारि, मूजवन्त, अंग और मगध शब्द देशअर्थ मे आये हैं। वहाँ पर त्रिकाल में जातिअर्थ का संभव नहीं। पुराणों मे भी यह शब्द देशअर्थ में आया है। बाद में बौद्ध ग्रन्थो मे भी मागधशब्द देशअर्थ में आता है। स्मृतियाँ, श्रौत-सूत्र और धर्मसूत्र मगध को देश मानते हैं। मागधशब्द भी देशअर्थ मे आता है। मागध एक प्रकार का प्रतिलोम वर्ण-संकर भी है, जो क्षत्रिया मे वैश्य द्वारा उत्पन्न का नाम है। मागध एक बंदिगण का भी भेद है, जो राजस्तुति करते हैं और वैतालिक कहे जाते हैं। मगध मे उत्पन्न, मगध से आया, मगध मे रहनेवाला इत्यादि मगध की सभी वस्तुएँ 'मागध' कही जाती हैं।

वे० इ० का कथन है—"यद्यपि वास्तव मे यह नाम.. पूर्व-निवासियों के पास जायँ। (टिप्पणी २ के साथ)

वस्तुत: अथर्व० ५।२२।५ का अर्थ यह है कि जिस ज्वर का घर मूजवन्त देश है, जिसका घर महावृष देश है और जो बह्लिकदेश में खुब घूमा है। (७ का अर्थ है) हे तक्मन्!

आप मूजवतदेश या बह्लिकदेश को चले जाइये। (८ का अर्थ है) महावृष, मूजवत या अन्य देशों में चले जाइये। (९ का अर्थ है) आपको अन्य देशों मे अच्छा नहीं लगता, इससे बह्लिक मे चले जाइये। (१४ का अर्थ है) गान्धारिदेश, मूजवतदेश, अंगदेश या मगधदेश को चले जाइये। इसमें ज्वर के घूमने का वर्णन और अन्य देशो में अच्छा नहीं लगता इत्यादि वर्णन होने से यह निश्चय कर रहा है कि यहाँ पर ये शब्द देशअर्थ में आये हैं, इनको इन नामों की जातियों का मानना जबर्दस्ती है। इसमें उत्तर और पूर्व का नाम भी नहीं है, इससे उनको भी घसीटना वेदिक इन्डेक्सकार की मनगढ़न्त है।

वे० इ० का कहना है—"पुनः पुरुषमेधयज्ञवाले...चतुर्दिश मे उसके बिजली के समान" (टि० ३,४ सहित)।

वस्तुतः यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता ३०।५ मे पुरुषमेध के पशुओं मे 'अतिक्रुष्टाय मागधम्' आया है। इसका अर्थ अति-क्रुष्ट देवविशेष के लिये मागध। तथा २२ मे मागध, पुंश्चली, कितव, क्लीब-ये चारों शूद्र और ब्राह्मण से व्यतिरिक्त प्रजापति देवतावाले हैं। ध्यान रहे कि यहाँ पर मागध शब्द है, मगध शब्द नहीं है। मागध का अर्थ यहाँ पर मगधदेशनिवासी या स्तुति करनेवाला या क्षत्रिया में वैश्य से उत्पन्न वर्णसंकर है, जो ब्राह्मण और शूद्र से भिन्न है। तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१।१ में वाजसनेयी सं० के समान पाठ और अर्थ है। अथर्व० १५।२। १।४ का पूरा सूक्त व्रात्य की प्रशंसा मे ही है। वहाँ मागध का व्रात्य के साथ जोड़ना प्रशंसाअर्थ में ही है, निन्दाअर्थ नहीं।

जो लोग किसी कारण से ब्राह्मण्य से पतित हो जाते हैं, उनमें पुनः ब्राह्मण्याधान करने के लिये लाट्यायन श्रौत० की छठी कण्डिका में व्रात्यस्तोम का विधान है। इसमे सब प्रकार के व्रात्यों के लिये कुछ, तथा अन्य विशेष प्रकार के व्रात्यों के लिये कुछ और विधान है। उसमे २८ मे ब्रात्यों के लिये ब्रात्यों के धन को दे, यह लिखा है। क्योंकि वे ही ब्रात्यधन के स्वामी है। जो व्रात्य निरंतर ब्रह्मचर्य से युक्त हैं, उनको ब्रात्यों का धन दे अथवा ब्रह्मबन्धु मागधदेशीय को दे। ब्रह्मबन्धु का अर्थ नीच ब्राह्मण है; अर्थात् उसके बन्धुओं में ब्रह्म है, उसमे नहीं है। मागधदेशीय का अर्थ कुछ कम मागध है। यहाँ पर देशीयर् प्रत्यय 'कुछ कम' अर्थ मे है; अर्थात् अच्छी तरह मागध कर्म को न कर सके। मागध शब्द का अर्थ यश गाने-वाला बन्दी है। सूत, मागध, बन्दी—ये यश गानेवालो के भेद हैं। ये लोग गाथाओं से लोगों की स्तुति करते हैं, इससे गायक कहे जाते हैं। टीकाकार कहते हैं कि दूसरे लोग मगधदेश में उत्पन्न को मागधदेशीय मानते है; अर्थात् मगधदेश मे पैदा हुए ब्रात्य को दे, जिससे ब्रात्यों का पाप उसमे रहे। ब्रात्यस्तोम करने के बाद वह फिर त्रिविधवृत्ति को प्राप्त हो जाता है; अर्थात् फिर मुख्य ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण-योग्य धर्मों का फिर अधिकारी हो जाता है। कात्यायन श्रौ० २२।४।२२ (२२।१४४) में 'मागधदेशीय ब्रह्मबन्धवे' ऐसा लिखा; अर्थात् जो संपूर्ण ब्रात्य या मगधदेश निवासी ब्रह्मबन्धु हो, उसे दे। और लोग तो मागध का अर्थ बन्दी मानते है, उनमे जो कुछ न्यून हो उसे दे—यह अर्थ करकाचार्य ने किया है। पंचविंश ब्रा० १७।१।१६

से १७ तक में भी व्रात्यों के लिये व्रात्यों का धन देने का वर्णन है। इन सूत्रों में मागधदेशीय शब्द नहीं है।

वे० इ० का कथन है–"श्रौतसूत्रों में व्रात्यों की विशेषता .. मगध में रहते हुए मिलता है" (टिप्पणी ५ सहित)।

वस्तुतः वैदिक इन्डेक्सकार का यह कथन कि 'मागध में रहते हुए बुरे ब्राह्मणों की भाँति मिलता है'—श्रौतसूत्रों के तात्पर्य को न समझने से मनमाना अर्थ है। वहाँ पर तो जो ब्राह्मण व्रात्य है, संस्कार से उनको पुनः पवित्र ब्राह्मण बनाने का प्रकरण चला है। उस समय उनके पास की वस्तुओं के दान का वर्णन है। उनसे दान लेने के योग्य उसी प्रकार के पतित लोग पात्र होने से ब्रह्मबन्धुओं और मागधों के लिये उसका विधान है। मागध का अर्थ हम ऊपर कर चुके हैं। देश से रहने के अनुसार ब्राह्मणों में तारतम्य सर्वदा से चला आता है। ब्रह्मावर्त ब्रह्मर्षिदेश के ब्राह्मणों को मनु ने सर्वोच्च माना है। मगध इत्यादि देश की भूमि उतनी पवित्र नहीं है। इसलिये वहाँ के निवासियों की उतनी उच्चता नहीं है, अर्थात् औरों से कुछ न्यूनता में आचार्यों का तात्पर्य है। ब्रह्मबन्धु या मागध-देशीय दोनों दान के पात्र हैं, इसमें आचार्य का तात्पर्य है। ब्रह्मबन्धु सर्वत्र हो सकते हैं। केवल मागधदेशीय का 'जब मगध-देशनिवासी अर्थ किया जाय तब सर्वत्र एवं प्रति समय मिलने का संभव नहीं।

वे० इ० का कथन है—"किन्तु यह सिद्धान्त पंचविंश ब्रा० में...प्रत्यक्षरूप से उचित है" (टिप्पणी ६,७,८ सहित)।

मगध में आदरणीय ब्राह्मण कभी-कभी रहते थे, इसका

क्या प्रमाण है ? वस्तुतः वहाँ भी ब्राह्मण सर्वदा से रहते थे और आदरणीय थे। ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश के ब्राह्मण उनसे अधिक मान्य थे। यह नहीं था कि कभी-कभी वहाँ जाकर आदरणीय बस जाते थे।

वे० इ० का कहना है—"बौधायन और अन्य सूत्रों में ·· यह बिल्कुल असम्भव है" (टिप्पणी ९,१०,११,१२ सहित)।

वस्तुतः अथर्व० में 'मगध' शब्द 'देश' अर्थ मे है, उससे भिन्न अर्थ का वहाँ पर संभव नहीं। यजुर्वेद में 'मागध' शब्द है, उसके तीनों अर्थों का संभव है। 'मगध' शब्द 'देश' अर्थ मे अथर्ववेद, पुराण, स्मृति इत्यादि मे है। उसमे रहनेवाले, एक वर्णसंकर जाति और वैतालिको का भेद 'मागध' शब्द से कहा जाता है। जब मनु इत्यादि एक वर्णसंकर जाति मानते हैं और समस्त संस्कृतसाहित्य मागध को बन्दी का भेद मानता है, तो मागध कोई जाति नहीं थी। यह वेदिक इन्डेक्सकार का सिद्धान्त और मगध मे ही मागध को गतार्थ करना माना नहीं जा सकता। उनका मानना अथवा न मानना कोई प्रतिष्ठा नहीं रखता। एक ही अर्थ सर्वत्र हो, ऐसा तो नहीं है। आवश्यकतानुसार अर्थ हुआ करते हैं। सर्वत्र ही मागध मगध का रहनेवाला हो, ऐसा संभव नहीं।

वे० इ० का कथन है—"यह बात कि मागध बाद मे··· संबंध द्वारा एक उत्पत्ति का आविष्कार करते हैं।"

यह कथन निःसार है। सर्वदा से तीन मागध कहे जाते थे। राजाओ के यहाँ बन्दीगण सर्वदा से रहते थे। वे प्रायः

उसी देश के निवासी होते थे। मगध से पश्चिम जाया करते थे, यह भी ठीक नहीं। यदि पश्चिम ही जाया करते थे तो मगध से पूर्व, दक्षिण और उत्तर के राजाओं के यहाँ के मागध किस देश के थे? वे० इ० कार के कथन में विदेशियों की घातक नीति स्पष्टतः प्रकट हो रही है कि मागधों को भी घुमक्कड़ सिद्ध करना चाहते हैं। बाद के साहित्य में–मनु के समय में–जो लिखा गया है, वह झूठा और इनका अनुमान सच्चा है, जो 'मगध' और 'मागध' के भेद होते हुए भी दोनो को एक करके व्यवहार कर रहे हैं।

वे० इ० का कथन है—"यह मगधों के प्रति अश्रद्धा... भली प्रकार मालूम होता है" (टिप्पणी १३,१४,१५ सहित)।

वस्तुतः ऋग्० मे 'कीकट' शब्द आया है, उसको निरुक्त ने अनार्यदेश लिखा है। 'कीकट' और 'मगध' दोनो पर्याय हैं। आर्य लोग ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश को सर्वश्रेष्ठ मानते रहे हैं और उनकी दृष्टि मे संसार के अन्य देश उतनी प्रतिष्ठा नहीं रखते थे। इस बात को स्मृतियाँ स्पष्ट कह रही हैं। तत्तत् संप्रदाय के विशेषज्ञ लोग तत्तत् स्थानों को पवित्र मानते हैं। अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा उस भूमि की पवित्रता को देखकर उसको प्रतिष्ठित मानते हैं और वही उनके तीर्थ बन जाते हैं। जिन स्थानों को वे अपवित्र मानते हैं, उसका कारण उन स्थानों पर उनकी घृणा नहीं है। इसी प्रकार देशनिर्णय है। भूत, भविष्य और वर्तमान को प्रत्यक्षरूप मे देखनेवाले ऋषियो ने योगबल से जिस स्थान को जिस बात की सिद्धि के योग्य देखा, वही उसके लिये विधान किया। सभी धर्मों मे तीर्थस्थान हैं, उन्हें सभी

पवित्र मानते हैं—चाहे उनके पूर्वजों ने जो कुछ भी समझकर उन्हें माना हो। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति तो ऋग्वेद आदि के बहुत दिनों के बाद आप भी मानते हैं। फिर भी ऋग्वेद में कीकट के अनार्यनिवासियों को यज्ञादि न करनेवाला कहना बौद्ध धर्म की उत्पत्ति से कैसे सम्बन्ध रखता है? ऋग्वेद के समय तो वहाँ बौद्ध धर्म था ही नहीं, फिर उसके कारण आर्यों को घृणा कैसे हुई? शतपथ की बात भी बौद्ध धर्म से पुरानी है। वे० इ० कार भी इस बात में वेबर का स्वयं खण्डन कर रहे हैं। आदिमनिवासियों का रक्तप्रवाह कहना भी अनुचित है। आर्यों को पर्शिया से बंगाल तक आदिमनिवासी तो बराबर मिले होगे। परन्तु मगध के आदिमनिवासियों मे क्या विशेषता थी, जिसके कारण मगध से वेदों को द्वेष हो गया? शतपथ की कथा का मनमाना मतलब लगाना भी अनुचित है। शतपथ मे अग्नि के जलाने द्वारा देश का पवित्रीकरण वर्णित है। उसमे 'ब्राह्मणत्व नहीं था और ब्राह्मणत्व पैदा किया गया' यह तो नहीं लिखा है। यदि नहीं था, तो कैसे पैदा किया गया? क्या आदिमनिवासियों को ब्राह्मण बना डाला या उन्हें मारकर ब्राह्मणो को बसाया? यदि आदिमनिवासी ब्राह्मण बन गये, तो सभी अनार्यों को ब्राह्मण क्यो नहीं बनाया? यदि सब नहीं बने तो ब्राह्मणत्व सब मे कैसे पैदा हो गया? क्या क्षत्रियत्व और शूद्रत्व नहीं पैदा किया? यदि नहीं किया, तो सभी ब्राह्मण क्यो नहीं हो गये? यदि उन्हें भी बनाया, तो ब्राह्मणत्व का ही पैदा होना क्यो मानते? चारो वर्णों का पैदा करना मानना चाहिये और आदिमनिवासियो का बीज भी होना

चाहिये। यदि उनको मारकर ब्राह्मण बसाये, तो इतने ब्राह्मण कहाँ से उनके साथ आये, जो देशभर मे बस गये? कोशल और विदेह का पवित्रीकरण शतपथ मे स्पष्ट शब्दों से लिखा है। कोशल के अन्त तक को अग्नि ने ही पवित्र बनाया और विदेह को ब्राह्मणों ने यज्ञ द्वारा पवित्र बनाया। शतपथ में विदेह को पवित्र बनाने से पूर्व ब्राह्मण लोग विदेह मे रहते थे, यह लिखा है। क्या वे ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से रहित थे, जो उनमे ब्राह्मणत्व पैदा किया गया? शतपथ मे वहाँ पर मगध का नाम भी नहीं है। कोशलविदेह से कम ब्राह्मणत्व मगध मे था, यह कहाँ से आया? क्या मगध के बाद अंग, कलिग, पुण्ड्र इत्यादि देश नहीं थे? उनमें ब्राह्मणत्व कैसा था, इसे आपने क्यो नही दिखलाया? इससे शतपथ के नाम पर कोरी गप हाँकना शतपथ का अपमान एव अनर्थ करना है।

वे० इ० कार का कथन है—"पार्जीटर सकेत करते हुए ... भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग मिले हैं।" (टिप्पणी १६ से अन्त पर्यन्त)

वस्तुतः पार्जीटर का कथन इन्हीं लोगो के विचारानुसार गढ़ा गया है। ये लोग पश्चिम से पूर्व आर्यों को लिये जा रहे थे। उस बहादुर ने सोचा कि यदि इनसे कुछ नया न कहें तो रिसर्च ही क्या होगा? इससे उन्होने आक्रमणकारी पूर्व से बुलाये। कलकत्ते के पास समुद्र देखकर उन्होने समुद्र से उनको बुलाया। वे कौन थे, यह निश्चय करना कठिन है। क्योकि यहाँ तो कुछ नया कहना है। पूर्व से आक्रमणकारी आ गये, जो आर्यों से भिन्न थे। एक तरफ आर्य बढ़े, दूसरी तरफ से

वे बढ़े—दोनों मगध में मिल गये। बस इतने में एक 'डाक्टर' बन जाने का सामान तैयार हो गया। वैदिक साहित्य जिस प्रकार आर्यों के पर्शिया से आने मे प्रमाण देता है, उसी प्रकार समुद्र से आने मे भी प्रमाण दे सकता है। लेखनी उठाकर लिखनेवाला हो, चाहे जिस वेद को प्रमाण बना सकता है। जब कि उसकी एक बात को भी ठीक न समझकर रिसर्च करना है, तो धृष्टता की मात्रा जितनी अधिक होगी—उतने ही अधिक प्रमाण वेद दे सकेंगे। शतपथ १।४।१।१० का मुख्य तात्पर्य क्या है और वहाँ क्या लिखा है, यह 'कोशल' मे देखिये। माथव की थ्योरी मे मिश्रित जाति का नाम भी नहीं है। वहाँ किसी के उच्च नीच का विचार भी नहीं है। यह उसके देखने से स्पष्ट हो जायगा। नन्दलाल डे ने मगधदेश की जो सीमा लिखी है, उसमे मुंगेर कभी भी मगध मे नहीं था और न मगध की सीमा काशी तक ही थी। क्योकि इन दोनो बातो मे कोई भी प्रमाण नहीं है। मगध का राज्य अवश्य दूर-दूर तक फैला, परंच वे सभी स्थान जो राजा के हाथ में आये वे सभी मगध कहे गये, इसमे भी कोई प्रमाण नहीं है। यहाँ चेर और कोल रहते थे, यह सिद्धान्त प्रमाणाभाव से माना नहीं जा सकता। वैसे तो समस्त भारत कोल भीलो का था। आर्य लोग मुसलमान और अंग्रेजों की भाँति बाहर से आये। यह सिद्धांत बिना किसी हिचकिचाहट के सत्य के समान गाया जाता है, जो कि सर्वथा कल्पित और प्रमाणरहित है। पुराणो मे मगध का वर्णन इस प्रकार है:—पद्म० आदि० ६।४०, विष्णु २।३।१६, ब्रह्म० १९।१६ यह देश भारत में है। मत्स्य० १२१।५० यह

देश भारत मे है और यहाँ गंगा है। नारदीय० पू० ५६।७४१, मार्क० ५५।१२ यह देश पूर्वमुखवाले कूर्म के मुखमण्डल मे है। वामन० १३।४, गरुड़० पू० ५५।११ यह देश भारत मे है और पूर्व मे है। महाभा० भी० ९।४५ यह देश भारत मे है। वायु० पू० ४७।४८ यह देश भारत में है। मत्स्य० ११४।४५ यह देश भारत में है और पूर्वी है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।५५ यह देश पूर्वी भारत मे है। राजतरंगिणी ४।२५९ मागध देश है। स्कन्द० माहे० कौमा० ३९।१५९ मागधदेश भारत मे है। वाल्मीकि० बाल० (गु०) १३।२६ मगध यह देश है। बाल्मी० बाल० (नि०) ३२।९ मगध देश है और यहाँ मागधी-नदी है। महाभा० हरि० हरि० ५।४२ इसको पृथु ने मागध को दिया। व्याकरण महा० पश्पशाह्निक (अइउण्) यह एक देश है। काशिका 'जनपदेलुप्' मगधो का निवासस्थान जनपद मगध है। काशिका ४।१।१७८ यह देश है और क्षत्रियाभिधायी है; अर्थात् मगध क्षत्रिय भी है और मगध देश भी है तथा प्राच्य है। महाभा० सभा० (चि०) २०।२९ इसमे शोण से पूर्व मागधक्षेत्र है। इस देश मे गोरथपर्वत है और मागधपुर है। (मद्रास) २१।३१।३१ मागध देश है और गोब्रज पर्वत है, ऐसा पाठ है। मागधपुर गोब्रज गिरि के समीप मे है। विष्णु-धर्मोत्तर १।९।३ मगध यह देश पूर्व दिशा मे है। रघुवंश ६।२४ यह देश है और इसकी राजधानी पुष्पपुर है। गोपथ ब्राह्मण २।१० अंग के साथ मगधशब्द देशअर्थ मे आया है। 'अंग मगधेषु' ऐसा पाठ है। बृहत्कथा श्लोकसंग्रह १७।१६५ यह देश अंग के समीप है।

मत्स्य—१. वे० इ० "ऋग्०[1] के एक अवतरण में मनुष्यो का नाम मालूम होता है, जहाँ कि उनको सुदास् के अन्य शत्रुओं मे स्थान दिया गया है। यद्यपि यह संभव है कि उस पद से केवल मछली का ही आशय ग्रहण किया जाय। शतपथ[2] ब्रा० मे अश्वमेध करनेवालों की सूची मे अश्वबलि देनेवाले ध्वसन द्वैतवन को मत्स्य का राजा कहा गया है। (मात्स्य) मत्स्याज् जन के रूप मे कौषीतकी[3] उपनिषद् में वशास्[4] के सम्बन्ध मे मिलते हैं और गोपथ[5] ब्रा० में शाल्वस् के सम्बन्ध में मिलते हैं। मनु०[6] मे कुरुक्षेत्र मत्स्याज् पांचालस् और शूरसेनकाज् ब्राह्मण ऋषियों की भूमि को बसाये हुए है (ब्रह्मर्षि देश)। कोई संदेह नहीं है कि मत्स्याज् उसी स्थान को घेरे थे, जैसा कि एपिक के समय मे अलवर, जयपुर, भरतपुर[7]।"

---

(१) ७।१८।६।

(२) १३।५।४।६। (३) ४।१।

(४) यह पढ़ाई अधिक उपयुक्त है जो कि गोपथ ब्रा० से तुलना करने पर फलस्वरूप मिली है। १।२।६ जहाँ पर कि शाल्व मत्स्येषु का अनुकरण सुवश उशीनरेषु से हुआ है। (अशुद्ध छपाई शवश) देखो कीथ जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०८।३६७। पुरानी विचारधारा सत्वन्मत्स्येषु थी मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १।७७। कावेल का अनुसरण करते हुए सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी 'सत्वन्त'।

(५) १।२।६।

(६) २।१६ तथा ७।१६३।

(७) देखिये विनसेन्ट स्मिथ जेट्स क्रिफ्ट डेरडिवुटेक्शन मार्गेन

२. बिनसेन्ट स्मिथ, वानस्काउडर, वेबर और जिमर अल-वर, जयपुर और भरतपुर को मत्स्य मानते हैं।

३. कनिंगहम इशेन्ट जाग्राफी पृ० ३८७ "वैराट (वे० इ०) ह्वेनसांग के अनुसार पोक्तियोटोलो, जिसका एकीकरण एमूरे-नौड ने पारियात्र अथवा वैराट से किया है। यह राजधानी मथुरा से पश्चिम में ८३$\frac{1}{3}$ मील की दूरी पर स्थित थी। यह शेटोटुलो शतद्रु या सतलज के दक्षिण-पश्चिम मे करीब ८०० ली; अर्थात् १३३$\frac{1}{3}$ मील थी। महमूद का समकालिक आबूरिहान करजात की राजधानी नरान को मथुरा के पश्चिम में २८ परसंग की दूरी पर मानता था। प्रत्येक परसंग को ३$\frac{1}{2}$ मील की दूरी मानने से पूरी दूरी ९८ मील होगी। यह ह्वेनसाँग की नाप से १४ मील अधिक। क्योंकि मुसलमानों की सारी कथाएँ करजात की राजधानी के समीकरण की वैराट की राजधानी नारायण से सूचित करती है। अत: मथुरा की भिन्न-भिन्न दूरी का इतिहास अधिक मूल्य नहीं रखता। आबूरिहान के अनुसार मुसलमानों के द्वारा नरान या बजाना नारायण कह-लाती थी। यह नाम अब भी नारायणपुर मे स्थित है। नरायण-पुर वैराट के उत्तर-पूर्व में १० मील की दूरी पर है। कन्नौज से नरान को आबूरिहान के अनुसार दो मार्ग जाते है। पहला सीधे मथुरा से ५६ परसंग या १९६ मील। और दूसरा जमुना के दक्षिण में ८८ परसंग या ३०८ मील। बाद के मार्ग के बीच

लान्डिस् चेन गेसलस् चेफ्ट ५६।६७५। तुलना करो वानस्काउडर इंडियन्स लिटरेचर ऐन्ड कलचर १६६, वेबर इन्डिरचेस्टडियन १।२११, जिमर अल्टिन डिस्चेजलेवेन १२७।

के नगर हैं:—(१) असै १८ परसंग या ६३ मील, (२) सकीन १७ परसंग या ५९॥ मील, (३) जनद्र १८ परसंग या ६३॥ मील, (४) रजौरी १५ या १७ परसंग या ५४ या ५९॥ मील और (५) नरान या बजाना २० परसंग या ७० मील।"

"पहले की दिशा कन्नौज से पश्चिम-दक्षिण मे है। अतः इसका एकीकरण अस्सै घाट से हो सकता है, जो इटावा से दक्षिण ६ मील की दूरी पर है और कन्नौज से दक्षिण-पश्चिम में ६० मील की दूरी पर है। दूसरा सहिना (सुहानियाँ) पढ़ा जा सकता है, जो एक बहुत बड़ा नष्टप्राय नगर ग्वालियर के उत्तर में २५ मील की दूरी पर है। अस्सैघाट से इसकी दूरी ५६ मील है। तीसरा एमरेनोड के अनुसार जनद्र और सर-हेनरी इलियट के अनुसार चंड और हमारे मत के अनुसार हिंडन होगा। चंबलनदी पर स्थित खेरीघाट के द्वारा सिहनियाँ की दूरी ७० मील है। चौथी रजौरी, जो अब भी इसी नाम से स्थित है, माचेरी के दक्षिण-पश्चिम में १२ मील की दूरी पर है और हिंडन के उत्तर-पश्चिम में ५० मील। वहाँ से नरायण और वैराट को मार्ग अलवर या माचेरी के पर्वतों से होकर है, जिससे वास्तविक दूरी मालूम करना कठिन हो जाता है। पत्थर के छापे की लिपि के अनुसार ८ मील को एक इञ्च मानने पर दूरी ६० मील मानता हूँ, जो आबूरिहान के अनुसार २० पर-संग या ७० मील के लगभग होगा।"

"आबूरिहान की अन्य मार्गसूचक पुस्तकों के अनुसार नरा-न मेवाड़ में स्थित चित्तौड़ के उत्तर में २० परसंग की दूरी पर था और मुलतान के पूर्व में ५० परसंग तथा अनहिलवाड के

उत्तर पूर्व मे ६० परसंग। वैराट से यह सब एरिया लगभग ठीक है। केवल नाप डेढ़ गुना कम है। पहली दूरी चित्तौड़ की २५ परसंग है, मैं उसे ६५ परसंग या २२७ मील मानूँगा। रशीदुद्दीन ने आबूरिहान का संग्रह किया है, उसमे चित्तौड़ का नाम ही छूट गया है। अतः यह सभव है कि तारीखहिन्द मे भी कुछ छूट गया होगा, जहाँ से उसने नकल की है। मुलतान से ५० मील की गलती क्षम्य है। क्योंकि मार्ग रेगिस्तान से होकर है और सेना वहाँ न जा सकी, इससे मार्ग कल्पित है। अनहिलवाड की दूरी के अन्तर को इस प्रकार मैं स्पष्ट करूँगा— चित्तौड़ की दूरी की नाप ६० परसंग है, जो बैराट और अनहिलवाड के मध्य मे स्थित है। इन भिन्न मार्गसूचक पुस्तको की तुलना करने पर मैं निश्चयपूर्वक बजान या नरान का, जो करजात या गुजरात की राजधानी है, नारायणपुर से एकीकरण कर सका हूँ। नारायणपुर बैराट या वैराट की राजधानी है। फेरिश्ता में अन्तिम नाम किब्रात जैसा कि डो ने या जैसा कैरात ब्रिग्ज मे लिखा है, दोनों ही नाम विराट् या वैराट के अशुद्ध रूप हैं।"

"वैराट जो मत्स्य की राजधानी है, हिन्दूकथा के आधार पर पाण्डवों का निवासस्थान माना जाता है, जब कि वे १२ वर्ष तक दिल्ली या इन्द्रप्रस्थ से छिपे रूप में रहे थे। यह देश यहाँ के निवासियो की वीरता के लिये प्रसिद्ध है, जैसा कि मनु आदेश देते है कि सेना इंद्रप्रस्थ के निकट कुरुक्षेत्रनिवासियो की होनी चाहिये। और भी मत्स्य या विराट, पंचाल या कान्यकुब्ज और मथुरा में सूरसेन के लोग भी वीर होते थे। भीम

का निवासस्थान इस नगर के उत्तर में करीब एक मील पर एक बड़ी और नीची पहाड़ी पर बतलाया गया है। यह पहाड़ी असंख्य बिल्लौर पत्थरो (चमकीले पत्थरो) की बनी है, जो गोल है। इसी तरह भीम की गुफा भी है, जो दीवारों की बनी है और वह एक बड़ी भारी चट्टान में जुड़ी है। इसका व्यास ६० फीट और ऊँचाई १५ फीट है। इसी तरह के कमरे; किन्तु इससे छोटे भीम के भाइयों के भी निवासस्थान थे। अब भी उस स्थान पर कुछ ब्राह्मण रहते हैं, जो अपनी जीविका का निर्वाह यात्रियो के दान से करते है। उनकी हृष्ट पुष्ट आकृति को देखकर यह असत्य प्रमाणित होता है। भीम-गुफा के नीचे एक छोटे गढ़े के पास एक दीवार बनी है और उस गढ़े मे वर्षा का जल एकत्र किया जाता है। एक दरार से पत्थर के टुकड़े हटाकर एक तालाब बनाया गया है, जो १५ फीट लम्बा, ५ फीट चौड़ा और १० फीट गहरा है। किन्तु १० नवम्बर को जब मै वहाँ गया था तब वह बिल्कुल सूखा था।"

"वैराट का आधुनिक नगर एक गोल घाटी के मध्य मे स्थित है, जिसके चारो ओर लाल पहाड़ियाँ हैं, जो ताँबे की खानों के लिये चिरकाल से प्रसिद्ध है। यह देहली के दक्षिण-पश्चिम मे १०५ मील की दूरी पर है और जयपुर के उत्तर में ४१ मील की दूरी पर है। घाटी का मुख्यद्वार उत्तर-पश्चिम में है, जो एक छोटी-सी जलधारा के तट पर है और वह बाण-गंगा की सहायकनदी को बनाती है। इस घाटी का व्यास ढाई मील है और इसका घेरा ७॥ से ८ मील तक में है। जमीन अच्छी है और इमली के वृक्ष अधिकांश मे पाये जाते हैं।

वैराट एक नष्टप्राय ढेर पर स्थित है, जो एक मील लंबा और आधा मील चौड़ा तथा ढाई मील के घेरे में है। आधुनिक नगर इसका चौथाई है। आस-पास के खेत पहाड़ की कीट के टुकड़ों एवं मिट्टी के टुकड़ों से परिपूर्ण हैं और घाटी का दृश्य-ताँबे के रंग का है। वैराटनगर नामक पुराना नगर बहुत शताब्दियों तक जनशून्य रहा। फिर तीन सौ वर्ष पहले संभवतः अकबर के शासनकाल में मनुष्यों से आबाद हुआ। निश्चय ही यह नगर अकबर के समय मे विद्यमान था, क्योंकि अबुलफज़ल ने आइनेअकबरी में लिखा है कि वैराटनगर में बहुत सी ताँबे की खानें थीं। पहाड़ी के नीचे और पूर्व से आधे मील की दूरी पर बहुत से छोटे ढेरों ने नगर के हिस्से को बनाया था। लेकिन उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि वे किसी धार्मिक संस्था के भाग होंगे, ऐसा उनकी स्थिति और आकृति सूचित करती है। लेकिन इस समय वहाँ की भूमि पर केवल पत्थर की नींव-सी दिखलाई देती है। सारे चौखुण्टे पत्थर आधुनिक इमारत के बनाने में प्रयुक्त हो चुके हैं।"

"वैराट मे मकानों की संख्या १४०० है, जिनमें ६०० गौड़ ब्राह्मणों के हैं, ४०० अग्रवाल बनियों के और २०० मीनास के तथा शेष २०० अन्य जातियों के हैं। प्रति घर मे ५ मनुष्यों की आबादी मानने से वैराट की जनसंख्या ७ हज़ार की है।"

"सब से पहिले वैराट ६३४ ई० में चीनी यात्री ह्वेनसाँग द्वारा देखा गया था। उसके अनुसार १४ या १५ ली या ढाई मील के घेरे में था, जो उस पुराने ढेर से मिलता है, जिस

पर आधुनिक नगर बना है। वहाँ के मनुष्य वीर एवं साहसी थे और उनका राजा फेसे वैश्य या वैस राजपूत जाति का था। वह युद्ध मे अपनी वीरता और कुशलता के लिये प्रसिद्ध था। वहाँ पर अब भी आठ बौद्ध धार्मिक संघ हैं। किन्तु भिक्षुओं की संख्या अब कम रह गई है और संघ नष्टप्राय अवस्था में है। भिन्न भिन्न कोटि के ब्राह्मणों के, जिनकी संख्या १००० है, बारह मंदिर हैं। किन्तु उनके अनुयायियों की जनसंख्या बहुत थी। ह्वेनसाँग के लेख के अनुसार नगर की दीर्घता को देखने पर यह पता लगता है कि उस समय वहाँ की जनसंख्या आधुनिक जनसंख्या से चौगुनी होगी; अर्थात् ३००००, जिसमें चौथाई बौद्ध थे। मैंने बौद्धों की संख्या कम कर दी है, क्योंकि प्रत्येक बौद्ध संघ मे १०० भिक्षु थे और वैराट के संघ नष्टप्राय अवस्था मे प्रतीत होते हैं। ह्वेनसाँग के समय में प्रति संघ मे ५० से कम न रहे होंगे या सब मिलाकर ४०० होंगे। क्योंकि प्रत्येक भिक्षु भिक्षा के द्वारा अपना निर्वाह करता था। बौद्ध घर १२०० से कम न रहे होंगे, क्योंकि प्रति भिक्षु की सहायता के लिये तीन कुटुम्बों को होना चाहिये; अर्थात् ४०० भिक्षु और ६००० बौद्ध।"

"महमूद गजनवी के समय में पुनः वैराट का ऐतिहासिक वर्णन मिलता है, जिसने भारत पर १००९ ई० में आक्रमण किया। जब कि राजा ने उसका प्रभुत्व मान लिया; किन्तु उसका प्रभुत्व मानना व्यर्थ हुआ। क्योंकि उसके देश पर पुनः १०१४ ई० मे आक्रमण हुआ और बड़े भारी रुधिरपात के बाद हिन्दू पराजित हुए। आबूरिहान के अनुसार नगर बिल्कुल नष्ट कर

डाला गया और वहाँ के लोग मध्यभाग से चले गये। फेरिश्ता के अनुसार यह आक्रमण ४१३ हिजरी या १०२२ ई० मे हुआ, जब कि बादशाह ने यह सुना कि दो पहाड़ी स्थानों वैराट या नारदिन के, या वैराट या नारायण के लोग अब भी मूर्तिपूजा कर रहे है। उसने निश्चय किया कि उनको मुसलमानी धर्म मानने के लिये वह बाध्य करेगा और अमीरअली ने उस स्थान को लूटा और ले लिया। इसने नारायण पर एक शिलास्तम्भ बनवाया, जो यह बतलाता है कि नारायण का मंदिर ४०००० वर्ष पूर्व बना। क्योंकि समकालिक इतिहासकार ओटबी के द्वारा भी इस शिलालेख का उल्लेख किया गया है। अतः पत्थर के लेख के खोज की बात हम स्वीकार कर लेगे और यह लेख इतना पुराना था कि उसके अक्षर ब्राह्मण भी नहीं पढ़ पाते थे। मै इस बात को संभव समझता हूँ कि यही अशोक का वह प्रसिद्ध शिलास्तम्भ है, जिसका पता बाद मे मेजर बर्ट ने वैराट की पहाड़ी की चोटी पर लगाया था और इस समय कलकत्ते के एशियाटिक सोसाइटी के अजायबघर में है। ७ वीं शताब्दी मे वैराट का देश ३००० ली या ४०० मील के घेरे में था और वह बैल एवं भेड़ों के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ फल और पुष्प कम होते थे। वैराट के दक्षिण में जयपुर की अब भी वैसी दशा है, जो मुसलमानी नगर देहली और आगरे के अंग्रेजों की भेड़ों की माँग को पूरा करता है। जयपुर का अधिक भाग वैराट में सम्मिलित रहा होगा। उसकी वास्तविक सीमा तो बनाई नहीं जा सकती; परन्तु लगभग उत्तर मे झुंझनू से कोट-कासिम तक ७० मील, पश्चिम मे झुंझनू से अजमेर तक १२०

मील, दक्षिण में अजमेर से बनारस और चम्बल के संगम पर १५० मील और पूर्व में संगम से कोटकासिम तक १५० मील —यह सब मिलाकर ४९० मील है।"

ह्वेनसाँग पृ० १८० "पोलीयेटोलो पार्यात्र[1]—इस राज्य का क्षेत्रफल ३००० ली है और राजधानी का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। गेहूँ तथा अन्य अन्नादि अच्छा होता है। यहाँ एक विचित्र प्रकार का चावल होता है, जो साठ दिन में तैयार हो जाता है। बैल और भेड़ बहुत है; परन्तु फल फूल कम। प्रकृति गर्म और दुःखद है। मनुष्यों का आचरण दृढ़ और कठोर है। इनको विद्या से प्रेम नहीं है तथा धर्म भी बौद्ध नहीं है। यहाँ का राजा वैश्यजाति का है, जो वीर, बली और बड़ा लड़ाकू है। कुल आठ संधारामठ उजड़े-पुजड़े है, जिनमे थोड़े से हीनयान-संप्रदायी सन्यासी निवास करते हैं। देवमंदिर दश हैं, जिनमे भिन्न-भिन्न प्रकार के १००० उपासक है। यहाँ से पाँच सौ ली पूर्व दिशा में चलकर हम मोटउलो (मथुरा) प्रदेश मे पहुँचे।"

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १२८ "मत्स्यदेश जयपुर की रियासत। इसमें आधुनिक अलवर रियासत और भरतपुर रियासत का एक भाग शामिल था। (महाभा० सभा० अ०

---

(१) ह्वेनसॉग ने पार्यात्र से मथुरा तक की दूरी १०० मील और मथुरा से पार्यात्र को पश्चिम दिशा मे लिखा है, जिससे इसका विराट या वैराट होना ठीक पाया जाता है। परन्तु सरहन्दि से इस स्थान की दूरी ८०० ली का ठीक मिलान नहीं होता। सरहिन्द से विराट २२० मील दक्षिण दिशा में है।

३० और विराट० अ० १, थारन्टन का गजटियर और आर-कीयो लाजिकल सर्वेरिपोर्ट खण्ड २० पृ० २ और वालुम २ पृ० २४४) यह राजा बिराट का राज्य था, जहाँ पर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ अज्ञातवास मे रहे थे। विराट या वैराट राजपूताने की जयपुर रियासत में है। बौद्धों का मच्छ (मत्स्य) देश ही है और यह १६ बड़े जनपदों मे से था, जो पिटकों में वर्णित है (एस्० बी० ई० वालूम १७, पृ० १४६ नोट)। मछेरी जो मत्स्य का रूपान्तर है, वह जय-पुर रियासत में है तथा अलवर से २२ मील दक्षिण है। 'विराट' देखिये।"

"कुर्ग (स्कन्द पु० कावेरी माहात्म्य अ० ११ से १४ तक, राइस का मैसूर और कुर्ग खण्ड ३ पृ० ८८ से ९१ तक)।"

"पूर्वी मत्स्य वैशाली को मिलाकर तिरहुत का दक्षिणी भाग प्रतीत होता है। ह्वेनसाँग के अनुसार बड़ी मछलियोंवाला देश (बील का रिकार्डस् आफ वेस्टर्न कन्ट्रीज् २।७८, जे० ए० एस० बी० १९०० पृ० ८३, महाभा० सभा० अ० ३०)।"

वस्तुतः यह जनपदसमानक्षत्रियवाची शब्द है। इस देश का राजा, इस क्षत्रिय का पुत्र एक वचन और द्विवचन मे मात्स्य कहे जाते हैं। बहुवचन में मत्स्य शब्द से व्यवहार होता है। इसके निवासी मात्स्य कहे जाते हैं। यह देश मध्यदेश मे है और ब्रह्मर्षिदेश का एक भाग है। ऋग्० मे इसका वर्णन है। शतपथ, गोपथ और ऐतरेय ब्राह्मण मे इसका नाम आया है और कौषीतकी उपनिषद् में इसका नाम है। पुराणों में भी इसका वर्णन है। ऋग्० ७।१८।६ का अर्थ यह है:—"यक्षु=

यज्ञकुशल पुरोगामी (आगे चलनेवाला) तुर्वश नाम का राजा था। उससे मत्स्यदेश बाधिता था। उस तुर्वश ने धनप्राप्ति के लिये इन्द्र के मित्र सुदास् के ऊपर चढ़ाई की। द्रुह्यु और भृगु योद्धाओ ने तुर्वश को सुखी किया। दोनों के मध्य में सुदास् के मित्र इन्द्र ने सुदास् को युद्ध से पार किया; अर्थात् तुर्वश को मार डाला या मित्रता करा दी।" इसमें मत्स्यदेश को तुर्वश राजा ने सता रखा था, यह लिखा है। 'मत्स्य' शब्द 'देश' अर्थ मे आया है और उसके निवासी सुदास् के शत्रु या मित्र थे, इसका वर्णन ऋग्वेद में नहीं है। परन्तु जब सुदास् के शत्रु तुर्वश द्वारा वे लोग सताये गये थे तो सुदास् के मित्र या उदासीन हो सकते हैं, न कि शत्रु। वेदिक इंडेक्सकार का सुदास् के शत्रुओं में स्थान देना निराधार और झूठा है। शतपथ के अश्वमेध करनेवालों की सूची मे (१३।५।४।९ में) मत्स्यदेश के राजा ध्वसा द्वैतवन सम्रामजित् के १४ अश्वमेधों का द्वैतवनसर के समीप करने का वर्णन है। इसी कारण उस सर का नाम द्वैतवन हो गया। कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् में लिखा है कि गार्ग्यबालाकि उशीनरदेश में रहा, फिर मत्स्यदेश मे रहा, फिर कुरुपांचाल देशों मे रहा, तब काशी के राजा अजातशत्रु के पास गया। यहाँ मत्स्यशब्द देशअर्थ में है, इससे "जन रूप मे है" यह वेदिक इन्डेक्सकार का कहना असंगत है। कौषीतकी ब्रा० का पाठ यह है "गार्ग्योहवै बालाकिरनूचानः संस्पष्टआस सोऽयमुशीनरेषु संवसन्मत्स्येषु कुरुपंचालेषु काशी विदेहेविति सहाजातशत्रुं काश्यनेत्योवाच।" भाग्यवश जो पुस्तक योरोपियन विद्वानों के हाथ लगी उसका पाठ अशुद्ध था। और

'संवसन्' के स्थान मे 'सत्वन्' पाठ था। मैक्समूलर इत्यादि 'सत्वन्' अर्थ करते हुए घूमे और राथ ने कावेल का अनुकरण कर 'सत्वन्त' समझा। कीथ ने गोपथ २।१० के अनुसार शाल्वमत्स्येषु शवसेशीनरेषु के साथ जोड़कर 'सवसन्' का 'सवश' कर डाला, और मत्स्य को जन के रूप मे कहते हुए अपने प्रखर पाण्डित्य का परिचय दिया। गोपथ का पाठ यह है—(विचारी हवा का) 'वन्धिः कबन्धास्याथर्वणस्य पुत्रः मेधावी मीमांसकः अनूचानः आस सस्वेन अति मानेन मानुषवित्तं नेयाय तं मातोवाच। तएवैनमवोचंस्त इमएषु कुरुपचालेषु अङ्गमगधेषु काशिकौशलेषु सात्वमत्स्येषु सवसोशीनरेषु उदीच्येष्वेव समन्नमदन्ति अथ वयं तवैवाति मानेन नाद्यास्मः।' इसका अर्थ यह है:— विचारी नाम का कबंध आथर्वण का पुत्र मेधावी मीमांसक और वेदार्थवक्ता था; परंच अपने योग्यतानुसार उसको धन नहीं मिलता था। तब माता ने कहा कुरु और पंचाल देशो में, अंग और मगध देशो मे, शाल्व और मत्स्य देशो मे और वश-सहित उशीनर देशो मे और उत्तरी देशों मे लोग अन्न खाते हैं। हम लोग ही ऐसे हैं जो अन्न को भरपेट नहीं खाते, इत्यादि। परंच कौषीतकी उपनिषद् मे 'संवसन्' पाठ है और वह उन देशों में बसना अर्थ बतला रहा है तथा 'मत्स्य' का अर्थ 'देश' है। गोपथ में भी देश ही अर्थ है। योरोपियन विद्वानों का पाठ-संशोधन और अर्थ करना दोनो असंगत हैं। मनु ने पहले सरस्वती और दृषद्वती के मध्य को ब्रह्मावर्तदेश बतलाया और उसी से लगा ब्रह्मर्षिदेश कहा। उस ब्रह्मर्षिदेश में कुरुक्षेत्र; अर्थात् कुरुदेश तथा मत्स्य, पंचाल और शूरसेन देशों को बत-

लाया। मिस्टर कनिंगहम ने बड़े परिश्रम से स्वयं देखकर और मुसलमानों के लेखों को पढ़कर उनको मिलाने की मनमानी कल्पनाएँ कीं और उनको ठीक किया, जो मुसलमान लेखकों के अज्ञान को सूचन कर रहा है और उसके द्वारा अपना लेख सीधा किया। विचार करने पर २५ के स्थान पर ६५ मान लेना और लेख को सत्य करना, जहाँ चाहें वहाँ मान लेने के बराबर है। असैघाट की कन्नौज से दूरी ६० मील लिखना भी ठीक नहीं मालूम पड़ता, जो लगभग ८० मील के होगा। मुसलमानों के लेख नारायणपुर के विषय में है, जो उस प्रान्त की राजधानी वैराट से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखते। नारायणपुर के शिलास्तम्भ का वर्णन मिलता है और वैराट मे अशोक-स्तम्भ का मिलना है, अतः ये दोनों एक कैसे समझे जायँ—यह समझ मे नहीं आता। मनु ने जो ब्रह्मर्षिदेश का वर्णन किया है उसके अनुसार वहाँ पैदा हुए ब्राह्मणो से पृथ्वी के सभी लोग धर्म सीखें तथा ७।१९३ मे ब्रह्मर्षिदेश के निवासियों को सेना मे आगे करना चाहिये। इससे वहाँ के ब्राह्मण धार्मिक तथा क्षत्रिय वीर थे, यह सिद्ध होता है। इनमें कोई भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो इस प्रान्त को मत्स्य सिद्ध कर सके। भीम की गुफा इत्यादि सब काल्पनिक हैं, क्योंकि महाभारत के वर्णन के विरुद्ध हैं। महाभारत में लिखा है कि ये लोग नगर मे रहते थे और भिन्न-भिन्न स्थानो में रहते थे। भीमसेन रसोईखाने के स्वामी थे, जो प्राकार के भीतर था। उस पहाड़ी का भीम तथा अन्य पाण्डवों से कोई सम्बन्ध नहीं था; न किसी कुण्ड का ही

वर्णन मिलता है। एक पुराण[1] में इसके पास एक पर्वत का होना अवश्य लिखा है, परंच महाभारत में पहाड़ का नाम नहीं है। नगर के उत्तर और दक्षिण में कुछ दूरी पर विराट की गायें रहती थीं, उन्हीं को लेने के लिये उत्तर और दक्षिण मे युद्ध का वर्णन है। विराटनगर घाटी मे था, इसका भो महाभारत में कोई वर्णन नहीं है। इसी प्रकार कई विराटनगर हैं। (१) चम्पारण्य जिले में एक कीचकवध नामक ग्राम है, वहाँ के निवासी कहते हैं कि कीचक यहीं जलाया गया था। वहीं पर एक नाला भी है। (२) यू० पी० के खीरी लखीमपुर जिले मे हरगाँव नामक स्टेशन को विराटनगर मानते हैं। वहाँ पर एक किले का भग्नावशेष बहुत बड़ा पड़ा है, जो किसी महानगर का होना सूचित कर रहा है। वहाँ एक कुँआँ है, उसमे राक्षस का शब्द सुनाई देता है—ऐसी वहाँ की प्रसिद्धि है और हमने भी सुना है। गोकर्णमाहात्म्य मे मिश्रक (मिसरिख) के दधीचकुण्ड से कुछ धनुष् की दूरी पर विराटनगर है, यह लिखा है। यह माहात्म्य किस पुराण का है और कितने धनुष् की दूरी पर है, इसका पता नहीं। पाण्डव लोग ज्ञात होने के बाद जहाँ रहे, उस स्थान का नाम उपप्लव्य ओपल राजधानी से मिलता है। (३) इसी जिले में गोलागोकर्णनाथ से कुछ दूरी पर मोहमदी नामक स्थान गोमतीनदी के तट पर है। यहाँ पर

---

(१) स्कन्द० प्रभा० ३५।३५ विराटनगर गोपायनगिरि के समीप में है। नगर और गिरि के मध्य में एक कुण्ड है, जिसमे सरस्वती है। वहीं पर रहते हुए और स्नान करते हुए केशव से रक्षित पाण्डवों को किसी ने नहीं जाना।

भी बहुत दूर तक नष्टनगर के चिन्ह मिलते हैं। वहाँ के निवासी इसे भी विराटनगर कहते हैं। यू० पी० के प्रतापगढ़ जिले में वाराप्रतापगढ़ पट्टी तहसील मे प्रतापगढ़ से १५ मील पर ध्वस्त दुर्ग को लोग विराटपुर कहते हैं। उससे उत्तर-पश्चिम चार मील पर धमधमा नाम का स्थान कीचक का श्मशान कहा जाता है। वहाँ पर दुर्ग के ध्वस्त भाग मे हड्डी, कोयला इत्यादि मिलता है। वहाँ पर साधारण वस्तु पटकने से पोले पर पटकने के समान शब्द होता है। पैर पटकने से भी शब्द होता है। इसी कारण लोग इसे 'धमधमा' कहते हैं तथा इसे कीचक का किला बतलाते हैं। जागराफी आफ अर्ली बुद्धिष्ट पृ० १९ के अनुसार मत्स्यदेश आधुनिक जयपुर के आस-पास का प्रान्त है (आजकल का समस्त अलवर और भरतपुर का एक भाग)। अङ्गुत्तर-निकाय वालू० १ पे० २१३, वा० ४ पे० २५२, २५६, २६० से मालूम पड़ता है कि सोलह जनपदो में से यह एक था। विधुर-जातक से ज्ञात होता है कि मत्स्य लोगों ने कुरु के राजा तथा यक्ष पुण्यक के जुएँ के खेल को देखा था। गोपथ ब्रा० १।०।२। ९ से ज्ञात होता है कि यह देश इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण पश्चिम अथवा दक्षिण ही तथा शूरसेनदेश से दक्षिण में था। मत्स्य-देश की राजधानी विराटनगर अथवा वैराट थी। यह विराट राजा की राजधानी थी, इससे इसका नाम वैराट पड़ा। पुराणों में इसका इस प्रकार वर्णन है। विष्णुधर्मोत्तर० १।२२६ मे लिखा है कि भरत जब अयोध्या से केकय जाने लगे तो गंगा उतरने के बाद यमुना उतरे। उसी समय मत्स्य, शाल्व और शिवियों के राजा भरत से आकर मिले। उसके बाद भरत कुरु-

क्षेत्र गये । बाल्मी० अयो० (गु० नि०) में भरत जब राजगृह से अयोध्या आ रहे थे तो मार्ग मे सरस्वती को उतरे और उसके बाद प्रसिद्ध गंगा से भिन्न गगा को उतरे और वीर मत्स्यों के उत्तर भारुण्डवन मे प्रविष्ट हुए । उसके बाद कुलिंगानदी और यमुना को उतरे । यहाँ पर जो गंगा का वर्णन है, वह प्रसिद्ध गगा नहीं हो सकती । वह सरस्वती के लुप्त होने से पूर्व कोई नदी है । ब्रह्माण्ड, मत्स्य, वायु पुराणों मे मत्स्यदेश मे गंगा का वर्णन है । वह भी यही गंगा है, मुख्य गंगा का सभव नहीं । बाल्मीकि गगा के बाद वीरमत्स्य से उत्तर भारुण्डवन लिखते हैं । 'वीर' मत्स्य का विशेषण है और यह गंगा मत्स्य के उत्तर भाग मे प्रतीत होता है । इससे सरस्वती के लुप्त होने से पूर्व मत्स्यदेश का होना पुराणोक्त मध्यदेश मे निश्चित होता है । मनु इसे दृषद्वती से अव्यवहित कह रहे हैं । दृषद्वती और सरस्वती के संगम के बाद दक्षिण-पश्चिम यह देश था, यह मनु से आता है । इस देश के राजा विराट से त्रिगर्त के राजा सुशर्मा से शत्रुता थी और विराट के साले कीचक ने त्रिगर्त को सता रखा था । जिस समय पाण्डव बारह वर्ष वन में रहकर एक वर्ष के लिये विराटपुर में अज्ञातवास कर रहे थे उसी समय महारानी द्रौपदी सैरंध्री के वेश मे महाराज विराट के महल में रहती थीं । सैरंध्री उस स्त्री को कहते हैं जो दूसरे के घर में रहकर शिल्प का कार्य करे और अपने वश मे रहे । कीचक उनपर आसक्त हो गया और उसने द्रौपदी के साथ बलात्कार करना चाहा । महाराज विराट निर्बल होने के कारण कीचक को मना न कर सके । भीमसेन ने रात्रि में द्रौपदी के वेश में

जाकर मल्लयुद्ध में कीचक को मारा। बाद मे कीचक के भाइयों ने कीचक के शव के साथ द्रौपदी को बाँध लिया और जीवित ही कीचक के साथ भस्मकर देना चाहा। यह समाचार पाकर भीमसेन रसोईखाने के पास के प्राकार को फाँदकर निकल आए और दूसरा रूप बनाकर वहाँ पहुँचे तथा कीचक के सौ भाइयों को मारकर उन्हें भी कीचक की चिता मे जलाया और फिर उसी मार्ग से रसोईखाने मे प्रविष्ट हो गए। द्रौपदी के रक्षक गन्धर्वों द्वारा सौ भाइयो सहित कीचक के बध की प्रसिद्धि नगर भर मे फैल गई। दुर्योधन के दूतो ने यह समाचार हस्तिनापुर मे पहुँचाया। उस समय संसार मे बलभद्र, शल्य, कीचक और भीमसेन—ये चार ही प्रसिद्ध पहलवान थे। अत: कीचक के मारने का संदेह भीमसेन पर हुआ। यदि भीम का पता चले तो सब का पता चल जाय, इसलिये त्रिगर्तेश्वर सुशर्मा ने पता लगाने के लिए मत्स्य पर चढ़ाई करने की राय दी। इस बात को नहीं चाहते हुए भी, सुशर्मा के बहुत जोर देने पर दुर्योधन ने स्वीकार किया। चढ़ाई दो भागो में हुई। सुशर्मा ने विराटनगर के उत्तर की गायों को घेरा और दुर्योधन ने दक्षिण की गायो को घेरा। विराट ने भीमसेन की मदद से सुशर्मा को हराया और कुमार उत्तर ने अर्जुन को सारथी बनाकर दुर्योधन का सामना करना चाहा। परंच सेना देखकर उत्तर की हिम्मत टूट गई और वह अर्जुन का सारथी बन गया। अर्जुन ने कौरवो पर विजय पाई। अर्जुन के छिपने की अवधि बीत चुकी थी, इससे पाण्डव प्रकट हो गये। त्रिगर्तेश्वर को कीचक का सताना और त्रिगर्तेश्वर का मत्स्य पर कौरवों को

चढ़ा लाना त्रिगर्तवालों को मत्स्यदेश के राजा का शत्रु होना निश्चय कर रहा है। यह बात त्रिगर्त और मत्स्य के समीप होने में प्रमाण हो सकती है।

एक बात और महाभारत में मत्स्य के निर्णय में प्रमाण हो सकती है। वह यह है कि पाण्डव लोग वनवास के बारहवें वर्ष की समाप्ति मे द्वैतवन में द्वैतवनसर के पास थे। द्वैतवन सरस्वती के तट पर था। वहाँ से विराटनगर तक का महाभारत में दिया गया मार्ग इस प्रकार है। महाभा० विराट० ५।१ (चित्रशाला प्रेस, पूना) पाण्डव लोग द्वैतवन से चलकर यमुना के तट से मत्स्यदेश को गये। वे यमुना के दक्षिण किनारे से गये। मार्ग मे घनघोर जंगल और पर्वतों मे बसते हुए दशार्ण से उत्तर-और पंचाल से दक्षिण गये। मार्ग मे यकृल्लोमदेश और शूरसेनदेश के मध्य से जाना पड़ा। जब ये लोग मत्स्य जनपद मे पहुँचे तो द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा कि हम थक गई हैं। अभी यहाँ तरह तरह की पगडंडियाँ और खेत दिखलाई पड़ते हैं। विराटनगर दूर मालूम होता है, इससे यहीं ठहर जाओ, हम बहुत थकी हैं। युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि द्रौपदी को लेते चलो, हम नगर मे ही बसेंगे। अर्जुन ने द्रौपदी को उठा लिया और नगर के समीप ले जाकर उतारा। उसके बाद पाण्डवों ने नगर से उत्तर श्मशान में शस्त्रों को रख दिया और नगर में प्रवेश किया। इसमें पंचाल से दक्षिण और दशार्ण से उत्तर यमुना का दक्षिण किनारा मत्स्य आता है। दशार्ण की राजधानी सी० पी० में भेलसा है। और पंचाल यू० पी० का फर्रुखाबाद जिला है। यमुना के दक्षिण यह प्रान्त

झाँसी का जिला या उसके पूर्व का भाग मत्स्य में आता है। मद्रास मुद्रित वै० ६।६।। पाण्डव लोग काम्यकवन से यमुना के तट से नीचे की ओर चले। यकृल्लोम और शूरसेनों के बीच से होकर पंचाल से दक्षिण दशार्ण से उत्तर यमुना के दक्षिण तट पर पहुँचे। वहाँ से पश्चिम चलकर वनों से वनों में जाते हुए, भयानक पर्वतों मे बसते हुए तथा सुन्दर नदियों के संगमों पर ठहरते हुए मत्स्यदेश मे पहुँचे। द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा कि हम बहुत थकी हैं और विराटनगर दूर है। अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा से द्रौपदी को उठाया और राजधानी के समीप उतारा। अनंतर श्मशान के शाल्मलीवृक्ष में अस्त्रों को रखकर गंगा में स्नान किया और तर्पणादिकर युधिष्ठिर पूर्व को गये। इसके बाद युधिष्ठिर आदि अलग-अलग विराट की सभा मे गये। इस पाठ से मत्स्यदेश गंगा के तट पर प्रतीत होता है। निर्णयसागर की पुस्तक मे (महाभा० विराट० ५।१) पाण्डव द्वैत-वन से मत्स्यदेश मे पहुँच गये। द्रौपदी थक गई, उनको उठा लिया और राजधानी के समीप उतार दिया। इसमे मार्ग का वर्णन बिल्कुल नहीं है। सुथंकर की पूनावाली पुस्तक मे चित्रशाला-प्रेस, पूना के समान पाठ है, इससे भी दशार्ण और पंचाल के मध्य मे मत्स्यदेश यमुना के समीप आता है। महाभा० विराट० वै० ७२।१४, चि० सु० ६७।१४ मे उपप्लव्यनगर मत्स्यदेश में विराटनगर के समीप है। जहाँ पर प्रगट होने के बाद पाण्डव लोग रहे। उपप्लव्य और उपप्लाव्य दोनों पाठ मिलते हैं। भारत० निवा० पृ० ५३ में कुरुक्षेत्र से सीधे दक्षिण अलवर को उपप्लव्य माना है।

महाभारत में कई पाठ हैं और जनश्रुतियाँ भी अनेक हैं। इससे हम महाभारत की एक घटना को विराटनगर के निश्चय करने के काम मे ला रहे है। भारत-रण के अतिम दिवस अश्वत्थामा ने रात्रि मे सोते हुए युधिष्ठिर के शिविर पर धावा करने का विचार किया। भगवान् श्रीकृष्ण जो दुर्योधन के पगु होने पर गान्धारी को समझाने के लिये युधिष्ठिर द्वारा हास्तिनापुर भेजे गये थे और गांधारी को समझा रहे थे, उन्होने उसी समय अश्वत्थामा के नीच विचार को जाना। श्रीकृष्ण शीघ्रता के साथ शिविर में आकर युधिष्ठिर से बोले कि विजय के बाद उस रात्रि मे शिविर मे नहीं रहना चाहिये। इससे शिविर को छोड़ देना चाहिये। भगवान् की आज्ञा से युधिष्ठिर सात्यकि सहित चारों भाइयो को साथ ले भगवान् के साथ शिविर से दूर ओघवती-नदी के तट पर जाकर सोये। अश्वत्थामा ने बेखटके सोती हुई सेना पर आक्रमण किया। कुछ को सोते हुए ही मार डाला और कुछ को जाग जाने पर भी घबराहट के कारण ठीक न लड़ सकने के कारण मारा। कुछ आपस मे लड़कर धोखे मे मारे गये। कुछ बाहर निकलते समय कृतवर्मा और कृपाचार्य द्वारा मारे गये। बची-बचाई पाण्डवो की सेना उसी मे समाप्त हो गई। प्रातःकाल जब पाण्डव लोग शिविर में आये तो उन्होने अश्वत्थामा के चरित्र को जाना। उसी समय उसी संग्राम मे द्रौपदी के पाँचो पुत्र भी मारे गये थे। जब पाण्डवो की सेना उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र मे संग्राम के लिये आई थी तब द्रौपदी उपप्लव्य में ही रही थीं। यह बात सुथंकर के महाभारत उद्योग पर्व २२।१ से स्पष्ट है। चि० प्रेस, पूना शल्य० गदा० ६२।२३

में युधिष्ठिर ने सब समाचार द्रौपदी के पास भेजा और द्रौपदी उपप्लव्य से कुरुक्षेत्र आई। द्रौपदी के आने पर भीमसेन ने अश्वत्थामा को मारने की प्रतिज्ञा की और मारने के लिये गये। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन के साथ भीम की रक्षा के लिये प्रस्थान किया। भीम ने अश्वत्थामा को गंगातट पर व्यास के पास बैठा हुआ पाया और अश्वत्थामा को संग्राम के लिये ललकारा। अश्वत्थामा ने भीम को मारने के लिये शस्त्र फेंका और अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के बतलाये हुए शस्त्र से उसे रोका, इत्यादि कथा है। अब, विचारणीय यह है कि पूस के महीने मे जब कि दिन भी छोटा होता है, एक दिन मे यह घटना तभी हो सकती है जब उपप्लव्य कुरुक्षेत्र से अधिक दूर न हो। यदि हम लोग चम्पारण्य मे या प्रतापगढ़ मे या लखीमपुर के जिले मे (हरगाँव, मोहमदी) या झाँसी के समीप मे विराट-नगर माने तो उपप्लव्य से शिविर मे द्रौपदी इतनी जल्दी कैसे पहुँच सकेगी? वैराट, अलवर इत्यादि पहले कहे गये स्थानों से इतनी जल्दी आना क्या संभव है? इससे कुरुक्षेत्र से अधिक दूरी पर यह स्थान नहीं था—यह मानना होगा। इससे निर्णय-सागर का यह पाठ ही युक्तियुक्त ज्ञात होता है—"द्वैतवन से चल-कर पाण्डव लोग मत्स्यदेश मे शीघ्र ही पहुँचे और द्रौपदी चलने से थक गई थीं" इत्यादि सभी सम्भव है। और पुस्तकों के पाठ प्रक्षिप्त मालूम होते हैं। महाभारत के संग्राम मे कौरवों की सेना पश्चिम की ओर मुख करके लड़ती थी और पाण्डवों की सेना का मुख पूर्व को था। इससे हस्तिनापुर कुरुक्षेत्र से ईशान मे होने से कौरवो की सेना का पूर्व मे रहना ठीक है। पाण्डवों

की सेना का शिविर कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग में था और शिविर का द्वार पूर्व को था एवं समन्त पंचक के बाहर था। उसमें सहस्रों शिविर थे। महाभारत भीष्म० नि० चि० १।१५ पाण्डव लोग शत्रुओं को मारकर शिविर से निकलकर रात्रि में ओघवतीनदी के तट पर सोये थे। इससे यह स्थान ओघवती-नदी से कुछ दूर पर प्रतीत होता है। महाभारत शल्य० गदा० चि० ६२।३९, नि० ६७।४७ युधिष्ठिर के शिविर हिरण्वतीनदी के तट पर थे। महाभा० चि० १५२।६, सु० १४९।७२ युधिष्ठिर के शिविर कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग मे थे। इससे दक्षिण से आना प्रतीत नहीं होता। वैराट में द्रौपदी को बुलाने के लिये दूत गये और द्रौपदी को ले आये। तूफानमेल भी अलवर या वैराट को जाकर इतनी जल्दी लौट नहीं सकता। घोड़े के रथ पर चढ़कर या घोड़े पर चढ़कर दूत इतनी जल्दी वहाँ से द्रौपदी को कैसे लाये? यह विचार वैराट या अलवर को बिराटनगर और उप-प्लव्य कहने से रोक देता है और अधिक से अधिक २५ कोस के लगभग मानने को बाध्य करता है। वैराट की दूरी कुरुक्षेत्र से लगभग १०० कोस के होगी। विद्वानों को चाहिये कि हमारे लिखे कारण को ध्यान से समझें और रागद्वेषरहित हो कल्पित बिराटनगर को छोड़कर वास्तविक बिराटनगर कुरुक्षेत्र से पश्चिम या नैऋर्त्य मे ढूँढें तथा सत्यता को ग्रहण करें। जागराफी आफ अर्ली बुद्धिष्ट में गोपथ ब्राह्मण का प्रमाण देते हुए लिखा है—"यह देश इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण-पश्चिम अथवा दक्षिण ही तथा शूरसेनदेश से दक्षिण में था।" गोपथ का अर्थ 'मत्स्य' में ही पहले लिखा जा चुका है, उसमें कहीं भी डाक्टर साहब का

अर्थ नहीं निकलता। इन्द्रप्रस्थ से और शूरसेन से उसमें कोई सम्बन्ध नहीं। मथुरा शूरसेनदेश मे है और डाक्टर साहब का वैराट उससे पश्चिम है, इससे शूरसेन से दक्षिण कैसे संभव होगा?

नन्दलाल डे ने पूर्वमत्स्य तिरहुत का दक्षिणी भाग लिखा है, यह असम्भव है। पुराणादि में मत्स्य का इस प्रकार वर्णन है। पद्मपुराण आ० ६।३५ यह देश भारत में है। ब्रह्म० २७। ४१ यह देश भारत मे है। ब्रह्मा० पू० आ० १६।४१ यह देश भारत मे है और मध्यदेश में है। १८।५१ यहाँ गंगा है। मत्स्य० ११४।३५ यह देश भारत मे है और मध्यदेश मे है। १२१।५० यहाँ गंगा है। वामन० १३।३६ यह देश कुमारद्वीप (भारत) मे है और मध्यदेश मे है। नारदी० पू० ५६।७४४ यह देश पूर्वमुखवाले कूर्म के पार्श्वमण्डल मे है। मार्क० ५४। ३२ यह देश भारत के मध्यदेश मे है और पूर्वमुख कूर्म के पूर्व दक्षिणपाद मे है। ५५।७ यह देश प्राङ्मुख कूर्म के मध्य में है। भवि० ब्रा० यह देश ब्रह्मर्षिदेश का अंग है। गरुड़० पू० ५५।१० यह देश भारत मे है और मध्यदेश मे है। श्रीमद्भागवत १।१०।३४ यह देश हस्तिनापुर से द्वारका जाने के मार्ग मे पड़ता है। महाभा० भीष्म० (नि० चि०) ९।४० यह देश भारत में है। महाभा० विराट० (चि०) १३।२, (म०) १४।१, सु० १२।१ इसकी राजधानी का मत्स्यनगर नाम लिखा है। महाभा० विराट० (म०) ६१।५ में मात्स्यशब्द देशअर्थ मे आया है। लेकिन (चि०) ६८।५ मे मत्स्य ही पाठ है। महाभा० विराट० सु० ५।४ तथा २९।२४ में इसका मत्स्यविषय नाम आया है। चि० ३०।२२ में मत्स्यराज का देश नाम आया

है। महाभा० आदि० (म०) १५३।४९।। में यह देश त्रिगर्त-देश के समीप में है। वायु० पू० ४७।१८ यह देश भारत में है और यहाँ गंगा है। काशिका 'जनपदे लुप्' ४।२।८१ मत्स्य क्षत्रियों का निवासस्थान मत्स्यदेश है। महाभा० सभा० (नि० चि०) ३१।२ सहदेव ने पंचाल के बाद इसका विजय किया। महाभा० उद्योग० (चि० नि०) १९।१२ मत्स्यदेश का राजा पर्वतीय राजाओं के साथ पाण्डवों की सहायता के लिये आया। स्कन्द० ब्रह्म० ब्रह्मो० ५।२२ यह देश है।

मद्र—१. वे० इ० "बृहदारण्यकोपनिषद्[1] मे यह उल्लिखित है। इससे मनुष्य का सकेत होता है। काप्यपतंचल उस समय इनके साथ या पास मे रहता था। इसका नाम वैदिक साहित्य मे अन्य स्थानों पर भी केवल एक शाखा के रूप मे मिलता है। उत्तरमद्रस् उत्तर के रहनेवाले मद्रस् जिनका संकेत ऐतरेय ब्राह्मण मे हुआ है—'परेण हिमवन्तम्' हिमालय के उस पार रहनेवाले उत्तरकुरुस् के पड़ोसी। संभवतः जैसा कि जिमर[3] अंदाज करता है कि कश्मीर के स्थल मे रहते थे वह मद्रस् जिनका कि लेख उपनिषद् में है, कुरु की तरह कहीं कुरुक्षेत्र मे जो कि [1]मध्यदेश मे है, सम्भवतः ठहरे होंगे। तुलना करो 'मद्रगार' से।"

२. जिमर इनको एक जाति मानता है और पहले कश्मीर

---

(१) ३।३।१ तथा ७।१।

(२) ८।१४।३।

(३) अल्टिन डिस्चेजलेवेन १०२।

में बसाता है और उसके बाद कुरुक्षेत्र में बसाता है।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ११६ "मद्र पंजाब मे रावी और चिनाब नदियो के मध्य का देश। इसकी राजधानी शाकल थी। मद्रदेश मे राजा शल्य का महाभारत के समय में राज्य था (महाभारत उद्योग० अ० ८) तथा सत्यवान् की पत्नी प्रसिद्ध सावित्री के पिता राजा अश्वपति का राज्य था (मत्स्य पुराण अ० २०६।५।५, महाभा० वन० अ० २९२)। कुछ लोग वाहीक और बाह्लीक को और मद्र को एक ही समझते हैं। वाहीक मद्रराज्य एक भाग प्रतीत होता है (महाभा० कर्ण० अ० ४५)। मद्र टक्कदेश भी कहलाता था (हेमचन्द्र का अभिधानचिन्तामणि)।"

४. इंशेन्ट जाग्राफी पृ० २०६ "साकल या संगला। सिकन्दर की संगला को ब्राह्मणों के शाकल और बुद्धो के सागल से बहुत पहले एक किया जा चुका है। इसका स्थान निश्चित नहीं किया गया होता यदि चीनी यात्री ह्वेनसांग ६३० ई० मे यहाँ न आता। एरियन और कर्शियस दोनों सांगला को हाइड्राओटस या रावी के पूर्व मे बतलाते हैं। लेकिन ह्वेनसांग इसको रावी के पश्चिम मे बलताते है। और करीब करीब वर्तमान सांगला वालातिव था संगलापहाड़ी ही ह्वेनसांग के हिसाब से ठीक स्थान आता है। मुझे पहली बार १८२९ ई० मे इसका ज्ञान हुआ, जब कि मुझे बिलफोर्ड का नक्शा मिला, जिन्होने उसकी स्थिति का एशियाटिक रिसर्च में तीन बार वर्णन किया। १८५४ ई० तक इसके बारे में कोई हाल न मिला, जब तक कि हमने कोलोनेलजी हेमिल्टन से इसका हाल न सुना। वे

वहाँ पर गये थे। कैप्टन लेग्रेव ने इसे नापा था। कैप्टन लेग्रेव के हिसाव से यह एक पहाड़ी है। और अब भी इसपर इमारतों के चिह्न हैं। इसके एक तरफ पानी भरा हुआ है। जब मैं पंजाब में दौरा कर रहा था तब मुझको इसे स्वयं देखने का अवसर मिला। मुझको पूर्ण सतोष है कि यही सिकन्दर की सॅगला का स्थान है। यद्यपि सिकन्दर के इतिहासकारो ने सिकन्दर की सॅगला का स्थान भिन्न ही बतलाया है।"

पृ० २०७ "ह्वेनसांग के समय मे शेकीलो या साकल भग्नावस्था मे था। इस प्रान्त का मुख्य नगर त्सेकिया या चेकिया था। कुछ लोग इसको धाक या ताक भी पढ़ते हैं। यात्री इस नगर को शाकल से १५ ली० या २॥ मील उत्तर पूर्व बतलाते हैं। लेकिन यह स्थान बिल्कुल खुला हुआ है। इससे यह मालूम होता है कि यहाँ पर कोई नगर नहीं रह सकता है। इसी दिशा मे करीब १९ मील या ११५ ली० की दूरी पर मैंने एक असारुर नामक नगर के खण्डहर देखे। इसका वर्णन यात्री के नये त्सेकिया नगर से ठीक मिल जाता है। यहाँ पर यह आवश्यक है कि इस स्थान को ठीक कर लेना चाहिये। क्योंकि ह्वेनसांग ने आते और जाते दोनों समय दूरी आदि का इसी नगर से वर्णन किया है, शाकल से नहीं। कश्मीर से यात्री पुनच होता हुआ राजपुर या रजौरी पहुँचा। यह छोटा-सा कस्बा पहाड़ के नीचे है और रजोरी कहा जाता है। वहाँ से उसने एक पहाड़ पर यात्रा की और एक चेनटालोपोकिया नाम की नदी, जो चन्द्रभागा या आजकल चिनाव है, उसे पार करके शेपेपुलो या जयपुर संभवतः हाफिजाबाद पहुँचा। यहाँ पर वह रात भर

सो करके दूसरे दिन त्सेकिया पहुँचा। यह सब फासला ७०० ली या ११६ मील है। यात्री ने रावी के पूर्व दक्षिणी पूर्वी ही स्थान पकड़ा होगा। इसलिये हम लोगों को इस अशुद्धि को शुद्ध करने के लिये और कोई दूसरी बात पकड़नी चाहिये। अब हम लोगों को एक स्थिर स्थान शेलानटोलो जो प्रसिद्ध जालन्धर है और जिसको यात्री त्सेकिया से ६९० और ७०० ली के बीच मे बतलाता है, यह स्थान रजोली और जालन्धर से बराबर फासले पर है तथा असारुर इनमें से हरएक से सीधे रास्ते से ११२ मील है। अब मुझको पूर्ण संतोष हो गया है कि असारुर ह्वेनसांग का त्सेकिया है।"

पृ० २०८ "सन् ६३० ई० में यात्री ने सांगल की दीवारों को बिल्कुल नष्ट देखा। लेकिन उस समय भी उसकी नीवें वहाँ पर मौजूद थीं। इससे उसके चारो तरफ की सीमा का पता चला। यह सीमा २० ली या ३½ मील थी। इन खड़हरो के बीच मे नगर का एक भाग बसा हुआ था। इसकी सीमा चारों तरफ करीब-करीब ६ या ७ ली या एक मील है। इसमें करीब १०० बौद्ध रहा करते थे। इसमें करीब २०० फीट ऊँचा एक स्तूप भी है। इस स्तूप में बुद्ध के चरणचिह्न रखे हैं। इसके करीब ४ या ६ ली या एक मील से कम की दूरी पर उत्तर-पश्चिम की दिशा में २०० फीट ऊँचा राजा अशोक का बनाया हुआ एक दूसरा स्तूप है। इस स्थान पर पहले के बुद्धो ने धर्म को बतलाया था।"

पृ० २०९ "सांगल बालतिब एक छोटी पहाड़ी त्रिकोण आकार की है। इसके दक्षिण पूर्व की ओर बिल्कुल खुला हुआ

है। इस पर्वत की उत्तरी भुजा २१५ फीट है; लेकिन उत्तरी-पूर्वी भुजा कुल १६० फीट ही है। इसके अन्दर का स्थान ढालू होते होते कुल ३२ फीट जमीन पर साफ स्थान है। इससे पूर्व की ओर एक दीवार बनी हुई है। यह समस्त स्थान ईंटों के खड़हरो से भरा हुआ है। और इन खडहरों मे मैंने दो चौकोर नींवे देखी थीं। ईंटे १५ इञ्च लम्बी, ९ इञ्च चौड़ी और ३ इञ्च मोटी हैं। इन आखिरी पंद्रह वर्षों में इस स्थान की बहुत-सी ईंटें गायब कर दी गई है। करीब ४००० के ले जाई गई थीं, जो ६ मील उत्तर मे हैं। और उतनी ही पैमाइश करने के लिये टीला बनाने को पहाड़ की चोटी पर ले जाई गई थीं। इस पहाड़ी का तट १७०० से १८०० फीट तक हर एक दिशा मे है। इसके पूर्व और दक्षिण दिशा में १ मील लम्बा और चौड़ा दलदल है। यह दलदल गर्मियों मे सूख जाता है और बरसात में १ गज गहरा हो जाता है। सिकन्दर के समय में यहाँ पर पानी भरा रहता था। इस पहाड़ी के उत्तर और पूर्व दिशा में दो बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। इनकी ईंटों की लम्बाई १७॥ इञ्च, चौड़ाई ११ इञ्च और मोटाई ३ इञ्च है। इसके पास ही में एक कुँआँ है, जिसको कि घूमनेवाले यात्रियों ने साफ किया था। उत्तर-पश्चिम दिशा में करीब-करीब १००० फीट दूर मुण्डपपूर नाम की २५ से ३० फीट तक ऊँची और ५०० फीट लम्बी एक छोटी-सी पहाड़ी है। इसके १$\frac{3}{4}$ मील दक्षिण तीन छोटी छोटी पहाड़ियाँ अरना और छोटा-सांगल नाम की हैं। ये पहाड़ियाँ गहरे भूरे रंग की चट्टानों की हैं। ये ही चट्टानें चिनाब से पश्चिम की चैनयोट और

कराना पहाड़ों में पाई जाती हैं। इसमें यहाँ पर बहुत-सा लोहा भी मिलता है। लेकिन ईंधन की कमी के कारण यह साफ नहीं किया जा सकता। ह्वेनसांग भी यहाँ लोहे की उत्पत्ति बतलाते हैं।"

पृ० २१० "इस वृत्तान्त को चीनी यात्री के वृत्तान्त से मिलाने से कुल दो ही स्थानों में साम्य पाया जाता है। पहला वर्तमान नगर का स्थान है। यह एक मील है और खण्डहरों के बीच में स्थित है। मेरी समझ में यही पहाड़ी है और रक्षा के कारण लोग यहीं पर आकर रहने लगे थे। दूसरा अशोक का स्तूप है। यह नगर के अन्दर के बिहार से उत्तर-पश्चिम एक मील की दूरी पर बनवाया गया है। मैं इसको छोटी पहाड़ी से जिसका नाम मुण्डपपूर है और जिसका सबसे ऊँचा शिखर ४००० फीट है, एक करना चाहता हूँ। यह नगर के मध्य से पौन मील से अधिक दूरी पर है। पहाड़ी के उत्तर-पश्चिम दिशा में टूटे-फूटे बर्तनों के टुकड़े और ईंटों के हिस्से बहुत दूर तक फैले हुए है। इसकी चारों ओर की सीमा १½ या १¾ मील से अधिक नहीं होगी।"

ब्राह्मणों के द्वारा लिखे हुए शाकल के हाल को प्रोफेसर लैसन ने पेन्टा पोटैनिया इंडिका नाम की पुस्तक में एकत्रित किया है। महाभारत के अनुसार शाकल मद्रों की राजधानी है। ये लोग जर्तिक और वाहीक भी कहे जाते हैं। यह नगरी इरावती या रावी के पश्चिम अपगा नाम की एक नदी पर स्थित है। यह पूर्व की दिशा से एक सुन्दर मार्ग से, जो पीलु-वन से होकर जाता है, पहुँची जाने योग्य है। 'शमीपीलु

करीराणाम् वनेषु सुख वत्मंसु'=लेकिन पीलु या साल्वडोर परसिका इस पंजाब के भाग में विशेष करके रेचूनाद्वाब में बहुतायत से पायी जाती है। पीलू के इन सुहावने जंगलो मे बेचारे यात्री के कपड़े डाकुओ ने लूट लिये थे। महाभारत का वर्णन ह्वेनसांग के वर्णन से ठीक-ठीक मिल जाता है। और जब मैं सन् १८६३ ई० मे गया, तब मुझको भी पीलू वैसा ही दृष्टिगोचर हुआ। चीनी यात्री ने शाकल को छोड़कर पूर्व की ओर पोलोशे नाम के पेड़ो के जंगल मे प्रवेश किया। यहाँ पर इसकी पार्टी को ५० डाकू मिले, जिन्होने कपड़े लत्तों को छीन लिया। मैं पूर्व की ओर से शाकल की ओर पीलू के पेड़ों के बीच से गया। यहाँ पर एक रात मैंने व्यतीत की। रात को यहाँ पर तीन बार डाकू आये। परन्तु मेरे कुत्तो और चौकीदारों न उनको देख लिया। जूलियन ने चोनी यात्री के पोलेशे को पलाश ठोक ही बतलाया। लेकिन यहाँ पर पलाश के पेड़ नहीं है। किन्तु पीलू के वृक्ष है। चीनी यात्री के जीवन कार की इसके पिलोशे की शुद्धि को पिलो ही करने का साहस करता हूँ, क्योंकि इसने कई स्थान पर पलाश या पोलोशे को देखकर इसको पिलोशे ही कर दिया होगा।"

पृ० २१२ "देश अब भी मद्रदेश कहा जाता है। कुछ लोग इसको मद्रों का प्रान्त कहते हैं। कुछ लोगों के अनुसार यह व्यास से झेलम तक और दूसरे के अनुसार केवल चिनाब तक फैला हुआ है। आपगानदी मेरे विचार से अपकनदी है। यह छोटी नदी श्यालकोट के उत्तर-पूर्व जम्बू की पहाड़ियों से निकलती है। श्यालकोट को पार करके अपक पश्चिम की ओर

बहकर सीधा पहुँचती है। इस स्थान पर वह बरसात मे अपना अधिक पानी चिनाब मे डाल देती है। तब वह दक्षिण की ओर दक्षिण पश्चिम घूमकर बंक और नन्दवा से भूतला जाती है। और फिर उसी रास्ते से असारुर को कुछ मील जाती है। वहाँ पर पहुँचकर वह दो शाखाओ मे बँट जाती है। और असारुर के पूव-पश्चिम से होकर सगला बालातिब से दक्षिण ढाई मील चलकर फिर मिल जाता है। आबपाशीवाले नक्शों मे यह नदी भी सांगल के दक्षिण-पश्चिम १५ मील तक बनी है। वहाँ पर इसका नाम ननतवा नहर है। एक चतुर आदमी ने मुझसे कहा कि उसने इस नहर का २० कोश दक्षिण-पश्चिम तक अनुसरण किया और उसने यह सुना है कि यह बहुत आगे चलकर रावी मे गिरी है। यही वह एरिअन की छोटी-सी नदी है, जिसके किनारे सिकन्दर ने अपना डेरा अके-सिनेस के पूर्व ११॥ मील की दूरी पर और हाइडेस्पेस के संगम के नीचे डाला था। उस समय इसमें पानी बहुत अधिक होगा और संगला होता हुआ रावो मे गिरा होगा। असारुर और सांगल के निकट यह नदी सर्वदा सूखी रहती है। लेकिन इसके २४ मील ऊपर धाकवाला मे पानी काफी रहता है। इसी स्थान पर दाराशिकोह ने शाहजहाँ के समय में एक नहर यहाँ से अपने शिकारगाह शिकोहपुर तक निकलवायी थी, जो पक या झिलरी नहर कही जाती है।"

"बौद्ध लोगो को इस स्थान का ज्ञान परिमित है और वह भी विशेषकर धर्म से सम्बन्ध रखता है। ह्वेनसाँग के अनुसार इसके (शाकल के) निकट का नगर जिसका नाम त्सेकिया

है, राजधानी है। इसका देश सिंधु से व्यास तक और पाँचों नदियो के संगम से पहाड़ के नीचे तक फैला हुआ है।"

"कार्शियस इस नगर के लिये केवल इतना लिखता है कि यह एक बड़ा नगर है और यह केवल दीवारो से ही नहीं; किन्तु दलदल से भी सुरक्षित है। दलदल बहुत गहरा है और कई बार इस स्थान के निवासी तैरकर बाहर जा पाये थे। एरिआन इसको एक उथली झील लिखता है, और यह कहता है कि यह बिल्कुल नगर के निकट है। इतना निकट है कि नगर का एक द्वार इसी पर खुलता है। इसी लेखक के अनुसार यह स्थान या नगर बहुत अधिक मजबूत है। न नगर के बाहर एक छोटी-सी पहाड़ी है। इस पहाड़ी के चारों ओर खेमे की रक्षा के लिये गाडियो की तेहरी लाइन लगी हुई थी। मेरी समझ से यह पहाड़ी मुंडपपुर नाम की पहाड़ी है। यह पहाड़ी नगर के पास ही होगी। क्योकि इसके स्वामी कठाइन लोग गाड़ियों की दूसरी लाइन यूनानियों द्वारा भग्न हो जाने के बाद नगर मे घुस गये थे और नगर के द्वार को बन्द कर लिया था। इससे यह साफ है कि पहाड़ी के तीन तरफ गाड़ियों की तेहरी लाइन थी और एक तरफ बिल्कुल खुला था। इस पहाड़ी और नगर मे कोई सम्बन्ध रहा होगा। यह सम्बन्ध ऐसा होगा कि यदि ये लोग हार जायँ तो तुरन्त नगर मे भागकर अपनी रक्षा करे। सिकन्दर ने यहाँ पर ३०० गाड़ियाँ छीन ली थीं। इससे यह मालूम पड़ता है कि पर्वत छोटा सा ही रहा होगा। इस पहाड़ी और मुण्डपपूर की साइज करीब-करीब मिल जाती है। इससे मेरी समझ में इसका साम्य करने में कोई दोष नहीं है।"

"कठाइयन लोगों ने एक बार बाहर निकलने का प्रयत्न किया। लेकिन वे गाड़ियो द्वारा रोक दिये गये और फिर नगर के अन्दर घुसने के लिये मजबूर किये गये। यूनानियो ने दीवारों को नीचे से उड़ा दिया और किले पर अपना कब्जा कर लिया तथा बहुत से कठ लोगो को मार डाला।"

"कर्शियंस और एरिअन दोनों यह कहते हैं कि सिकन्दर ने सांगल पहुँचने के पूर्व हाइड्रोटसनदी को पार किया होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह नगरी नदी के पूर्व मे है। महाभारत के स्थान का वर्णन और ह्वेनसाँग के फासले की नाप करीब-करीब बिल्कुल ठीक है। और हम उनको किसी भी कारण से अलग नहीं रख सकते। एरिअन और कर्शियस दोनों यह कहते हैं कि सिकन्दर गगानदी के तट पर जाने के लिये पूर्ण उद्यत था। जब उसने सुना कि कुछ कठ लोग उससे युद्ध करके उसको पराजित करने के लिये तैयार हो रहे हैं, तब वह तुरन्त ही उनकी संगला की तरफ बढ़ा। लेकिन जब सिकन्दर उनकी ओर बढ़ा तो उन्होंने उसको बराने की कोशिश की। लेकिन यदि उनपर आक्रमण किया जाता तो वे उसका सामना करते। सिकन्दर तब अपनी सेना को रावी के पूर्वी तट पर ले गया। वहाँ से वह दूसरे दिन पिप्रामा पहुँचा। वहाँ पर वह अपने सैनिको को फिर ताजा करने के लिये रुक गया। तीसरे दिन वह फिर सांगला पहुँचा। वह अपनी दो यात्राओं के बाद जबर्दस्ती रुका था। इससे यह मालूम पड़ता है कि जिन स्थानो पर उसको रुकना पड़ा था, इसलिये वे स्थान हर एक से २५ मील होंगे। और तीसरी यात्रा उसकी एक साधारण यात्रा

थी, इसलिये फासला कुल १२ या १५ मील रहा होगा। इसलिये संगला हाईड्रोटस के किनारे से ६० या ६५ मील से अधिक नहीं होगा। यह संगला की पहाड़ी से लाहौर तक का ठीक फासला है। यह लाहौर उसके डेरे का स्थान है। संभवतः इसी डेरे मे कठाइयों की धृष्टता की खबर सिकन्दर को लगी थी। मैं विचार करता हूँ कि इसी कारण उसने गगा की ओर अग्रसर होना बन्द कर दिया और कठ लोगों को उनकी धृष्टता की शिक्षा देना उचित समझा।"

५. ह्वेनसाँग अ० १४ पृ० १६५ "टसिहकिया (टक्का)। इस राज्य का क्षेत्रफल १० हजार ली है। इसकी पूर्वी सीमा पर विपासा (व्यास) नदी बहती है और पश्चिमी सीमा पर सिन्दुनदी है। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। भूमि चावलों के लिये अधिक उपयुक्त है तथा देर की बोई हुई फसलें अच्छी होती है। इसके अतिरिक्त सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और एक प्रकार का पत्थर टीओयू (देशी ताँबा) भी होता है। प्रकृति बहुत गर्म और आँधियों का जोर रहता है। मनुष्य चालाक और अन्यायी हैं तथा भाषा भद्दी और ऊटपटाँग है। इनके वस्त्र एक चमकदार महीन रेशेवाली वस्तु से बनते हैं, जिनको ये लोग कियावचेये (कौशेय) कहते है। ये लोग चौहिया (लाल रंग की पोशाक) तथा दूसरे प्रकार के वस्त्र भी धारण करते हैं। बुद्धधर्म के माननेवाले थोड़े हैं। अधिकतर लोग स्वर्गीय देवताओं के लिये यज्ञ, हवन आदि करते हैं। लगभग १० संघाराम और कई सौ मन्दिर हैं। प्राचीनकाल में यहाँ पर बहुत-सी पुण्यशालाएँ दरिद्रों और अभागो के लिये बनी थीं,

जहाँ से भोजन, वस्त्र, ओषधियाँ आदि आवश्यक वस्तुएँ लोगों को मिला करती थीं। इस कारण यात्रियों को बहुत सुख मिलता था।"

"राजधानी के दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग १४ या १५ ली चलकर हम प्राचीन नगर शाकल मे पहुँचे। यद्यपि इसकी चहारदीवारी गिर गई है; परन्तु इसकी नींव अब तक मजबूत बनी हुई है। इसका क्षेत्रफल २० ली है। इसके मध्य में एक छोटा सा नगर ६-७ ली के घेरे मे बसा है। निवासी सुखी और धनी हैं। देश की प्राचीन राजधानी यही है। शाकल के प्राचीन नगर में एक संघाराम १०० सन्यासियों के समेत है, जो हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। पूर्वकाल में वसबन्धु बोधिसत्व ने इस स्थान पर 'परमार्थ सत्यशास्त्र' को बनाया था।"

"संघाराम के पार्श्व मे एक स्तूप २०० फीट ऊँचा है। इस स्थान पर पूर्वकालिक चार बुद्धो ने धर्मोपदेश किया था; जिनके इधर उधर फिरने के निशान यहाँ पर बने हुए हैं। संघाराम के पश्चिमोत्तर ५ या ६ ली की दूरी पर एक स्तूप २०० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर भी पूर्वकालिक चार बुद्धो ने धर्मोपदेश किया था। नयी राजधानी के पूर्वोत्तर लगभग १० ली चलकर हम एक २०० फीट ऊँचे पत्थर के स्तूप तक पहुँचे। यह स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर तथागत भगवान् उत्तर दिशा मे धर्मोपदेश करने के लिये जाते हुए सड़क के मध्य में ठहरे थे। भारतीय इतिहास मे लिखा है कि इस

स्तूप मे बहुत से बौद्धावशेष रखे हैं, जिनमे से पवित्र दिनो में सुन्दर प्रकाश निकला करता है। यहाँ से लगभग ५०० ली पूर्व को चलकर हम चिनापोटी प्रान्त मे पहुँचे।"

६. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १७६ "संगल (यूनानियों का), शाकल कनिंगहम का (कनिंगहम की इंशेन्ट जाग्राफी पृ० १८०), डाक्टर भंडारकर (इंडियन आन्टीक्वेरी १।२२) और मेकक्रिन्डले (इनवेजिन आफ इन्डिया बाई एलेक्ज़ेन्डर दि ग्रेट पृष्ठ ३४८) के अनुसार तथा पाणिनि का सांकल (सूत्र ४।२।७५)—यह वह स्थान है जो हाईड्रेटस और हाईपेसिस नदियों के बीच में स्थित है। संभवतः अमृतसर जिले के पहाड़ी इलाके की ओर है। मि० वी० ए० स्मिथ के विचारानुसार सगल तथा सागल भिन्न है। उसके विचार से संगल गुरुदासपुर जिले मे था (अर्ली हिष्ट्री आफ़ इन्डिया पेज ६५ नोट)।"

वस्तुतः यह एक देश है। यह पंजाब में रावीनदी के तट पर है। बृहदारण्यकोपनिषद् ३।७।१ में देशअर्थ मे इसका प्रयोग आया है। बृहदारण्यकोपनिषद् ३।३।१ में भुज्युलाह्यायनि ने याज्ञवल्क्य से कहा कि हम मद्रदेश मे चरक होकर पतंचलकाप्य के घर में रह रहे थे। इन दोनों उदाहरणो मे यह शब्द देशअर्थ में आया है। किसी मनुष्यजाति के नाम के लिये नहीं आया। और ऐतरेय ब्रा० ३८।३ मे ऐन्द्राभिषेक के वर्णन मे उत्तर दिशा मे हिमालय के पार उत्तरकुरु और उत्तरमद्र नाम के देश हैं उनके राजे वैराज्य के लिये अभिषिक्त होते है। अभिषिक्त उन राजाओं को विराट् कहना चाहिये। यहाँ पर उत्तरमद्र

शब्द के साथ जनपद शब्द भी आ गया है, जिसका स्पष्ट अर्थ देश है और 'परेण हिमवन्तम्' यह 'हिमालय से परे' कह रहा है। फिर भी जिमर इसको कश्मीर में मानते हैं। क्या कश्मीर हिमालय से परे है? वेदिक इंडेक्सकार इसमें 'सम्भवतः' लिखकर जिमर के सिद्धान्त से सहमत हैं और पकड़े जाने पर 'सम्भवतः' कहकर अलग होने का प्रबन्ध भी कर चुके हैं तथा मद्र को एक घुमक्कड़ जाति बनाने के चक्कर में हैं। वह इन्हें कुरुक्षेत्र में ठहराते है, और बृहद् आरण्यकोपनिषद् में देशअर्थ मे आये हुए 'मद्र' प्रयोग को जाति मानते हुए संस्कृत न जाननेवालों का वंचन कर रहे हैं और जिमर की पीठ ठोकते हुए इसकी मद्रगार से तुलना कर रहे हैं। वे० इ० "मद्रगार शौंगायनि शुंग से उद्धृत यह गुरु का नाम है, जिसका शिष्य काम्बोज औपमन्यव वंश ब्राह्मण में था (इंडिस्चेस्टडियन ४।३७२)। जिमर (अल्टेन डिस्चेजलेवेन १०२) कुछ असलियत के साथ ऐसा निर्णय करते हैं कि ये नाम मद्रस् और काम्बोजस् के सम्पर्क का संकेत करते हैं।" जिमर का कहना एकदम आधारशून्य है। मद्रगार का शिष्य काम्बोज औपमन्यव था। इसमें मद्रगार शब्द का मद्र से कोई सम्बन्ध नहीं। औपमन्यव काम्बोज था (कम्बोज जातिवाला था) यह अर्थ भी काम्बोज औपमन्यव से नहीं आता। प्रत्युत काम्बोज नामक शिष्य उपमन्यु का पुत्र था। यदि काम्बोज का अर्थ कम्बोजदेशनिवासी भी मान लिया जाय तो मद्रगार का अर्थ मद्रदेश नहीं था। यदि असंभव अर्थ मद्रदेश निवासी मान भी लिया जाय तो मद्रनिवासी और कम्बोजनिवासी पड़ोसी थे; अर्थात् मद्रदेश और कम्बोजदेश पास मे

थे, यह कहा नहीं जा सकता। जैसे बंगाली का शिष्य पंजाबी था, यह कहने से कोई बंगाल और पंजाब को पड़ोस में नहीं समझता।

जनरल कनिगहम ने पुराणों का शाकल और बौद्धों का सागल, ह्वेनसांग का शेकीलो और सिकन्दर के साथियों के संगला को एक किया है। परंच विचार करने पर शाकल, सागल और शेकीलो तीनों एक हैं और मद्रदेश की राजधानी के नाम हैं, जो आजकल पंजाब में श्यालकोट के नाम से प्रसिद्ध है। यह उदीच्यदेश; अर्थात् रावी के उत्तर-पश्चिम देश में थी। यह बात व्याकरण के महाभाष्य के 'अव्ययात्त्यप्' सूत्र में स्पष्ट है। श्यालकोट रावी से पश्चिम है। यह देश बाहीक में था। बाहीक इतना ही नहीं था; क्योंकि बाहीक पंजाब की पाँचों नदियों और सिंधु के बीच के भाग का नाम है। बाहीक का दूसरा नाम टक्क भी है। आनुपूर्वी एक होने से सांकल, सगल और आजकल का पजाब का सांगला नगर एक है। इसके समीप का सांगलापर्वत काष्ठगिरि है। काष्ठपर्वत के निवासी काष्ठीय कहे जाते थे। काष्ठीय का अपभ्रंश काठीय बना तथा काठीय का बिगड़ा रूप काठी है। ये काठी लोग सांकल के अधिकारी थे और सिकन्दर के साथियों के काठियन्स भी यही थे, जो आज भी काठी नाम से लायलपुर प्रान्त में बसते हुए मिलते, यदि पाकिस्तान होने से प्राणरक्षा के लिये भाग न आते। कठ शब्द जो कहते हैं उनका भी मत ठीक नहीं, वह वेद की कठ नाम की शाखा के पढ़ने से कठ कहे जाते थे। उनकी कोई जाति नहीं थी। और कोई लड़ाकू जाति कठ नाम से प्रसिद्ध

भी नहीं थी। इससे काठियन्स को कठ मानना निःसार है।

संकल ने इसे बसाया, इससे 'सांकल' नाम पड़ा—इसकी सिद्धि 'संकलादिभ्यश्च' ४।२।७५ पाणिनि का सूत्र करता है। जो संगला सिकन्दर के साथियों ने रावी से पूर्व लिखा है, यह वही सांगला है जो रावी से पूर्व है और मद्र की राजधानी भी नहीं है तथा ह्वेनसाँग के लेख से इसका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। इसके समीप ह्वेनसाँग के नगर का ढूँढ़ना और शाकल से एक करना कनिंगहम की सरासर धाँधली है। यह सांगला की पहाड़ी और स्टेशन दोनों पंजाब में प्रसिद्ध हैं और रावी से पूर्व हैं।

जो लोग मद्र और बाह्लीक को एक कहते हैं, वे गलती पर हैं। जिस देश में हींग पैदा होती है, वही बाह्लीक है। यहाँ पर हींग पैदा नहीं होती, इसलिये यह बाह्लीक नहीं हो सकता। बाहीक के स्थान मे दाक्षिणात्य पाठ बाह्लीक मिलते हैं, यह उन लोगों का प्रमाद है। मद्र पंजाब का छोटा-सा प्रांत है। इसलिये जो लोग कहते है कि बाहीक मद्रराज्य का एक भाग-सा प्रतीत होता है, वे सरासर उलटा कहते हैं। क्योंकि मद्र बाहीक का एक भाग था। टक्क पूरे पंजाब का नाम है, इसलिये उसको मद्रमात्र का नाम मानना भी ठीक नहीं है।

पुराणों मे इसका इस प्रकार वर्णन है:—देवीभागवत २।६। ८ मद्रदेश यह एक देश है। राजतरंगिणी ८।१५३१ मद्रमण्डल यहाँ त्याग (दान) नहीं है। कथासरित्सागर सूर्य० १।१७ इसकी राजधानी शाकलनगर है। बाल्मी० कि० ४३।११ यह जनपद उत्तर दिशा में है, 'मद्रकाः' यह पाठ है। महाभा० हरि०

हरि० ३२।३० यह जनपद शिविपुत्र मद्रक का राज्य है। महाभा० (म०) आदि० १।१९१ यह देश पश्चिम मे है। सभा० (म०) २८।१८॥ यह देश है। काशिका ४।१।११७ यह शब्द जनपदसमानक्षत्रियवाची है और उदीच्य है; अर्थात् रावी से उत्तर-पश्चिम है। महाभा० आदि० (म०) १०६।४ मद्रदेश की राजधानी का मद्रपुटभेदन नाम है, (चि०) ११२।२ मद्र की राजधानी का मद्रपतिपुर नाम मिलता है, (भि०) १२२।२ मे भीममद्रपतिपुर नाम है। विष्णुधर्मोत्तर० ३।१२७ यह देश है। महाभा० भी० ४३।८८ यह देश है, 'मद्रकाः' पाठ है। वामन० ७९।१२ मद्र यह देश है। स्कन्द० प्रभा० प्र० मा० १६६।४ यह देश है। गणेश० ३२।२२ यह देश है। कूर्म० ब्रा० पू० ४७।४४ माद्र यह देश भारत मे है। गरुड़० पू० ५५।१७ यह देश भारत में है और उत्तर में है। मार्क० ५४।४४ यह देश पश्चिम में है, ५४।३६ यह देश मद्रक भारत में है और उदीच्य है। ५५।६ यह देश भारत मे है और पूर्वमुख कूर्म के मध्य में है। वायु० पू० ४५।११६ मद्रक यह जनपद भारत मे है और उदीच्य है। वायु० पू० ३७।२४ माद्रक यह देश है और शिविपुत्र मद्रक का राज्य है। ब्रह्म० २७।४५ मद्रक यह देश भारत में उदीच्य है। मत्स्य० ११४।४१ मद्रक यह देश भारत मे है और उदीच्य है। पद्म० उ० २७१।११ यह देश पश्चिम में है।

मध्यदेश—१. वे० इ० "मध्यदेश बीच की भूमि। मानव-धर्मशास्त्र' में हिमालय से दक्षिण और विंध्य से उत्तर, विनशन

(१) २।२१।

से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम भूमि को मध्यदेश माना है। विनशन उस स्थान को कहते हैं, जहाँ पर मरु में सरस्वती लुप्त होती है। प्रयाग उस स्थान को कहते हैं, जहाँ पर गंगा और यमुना मिलती हैं। ब्रह्मर्षिदेश[1] में कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पचाल और शूरसेन के देश हैं। और ब्रह्मावर्त[2] की पवित्र भूमि सरस्वती और दृषद्वती के मध्य में है। बौधायन[3] धर्मसूत्र आर्यावर्त की परिभाषा इस प्रकार देता है कि वह स्थल विनशन से पूर्व, कालकवन से पश्चिम। कालकवन; अर्थात् कालाजंगल अथवा शायद कनखल-हरद्वार के समीप हिमालय के दक्षिण में, पारियात्र अथवा पारिपात्र पर्वतों के उत्तर मे—यह कहते हैं कि यह दूसरो[4] के विचारानुसार गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश में सीमित था, जब कि भाल्लविस[5] लोगों ने इसको एक प्रदेश समझा। वह प्रदेश जहाँ से सूर्य निकलता है और सीमा नदी

---

(१) २।१६।

(२) २।१७।१९।

(३) १।२।६, वशिष्ठ धर्मसूत्र १।८।

(४) बौधायन० १।२।१०, वशिष्ठ० १।१२, कनखल पर हाल्ट जिस्क इण्डियन आन्टीक्वेरी ३४।१७६।

(५) बौधायन० १।२।११।१२, वशिष्ठ० १।१४।१५, दोनों सूरतों में निदान की एक रचना उद्धृत की है। किस कृति का संकेत है, यह सदिग्ध है। वहाँ उसी तरह का भ्रम है। भाल्लवि ब्रा० के दोहे का निदान मे आना। बृहद्देवता के ५।२३ के अनुसार। यहाँ पर मेकडानल की टिप्पणी देखो और तुलना करो बूहलर सेक्रेड बुकस् आफ दि ईस्ट १४।३ एन् से।

के बीच मे (सीमा नदी अथवा सरस्वती[1])। मानवधर्मशास्त्र[2] वशिष्ठ[3] धर्मसूत्र के अनुसार आर्यावर्त की परिभाषा इस प्रकार करता है:–वह स्थल जो विन्ध्य और हिमालय के बीच मे है। ये दो शृड्खलाएँ जो कौषीतकी उपनिषद्[4] मे भी आर्यसंसार की सीमाएँ मालूम होती है। मध्यदेश शब्द वैदिक नहीं है; परन्तु ऐतरेय[5] ब्राह्मण मे 'मध्यमा प्रतिष्ठा दिशि' यह रूप मिलता है, जहाँ के रहनेवाले कुरुस्, पंचालस्, वशस् और उशीनरस् बतलाये गये हैं। बाद मे ये दोनो जातियाँ वशस् और उशीनरस् पूर्णरूप से लुप्त हो जाती हैं। मध्यदेश कुरुपचालस् का प्रदेश होने के नाते वह स्थल जहाँ पर कि ब्राह्मण सौत्रकालिक संहिताएँ उत्पन्न हुई थीं। पूर्व में कोशलविदेह द्वारा सीमित और पश्चिम में रेगिस्तान द्वारा सीमित है। पश्चिमी फिरके

(१ . पढ़ाई भ्रमात्मक है। और यह स्थाई नहीं है। सिधुर्विधारणी अथवा विधरणी और सिधुर्विचरणी अथवा विसरणी इन दोनो के बीच इनका रूप अस्थायी है। बाद का वाक्य निस्सदेह सरस्वती का सदेह करता है। और पहलेवाला रूप सकेत कर सकता है। परन्तु आवश्यकरूप से नहीं। मालूम पड़ता है कि सिधु (इ डस) का आशय है, क्योकि यह एक महती सीमा थी, जिसके पूर्व में आर्य जातियाँ थीं।

(२) २।२२।

(३) १।६।

(४) २।१३, तुलना करो कीथ शाखायनारण्यक २८ नं० १।

(५) ८।१४।३, उशीनरस् उत्तर मे माने जा सकते है; क्योकि बौद्ध ग्रन्थ उशीरगिरि को मध्यप्रदेश की उत्तरी सीमा देते है। हाल्ट जिस्क इ डियन आन्टीक्वेरी ३४।१७६ देखिये।

दोनों शतपथ[1] और ऐतरेय[2] ब्रा० में अप्रियता के साथ उल्लिखित है। जब कि पूर्वकालिक[3] ब्राह्मणों में यह गाथा स्थापित मिलती है कि कुरुपंचाल प्रदेश से कोशल और विदेह के ब्राह्मणो का ब्राह्मणत्व।"

(१) ६।३।१।८।

(२) ३।४४।३, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ् दि ऋग्वेद ३।२४५।

(३) १।४।१, तुलना करो बूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १४।२।३, तथा १४६, १४७ जो कि इस बात का सकेत करता है कि पारियात्रपर्वत मालवा में विन्ध्य शृंखला के भाग है और जो कि सकेत करता है कि वास्तव में सबसे पहले पश्चिमी सीमा आदर्श पर्वतो की थी। क्योंकि हस्तलिखित पुस्तकों की पढ़ाई तथा कृष्ण प० के वशिष्ठ धर्मसूत्र का पाठ 'प्रागादर्शनात् है', न कि अदर्शनात् जो कि बौधायन धर्मसूत्र १।२।६ के विनशन के अनुकूल है और पाणिनि के महाभाष्य २।४।१० मे प्रागादर्शात् है। बौद्ध कालीन मध्यप्रदेश के ऊपर रिस् डेविट का एक लेख भी देखिये। जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०४, ३८ इत्यादि फ्लीट के सशोधन के साथ वही पुस्तक १६०७, ६५७ और तुलना करो कीथ की वही पुस्तक १६०८, ११४३, मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।५८।५६। इंडियन इम्पायर १।३०३।३०४, जहाँ पर कि एक अद्भुत थ्योरी अपनाई गई है कि मध्यदेश आगन्तुक आर्यो की नई जाति द्वारा बसाया गया था, जो कि चित्राल और गिलगिट होते हुए यात्रा करते अपने साथ कोई स्त्री को न लाकर आयी और उसने द्रविड़-स्त्रियो से विवाह किये और आर्योद्रविड़यन्स को उत्पन्न किया। इस कल्पना के लिये वैदिक साहित्य में कोई भी मदद खोजना बिल्कुल असभव है। ऐसा कहना जैसा कि वहाँ कहा गया है—"उस मार्ग का जिससे कि आर्य लोग भारत मे घुसे अथवा अपने इन्डस पर स्थित पहले स्थानो मे घुसे" वैदिक मन्त्रो मे इसका कोई भी सकेत नही मिलता। और

२. कीथ कौषीतकी उपनिषद् में आर्यसंसार की हिमालय और विन्ध्य दोनों शृंखलाएँ सीमाएँ मानी गई हैं, यह कह रहे हैं। (वे० इ०)

३. हल्ट जिस्क का मत है कि उशीनरस् उत्तर में पाये जा सकते हैं, क्योंकि बौद्ध ग्रन्थ उशीरगिरि को मध्यप्रदेश की उत्तरी सीमा मानते हैं। हल्ट के मत में उशीर और उशीनर दोनों में अन्तर नहीं है। (वे० इ०)

४. लुडविक शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में पश्चिमी फिरके अप्रियता के साथ उल्लिखित हैं, यह मानते हैं। (वे० इ०)

५. ग्रियर्सन् इत्यादि का मत है कि मध्यदेश आगन्तुक आर्यों की नवीन जाति द्वारा बसाया गया था, जो कि चित्राल और गिलगिट होते हुए यात्रा करते आई और अपने साथ किसी स्त्री मात्र को साथ न लाई और द्रविड़स्त्रियों से विवाह-कर उन्होंने आर्योंद्रविड़यन्स को उत्पन्न किया तथा उनके द्वारा मध्यदेश बसाया गया। यह थ्योरी बाद की भाषाओं और उनके सम्बन्ध पर निर्धारित की गई है। (वे० इ०)

६. जाग्राफी अर्ली बुद्धिष्ट पृ० १ से १२ तक "मध्यदेश—यह देश महावग्ग ५ पृ० १२, १३ पूर्व में कजंगल तक, उसके बाद

"यह भारतीयों की चित्राल होनेवाली थ्योरी से समझाया जाता है"—इसपर जोर देना मूर्खता पर जोर देना है। यह थ्योरी बाद की भाषाओं और उनके सम्बन्ध पर निर्धारित की गई है। ग्रियर्सन इंडियन इम्पायर १।१५७ इत्यादि देखिये, किसी भी काल के लिये सम्भवतः यह बिल्कुल भी सही मानी नहीं जा सकती। प्रत्येक दशा में किसी प्रकार से भी यह आठवीं शताब्दी बी० सी० के लिये बलवान् नहीं है।

महासाल नामक नगर था। दक्षिण-पूर्व मे सलवती (शरावती) से सतकर्णिक नगर, पश्चिम मे थून तक और उत्तर मे सीर-धजपर्वत तक था। दिव्यावदान मे पृ० २१,२२ पुण्ड्रवर्धन भी पूर्वी मध्यदेश में था। पुण्ड्रवर्धन में वरेन्द्र भी आ जाता है और समान है। मज्झिमदेश ३०० योजन लम्बा, २५० योजन चौड़ा, ९०० योजन परिधि मे थे। १६ जनपदों मे १४ मध्य-देश के अन्तर्गत थे। काशि, कोशल, अंग, मगध, बज्जिमल्ल, चेतियवंश (वत्स), कुरु, पंचाल, मच्छ (मत्स्य), अस्सक, अवन्ति। काम्बोज और गंधार उत्तरपथ मे थे।"

७. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ ११६ "वह देश जो कुरुक्षेत्र में सरस्वतीनदी से, इलाहाबाद से, हिमालय से तथा विन्ध्य से घिरा हुआ था। अन्तर्वेद मध्यदेश के अन्तर्गत था (मनु० २।२१)। बौद्धों के मज्झिमदेश की सीमाएँ यह हैं:— पूर्व में कजंगल का नगर और महासाल, दक्षिण पूर्व मे सला-वतीनदी, दक्षिण मे सेतकन्निक नगर तथा पश्चिम में थूननगर और प्रदेश, उत्तर में उसोरध्वजपर्वत (महाबग्ग ५।१२।१३)। काम्पिल्य, वस्तुतः मध्यदेश की पूर्वी सीमा थी (वेबर की हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर पे० ११५ नोट)। पंचाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, कुन्ति और शूरसेन देश मध्यदेश के अन्तर्गत थे (गरुड़० भा० १ अ० ५५)। मध्यदेश के अन्तर्गत ब्रह्मर्षिदेश है तथा ब्रह्मर्षिदेश के अन्तर्गत ब्रह्मावर्तदेश है (मैक्समूलर का ऋग्वेद ।४५)।"

८. वेबर काम्पिल्य को मध्यदेश की पूर्वी सीमा मानते है। (जा० डि०)।

९. मैक्समूलर ब्रह्मर्षिदेश के मध्य में ब्रह्मावर्त को मानते हैं। (जा० डि०)

वस्तुतः यह एक देश है। इसकी पश्चिमी सीमा सरस्वती का विनशन है, पूर्वी सीमा प्रयाग है, उत्तरी सीमा हिमालय और दक्षिणी सीमा पारियात्र है (मनु० २।२१)। ऐतरेय ब्रा० ३८।३ में 'ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायाम् दिशि' ऐसा पाठ है। मध्यमा का अर्थ मध्यदेश है। सम्पूर्ण प्राच्य आदि दिशाएँ इसकी अपेक्षा करती हैं, इससे यह ध्रुवा है। इसकी अपेक्षा ही पूर्वादिव्यवहार होता है। इसमें कुरुदेश और पंचालदेश के तथा वश और उशीनर के जो राजे हैं, वे राज्य के लिये ही ऐन्द्राभिषेक से अभिषिक्त होते हैं। इन अभिषिक्त नृपों को राजा कहना चाहिये। बौधायन धर्मसूत्र और वशिष्ठ धर्मसूत्र में आर्यावर्त के लक्षण से इसके लक्षण को मिश्रित कर डाला है। और योरोपियन विद्वानों ने उसके अर्थ को इधर-उधर से मिलाकर विचित्र ही कर दिया एवं स्थानों के नाम भी विचित्र कर दिये। वे० इ० में कालकवन का अर्थ 'काला जंगल कनखल-हरद्वार के समीप' इत्यादि जो अर्थ किया है, वह अशुद्ध है। मनु ने पूर्व और पश्चिम समुद्रों का मध्य तथा हिमालय और विंध्य के मध्य को आर्यावर्त माना है। इस मनु के साथ एकीकरण करने में कालकवन पूर्वसमुद्र के तट पर मानना होगा। यदि कनखल के पास कालकवन माना जायगा तो मध्यदेश के भीतर ही आर्यावर्त समाप्त हो जायगा और कुरुपंचाल भी आर्यावर्त के बाहर हो जायेंगे। मानवधर्मशास्त्र का आर्यावर्त का लक्षण दिखलाते समय वे० इ० कार पूर्व और पश्चिम समुद्र

को भूल गये या जानकर किसी प्रयोजन से छोड़ गये। इसके ऊपर विशेष 'आर्यावर्त' में मिलेगा। कौषीतकी उपनिषद् २।२ में आर्यसंसार की सीमा का नाम ही नहीं है। मालूम होता है कि २।३ संख्या भ्रम से छपी है। ४।१ में गार्ग्य बालाकि का उशीनर, मत्स्य, कुरु, पंचाल और काशी विदेह में बसना लिखा है और उसका काशी के राजा अजातशत्रु के पास ब्रह्मोपदेश करने के लिये जाने का वर्णन है। इससे कैसे आर्य संसार की सीमा का वर्णन आया, यह समझ में नहीं आता। शतपथ ब्रा० ९।३।१।८ में पश्चिमी फिरकों का वर्णन नहीं है और न अप्रियता के साथ उनका उल्लेख ही है। वहाँ तो हवन का वर्णन है। ऐतरेय ब्रा० ३।४४।२ (१४।६) में भी पश्चिमी फिरकों का नाम नहीं है और न उनका अप्रियता के साथ उल्लेख ही है। प्रातःकाल के और सायंकाल के हवन का वर्णन है। वहाँ का पाठ और अर्थ हमने 'दीर्घारण्य' में दिया है, वहीं से देखना चाहिये। इसमें पश्चिमी फिरकों की अप्रियता कैसे आई, यह समझ में नहीं आता। वेदिक इंडेक्सकार वशास् एक जाति मानते हैं, यह भी ठीक नहीं। ऐतरेय और गोपथ ब्रा० में 'वश' देश है और 'उशीनर' भी देश है और ये दोनों मध्यदेश में हैं, यह लिखा है। वेदिक इंडेक्सकार का "बाद में ये दोनों जातियाँ पूर्णरूप से लुप्त हो जाती हैं"—यह कथन भी असंगत है। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थ इन दोनों का वर्णन नहीं कर रहे थे, जो प्रसंगवश आये हुए नामों को फिर दोहराते। यहाँ पर उनका वर्णन प्रसंगवश आया है। दोनों ब्राह्मणों में इनका वर्णन भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से आता है। इनका भी परस्पर कोई

संवन्ध नहीं । यहाँ पर दोनों का देशरूप में वर्णन है, जाति-रूप मे नहीं है ? "उशीरगिरि मध्यप्रदेश की उत्तरी सीमा पर बौद्ध ग्रन्थों मे आया है। इससे उशीनरस् उत्तर मे पाये जा सकते है"—इस लेख से उशीर और उशीनर दोनो योरोपियन विद्वानो की दृष्टि मे एक हैं। उशीर मे 'शी' और 'रेफ' के बीच मे 'न' नहीं है और तीन अक्षर है तथा उशीनर मे 'शी' और 'र' के बीच मे 'न' अधिक है, इस प्रकार चार अक्षर हैं। तब भी उनको एक कर उसके आधार पर उशीनर को उत्तरी सिद्ध करना इनके साहस की पराकाष्ठा है। "कुरु पंचाल में ही ब्राह्मण और उत्तरकालिक संहिताएँ बनीं"—यह कथन भी निर्मूल है। जब कि ऋग्वेद[1] मे अन्य वेदों के नाम मिलते हैं,

---

(१) ६।११।२ मे यह शामन् शब्द सामवेद अर्थ मे आया है। २।४३।२ मे भी सामवेद के गान का वर्णन है। १०।९०।६ मे ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद की उत्पत्ति का साथ-साथ वर्णन है। १।१७३।१ मे भी सामवेद के गाने का वर्णन है। ऋग्० १०।६३।८ तथा १०।५६।२ में भी साम० के गाने का वर्णन है। ऋग्वेद १०।३६।५ मे भी साम० के गान का वर्णन है। ऋग्० १०।८५।११ मे ऋग्० और सामवेद का नाम साथ-साथ आया है तथा ६८।१६।६ मे भी सामवेद का वर्णन है। ऋग्० १।१६४।२४ में गायत्रसाम और त्रैष्टुभसाम का वर्णन है। ऋ० २।४३।१ में गायत्र और त्रैष्टुभ साम का नाम आया है। ऋ० १।६४।२५ मे जगत्साम, रथन्तरसाम और गायत्रसाम का वर्णन है। ऋग्० ८।६५।७ मे शुद्धसाम का नाम है। ऋ० ७।२४।३ मे आगूषसाम का वर्णन है। ऋ० ८।६६।१, ८।८६।१, १०।१८१।२, ८।८६।७ तथा ८।६८।१ में बृहत्साम का नाम है। ऋ० १०।१८१।१ मे रथन्तरसाम का नाम आया है। ऐतरेय ब्रा० २५।७ मे यज्ञो की प्रायश्चित्ति के वर्णन मे यजुर्वेद के

फिर भी वे उत्तरकालिक संहिताएँ हैं—यह कहना एकदम आँखो मे धूल झोकना है। कोशल, विदेह द्वारा मध्यदेश की सीमा भी निश्चित नहीं है। विदेह मध्यदेश मे नहीं है। कोशल अवश्य है, सो भी सदानीरानदी पर्यन्त नहीं, प्रयाग के सामने तक। कुरु पंचाल या कोशल विदेह के ब्राह्मणत्व में अधिक-न्यून होने का विचार ही नहीं है। जो प्रमाण ये लोग देते हैं, उनमे कहीं भी ब्राह्मणत्व के विचार की गन्ध तक नहीं है। शतपथ अग्न्याधान के मन्त्रो का विवेचन करता है और अग्नि से जलाये गये देशो को पवित्र बतलाता है। और यज्ञ द्वारा विदेह को भी पवित्र बतलाता है, विशेष 'कोशल' मे देखिये। आर्योद्रविडयन्सवाली अद्भुत थ्योरी का खण्डन वे० इ० कार ने स्वयं किया है। बौद्धो का मध्यदेश हमारे से भिन्न है, उसका रहस्य वही समझें। नन्दलाल डे ने मध्यदेश की पश्चिमी सीमा कुरुक्षेत्र मे सरस्वती को माना है, यह ठीक नहीं। क्योंकि सरस्वती का विनशन पश्चिमी सीमा है। वेबर काम्पिल्य को मध्यदेश की पूर्वी सीमा मानते हैं, उनका मत मनु और बौद्धों से भी विरुद्ध है, इससे मानने योग्य नहीं।

ज्ञाता को 'अध्वर्यु' कहा है, ऋग्० के ज्ञाता को 'होता' कहा है और साम के ज्ञाती को 'उद्गीथ' कहा है तथा ऋग्० यजु० साम० के ज्ञाता को 'ब्रह्मा' कहा हे। ऋग्० १०।९०।९ मे यजुर्वेद की उत्पत्ति साम वेद के साथ वर्णित है। ऋ० १०।१०७।६ मे यज्ञ का नेता अध्वर्यु का वाचक यज्ञन्य शब्द आया है। ऋग्० ३।७।७, ७।१।४, २।१४।१ से १९ तक प्रत्येक मन्त्र मे अध्वर्यु शब्द आया है, जो यजुर्वेद के ज्ञाता का वाचक है। ब्रह्मा, ऋग्० १०।७१।११ इसमे ब्रह्मा का अर्थ तीनो वेदो का ज्ञाता

मनोरवसर्पण—१. वे० इ० "मनोरवपर्वण यह शतपथ[१] ब्रा० मे उस पर्वत का नाम है, जहाँ पर मनु का जहाज ठहरा था। एपिक मे नौबंधन नाम है। इसका संकेत नावप्रभ्रंशन से अथर्ववेद[२] मे है। यह विचार[३] अब छोड़[४] दिया गया।"

२. लुडविक, एजलिङ् और जिमर इसको नावप्रभ्रंशन से एक करते हैं। (वे० इ०)

३. ब्लूमफील्ड, विटनी और मेकडानल नावप्रभ्रंशन शब्द को असंभव मानकर इसको नावप्रभ्रंशन से एक नहीं करते। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक स्थान का नाम है, जिसका शतपथ ब्रा० मे उत्तरपर्वत; अर्थात् हिमालय मे वर्णन है। इसका पुराणो मे नौबन्धनशिखर नाम मिलता है। कश्मीर मे नौबन्ध-चोटी के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। मेकडानल, विटनी और ब्लूमफील्ड नावप्रभ्रंशन को स्थानविशेष नहीं मानते सो ठीक ही है। जब वह स्थान नहीं तो उसका एकीकरण भी व्यर्थ है। परंच 'मनोरवसर्पण' नाम शतपथ मे मिलता है। जब सभी

है। १०।१०७।६ मे ब्रह्मा का अर्थ तीनो वेदो का ज्ञाता है।

(१) १।८।१।८।

(२) १६।३६।८।

(३) देखो मेकडानल वेदिक माइथालोजी पृ० १३६, विटने इडिस्चेस्टडियन १।१६२, जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन ३०, ब्लूम-फील्ड हिम्स आफ दि अथर्व० ६७६।

(४) विटने ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्ववेद ६६१, मेकडानल जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०७, ११०७।

लोग इसे स्थानविशेष मानते हैं, तो इसे कहीं-न-कहीं मानना ही होगा। पुराणों से इसका स्थान कश्मीर मे आता है तो यह स्थान कश्मीर मे अवश्य मानना होगा। महाभा० आर० १८७।५० यह हिमालय का शृङ्ग है, यहाँ पर वैवस्वत मनु ने प्रलय में अपनी नाव को बाँधा था। नीलमत पुराण २१६ नौव-बन्धनशिखर के मध्यशिखर में रुद्र हैं, दक्षिणशिखर मे विष्णु है, उत्तर के शिखर में ब्रह्मा हैं और इसके बाद और भी सुरासुर हैं।

मन्धातृक्षेत्र—यह मन्धाता के राज्य का नाम है। ऋग्० १।११२,१३ मे इसका वर्णन है। अर्थ यह है:—हे अश्विनी-कुमारो! दूर देश मे स्थित सूर्य को जिन रक्षाओं से आप रक्षा करते है तथा क्षैत्रपत्य कर्म मे आपने मन्धाता की रक्षा की और जिन रक्षणो से आपने मेधावी भरद्वाज की रक्षा की, उन्हीं सब रक्षणा से हमारे पास भी आइये। इसमें क्षैत्रपत्य शब्द का शायण ने इस प्रकार अर्थ किया है--'क्षेत्राणामपतिः अधिपतिः क्षेत्रपतिः तत्सम्बन्धिषु कर्मसु आवत रक्षतम्।' गोपथ ब्रा० २।१०।१४ मे इनका नाम मान्धाता लिखा है। और 'मान्धातु यौवनाश्वस्य सार्वभौमस्य राज्ञः' यह पाठ मिलता है, जो इसको 'मन्धातृ' के स्थान पर 'मान्धातृ' कहता है और समस्त पृथ्वी का राजा मानता है तथा युवनाश्व का पुत्र कहता है। ऋग्० मे इसको क्षेत्रपति कहा है और इसका कर्म क्षैत्रपत्य कहा है। विष्णु० ४।२।१८, वायु० उ० २६।६८ में तथा अन्य पुराणो मे भी जहाँ तक सूर्य का प्रकाश है, उस स्थान का नाम मान्धातृक्षेत्र माना है। ऋग्० ८।३९।८ मे मन्धाता का

राजा के रूप में वर्णन है। मन्धातृक्षेत्र और मान्धातृक्षेत्र दोनों इसके नाम है और जहाँ तक सूर्य का प्रकाश है, उस प्रान्त का नाम मानना होगा। इसलिये समस्त संसार का मन्धातृ-क्षेत्र नाम है।

मरु—वे० इ० "मरु बहुवचन मे तैत्तिरीयारण्यक[1] में कुरुक्षेत्र के उत्तर की तरह इसका उल्लेख है। इससे पता चलता है कि मरु = रेगिस्तान (बाद के मरुस्थल) इसलिये ऐसे कहे जाते थे। क्योंकि वे मरु कुरुक्षेत्र पर उसी भाँति स्थित थे, जैसे कि उत्कर की बेकार भूमि बलि देने की भूमि पर।"

वस्तुतः यह रेगिस्तानमात्र का नाम है। तैत्तिरीयारण्यक का अर्थ यह है:—कुरुक्षेत्र देवताओं की वेदी थी, खाण्डवप्रदेश उसका दक्षिणार्ध था, तूर्घ्न उसका उत्तरार्ध था, परीणत् जघनार्ध नीचे का हिस्सा था तथा मरु उत्कर थे। वेदी के उत्तर भाग मे धूल, तिनके इत्यादि जहाँ फेंके जाते हैं वह उत्कर कहलाता है; अर्थात् वहाँ मरुस्थल मे वेदी का कूड़ा फेंका जाता था। वे० इ० कार आरण्यक का भाव न समझकर मनमाना अर्थ निकालते है, उनसे भी कोई प्रयोजन नहीं निकलता।

मरुद्वृधा—१. वे० इ० "मरुद्वृधा[2] ऋग्०[3] की नदीस्तुति

(१) ५।१।१।

(२) मरुत्स में हर्ष इत्यादि मेकडानल की वेदिक माइथालोजी के पृष्ठ ८०।८८ में इस नाम की स्पेलिंग गलत है। उसमें मरुद्वृद्धा लिखा है, लेकिन इडेक्स और अदेन्ड मे ठीक कर दिया है। देखो वार्तिक २ पाणिनि ६।२।१०६।

(३) १०।७५।५।

मे एक धारा का नाम है, जो असिक्नी (अकेसिनस) और वितस्ता (हाइडस्पयस्) के साथ मिलकर बनी है। राथ[1] अनुमान करता है कि मरुद्वृधा से उस चश्मे का संकेत होता है (वह धारा) जो कि परुष्णी के संगम तक (असिक्नी और वितस्ता) नदियों के संयुक्त जल से बनी है। यह विचार जिमर[2] ने स्वीकार किया है। दूसरी ओर लुडविक[3] विचार करता है कि मरुद्वृधा उस धारा का संकेत करती है, जो परुष्णी, असिक्नी और वितस्ता के संयुक्त जल के संगम से बनती है। किन्तु यह विचार इतना उपयुक्त मालूम नहीं होता।"

२. राथ के मत मे वितस्ता और असिक्नी की संयुक्तधारा परुष्णी-संगम तक इस नाम से कही जाती है।

३. जिमर भी राथ के विचार से सहमत हैं।

४. लुडविक के मत में परुष्णी, असिक्नी और वितस्ता की संयुक्तधारा इस नाम से कही जाती है।

५. भारत भूमि १।१४२ "यह अमरनाथश्रृंखला कश्मीर-घाटी की पूर्वी सीमा और व्यथ तथा चिनाब की जलविभाजक है। उसके पूर्व तरफ उसके और हिमालय की बड़ी श्रृंखला के बीच मरुवर्द्धान् (ऋ० १०।७५।५) की मरुद्वृधानदी की एकान्त घाटी है।"

६. भण्डारकर[4] इसका मरुवर्द्धान् नाम मानते हैं। (भारत

---

(१) जुर लिट्रेचर ऐन्ड गेस्चेट्डेसवेड १३८, इत्यादि।

(२) अल्टिनडिस्चेजलेवेन ११।१२।

(३) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२००।

(४) भण्डारकर कोमेमोरेशन वालूम १६१७ पृ० २३, २४।

भूमि)।

वस्तुतः ऋग्० में यह शब्द नदीमात्र के लिये आया है। निरुक्तकार ने मरुद्वृधा का अर्थ नदीमात्र किया है। निरुक्त ९।२६ इस मंत्र की व्याख्या मे—'मरुवृधाः सर्वानद्यः मरुतः एनाः वर्धयन्ति।' दुर्गाचार्य 'मरुद्वृधाः सर्वाः नद्यः मरुतः एनाः वर्धयन्ति वर्षेण, तस्मात् प्रत्येकं नद्यभिधानमनुषज्यते विशेषणत्वेन।' निरुक्तकार कहते हैं कि मरुद्वृधा सभी नदियों का नाम है। वायु इनको बढ़ाते हैं, इससे नदीमात्र मरुद्वृधा कही जाती है। टीकाकार दुर्गाचार्य कहते हैं कि मरुत् (वायु) वर्षा द्वारा सभी नदियो को बढ़ाते है, इससे मरुद्वृधा सभी नदियाँ हैं। इससे यहाँ सभी नदियों का मरुद्वृधा यह विशेषण है। इस निरुक्त के प्रमाण से ऋग्० में मरुद्वृधा का अर्थ नदीमात्र है। निरुक्त, ब्राह्मण, प्रातिशाख्य श्रौतसूत्र इत्यादि के बल पर ही वेदार्थ होता है। इससे निरुक्त के विरुद्ध अर्थ माने नहीं जा सकते।

मष्णार—वे० इ० "एक स्थान का नाम है। ऐतरेय[1] ब्रा० मे एक कुरु राजा के विजय में दृश्य इसका वर्णन है। ल्यूमेन[2] भी मष्णार को एक स्थान मानते हैं।

वस्तुतः ऐतरेय ब्राह्मण ३९।९ मे एक स्थान का नाम है। ऐतरेय का अर्थ यह है:—दीर्घतमा ने दुष्यन्त के पुत्र भरत का ऐन्द्राभिषेक कराया और उससे बलिष्ट हो भरत ने सम्पूर्ण पृथ्वी

(१) ८।२३।६, तुलना करो भागवत पुराण ५।१३।२६ इत्यादि।

(२) ल्यूमेन जैटस च्रिफ्ट डेर डियूश्चेन मार्गेन लाण्डिस्चेन जिस्लसचेफ्ट ४८।८० नं० २।

का विजय किया एवं अश्वमेधयज्ञ किये। भरत राजा ने मष्णार नामक स्थान मे सोने की झूलों से युक्त सफेद दाँतवाले हाथियों के सात बद्व ब्राह्मणों को दिये। बद्व एक अरब का नाम है, यह सायण ने लिखा है। श्रीमद्भागवत ९।२०।१८ मे १४ नियुत हाथियों का दान लिखा है। इससे भागवतकार के मत में दो नियुत का एक बद्व प्रतीत होता है। भरत राजा को वैदिक इन्डेक्सकार का कुरु राजा कहना असम्बद्ध है। भरत के वंश मे कुरु का जन्म हुआ था, इससे भरत कुरु नहीं कहे जा सकते।

महापुर—वे० इ० "यजुर्वेद[1] संहिता और ब्राह्मणों[2] मे एक बड़े किले का संकेत करता है। संभवतः पुर और महापुर में केवल आयाम और विस्तार का अन्तर था।"

वस्तुतः बड़े नगर का नाम है। कहीं भी पुर शब्द का अर्थ किला नहीं है। तैत्तिरीय संहिता और मैत्रायणी संहिता मे महापुर का अर्थ बहुत बड़ा नगर है। ऐतरेय ब्राह्मण में प्राकार से घिरा हुआ नगर अर्थ है।

महामेरु—वे० इ० "महामेरु—तैत्तिरीयारण्यक मे एक बहुत बड़े पर्वत का उल्लेख है। १।७।१।३ तुलना करो वेबर इन्डिस्चेस्टडियन १।७८ तथा ३।१२३।"

वस्तुतः यह सुमेरु का नाम है। पुराणों में इसका वर्णन इस प्रकार है:—यह पर्वत सब स्थानों से उत्तर में है। इसके ऊपर मे उत्तरीध्रुव है। इसके इधर-उधर की भूमि इलावृत

---

(१) तैत्तिरीय संहिता ६।२।३।१, काठक सहिता २४।१०, मैत्रायणी सं० ३।८।१।

(२) ऐतरेय ब्राह्मण १।२३।२, गोपथ ब्रा० २।२।७।

कही जाती है। यहाँ सूर्य्य-चन्द्रमा प्रकाशरहित हैं। श्रीमद्भागवत ५।१६।४ से प्रारम्भ, स्कन्द० का० २२।४८ से प्रारम्भ, मार्क० ५७।६ से प्रारम्भ, मत्स्य० १३५।२ से प्रारम्भ, लिङ्ग० ५२।३७ से प्रारम्भ।

महावर्ष—यह बौधायन[1] श्रौतसूत्र मे देशअर्थ मे आया है।

महावृष–१. वे० इ० "महावृष एक जाति का नाम है, जिसका उल्लेख अथर्व०[2] मे मूजवन्तों के साथ हुआ है। वह स्थान जहाँ पर कि ज्वर भेजा जाता था। ये लोग उत्तर के रहनेवाले थे, यह समझना बुद्धिसम्मत होगा। यद्यपि ब्लूमफील्ड[3] संकेत करता है कि यह शब्द बनिस्बत् भौगोलिक स्थिति के अपनी ध्वनि और आशय से अधिक नियुक्त होता है। जिस प्रकार कि रोग रोकने के लिये महाशक्तिशाली होना कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद्[4] मे महावृषदेश में रैकपर्ण नाम का स्थान बतलाया गया है। जैमिनियोपनिषद्[5] ब्रा० मे महावृष के राजा को हृत्स्वाशय कहा गया है। बौधायन[6] श्रौतसूत्र मे महावृषस् मंत्रों के द्वारा भी जाने जाते हैं।"

---

(१) २।५।५।

(२) ५।२२।४, ५,८।

(३) हिम्स आफ दि अथर्ववेद ४४६।

(४) ४।२।५।

(५) ३।४०।२।

(६) २।५, तुलना करो वेबर इन्डियन लिट्रेचर ७०।१४७, जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १२६, विट्ने ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्व० २५६, २६०।

२. ब्लूमफील्ड का मत है कि यह शब्द बनिस्बत भौगोलिक स्थिति के अपनी ध्वनि और आशय से, जैसे रोग रोकने के लिये महाशक्तिशाली होना, इसी प्रकार अधिक प्रयुक्त होता है।

३. वेबर, जिमर और विट्ने का मत है कि बौधायन श्रौतसूत्र में महावृषस् मंत्रों के द्वारा भी जाने जाते हैं।

वस्तुतः यह एक देश का नाम है। इसका प्रयोग अथर्ववेद, छान्दोग्योपनिषद् और जैमिनियोपनिषद् ब्राह्मण में देशअर्थ में आता है। जाति कहना एकदम निराधार है। अथर्व० के मंत्रों का अर्थ 'अंग' और 'मगध' मे लिखा जा चुका है। छान्दोग्योपनिषद् मे राजा जानश्रुति पौत्रायण ने महावृष नामक देश मे ब्रह्मज्ञानी सयुग्वा रैक को रैकपर्ण नामक ग्राम को दिया, यह लिखा है। यह देश कहाँ था, इसका निश्चय नहीं। यह देश अथर्व० मे ज्वर का घर लिखा है। इससे यह ऐसे स्थान मे होना चाहिये कि जहाँ ज्वर अधिकता से होता हो। संभवतः कोई तराई का स्थान है। वे० इ० कार इसका देशअर्थ मानते हुए भी जाति का नाम कह रहे हैं। एक ही लेख मे दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

महावैल—ऋग्० १।१३३।१ मे यह शब्द श्मशानअर्थ में आया है।

मही—ऋग्० में एक नदी का नाम है, जो गुजरात में माही के नाम से प्रसिद्ध है।

राजपूताने का इतिहास पृ० ५—'मही' यह मध्यभारत से निकलकर राजपूताने मे डूँगरपुर और बाँसबाड़ा राज्यो की सीमा बनाती हुई गुजरात में प्रवेशकर खम्भात की खाड़ी

में गिरती है। इसकी पूरी लम्बाई ३०० से ३५० मील है। ऋग्वेद २।१५।५ यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:- इस इन्द्र ने इस महीनदी को ऋषियों के जाने के लिये थोड़े जलवाली कर दिया। इस इन्द्र ने उतरने में असमर्थ ऋषियों को क्षेम के साथ पार कर दिया। वे ऋषि लोग नदी को उतरकर जिस कार्य के लिये जा रहे थे, चले गये। सोम के पीने से प्रसन्न हो इन्द्र ने ये कार्य किये।" इसके अर्थ मे सायणाचार्य ने 'महीम् महतीम् धुनिम् धुनोति स्तोतृणामुपाधानीति धुनिः'= परुष्णीनदी यह अर्थ किया है। परंच 'परुष्णी' शब्द इस मंत्र के इधर-उधर दूर तक भी नहीं है और 'मही' शब्द इसमें उपस्थित है। इससे उसको संज्ञावाचक न मानकर और यौगिक बनाकर तथा एक शब्द को बाहर से लाना अनुचित है। पुराणों में इसका इस प्रकार वर्णन है:-वायु० पू० ४५।९ यह नदी भारत मे है और पारियात्रपर्वत से निकली है। 'महती' यह पाठान्तर भी है। वामन० १३।२४ यह नदी कुमारद्वीप (भारत) मे है और पारियात्रपर्वत से निकली है। ब्रह्म० २७।२८ यह नदी पारियात्र से निकलती है और भारत मे है। स्कन्द० माहे० कौ० ३।२३ यह महानदी समुद्र में गिरती है, सर्वतीर्थमयी है। १०३।४५ यह नदी मालवा नामक देश में पैदा होकर दक्षिण-समुद्र तक जाती है और पश्चिमवाहिनी है। इसके नाम इन्द्र-द्युम्नकन्या, क्षितिजन्मा, इरावती, महीवर्णा, महीश्रृङ्गा, पश्चिम-वाहिनी गंगा और राजनदी हैं।

माथव–यह देश[1] है और सरस्वती से लेकर सदानीरा

(१) शतपथ ब्रा० १।४।१।१७।

(गण्डकी) तक है ।

मुनिमरण—वे० इ० "मुनिमरण=मुनि की मौत, यह एक स्थान पंचविंश ब्रा० १४।४।७ के अनुसार है । जहाँ पर कि वैखानस मारे गये थे ।"

वस्तुतः पंचविंश ब्राह्मण १४।४।७ मे वैखानस साम के प्रादुर्भाव का वर्णन इस प्रकार है :—इन्द्र के प्रिय वैखानस मुनि थे । उनको वैखानस असुर ने मार डाला । ढूँढ़ते हुए इन्द्र ने उन्हें मुनिमरण नामक स्थान मे पाया और साम से जिला दिया, इससे उस साम का वैखानस साम नाम पड़ा । यह कहाँ पर है, इसका पता नहीं ।

मूजवन्त—वे० इ० मूजवन्त—यह एक मनुष्यजाति का नाम है, जो महावृषस्, गन्धारिस्, बह्लिकस् के साथ अथर्व०[1] में बहुत दूर रहते हुए उल्लिखित है, जिनके पास ज्वर भेजा जाता था । उसी भाँति यजुर्वेद[2] संहिताओं मे मूज-वन्तस् सुदूर जाति की शाखा निश्चित किये गये हैं, जिसके उस पार रुद्र से अपने धनुष के साथ बिदा लेने के लिये प्रार्थना किया गया है । ऋग्०[3] मे सोम को मौजवत (मूजवन्त से आया हुआ) बतलाया गया है, जैसा कि यास्क[4] इसे मूजवन्तपर्वत से

(१) ५।२२।५,७।८।१४, तुलना करो बौधायन श्रौतसूत्र २।५ ।

(२) तैत्तिरीय संहिता १।८।६।२, काठक सं० ६।७ तथा ३६।१४, मैत्रायणी सं० १।४।१०।२०, वाजसनेयी स० ३।६१, शतपथ ब्रा० २।६।२।१७ ।

(३) १०।३४।१ ।

(४) निरुक्त ६।८ ।

आया समझता है। भारतीय[1] भाष्यकार मूजवन्त को एक पर्वत समझने के लिये यास्क से सहमत हैं। यद्यपि हिल्लेब्रान्ट[2] जिमर[3] द्वारा मूजवन्त की कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम निचले पहाड़ से की गई समता को ठीक कहने मे उचितवक्ता है तथापि समता मे प्रमाण कम मिलते हैं। मूजवन्त एक पर्वत था, जहाँ से लोगों ने अपना नाम लिया, इससे इन्कार करना मतियुक्त नहीं है। यास्क[4] संकेत करता है कि मूजवन्त मुंजवन्त के बराबर है, जो कि वास्तव मे बाद मे एपिक[5] मे हिमालय के एक पर्वत का नाम मिलता है।"

२. जिमर और हिल्लेब्रान्ट कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम निचले पहाड़ से मूजवन्त की समता करते हैं और पर्वत मानते हैं।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १३२ मूजवन्त यह पर्वत कश्मीर के दक्षिण में है। सोमलता जो कि यज्ञो के लिये अत्यावश्यक है, इसी पर्वत मे उत्पन्न होती थी (डाक्टर मेकडानल और कीथ का वेदिक इन्डेक्स आफ नेमृस ऐन्ड सब्जेक्ट्स २।१६९)।

---

(१) महीधर वाजसनेयी सं० पर वही पुस्तक सायण ऋग्० १।१६१।८, बौधायन श्रौ० सू० और प्रयोग हिल्लेब्रान्ट द्वारा उद्धृत वेदिस्चे माइथालोजी १।६३।

(२) वही पुस्तक १।६५।

(३) अल्टेन डिस्चेजलेवेन २६।

(४) तुलना करो सिद्धान्तकौमुदी ४।४।११०, पाणिनि पर जहाँ पर ऋग्वेद १०।३४।१ में मौजवत् की बजाय मौञ्जवन्त पढ़ा गया है।

(५) महाभारत १०।७८५ तथा १४।१८०, तुलना करो लुडविक ट्रांसलेशन आफ ऋग्० ३।१६८।

वस्तुतः मूजवान् एक पर्वत का नाम है, उसके समीप का देश भी मूजवत् कहा जाता है। यहाँ पर सोम बहुत अच्छा उत्पन्न होता था। यह हिमालय का शिखरविशेष है और नेपाल[1] मे है। इसी से बागमतीनदी निकलती है। इस देश में ज्वर बहुत होता है। अथर्व० में इसको देश माना है। अथर्व० के मन्त्रों का अर्थ हम 'अंग' तथा 'मगध' में लिख चुके हैं। वहाँ उनका मनुष्यजाति अर्थ कहना संभव नहीं। ऋग्० आदि मे मूजवत्पर्वत का नाम है। अथर्व० ५।२२।५ मे तथा ७,८ तथा १४ मे 'मूजवन्तः' बहुवचन में दिया है, इससे यहाँ पर देशअर्थ ही स्फुट है, जाति का संभव नहीं। ऋग्० १०।३४।७ मे 'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः' ऐसा पाठ दिया है। मूजवत् में सोम उत्पन्न हुआ, इससे सोम का मौजवत नाम पड़ा—यह निरुक्त मे स्फुट है। मूजवत् और मुञ्जवत् दोनो पर्याय हैं और मुञ्जवान् पर्वत है। वाजसनेयी सं० और तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, मैत्रायणी सं० मे मूजवान्पर्वत के उस पार रुद्र का निवासस्थान है, यह लिखा है। बौधायन श्रौतसूत्र २।५।५ मे देशअर्थ मे मूजवत्शब्द का प्रयोग है। शतपथ ब्रा० २।६।२।१७ मे मूजवान्देश से परे रुद्र के घूमने का स्थान है। इससे मूजवान्पर्वत से परे जाने की रुद्र से प्रार्थना है। सिद्धान्तकौमुदी में मुञ्जवान् पर्वत माना है। कहीं भी मूजवत् मनुष्यजाति का नाम नहीं मिलता। स्कन्द० हिम० १४०।२ यह पर्वत नेपाल में है। इसके शिखर पर चन्द्रमा ने तप किया

---

(१) स्कन्द पु० हिमवत्० १७६।५२।

है। ७९।६ मुञ्जवान्पर्वत हिमालयके बर्फीले शिखर पर है। और इसके शिखर पर बागमती से चन्द्रभागा मिलती है। ७०।९ यह हिमालय का पुत्र है और नेपाल की सीमा पर है। महाभारत आश्व० अश्व० ८।१ यह पर्वत हिमालय के पृष्ठ पर है। यहाँ महादेव तपस्या करते है। इसका नाम मेरु भी है। महाभा० हरि० भवि० १२।५ यह पर्वत जम्बूद्वीप में है। मार्क० १२६।१२ यह पर्वत है। इन सब प्रमाणों से यह पर्वत नेपाल में है। इसको कश्मीर से दक्षिण कहना प्रमाणाभाव से माना नहीं जा सकता।

मेहत्नू—१. वे० इ० "मेहत्नू नदीस्तुति में ऋग्०[1] में एक धारा का नाम है। स्पष्टतः निश्चय ही यह सिंध की सहायक होगी, जो उस नदी में क्रुमु (कुरुम) और गोमती (गोमल) के पहले प्रवेश करती है। वह क्रुमु की सहायक हो सकती है।"

२. जिमर और मुइर इसको सिंधु की सहायकनदी मानते हैं और क्रुमु की सहायक होना स्वीकार करते हैं।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १३० "आधुनिक कुरुम; अर्थात् क्रुमु की सहायकनदी (मेकडानल कीथ का वेदिक इन्डेक्स २।१८०)। ऋ० १०।७५ यह महत्नू के समान है। पृ० ११९ में महत्नू भी लिखा है और उसको अरगेसननदी माना है, जो अफगानिस्तान की नदी है और गोमलनदी में

(१) १०।७५।६, तुलना करो जिमर अल्टेन डिस्वेजलेवेन १४ में और मुइर संस्कृत टैक्स ५।३४४।

गिरती है। ऋग्० १०।७५ में भी लिखा है और मेहत्नू से एक किया है।"

वस्तुतः यह एक सिंधु की सहायक नदी है तथा गोमल और क्रुमु से पहले सिंधु से मिलती है। आजकल सवान कही जाती है और पूर्व से जाकर मिली है। ऋग्० १०।७५।६ में इसका वर्णन है। मंत्रार्थ 'कुभा' मे है। इसमें क्रुमु और गोमती से पहले इसका नाम है, इससे उनसे पूर्व सवान का ही संभव है। ऋग्० में इसकी संख्या छठी है और नक्शे में भी इसकी संख्या छठी है। इसको क्रुमु की सहायक मानना वे० इ० कार और नन्दलाल का भ्रम है। क्योंकि ऋग्० मे सिंधु की सहायक नदियों मे इसका वर्णन है। इससे इसको क्रुमु की सहायक मानना अनुचित है। नन्दलाल डे ने महत्नू और मेहत्नू दोनों शब्द माने हैं और दोनों मे १०।७५ प्रमाण दिया है तथा मेहत्नू को क्रुमु का सहायक माना है। और महत्नू को अफगानिस्तान की नदी और गोमल की सहायक अरगेसननदी माना है। हमारी समझ मे यह नहीं आता कि महत्नू शब्द नन्दलाल ने कहाँ से पाया और उसे मेहत्नू से एक कर गोमल का सहायक माना। एक ही नदी गोमल और क्रुमु की सहायक कैसे हो सकती है?

मैनाक—१. वे० इ० "मैनाक मेनका से उद्धृत हिमालय में एक पर्वत का नाम है। तैत्तिरीयारण्यक[1] में इसका भिन्न पाठ मैनाग भी है।"

---

(१) १।३१।२, तुलना करो वेबर इंडिस्चेस्टडियन १।७४, इंडियन-लिट्रेचर ६३।

२. वेबर भी इसको पर्वत मानता है। मैनाग पाठ से भी सहमत है।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १२१ "मैनाकगिरि (नं० १) सिवालिक श्रेणी जो कि गंगानदी से व्यासनदी तक फैली है। (कूर्म० उपरि० अ० ३६, महाभा० वन० अ० १३५)। (नं० २) अल्मोड़ा जिले के उत्तर मे गंगा के उद्गम के समीप की पूर्वी पहाड़ियाँ (पार्जीटर का मार्क० अ० ५७ पृ० २८८)। (नं० ३) दन्तकथाओं का एक पर्वत जो लंका और भारत के समुद्र के मध्य मे है (रामायण सुन्दरकाण्ड अध्याय ७)। (नं० ४) पश्चिम भारत में गुजरात के समीप का एक पर्वत।"

वस्तुतः यह पर्वतो का नाम है। उनमे से एक हिमालय के पृष्ठ पर है। उसी पर वैश्रवण का नगर है। दूसरा दक्षिण-समुद्र मे लंका और भारत के मध्य मे है। तैत्तिरीयारण्यक १।३१।२ में 'सुदर्शने क्रौञ्चे मैनागे महागिरौ' ऐसा पाठ मूल में है। पुराणों मे भी इसका वर्णन है। नन्दलाल डे ने इसको पूरी शिवालिकश्रेणी का नाम माना है। महाभा० वन० (चि० सु०) १३५।५ में कनखलपर्वतो का गंगा के तट पर वर्णन है। उससे पश्चिम मैनाक की कुक्षि मे विनशन का वर्णन है, जहाँ पर अदिति ने पहले पुत्रार्थ अन्न को पकाया था। और उसके पहले श्लो० १ मे समङ्गा नामवाली मधुविलानदी का यमुना से पूर्व वर्णन है। सबसे पहले यमुना, उसके बाद समङ्गा और उसके बाद मैनाक, उसके बाद कनखलपर्वत मानने होगे। कनखलपर्वत के समीप होने के कारण नगर का भी कनखल नाम पड़ गया। इससे कनखल के सामने की पश्चिमी पहाड़ी कन-

खल माननी पड़ेगी। और उसके बाद मैनाकपर्वत मानना होगा। मैनाक और कनखल का बिभाग कहाँ से होता है, इसका निश्चय नहीं। संभवतः समङ्गानदी की धारा तक मैनाक-पर्वत मानना होगा। समंगा किसी छोटी-सी नदी का नाम हो सकता है। परंच मैनाकपर्वत व्यासनदी तक फैला हो, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। समुद्र में मैनाक को दन्तकथा कहना भी अनुचित है। क्या भारत से लंका तक जितने पर्वत समुद्र मे हैं, उनमे किस पर्वत का पुराना नाम क्या था—इस विषय मे आपके पास कोई प्रमाण है? यदि है तो क्या है? आपने कैसे जाना? यदि नहीं है, तो उनमें से कोई भी मैनाक हो सकता है। उस नाम का निश्चय से नहीं है, यह कैसे निश्चय हो गया? पहले तो सिहल ही लंका है, यह बात निश्चित नहीं। स्कन्दरिया से सिहल सात अक्षांश पर है और लंका अक्षांश से रहित है। इससे सिहल का लंका होना संदिग्ध है। गरुड़ पुराण के बाद सभी पुराण लंका को सिहल से भिन्न मानते हैं। वायु पुराण लंका को मलयद्वीप मे मानता है। मलयद्वीप मालद्वीप का नाम है। रामायण में भारत और लंका के बीच समुद्र में एक छाया ग्रहण करनेवाले व्यक्ति का वर्णन है। हमने जर्मन की लड़ाई के समय सुना है कि भारत से मालद्वीप जाने के मार्ग में समुद्र में एक दुर्गम स्थान है, जो अपनी ओर खींचता है। शक्तिशाली जलयान ही उसको पार करते हैं। साधारण जहाज उसको पार नहीं कर सकते। इन प्रमाणों से लंका माल-द्वीप में होनी चाहिये। भारत से लंका तक बहुत से पर्वत हैं। उनमे से कोई मैनाक हो सकता है। पुराणों में मैनाक का वर्णन

इस प्रकार है:—वायु० पू० ४५।९० यह पर्वत भारतवर्ष में है। मार्क० ५४।१३ यह पर्वत भारत मे है। पद्म० आ० ६।२ से ५९ तक यह पर्वत कैलाश से उत्तर है और विष्णुसर के सामने है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।४२ (नि०) ६।४३ यह पर्वत भारत में बिन्दुसर के पास है। (म०) ६।५८ यह पर्वत कैलाश से उत्तर है। इसके पास मे बिन्दुसर है, जहाँ से गगा निकलती हैं। गंगोत्री से ऊपर है। मद्रास मुद्रित में इसका 'मणिमय' विशेषण दिया है। चि० और नि० मे कैलाश से उत्तर मैनाक के सामने मणिमयगिरि है, उसके पास मे बिन्दुसर है—ऐसा पाठ है। बाल्मी० कि० (गु०) ४३।२० यह पर्वत क्रौञ्च से उत्तर में है। महाभा० सभा० (म०) ३।४॥ (नि०) ३।१० यह पर्वत कैलाश से उत्तर है। महाभा० सभा० (मु०) ३।२ से ८ तक, यह पर्वत कैलाश से उत्तर बिन्दुसर के समीप है। योग-वाशिष्ठ नि० पू० ८४।४१ यह पर्वत समुद्र मे है। हनुमन्नाटक ४।९ यह पर्वत समुद्र में है और हिमाद्रि का पुत्र है। नरसिंह० ५१।११ यह पर्वत लवणोदधि मे है और महेन्द्र और लंका के बीच मे है। वैजयन्ती० शै० ४ यह पर्वत है और हिरण्यनाभ का नाम है। त्रिकाण्ड० शै० २ यह पर्वत हिमाद्रि का पुत्र है।

यमुना—१. वे० इ० "यमुना = जुड़िया, एक नदी का नाम है। ऐसा कहा जाता है कि गंगा के समानान्तर बहती है। ऋग्०[1] में इसका तीन बार उल्लेख है। और बाद मे भी काफी उल्लेख है। ऋग्०[2] के अनुसार तृत्सुस् और सुदास् ने

(१) ५।५२।१७; ७।१८।१९; १०।७५।५।
(२) ७।१८।१९, देखो भरत और कुरु।

अपने शत्रुओं पर यमुना पर विजय प्राप्त की। हाप्किस[1] का मत है कि यमुना यहाँ पर परुष्णी (रावी) का दूसरा नाम था। ऐसा विचार करने का कोई कारण[2] नहीं। अथर्व[3] में यमुना के आंजन का उल्लेख त्रिककुद् (त्रैक्कुद) के साथ हुआ है। ऐतरेय[4] ब्रा० और शतपथ[5] से भरतस् को विजय की ख्याति यमुना पर मिली है। अन्य[6] ब्राह्मण भी इसका उल्लेख करते है। मंत्र[7] पाठ में शाल्वस् को इसके किनारे पर रहनेवाला कहा गया है।"

२. हाप्किस परुष्णी या उसकी सहायक नदी का दूसरा नाम मानता है। (वे० इ०)

३. जिमर और मैक्समूलर शाल्वस् को मन्त्रपाठ के आधार पर यमुना के तट का वासी मानते है। (वे० इ०)

---

(१) इंडिया ओल्ड ऐन्ड न्यू० ५२।

(२) तृत्सुओ का देश यमुना और सरस्वती के बीच में था। पूर्व और पश्चिम मे क्रमशः।

(३) ४।६।१०।

(४) ८।२३।

(५) १३।५।४।११।

(६) पंचविश ब्रा० ६।४।११ (तुलना करो पारावत से), २५।१०।२४, १३।४, शाखायन श्रौतसू० १३।२६।२५।३३। कात्यायन श्रौतसूत्र २४।६, १०।३६ लाट्यायन श्रौतसूत्र १०।१६, ६।१०, आश्वलायन श्रौ० सूत्र १२।६।२८ इत्यादि।

(७) २।११।१२, तुलना करो जिमर अल्टिनडिस्चेजलेवेन ५। मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३२३।

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० २१५ यमुना एक नदी का नाम है और वह ऋग्० और ऐतरेय० मे लिखी है (८।१४।४ ऋ० १०।७५)।

वस्तुतः यह यू० पी० की एक प्रसिद्ध नदी का नाम है, जो कलिन्दपर्वत से निकलकर प्रयाग मे गंगा से मिलती है। जो लोग परुष्णी या उसकी सहायक नदी का यमुना नाम बतलाते हैं, 'पंजाब के आगे का ज्ञान आर्यों को नहीं था' यह सिद्ध करने के चक्कर मे फँसकर इस प्रकार का असंम्बद्ध प्रलाप करते हैं। वे० इ० कार ने स्वयं इस बात का खण्डन किया है। ऋग्० ५।५२।१७। यह मत्र श्यावाश्व द्वारा मरुत् की प्रार्थना मे है। अर्थ यह है:—'४९ प्रकार के और सब कुछ करने में समर्थ वायु ने प्रत्येक ने मुझे सौ-सौ गायें और घोड़ों को दिया। उनसे दिये हुए प्रसिद्ध गोसमूह को यमुना मे उन्मार्जन करूँ। और उनसे दिये हुए अश्वसमूह का निमार्जन करूँ।' इसमें यमुना शब्द यमुनानदी के लिये आया है। ७।१८।१९ का अर्थ 'अज' में लिखा है। भेद नामक असुर को इन्द्र ने यमुना पर मारा। उसमें तृत्सु और यमुना ने इन्द्र की सहायता की। यह युद्ध इन्द्र ने सुदास् की सहायता मे किया था। इसमें सुदास् का नाम भी नहीं है। तृत्सु लोग इन्द्र के सहायक थे। परन्तु उन्होने अपने शत्रुओ पर विजय पाई, यह नहीं लिखा है। भेद तृत्सुओ का भी शत्रु था, इसमे कोई प्रमाण नहीं। इन्द्र की मदद और सुदास् की मदद मे बिना शत्रुता के भी जा सकते हैं। तृत्सुओं का राज्य यमुना और सरस्वती के बीच में था, इसमे प्रमाण का अंश भी नहीं है। अथर्व० ४।९।८,९,१० मे सुर्मा (आञ्जन)

का वर्णन है। इसमें यमुना और त्रिककुद्पर्वत पर सुर्मे का पैदा होना और इसमें कफ, ज्वर और सर्पविष नष्ट करने के सामर्थ्य का वर्णन है। ऐतरेय ब्रा० ३९।९ में तथा शतपथ १३।५।११ में दुःषन्तपुत्र भरत ने यमुना के तट पर ७८ अश्वमेधयज्ञ किये। वे० इ० कार भरतस् का विजय कह रहे हैं। वह भरतस् का भरत की संतान अर्थ होने से अनुचित है। क्योंकि भरत और भरत की संतान में अन्तर है। पंचविंश ब्रा० ९।४।१० में तौर-श्रवस साम की उत्पत्ति का वर्णन यमुना के तट पर है। 'पारा-वत' को देखिये। आश्वलायन श्रौ० सू० में यमुना के तट पर कारपचव में अवभृथ का वर्णन है।

यव्या—ऋग्० ८।९८।८ मे नदीमात्र का नाम है।

यव्यावती—१. वे० इ० "यव्यावती एक नदी का नाम है। ऋग्०[1] और पंच०[2] ब्रा० में इसका वर्णन है। हिल्लेब्रान्ट[3] विचार करता है कि यह नदी ईरान में है, जो दूजोब (झोब) इर्याब (हलियाब) के समीप है। किन्तु कोई कारण नहीं है कि हम इस पहचान को स्वीकार करें।"

२. हिल्लेब्रान्ट, केगि, जिमर, ओल्डनवर्ग और लुडविक इसको हलिआबनदी के समी र ईरान में मानते है। (वे० इ०)

३. लुडविक इसके तट पर हरियूपीयानगरी को मानते हैं। (वे० इ०)

(१) ६।२७।६। (२) २५।७।२।

(३) वेदिस्चेमाइथालोजी ३।२६८ एन्० १, तुलना करो जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन १८, १६, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२०४, ऋ० एन् ३३८, ओल्डनवर्ग ऋग्० नोटेन १।१६८ एन्० १।

वस्तुतः यह एक नदी का नाम है। इसका दूसरा नाम हरियूपीया है। सायण इसको नगरी या नदी मानने मे संदिग्ध हैं। यह नदी मध्यदेश से पूर्व में होनी चाहिये। ताण्ड्य० २५। ७।२ मे यव्यावती में गौरीविति ऋषि के यज्ञ का वर्णन है। ऋग्० ६।२७।४ में यह इन्द्रस्तुति है:—'हे इन्द्र ! जिस पराक्रम से आपने वरशिख के पुत्रों को मारा, वह हम से जाना गया है। हे इन्द्र ! जिस बल से प्रेरणा किये गये आपके वज्र से वरशिख का सर्वश्रेष्ठ पुत्र विदीर्ण हो गया'। ५६।२७।५ में—'इस इन्द्र ने चायमान अभ्यावर्ती राजा को ईप्सित देते हुए वरशिख के पुत्रों को कैसे मारा ? हरियूपीया के पूर्वार्ध में स्थित वृचीवान् के वंशोत्पन्न वरशिख के पुत्रों को इन्द्र ने जिस समय मारा, उस समय में दूसरे भाग में स्थित वरशिख का पुत्र भय से विदीर्ण हो गया'। चौथे मंत्र का इसमें विवरण है। ६ का मंत्रार्थ यह है:–'हे पुरुहूत ! युद्ध में आपको जीतकर अन्न या यश को प्राप्त हो, इस कामना से चारो ओर से यज्ञपात्रों को तोड़ते हुए कवचधारी वृचीवान् के वंशज वरशिख के १३० पुत्र एक ही साथ हिंसा करने के लिये आप पर आक्रमण करते हुए यव्यावती में अर्थशून्य हुए; अर्थात् मारे गये'। ७ का अर्थ यह है:—'शोभित होते हुए और सुन्दर तृणों की इच्छा करते हुए, पुनः पुनः घास को खाते हुए या गतिविशेष से चलते हुए इन्द्र के घोड़े अन्तरिक्ष में जाते हैं। इस इन्द्र ने वृचीवन्तों के धन को दैववात अभ्यावर्ती को देते हुए सृञ्जय राजा के लिये तुर्वश को दे दिया'। ८ वें में चायमान् अभ्यावर्ती का 'सम्राट्' विशेषण है। ऐतरेय० ३८।३ में 'सम्राट्' मध्यदेश से पूर्व

के अभिषिक्त राजाओं की पदवी है। यह स्पष्ट है कि इससे चायमान पूर्वदेश का राजा था। इसमें हरियूपीया और यव्यावती एक हैं। यव्यावती में यज्ञ का वर्णन है जो ६ ठे मंत्र में है, वह अभ्यावर्ती का प्रतीत होता है। मध्यदेश से पूर्व का राजा ईरान मे यज्ञ करने जाय, यह असंभव है। इससे यह नदी मध्यदेश से पूर्व में है, यह निश्चित है। बृहद्देवता में हरियूपीया के स्थान में हर्युपीया पाठ है और उसको नदी माना है। सायण ने यव्यावती और हरियूपीया को अभिन्न माना है। विशेष 'हरियूपीया' मे देखिये।

रसा—१. वे० इ० "ऋग्०"[1] के तीन पदों में इसका संकेत मिलता है और साफ-साफ वास्तविक एक धारा का पता चलता है, जो वैदिक सम्राज्य के सुदूर उत्तर-पश्चिम में थी। अन्य स्थानों पर यह कल्पित[2] धारा का नाम है, जो कि पृथ्वी के दोनों कोनों पर है एवं जिसको तथा जिसके वायुमंडल को भी यह घेरे रहती है। जैसा कि अनुमान सरस्वती के विषय में

---

(१) १।११२।१२, ५।५३।६ तथा १०।७५।६ ५।५३।६ में 'रसा नितभा' यह पाया जाता है। लुडविक ट्रान्सलेशन आफ ऋग्वेद ३। २०२ यह अनितभा रसा का एक विशेषण मानता है। सभवतः अनितभा (असीमित प्रभा) का, परन्तु यह विश्वास योग्य नहीं है। अनितभा को किसी अज्ञात नदी की ही संज्ञा देना उचित प्रतीत होता है। तुलना करो मैक्समूलर इण्डिया ११६।१७३ ए० एन।

(२) ऋग्० ५।४१।१५, ६।४१।६ तथा १०।१०८।१-२ (तुलना करो जैमिनीय ब्राह्मण २।३४८, जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १६०० इत्यादि) १२१।४।

किया जाता है, उसी प्रकार का अनुमान करना बुद्धिमानी है। इसका शब्दार्थ इसका प्राचीन आशय है। और इस नदी में वास्तविक धारा सम्भवतः पहले की अरद्दस् या जेक्सर्टेस् का देखना ठीक है। क्योकि बेदिन्दद् यहाँ रन्हा का उल्लेख करता है, जो कि रसा का अवेस्तन रूप है। लेकिन सचमुच इस शब्द से पानी[3] की लहरों का संकेत होता है। इसलिये यह हरएक नदी के लिये लाई जा सकती है।"

२. बेदिन्द इसको आविस्ता की रन्हा से एक करता है। (वे० इ०)

३. लुडविक ऋग्० ५।५३।९ मे इसका अनितभा विशेषण मानता है। (वे० इ०)

४. मैक्समूलर इसको तथा अनितभा को भिन्न-भिन्न नदी मानते हैं। (वे० इ०)

५. जिमर, मैक्समूलर, ब्रन्होफर तथा वेबर इस रसा शब्द को पानी की लहरो का सकेत मानते हैं। इसलिये इस शब्द से नदीमात्र को लेते हैं। (वे० इ०)

६. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १६७ रसा जेक्सर्टेसनदी का नाम है। यह आविस्ता की रन्हानदी है। (वे० इ० २।२०९, ऋ० १०।७५)

वस्तुतः यह एक सिधु की सहायक नदी है और सुसर्तु के

---

(३) ऋग्० ४।४३।६ तथा ८।७२।१३, तुलना करो जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन १५।१६, मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३२३, ब्रन्होफर ईरान ऐण्ड तूरान ८६, वेबर प्रोसीडिंग्स आफ दि बर्लिन एकेडमी १८६८, ५६७ से ५६६ तक।

बाद और श्वेत्या से पहले सिंधु मे मिलती है। आजकल इसका नाम शेवक है और कश्मीरप्रान्त की नदी है। ऋग्० में इसका वर्णन तीन बार आया है। पहला १।११२।१२ मे यह मंत्र अश्विनीकुमारों की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:-'हे अश्विनीकुमारो! जिन रक्षणों से आपने जलरहित रसानदी को कूलों को गिरानेवाले जल से युक्त बनाया तथा जिन रक्षणों से जीतने की इच्छा से घोड़ो से रहित अपने रथ को आप प्राप्त हुए और जिन रक्षणो से आपने त्रिशोक ऋषि की अपहरण की गई गायों को पाया, उन सब रक्षणों से हमारे पास भी आइये'। ५।५३।९ का अर्थ यह है:-'हे मरुतो! आपको रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु तथा सिंधु निकृष्ट रमण न करायें। तथा पुरीषिणी और सरयु भी न रोकें। आपके आगमन से पैदा सुख हमको ही हो।' १०।७५।६ का अर्थ यह है:—'हे सिन्धो! आप गोमती और क्रुमु से मिलने के लिये उतरीं। पहले तृष्टामानदी से मिलीं, बाद मे सुसर्तु, रसा, श्वेती और प्रसिद्ध कुभा और मेहत्नू से मिलीं, जिनके साथ समान रथ पर चढ़कर आप जाती हैं'। इस मंत्र मे रसा का नाम तीसरा है और कश्मीर के नक्शे में भी सिंधु की तीसरी सहायक का नाम शेवक लिखा हुआ है, इससे हम इसको शेवक से एक करते हैं। वे० इ० कार इसको वैदिक साम्राज्य के सुदूर पूर्व उत्तर पश्चिम मे रखते हैं, यह बात इन मंत्रो से प्रतीत नहीं होती। ऋग्० ५।४१।१५ का मंत्रार्थ यह है:—'हमारी स्तुति जिस समय पद पद पर भूमि पर की जाती है, उस समय वह शक्त होकर रक्षणों से हमारे उपद्रवों को दूर करनेवाली होती है। सबकी निर्माण करनेवाली पूज्या रसा =

सारभूता भूमि स्तुत होकर हमारा सेवन करे। प्रशस्त विद्वानों द्वारा स्तुति की गई है और उनकी परिचर्याओं से प्रसन्न हुई हमारे अनुकूल हाँथवाली होकर कल्याण देनेवाली हो'। इसमें 'रसा' पृथ्वी का विशेषण है। ऋग्० ९।४१।६ यह मंत्र सोम-स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे सोम! आप हमारे लिये सुख करनेवाली धाराओं से चारों ओर घूमें, जिस प्रकार रसा-नदी नीची भूमि मे घूमती है'। इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति की गायें बल नामक असुर के भटोंपणि नामक असुरों से अपहरण कर गुफा मे छिपाकर रखने पर इन्द्र से गायो को ढूँढ़ती हुई सरमा नाम की देवशुनी भेजी गई और वह बहुत बड़ी नदी को उतरकर बलपुर मे पहुँची और गुप्तस्थान मे रखी हुई गायों को उसने देखा। पणि लोग उसे देखकर सब बातें समझ गये और उसको मित्र बनाने की चेष्टा से बातचीत करने लगे। ऋ० १०। १०८ सूक्त में पणि और देवशुनी की बातचीत है। सूक्त में पहले, तीसरे इत्यादि जोड़े से रहित अन्तिम को छोड़कर मन्त्र पणि लोगों के वचन हैं। दूसरी, चौथी इत्यादि जोड़ेवाली और ११ वीं ऋचाएँ सरमा के वचन हैं। पहली ऋचा का अर्थ यह है:—"सरमा (सरणशीला) इस नामवाली क्या चाहती हुई हमारे स्थान को प्राप्त हुईं? रास्ते की रात्रि क्या सुख से बीती? क्योंकि यह मार्ग बड़े प्रयत्न से आने पर भी आने योग्य नहीं है और दूर है। इससे हम पूछते हैं कि आप किस प्रयोजन से रसानदी को पारकर यहाँ आईं।" जहाँ पर गायें रखी गई थीं, वह स्थान ७ वीं ऋचा मे अद्रिबुध्न; अर्थात् पहाड़ों से घिरा हुआ कहा गया है। इससे रसानदी के पार यह स्थान कहीं

हिमालय पर होगा। इन ऋचाओं में कोई भी ऐसा वर्णन नहीं है कि जो इसको पृथ्वी के दोनों कोनो पर कह सके और कल्पित बना सके। वे० इ० कार का कथन प्रमाणाभाव से साररहित है। निरुक्त ११।२५ मे इस ऋचा का व्याख्यान करते हुए यास्क ने रसा को नदी माना है और रसाशब्द का अर्थ पानीवाली या शब्द करनेवाली माना है। इसमें यदि रसानदी सिधु की सहायक ले ली जाय तो कोई हानि नहीं है। सामवेद उत्तरार्चिक पंचमाध्याय प्रथम खण्ड ६ में रसा नदी है, यह वर्णन है। बृहद्देवता ८।२२, २४ में पणि नामक असुरों का निवास रसा के पार माना है। पणियों द्वारा गायों को चुराना बृहस्पति ने योग द्वारा जानकर इन्द्र से कहा। इन्द्र ने सरमा को भेजा। उसका रसानदी का उतरना वर्णित है। बृहद्देवता में रसा शतयोजन विस्तीर्ण लिखी है यह विस्तार आलंकारिक है। इसका तात्पर्य बड़े पाटवाली से है। सायण ने पृथ्वी पर ऐसी नदी का होना असंभव समझकर इसको अन्तरिक्षचारिणी नदी लिखा है। दुर्गाचार्य ने इसको डेढ़ योजन विस्तारवाली नदी माना है। शायद वेदिक इन्डेक्सकार ने इन्हीं व्याख्याओं को देखकर इसको कल्पित धारा कहा हो।

बदिन्दद् इसको आविस्ता की रन्हा से एक करता है। परन्तु विचारें करने से पता चलता है कि आविस्ता के किस प्रकरण में रन्हा का वर्णन है, यह जब तक न समझा जाय तब तक आविस्ता पर बिचार नहीं हो सकता। परंच इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रसा ऋग्० मे सिंधु की सहायक लिखी है और रन्हा का सिधु का सहायक होना त्रिकाल में असंभव

है। इससे रसा रन्हा नहीं हो सकती, यह निश्चित है। सिंधु की सहायक न होने से जेक्सर्टेस् भी नहीं हो सकती।

रुम—वे० इ० "यह शब्द ऋग्० की ८।४।५ ऋचा में रुशम श्यावक और नृप के साथ इन्द्र से रक्षित के रूप में आया है।"

वस्तुतः यह एक राजा का नाम है, जिसकी रक्षा इन्द्र ने की थी। ऋग्० ८।४।२ में रुशम के साथ उसकी रक्षा का वर्णन है। आनुपूर्वी से ऐसा प्रतीत होता है कि इसी रुम का देश रूम नाम से प्रसिद्ध हुआ और रोम इसकी राजधानी थी। पहले रूम और इटली का प्रदेश एक ही था। बाद मे इटली का राज्य अलग बन जाने से अवशिष्ट का नाम रूम रह गया।

रुशम—वे० इ० "रुशम—यह ऋग्वेद[1] में तीन बार मिलता है। एक बार इन्द्र से रक्षित मिलता है। और दूसरे[2] स्थान पर रुशमाज् ऋणञ्चय राजा के साथ सम्बद्ध मिलते हैं। और अथर्ववेद[3] में इनके राजा कौरम के साथ इनका वर्णन मिलता है।"

वस्तुतः ऋग्० ८।३।१२ में इसका नाम राजा के रूप में एकवचन मे आया है और उसकी सन्तान और उसके निवास-स्थान देश का नाम बहुवचन में आया है। यह क्षत्रियसमान-जनपदवाची है। सायण ने इसे देश माना है। इसके वंश में उत्पन्न ऋणञ्चय के दानों का भी वर्णन है। ऋग्० ८।३।१२ में यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे इन्द्र !

(१) ८।३।१२, ८।४।२, ५।१।६।

(२) ५।३०।१२–१५। (३) २०।१२७।१।

स्तुति करनेवाले हमारे सम्बन्धी इस यजमान को आप धन दें। जिस धन से आपने पौर और रुशम, श्यावक और कृप की रक्षा की थी और सबको हर्ष देनेवाले इस यजमान को शक्त करें। ८।४।२ मे भी मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:— हे इन्द्र यद्यपि आप रुम, रुशम, श्यावक और कृप राजाओं में आनन्दित होते हैं, तब भी सामवेद से स्तुति करनेवाले कण्व-गोत्रोत्पन्न ऋषि लोग मंत्रों या हवियों से आपको बुला रहे हैं। इससे शीघ्र आइये। ८।५१।९ में भी रुशमशब्द एकवचन राजा के लिये आया है। अथर्ववेद २०।१२७।१ में रुशमदेश के रुशमवंश के कौरम राजा के ६० सहस्र ९० दान का वर्णन है और वाजसनेयी संहिता ३३।८२ में भी इन्द्र द्वारा रुशम की रक्षा का वर्णन है। ऋग्० ५।३०।१२–१५ में 'रुशमा.' बहु-वचन आया है और रुशम की सन्तान अर्थ है। सायण ने रुशम जनपद माना है और रुशम वहाँ के निवासी माने हैं। रुशम नामक क्षत्रियजाति जहाँ पर रहती थी। वह देश रुशम था। ऋणञ्चय इनका राजा था। यह दान ऋणञ्चय ने बभ्रु ऋषि को दिया था। आनुपूर्वी से यह नाम रूसदेश का प्रतीत होता है। पुराणों में रूस का रुषाणा नाम मिलता है। एक ही मंत्र में रुम् और रुशम राजाओं का नाम मिलने से दोनों के देश समीप प्रतीत होते है। रुम का देश रूम और रुशम का रूस।

रैक्वपर्ण—१. वे० इ० "रैक्वपर्ण पुल्लिग बहुवचन, यह महावृषदेश में एक परिया का नाम है। यह छान्दोग्योपनि

षद्[1] द्वारा बतलाया गया है।"

२. जिमर इसको महावृषदेश में एक एरिया का नाम मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह महावृषदेश में एक गाँव का नाम है। इसको महावृषदेश के राजा जानश्रुति पौत्रायण ने रैक ऋषि को दिया था। इसका वर्णन छान्दोग्योपनिषद् ४।२।५ मे है।

रोधचक्रा—यह शब्द ऋग्० १।१९।५ मे सामान्य नदी के अर्थ मे आया है।

रोधना—यह शब्द ऋग्० २।१३।१० में नदीमात्र के अर्थ में आया है।

रोहितकूल—वे० इ० "रोहितककूल पंचविश[2] ब्राह्मण में किसी क्षेत्र के नाम के रूप में उल्लिखित है, जिसके लिये सामन् अथवा गीत कहा गया था।"

वस्तुतः 'रोहित' नाम का नद भरतदेश में है। उसका तट 'रोहितकूल' कहा जाता है। विश्वामित्र ने वहाँ लाल वर्ण के दो घोड़ों से एक दौड़ जीती थी। यह ब्रह्मपुत्र का नाम प्रतीत होता है। यहीं पर विश्वामित्र ने रोहितकूल नामक साम का पाठकर घोड़ों को जीता। इसी से रोहिततट पर इसके ज्ञान होने के कारण इस सामवेद का रोहितकूल नाम पड़ा। वे० इ० मे 'रोहितककूल' पाठ अशुद्ध है।

---

(१) ४।२।५। तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १३०।

(२) १४।३।१२, तुलना करो १५।११।६, लाट्यायन श्रौ० सू० ६।११।४।

वक्षणा—१. वे० इ० "स्त्री वक्षणा स्त्रीलिंग [बहुवचन, इसका उल्लेख ऋग्वेद[1] में है, जिसका अर्थ नदी की तह होता है।"

२. पिशल भी इसका अर्थ नदी की तह मानता है। (वे० इ०)

वस्तुतः ऋग्वेद ३।३३।१२ मे यह शब्द कृत्रिम नदी; अर्थात् नहर के अर्थ मे आया है। ऋग्० ३।३०।१४ तथा १०।२८।८ मे यह शब्द नदीमात्र के अर्थ में आया है। 'नदी की तह' अर्थ करना युक्त नहीं।

वक्षणी—यह शब्द ऋग्० १०।६४।९ में नदीमात्र के अर्थ में आया है।

वंग—१. वे० इ० "यह बंगाल का दूसरा नाम है। यह शब्द पूर्व वैदिक साहित्य मे तब तक नहीं पाया जाता जब तक कि इसका अजीब रूप वगा बगधाः शब्द में पहचाना न जाय। यह शब्द ऐतरेयारण्यक[2] मे आता है, जो वंग मगधाः का बिगड़ा हुआ रूप है। बंगाज् और मगधाज् दो पड़ोसी लोग थे, यह बौधायन[3] त्र में मिलता है।"

---

(१) ३।३३।१२, तुलना करो पिशल वेदिस्चेस्टडियन १७५ से १८१ तक।

(२) ऐतरेयारण्यक २।१।१, तुलना करो कीथ ऐतरेयारण्यक २०० 'मगध वग मात्स्याः' इसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्टाज (१।७।७) में आता है, लेकिन यह बहुत बाद का है।

(३) १।१।१४, तुलना करो ओल्डनवर्ग 'बुद्ध' ३६४ नं०, कलन्द बेस्ट चेरिफ्ट डेर ड्युस्चेन मार्गेन लाण्डिस्चेन गे स लेस चेफ्ट ५६।५५३।

२. ओल्डनबर्ग और कलन्द इसको बंगाल मानते है और इन दोनों को पड़ोसी मानते हैं।

वस्तुतः इसका ऐतरेयारण्यक में 'पक्षीया पावनै ते वृक्ष' अर्थ है। वहाँ बंगाल का नाम नहीं है। अन्यत्र पुराण आदि में इसका बंगालअर्थ में प्रयोग मिलता है। ऐतरेयारण्यक का भाव वे० इ० कार बिल्कुल नहीं समझे और सस्कृतानभिज्ञ जनता के सामने कुछ-न-कुछ पाण्डित्य दिखलाने के लिये लिख बैठे।

ऐतरेय ब्राह्मण के द्वितीयारण्यक में अध्याय १ खण्ड १ मे पुरुषार्थ दिखलाते हुए पुरुषार्थ के साधन के दो मार्ग दिखलाये हैं—(१) यज्ञादि कर्म और (२) ब्रह्मज्ञान। इसलिये इनमे प्रमाद नहीं करना चाहिये। जिन्होने प्रमाद किया वे पुरुषार्थ से भ्रष्ट हुए। इसमें ऋग्वेद ८।१०१।१४ को प्रमाण में दिया है। पुरुषार्थ से भ्रष्ट लोगो के शरीर दोषफलों को भोगते हुए दिखलाई पड़ते है। जो प्रजाएँ ब्रह्मज्ञान और कर्मकाण्ड से बिल्कुल रहित हैं, वे जन्मान्तर में पक्षीरूप से जन्म लेती हैं या वंग= वन के वृक्ष होती हैं, अथवा अवगध=व्रीहि यव इत्यादि औषधिरूप से जन्म लेती है, या इरपाद=सर्पादि बिलवासी होकर जन्म लेती हैं—यह लिखा है। यहाँ 'वंग' शब्द का अर्थ 'वनैले वृक्ष' है और 'अवगध' शब्द का अर्थ 'व्रीहि-यव' इत्यादि औषधि है। इसपर भी वे० इ० कार इसको अजीब रूप कहकर पहचानते है और 'वगाज् और मगधाज् दो पड़ोसी थे' इस नवीन थ्योरी को तैयार कर देते हैं। पुराणों में वंगशब्द देशअर्थ मे आता है और श्रीमद्भागवत ९।२३।५ में यह देश पूर्व में है। राजतरंगिणी ३।४८० में इसके लिये

'बंकाला:' पाठ मिलता है। वाल्मी० अयो० (नि०) १०।३७ (गु०) १०।३८ (ला०) १३।१५ यह देश है, (इ०) में पाठ नहीं है। वाल्मी० कि० (नि०) ४०।२१ (इ०) ३९।१५ यह देश पूर्व में है। (गु०) ४।२३ 'अंग' यह पाठ है। अत्रि· स्मृति ७।२ वंगदेश बग कहे जाते है। ब्रह्म० वै० श्रीकृ० १०५।५६ यह देश है। पद्म० सृ० ४२।१६४ यह देश है। पद्म० आदि० ६।४१, ब्रह्म० २७।५२ यह देश पूर्व मे है। ब्रह्मा० पू० १६।५१, वायु० पू० ४७।४९ तथा ३७ यह देश भारत मे है तथा यहाँ गंगा है। यह बलि के पुत्र बंग के नाम से प्रसिद्ध है। मत्स्य० १२१।५० यह देश है और यहाँ गंगा है। व्याक० महा० ४।१।१७० यह शब्द देश और क्षत्रिय का भी कहनेवाला है। इसका राजा और बंगक्षत्रिय का पुत्र 'बांग' कहा जाता है। यह जनपदअर्थ मे बहुबचन होता है और वंगक्षत्रियों का निवासस्थान अर्थ होता है। महाभा० सभा० (म०) २६।४१ (चि०) ३०।२३ (नि०) ३१।२३ यह देश पूर्व मे है।

वरणावती—१. वे० इ० "यह अथर्ववेद[1] मे पाई जाती है, जैसा कि राथ[2] सोचते हैं कि यह एक नदी का नाम प्रतीत होता है। लुडविक[3] इसको गगा मानते हैं। ब्लूमफील्ड[4] इसको

(१) ४।७।१। (२) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी।

(३) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२०१, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन २०।

(४) हिम्स आफ दि अथर्ववेद ३७६, तुलना करो वेबर इंडिस्चे-स्टडियन १८, २६, २७, विटने ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्व० १५४।

सायण की तरह एक पौधा मानने की संभावना करते हैं। परंतु इसको एक नदी ही निश्चित करते हैं। तुलना करो 'काशी' से।'

२. राथ के मन में यह एक नदी का नाम प्रतीत होता है। (वे० इ०)

३. लुडविक और जिमर इसको गंगा मानते हैं। (वे० इ०)

४. ब्लूमफील्ड, वेबर और विटने इसको वृक्ष मानते हैं; परंच यहाँ पर नदी मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक नदी का नाम है और इसका जल विष-हरण करनेवाला है। अथर्व० ४।७।१ में इसका वर्णन है। कन्द से पैदा हुए विष को दूर करने के लिये इस मंत्र को पढ़कर जल को अभिमंत्रितकर विषावृत पुरुष को पिलाये और उसके ऊपर जल छिड़के। मंत्रार्थ यह है:—"वरणावती मे स्थित यह विष-हरण करनेवाला जल हमारे विष को दूर करे। इस वरणावती में अमृत का विषहर स्वरूप डाला गया है। इससे हम अमृत-मय जल से तुम्हारे कन्द मूलादि से उत्पन्न विष का निवारण करते हैं।" इसको काशी के समीप की नदी वरुणा मानने में प्रमाण नहीं है। राथ इसको नदी मानने मे ठीक हैं। लुडविक और जिमर गंगाअर्थ करने में बिल्कुल निस्सार हैं। ब्लूमफील्ड, वेबर और विटने इसको नदी मानने में ठीक हैं। परंच इसको पौधा मानने मे प्रमादी हैं। यदि 'वरण' को वृक्ष मानकर उसके सम्बन्ध से नदी को 'वरणावती' कहते हों तो ठीक है। सायण ने 'वरणा नाम वृक्षविशेषाः ते अस्यां सन्तीति वरणावती तस्या-मधि तस्यां स्थितम्' इत्यादि व्याख्या करते हुए स्पष्ट नदीअर्थ माना है। वरण नाम के वृक्षविशेष (वरुण की छाल का काथ

पीने से पथरी टूटकर निकल जाती है) जिसके तट पर हैं, वह बरणावतीनदी है। फिर भी वेदिक इन्डेक्सकार तथा ब्लूमफील्ड सायण की भाँति पौधा होने की संभावना कर रहे हैं। सिकन्दर के साथियों ने ओर्नोस नामक स्थान गंधार में माना है—यह कनिगहम ने अपनी पुस्तक के ६७ पृ० में लिखा है। ओर्नोस वरण-नगर का अपभ्रंश है, यह निश्चित होता है। विचार करने पर नगर का वरण नाम बरणवृक्षों के समीप होने के कारण बनता है। इसके लिए 'गंधार का ओर्नोस' देखिये। यह नगर महा-वन के समीप होने से महावन में वरण के वृक्ष अधिक प्रतीत होते है। जिस प्रकार बरणवृक्ष अधिकवाले महावन के समीप होने से नगर का नाम 'वरण' पड़ा, उसी प्रकार महावन के समीप या उसके मध्य मे होने के कारण नदी का नाम भी 'वर-णावती' हो सकता है। इसका नाम आजकल स्वाति या उस प्रान्त की और कोई नदी प्रतीत होती है।

वरूथ—यह घर का नाम है। ऋ० ८।४७।१० में 'वरूथ्य' शब्द आया, उसका अर्थ 'गृह के योग्य' होता है।

वश—१. वे० इ० "वश बहुवचन एक जाति है। ऐतरेय[1] ब्रा० मे इसका उल्लेख है। यह कुरुपंचालाज् और उशीनराज् के साथ मध्यदेश मे रहते थे। इनका सम्बन्ध कौषीतकी[2] उपनिषद् के

---

(१) ८।४।३।

(२) ४।१ (सवसन्मत्स्येषु) सवश मत्स्येषु के लिए पढ़ा जाता है, जिसका कि सुधरा रूप सत्वन् मत्स्येषु है। कीथ साखायनारण्यक ३६ एन्० २, जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०८, ३६७।

अनुसार मत्स्याज् से भी है। गोपथ ब्रा०[1] मे वशाज् तथा उशीनराज् के मिलने का उल्लेख आता है। इनके नाम[2] बतलाते हैं कि वशाज् और उशीनराज् मे सम्बन्ध था।"

२. कीथ कौषीतकी उपनिषद् के 'सवसन्मत्येपु' के स्थान मे सुधरा रूप 'सत्वन्मत्स्येषु' मानते हैं।

३. ओल्डनवर्ग वश शब्द इच्छार्थक वश् धातु से बनाते हैं।

वस्तुत: यह 'वश' शब्द है और इसका प्रयोग 'देश' अर्थ में है, जातिअर्थ में नहीं। ऐतरेय ब्रा० ३८।३ में ऐन्द्राभिषेक की प्रशंसा मे मध्यम दिशा; अर्थात् मध्यदेश में कुरुपंचाल और वशो के सहित उशीनर के राजे हैं। वे सब के सब राज्य के लिये ही अभिषिक्त होते हैं। इससे अभिषिक्त उनको राजा कहना चाहिये (मूल 'उशीनर' मे है)। इसमें स्पष्ट 'वश' एक देश है और मध्यदेश में है। इनका परस्पर कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार गोपथ ब्रा० का पाठ और अर्थ 'मत्स्य' में है। उसमें कुरु, पंचाल, अंग, मगध, काशी, कौशल, साल्व, मत्स्य, वश और उशीनर के लोग भर-पेट अन्न खाते हैं। इसमें कहीं वशाज् और उशीनराज् के मिलने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। दो दो देश समीप होने से एक साथ पढ़े गये हैं। कौषीतकी उपनिषद् मे गार्ग्य बालाकि उशीनरदेश में बसा। बाद में मत्स्य

---

(१) १।२।९, जिसमें सवसो उशीनरेषु आया है, जो कि व्यर्थ है। तुलना करो सवशोशीनराणां ऐतरेय ब्राह्मण ८।१४, ३ और एन्० २ में।

(२) दोनों वश जिसके माने इच्छा होते है, उससे ही प्राप्त किये गये है। तुलना करो ओल्डनवर्ग 'बुद्ध' ३९३ न० ४०७।

में बसा, बाद में कुरु-पंचालों मे बसा। उसके बाद काशी के राजा के पास गया। (मूल और अर्थ 'मत्स्य' में देखो)। यहाँ पर 'संवसन्मात्स्येषु' पाठ है, 'वश' का नाम भी नहीं है। योरोपियन विद्वानों ने उसको 'सवशमत्स्येषु' गढ़ा और 'सत्वन्मत्स्येषु' शुद्ध रूप बना डाला तथा देश को बलात्कार जाति बना डाला। धातु भी ढूँढ़ डाली। इच्छाअर्थ भी कर डाला। साथ ही; पंडिताई यहाँ तक दिखलाई कि गोपथ के पाठ को व्यर्थ कह दिया। इससे इनके व्याकरण के अपूर्व ज्ञान का परिचय संसार को हो गया। परंच विचार करने पर सब आडम्बर झूठा निकला। गोपथ, ऐतरेय और कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् के पाठों के भिन्न भिन्न प्रकरणों मे भिन्न-भिन्न प्रयोजनो के आने से परस्पर कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कौषीतकी उपनिषद् में 'संवसन्' के स्थान मे शुद्ध रूप 'सत्वन्' करना जिससे कि आर्थिक कोई भी सम्बन्ध नहीं है, बिल्कुल व्यर्थ ही है। यहाँ पर 'संवसन्' पाठ ही शुद्ध है और उसके स्थान पर कल्पित पाठ निस्सार हैं। महाभा० भी० (चि०) ९।६१ मे 'वश' शब्द 'देश' अर्थ में है।

वशिष्ठशिला[1]—यह व्यासनदी के मध्य में है। इसमे वशिष्ठ ने तपस्या की थी। यह वशिष्ठ का पहला आश्रम है।

वहन्ती—ऋ० ३।७।२ मे यह शब्द नदीमात्र के लिये आया है।

वाराणसी[2]—यह काशी का नाम है।

---

(१) गोपथ ब्रा० २।८।

(२) बृहज्जाबालोपनिषद् ७।७।

वितस्ता—१. वे० इ० "वितस्ता यह पंजाब की सबसे पश्चिमी नदी है। यह ऋग्०[१] की एक नदीस्तुति[२] में आई है। यह अलेक्जेन्डर के इतिहासकारो की हाईडस्पेस है और टालमी की बिडस्पेस है। मुसलमान-इतिहासकारों से यह बिगड़ा हुआ नाम विहत अथवा विहत है, जिसका वर्तमान कश्मीरी रूप 'वेथ' है।"

२. अलेक्जेन्डर के साथी इसको हाईडस्पेस कहते हैं।

३. टालमी इसको विडस्पेस कहते हैं।

४. मुसलमान-इतिहासकार इसको विहत या विहथ कहते हैं।

५. जिमर इसको जेहलम का नाम मानते हैं।

वस्तुतः यह जेहलम का नाम है। इसका पुराणों[३] मे भी वर्णन मिलता है।

---

(१) १०।७५।५, निरुक्त ६।२६, तुलना करो काशिकावृत्ति पाणिनि १।४।३१, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्वेजलेवेन १२, इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया।

(२) ऋग्० में बहुत कम नामो का उल्लेख होना पंजाब का वैदिक भारतीयो के कार्यक्षेत्र के न होने को सिद्ध करता है।

(३) वायु० पू० २६।१३ तथा ४५।६५ यह नदी भारत में है और हिमालय के पाद से निकली है। पद्म० आदि० ६।१३, ब्र० २७।२६, ब्रह्मा० पू० १२।१५ तथा ब्रह्मा० प्र० १६।२५, मत्स्य० १२।३६ तथा ५१।१५ तथा ११४।२०१ यह नदी भारत में है। स्कन्द० माहे० अरु० उ० २।१४, बाराह० ८५।०० यह नदी भारत में है। वामन० १३।२१ इसके तट पर कुमारिलशंकर है और शंकर के समीप में देवह्रद नाम का तीर्थ इसी में है। महाभा० भीष्म० ६।१६ यह नदी भारत में है। काव्यमीमांसा १७।१० यह नदी उत्तरापथ में है। महाभा० आर० १३०।२० यह नदी शीत और निर्मल जलवाली है। महाभा० कर्ण० (चि०)

वितस्था—यह एक नदी का नाम है। ऋग्० ४।३०।१२ मे इसका वर्णन है। यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे इन्द्र! सम्पूर्ण जलवाली वितस्थानदी को आपने अपनी माया से पृथ्वी के ऊपर स्थापित किया"। यह वितस्ता का ही रूप है या भिन्न नदी है, इसका कोई प्रमाण नहीं।

विदर्भ—वे० इ० "विदर्भ प्राचीन वेदिक साहित्य मे एक स्थान के नाम से मिलता है। यह केवल जैमिनियोपनिषद्[1] ब्रा० मे मिलता है, जहाँ पर कि उसकी पाकलज (संभवत: कुत्तों की एक जाति) व्याघ्र को मारती हुई बतलाई गई है। जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ३४ "विदर्भ (बेरार) खानदेश, निजाम के राज्य का तथा मध्यदेश का कुछ भाग इसमें

४४।३२ यह नदी पजाब मे है। काशिका 'भुव प्रभवः' ४।१।११३ यह नदी कश्मीर से निकलती है। महाभा० उद्योग० (चि०) ११६।८ इसके तट पर सतार नामक स्थान है। महाभा० आर० (चि०) ८२।८६ यह तीर्थ कश्मीर मे है। राजतरगिणी १।२६ यह नदी कश्मीरमंडल मे है। सुश्रुत ३०।६ यह नदी सिधु से दक्षिण है। विष्णुधर्मोत्तर० १।१६२। ६५ इसका चन्द्रभागा (चिनाव) से संगम है और तीर्थ है। निरुक्त ६।२६ "वितस्ता अविदग्धा विवृद्धा महाकूला", इसका भाष्य दुर्गाचार्य ने 'वितस्ता अविदग्धा वैदेहको नामाग्निः सकिल नदरन्या निर्ददाह नताम् इति सामिधेनी ब्राह्मणे विज्ञायते। अथवा विवृद्धा महाकूला विस्तीर्णा'। निरुक्त में वितस्ता के दो अर्थ किये है:—अविदग्धा और विवृद्धा। दुर्गाचार्य ने लिखा है कि सामिधेनी ब्रा० में लिखा है कि वैदेहक अग्नि ने सब नदियो को जला दिया, इसको नहीं जलाया अथवा विवृद्धा या बड़ी चौड़ी है।

(१) २।४४० जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १६।१०३ एन० ३।

शामिल है। यह राजा भीष्मक का राज्य था। इसकी पुत्री रुक्मिणी कृष्ण को व्याही थी। इस देश के मुख्य नगर कुण्डिननगर और भोजकटपुर थे। कुण्डिननगर (विदर्भनगर) इसकी राजधानी थी, जो कि बिदार नाम से प्रसिद्ध है। भोजकटपुर भोजपुर था, जो कि भूपाल राज्य में भेलसा से दक्षिण पूर्व ६ मील पर है। पुराण के भोज विदर्भ मे रहते थे। पुराने समय मे विदर्भ के अन्तर्गत भूपाल-राज्य और नर्मदा के उत्तर तक भेलसा था। (कनिंगहम का भेलसा टोपस पृ० ३६३ और 'भोजकटपुर' तथा 'कुण्डिनपुर' देखिये)।"

वस्तुतः यह एक देश का नाम है। ऐतरेय०३५।८ मे विदर्भ के राजा वैदर्भ भीम का वर्णन है। पुराणों[1] मे इसको दाक्षि-

(१) पद्म० आदि० ६।३८ यह देश भारतवर्ष मे दक्षिण में है। ब्रह्मा० म० उ० ४६।१, मार्क० ५५।१७ यह देश पूर्वाभिमुख कूर्म के दक्षिणपाद में है। महाभा० भीष्म० ६।४३ यह देश भारत मे है। काव्यमीमासा १७।२५ यह देश भारत मे दक्षिणापथ में है। गणेश० उ० पा० १६।४ इसका विदर्भदेश भी नाम है। इसमें भीम राजा की राजधानी कौण्डिन्यनगर लिखी है। और ३२।२ में महिषाख्यनगर लिखा है। १६।३० मे विदर्भ विषय लिखा है। २८।११ इसमें कदम्बपुर नगर है। उसमे चिन्तामणि नामक गणेश की मूर्त्ति है और उसके मन्दिर के सामने गणेशकुण्ड है। महाभा० हरि० वि० ४६।६२ इसकी राजधानी विदर्भापुरी है। ५६।१० यह बिन्ध्य के दक्षिण है। ५०।२१ विदर्भनगर भी नाम लिखा है। रघुवश ५।६० यह देश नर्मदा के दक्षिण है। मालतीमाधव १।३५ यह देश दक्षिणापथ में है। इसमे पद्मनगर नामक नगर है। श्रीमद्भागवत १०।२।३ यह देश है। ५३।६ यहाँ कुण्डिन नामक नगर राजधानी है। ५२।४२ यहाँ नगर

णात्य देश माना है और आजकल बरार के नाम से प्रसिद्ध है। नन्दलाल डे ने भेलसा को विदर्भ मे माना है और उसी के समीप ६ मील दक्षिण भोजकटपुर भोजपुर नाम से माना है। किसी समय मे भी भेलसा विदर्भदेश मे नहीं था। भेलसा कालिदास[1] के समय मे दशार्णदेश की राजधानी था और हर्ष-वर्धन के समय मे पूर्वीमालवा[2] मे था। भोजकटनगर कुण्डिन-पुर के समीप ही था, जैसा कि पुराणों में वर्णन है। कुण्डिनपुर नर्मदा के दक्षिण था, जैसा कि रघुवश के पंचम सर्ग मे वर्णन है। श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्ध अ० ५४ जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करके ले चले तो जरासंध और उसके साथी राजाओं ने उनको रोका। परंच वे संग्राम में परास्त हुए। जब वे परास्त हो गये तब शिशुपाल के साथ अपने-अपने देश को चले गये। परन्तु रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी ने श्रीकृष्ण का पीछा किया और यह प्रतिज्ञा की कि बगैर रुक्मिणी को लौटाये नगर मे प्रवेश न करूँगा। परंच संग्राम मे श्रीकृष्ण से परास्त हुए और प्रतिज्ञा पूरी न होने के कारण रुक्मी ने कुण्डिन मे प्रवेश न कर भोजकट नामक नगर बसाकर उसमे वास किया। इससे कुण्डिननगर के समीप ही भोजकटनगर होना चाहिये; न कि इतनी दूर। नर्मदा के उत्तर यह बिल्कुल नहीं है।

विदेह—१. वे० इ० "विदेह एक जाति का नाम है, जो ब्राह्मणकाल से पहले नहीं मिलता है। शतपथ[3] ब्रा० में विदेघ

के बाहर गिरिजा नाम की देवी है। आजकल नगर से ११ कोश पर हैं।

(१) मेघदूत पूर्वार्ध २४। (२) कादम्बरी कथामुख का प्रारम्भ।
(३) १।४।१।१० से प्रारम्भ।

माथव की कथा से इस बात का पता चलता है कि विदेह-संस्कृति पश्चिम के ब्राह्मणो से आई और कोशल विदेह के ब्राह्मणों से प्रभावित हुआ। बाद को राजा जनक के कारण विदेह अपनी संस्कृति में प्रसिद्ध हुआ, जो जनक बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में ब्राह्मणसिद्धान्तो का पोषक तथा नेता माना गया है। कौषीतकी[2] उपनिषद् में विदेह काशीज् के साथ मिला दिये गये हैं। ऐतरेय[3] ब्रा० में जातियों की सूची में विदेहाज् नहीं आते। संभवतः वे कोशल और काशी के साथ प्राच्य शब्द के साथ घुल-मिल गये हैं। शांखायन श्रौतसूत्र[4] मे यह दिखलाया गया है कि काशी, कोशल, विदेह तीनो का पुरोहित एक ही जलजातुकर्ण था। और दूसरे स्थान पर उसी[5] ग्रन्थ मे विदेह राजा पर आट्णार और कोशल राजा हिरण्यनाभ के सन्बन्ध का वर्णन है। और शतपथ[6] ब्रा० में पर आट्णार को कोशल का राजा तथा हिरण्यनाभ का वंशज माना है। विदेह का दूसरा राजा नमीसाप्य पंचविंश ब्रा०[7] मे उल्लिखित है। यजुर्वेद[8] संहिताओ में इस विदेह को गायें माना

(१) ३।८।२, तुलना करो ४।२।६ तथा ६।३०, शतपथ ब्रा० ११।३।१।२, ६।२।१ तथा ३।१, तैत्तिरीय ब्रा० ३।१०।६।६।
(२) ४।१।
(३) ८।१४।
(४) १६।२६।५।
(५) १६।६।११, १३।
(६) १३।५।४।४।
(७) २५।१०।१७।
(८) तैत्तिरीय संहिता २।१।४।५, काठक सहिता १४।५।

गया है। और तैत्तिरीय संहिता के आलोचक ने इसको वैदेही; अर्थात् एक बहुत अच्छा शरीर रखनेवाला (विशिष्ट देह संबंधिनी) माना है। किन्तु किसी स्थान का नाम स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। बौधायन[1] श्रौ० सू० मे ब्राह्मणग्रन्थो की तरह ही आता है। कोशल तथा विदेह की सीमा सदानीरा, जो संभवतः वर्तमान गंण्डक[2] है (ग्रीक भौगोलिकों की काण्डोचर्टेज); जो कि नेपाल से निकलकर पटना के सामने गंगा में मिलती है। विदेह वर्तमान तिरहुत को कहते हैं।

२. वेबर, एजलिंग, ओल्डनवर्ग, रायस डेविड और पार्जीटर का मत है कि सदानीरा गण्डक है, जो कोशल और विदेह की सीमा बनाती है। (वे० इ०)

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ३५ "विदेह = तिरहुत। यह राजाजनक का राज्य था, जिनकी पुत्री सीता का रामचन्द्र से विवाह हुआ था। मिथिला इनके राज्य और राजधानी दोनों का ही नाम था। राजा जनक की राजधानी जनकपुर थी, जो कि दरभंगा जिले मे है। बाद में विदेह की राजधानी बनारस बनी (सर मोनियर विलियम की मार्डन इण्डिया पृ० १३१)।

---

(१) २।५ तथा २१।१३।

(२) तुलना करो इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया १२।१२५। तुलना करो वेबर इंडिस्चेस्टडियन १।१७०, इडियन लिट्रेचर १०।३३। ५३, १२७, १२६ इत्यादि। एजलिङ् सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट १२।४१, ओल्डनवर्ग बुद्ध ३६८, ३६६। रायस डेविडस् बुद्धिष्ठ इडिया २६, ३७। पार्जीटर जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १६१०, १६ से प्रारम्भ।

सीतामढ़ी से करीब दो मील उत्तर एक तालाब है, जिसमे एक चिन्हित स्थान है। यहाँ पर खेत जोतते हुए जनक ने सीता को पाया था। सीतामढ़ी से तीन मील दक्षिण-पश्चिम पनौरा भी सीता की जन्मभूमि माना जाता है। जनकपुर से करीब छः मील पर एक स्थान धेनुका नाम का है, जहाँ कि अब जंगल हो गया है। ऐसा कहा जाता है कि रामचन्द्र ने शंकर का धनुष यहीं तोड़ा था। सीता का विवाह सीतामढ़ी मे हुआ था। विदेहदेश पूर्व मे कौशिकी; अर्थात् कोशीनदी से, पश्चिम में गण्डकनदी से, उत्तर में हिमालय से तथा दक्षिण मे गंगा से घिरा था। यह बुद्धकाल में बज्जियों का देश कहलाता था। 'वैशाली' देखिये।

वस्तुतः यह एक देश का नाम है। इसकी पश्चिमी सीमा सदानीरा (गण्डक) नदी है। इसके नये नाम तिरहुत, मिथिला और दरभंगा के प्रान्त हैं। ये शब्द जनपदसमानक्षत्रियवाची हैं। इसका राजा, विदेह क्षत्रिय का पुत्र 'वैदेह' कहा जाता है। देशअर्थ में यह बहुवचन मे बोला जाता है। बहुवचन में क्षत्रियसंतान विदेह ही कही जाती है। शतपथ मे सदानीरानदी को ~~कोशल और विदेह~~ की सीमा माना है। इससे विदेहशब्द देशवाची है। शतपथ ब्राह्मण की कथा का वर्णन हम 'कोशल' मे कर चुके हैं। उसमे कहीं भी कोई शब्द ऐसा नहीं है, जिससे यह प्रतीत हो कि विदेहसंस्कृति पश्चिम के ब्राह्मणों से आई। उसमें तो अग्न्याधान कैसे मन्त्रों से करना चाहिये, यह प्रतिपादन करने के लिए यह कथा आई है। इसमे तो सरस्वती से लेकर सदानीरा तक का देश अग्नि के जलाने के कारण पवित्र हो

गया, यह लिखा है। काण्व शतपथ में लिखा है कि विदेह अग्नि के जलाने से बचने के कारण पवित्र होने से रह गया। तब वहाँ के ब्राह्मणो ने यज्ञो द्वारा उसे पवित्र किया। ब्राह्मणसभ्यता और उसके आने-जाने का विचार तो संस्कृतानभिज्ञो के समझाने को योरोपियन दिमाग ने गढ़ा है, जो कि बिल्कुल निर्मूल है। "कोशल विदेह के ब्राह्मणो से प्रभावित हुआ" यह कथन उलटा है। आपके मत में जब कोशल से ब्राह्मणसभ्यता विदेह को गई, तो कोशल से विदेह को प्रभावित होना मानना चाहिये, न कि विदेह से कोशल का प्रभावित होना। "विदेह जनक के कारण अपनी संस्कृति मे प्रसिद्ध हुआ" यह भी ठीक नहीं। क्योंकि विदेह याज्ञवल्क्य के कारण प्रसिद्ध हुआ, यदि यह कहें तो कह सकते है। बृहदारण्यकोपनिषद् मे जनक ब्राह्मणसिद्धांत का कहीं भी पोषक और नेता नहीं माना गया है। किन्तु ब्रह्म-ज्ञान-वर्णन के लिये उसमे एक कथा लिखी गई है, उसका मुख्य-फल 'ब्रह्मज्ञान' है और विद्या किस प्रकार सीखनी चाहिये, यह समझाने के लिये कथा लिखी गई है। वह इस प्रकार है:—जनक ने यज्ञ मे कुरुपांचाल के ब्राह्मणों को आने के लिये आमन्त्रित किया। उनके आने पर अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये जनक ने इन ब्राह्मणों मे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद् कौन है, इसकी परीक्षा करने के बहाने पारितोषिक रख दिया। विचार प्रारम्भ होने पर विद्वानों ने अपने-अपने ज्ञानानुसार ब्रह्म का प्रतिपादन किया। उसमे याज्ञवल्क्य का ब्रह्मप्रतिपादन सर्वश्रेष्ठ रहा। बाद मे भी जनक समय-समय पर याज्ञवल्क्य से प्रश्न करके अपने ब्रह्मज्ञान को बढ़ाते रहे। इसमे ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादन मुख्य है। कथा

में तात्पर्य नहीं। योरोपियन विद्वान् सारांश को छोड़कर कथा-मात्र पर ही विचार करते है और अर्थ छोड़कर शब्दों के आधार पर ही मनमाना लिखते है। कौषीतकी उपनिषद् ब्रा० में भी ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादन करने के लिये एक कथा दिखलाई गई है, जिसे हम 'कोशल' मे दिखला चुके हैं। उसमे भी बालाकि गार्ग्य का उशीनर, मत्स्य, कुरुपञ्चाल और काशीविदेह देशों मे रहना और बाद मे काशी के राजा अजातशत्रु के पास जाकर ब्रह्मज्ञानी बनने का वर्णन है। उसमे भी उशीनर इत्यादि शब्द देशअर्थ में आये हैं। जाति में बसने का सम्भव नहीं। उसमें विदेह काशीज् के साथ मिला दिये गये, यह कथन निराधार है। जब कि ये शब्द देश के वाचक हैं तो उनके निवासियों का मिलान कहना निःसार है। ऐतरेय ब्रा० मे कहीं भी जाति की सूची नहीं है। उसमे तो ऐन्द्राभिषेक का वर्णन है। उसी मे पूर्व के राजे साम्राज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं, इसलिये अभिषिक्त इन राजाओं को सम्राट् कहना चाहिये। पश्चिम मे नीच्य और अपाच्य के राजे स्वराज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं, इसलिये अभिषिक्त इन राजाओं को स्वराट् कहना चाहिये। दक्षिण दिशा में सत्वतों के राजे भौज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं, इसलिये अभिषिक्त उनको भोज कहना चाहिये। उत्तर दिशा मे हिमालय से आगे उत्तरकुरु और उत्तरमद्र नाम के देश हैं और वहाँ के राजे वैराज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं। अभिषिक्त उन राजाओं को विराट् कहना चाहिये। मध्यदेश में कुरुपञ्चाल, वश और उशीनरदेश के राजे राज्य के लिये अभिषिक्त होते हैं और अभिषिक्त उन लोगों को राजा कहना

चाहिये—ऐसा लिखा है। कहीं भी जाति की सूची नहीं है। शांखायन श्रौ० सू० १६।२९।५ में जतुकर्ण का पुत्र जल काशी, विदेह और कोशल देश के राजाओं का पुरोहित था। १६।११ में पर आह्लार विदेहदेश का राजा लिखा है और उसके विश्व-जित् नामक अश्वमेध का वर्णन है। उसको कोशल का राजा हिरण्यनाभ भी माना है। यह बात शतपथ ब्रा० १३।५।४।४ में भी दिखलाई गई है। अन्तर इतना है कि शांखायन श्रौ० सू० में आह्लार नाम है और शतपथ में आट्णार नाम है। दोनों में पद एक ही है; पर विदेह और कौशल दोनों का राजा था, यह शांखायन श्रौ० सू० कह रहा है और शतपथ उसको कोशल का राजा कह रहा है। शांखायन श्रौ० सू० हिरण्यनाभ लिख रहा है और शतपथ में हैरण्यनाभ पाठ है। एक स्थान में अवश्य लेखक का प्रमाद है, दोनो का पाठ एक करने से पर का दूसरा नाम हिरण्यनाभ भी हो सकता है या हैरण्यनाभ (हिरण्यनाभ का वंशज) हो सकता है। दोनों राज्यों का एक ही 'पर' राजा था, यह निश्चित है। पंचविंश ब्रा० में विदेह के राजा सप्य का पुत्र नमी का अंजस्कीय सत्र के कारण स्वर्गगमन का वर्णन है। विदेह जब देश है और काल अनन्त है, तो राजाओ की संख्या का नियम नहीं है। 'पर' से यह आगे हुआ या पीछे हुआ, कोई प्रमाण नहीं। तैत्तिरीय सं० २।१।४।५ में विदेह या वैदेह कोई भी पाठ नहीं मिलता। तैत्तिरीय संहिता का आलोचक कौन है और किस पुस्तक में उसने लिखा है, पता नहीं चलता। परंतु वैदेही का अर्थ एक अच्छा शरीर रखनेवाला नहीं होता। उसका अर्थ वैदेह-संबंधी

होगा और वैदेह का अर्थ विदेह का राजा या विदेह का पुत्र होगा। बौधायन श्रौ० सू० २।५ में विदेहशब्द देशअर्थ में आया है। २१।१३ में विदेहशब्द ही नहीं है। इस देश का नाम विदेह था, इसकी राजधानी मिथिला कही जाती थी। देशअर्थ में मिथिलाशब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। केवल बराहमिहिर की बृहत्संहिता में पुल्लिग मिथिल-शब्द का प्रयोग देशअर्थ में मिलता है, मिथिला का नहीं। परंच आजकल के मैथिल विद्वान् विदेह के स्थान मे देशअर्थ में मिथिलाशब्द का प्रयोग करते मिलते हैं और इसी कारण अपने को मैथिल कहते है। मिथिला-माहात्म्य में देशअर्थ में मिथिलाशब्द का प्रयोग सुनाई पड़ता है। परंच यह निश्चित नहीं कि मिथिलाशब्द का प्रयोग देशअर्थ में कब से प्रारम्भ हुआ। विदेह की राजधानी काशी कभी नहीं हो सकती। काशी के राजा के राज्य में विदेह हो सकता है। (क० श्रीमद्भागवत ८६।१४)

विनशन—१. वे० इ० "विनशन = लुप्त हो जाना, एक स्थान का नाम जहाँ पर सरस्वती बालू मे लुप्त हो गई है। यह पंचविश[1] ब्रा० तथा जैमिनियोपनिषद्[2] ब्रा० मे आया है। यह स्थान वर्तमान पंजाब[3] के पटियाले का जिला है। तुलना करो

(१) २५।१०।६, कात्यायन श्रौ० सू० २४।५।३०, लाट्यायन श्रौ० सू० १०।१५।१, बौधायन धर्मसूत्र १।१।२।१२, तुलना करो बूलर सेक्रड बुक्स आफ दि ईस्ट १४।२।१४७।

(२) ४।२६।

(३) इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया २२।६७ से तुलना करो।

'प्लक्षप्रास्रवण' से।"

२. बूलर सरस्वती के लुप्त होने के स्थान का नाम मानते हैं। (वे० इ०)

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ३७ "विनशन तीर्थ, वह स्थान जो कि बड़े मरुस्थल की बालुका में है। तथा सरहिन्द (पटियाला) जिले में है। जहाँ पर कि सरस्वतीनदी थानेश्वर के पास पश्चिम मुड़कर बिलीन हो जाती है। 'सरस्वती' देखिये।

वस्तुतः यह सरस्वती के लुप्त होने के स्थान का नाम है। प्लक्षप्रास्रवण (सरस्वती का उद्गमस्थान) से यह घोड़े के मार्ग से ४० दिन मे जाने योग्य है। यह निषाददेश के द्वार[1] पर है तथा मध्यदेश की पश्चिमी सीमा[2] है। ताण्ड्य ब्रा० २५।१०।१ में लिखा है कि सरस्वती के विनशन में मित्रावरुण के सत्र के लिये दक्षिण तट पर दीक्षा लेते है। वे० इ० मे ६ की संख्या

---

(१) महाभारत आरण्य० (चि०) १३०।३ (म०) १०४।३ यह तीर्थ कुरुक्षेत्र मे है, सरस्वती मे है और निषादराष्ट्र के द्वार के समीप में है। निषाद लोग मुझे न जाने, इससे सरस्वती पृथ्वी मे लुप्त हो गई। महाभा० शल्य० गदा० ३७।१ यहाँ पर सरस्वतीनदी शूद्राभीरो के प्रति द्वेष से नष्ट हो गई, इससे इसका विनशन नाम पड़ा।

(२) भविष्य० प्रा० ७।६४, मनु० २।२१ यह मध्यदेश की पश्चिम सीमा पर है। महाभा० आरण्य० (चि०) ८२।१११ (म०) ६५।११३ यहाँ पर जाती हुई सरस्वती मेरुपृष्ठ मे छिप गई। पद्म० आदि० २५।१७, अग्नि० १०६।१३, कूर्म० ब्रा० उ० ३७।२६ यह तीर्थ सरस्वती में है।

अशुद्ध छपी है, १६ में सरस्वती के विनशन से प्लक्षप्रास्रवण ४० आश्वीन है। घोड़ा एक दिन में जितना जाता है उतना मार्ग 'आश्वीन' कहा जाता है। विनशन से प्लक्षप्रास्रवण पर्यन्त स्वर्गलोक है; अर्थात् सरस्वती के दोनों तटों पर यज्ञ करने से यज्ञकर्ता स्वर्ग को जाता है। यद्यपि यज्ञ करने से सर्वत्र स्वर्ग मिलता है तथापि स्थानविशेष होने से विशेष फल मिलता है। जहाँ तक लुप्त सरस्वती के चिह्न मिलते है, उसके आगे इसको मानना चाहिये।

विपाट्—१. वे० इ० "विपाश्, यह दो बार ऋग्वेद[1] में नदी के रूप मे आई है। यह वर्तमान पंजाब की व्यास है, जो कि ग्रीक लोगों की हाईफेसिस, हाईपनिस या विपसिस् है। इसका महत्व इस बात मे है कि यह ऋग्० की केवल दो ऋचाओ के सिवाय और कहीं पूर्ववैदिक साहित्य में नहीं आती। निरुक्त[2] का मत है कि इसका सबसे पहला नाम उरुंजिरा था। और गोपथ[3] ब्रा० इसके मध्य मे वशिष्ठशिला बतलाता है। पाणिनि[4] उत्तरवैदिक काल के विपाशा नाम को लिखता है। यह नदी

---

(१) ३।३३।१।२ तथा ४।३०।११, यास्क निरुक्त ११।४८, बाद के अशो मे 'विपाशिन्' ऐसा विशेषण के रूप मे देखता है। परन्तु यह असंभव है। तुलना करो ओल्डनवर्ग ऋग्वेद नोटेन १।२६४।

(२) ६।२६, विपाश शुतुद्रि के साथ ३।२४ तथा ६।३६ में वर्णित है।

(३) १।२।७ (वस्तुतः २।८।४)।

(४) ४।२।७४।

प्राचीन[1] काल से कई बार अपने मार्ग बदल चुकी है।"

२. ओल्डनवर्ग निरुक्त ११।४५ बाद के अंशो में 'विपाशिन्' ऐसा विशेषण के रूप में देखता है।

३. जिमर यह नदी प्राचीन काल से कई बार अपना मार्ग बदल चुकी है। (वे० इ०)

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ३८ "विपाशा, यह व्यासनदी है और ग्रीक लोगो की हाईपसिस है। महाभारत में इसके इस नाम के होने का कारण वर्णित है (आदि० १७९)। ऋषि वशिष्ठ अपने पुत्रों के नाश से दुःखी हो अपने हाथ-पैरों को बाँधकर नदी मे कूद पड़े। परन्तु ब्राह्मणवध के डर के कारण नदी ने वशिष्ठ के पाशों को तोड़ दिया और तट पर पहुँचा दिया। गर्म झरने तथा वशिष्ठ मुनि का गाँव मुनाली के सामने अवस्थित है (जे० ए० एस्० बी० वालूम १७ पृ० २०९)।"

वस्तुतः यह व्यासनदी का नाम है। यह शब्द शकारान्त है और 'टाप्' प्रत्यय होने से बिपाशा भी बन जाता है। इसका सतलज के साथ संगम 'विपाट्छुतुद्रयोः संभेदः' इस नाम से बृहद्देवता ४।१० मे मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी ४।२।७५ मे 'उदक् च विपाशः' ऐसा पाठ है, जो निपाश्शब्द के षष्ठी विभक्ति के एकवचन का रूप है। 'विपासा' का तो 'विपाशायाः' ऐसा रूप होता है। वेदिक इंडेक्सकार 'विपाशा' शब्द का बतला रहे हैं, जो उनका भ्रम है। ऋग्० ३।३३।१ में 'विपाट्

---

(१) देखो इम्पीरियल गजटियर आफ इन्डिया ७।१३८ (व्यास) तुलना करो जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन ११।

शुतुद्री' यह शब्द आया है और तीन में 'विपाश्' शब्द आया है। इस प्रकार केवल विपाश्शब्द एक बार आया है। और दूसरी बार शुतुद्रि के साथ समास मे आया है। निरुक्त में ऐसा पाठ है "विपाट् विपाटनाद्वा निपाशनाद्वा विप्रापणाद्वा पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वशिष्ठस्य मुमूर्षतः तस्माद्विपाडुच्यते पूर्वमासी दुरुंजिरा।" ऋग्० ४।३०।११ का अर्थ निरुक्त ने ११।४८ मे किया है "एतदस्या अनः शेते सुसम्पिष्ट मितरदिव विपाशि विमुक्त पाशिससार उषाः परावतः प्रेरितवतः परागताद्वा"। ऋग्० ४।३०।११ की व्याख्या निरुक्त ने की है, इससे पहले दशवे मंत्र की व्याख्या यह है "जिस समय इन्द्र ने उषा के शकट को नष्ट किया है, उस समय मेघों मे निवास करनेवाली उषा इस भय से कि यह हमें भी हनन कर देगा, भाग जाती है"। इससे आगे का व्याख्यान निरुक्त मे है। पूरे का अर्थ यह है:- "उषा का आश्रयभूत शकट वायु से जब चूर कर दिया गया तब मेघ-पाश (बन्धनो) के नष्ट हो जाने से टूटे शकट के समान पृथ्वी पर फैल जाता है। और अपने आश्रय के नष्ट हो जाने से उषा दूर से दूर भाग जाती है"। इससे 'विपाशिन्' शब्द आया है और 'अनः' का विशेषण है। 'अनः' का अर्थ 'शकट' है। पूरे का अर्थ 'जिसके पाश नष्ट हो गये'—ऐसा शकट है। यहाँ विपाशानदी से कोई भी संबंध नहीं है, तब भी वेदिक इन्डेक्सकार निरुक्त के अर्थ को बिना समझे ही असंभव कर रहे हैं। यहाँ पर तो कुछ भी असंभव नहीं है। फिर भी असंभव कहना संस्कृतानभिज्ञो के सामने हम निरुक्तकार से भी अधिक संस्कृतज्ञ हैं—यह दिखाने के लिये झूठी डींग मारना

है। इसका नाम पुराणों[1] में भी आया है। सायण ने ४।३०। ११ में 'विपाशि' का 'विपाशानदी' में अर्थ किया है, वह भी निरुक्त के विरुद्ध माना नहीं जायगा।

(विपाट्छुतुद्री)—यह नाम व्यास और सतलज का मिलकर द्वन्द्व में आया है। ऋग्० ३।३३।१ में इनकी स्तुति विश्वामित्र ने की है। इनके साथ जाने का वर्णन इनका संगम बतला रहा है। ३।३३।३ में भी इनका संगम प्रतीत होता है।

(विपाट्छुतुद्रि-संभेद)—बृहद्देवता ४।१ मे 'विपाट्छुतुद्रयोः संभेदः' ऐसा पाठ मिलता है। निरुक्त २।२४ में 'विपाट्छुतुद्रयोः संभेदमाययौ विश्वामित्रो नदीस्तुष्टाव' ऐसा पाठ है। परन्तु दुर्गाचार्य इसकी व्याख्या में लिखते हैं—'विपाट् शुतुद्रयोः नद्योः संभेदनमागतवान् यत्र विपाट्छुतुद्रयौ इतराभिः सिन्ध्वादिभिर्नदीभिः संभिन्ने एकीभूते इत्यर्थः'। यहाँ पर दुर्गाचार्य को अर्थ में कुछ भ्रम हो गया। इसका कारण यह है कि निरुक्त में 'नदीः तुष्टाव' तथा ऋग्० ३।३३।९ मे 'सिन्धवः' में बहुवचन देखना है। संभव है कि दुर्गाचार्य को यह पता न हो

(१) वायु० पू० २६।१४ यह नदी भारत मे है और हिमालय के पाद से निकली है। पद्म० आ० ६।१२ पद्म० सृ० १७।१६६ इसके तट पर अमोघाक्षीदेवी है। वामन० ७६।७३ इसके तट पर द्विजप्रिय देव है। वायु० पू० ४५।१०० मे एक विपाशा ऋक्षपर्वत से उत्पन्न लिखी है। वामन० १३।२७ तथा मार्क० ४४।२२ मे भी पाठ समान है। स्कन्द० आव० रेखा० ६।४० तथा ४।४६ से नर्मदा का भी नाम विपाशा है। इतना होने पर भी ऋग्० मे शुतुद्री का नाम आने से ऋग० मे व्यास का ही नाम उचित है।

कि व्यास और शतलज आपस में मिली हैं। इससे दुर्गाचार्य के समय ये दोनों नदियाँ परस्पर नहीं मिली थीं और व्यास का संगम बजाय शतलज के चिनाब से था,[१] यह सिद्धान्त तैयार करना निर्मूल है। जब कि व्यास और शतलज के संगम का वर्णन ऋग्० में आज के समान मिल रहा है तब बीच में नहीं था, यह प्रमाणाभाव से माना नहीं जा सकता। (भार० नि० ४७) सुदास् उत्तरपंचाल का राजा[२] था और उसने रावी (परुष्णी) के किनारे दशराजाओं और जातियों को, जिनमे आधुनिक पठानों के पूर्वज पक्थ लोग भी थे, इकट्ठे हराया था। किंतु शतलज और व्यास के संगम पर पहुँचकर उसकी सेना को रुक जाना पड़ा था। जब कि विश्वामित्र के स्तुति करने से दोनों नदियाँ अपने बढ़ते प्रवाह को थामकर इस प्रकार झुक गईं, जैसे बच्चे को दूध पिलाने के लिये स्त्री झुक जाती है अथवा पुरुष को आलिंगन करने के लिये कन्या, तब सुदास् की सेना पार उतर सकी।

वस्तुतः सुदास् किस देश का राजा था, इसका निश्चय नहीं। उत्तरपंचाल के होने मे कोई भी प्रमाण नहीं है। पक्थों का संग्राम रावी पर हुआ, इसमें भी कोई प्रमाण नहीं, जैसा कि हम 'पक्थ' मे लिख चुके हैं। दशराजाओ के युद्ध में भी पक्थ नहीं आ सकते, यह हम 'पक्थ' में दे चुके हैं। सुदास् को व्यास-शतलज के संगम पर पहुँचाकर और सेना के रुकने का वर्णनकर विश्वामित्र द्वारा नदियों की स्तुति का वर्णन करना

(१) भार० नि० पृ० २२।
(२) प्र० अ० पृ० २८१।

ऋग्० और निरुक्त दोनों के विरुद्ध है। कोई भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो सुदास् के साथ विश्वामित्र को दोनों के संगम तक पहुँचा सके।

विपाट्छुतुद्री—यह नाम व्यास और शतलज का साथ मिलकर द्वन्द्व मे आया है। ऋग्० ३।३३।१ में इसका वर्णन है।

विबाली—१. वे० इ० "विबाली का ऋग्०[1] मे एक बार उल्लेख आया है। यह किसी अज्ञात नदी का नाम है।

२. जिमर का भी यही मत है।

वस्तुतः यह एक नदी का नाम है और किस नदी का नाम है, यह पता नहीं।

विश्—१. वे० इ० "विश् यह ऋग्०[2] मे निवासस्थान अथवा उपनिवेश के अर्थ मे आया है, जो सभव-सा मालूम होता है। क्योकि विश् के माने घुसना या बसना होता है। अन्य स्थानों पर जहाँ विश् राजकुमार के साथ प्रयोग मे आया है, उसके माने प्रजा[3]

---

(१) ४।३०।१२, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १२।१८।

(२) ४।४।३ तथा ३७।१।५।३।५ तथा ६।२१।४।४८।८, ७।५६।२२, ६१।३ तथा ७०।३ तथा १०४।१८, १०।६१।२।

(३) ऋग्० ४।५०।८, ६।८।४, १०।१२४।८ तथा १७३।६, अथर्व० ३।४।१, ४।८।४, २२।१।३, तैत्तिरीय स० ३।२।८।६, वाजसनेयी स० ८।४६, शतपथ ब्रा० १।८।२।१७, ४।२।१।३, ५।३।३।१२ तथा ४।२।३, १०।६।०।१, १२।६।२।८, कौषीतकी उपनिषद् ४।१२ इत्यादि। नं० ११ से बहुत से अश यहाँ पर भी प्रमाण लाये जा सकते है। अथर्ववेद ३।४।१ में एक जाति को राजा चुनते हुए देखा गया है। परन्तु 'राजन्' देखिये और तुलना करो पिशल वेदिश्चेस्टडियन १।१७६, गेल्ड-

होते हैं। प्रमाणतः जब कि तृणस्कन्द[1] और तृत्सु लोगों का उल्लेख[2] किया गया है और कुछ स्थानों[3] पर साधारण अर्थ मे आदमी के लिये आता है। जैसे कि ऋग्वेद मे आर्यन्[4] लोग और देव[5] लोग तथा दास लोग और इसी प्रकार से और[6] भी हैं। कभी-कभी[7] विश् जन का एक छोटा भाग प्रतीत होता है, जो किसी एक जाति के अथवा एक ही संबंध के मनुष्यों के निवासस्थान के अर्थ मे आया है। यद्यपि ग्राम

नर वेदिस्चेस्टडियन २।३०३, हाप्किस जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १३।११३।

(१) ऋग्० १।१७२।३।

(२) ऋग्० ७।३३।६, गेल्डनर की वही पुस्तक १३६।

(३) एजलिड ऋग्वेद ६।१।८ तथा २६।१ तथा ८।७१। ११, मनुषोविशः ६।१४।२, ८।२३।१३, मानुषीः १०।८०।६ इत्यादि।

(४) ऋग्० १०।११।४।

(५) ऋग्० ३।३४।२, अथर्व० ६।६८।२, वाजसनेयी स० १७।८६।

(६) ऋग्० ४।२८।४, ६।२५।२, अदेवीः ८।६६।१५, असिक्नीः ७।५।३ आदि।

(७) ऋग्० २।२६।३, जहाँ पर जन जन्मन् पुत्राः १०।८४।४ का विरोध करता है। जहाँ पर कि युद्ध में विशम् विशम् झुण्ड का अर्थ (४। २४।४ का विशो युध्माः बतलाते है),.४।६१।२ जहाँ पर क्लि गृह तथा जन के विरुद्ध है। अथर्व० १४।२।२७ मे जहाँ पर कि गृहेभ्यः के पीछे 'अस्यैसर्वस्यै विशे' जिसका कि अर्थ एक विभाग है। जिमर अल्टेनडिस्चे-जलेबैन १५६, यह ऋग्० के १।१७२।३ तथा ७।३३।६ तथा ६।७।५ तथा १०।१२४।८ तथा १७३।१ से समानता दिखलाता है। परन्तु इस दशा में बहुत से जाति के भेदो के बजाय प्रमाण प्रजा के है।

तथा गोत्र से विश् का सम्बन्ध ठीक से ज्ञात नहीं है। अथर्ववेद[1] के एक स्थान पर विशः सबन्धवः अथवा सम्बन्धी साथ आया है, परंच इससे कोई निश्चित अर्थ नहीं लगाया जा सकता। रोमन कुरिया अथवा ग्रीक P N T P N शब्द भी विशेष प्रकाश नहीं डालता। क्योंकि वह स्वयं संदेहात्मक है। किसी भाँति भी विश् गोत्र, जाति अथवा विभिन्न जातियों से मिलकर बना होगा तथा ग्राम निश्चितरूप से एक ही स्थान का ज्ञान कराता है। परन्तु[2] वेदिक प्रमाण से कोई भी निष्कर्ष नहीं निकलता। 'विश्पति' से तुलना करो। बाद[3] के साहित्य

---

(१) १५।८।२।३, तुलना करो १४।२।२७ और ऋग्० १०।६१। २ एन्० ६ मे।

(२) विश् पहले यह एक जाति रही होगी, जो एक स्थान पर बस गई। कोई ऐसा स्थान नही है जिससे कि यह सिद्ध हो कि गोत्र का अर्थ नहीं निकलता। ऋ० २।२६।३ जबर्दस्ती विश् तथा जन्मन मे कोई अतर नहीं दिखला सकते। मरुत्स का शर्ध शर्ध, व्रात व्रातं, गणं गणं ऋ० ५।५३।११ की तुलना कीजिये, जहॉ पर कि कोई स्पष्ट अर्थ नही दिया जा सकता। यद्यपि जिमर ने उन्हे जन, विश्, ग्राम तीन विभागो मे माना है। इसलिये गौशब्द का कोई आधार नही है।

(३) संभवतः इन्ही भावों के अंश ब्राह्मणो तथा पीछे की सहिताओ में मिलते है, जो कि विश् तथा क्षत्र जाति तथा जाति के सरदारो अथवा किसानो तथा राजाओ में युद्ध का उल्लेख करते है। प्रमाणतः तैत्तिरीय सं० २।२।११।२, मैत्रायणीसहिता २।१।६ तथा ३।३।१०, काठक सं० १६।६ तथा कई बार पचविश ब्रा० १८।१०।६, शतपथ ब्रा० २।१।३।५ तथा ८।७।२।३ तथा १३।२।२।१७, १६।६।६ तथा १४।१।३, २७ इत्यादि, छान्दोग्योपनिषद् तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेबेन

में विश् का अर्थ वैदिक राजनीतिक विभाजन के तीसरे भाग के रूप मे आया है। यह लोग तथा जाति के लोग हैं (क्षत्र, क्षत्रिय) और (ब्राह्मण तथा ब्रह्मन् नहीं) इसका पद ज्ञान करने के लिये 'वैश्य' शब्द देखना चाहिये।"

२. पिशल और गेल्डनर बहुत से स्थानों में विश् का अर्थ प्रजा मानते है। (वे० इ०)

३. जिमर जन, विश् और ग्राम को भिन्न-भिन्न विभाग मानते हैं। यही मत मेकडानल, राथ और वानस्काउडर स्मिथ, गिलबर्ड इत्यादि का है। (वे० इ०)

वस्तुतः वेदिक इन्डेक्सकार तथा और बहुत से योरोपियन विद्वान् 'विश्' शब्द का अर्थ निवासस्थान या उपनिवेश मानते हैं। इसके लिये टि० १ मे ऋग्वेद के मंत्र उदाहरण दिये हैं। उनपर हम बिचार कर रहे हैं। ऋग्० ४।४।३ यह मंत्र अग्नि-

---

१५ से प्रारम्भ। स्काउडर प्रीहिस्टारिक ऐन्टी क्वीटीज ८०० से प्रारम्भ। मेकडानल सस्कृत लिट्रेचर १५८। वानस्काउडर इडियन्स लिट्रेचर ऐन्ड कल्चर ३२।३३ सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी। तुलना करो मोमसेन हिस्ट्री आफ दि रोमन १।७२ से प्रारम्भ। रोमिस्चेफारस्चगेन १।१४०, १५० रोमिस्चेज स्टाट्सरेच्ट ३।६। टेलर हिस्ट्री आफ रोम ११।१२। स्मिथ डिक्शनरी आफ एन्टीक्यूटीज १।५७६। कुकलेस इस्टीचुशनस् ज्यूरी डिक्यूज डेस रोमन्स ३०।३६। ग्रीकफ्राट्रिया के लिये डिक्शनरी आफ एन्टी क्यूटीज २।८७६ प्रारम्भ से देखिये। ग्री निड्ग ग्रीक कान्टीचूशनल हिस्ट्री १२८ प्रारम्भ से देखिये। बरी हिस्ट्री आफ ग्रीक ६६।७०। गिलबर्ट ग्रीक कास्टीचूशन एन्टीक्यूटीज १।१०४ से प्रारम्भ २१०। टैसीटस के पजी के लिये तथा सैकड़ो अंगरेजी के लिये मैन्डले की इगलिश कांस्टि-चूशनल हिस्ट्री २।३१८ से देखिये।

स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! सत्यासत्य विवेक के लिये आप बहुत शीघ्र दूसरों के बाधक किरणों या दूतों को भेजिये। और किसी से हिंसा न किये गये आप हमारी विशः =प्रजा या संतान का दूर और पास से हानि चाहनेवाले शत्रुओं से रक्षा करें।' इसमे 'विश्' का अर्थ प्रजा या संतान है, निवास-स्थान या उपनिवेश नहीं। ऋग्० ४।३७।१ का अर्थ यह है:— 'हे बाज लोगो, हे ऋभृथु लोगो! आप लोग हमारे यज्ञ मे देव-ताओं के आने योग्य मार्गों से आये। और जिस प्रकार इन मनु-सम्बन्धिनी प्रजाओ मे; अर्थात् यजमानों के यज्ञ मे आकर दिनों को सुदिन बनाते हैं, उसी प्रकार हमारे यज्ञ मे भी आये।' इसमे 'मनुषोविक्षु' का अर्थ 'मनु-सम्बन्धिनी संतान' है, निवास-स्थान या देश अर्थ नहीं। ऋ० ५।३।५ का अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आपसे पुराना कोई होता या यजन करनेवाला नहीं है। और परकाल मे भी स्तोत्रो से स्तुति के योग्य आपसे श्रेष्ठ नहीं है। हे देव! हे अन्नवाले! आप जिस विश्=प्रजा ऋत्विक्-रूप के अतिथि के समान पूज्य होते है, वह यज्ञ से हमारे साथ द्वेष करनेवालों को नष्ट करे।' इस मे 'विश्' शब्द का अर्थ 'प्रजा'; अर्थात् ऋत्विक् है, स्थान या उपनिवेश का संभव नहीं। ऋग्० ६।२१।४ का मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'जिस इन्द्र ने वृत्रवध इत्यादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कर्म किये, वह इन्द्र इस समय कहाँ है, किस पुरुष के पास है, किन प्रजाओ में मौजूद है? यह इन्द्र की बिभूति को महत्व निश्चित नहीं किया जा सकता, इत्यादि।' इसमे 'विश्' का अर्थ प्रजा है, निवासस्थान या उपनिवेश अर्थ नहीं है। ऋग्० ६।४८।८ का

मंत्र अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आप सम्पूर्ण मानुषी मनु-सम्बन्धी विश्=प्रजाओं के गृहस्वामी होते हैं, इत्यादि।' इसमें भी 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, निवासस्थान या उपनिवेश नहीं हो सकता। ऋग्० ७।५६।२२ का अर्थ यह है:—'हे मरुतो! जिस समय शूर लोग बड़ी-बड़ी ओषधियाँ और विश्=प्रजाओं में क्रोध या अभिमान से इकट्ठे होते हैं, उस समय युद्धों में शत्रुओं से हमारी आप रक्षा करें।' इसमे भी 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है। ऋग्० ७।६१।३ यह मित्रावरुण की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे मित्रा-वरुण! आप दोनों विस्तीर्ण पृथ्वी से भी बड़े हैं। हे सुन्दर दानवाले! आप कुछ ओषधियाँ प्रजाओं के लिये सत्य से चलने-वाले लोगों की सर्वदा टकटकी लगाकर रक्षा करते हुए रूप को धारण करते हैं।' इसमें 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, निवास-स्थान या उपनिवेश नहीं। ऋग्० ७।७०।३ का वह मंत्र अश्वि-नीकुमारों की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—हे अश्वि-नीकुमारो! आप दोनों द्युलोक से आकर बड़ी ओषधियाँ और विक्षु=प्रजाओं (यजमानों) में स्थान को करते हैं।' इसमें 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, निवासस्थान या उपनिवेश नहीं। ऋ० ७।१०४।१८ का यह मंत्र मरुतों की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे मरुतो! आप लोग विश्=प्रजाओं में नाना प्रकार से स्थित होते हैं, इत्यादि।' इसमें भी 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, निवासस्थान या प्रदेश नहीं। ऋग्० १०।९१।२ का अर्थ यह है:—'मनुष्यों का हित करनेवाला अग्नि विश्=मनुष्यों में रहता है, इत्यादि।' इसमें भी 'विश्' का अर्थ 'मनुष्य' या

'प्रजा' है, निवासस्थान या उपनिवेश संभव नहीं।

टि० २ में शतपथ १।८।२।१७ लिखा है। वह छापा की अशुद्धि है, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि उसमें 'विश्' शब्द नहीं है। तथा ४।२।१।३ मे भी 'विश्' शब्द नहीं है। १२ में 'विशः' ऐसा पाठ मिलता है। वहाँ पर 'विश' का अर्थ साधारण मनुष्यमात्र है। १०।६।२।१ में 'विश्' शब्द नहीं आया है। १३।६।२।८ में 'विश्' शब्द नहीं है। १० में 'विश' शब्द स्पष्ट 'वैश्य' के अर्थ में है। शतपथ में 'मरुद्भ्यो वैश्यं' वाजसनेयी संहिता के प्रतीक को देकर 'मरुत् वैश्य है इसलिये उनके लिये सजातीय वैश्य का बलिदान ठीक है। क्योंकि सजातीय सजातीय को बढ़ाता है'—यह लिखा है। यहाँ त्रिकाल में भी प्रजाअर्थ का संभव नहीं। वे० इ० कार कहते हैं 'एक जाति को राजा चुनते हुए अथर्ववेद में देखा गया है'—परंच प्रमाण नहीं दिया। शायद उनका तात्पर्य अथर्व० ३।४।२ मंत्र से है। उसमे राजा स्वराष्ट्रप्रवेशकर्म मे प्रापणीय इष्टि को करे, उसका वर्णन है। उसमें पहले का अर्थ यह है:-'हे राजन्! शत्रु से आक्रान्त अपना राज्य आपको मिले। आप बल से प्रख्यात हों और प्रजाओं के पालक हों। शत्रुरहित पृथ्वी के एक राजा हों और विशेष करके प्रकाशित हों। आपको पूर्व इत्यादि दिशाएँ और प्रदिशाएँ एवं उनके अभिमानी देवता और उनमें रहनेवाले मनुष्य स्वामी मानें। साथ ही; अपने राज्य मे सब लोगों से सेवा के योग्य और नमस्कार के योग्य हों।' दूसरे का अर्थ यह है:—'हे राजन्! आपको प्रजाएँ राज्य के लिये स्वीकार करें तथा पाँचों दिशाएँ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और

मध्य) द्योतमान् होकर आपको स्वीकार करें और आप राज्य के ऊँचे स्थान; अर्थात् सिंहासन पर बैठें । उसके बाद बड़े बलिष्ठ हो सेवकों को धन दें ।' इसमें राजा के लिये आशीर्वाद दिया है । उसमें 'एक जाति ने राजा को चुना' यह कहना कल्पनामात्र है । ऋ० १९।११।४ में 'आर्याः' 'विशः' का विशेषण है । आर्य का अर्थ गमन के योग्य; अर्थात् अग्नि के पास जानेवाले विश्, मनुष्य; अर्थात् यजमान होता है, आर्य लोग नहीं । अथर्व० ६।९८।२ का यह मंत्र इन्द्र के साथ अभेद करके राजा की स्तुति में आया है । अर्थ यह है:—'हे इन्द्र! आप अन्य राजाओं से अधिक अन्न से युक्त हों और सम्पूर्ण प्राणियों का अपनी महिमा से तिरस्कार करनेवाले हों और देव-सम्बन्धी इन विश् = प्रजाओं का आप शासन करें । आपका बल आयु से युक्त हो और बुढ़ापे से रहित हो ।' इसमें 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है । ऋ० २।२६।३ मे 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, जन का छोटा भाग संभव नहीं । अर्थ यह है:—'जो यजमान श्रद्धा से युक्त मनवाला होकर देवताओं के पालक ब्रह्मणस्पति हवि द्वारा सेवा करता है, वही यजमान जन = साधारण लोगों से और विश् = प्रजा से जन्मन = आत्मीय बन्धुजनों से और अपने पुत्रों से तथा परिचारकों से अन्न प्राप्त करता है ।' अर्थात् ब्रह्मणस्पति के भजन करनेवाले यजमान के सभी लोग सब ओर से धन और अन्न के साधक और साधन बन जाते हैं । ऋ० १०।८४।४ में 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है, जन का भाग नहीं । अर्थ यह है:- (इसमें क्रोध की स्तुति है) 'हे मन्यो = क्रोध ! स्तुत होकर आप अकेले ही बहुत शत्रुओं के मारने के लिये पर्याप्त हैं । इसलिये

हमारी विरोधिनी प्रत्येक प्रजा को युद्ध के लिये अच्छी तरह से तीक्ष्ण करें; अर्थात् उभाड़ें, इत्यादि।' इसमें 'विशम् विशम्' आया है, उसका अर्थ 'प्रत्येक प्रजा' है। ऋग्० ४।२४।४ में भी विश् का अर्थ प्रजा है, जन का सम्भव नहीं। अर्थ यह है:—'हे बड़े बलवाले इन्द्र! जिस संग्राम मे युद्ध करनेवाली प्रजाएँ परस्पर मिलती हैं, उस समय कोई ही भाग्यवान् योद्धा लोग इन्द्र की इच्छा करते हैं।' इसमे तथा अन्यत्र 'विश्' शब्द का अर्थ झुण्ड कभी नहीं होता। एक ही सम्बन्ध के मनुष्यों के या किसी एक जाति के निवासस्थान में 'विश्' शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं है। शतपथ० २।१।३।५ में 'विश्' का अर्थ 'वैश्य' है। ८।७।२।३ मे भी 'विश्' का अर्थ 'प्रजा' है। १३।२।२।१९ में भी 'विश्' का अर्थ 'वैश्य' है। १७ में 'विश्' शब्द नहीं है। १४।१।३।२७ में 'विश्' का अर्थ 'वैश्य' है। छान्दोग्योपनिषद् ८।१४ में 'विश्' का अर्थ 'वैश्य' है। पंचविश ब्राह्मण १८। १०।९ में 'विश' का अर्थ 'प्रजा' है।

विश्वपन्य—ऋग्० २।१३।२ में यह शब्द समुद्र के अर्थ में आया है। नदियों का समुद्र में प्रकर्ष से जल देने का इसमें वर्णन है।

वीरपत्नी—यह एक नदी का नाम है और ऋग्०[1] में शिफानदी के सहायक रूप मे इसका वर्णन है। ऋग्० ६।४९। ७ मे नदीरूप मे इसका वर्णन मिलता है। स्कन्दपुराण हिम॰ वत्० ७९।२२ तथा १२४।७३ मे एक नदी वीरा नाम की लिखी

(१) १।१०४।४।

है। उसका चम्पा भी नाम है। यह नेपाल की नदी है। वही वीरपत्नी भी प्रतीत होती है। सत्यभामा, भामा सत्या इत्यादि के समान प्रयोग है।

वृजन—१. वे० इ० "वृजन, राथ[1] के अनुसार ऋग्०[2] के बहुत से अंशों में गाँव अथवा निवास के लिये आया है, जिसका कि जर्मन् में मार्क तथा उसके निवासी अर्थ होता है। जिमर[3] ने इस धारणा को स्वीकार करते हुए वृजन शब्द के अर्थ सुरक्षित निवासस्थान क्षितिध्रुवा, जहाँ पर कि जाति[4] रहती है, माना है। जाति स्वयं एक ग्राम जाति के लिये आया है। और युद्ध[5] में एक जाति का होना माना है। गेल्डनर[6] इसका शाब्दिक अर्थ लेते हुए जाल अर्थ मानता है। परन्तु परंपरा से जो धारणा चली आ रही है, वही उचित मालूम होती है।"

२. राथ ऋग्० के बहुत से स्थानों पर इस शब्द का अर्थ गाँव या निवासस्थान मानते हैं। (वे० इ०)

३. जिमर राथ की धारणा को स्वीकार करते हुए वृजन शब्द का अर्थ सुरक्षित निवासस्थान (क्षितिध्रुवा, जहाँ पर कि जाति रहती है) मानते हैं और जाति स्वयं एक ग्रामजाति के

(१) सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी।

(२) १।५१।१५, ७३।२, १।६१।२१, १०५।१६, १२८।७, १६५।१५ तथा १६६।१४ इत्यादि।

(३) अल्टेन डिस्चेजलेवेन १४२।१५६।१६१।

(४) ऋग्० १।५१।१५ तथा ७३।२ (तुलना करो १।७३।४)।

(५) ऋग्० ७।३२।२७ तथा १०।४२।१०।

(६) वेदिस्चेस्टडियन १।१३६ से प्रारम्भ।

लिये आई है। और युद्ध में एक जाति का होना माना है। (वे० इ०)

४. गेल्डनर के मत में इस शब्द का अर्थ जाल है। (वे० इ०)

वस्तुतः ऋग्० १।५१।१५ यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। इसमे वृजन शब्द का अर्थ संग्राम है, गाँव या निवासस्थान नहीं। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र ! हमने वर्षा करने के स्वभाववाले, अपने तेज से शोभित होनेवाले, अमोघ बलवाले और अत्यन्त बढ़े हुए आपके लिये स्तुतिरूप वाणी प्रयोग किया। इससे इस वृजन=संग्राम में हम सम्पूर्ण वीरों से युक्त हों और आपसे दिये हुए सुन्दर घर मे पुत्रादि के साथ निवास करें।' ऋग्० १।७३।२ मे भी वृजनशब्द का अर्थ संग्राम है, गाँव या निवासस्थान नहीं। यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"द्योतमान् सबका प्रेरक सूर्य के समान जो अग्नि यथार्थदर्शी है, वह अग्नि अपने कर्म से सम्पूर्ण वृजन=संग्रामों मे अत्यन्त पालन करता है।" सायणाचार्य ने 'वर्ज्यन्ते हिंस्यन्ते अस्मिन् इति वृजन संग्रामः' ऐसा विग्रह किया है'; अर्थात् जिसमे लोग मारे जाते हैं—उसका नाम वृजन है। ऋग्० १।१९१।२१ मे वृजन शब्द का अर्थ बल है, गाँव या निवासस्थान नहीं। यह मंत्र सोमस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'संग्रामों मे शत्रुओं द्वारा तिरस्कृत न होनेवाले तथा सेनाओं के जय के पूरे करनेवाले तथा स्वर्ग के देनेवाले और दृष्टि के देनेवाले सभी के अनुग्राहक वृजन=बल के रक्षक तथा यागों मे प्रकट होते हुए सुन्दर निवासस्थानवाले तथा सुंदर यशवाले तथा शत्रुओं को जीतते हुए हे

सोम ! आप हमको देखकर हर्षित हों।' ऋग्० १।१०५।१९ इसमे वृजन शब्द का अर्थ संग्राम है, ग्राम या निवासस्थान नहीं। मंत्रार्थ यह है:—'इस स्तोत्र से प्रसन्न अनुग्राहक इन्द्र से युक्त सम्पूर्ण वीर योद्धा अथवा पुत्र-पौत्रादि से युक्त हो हम वृजन=संग्राम मे शत्रुओं को जीतें, इत्यादि।' ऋग्० १।१२८।७ इसमे वृजनशब्द पापअर्थ मे आया है, ग्राम या निवासस्थान मे अर्थ ठीक नहीं। यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'वह अग्नि मनुष्य-सम्बन्धी वृजन=पाप को निमित्त होने पर यज्ञो में अत्यन्त सुख देनेवाला होता है, इत्यादि।' १।१६५।१५ यहाँ वृजनशब्द का अर्थ बल है, ग्राम या निवासस्थान नहीं। यह मंत्र मरुत् की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे मरुत ! यह स्तोम सामवेदोक्त स्तोत्र आपके प्रसन्न करने के लिये हो। इसी प्रकार यह स्तुतिरूप वाणी भी आपके प्रसन्न करने के लिये हो। इसीलिये स्तुतिविशेषों से प्रसन्न करनेवाले, स्तुति करनेवाले की इच्छा से आइये और हम भी आपके आने पर यज्ञसम्पूर्ति द्वारा अन्न वृजन=बल और जयशील दान को प्राप्त हों।' राथ और जिमर का कथन ठीक नहीं। ७।३२।२७ इसमें वृजनशब्द का अर्थ हिंसक है, जाति नहीं। यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र ! अज्ञात है गमन जिनका ऐसे दुष्ट वृजन=हिंसक लोग हमलोगो पर धावा न करें। हे शूर ! आपसे हम लोग रक्षित हों, सभी विपत्तियों को तरें।' ऋग्० १०।४२।१० यहाँ वृजनशब्द बलअर्थ में है, जातिअर्थ मे नहीं। यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र ! आपके प्रसाद से हम दरिद्र

के कारण आई हुई दुर्बुद्धि को पशुओं के द्वारा तरें और वेग से व्याप्त भूख को भी तरें तथा प्रधान धन को राजाओं से प्राप्त करें और अपने वृजन = बल से शत्रुओं को जीतें।' गेल्डनर का 'जाल' अर्थ ठीक नहीं। इस प्रकार वृजनशब्द का अर्थ संग्राम, बल और हिंसक है।

वृत्रघ्ने—१. वे० इ० "वृत्रघ्न, ऐतरेय[1] ब्रा० में उस स्थान मे आता है, जहाँ पर एक भरत के विषय मे कही गई गाथा मे कहा गया है, कि इसने गंगा तथा यमुना पर वृत्रघ्ने घोड़ो को बाँधा था, जो कि सायण द्वारा वृतघ्न पर एक स्थान के नाम की भाँति आया है। राथ[2] वृत्र का मारनेवाला इन्द्र ऐसा अर्थ करने मे ठीक मालूम होता है।"

२. राथ तथा औफ्रेच्ट वृत्रघ्न का अर्थ इन्द्र मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः इन्द्र का नाम वृत्रहा है। उसी के चतुर्थी विभक्ति के एकवचन का यह रूप है, इसका अर्थ 'इन्द्र के लिये' होता है। ऐतरेय ब्रा० में यही अर्थ है, देशअर्थ नहीं है। इन्द्र के लिये राजा भरत ने गगा और यमुना के तट पर घोड़ो को बाँधा; अर्थात् अश्वमेधयज्ञों को किया। शतपथ ब्रा० १३।५।४।११ मे भी यही अर्थ है। वहाँ पर 'इन्द्राय मेध्यान् अश्वान्' यह स्पष्ट लिखा है। अतः वृत्रघ्न कोई स्थानविशेष नहीं है।

वृषभ—काठक संहिता १५।७ तथा अथर्ववेद १२।२

---

(१) ८।२३।५।

(२) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी, तुलना करो औफ्रेच्ट ऐतरेय ब्रा० ४२५।

आ० ४१२।४१ में यह शब्द एक पर्वत के रूप में आया है। इसके पृष्ठ पर नदी के सामने नयी-पुरानी नदियाँ हैं। यह पर्वत स्कन्दपुराण हिमवत्० ७०।७ मे नेपाल की सीमा पर हिमाद्रि के पुत्ररूप में वर्णित है। दूसरा इसी नाम का पर्वत मगध मे गिरिव्रज के पास मे महाभा० सभा० (चि०) २१।२ में वर्णित है, (सु०) १९२ टि० मे 'ऋषभ' पाठान्तर है। तीसरा वैजयन्तीकोष भू० शै० ५ वेङ्कटगिरि के नाम के रूप में आया है। इंडियन आन्टीकेरी ४।२२३ मे वेंकटगिरि का नाम है। एपी ग्राफिया इंडिका ६।३३ वृषभ गिरि, इसके तट पर पहले श्री रंगनाथदेव थे, उनको राजा गोपण अपनी राजधानी मे लाये और सतयुग के साथ रंगभूमि को बनवाकर लक्ष्मी और मही के साथ स्थापन किया। और पूजन किया शकाब्द १२४३। यह पर्वत आजकल तिरुमलै कहलाता है।

वेतसु—१. वे० इ० "यह शब्द ऋग्०[1] मे एकवचन में दो स्थानो पर आया है और बहुवचन[2] मे एक स्थान पर आया है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह इन्द्र के द्वारा हराया गया था। परंच कोई ऐसा कारण नहीं है कि यह राक्षस कहा जाय। जिमर[3] सोचता है कि वेतसु प्रायः एक जाति थी, जिसका कि सदस्य दशद्यु था। इन्होंने तुग्रस् को हराया था। यह इतना

(१) ६।२०।८ तथा २६।४।

(२) १०।४६।४।

(३) अल्टेनडिस्चेजलेवेन १२८, तुलना करो केगी डेर ऋग्० नं० ३३७। तुलना करो ओल्डनवर्ग जेट्स् च्रिफ्ट डेर ड्यूस्चेन मार्गेन लाण्डिस्चेन गेस लेस् चेफ्ट ५५४।३२८।

भ्रमात्मक है कि ठीक कहा नहीं जा सकता।"

२. जिमर इसको एक जाति और इसका मेम्बर दशद्यु को बतलाते हैं। (वे० इ०)

३. केगी, ओल्डनवर्ग का भी मत जिमर से मिलता है। (वे० इ०)

वस्तुतः ऋग्० १०।३९।४ मे यह शब्द देशअर्थ में बहुवचन में आया है। अर्थ यह है:—"हम, इन्द्र ने जैसे पिता पुत्र के लिये अभिमत प्रदेश का साधन करता है, उसी प्रकार वेतसु नामक जनपदों को चाहते हुए कुत्स के लिये तुम्र और स्मदिव को वश मे कर दिया, इत्यादि।"

वेतस्वान—१. वे० इ० "वेतस्वन्त, जो कि पानी के पौदों के चारों ओर एक जगह का नाम पंचविंश[1] ब्रा० मे आया है। वेबर ने एक यावन गान्दम का अंश माना है, परन्तु यह उचित नहीं।"

२. वेबर[2] ने इसको एक यावन गान्दम का हिस्सा माना है। (वे० इ०)

३. जिमर और हापकिंस इसको एक यावन गान्दम के अंश का नाम मानते हैं।

वस्तुतः यह बहुत बेंतवाले स्थान का नाम है और कोई तीर्थविशेष है। पंचविंश ब्रा० में पंचरात्र का माहात्म्य बतलाते हुए लिखा है कि गान्दम ने एक ही पंचरात्रयज्ञ को अकेले ही

(१) २१।१४।२०।

(२) इडिस्चेस्टडियन १।३२, तुलना करो हापकिंस ट्रैंजेक्शंस आफ दि केनेकुट एकेडेमी आफ आर्टस ऐण्ड साइंसेज १५।६६।

खेतोंवाली भूमि में करके सम्पूर्ण भूमि के स्वामित्व का लाभ किया था। सायण इसको बहुत से बेंत होने से वेतस्वत् नामक तीर्थ मानते हैं। वे० इ० में 'एक यावा गान्दमः' के स्थान पर 'एकयावन गान्दम' शब्द छपा है। वह प्रेस की अशुद्धि प्रतीत होती है। वेबर और हाप्‌किंस पंचविंश ब्रा० के अर्थ को बिल्कुल नहीं समझे।

वेशन्त—वे० इ० "वेशन्ता[1], वेशन्ती[2], वेशान्ता[3]—ये सब ऋग्वेद में तालाबों या छोटे तालाबों के नाम हैं। तुलना करो 'वैशन्त' से।"

वस्तुतः वेशन्त छोटे तालाब का नाम है। शतपथ ब्रा० ५।३।४।१४ में 'वैशन्ती' यह 'अप्' का विशेषण आया है। उसका अर्थ छोटे तालाब का जल है। 'वेशन्ते भवाः' इस विग्रह में

---

(१) अथर्व० ११।६।१० तथा २०।१२८।८,६, तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१२।१।

(२) अथर्व० १।३।७, यहाँ पर 'वेशन्त्याः' पाठ है और 'वेशन्त' शब्द से बना है। 'भवे छन्दसि' इस वार्तिक से यत् प्रत्यय होता है, ऐसा सायणाचार्य ने लिखा है। 'वेशन्ती' से 'वेशन्त्याः' बनाना और 'आप्' का विशेषण करना, जैसा कि वे० इ० कार कर रहे हैं, व्याकरण को एकदम तिलांजलि देना है।

(३) बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।११, यहाँ पर मूल मे 'नतत्र वेशान्ताः पुश्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्ति अथ वेशान्ता पुश्करिणीः स्रवन्तीः सृजते' यह स्वप्न के वर्णन में छोटे-छोटे तालाब और कमलवाले बड़े बड़े तालाब और नदियाँ उस समय नही होतीं। जीवात्मा अपने मन से छोटे-छोटे तालाब और बड़े-बड़े कमलवाले तालाबों और नदियो को पैदा कर लेता है। यहाँ पर स्पष्ट वेशान्तशब्द अकारान्त है, उसको आकारान्त कहना एकदम अशुद्ध है।

'वैशन्ती' बनता है। अथर्व० १।३।७ में 'वेशन्त्याः' 'आपः' का विशेषण दिया है। 'विशन्ति तिष्ठन्ति आपः अस्मिन्निति वेशन्तः पल्वलम्। तत्र भवः वेशन्त्या आपः ये' सायण ने लिखा है। बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।११ मे 'वेशान्त' शब्द भी इसी अर्थ में आया है।

वैकर्ण—१. वे० इ० "वैकर्ण, ऋग्०[1] मे दाशराजन् के विवरण में आता है, जहाँ पर कि २१ जातियो के राजाओं को तथा वैकर्णाज् की दो शाखाओ को सुदास् से हराये जाने का प्रसंग मिलता है। जिमर[2] सोचता है कि वे कुरु क्रिवि मिले हुए लोगो का नाम है। परन्तु यह असंभव है। विकर्ण महाभारत[3] में एक जाति के नाम से आता है। एक शब्दकोश के रचयिता[4] के अनुसार विकर्णाज् कश्मीर में माने जाते हैं, जो कि उस देश मे कुरूज् के अविशिष्ट लोग हैं। तुलना करो 'उत्तरकुरु' से।"

२. राथ और हापकिंस् इनको कश्मीर के रहनेवाले मानते हैं और इनमे दो राजाओ को कहते हैं और विकर्णाज् को कुरूज् के अवशिष्ट लोग कहते हैं। (वे० इ०)

३. जिमर कुरु और क्रिवि के मिले हुए लोगो का वैकर्ण

(१) ७।१८।११।

(२) अल्टिन डिछ्लेजलेवेन १०३।

(३) ६।२१०५।

(४) सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी। तुलना करो हापकिस जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १५।२६१ प्रारम्भ से, जिसमे वैकर्णौ १ में दो वैकर्ण राजाओं का अर्थ माना है।

नाम है, यह मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह ऋग्०[1] में एक देश का नाम आया है। यह देश परुष्णी (रावी) के दोनों तटों पर बसा था। इसके २१ वीरों को सुदास् ने संग्राम मे मारा था। इस युद्ध में इन्द्र की आज्ञा से मरुतों ने सुदास् की सहायता की थी। इस युद्ध और दाशराजयुद्ध से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। २१ वीर २१ योद्धा हैं, २१ जातियाँ नहीं। यहाँ पर 'जनान्' शब्द स्पष्ट आदमियों को कह रहा है, न कि जातियों को। यहाँ पर वैकर्णाज् की दो शाखाओं का वर्णन भी नहीं है और न दो वैकर्ण राजे ही हैं। यहाँ पर वैकर्णजनपद रावी के दोनो तटो पर था, ऐसा प्रतीत होता है। इसमे कुरु और क्रिवियों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कुरु क्रिवियों ने वैकर्णजाति बनाई, इस जिमर के सिद्धान्त को वे० इ० कार स्पष्ट असंभव कह रहे हैं। यद्यपि इसी को अन्यत्र मानते भी हैं। महाभारत में विकर्ण नाम का राजकुमार महाराज धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन के छोटे भाई का नाम लिखा है। इससे यहाँ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इनको कश्मीर में मानना और उत्तरकुरु से एक करना निराधार है। और कश्मीर में कुरुज् के अवशिष्ट कहना एकदम मनमानी उड़ाना है।

---

(१) ऋग्० ७।१८।२१ का मन्त्रार्थ यह है:—जिस सुदास् राजा ने परुष्णीनदी के दोनो तटो पर स्थित वैकर्णजनपद में रहनेवाले २१ वीरो को धन या यश की इच्छा से मारा। अध्वर्यु जिस प्रकार कुशो को काटता है, उसी प्रकार इस जवान राजा ने शत्रुओ को बहुत काटा। इस युद्ध मे शूर इन्द्र ने मरुतो को सुदास् की सहायता के लिए दिया था।

वैलस्थान—यह शब्द ऋग्० १।१३३।२ में श्मशान के अर्थ में आया है।

वैशन्त—१. वे० इ० "वैशन्त, ऋग्०[1] में यह नाम एक राजकुमार के लिए आया है। वशिष्ठ इत्यादि की मदद के कारण इन्द्र ने सुदास् को बरदान दिया और इसको नहीं दिया। लुडविक[2] समझता है कि यह नाम वेशन्त है और पृथु परथूज् का पुजारी है। ग्रिफ्थ[3] कहता है कि प्राय: एक नदी है। परंतु दोनों अर्थ ठीक नहीं।"

२. लुडविक इसको वेशन्त शब्द मानते हैं और पृथु परथूज का पुजारी मानते हैं। (वे० इ०)

३. गिफ्थ और गेल्डनर इसको एक नदी मानते हैं।

वस्तुत: यह शब्द ऋग्०[4] में आया है और यहाँ पर 'वेश-

(१) ७।३३।२।

(२) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१७३।

(३) हिम्स आफ दि ऋग्वेद २।२४ नं० तुलना करो गेल्डनर वेदिस्चेस्टडियन २।१३०।

(४) ऋ० ७।३३।२, वशिष्ठ अपने पुत्रों की इस मंत्र से स्तुति करते हैं। अर्थ यह है:—वैशन्त=चमसपात्र में रखे हुए सोम को पीते हुए इन्द्र को हमारे पुत्र सुदास् के यज्ञ मे अभिषुत (कूटकर निकाले गये) सोम के द्वारा पाशद्युम्न का तिरस्कारकर दूर से लाये। इन्द्र भी वयत के पुत्र पाशद्युम्न को छोड़कर सुदास् के यज्ञ मे अभिषुत सोम के कारण बशिष्ठ के पुत्रो को स्वीकार करते हुए गये। यहाँ वैशन्त को राजकुमार मानना अथवा पृथु परशूज् का पुजारी मानना या नदी मानना अक्षरार्थ न समझकर सस्कृतानभिज्ञो के सामने क्रीड़ा करना है।

न्त' शब्द से ही 'वैशन्त' बना है तथा 'वेशन्त' का अक्षरार्थ 'छोटा तालाब' है। लेकिन यहाँ पर सोम धारण का 'चमस' नामक पात्र अर्थ है। शतपथ में 'वैशन्ती' शब्द आया है, वहाँ पर 'छोटे तालाब का जल' अर्थ है। अथर्ववेद में 'वेशन्त्र' शब्द आया है और 'छोटे तालाब का जल' अर्थ है। ये सभी शब्द 'वेशन्त' से बने हैं और सबमें वेशन्त का अर्थ छोटा तालाब है।

व्र—१. वे० इ० "व्र, राथ[1] के अनुसार ऋग्०[2] तथा अथर्व०[3] में सेना के भाग के लिये आया है। जिमर[4] इसके स्त्रीलिंग 'व्रा' में कुछ गाँव का झुंड, जो कि विश् का एक भाग है, मानता है। और यह सुबन्धु; अर्थात् आपस में सम्बन्ध से बने थे। और दूसरी ओर पिशल सोचता है कि व्रा शब्द प्रत्येक स्थान पर स्त्रीलिंग मे चाहे वह पशुओं[6] के लिये हो अथवा स्त्रियो के लिये हो, उनके लिये प्रयोग में आता है जो

---

(१) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी, तुलना करो वेच्टेल नेच्रिच्टेन्डेर का निगरिच्चेन जेसेल्स च्रेफ्ट डेर विसेनेजच्चेफ्टेन जूगार्टिजन १८६४, ३६३।

(२) १।१२४।८ तथा १२६।५, ४।१।१६, ८।२।६, १०।१२३।२ इस बोटलिङ् के कर्ता ने १।१२१।२ को छोड़ दिया है, जहाँ पर कि बोटलिङ् डिक्शनरी इसको स्त्रीलिंग व्रा मानती है।

(३) २।१।१।२ यह एक बहुत सदेहात्मक अश है। इसके लिये विटने का ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्व० ३७।३८ देखो।

(४) अल्टेन डिस्चेजलेवेन १६२।

(५) वेदिस्चेस्टडियन २।१२१।३१३ से प्रारम्भ।

(६) ऋग्० १।१२१।२, ८।२।६ (मादा हाथी)।

कि (समन[1]) निमंत्रण अथवा दरबार के लिये जाते हों (विश्या[2] लोगों का) अथवा ऋचाओं मे अलंकृतरूप[3] से दरबारियों से तुलना की गई है। ये विचार उचित से प्रतीत होते हैं।"

२. राथ इसको सेना के विभाग के अर्थ में मानते हैं। (वे०इ०)

३. बेच्टेल राथ से सहमत हैं। (वे० इ०)

४. बोटलिङ्‌ ने इसको व्रा शब्द माना है। (वे० इ०)

५. जिमर इसके स्त्रीलिंग व्रा में कुछ गाँव का झुंड, जो कि विश् का एक भाग है, मानते हैं। और यह सुबन्धु; अर्थात् आपस मे सम्बन्ध से बने थे। (वे० इ०)

६. पिशल का मत है कि स्त्रीलिग व्रा शब्द का प्रयोग प्रत्येक स्थान पर चाहे वह हथिनी के लिये आया हो, या स्त्रियों के लिये हो, उससे निमंत्रित स्त्रियों और दरबारी स्त्रियों का बोध होता है।

वस्तुत: यह शब्द ऋग्० में समूह तथा रात्रि तथा उषा तथा स्वीकार करनेवाले तथा अपने को छिपाये हुए के अर्थ में आया है। गाँव का झुण्ड इसका अर्थ नहीं है और न विश्‌शब्द ही देशअर्थ में आता है। उसका भाग अर्थ तथा सेनाभाग अर्थ बतलाना साहस है। यह शब्द पुल्लिग तथा स्त्रीलिग दोनों है।

ऋग्० १।२४।८ यह मंत्र उषा के वर्णन मे आया है। इसका अर्थ यह है:—(यहाँ पर रात्रि, उषा और दिन एक ही अन्त-

---

(१) ऋग्० १।१२४।८।

(२) ऋग्० १।१२६।५।

(३) ऋग्० ४।१।१६ तथा १०।१२३।२, अथर्ववेद वही।

रिक्ष में पैदा होते हैं। इससे तीनों में आपस में भाई-बहन का सम्बन्ध है। उषा पहले पैदा होती है, उसके बाद दिन तथा उसके बाद रात्रि। इस प्रकार उषा बड़ी बहन है, दिन उससे छोटा भाई है तथा रात्रि सबसे छोटी बहन है। तेजस्वी होने और पहले होने के कारण दिन रात्रि का बड़ा भाई माना गया है एवं पहले होने तथा तेजस्विनी होने के कारण उषा उसकी बड़ी बहन मानी गई है) "छोटी बहन रात्रि अपनी बड़ी बहन उषा को अपररात्र (अन्तिम रात्रि) रूप उत्पत्तिस्थान को देती है, और देकर उसको बतलाती हुई-सी स्वयं हट जाती है। इस प्रकार उत्पन्न हुई उषा प्रातःकाल की अधिष्ठात्रीदेवता सूर्य की किरणों से मिलकर अन्धकार को दूर करती हुई, तेज से जगत् को प्रकाशित करती है, जिस प्रकार बिजली के व्रा=समूह या सूर्य की किरणों के समूह इकट्ठे होकर जगत् को प्रकाशित करते हैं। उसी प्रकार उषा जगत् को प्रकाशित करती है।" इसमें 'व्र' शब्द 'समूह' अर्थ में आया है, सेना के भाग अथवा गाँव के झुण्ड के लिये नहीं आया है, समनगा शब्द का अर्थ बिजली अथवा सूर्य की किरणें हैं; निमंत्रण अर्थ नहीं है।

ऋग्० १।१२६।५ यह मंत्र दानस्तुति मे आया है और कक्षीवान् ऋषि ने अपने बान्धवों को धन निवेदन करते हुए कहा है। अर्थ यह है:—"हे सुबन्धवः=सुन्दर भाई लोगो! पहले दानों का अनुसरण करके हमने आगे कहे हुए दान को स्वीकार किया है। वह दान का धन क्या है? चार-चार घोड़ों से युक्त तीन और आठ रथ और धनियों से रखने योग्य बहुमूल्य असंख्यात गायें। हे सुबन्धवः=सुन्दर विद्या योनि संबन्ध या

परस्पर अनुरागवाले ! आप लोग 'विश्या व्रा इव' (विश् प्रजा, उनकी संतान विश्य, उनके व्रा=समूह के समान) परस्पर अनुरागवाले होकर और अन्नवाले अंगिरा के संतान सुबन्धु=परस्पर अनुरागवाले हों, छकड़ेवाले (सोमयागवाले, सोमयाग में हविर्धान शकट होता है—इससे सोमयागवाले) हो कीर्ति की इच्छा करें, इसीलिये हमने इस दान को लिया है।" इस मंत्र मे 'व्र' शब्द का अर्थ 'समूह' है, 'विश्व' शब्द का अर्थ 'प्रजा की संतान' है, सेना का भाग या गाँव का झुण्ड नहीं है और विश्या का अर्थ दरबार भी नहीं है।

ऋग्० ४।१।१६ यह मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे अग्ने ! स्तुति करते हुए अंगिरा की संतान ने वाणी-सम्बन्धी स्तुति-साधक शब्दमात्र को ही पहले जाना। पीछे वाणी के सम्बन्धी स्तुति-साधन २१ उत्तम छन्दों को जाना। इसके बाद सब जानते हुए व्रा=उषा की स्तुति की। उसके बाद सूर्य सम्बन्धी तेज से युक्त अरुण वर्णा=लाल रंगवाली उषा प्रकट हुई।" इसमे 'व्रा' शब्द का अर्थ 'उषा' है, सेना का भाग या गाँव का समूह अर्थ नहीं है।

ऋ० ८।२।६ इसके मेधातिथि ऋषि है। इन्द्र देवता हैं। अर्थ यह है:—जो हमारे से भिन्न ऋत्विक् या यजमान इस इन्द्र को दूध मिले सोमों से ढूंढ़ते हैं; वे व्रा=केवल मिलने की इच्छा करनेवाले व्याध जिस प्रकार मृग को ढूँढ़ते हैं, उसी प्रकार इन्द्र को ढूँढ़ते हैं।" व्याध लोग जिस प्रकार जाल इत्यादि के उपायों से मृग को पकड़ना चाहते हैं, उसी प्रकार वे लोग केवल सोम दिखलाकर अपने यज्ञ में लाना चाहते हैं। जो स्तुतियों से

इन्द्र की भलीभाँति स्तुति नहीं कर सकते, वे इन्द्र को नहीं पाते। इससे इसमें 'व्रा' शब्द का अर्थ 'मिलने की इच्छा करने-वाला' है, सेना का भाग या ग्राम का समूह नहीं है। इसमे व्रा शब्द का अर्थ हथिनी भी नहीं है। ऋ० १।१२१।२ यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—"यह इन्द्र द्युलोक को थामता है तथा वज्र, जल या किरणों का नेता है। यह इन्द्र सूर्यात्मा से बहुत चमकवाला हो वृष्टि के जल को अन्न के लिये बरसाता है। और महान् सूर्यरूपी इन्द्र अपने सकाश से उत्पन्न व्रा=रात्रि या उषा के पीछे प्रकाशित होता है।" यहाँ पर स्त्रीलिंग 'व्रा' का अर्थ 'रात्रि' अथवा 'उषा' होता है, सेना का भाग अथवा गाँव का समूह नहीं है। पशुओं का समूह और स्त्रियों का समूह अर्थ भी नहीं है।

अथर्व० २।१।१ का अर्थ यह है:—"सूर्य प्राणियों के हृदय मे जो ब्रह्म है, उसमें आरोपित जो जगत् है, उससे एकाकार होता है। उसने संसार को अपने से अभिन्न देखा। सूर्य ने इस अनुद्भूत नामरूपात्मक (जिसका नाम और रूप कुछ प्रकट न हो) जगत् को उद्भूत नामरूपत्व (जिसका नाम और रूप हो) से प्रकट किया। उत्पन्न हुई व्रा=प्रजाएँ अपने उत्पादक सूर्य को जानती हैं और उसके सामने खड़े होकर स्तुति करती हैं। इसमें 'व्रा' शब्द स्त्रीलिंग है और उसका अर्थ 'प्रजा' है। वे० इ० कार 'यह एक बहुत ही संदेहात्मक अंश है'—यह कह रहे हैं।

शकंभर—१. वे० इ० "शकंभर=गोबर ले जानेवाला,

अथर्ववेद[1] में आता है, जहाँ कि इसका तात्पर्य शंकास्पद है। लुडविक[2] औरग्रिल्ल[3] इसको जाति का नाम समझते हैं। ब्लूमफील्ड[4] इसको दस्त की बड़ी बीमारी समझते हैं। विटने[5] इससे महावृषस् से तात्पर्य है, जिसने लकड़ी के अभाव में अपने देश में गोबर इकट्ठा किया था, यह कहते हैं।"

२. लुडविक, हुन्डेर्ट और ग्रिल्ल इसको जाति का नाम समझते हैं। (वे० इ०)

३. ब्लूमफील्ड इसका अर्थ बढ़ी हुई दस्त की बीमारी समझते हैं। (वे० इ०)

४. विटने और वेबर के मत मे इसका अर्थ महावृषस् है, जिसने लकड़ी के अभाव में अपने देश में गोबर इकट्ठा किया था। (वे० इ०)

५. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १७४ "शाकंभरी, (१) साँभर जो कि पश्चिमी राजपूताने में है। (महाभारत आदि० ७८, इंडियन आन्टीक्वेरी ८।१५९ तथा १०।१६१, जे० आर० ए० एस् वा० १७।२९) यहाँ पर एक कुआँ है, जिसे देवदानी कहते हैं। इसी कुएँ में राजा ययाति की रानी देवयानी शर्मिष्ठा के द्वारा ढकेली गई थी। सपादलक्षदेश की शाकंभरी राजधानी

---

(१) ५।२२।४।

(२) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।५१०।

(३) हुन्डेर्ट लीडर २।१५४।

(४) हिम्स आफ दि अथर्ववेद ४४५, ४४६।

(५) ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्व० २५६, तुलना करो वेबर इंडिस्चेस्टडियन १८।२५३।

थी । एपीग्राफिया इंडिका २।४२२ 'सपादलक्ष' देखिये । (२) शाकंभरी का प्रसिद्ध मंदिर कुमायूँ में हरद्वार से केदारनाथ जानेवाली सड़क पर स्थित है । शाकंभरीदेवी का मंदिर शिवालिकपर्वत के उत्तर पश्चिमीय विभाग के सरकोटपर्वत पर बना है (कलकत्ता रेव्यू वा० ५८, १८७४ पृ० २०१ एफ०, देवीभागवत ७ अ० २४) ।"

वस्तुतः यह एक देश है । कीर्तिकौमुदी नामक काव्य के कर्ता कवि सोमेश्वर और धारेन्द्र महाराज भोज ने राजपूताने में साँभर (चौहानों की राजधानी) के प्रान्त को इस नाम से व्यवहार किया है और साँभरनगर को शाकंभरी नगरी माना है । अथर्व० मे ज्वर की ओषधि में दवाग्नि को जलाकर ताम्र के श्रुवा से काले धानों के माड़ को इस सूक्त से अभिमन्त्रित कर ज्वरार्त के सिर पर डालने को लिखा है । इस सूक्त मे चौथे मन्त्र का अर्थ यह है:—'हम तक्मा (ज्वर) को नमस्कर करके उससे प्रार्थना करते हैं कि शकंभरदेश के मुष्टिका मारनेवाला तक्मा महावृषदेश को चला जाय । योरोपियन विद्वानों ने इसके मतलब को न समझकर मनमाने अर्थ लगाये हैं । वे० इ० कार योरोपियन विद्वानों के नाना प्रकार के अर्थों को देखकर इसके मतलब को शंकास्पद कहते हैं । यहाँ पर गोबर और दस्त की बीमारी से कोई सम्बन्ध नहीं । और लकड़ी के अभाव में गोबर इकट्ठे करने की कथा भी उपहासास्पद है । सोमेश्वर कवि ने कीर्तिकौमुदी नामक काव्य २।२९ में गुर्जरेश जयसिंह द्वारा शाकंभरीश अर्णोराज का पराजय दिखलाया है । बाद में अर्णोराजा के साथ जयसिंह ने अपनी कन्या का विवाह भी कर दिया,

जिसका पुत्र सोमेश्वर अजमेर के स्वामी प्रसिद्ध पृथ्वीराज का पिता था। एपीग्राफिया इण्डिका १२।२२० में एक दानपत्र छपा है। उसमें 'शाकंभरी भूः चाहमान कुलकेतो राज्यं' यह लिखा है, इसका अर्थ 'शाकंभरी की पृथ्वी चौहान राजा की राज्य' है। २।१२४ में शाकंभरीनगरी का नाम आया है तथा ९।६८ में वाक्पति चाहमान महाराज की राजधानी लिखी है। तथा २१।२ एवं २१।२८४ में इस राजधानी को मोकलेन्द्र ने विजय किया। इण्डियन आन्टीक्वेरी ६।१९४ इसका स्वामी अणहिल्लपाटकाधीशकुमारपाल से जीता गया। १८।८२ में कुमारपाल द्वारा इसके स्वामी का विजय दिखलाया गया है। १८।३४३ में इसके स्वामी का पराजय कुमारपाल द्वारा दिखलाया गया है। ११।७१ मे इसके स्वामी का पराजय कुमारपाल से हुआ। ४०।१४६ यह नगरी चाहमान वाक्पति की राजधानी है। ४२।६४ मे इसकी एक वेश्या को दान का हर्षनाथ के लिये वर्णन है। १९।२१८ यह चाहमान तिलक बीसलदेव की राजधानी है। यह लेख दिल्ली मे फीरोजशाह की एक लाट पर लिखा है। उसमें इसका विजय बिन्ध्य से हिमाद्रि तक लिखा है। यह कवि का चाटुमात्र है। कान्यकुब्जाधिप विजयचन्द्र के रहते हुए असंभव होने से कल्पनामात्र है। अथवा राजपूताने के सामने का भाग जीत लिया हो, यह संभव भी है। पृथ्वीराज-विजय काव्य ५।३ से ५ तक पृष्ठ १२८ यह शाकंभरीप्रदेश है। यहाँ पर नमक की खान है। और शाकंभरीदेवी हैं। शाकंभरीदेवी से युक्त पृथ्वी का शासन करते हुए वासुदेवांश शाकंभरीश्वर कहे जाते हैं। पृ० ११७ में शाकंभरीदेवी का

वृत्तान्त-वर्णन है। शकंभर विद्याधर पर प्रसन्न हो गौरी ने अपना नाम शाकंभरी रक्खा। यह मरुभूमि है और वासुदेव चाहमान की राजधानी के समीप में है। पद्म० सृ० २९।१४७ शाकंभरी में रसप्रिय नाम के ब्रह्मा हैं। स्कन्द० माहे० कौ० ३९।१३९ मे इस देश का नाम 'सायंभर' लिखा है और 'सवा लक्ष गाँव' होने के कारण 'सपादलक्ष' भी माना है। सायंभर से ही साँभर नाम बना, ऐसा प्रतीत होता है।

शफाल—१. "वे० इ० शफाल ऋतुपर्ण की राजधानी का नाम है, यह बौधायन[1] श्रौ० सू० में लिखा है।"

२. कलन्द भी बौधायन श्रौ० सू० में शफाल को ऋतुपर्ण की राजधानी का नाम मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः बौधायन श्रौ० सू० मे नहीं मिलता।

शबर—१. वे० इ० "यह एक जंगली जाति का नाम है, जो ऐतरेय[2] ब्रा० में दस्युओं मे गिनी जाती है और अंध्रस्, पुलिन्दस्, मूतिबस् और पुण्ड्रस् के साथ आती है।"

२. मुइर का भी यही मत है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक विश्वामित्र की संतान में दस्युजाति है। और विश्वामित्र द्वारा पतित किये गये ५० संतान मे एक है। यह ऐतरेय० ३३।६ मे लिखा है। यह देश[3] भी है और

(१) २०।१२, तुलना करो कलन्द ऊबर डे र ऋचुवल सूत्र डेस् बौधायन २१।३६।

(२) ७।१८।२, शाखायन श्रौ० सू० १५।२६।६, तुलना करो मुइर संस्कृत टेक्स्ट १२-४८३।

(३) महाभा० सभा० अनु० (म०) ६६।५६ ये क्षत्रिय ब्राह्मण

दक्षिण में है।

शरण—यह शब्द ऋग्० ६।४९।७ में घर के अर्थ मे आया है।

शर्मन्—यह शब्द ऋग्० १०।६६।५ में घर के अर्थ मे आया है और इसका 'त्रिवरूथ' विशेषण इसको 'तीन चौकवाला' कह रहा है। ऋ० ८।४०।१२ मे यह शब्द आया है और इसका 'त्रिपर्वणा' विशेषण इसको तिमंजिला या तीन चौकवाला कह रहा है।

शर्यणा—यह एक देश है, यह ऋग्० १।८४।१४ में 'शर्यणावत्' की व्याख्या करते हुए सायण ने लिखा है। यह कुरुक्षेत्र मे है अथवा उसके पश्चार्ध के समीप में है।

शर्यणावान्—वे० इ० "शर्यणावन्त ऋग्०[1] मे कई जगह

को न देखने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गये। काशिका आयुध० ५।३।११४ यह संघ है और आयुधजीवी है, और पजाब से बाहर तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय से भिन्न है। श्रीमद्भागवत १०।२।३ यह देश है। ब्रह्माण्ड० म० उपो० १४।८० यह देश है और श्राद्ध के अयोग्य है। ब्रह्म० २७।५६ यह देश भारत में है और दाक्षिणात्य है। मार्क० ५४।४७ यह देश दक्षिण मे है और पूर्वमुख कूर्म के पूर्व दक्षिणपाद में है। वामन० १३।४८ यह देश कुमाराख्यद्वीप मे है और दक्षिण मे है। महाभा० भीष्म० (चि० नि०) ५०।५३ यह देश है और यहाँ के वीर महाभारत मे युधिष्ठिर की ओर से लडे थे।

(१) १।८४।१४, ८।६।३९ तथा ७।२६, ६४।११, ६।६५।२२, ६।११३।१, १०।३५।२ देखो जैमिनीय ब्रा० ३।६४ (जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १८, १७), शाट्यायनक ऋग्० १।

आता है और सायण ने इसको एक स्थान माना है। उनके अनुसार शर्यण कुरुक्षेत्र के पास कुरुक्षेत्र के पिछले हिस्से में शर्यणावन्त एक झील है। सायण सर्वत्र इसको स्थान मानते हैं। इसलिये यह स्थान का नाम था। यह भी विचारणीय बात है कि कुरुक्षेत्र मे अन्यतःसक्षा झील थी। परन्तु राथ[1] का विचार है कि दो स्थानों[2] पर इस शब्द का अर्थ केवल एक झील है। शब्दार्थरूप से इसका अर्थ पानी है, जो कि शर्यण के झुंड से ढका हो। और दूसरे स्थानों पर इसका अर्थ सोम का घड़ा है। जिमर[3] का भी यही विचार है। दूसरी ओर पिशल[4] सायण का विचार मानते हैं। हिल्लेब्रांट[5] इसको एक स्थान का नाम मानते हैं और पाँच[6] जातियो के बीच मे रखते हैं। इस तरह इसका कुरुक्षेत्र में होना संभव नहीं, क्योंकि पुरुवंशियो का बाद के कुरूज्[7] से सम्बन्ध है। और शायद कहते हैं कि शर्यणावन्त कश्मीर के बुलर समुद्र

८४।१३ के सायणभाष्य में।

(१) सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी।

(२) १।८४।१४, १०।३५।२।

(३) अल्टेन डिस्चेजलेवेन १६, २०।

(४) वेदिस्चेस्टडियन २।२१७, मैक्समूलर का भी सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३६८, ३६६ में भी यही विचार है।

(५) वेदिस्चेमाइथालोजी १।१२६ से प्रारम्भ।

(६) ऋग्० ६।६५।२२ से यह निश्चित नहीं है।

(७) हिल्लेब्रान्ट वही पुस्तक १।१४२ एन्० ४, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२०५।

का ही पुराना नाम है, जो कि वेदों के समय की ही यादगार है। इससे भी कम लुडविक[1] के विचार कि 'शर्यणावन्त बाद की पूर्वी सरस्वती है' के सत्य होने की संभावना है। बर्गेन[2] का विचार है कि सोम को बनानेवाला एक देवता है।"

२. राथ का मत है कि दो स्थानों पर इस शब्द का अर्थ केवल एक झील है। शब्दार्थरूप से इसका अर्थ पानी है, जो कि शर्यण के झुण्ड से ढका हो। दूसरे स्थानों पर इसका अर्थ सोम का घड़ा है। (वे० इ०)

३. जिमर का मत भी यही है। (वे० इ०)

४. पिशल और मैक्समूलर इसको एक झील मानते हैं। (वे० इ०)

५. हिल्लेब्रॉट इसको एक स्थान का नाम मानते हैं और इसको कश्मीर के वूलरसमुद्र का ही पुराना नाम मानते हैं। (वे० इ०)

६. लुडविक के मत मे शर्यणावन्त बाद की पूर्वी सरस्वती है।

७. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८२ "शर्यणावन्त रामह्रद ही है, ऋग्० ७।२।५, डा० विलसन की इण्डियन कास्ट्स वाल्यूम १ पृ० ८६। यह शर्य्यणावन्त भी लिखा जाता है।"

वस्तुतः यह एक पर्वत है, जो शर्यण नामक देश के समीप मे है और कुरुक्षेत्र के पश्चिमार्ध में है। इस पर्वत पर एक सर है, वह भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। शौनकीय बृहद्देवता ३।२३ में इसको पर्वत माना है और इसपर एक सर माना है। उसी

---

(१) वही पुस्तक ३।२०१।

(२) रेलीजन वेदिक १।२०६।

में दध्यङ्ऋषि का घोड़ेवाला शिर कटकर गिरा था। ऋग्० में कई स्थानों पर 'शर्यणावति' शब्द आया है और एक जगह 'पर्वतान् शर्यणावतः' भी आया है और इस पर्वत पर सोम उत्पन्न होता था, यह भी वर्णन है। इसका वर्णन मैत्रायणी संहिता, अथर्व०, तैत्तिरीय ब्राह्मण, कण्वशाखीय शतपथ ब्राह्मण और जैमिनीयब्राह्मण मे भी है। सायण इसी नाम का तालाब मानते हैं। वे० इ० कार ने लिखा है कि सायण इसको हर जगह स्थान मानते हैं, यह ठीक नहीं। राथ और वेबर का मत कपोलकल्पना-मात्र है। लुडविक का मत भी निर्मूल है। हिल्लेब्राँट का मत बिल्कुल साररहित है, क्योंकि इससे और पाँच जातियो से कोई संबन्ध नहीं है, और न कश्मीर मे इसके होने का प्रमाण ही है। वर्गेने और जिमर का कथन भी निस्सार है। ऋग्० १। ८४।१३ के भाष्य में सायणाचार्य ने शाट्यायन में वर्णित एक इतिहास इस प्रकार दिखलाया है:—"अथर्वा के पुत्र दध्यङ् के देखनेमात्र से ही असुर पराजित हो गये। दध्यङ् के मरने पर पृथ्वी असुरो से पूर्ण हो गई। इन्द्र ने असुरो से अपने को अशक्त समझकर दध्यङ् का अन्वेषण किया। तब लोगों से पर-लोक में गये हुए ऋषि को सुनकर इन्द्र ने कहा कि क्या ऋषि का कोई अंग है? तब लोगो ने कहा कि दध्यङ् ने अश्विनी-कुमारो को जिस मुख से मधुविद्या पढ़ाई थी, वह घोड़ेवाला शिर है। लेकिन कहाँ है, यह हम नहीं जानते। तब इन्द्र ने उसको ढूँढ़ा और शर्यणावत् मे इसको पाया तथा उससे वज्र बनाकर असुरों को मारा।" मधुविद्या अश्विनीकुमारों को दध्यङ् ने घोड़े के शिर से पढ़ाई थी, यह इतिहास शतपथ में लिखा

है। शाट्यायन मे शर्यणावत् नाम का सर कुरुक्षेत्र के जघनार्ध मे है, यह स्पष्ट लिखा है। १।८४।१३ का अर्थ यह है:—"दूसरो से प्रतिकूल शब्द से रहित इंद्र ने अथर्वाऋषि के पुत्र दध्यङ्ऋषि की हड्डियो से ८१० असुरो को मारा।" १४ का अर्थ यह है:—"इन्द्र ने पर्वतों मे जाकर गिरे हुए घोड़े के शिर को चाहा और शर्यणावत् मे पाया।" ८।६।३९ यह इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे इन्द्र! और भी शर्यणावत् पर होनेवाले सम्पूर्ण ऋत्विजों से नेतव्ययज्ञ मे आप तृप्त हों, इत्यादि।" जब 'सर' अर्थ है तो 'सर के समीप' अर्थ होगा। ८।७।२९ का अर्थ 'आर्जीक' मे है और ८।६४।११ का अर्थ 'आर्जीकीय' मे है। ९।११३।१ पवमान सोमस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"अपने मे बल को धारण किये हुए शत्रुओं के प्रति बड़े पराक्रम को करनेवाले इन्द्र शर्यणावत् में स्थित सोम का पान करें, इत्यादि।" १०।३५।२ का अर्थ यह है:—"हम लोग दिन और पृथ्वी का रक्षण चाहते हैं और लोकनिर्माण करनेवाले सिंधु=समुद्रों तथा शर्यणावत्-सम्बन्धी पर्वतो तथा सूर्य और उषा से पापरहित तत्व चाहते हैं। और आज हमसे अभिषुत सोम हमारा कल्याण करे।" अथर्व० २०।४२ आ० ६५८।१ का अर्थ ऋग्० १।८४।१४ के समान है। तैत्तिरीय ब्रा० १।५।२ मे इसको पर्वत माना है। ऋग्० ९।६५।२२ यह सोम-स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"जो सोम बहुत दूर देशों में और अत्यन्त समीप देशो मे इन्द्र के लिए कूटकर निकाले जाते है और इस शर्यणावत् मे इन्द्र के लिये सुन्दर रसवाले सोम अभिषुत होते हैं, वे सब हमको अभिमत फल दें।" ९।

६५।२३ का अर्थ 'आर्जीक' में लिखा है। मैत्रायणी संहिता २। १३।६।२५ पृ० १९९ मे १।८४।१४ के समान वर्णन है। काण्व शतपथ० उत्तरार्चिक० षष्ठाध्याय पृ० ४८२ यहाँ पर इन्द्र ने दध्यङ् का शिर जाना। साम० उत्तरा० अष्टमाध्याय षष्ठ खण्ड तृचात्मक तृतीय सूक्त प्रथमा का अर्थ ऋग्० ९।६५।१२ के समान है। काशिका 'मध्वादिभ्यश्च' ४।२।८६ में शर्यणावान् को शर्यणा से बनाया है और चातुरर्थिक 'मतुप्' प्रत्यय किया है। गणरत्नमहोदधि ४।३०० मूल मे 'शर्यणा' के स्थान में 'सार्यण' पाठ है। टीका मे सार्याणा पर्वत है और सार्याणावान् रूप बनता है। शर्यणावत्सर पर्वत पर है, इससे इसको रामह्रद कहना भ्रम है। अन्यत.प्लक्षा, पुष्करिणी भी शर्यणावत् से भिन्न है, क्योंकि वह भूमि पर है।

शाल्व—१. वे० इ० "यह गोपथ[1] ब्रा० मे मत्स्याज् के साथ आया है और एक जाति है।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १७५ "शाल्व, यह मार्तिकावत् भी कहा जाता है। यह कुरुक्षेत्र के पास मे था। (महाभारत विरा० १) यह सत्यवान् के पिता का राज्य था। सत्यवान् सावित्री का पति था। (महाभा० वन० २८२) इसका राजा शाल्व था, जिसने द्वारवती पर आक्रमण किया था। इसके अन्तर्गत जोधपुर और अलवर राज्यों के भाग हैं। 'मार्तिकावत्' और 'शाल्वपुर' देखो।"

जागराफिकल डिक्सनरी 'शाल्वपुर' १७५ "शाल्वपुर अलवर (कनिंगहम की आरकीयो लाजिकल सर्वेरिपोर्ट ख० २०

---

(१) १।२।६, तुलना करो 'शल्व'।

पू० १२०, मत्स्य० ११३, हरिवंश० विष्णु० ५४) यह सौभ-नगर भी कहलाता था। यह राजा शाल्व के देश मार्त्तिकावत् की राजधानी थी। शाल्व को कृष्ण ने मारा था। महाभा० वन० १४ 'मृत्तिकवती' देखो। शाल्वों की शाखा को पाणिनि ने भूलिंग तथा टालेमी ने बोलिङ्गाई कहा है। ये लोग अर्वली-पर्वत की पश्चिमी ढाल पर रहते थे (मेकन्डले की टालेमी पृ० १६३)।"

वस्तुत: यह एक देश है और गावीनदी के उत्तर पश्चिम में है। वैजयन्तीकोष भूमिकाण्ड देशाध्याय मे इसको मध्यदेश मे माना है। इसका दूसरा नाम कारकुत्सीय लिखा है और इसके अवयव महाकाल और हुलिगकाशिका से भिन्न हैं। गोपथ ब्रा० मे मत्स्यदेश के साथ इसका द्वन्द्वसमास है, इससे मत्स्य के समीप प्रतीत होता है। गोपथ २।१० मे शाल्व और मत्स्य दोनो देशवाची हैं। वे० इ० कार का जाति का नाम कहना ठीक नहीं है। महाभा० सभा० (चि०) १४।२६ में यहाँ के राजे-जरासन्ध के भय से उत्तर और दक्षिण दिशा को चले गये। (सु०) १३।२५ से २७ तक मे 'उत्तर दिशा को छोड़कर दक्षिण चले गये' यह पाठ है। बुद्धचरित्र ९।६५ मे इसका देशअर्थ में प्रयोग है। महाभा० (आर० चि०) २९४।७(म०) २४९।७ में देशअर्थ में प्रयोग है। (चि०) २८३।३४, २९९।२ यह देश मेधारण्य के समीप मे था; क्योंकि सायंकाल वरदान का वर्णन और प्रात:काल प्रजा के आने का वर्णन है। यह तभी संभव है जब कि मेधारण्य शाल्वदेश के समीप हो या उसी में हो। वायु० पू० ४५।१०९ यह देश भारत मे है और मध्यदेश में है।

ब्रह्मा० पू० · आ० १६।४०, मत्स्य० ११४।३४ यह देश भारत में है और मध्यदेश मे है। वाल्मी० कि० (इ०) ४३।१३ शाल्वादि देश पश्चिम में है। स्कन्द० प्रभा० प्रभा० मा० १६६।२५ यहाँ 'सत्यवान् का आश्रम था। यह देश कई भागो में बँटा था। साल्वावयव प्रत्यग्रथ० ४।१।७३ काशिका' उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिग और शरदण्ड ये शाल्वावयव कहे जाते हैं। 'शाल्व' और 'साल्व' दोनों पाठ मिलते हैं। शरदण्डा शब्द नदी अर्थ मे वाल्मी० अयो० (नि० गु०) ६८।१५ (इ०) ७०।१४ (ला०) ७४।१२ मे आया है और रावी का नाम है। शरदण्डदेश रावी के पश्चिम तट पर था, इससे इसका शरदण्डा नाम पड़ा। पराशरतन्त्र मे शरदण्डदेश का वर्णन है (बृहत्संहिता ३२।२६ की टीका मे)। उसके दक्षिण-पश्चिम भूलिगदेश था, उसकी राजधानी भूलिंगापुरी थी। काशिका में 'भुलिङ्गा' ऐसा पाठ है। शब्देन्दुशेखर (काशी मु०) में 'भूलिंगाः' ऐसा पाठ है। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी-तत्वबोधिनी (नि०) मे 'भ्रूलिगाः' ऐसा पाठ है। वाल्मी० अयो० (इ०) ७५ में पुरी का नाम 'भूलिगा' लिखा है, जो कि ७०।१४ में सरदण्डानदी और अभिकाल के बीच में है। (नि० गु०) ६८।१६ मे 'कुलिङ्गा' ऐसा पाठ है, (ला०) ७४।१३ मे 'त्रिलिगा' पाठ है। हमारी समझ मे सब पाठों में 'भूलिंगाः' पाठ शुद्ध है। शरावती रावीनदी कही जाती है। इसका निर्णय अभी हम इसी मे करेंगे। अमरकोष भूमिवर्ग श्लोक ७ में तथा काशिका मे शरावतीनदी ही प्राच्य और उदीच्य के व्यवहार का कारण मानी गई है। शरावती के पूर्व-दक्षिण का देश प्राच्य

कहा जाता है। और शरावती के पश्चिम और उत्तर का देश उदीच्य कहा जाता है। पाणिनीय व्याकरण में प्राच्य और उदीच्य शब्दो से ही व्यवहार है। दाक्षिणात्य और पाश्चात्य शब्दो से व्यवहार नहीं है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के 'स्रीपु-सौवीर साल्व प्राक्षु' ४।२।७६ में साल्व शब्द का नाम आया है और प्राक्षु भी है। यदि शाल्व रावी से पूर्व दक्षिण मे होता तो प्राच् नाम से उसका भी ग्रहण हो जाता, अलग ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि वह भी प्राच् शब्द से ग्रहण किया जा सकता था। शाल्वशब्द का ग्रहण है, इससे वह निश्चय ही रावी से उत्तरी-पश्चिमी देशो मे है। पूरे देश का नाम शाल्व था, उसकी राजधानी शाल्वपुर या मृत्तिकावती थी। उसके भाग उदुम्बर आदि शाल्वावयव नाम से प्रसिद्ध थे और उनकी राजधानियाँ भिन्न-भिन्न थीं। यह देश जोधपुर-अलवर या अरवलीपर्वत की ढाल पर नहीं हो सकता। जो लोग सौभ को शाल्वनगर मानते हैं, उन्होने महाभारत या कोई पुराण नहीं पढ़ा। पुराणो मे सौभ नाम के एक विमान का वर्णन है, जिस-पर चढ़कर शाल्व लड़ता था। इसे उसने महादेव की तपस्या से पाया था।

अब हम 'शरावती' का विवेचन करते हैं। जाग० डि० पृ० १८१-(नं० १) शरावती—विलफोर्ड के अनुसार बाणगंगा-नदी शरावती है। यह रुहेलखण्ड के बदायूँ जिले से जाती है (एशियाटिक रिसर्चेज वाल्यूम १४ पृ० ४०९; पद्म० स्वर्ग० (आदि०) अ० ३)। (नं० २) अवध मे फैजाबाद (आर० एल० मित्रा का ललितविस्तर पृ० ९) परन्तु शरावता श्रावस्ती

(आधुनिक साहितमाहित का रूपान्तर है) यह राप्तीनदी पर है। (रामा० उत्तर० अ० १२१, रघुवंश सर्ग १५ श्लो० ९७)। (नं० ३) राप्तीनदी जिसपर श्रावस्तीनगरी बसी है (रघुवंश सर्ग १५)। एरियन की यह सोलोमटीजनदी है (मैक्रिन्डले की इण्डिका आफ एरियन पृ० १८६)। (न० ४) दिव्यावदान के अनुसार शरावती नगरी और नदी दोनों ही हैं, और पुण्ड्रवर्धन के दक्षिण पूर्व में हैं (कावेल का एडीशन अध्याय १)। शरावतीनदी प्राच्य और उदीच्य के बीच की सीमानदी थी। प्राच्य उसके दक्षिण-पूर्व था और उदीच्य उत्तर-पश्चिम की ओर था।"

वस्तुतः शरावतीनदी जो उदीच्य और प्राच्य व्यवहार का हेतु अमरकोष तथा काशिका में मानी गई है, वह पंजाब की रावी ही है। क्योंकि व्याकरणमहाभाष्य के 'अव्ययात्यप्' सूत्र से शाकल को उदीच्यदेश और बाहीकदेश दोनों में माना है और 'एङ् प्राचांदेशे' सूत्र के महाभाष्य में पंजाब के नगरों में प्राच्य व्यवहार दिखलाई पड़ता है। इससे जिस शरावती के द्वारा प्राच्य और उदीच्य व्यवहार होते हैं, वह पंजाब की रावी ही हो सकती है। रावी के सिवाय पंजाब को कोई ऐसी नदी नहीं है, जिससे यह व्यवहार हो सके। बदायूँ जिले में कोई भी नदी शरावती के नाम से प्रसिद्ध नहीं थी, और न हैं। पद्म पुराण में उसके बदायूँ के जिले में होने का कोई भी प्रमाण नहीं है। अवध के फैजाबाद का शरावती नाम था, इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है। रामायण में श्रावस्तीनगरी लिखी है; परन्तु उसका शरावती नाम था, यह नहीं लिखा है। और

वह किसी नदी के तट पर थी, यह भी नहीं लिखा है। रघुवंश में श्रावस्ती के स्थान पर शरावती नाम लिखा है। परन्तु वह किसी नदी के तट पर थी, यह नहीं लिखा है। दिव्यावदान के अनुसार शरावतीनदी पुण्ड्रवर्धन के दक्षिण पूर्व में है। उससे भी प्राच्य और उदीच्य का व्यवहार नहीं हो सकता। वह राप्ती-नदी भी नहीं हो सकती, क्योंकि जातक में उसको अचिरवती लिखा है।

शिग्रु—१. वे० इ० "शिग्रु एक जाति का नाम है, जिसका उल्लेख ऋग्०[1] मे उस स्थान पर आया है जहाँ पर कि वे तृत्सूज् और सुदास् से हराये गये अजाज् और यक्षूज् के साथ वर्णन किये गये हैं। यह कहना असंभव-सा है कि वे लोग भेद के नेतृत्व में थे अथवा नहीं थे, जैसा कि लुडविक[2] का विचार है। अगर शिग्रु बाद के घोड़े खानेवाला एक पौधा (मोरिंग प्टेरीगोज़्पेरम) के साथ संबद्ध है, जो कि बिल्कुल असम्भव सा है, तो यह संभव है यह जाति आदिमनिवासी तथा अनार्य रही होगी। परन्तु यह केवल कल्पना[3] की वस्तु है। मत्स्याज् (मछलियाँ) संभवतः आर्य थे।"

---

(१) ७।१८।१९।

(२) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्० ३।१७३।

(३) तुलना करो ओल्डनबर्ग रेलीजन डेस्वेड ८५, मैकडानल वेदिक माइथालोजी १५३, हापकिंस् जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १९०७, ९२९ से प्रारम्भ, ऐतरेयारण्यक २०० एन्, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १२७।

२. लुडविक का मत है कि शिग्रु घोड़े खानेवाला एक पौधा है। (वे० इ०)

३. ओल्डनवर्ग, हापूकिंस, कीथ और जिमर इसको अनार्य-जाति और आदिमनिवासी मानते है। (वे० इ०)

वस्तुतः यह देश है। ऋग्० मे इसका वर्णन यमुना के तट पर मिलता है। यह इटावा से लेकर धौलपुर तक चला गया था। इसमे शिग्रु = सहजन के वृक्ष अधिक होने से इसका नाम शिग्रु पड़ा। ऋग्० ७।१८।१९ का अर्थ हम 'अज' मे लिख चुके हैं। यह युद्ध भेद नामक सुदास् के शत्रु से इन्द्र का हुआ था। इस युद्ध मे इन्द्र के हाथ से भेद मारा गया। इसकी राजधानी भेदपुरी मध्यभारत की ग्वालियर-कमिश्नरी के भिण्ड जिले मे भदावर के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। यह युद्ध यमुनातट पर हुआ। तृत्सुओ और यमुना (यमुनातट) वासियो ने इन्द्र को सन्तुष्ट किया। यमुनातटवासियो, अज और शिग्रुजनपदो के निवासियो तथा यक्षु=तुवर्श की संतान ने इन्द्र को अच्छे-अच्छे घोड़े उपहार मे दिये। लुडविक का 'शिग्रु' का अर्थ 'घोड़े खानेवाला वृक्ष' करना एकदम निराधार है। शिग्रु सहजन के वृक्ष का नाम है। घोड़े खानेवाला वृक्ष मानना एक-दम असंभव है। कोई भी वृक्ष घोड़ा नहीं खाता। लुडविक के अर्थ को असंभव कहकर वेदिक इन्डेक्सकार एक अनार्य-जाति मानते हैं। और उसे भी काल्पनिक कहते हैं। उसमें भी ओल्डनवर्ग इत्यादि की सम्मति दे रहे हैं। परन्तु अनार्य होने में भी कोई प्रमाण नहीं है। यहाँ पर यह संभव है कि अज और शिग्रु जनपदो के निवासी राजे और यक्षु=तुर्वश की

संतान भेद के वश मे रहे हों। नायक के मारे जाने पर उन्होने इन्द्र को भेट दी और सुदास् के वशवर्ती बन गये।

शिफा—१. वे० इ० "शिफा, यह शब्द ऋग्०[1] मे एक स्थान पर आया है, जहाँ कि सायण इसका अर्थ नदी करते हैं। यह अर्थ बहुत संभव है।

२. जिमर इसको एक नदी मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह एक नदी का नाम है। ऋग्० १।१०४।३ में इसका नाम आया है। यह नेपाल की नदी है और अंजसी, कुलिशी और वीरपत्नी नाम की तीन नदियाँ इसकी सहायक ऋग्० में लिखी हैं। वीरपत्नीनदी नेपाल की नदी है, यह हम 'वीरपत्नी' में दिखला चुके हैं। इससे यह भी नेपाल की नदी है। ऋग्० १।१०४।३ का अर्थ यह है:—"कुयव नाम का असुर शिफानदी के जल मे बसा और इन्द्र द्वारा मारा गया।" चौथे का अर्थ यह है:—"उसका स्थान गूढ़ था और अजसी, कुलिशी और वीरपत्नी के जल ने उस स्थान को गूढ़ बनाया था।"

शिबि—१. वे० इ० "शिबि उशीनर का पुत्र बौधायन[2] श्रौ० सू० मे लिखा है, जो इन्द्र का शरीररक्षक था। इसने वर्षिष्ठीय नामक स्थान में इन्द्र की वैदेशिक आक्रमणों से रक्षा की।"

२. कलन्द का भी यही मत है। (वे० इ०)

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८७ (शिबि) बिसतर

---

(१) १।१०४।३, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजलेवेन १८, पेरी जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी ११।२०१।

(२) २१।१८, तुलना करो कलन्द उबर डेस् रेचुअल सूत्र डेस् बौधायन २८। (वस्तुतः बौधायन श्रौ० सू० में नही है)।

जातक कैम्पबेल इडीशन के अनुसार शिबि की राजधानी जेतुत्तर थी, जिसे जनरल कनिंगहम ने नगरी स्थान का नाम माना है। यह नगरी राजपूताने में चित्तौड़ के उत्तर ११ मील की दूरी पर है, जहाँ पर बहुत से सिक्के शिविजनपद के नाम से प्राप्त हुए है (आरकीयो लाजिकल सर्वेरिपोर्ट ६ पृ० १९६, जे० ए० एस्० बी० १८८७ पृष्ठ ७४)। अतः शिवि मेवाड़ ही है। ('जेतुत्तर' देखिये)। यही बृहत्संहिता अ० १४ का शिवि का स्थान है। परन्तु मध्यमिका देखिये 'शिवि'। जातक और महाउम्मग्ग जातक (जातक ४ पृ० २५०।६ पृ० २१५) का मत है कि शिबि की राजधानी अरिट्ठपुर थी। संभवतः यह द्वारवती भी कही जाती थी। (जातक ६ पृ० २१४) शिबि के राजा उशीनर की कथा है कि उसने अपने शरीर से माँस को काटकर कबूतर को बचाने के लिये दिया था। (महाभा० वन० अ० १३०, ३१) दोनों फाहियान और ह्वेनसाँग इस स्थान को उद्यान के स्थान में बतलाते हैं, जो आजकल स्वात की घाटी कही जाती है। यह शिविदेश उम्मग्ग जातक के अनुसार पचाल और विदेह के बीच में था। महाभारत (अनुशासन० अ० ३२) के अनुसार शिबि काशी के राजा थे। दशकुमारचरित्र में भी यह वर्णित है। (मध्य० अ० ६) यह देश नकुल ने जीता था। (महाभा० सभा० अ० ३२) 'अरिष्टपुर' देखिये। जेतुत्तर=स्पेन्स हार्डी के अनुसार जेत्तुर है (मेनुअल आफ बुद्धिज्म पृ० ११८)। आधुनिक खोज के अनुसार प्राप्त नये बर्तन के अनुसार (इस समय ब्रिटिश म्यूजियम में है) और जिसमे महाभारत के अनुसार राजा शिबि का सुयश भी वर्णित है, शिबि-

देश स्वात की घाटी में होना पुष्ट होता है। शिवि राजा का वर्णन शुगयून (बील का रिकार्ड आफ बुद्धिष्ट कन्ट्रीज् पृ० २०६) के द्वारा वर्णित देखिये। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवि नाम के दो देश थे। एक स्वात की घाटी में था, जिसकी राजधानी अरिष्टपुर थी। दूसरा वराहमिहिर का शिविका है (बृहत् सं० अ० १४ श्लो० १२) जो दक्षिण में है। शिविका शिवि-शब्द से निकला शब्द है, जिसकी राजधानी जेतुत्तरनगर थी, जो कि अल्बरूनी की जतुत्तर थी। (इंडिया १ पृ० ३०२) जो कि उसके मत मे मैरवाड़ या मेवार की राजधानी थी।"

राजपूताने[1] का इतिहास पृ० ३३४ "चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर मे मध्यमिका नामक प्राचीन नगरी के खण्डहर हैं। उसको इस समय नगरी कहते हैं। वहाँ से मिले हुए कई ताँबे के सिक्कों पर ईसा से पूर्व की दूसरी शताब्दी की ब्राह्मी-लिपि में 'मझिमिकाय शिवि जनपदस' (मध्यमिकायाः शिवि जनपदस्य) शिविदेश की मध्यमिका का सिक्का लिखा[2] है। इसपर अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ या उसके चित्तौड़ के आसपास का अंश शिवि[3] नाम से प्रसिद्ध था, पीछे यह देश

---

(१) लेखक महामहोपाध्याय रायबहादुर प० गौरीशकर हीराचन्द्र ओझाजी—इन्हीं के लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका में भी जो निकले है, उन्ही को हमने यहाँ प्रमाण मे दिया है।

(२) कनिंगहम आरकीओलाजिकल सर्वेरिपोर्ट जिल्द ६ पृ० २०३।

(३) हिन्दुस्तान में शिवि नाम के एक से अधिक देश पाये जाते है। शिवि नाम का एक देश लाहोर और मुलतान के बीच में था। वही जिल्द १४ पृ० १४५। वराहमिहिर ने भारत के दक्षिणी भाग में शिविक

मेवाड़ (मेदपाट) के अन्तर्गत हो गया या उसके नाम से प्रख्यात हुआ। उसका मूल नाम तक लोग भूल गये।"

राजपूताने का इतिहास पृ० ९८ "(मध्यमिका) पतंजलि ने अपने महाभाष्य मे भूतकालिक घटनाओं के उदाहरणों मे यवनराज का मध्यमिका पर आक्रमण करना लिखा है।"

नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ५ पृ० २० टि० ३ "महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक से पाया जाता है कि शुंगवंश के संस्थापक पुष्यमित्र के अश्वमेध के घोड़े को सिंधु के दक्षिणी तट पर यवनो के रिसाले ने पकड़ लिया था, जिसको कुमार वसुमित्र ने लड़कर छुड़ा लिया।"

नागरी प्रचारिणी पत्रिका पृ० २०३ "यह सिंधुनदी राजपूताने की कालीसिंधु प्रतीत होती है। ऊपर लिखी राजपूताने की दोनों घटनाएँ किस यूनानी राजा के समय मे हुईं, इसका कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला। परन्तु संभव यही है कि वे मिनेन्डर के समय की हो।"

राजपूताने का इतिहास पृ० ३५८ "चित्तौड़ किले से ७ मील उत्तर में नगरी नाम का अति प्राचीन स्थान बेदले के चौहान सरदार की जागीर के अन्तर्गत है। यह भारतवर्ष के प्राचीन नगरो में एक था; जिसके खण्डहर दूर-दूर तक दीख पड़ते हैं। यहाँ से कितने ही प्राचीन शिलालेख तथा सिक्के मिले हैं। इसके पश्चिम तरफ बेड़चनदी बहती है, जिसके निकट बड़े बड़े पत्थरो से बने हुए कोट से घिरे हुए राजप्रासाद

(शिवि) नामक देश बतलाया है। कङ्कट, टङ्कण, वनवासि, शिविक, फणिकार, कौङ्कणाभीराः (बृहत्संहिता अ० १४ कूर्मविभाग श्लो० १२)।

का होना अनुमान किया जाता है। इस स्थान पर गढ़े हुए पत्थरों के ढेर जगह-जगह पर पड़े हैं और हजारों गाड़ियाँ भर-भरकर यहाँ के पत्थर लोग दूर-दूर तक ले गये। और वहाँ बावड़ी, महलों के कोट इत्यादि बनवाये गये। यहाँ राणा रायमल की राणी शृङ्गारदेवी की बनवाई हुई घोसुण्डीगाँव की बावड़ी भी नगरी से ही पत्थर लाकर बनवाई गई है। नगरी का प्राचीन नाम मध्यमिका था। बर्ली[1] गाँव (अजमेर जिले) में वीर-संवत् ८४, विक्रम-संवत् पूर्व ३८६ के शिलालेख मे मध्यमिका का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में मध्यमिका पर यवनो (यूनानियों मिनेन्डर) के आक्रमण का उल्लेख किया है। यहाँ पर मिलनेवाले शिलालेख तीन विक्रम संवत् पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास की लिपि में है। इनमे एक दो पक्तियों मे कुछ अक्षर हैं, जिनका आशय यह है कि सर्वभूतो (जीवों) की दया के निमित्त ··बनवाया। संभवत: यह लेख बौद्धों या जैनो से सम्बन्ध रखता है। ठीक उसी लिपि का दूसरा लेख उपर्युक्त घोसुन्डीगाँव की बावड़ी बनाने के लिये यहाँ से जो पत्थर ले गये, उनके साथ पहुँचा और एक मामूली पत्थर के समान चुनाई मे लगा दिया गया।

---

(१) बर्ली का शिलालेख माझमिका, मध्यमिका इंडियन आन्टीक्वेरी जिल्द ५८ पृ० २२६ एक लेख का टुकड़ा भिलोटमाता के मन्दिर के एक छकोने खम्भे मे लगा है और बीच मे कटा है। बर्लीगॉव अजमेर जिले में है। वीराय भगवते चतुरसी तिवसे · शालिमालिनी · रमनिर्तवमाझमिके वीराय भगवते चतुरसीति वसे शालिमालिनी निविष्टः मध्यमिकायां।

वह दोनों ओर से खण्डित है और उसपर बड़े-बड़े अक्षरों की तीन पंक्तियाँ खुदी हैं। पहली पंक्ति का आशय पाराशरी पुत्र गाजायन ने, दूसरी का भगवान् संकर्षण और वासुदेव के निमित्त, तीसरी का पूजा के निमित्त नारायणवट (स्थान) पर शिला-प्राकार बनवाया। इससे पाया जाता है कि विक्रम-संवत् से पूर्व तीसरी शताब्दी के आसपास विष्णु की पूजा होती थी और उनके मंदिर भी बनते थे। इसी लिपि के तीसरे लेख का एक छोटा-सा टुकड़ा घोसुण्डी और वसी गाँव की सीमा पर मिला। उसपर एक ही पंक्ति है। और उसमे 'तेन सर्वतातेन अश्वमेध' (उस सर्वतात ने अश्वमेधयज्ञ किया) शब्द खुदे हैं। अश्वमेधयज्ञ बड़े-बड़े राजा ही करते थे। अतएव सर्वतात यहाँ का बड़ा राजा होना चाहिये। विक्रम सं० चौथा शताब्दी की लिपि का दोनों किनारों से टूटा हुआ एक लेख नगरी से मिला है। उसपर के लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ वाजपेययज्ञ किया था। उसके पुत्रो ने यूप खड़ा करवाया था। मालव (विक्रम सं० ४८१) का एक पाँचवाँ शिलालेख भी यहाँ से मिला है, जिसमें एक विष्णुमंदिर बनवाने का उल्लेख है। यह इस समय राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित है। यहाँ गाँव से थोड़े ही अंतर पर हाथियों का बाड़ा नामक एक विस्तृत स्थान है। उसकी चहारदीवारी बहुत लम्बे चौड़े और मोटे तीन-तीन पत्थर एक एक के ऊपर रखकर बनवाई गई हैं। ऐसे विशाल पत्थरों को उठाकर एक दूसरे स्थान पर रखना भी सहज काम नहीं है। संभव है कि उपर्युक्त दूसरे लेख का शिलाप्राकार इसी स्थान का सूचक हो।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ५ पृ० २०३ "मध्यमिका, अयोध्या के शिलालेख में सबसे अधिक तत्व की बात सेनापति पुष्यमित्र के दो अश्वमेध करने का उल्लेख है। महाभाष्य के कर्ता पतंजलि ने जो कि पुष्यमित्र के समय विद्यमान थे, उक्त राजा के यज्ञ का उल्लेख प्रसंगवशात् किया है—'इह पुष्यमित्रम् याजयामः।' परन्तु इससे यह नहीं पाया जाता कि उसने कौन-सा यज्ञ किया है। महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नामक नाटक मे शुंगवंश का विशेष इतिहास मिलता है। इससे पाया जाता है कि सेनापति पुष्यमित्र ने राजसूय[1] (अश्वमेध) यज्ञ किया। उस समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा (भिलसा, ग्वालियरराज्य) मे शासन करता था तथा उस नाटक मे अग्निमित्र के नाम भेजे हुए पुष्यमित्र के एक पत्र का उल्लेख है, जिसका आशय यह है:—'यज्ञभूमि से सेनापति पुष्यमित्र स्नेहालिंगन के पश्चात् विदिशास्थित आयुष्मान् कुमार अग्निमित्र को सूचित करता है कि मैंने राजसूययज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके सैकड़ों राजपुत्रो सहित वसुमित्र की रक्षा में एक वर्ष में लौट आने के नियम के साथ यज्ञ का निरर्गल (बन्धन से मुक्त) अश्व छोड़ दिया। सिंधुनदी के दक्षिणी तट पर विचरते हुए अश्व को यवनों (यूनानियों) के अश्वसैन्य ने पकड़ लिया,

(१) इसमें राजसूय का अर्थ अश्वमेध किया गया है। वह यज्ञ के नाम जानने मे अनुवादक की भूल प्रकट कर रहा है। वस्तुतः मालविकाग्निमित्र नामक नाटक मे राजयज्ञ लिखा है, जिसका अर्थ अश्वमेध है। राजसूय और अश्वमेध का अन्तर न समझनेवाले राजयज्ञ को राजसूय समझते है।

जिससे दोनों सेनाओ मे घोर संग्राम हुआ। फिर वीर वसुमित्र ने अश्व को बलात्कार छीननेवाले शत्रुओ को परास्तकर मेरा उत्तम अश्व छुड़ा लिया। जैसे, पौत्र अंशुमत् के द्वारा वापस लाये अश्व से सगर ने यज्ञ किया था, उसी प्रकार मैं भी अपने पौत्र द्वारा वापस लाये हुए अश्व से यज्ञ करूँगा। अतएव तुम्हें यज्ञदर्शन के लिये शीघ्र आना चाहिये।' अयोध्यावाले शिला-लेख से निश्चय हो गया कि पुष्यमित्र ने एक ही नहीं, परतु दो अश्वमेधयज्ञ किये थे।"

वस्तुत: यह एक राजा का नाम है। यह उशीनर का पुत्र था, इसी से यह औशीनर कहा जाता था। इसने अपने शरीर का माँस देकर मायाकपोत अग्नि की रक्षा की थी। दानियों मे इसका नाम बड़ी प्रतिष्ठा के साथ आता है। यह उशीनर का पुत्र होने से उशीनरदेश का राजा था। इसके पिता के नाम से उसके राज्य का नाम भी उशीनर पड़ गया था और शिबि के नाम से उसी प्रान्त का नाम शिबि भी पड़ गया। यह प्रान्त मध्यदेश मे है और उसी प्रान्त की निवास करनेवाली शिबि की क्षत्रियसंतान भी शिबि कही जाती थी। यह शब्द क्षत्रियसमान जनपदवाची है। यह देश कहाँ पर था, इसके निर्णय में योरोपियन विद्वानों द्वारा चित्तौड़ का प्रान्त निश्चित किया गया है। इसका कारण राजपूताने के चित्तौड़ के समीप 'नगरी नामक स्थान मे सिक्के का मिलना है। यह प्रान्त 'शिबि' और नगरी 'मध्यमिका'—यह ज्ञान अभी तक नि:संदेह मान्य है और विद्वानों ने इसी पर जो प्रमाण दिये हैं, हमने ऊपर दिखलाये हैं। ऊपर लिखे गये मध्यमिका के साधन मे तथा शिबिदेश को मेवाड़ में

मानने मे जो प्रमाण दिये गये है, उनमे से कोई भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो नगरी को मध्यमिका तथा मेवाड़ को शिवि- देश सिद्ध कर सके। सिक्के में मध्यमिका नाम आया है और बर्लीगाँव के लेख मे भी मध्यमिका शब्द आया है। परंतु वे दोनो नगरी के मध्यमिका बनाने मे असमर्थ है। सिक्के कोई स्थायी वस्तु नहीं हैं, वे स्थान-स्थान पर कार्यवशात् आते-जाते रहते हैं। जब नगरी एक बहुत बड़ा शहर था, तब वहाँ के निवासी लोग मध्यमिका में व्यवसाय और नौकरी इत्यादि के लिये आते-जाते रहे होंगे तथा उसी प्रकार मध्यमिका के निवासी नगरी मे भी। उस समय उन लोगों के साथ किसी कारण से सिक्के मध्यमिका से नगरी मे आ सकते हैं। क्या इंग्लैंड में भारतीय सिक्के मिलने पर इंग्लैंड भारत हो जायगा? बार्ली गाँव के शिलालेख मे जब तक मध्यमिका के नगरीसूचक प्रमाण न हों, तब तक वह नगरी को मध्यमिका नहीं बना सकता। जब मध्यमिका होना ही निश्चित नहीं है, तो उसके बल पर शिवि मानना भी एकदम निराधार है। वराहमिहिर के दक्षिणा- पथ मे शिविक नाम देने पर भी मेवाड़ के शिविदेश होने का सभव नहीं। क्योंकि मेवाड़ दक्षिणापथ से इधर ही है। शिवि- देश कई हैं यह मानने पर भी मेवाड़ भी शिविदेश है, इसमे कोई प्रमाण नहीं आता। महाभारत से पता चलता है कि मध्यमिका पंजाब में थी और आजकल का माझाप्रान्त मध्यमिका प्रान्त को सूचित कर रहा है। महाभा० सभा० २९।७ में महाराज युधिष्ठिर ने अपने वैमात्रेय भाई नकुल को पश्चिम दिशा जीतने को भेजा। इसका वर्णन इस प्रकार है:—नकुल ने दिल्ली से

पश्चिम चलकर सबसे पहले रोहितक को जीता। और फिर बाद मे शिरसा इत्यादि विजय के बाद शिबि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव और पंचकर्पटो को जीता। इनमें त्रिगर्त जालन्धर का प्रान्त है, अंबष्ठ अंबाला का प्रान्त और मालवा वर्तमान लुधियाने का प्रान्त। उसके बाद मध्यमिका को जीता। मध्यमिका के कारण ही माझा नाम पड़ा। जो वर्तमान माँझा अमृतसर, पट्टी तरनतारन का भाग है, मध्यमिका उसकी राजधानी थी। त्रिगर्त का नाम शिबिदेश के बाद आना उसको शिबिदेश के समीप बतला रहा है। सुथंकर के महाभारत में 'मध्यमिका' पाठ है। अन्य पुस्तकों में 'माध्यमिकेय' पाठ है, जिसका अर्थ 'मध्यमिकानिवासी क्षत्रिय' है। महाभारत के समय में शिबिदेश की राजधानी मध्यमिका नहीं थी, यह निश्चित है। एक पात्र पंजाब के शोरकोट नामक स्थान मे मिला है, उसमे शिबिपुर का नाम लिखा है। उसके आधार पर शिबिपुर शिबि की राजधानी प्रतीत होती है। उसके आधार पर शोरकोट का प्रान्त शिबिपुर प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि जिस साधु को वह पात्र दिया गया था, वह साधु पात्र देने के समय शिबिपुर मे हो और बाद मे शोरकोट चला गया हो। या कोई दूसरा ही उस पात्र को शोरकोट ले गया हो। इससे शोरकोट का प्रान्त शिबिदेश नहीं हो सकता। इससे उशीनर का जो एकीकरण शिबि के साथ होता है, वह हमको उशीनर और शिबि के एक स्थान में होने का सूचन कर रहा है। उसका वर्णन 'उशीनर' मे है। पाणिनि ने 'विभाषो शीनरेषु' इस सूत्र से उशीनर का कुछ भाग बाहीक (पंजाब) के बाहर माना है और कुछ भीतर

माना है। इससे शिबिदेश शतलज के दोनों तरफ था और उसकी पूर्वी सीमा यमुना तक थी। यह हम 'उशीनर' में सिद्ध कर चुके हैं। सिक्का से यह प्रतीत होता है कि शिबिदेशनिवासियों ने मध्यमिका का विजय किया था, उसी समय उस सिक्के को बनाया। लेकिन यह घटना महाभारत के बाद की हो सकती है। चीनी यात्रियो ने जो सिंधु से पहले शिबि की कथा का उल्लेख किया है, उसका कारण उन लोगों का चीन में बैठकर ग्रन्थों का लिखना है, जैसा कि उनके लेख से पता चलता है। वहाँ बैठकर उनको जैसा स्मरण आया, वैसा लिख दिया। इसी से उनकी दिशाओं, नामों तथा गंगा के पानी के काले होने का भ्रम मिलता है। बहुत सी बाते भाषा न समझने के कारण लोगों से जैसी सुनीं, उसके अनुसार उन्होने लिखीं। बहुत-सी बातें अपनी प्रतिष्ठा-रक्षार्थ और बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा-रक्षार्थ लिखीं, जैसा महाराज हर्षवर्धन का बौद्ध होना और उनके दरबार मे बौद्धो का सबसे अधिक सत्कार और प्रतिष्ठाधिक्य इत्यादि। हर्षवर्धन के दानपत्रों मे हर्षवर्धन अपने को 'परम माहेश्वर' लिखते हैं, और बाण सरीखे धुरंधर विद्वान् उनके दरबार में रहते थे। उनके रहते हर्षवर्धन बौद्ध कैसे हो सकते हैं? हर्षवर्धन के नाम की मुद्रा जो मिली है, उसमे उनको बौद्ध कहा गया है, यदि यह सत्य है तो यह किसी दूसरे हर्षवर्धन की होगी। जब तक कोई बलिष्ठ प्रमाण न मिले तब तक उनकी नहीं समझी जा सकती। साधु के नाते हर्षवर्धन बौद्धों का भी सत्कार करते हों, यह सम्भव है। परंच सनातनधर्मियों से अधिक सत्कार, यह असम्भव है। उनके बड़े भाई अवश्य बौद्ध धर्म के

अनुयायी थे। एक घर मे दोनों धर्मावलम्बी देखे जाते थे। दोनों धर्मावलम्बियों मे परस्पर कोई वैमनस्य नहीं था, जैसा कि हर्षवर्धन के दानपत्रों से प्रतीत होता है। हर्षवर्धन के पिता परमादित्य भक्त थे, उनके भाई परम सौगत थे और हर्षवर्धन परम माहेश्वर थे। इस प्रकार शिबि का देश स्वातघाटी मे होना असंभव है। उम्मग्ग जातक मे पंचाल और विदेह के बीच मे शिबि का मानना जातक के लेखकों का देश के अज्ञान का ढिंढोरा पीट रहा है। वे० इ० कार शिबि को इन्द्र का बाडीगार्ड (अंगरक्षक) कह रहे हैं, और इन्द्र की वैदेशिक आक्रमणों से रक्षा करनेवाला कह रहे हैं, सो भी ठीक नहीं। क्योंकि कबूतर रूप अग्नि को इन्द्र रूप बाज से अपने शरीर का माँस देकर शिबि ने बचाया था, ऐसा वर्णन है। इससे अग्नि को बचाया तो अग्नि के बाडीगार्ड बने और उसी की वैदेशिक आक्रमण से रक्षा की, यह कहते तो ठीक भी था। पुराणों मे इसका इस प्रकार वर्णन है:—मार्क० ५५।१२ यह देश भारत मे है। महाभाष्य 'विषयोदेशे' ४।२।५२ कैयट यह देश है और शिबियो का निवासस्थान है। बहुवचन में 'शिबयः' ऐसा प्रयोग होता है। महाभा० सभा० (म०) २८।७ (चि०) ३२।७ (नि०) ३५।७ यह देश है। महाभा० भीष्म० (चि०) १०६।८ (सु०) ११६।७ यहाँ के निवासी क्षत्रिय दुर्योधन के पक्षपाती थे।

(शिबिगण का प्रवास)—भार० रूप० पृ० ८१८ (मालव और शिबिगण का प्रवास) "बाहीकों (पंजाब और सिंधु) के छोटे-छोटे गणराज्यो को सिकन्दर ने छेड़ा था। उसके बाद वे मौर्य-साम्राज्य में मिल गये थे। अब साम्राज्य के टूटने पर फिर यवनों

के हमले के कारण उथल-पुथल हुई, तब दो-एक प्रसिद्ध गणों को अपनी स्वतंत्रता के लिये पंजाब छोड़ना पड़ा। दक्षिण पंजाब मे जिस मालवगण ने सिकन्दर का सख्त मुकाबिला किया था, उसे अब हम अपना देश छोड़ते हुए पाते हैं। मालवों का मूल घर रावी के निचले काठे मे कोटकमालिया के चौगिर्द था। शतलज के दक्षिण पूर्वी पजाब मे एक मालवाप्रदेश है, जिसमें फीरोजपुर-लुधियाना जिले और पटियाला-नाभा रियासतो का कुछ अंश गिना जाता है। उसका नाम भी शायद मालवो के कुछ अरसा वहाँ बसने के कारण हुआ[1] हो। इसके अतिरिक्त राजपूताना और बुन्देलखण्ड के बीच जो प्रसिद्ध देश मालवा कहलाता है, उसका यह नाम तो निश्चय ही मालवों के कारण हुआ। किन्तु जिस युग का वृत्तान्त अभी कहा जा रहा है उस युग तक; अर्थात् १५० ई० पूर्व तक मालव गण उस मालवा

---

(१) ग्रियर्सन सपादक लिबिस्टिक सर्वे आफ इडिया, कलकत्ता १९०३-४। ९०१ पृ० ७०९–ग्रियर्सन लिखते है "पजाब के मालवा इलाके के साथ लगा हुआ भटिण्डा के चौगिर्द का जगल इलाका है। और वह मालवा शब्द जगल के मुकाबिले का है। सिक्खशासन के समय उस जगल के जितने अंश में माली बदोबस्त होता गया, वह मालवा बनता गया। और जो इलाका इस तरह आबाद न हुआ, वह जगल ही रहा।" यह व्याख्यान मनोरजक है और शायद सच भी हो, पर इसकी सचाई परखना जरूरी है। कही यह उसी नमूने की गढ़ी हुई व्याख्या तो नहीं है, जैसे टक्करी लिपि=ठक्कुरो की लिपि। ऊपर पृ० ११२ यदि गुरू गोबिन्दसिंह के भ्रमणों के साथ अथवा सिक्खशासन के पहले किसी भी समय यह इलाका मालवा कहा जाता हो तो यह व्याख्या निश्चय से गलत होगी।

मे न पहुँचा था। और तब तक उसका पश्चिमार्ध (उज्जैन) अवन्ति तथा पूर्वार्ध (विदिशा) आकर ही कहलाता था। मालवगण उस समय आधुनिक जयपुरराज्य के दक्षिणी अंश में चंबल के काँठे मे स्थापित हो गया था। वहाँ नगर या कर्कोटकनगर नाम की उसकी बड़ी समृद्धशाली राजधानी थी। जिसके विस्तृत खण्डहरो को अब भी जयपुर के हणियारा ठिकाने में कक्कोड़ नामक गाँव (टोंक के २५ मील दक्षिण-पूर्व, बूँदी से ४५ मील उत्तर-पूर्व) सूचित करता है कि लगभग १५० ईसवी पूर्व के बाद के मालवगण के सिक्के इसी इलाके से पाये[१] गये हैं। सस्ती धातु के सिक्के अत्यन्त असाधारण अवस्थाओं के बिना अपने मूल अभिजन से दूर नहीं जा पाते। महँगी धातुओ के; खासकर सोने के भले ही विदेशी व्यापार के लिये दूर दूर तक पहुँचते हैं। चित्तौड़ के पास नगरी से मज्झमिकाय शिविजनपदस=मध्यमिका के शिविजनपद के भी इसी युग के सिक्के मिले हैं। दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सिंधु का शिविराष्ट्र तो प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध रहा। परन्तु इधर मेवाड़ में भी शिवि-उपनिवेश का पता केवल इन सिक्कों ने ही दिया, ऐसा प्रतीत होता है और इसके सिवाय कोई व्याख्या नहीं हो सकती कि मालवगण के साथ-साथ शिविगण या उसका एक हिस्सा भी इस समय पंजाब से उठ आया और इधर राजपूताने मे मालवगण के ठीक दक्षिण मे

(१) कनिंगहम की अर्कीयो लाजिकल सर्वे आफ इंडिया की रिपोर्ट १४ पृ० १५०–५१, स्मिथकृत कैटलाग आफ दि क्वाइंस इंडियन म्यूजियम कलकत्ता १ पृ० १७० से १७४ तक।

बस गया था।"

वस्तुतः नगरी मध्यमिका नहीं हो सकती और यह प्रान्त शिविदेश नहीं कहा जा सकता, यह हम 'शिवि' में निरूपण कर चुके। शिवि गण था, यह भी कहना जब तक कि कोई प्रमाण न मिले निर्मूल है। वह तो क्षत्रियसमान जनपदवाची शब्द है।

(मालव पर विचार)—राजपूताने का इतिहास "मालव और मालवा—मालवजाति के लोगों ने प्राचीन अवन्ति[1], आकर[2] देशों पर अपना अधिकार जमाया तब से इनके अधीन उक्त प्रदेशों का सम्मिलित नाम मालव (मालवा) हुआ। राजपूताने के परताबगढ़, कोटा और झालावाड़ राज्य तथा टोंक[3] राज्य के छबड़ा, मिरावा और सीरोज के इलाके पहले मालवदेश के अन्त-

---

(१) मालवे का पश्चिमी हिस्सा जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

(२) मालवे का पूर्वी हिस्सा महाक्षत्रप रुद्रदामन् के शक सं० ७२, वि० स० २०७ के कुछ ही बाद जूनागढ़ (काठियावाड़ में) के लेख में 'पूर्वापरावन्ति' लिखा है। कालिदास अपने मेघदूत में अवन्ती से पूर्व के देश को दशार्ण कहता है, और उसकी राजधानी विदिशा (भेलसा, ग्वालियर राज्य मे) बतलाता है। यह सभव है कि आकर के अन्तर्गत दशार्ण-देश हो।

(३) राजपूताने मे केवल टोंक का राज्य ही ऐसा है कि जिसके अलग-अलग हिस्से एक दूसरे से मिले हुए नही है। टोंक (खास) और अलीगढ़ के जिले तो प्राचीन काल मे सपादलक्ष के अन्तर्गत थे। नीबाहेड़ा मेदपाट (मेवाड़) का हिस्सा था और छबड़ा, पिरावा आदि मालवा के अन्तर्गत थे।

र्गत थे, जैसा कि वहाँ से मिले शिलालेखो[1] से पाया जाता है।"

जागराफिकल डिक्शनरी पृ० ३ "आकरावन्ती मालव, आकर पूर्वी मालवा होगा, अवन्ती पश्चिमी मालवा होगा। (बम्बई गजटियर वा० १ पार्ट १ पेज ३६ नोट देखो, इंडियन आन्टीक्वेरी ७।२५९, रामकृष्ण अ० ४१ यह बृहत्संहिता अ० १४ मे आकर वेएणावन्तिक रूप मे लिखा है। इन्शेन्ट जागराफी पृ० ५६२)।"

ह्वानच्वांग का कथन है—"मो-ल पो या मालवा मो-ही या महीनदी के दक्षिण पूर्व मे स्थित है और भरौंच के उत्तर-पश्चिम में २००० ली या ३३३ मील है। किन्तु नाप और दूरी दोनो ही लगत हैं; क्योंकि मालवा भरौंच के उत्तर मे है, जहाँ से महीनदी केवल १५० मील की दूरी पर है। अतः उत्तर-पूर्व मे १००० ली या १६७ मील पड़ेगा, जो धारनगर या धार से मिलता है, जो कि मालवा की राजधानी थी। धारनगर लम्बाई मे ¾ मील है। किन्तु; क्योंकि राजधानी नगर के बाहर है, इस स्थान का पूरा घेरा ३½ मील से कम नहीं हो सकता। इस प्रान्त की सरहद ६००० ली या १००० मील है। पश्चिम में दो मालवा के आश्रित राज्य थे। पहिले का नाम खेदा था, जिसका घेरा ३००० ली या ५०० मील था और दूसरा आनन्दपुर था, जिसका घेरा २००० ली या ३३३

(१) परताबगढ, कोटा और झालड़ावार के राज्यो से जो शिला लेख मिले है, उनसे उन राज्यो का पहले मालवे के अन्तर्गत होना पाया जाता है। कोटे का थोड़ा-सा उत्तरी हिस्सा मालवा के परमारो के पड़ोसी चौहानो के अधिकार मे था और सपादलक्ष मे गिना जाता था।

मील था। इसके अतिरिक्त एक स्वतंत्रराज्य भी था, जिसका नाम बद्री था और उसका घेरा ६००० ली या १००० मील था। ये सब कच्छ तथा उज्जैन देश के मध्यभाग में थे. जो पूर्व और पश्चिम मे है। उत्तर मे गुर्जर और वैराट है। और वलभी और महाराष्ट्र दक्षिण मे है, जिसकी सीमा १३५० मील से अधिक घेरे मे नहीं है। अत: मैं मालवा तथा उसके आश्रित राज्य मे इस भाग का दक्षिणी भाग मानूँगा और बद्री मे इसका उत्तरी आधा भाग। अतएव मालवा की सीमा यह है:— उत्तर में बद्री, पश्चिम मे वलभी, पूर्व मे उज्जैन और दक्षिण मे महाराष्ट्र। इसका घेरा बनासनदी के मुहाने से, जो कच्छ के पास है, मन्डीसोर के पास चम्बलनदी तक, दामान और माली ग्राम के मध्य मे सह्याद्रिपर्वत से बर्हानपुर के नीचे ताप्ती-नदी तक, ८५० मील के लगभग है, यदि नक्शे पर नापा जाय और सड़क से १००० मील है। आबूरिहान के मतानुसार नर्मदा से धारनगर की दूरी ७ पर्संङ्ग है। महाराष्ट्रदेश की सीमा तक १८ पर्संङ्ग है। इससे यह प्रमाणित होता है कि धार का देश दक्षिण में ताप्ती तक विस्तृत था।"

ह्वानच्वाँग का कथन है—"भारत मे दो राज्य थे, जो विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध थे। उत्तर-पूर्व मे मगध और दक्षिण-पश्चिम मे मालवा। मालवा मे सौ संघाराम मठ थे और सम्मतीय मत के २० हजार भिक्षुक थे। उसका यह भी कथन है कि उसके आने से ६० वर्ष पहले मालवा मे एक शीलादित्य नामक शक्तिशाली राजा ने ५० वर्ष तक शासन किया, वह पक्का बौद्ध था।"

वस्तुतः महाभारत में मालव का प्रयोग भी मालवदेश को कह रहा है। उसके निवासी मालव लोग थे। वे गणरूप में थे, इसका प्रमाण अष्टाध्यायी के आयुधजीवि० ५।३।११४० सूत्र के 'मालव्य' उदाहरण से मिलता है। मालव और मालव्य दोनो नाम सिद्ध होते हैं। और यह गण पंजाबनिवासी था, यह भी सिद्ध होता है। मालवगण के बसने के कारण अवन्ति का नाम जब मालवा हो गया तो जहाँ पर वह सर्वथा रहता था, उसका मालव होना आवश्यक है। सिकन्दर के साथियो के लेख को सत्य करने के लिये यदि मुलतान मालवगण का प्रान्त मान लिया जाय तो उस प्रान्त का नाम मालवा क्यो नहीं पड़ा, जहाँ कि मालवगण सर्वदा से बसता था। यह संदेह होता है और बाद में वहाँ से उठकर जहाँ पर कुछ अरसे तक रहा वह मालवा हो गया तो पहले का मुलतान का प्रान्त क्यों नहीं हुआ, इसका उत्तर कोई नहीं है। इससे मालवगण का मूल निवासस्थान जो आजकल पंजाब मे मालवा का स्थान है, वही मानना होगा। सिकन्दर के साथी मालवगण के निवासस्थान को नहीं जानते थे; केवल नाममात्र ही जानते थे। इससे अपनी कल्पित सिकन्दरविजय में मालवों के ऊपर ही सिकन्दर की विजय करा कर कृतकृत्य हो गये, जो कि सिंकन्दर के रावी के तट से लौट जाने के कारण एकदम असंभव है। यही उनका लेख भारत मे सिकन्दर के आक्रमण को काल्पनिक घोषित कर रहा है। ग्रियर्सन की कल्पना का मान तो मनोरंजन कहकर विद्यालंकारजी स्वयं कर चुके हैं।

एक लेख एपी ग्राफिया इंडिका ८।४२, इंडियन आन्टीकेरी

७।२५७, सिलेक्शन इन्सप्रेक्शनस दिनेशचन्द्र सरकार ने जूना-गढ़ का महाराज रुद्रदामा प्रथम के समय का सुदर्शन-सर के विषय मे छपा है, उसमे 'पूर्वापराकरावन्ति' इत्यादि वाक्य आया है। इसका अर्थ पं० भगवानलाल ने 'मालवा का पूर्वीभाग आकर कहा जाता है और पश्चिमी भाग अवन्ति कहा जाता है'—यह किया है। और यही अर्थ आज तक के बड़े-बड़े धुरं-धर विद्वान् प्रतिपादन करते हैं और आकर दशार्ण का नाम था, यह घोषित करते हैं। उनमे से कुछ बेचारे संस्कृतानभिज्ञ होकर उस सिद्धान्त को मानते हैं, अतः उसमे उनका भ्रम नहीं सम-झना चाहिये। परंच अब तक संस्कृतज्ञ भी जो यही अर्थ मानते हैं, उनके लिये भेड़ियाधसान के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? उनको चाहिये कि हमारी बात को पक्षपात रहित होकर सोचें। यहाँ पर 'आकर' से पहले 'पूर्वापर' शब्द आये है, वे द्वन्द्वसमास के आदि मे होने से सभी शब्दो के विशेषण होंगे या सबसे पूर्व में आये हुए 'आकर' मात्र के ही विशेषण होंगे। जब सभी के विशेषण होगें तब 'पूर्व पर आकर' और 'पूर्व पर अवन्ति' इत्यादि अर्थ होगा। उसमें आये हुए सभी देशवाची शब्दो के 'पूर्व पर' लिये जायेंगे अथवा 'पूर्वापराकर' यदि एक शब्द माना जायगा तो 'पूर्व' और 'पर' विशेषण 'आकर' के ही होंगे। उन दोनों शब्दों का 'अवन्ति' आदि शब्दों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। ऐसा त्रिकाल में भी संभव नहीं है कि 'आकर' के साथ 'पूर्व' जोड़ दिया जाय और 'अवन्ती' के साथ 'पर' जोड़ दिया जाय तथा 'पूर्व का भाग आकर' और 'पश्चिमी भाग अवन्ति' कहा जाता था, यह अर्थ हो सके।

'आकर' यहाँ अवन्ती से भिन्न देश है और विचार करने पर 'आकर' का अर्थ 'खानि' होता है। इससे थोड़ा अपभ्रंशप्राप्त 'खानदेश' लिया जायगा, न कि दशार्ण। मालव का पूर्वी भाग दशार्ण है यह तो ठीक है; परंच दशार्ण आकर के अन्तर्गत हो, यह संभव नहीं। अब हम मालवशब्द का प्रयोग मालवा के लिये जहाँ-जहाँ आया है, वह दिखला रहे हैं। वात्स्यायन काम-सूत्र साम्प्रयोगिक प्रकरण १५।२४ में मालवशब्द मालवा के लिये आया है। उसका अर्थ पंजाब का मालवा नहीं हो सकता है। क्योंकि उसमे पंजाब का वर्णन अलग दिया है। टीकाकार जयमंगल ने 'मालव्य:' का अर्थ 'पूर्व मालव भवा:'; अर्थात् 'पूर्वी मालव में पैदा हुई स्त्रियाँ' यह लिखा है। इसमे 'मालवा' का 'पूर्व' विशेषण जयमंगल ने दिया है। उसका कारण यह है कि पूर्व के दो सूत्रो मे अवन्ती की स्त्रियो का वर्णन है, जो कि अपरमालव है। उनके लिये 'अपर' विशेषण जयमंगल ने दिया है। सूत्र मे 'आवन्त्य:' ऐसा पाठ है। वात्स्यायन ने पूर्व मालवा में ही मालव व्यवहार किया है। योगवाशिष्ठ (नि० पू०) ७७।१२ में विन्ध्य के समीप 'मालवानाम् पुरं शिखिध्वजस्य राजधानी' ऐसा लिखा है। मार्क० ५।५ यह जनपद भारत मे है और पूर्व-मुख कूर्म की वामकुक्षि में है। मत्स्य० ११४।५२ यह देश विन्ध्यप्रदेशनिवासी है। स्कन्द० माहे० के० १७।२७६ यह देश है और यहाँ नर्मदानदी है। यहीं पर वृत्रासुर का शिर गिरा था। स्कन्द० माहे० कौ० ३९।१३९ यहाँ १८०९२ गाँव हैं। स्कन्द० वै० पु० ६।१४ यह देश है और यहाँ अवन्तिनगरी है। कथा-स० प्रभा० ५।९९ यहजनपद है और यहाँ उज्जैनीनगरी है।

वायु० पू० ४५।१३५ यह देश पर्वताश्रयी है। ब्रह्म० २७।६४ यह देश पर्वताश्रयी है। वायु० पू० ४५।१३२ तथा १३६ यह देश भारत मे तथा बिन्ध्यपृष्ठनिवासी है। पद्म० आदि० ४०।५७ यह देश भारतवर्ष मे है और दाक्षिणात्य है। यहाँ इसको तीन बार पढ़ा है। मत्स्य० ११४।५२ यह देश भारत मे है और विन्ध्यपृष्ठनिवासी है। महाभा० भीष्म० ९।६०-६२ मे दो बार पढ़ा है और दाक्षिणात्य है। इस प्रकार मालवदेश का नाम पुराणों में तथा अन्य ग्रन्थों मे ईसामसीह से सहस्रों वर्ष पूर्व लिखा हुआ मिलता है। तब पंजाब से मालवगण का प्रवास कहना एकदम कपोलकल्पना ही है। यदि हम करकोटकनगर मे छोटी धातु के सिक्को के मिलने के बल पर वहाँ पहले मालवगण रहा—यह माने सो भी नहीं बनता। सभी धातुओ के सिक्के बराबर व्यवहार मे लाये जाते हैं। यात्री लोग सोनामात्र ही बाँधकर नहीं चलते। प्रत्युत सस्ती धातु के सिक्के ही उनके काम मे अधिक आते हैं और वे ही प्रायः अधिक चला करते हैं। इससे उनके दूर जाने की असंभवना की अपेक्षा संभवना अधिक रहती है। इससे करकोटकनगर मे मालवगण का बसना प्रमाणरहित है, और यदि मालवगण रहा तो उसका नाम मालवा क्यों नहीं पड़ा ? उषवदात के दानपत्र मे जो कि एपी ग्रा० ८।७८ तथा सिले० ३० पृ० १६२ में छपा है, उसमे उत्तम भाद्र का वर्षा मे मालयों द्वारा घेरा जाना और नहपान की आज्ञा से उषवदात का वहाँ जाना और जीतना इत्यादि जो लिखा है उसके 'मालयः' शब्द का अर्थ इस समय तक के विद्वान् मालवगण कहकर मालवगण के दक्षिणभारत में जाने

की घोषणा करते हैं। वह भी भेड़ियाधसान ही है। मालय का अर्थ मालवगण त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। किन्तु 'मलये भवाः मालयाः'; अर्थात् मलयपर्वतनिवासी यह अर्थ होता है। मालय में यकार है और मालव में वकार है, फिर भी दोनो एक समझे जाते हैं। कैसा अंधाधुंध है! जनरल कनिंगहम ने जो ह्वेनसांग के आधार पर मालवा का स्थान सिद्ध किया है, वह न तो दशार्ण का भाग है और न अवन्ति ही का भाग है। किन्तु अवन्ति से पश्चिम है और आजकल के हिस्ट्री के सिद्धान्त के विरुद्ध है। जिस समय ह्वेनसांग भारत में आये थे, उस समय महाराज हर्षवर्धन उत्तरी भारत के शासक थे। हर्षवर्धन के दरबारी महाकवि बाण थे, यह बात 'हर्षचरित्र' से प्रकट है। उस समय दशार्णदेश मालवा मे था। यह बात महाकवि बाण ने कादम्बरी के प्रारम्भ मे विदिशा के किनारे पर बहती हुई वेत्रवती के वर्णन मे लिखी है। इससे यह सिद्ध होता है कि ह्वेनसांग का ग्रंथ उसकी स्मरणशक्ति के आधार पर लिखा गया। उसके पास कोई नोट नहीं थे। उसके आधार पर कनिगहम का लेख मूल के निर्बल होने के कारण प्रतिष्ठित नहीं माना जा सकता। महाकवि राजशेखर ने जो भुवनकोश के कर्ता माने जाते हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक काव्यमीमांसा में 'पांचाल दाक्षिणात्य प्रवृत्ति' के वर्णन मे 'अवन्तीन्' का अर्थ 'अवन्ती वैदिश-सुराष्ट्र, मालवार्बुदभृगु कच्छादयो जनपदाः' यह लिखा है। वैदिश से दशार्ण और अवन्ती से उज्जैनी का प्रान्त लेते हैं। यदि मालवशब्द से अवन्ती और वैदिश से भिन्न मालव नाम का कोई स्थान मान लें तो ह्वेनसांगवाला भी मालवा का स्थान

ठीक हो सकता है। परंच दशार्ण और अवन्ती मालव में नहीं रहते। बाण राजशेखर से पहले हैं। इससे दशार्ण में मालव शब्द का व्यवहार बाण के समय में होता था तो वह व्यवहार राजशेखर के समय मे क्यों नहीं हुआ, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। यह संभव है कि काव्यमीमांसा मे मालव शब्द के स्थान में कोई दूसरा शब्द हो, उसके स्थान में लेखक या संशोधक के प्रमाद से दूसरा मालव शब्द आ गया हो।

मन्दसौर के एक शिलालेख में 'मालवानाम् गणस्थित्या' ऐसा शब्द आया है। उसके आधार पर आधुनिक हिस्ट्री मम्मार के विद्वान् मालवों का विजय अवन्ती पर कल्पन करते हैं। परच इसका अर्थ मालवगण की स्थिति—यह नहीं होता। क्योकि 'मालवानाम्' मे षष्ठी है और उसका अर्थ 'मालवों का' होता है। उसका सम्बन्ध 'गणस्थिति' शब्द के साथ होता है, केवल 'गण' के साथ नहीं हो सकता। क्योंकि 'गणस्थिति' शब्द समास होने के कारण एक शब्द है। उस पूरे शब्द का सम्बन्ध 'मालवानाम्' के साथ होगा। उसके एक हिस्से 'गण' शब्द का सम्बन्ध 'मालवानाम्' के साथ नहीं हो सकता। इससे यहाँ पर 'मालवदेश के मध्य मे गणस्थिति से इतने वर्ष बाद'—यही अर्थ होगा, न कि 'मालवगण की स्थिति से इतने वर्ष बाद'। इससे इसके बल पर मालवगण का विजय कल्पन करना एक निःसार तर्क है। और भी इसी शिलालेख के आधार पर जो मन्दसौर को महाराज रन्तिदेव की राजधानी दशपुर मानते हैं, वे भी धोखे मे ही हैं। क्योंकि महाभारत में चर्मण्वती (चंबल) का उद्गमस्थान रंतिदेव का स्थान दशपुर माना गया है और

यह मन्दसौर शिवाननदी के किनारे है तथा चंबल वहाँ से कई कोश की दूरी पर है। चंबल का उद्गम तो करीब १०० कोश की दूरी पर होगा। अतः वह किस प्रकार संभव हो सकता है? मन्दसौर भी दशपुर कहा जाता हो अथवा अनभिज्ञ पंडितो द्वारा इसका नाम दशपुर लिख दिया गया हो, इस विषय मे कोई बलवान् प्रमाण हमारे पास नहीं है। परन्तु यह रन्तिदेव का दशपुर नहीं है, यह हमारा दावा अवश्य है।

सिंधुनदी जिसका वर्णन मालविकाग्निमित्र मे आया है, वह भी कालासिंधु नहीं हो सकती। पुष्यमित्र इतना निर्बल राजा नहीं था कि उसके राज्य के भीतर घुसकर यूनानी लोग उसका घोड़ा पकड़ लेते। शिबि को ऋग्० का शिव जो लोग मान रहे हैं, वह उनका भ्रम है। क्योंकि शिबि शब्द इकारान्त है और उपान्त्य में पवर्गीय वर्णवाला है। और शिव शब्द अकारान्त है और उपान्त्य में दन्तोष्ठ्यवाला है। इससे दोनों एक नहीं हो सकते।

शीपाला—१. वे० इ० "शीपाला अथर्व०[1] में एक बार पाया जाता है, जहाँ पर इसका अर्थ एक गढ़ा है, जिसके चारों ओर शीपालपौधे हैं अथवा किसी नदी या झील का नाम है।"

२. जिमर, विटने और ब्लूमफील्ड इसको एक गढ़ा अथवा नदी या झील मानते हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह शब्द अथर्व० मे आया है और परुष्णी का

---

(१) ६।१२।३, तुलना करो जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन ७१। विटने ट्रान्सलेशन आफ दि अथर्ववेद २८९, २९०। ब्लूमफील्ड हिम्स आफ दि अथर्ववेद ४६२।

विशेषण है। इसका अर्थ शेवालवाली है। यह कोई नदी विशेष या झील या गढ़ा नहीं है। शीपालशब्द ऋ० १०।६८।५ में शेवाल (सिवार) के अर्थ मे आया है, जिससे एक प्रकार की शक्कर साफ की जाती है जो सिवारी शक्कर कही जाती है।

शुतुद्री—१. वे० इ० "शुतुद्री, ऋग्०[1] मे दो बार इसका नाम वर्णित है। पंजाब की सबसे पूर्वी नदी शतलज है। जिसको टालमी[2] तथा एरियन जराड्रास कहते हैं। उत्तरवैदिक काल में शतद्रु (सौ सोतों से बहनेवाली) आता है। शतलज ऐतिहासिक समय[3] मे भी अपना मार्ग बहुत बार बदलती है।"

२. इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया 'एरियन के समय में शतलज कच्छ की खाड़ी में गिरती थी।' (वे० इ०)

३. जिमर का भी मत एरियन से मिलता है।

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८२ (नं० १) शतलजनदी, यह घग्गर अथवा घार भी कहलाती है, जो शतलज और व्यास की संयुक्तधारा है और अपने संगम एन्ड्रीस के पास चिनाबनदी से संयुक्त होती है। वहाँ के निवासी घार को नाई कहते हैं (जे० ए० एस० बी० ६, पृष्ठ १७९)। कुछ विद्वानों के अनुसार शतलज पाँच नदियो की नदियो में नहीं थी। प्रत्युत उसका पुराना नाम सोत्र या हकरा (घग्गर) था, जो व्यासनदी की घाटी में घूमने के कारण सूख गई। मिस्टर

(१) ३।३३।१, १०।७५।५, निरुक्त ६।२६।

(२) एरियन के समय में शतलज कच्छ की खाड़ी में गिरती थी। इंपीरियल गजटियर आफ इंडिया २३।१७६।

(३) वही पुस्तक, तुलना करो जिमर अल्टेनडिस्चेजनेवेन १०।११।

जे० कैम्पबेल के अनुसार घग्गर सरस्वतीनदी की मुख्य सहायक नदी थी (एथनालोजी आफ इण्डिया पृ० ६४ में, मेकडानल कीथ का वेदिक इन्डेक्स वालुम २ पृ० ४३५ 'सरस्वती' देखिये)। (नं० २) सरहिंद पंजाब में (मार्क० अ० ९७। बील की रिकार्डस् आफ वेस्टर्न कन्ट्रीज़ पृ० १७८)।

वस्तुतः यह शतलज का नाम है और लोक में इसको शुतुद्रि और शतद्रु भी कहते हैं। ऋग्० ३।३३।१ में 'विपाट्छुतुद्री' शब्द समास में आया है और दोनों की स्तुति साथ-साथ है। यह दोनों के संगम को बतलाती है। व्यास के साथ इसका संगम ऋग्वेद मे वर्णित है और आज भी उसी रूप मे उपस्थित है। इससे बीच में असंबद्ध किसी विदेशी के लेख को सुसंबद्ध करने के लिये इसका संगम अन्यत्र मान लेना अनुपयुक्त है। निरुक्त मे इसको शीघ्र चलनेवाली माना है। कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तिरीयारण्यक परिशिष्ट, नारायणोपनिषद् पृ० ८०८ मे 'शुतुद्रि' पाठ है। अमरकोष वारिवर्ग ३३ में 'शतद्रु' और 'शुतुद्रि' पाठ हैं। बाल्मीकि० अयोध्या० (नि० गु० ला०) ७१।२ (इ०) ७२।२ में 'शतद्रु' पाठ है। यह नदी दूरपारा, चौड़ी और तिरछे प्रवाहवाली लिखी है। महाभा० आर० (चि०) १८८। १०२ शतद्रु नदी है। कर्ण० (चि०) ४४।३२ यह नदी पंजाब में है और इसको 'शतद्रुका' भी कहते हैं। महाभा० आदि० (चि०) १७७।९ (म०) १७५।११ (नि०) १९३।१० यह नदी हिमालय से निकली है। इसने वशिष्ठ के गिरने से अपने को सौ भागों में बाँट दिया। इससे इसका नाम 'शतद्रु' पड़ा। अग्नि० २२०।६९ शतद्रुनदी तीर्थ है।

श्मशा—ऋग्० १०।१०५।१ मे यह शब्द कृत्रिम जलधारा; अर्थात् खेत की नाली के अर्थ में आया है।

श्वेतयावरी—यह शोणनदी का नाम है। ऋग्० ८।२६। १८-१९ में इसका वर्णन है। विश्वमना ऋषि ने श्वेतयावरीनदी के किनारे अश्विनीकुमारों की स्तुति की। इससे नदी ने भी स्तुति की। मन्त्रार्थ यह है:—'श्वेतजलवाली और जानेवाली स्पन्दनशील हिरण्यवर्तनी (सोने के मार्गवाली) यह श्वेतयावरी-नदी, अन्य नदियो के मध्य में आप दोनों को स्तुति से अतिशय से बुलानेवाली होती है। इसी से हमने इसके तट पर आप लोगों की स्तुति की।' शोणनद का नाम हिरण्यवाहु और हिरण्य बाह भी है। जब उकारान्त शब्द है तब 'हिरण्यंबाहावस्य' यह विग्रह होकर 'सोना जिसके बाहु में है' ऐसा अर्थ होता है और अकारान्त पाठ में 'हिरण्यं वहति' इस विग्रह में 'सोने को ले चलनेवाली' यह अर्थ होगा। ऋग्० मे श्वेतयावरी का हिरण्य-वर्तनि विशेषण है। 'हिरण्यं वर्तनं यस्याः' यह विग्रह होने से 'सोना है मार्ग में जिसके' ऐसा अर्थ होता है। शोण का हिरण्य-बाह नाम है। और ऋग्० में हिरण्यवर्तनि श्वेतयावरी का विशेषण है। इस कारण श्वेतयावरी शोणभद्र का नाम है। जो लोग यह मानते हैं कि ऋग्० मे पंजाब के आगे का वर्णन नहीं है, उन्हें चाहिये कि इस नदी को देखकर अपना भ्रम दूर करें।

श्वेता—जाग० डिक्श० पृ० २०० श्वेता, देखो 'श्वेती'। शिवपुराण ११ अ० १० देखो 'काष्ठमण्डप' और 'मञ्जुपाटन' और 'नेपाल'।

वस्तुतः यह शोणनद का नाम है। ऋग्० ८।२६।१९ में

इसका वर्णन है। मंत्रार्थ यह है:—हे शोभनशील गमनवाले अश्विनीकुमारो ! शोभन स्तुतिवाली, श्वेत जलवाली और पोषण करनेवाली नदी से आप स्तुति को प्राप्त हो रहे हैं। श्वेत जल होने से इसका नाम 'श्वेता' पड़ा। नन्दलाल डे का 'श्वेती' से एक करना भ्रम है।

श्वेती—१. वे० इ० "श्वेत्या, यह शब्द नदीस्तुति[1] में एक नदी के लिये आया है, जो कि सिंधु[2] की शाखा थी।"

२. जिमर और लुडविक के मत में नदी का नाम श्वेती है और सिंधु की सहायक है।

३. गेल्डनर इसको सिंधु की सहायक नदी मानते हैं। परंच श्वेती और श्वेत्या दोनों नाम मानते हैं।

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० २०० श्वेती, यह पंजाब की स्वातनदी है। (ऋग्० १०।७५, शिव० अ० १०) यह स्वेता भी कही जाती है। सुवास्तु (क्यू० वी०) महाभारत की।

वस्तुत: यह नदी है और सिंधु की सहायक है। आजकल कश्मीर मे गिलगित के नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्० १०।७५।६ में सिंधु की सहायक नदियों मे इसका वर्णन है। रसा और कुभा के बीच में इसका नाम है तथा यह चौथी है। कश्मीर के नक्शे में भी सिंधु की सहायक नदियों में गिलगित का नाम चौथा है। इससे यह निश्चित गिलगित है। नन्दलाल डे का

---

(१) १०।७५।६।

(२) जिमर अल्टेन डिस्वेजलेवेन १४।१५, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्० ३।२००, यह श्वेती रूप देता है। गेल्डनर ऋग्० ग्लासर १८४ दोनों रूप देता है।

स्वात का नाम मानना एकदम निस्सार है। क्या स्वातनदी सिधु की सहायक है ? वह तो काबुल की सहायक है। उनका इसको सुवास्तु से एक करना भी बिल्कुल असंबद्ध है।

सदन—ऋग् १०।३८।२ तथा १०।७५।१ में यह शब्द घर के अर्थ मे आया है।

सदानीरा—१. वे० इ० "सदानीरा, जिसमे सदा पानी रहे। यह एक नदी का नाम है, जो कि शतपथ[1] के अनुसार कोशलाज् और विदेहाज् की सीमा बनाती थी। यह नदी करतोया[2] मानी गई है, परन्तु बहुत पूर्व है। वेबर[3] इसको गण्डकी[4] मानता है, जो संभवतः सत्य है। यद्यपि महाभारत दोनों नदियों में अन्तर बतलाता है, फिर भी कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे कि हम इसको सत्य मानें।"

२. इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया इसको सदानीरा मानता है।

३. वेबर इसको गण्डकी मानते हैं। (वे० इ०)

४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा १।१६९ 'यह सदानीरा (राप्ती) नदी अयोध्या और विदेह राज्यों को अलग करती थी'।

५. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १७१ "सदानीरा, (नं०१)

---

(१) १।४।१।१४, वही पुस्तक।

(२) इम्पीरियल गजटेड आफ इडिया १५।२४ पेज देखो।

(३) इंडिस्चेस्टडियन १।१७२-१८१।

(४) वर्ग 'गण्डक' इम्पीरियल गजटेड आफ इंडिया १२।१२५ में देखो।

करतोयानदी रंगपुर और दीनाजपुर जिले में (जो पुराने पुंड्रदेश हैं) बहती है। (अमरकोष पातालवर्ग ५, तिथितत्व पृ० ७९६) यह नदी महादेवजी के पसीने से बनी कही जाती है, जो उनके शरीर से दुर्गा के विवाह के समय निकला था। (नं० २) शतपथ० मे एक नदी वर्णित है, जो कि विदेह (तिरहुत) और कोशल के मध्य मे है। यह नदी आर्यों के राज्य की पूर्वी सीमा थी। जिस समय याज्ञवल्क्य ने शतपथ० की रचना की थी (देखो शतपथ ब्रा० ९।४)। यह और गण्डकनदी एक ही है (एजलिग इट्रोडक्शन टु दि शतपथ ब्रा० इन दि सेक्रेड बुक्स आफ़ दि ईस्ट वालूम० १२ पेज १०४)। परन्तु (महाभा० सभा० अ० २० मे) गण्डकी और सरयू के बीच में यह नदी बतलाई गई है तथा नदियों की सूची मे सदानीरानदी करतोया और गण्डक से अलग बतलाई गई है (महाभा० भीष्म० अ० ९)। मिस्टर पार्जीटर इसे सरयू की सहायक राप्तनदी बतलाते हैं (मार्क० अ० ५७ पृ० २९४)।"

६. पार्जीटर इसे सरयू की सहायक राप्ती मानते हैं। (जाग० डि०)।

वस्तुतः यह नदी है और हिमालय से निकली है तथा बड़ी गण्डक के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोशल और विदेह की सीमा पर है। यह ऐसी नदी है जो कि ग्रीष्म में भी नहीं सूखती। माध्यन्दिनीय शतपथ[1] और काण्व शतपथ ब्रा० में इसका वर्णन है। अमरकोष वारिवर्ग ३३ तथा अभिधानचिंतामणि १०८४ में यह करतोया का नाम है। परन्तु उत्तरबगाल

(१) १।१४।

की करतोया से यह करतोया भिन्न है। उत्तरबंगाल की करतोया भी सदानीरा कही जाती हो, यह संभव है। तब भी शतपथ की सदानीरा वह सदानीरा नहीं हो सकती। महाभा० सभा० (म०) २१।२९॥ यह नदी एक पर्वतक देश में है। इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से गिरिव्रज (राजगृही) जाने के मार्ग में आती है। मिथिलानगरी से पश्चिम में है और अनुरागा के पूर्व में है। (सु०) १८।२६ से ३० तक में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, अर्जुन और भीम की दिल्ली से राजगृही तक यात्रा का इस प्रकार वर्णन है:—दिल्ली से कुरुजंगल के मध्य में होते हुए पद्मसर को जाकर कालकूट का अतिक्रमणकर एक पर्वतक-देश में क्रम से गण्डकी, शोण और सदानीरा को उतरे। सरयू को उतरकर पूर्वकोशलों को देखकर और पारकर, मिथिला को गये। माला, चर्मण्वती और गंगा तथा शोण को पारकर कुरबोरश्छद नामक मगधक्षेत्र को गये। यहाँ गोरथपर्वत को प्राप्तकर मागधपुर देखा। इसमे शोण के बाद सदानीरा का नाम है, परन्तु पाठ बिल्कुल असंबद्ध है। अन्त में चर्मण्वती (चंबल) जो यमुना की सहायक है, उसे मिथिला के बाद लिखा है। और शोण का पाठ दो बार आया है। मिथिला (जनकपुर) जो दरभंगा के पास और मार्ग से बहुत उत्तर है, इसका मिलनी बिल्कुल असंभव है। महाभा० भीष्म० ९।२४ में यह नदी है और भारत मे है। ब्रह्माण्ड० पू० १६।२८ यह नदी पारियात्र से निकली है। कूर्म० ब्रा० पू० ४७।३१ यह नदी भारत में है और पारियात्र से निकली है। इन सब प्रमाणों से सदानीरा नाम की तीन नदियाँ प्रतीत होती हैं। एक बड़ी

गण्डक, दूसरी करतोया और तीसरी पारियात्र से निकली हुई है। परन्तु शतपथ मे बड़ीगण्डक ही सदानीरा नाम से आई है, जो कोशलदेश की पूर्वी सीमा और विदेहदेश की पश्चिमी सीमा थी। नन्दलाल डे ने इसको आर्यों के राज्य की सीमा माना है, जिस समय कि याज्ञवल्क्य ने शतपथ बनाया था। परंच शतपथ मे यह नहीं लिखा है कि आर्यों के राज्य की सीमा थी। और याज्ञवल्क्य ने शतपथ बनाया, यह भी नहीं लिखा है। उनके मत मे विदेह मे अनार्य रहते थे तो बिदेह के राजा जनक क्या अनार्य थे? उनके यज्ञ मे याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मज्ञानियों मे सर्वश्रेष्ठ स्थान पाया था, जैसा कि शतपथ ब्रा० ३।१, बृहदारण्यकोपनिषद् १।२३ और जैमिनीय ब्रा० मे वर्णन है। नन्दलाल डे वारिवर्ग के स्थान पर पातालवर्ग भ्रम से लिख गये। पार्जीटर का राप्ती मानना ठीक नहीं। मार्क० मे कोई ऐसा प्रमाण नहीं है, जो सदानीरा को राप्ती सिद्ध कर सके। जो लोग राप्ती को अयोध्या और विदेह के राज्यों को अलग करनेवाली मानते हैं, उनका भी मत ठीक नहीं। क्योंकि शतपथ० मे कोशल और बिदेह की सीमा लिखी है। अयोध्या और विदेह राज्यों की सीमा नहीं लिखी है। राज्यों की सीमा का निश्चय नहीं रहता, इसलिये देश की सीमा कहना चाहिये। अयोध्याराज्य की सीमा राप्ती तक मानने से यह प्रश्न होगा कि किस समय थी? क्योंकि अयोध्या और विदेह मे बहुत से राजे हुए हैं। यदि रामचन्द्र का समय कहा जाय तो राप्ती के पूर्व विदेहराज्य होने के कारण मल्लभूमि में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की नगरी लक्ष्मण ने बसाई, यह कैसे सम्भव होगा? मल्लभूमि तो गोरखपुर जिले

में मभौली के आस-पास की भूमि है (वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड अध्याय १०२)।

सप्तमातरः—ऋग्० १।३४।८ में यह शब्द आया है और इसका अर्थ है 'सात हैं माताएँ जिनकी' अथवा 'सर्पण स्वभाव-वाली नदियाँ हैं माताएँ जिनकी'—ऐसे जल।

सप्तसिंधवः—१. वे० इ० "सप्तसिंधवः (सात नदियाँ), यह ऋग्०[1] में एक बार किसी एक निश्चित देश के लिए प्रयोग में आया है। और स्थानों[2] पर सात नदियों का अर्थ है। मैक्समूलर[3] के अनुसार पंजाब की पाँच नदियाँ, सिंधु और सरस्वती से यहाँ तात्पर्य है। कुछ[4] लोग यह भी सोचते हैं कि कुभा को सरस्वती के स्थान पर रखा जाय या आक्सस्नदी[5] इन सात नदियों में से पहली रही होगी। जिमर[6] संभवतः इन

(१) ८।२४।२७।

(२) ऋग्० १।३२।१२, ३४।८, ३५।८, ७१।७, १०२।२, ४।२८।१, ८।६६।१ इत्यादि। वाजसनेयी स० ३८।२६, अथर्व० ४।६।२, तैत्तिरीय स० ४।३।६।१, इत्यादि।

(३) चिप्स १।६३, तुलना करो मुइर सस्कृतटेक्स्ट १[2], ४६० एन्।

(४) लुडविक ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२००। लासन इंडिस्चे आल्टर थुम्स कुण्डे १[2]।३, विटने जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी ३।३११।

(५) तुलना करो थामस जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १८८३।३७१ से प्रारम्भ।

(६) अल्टेन डिस्चेजलेवेन २१, तुलना करो हापकिंस जरनल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी १६।२७८, इन्डिया ओल्ड ऐन्ड न्यू ३३।

सब बातों पर ध्यान न देने से ठीक है, क्योंकि सप्त शब्द ऋग्० का बड़ा प्रिय शब्द रहा है।"

२. मैक्समूलर और मुइर पंजाब की पाँच नदियाँ, सिंधु और सरस्वती से यहाँ तात्पर्य मानते हैं। (वे० इ०)

३. लुडविक, लासन और विटने कुभा को सरस्वती के स्थान मे रखते हैं। (वे० इ०)

४. थाम्स सरस्वती के स्थान में अक्ससनदी को रखते हैं और उसे सबसे पहली मानते हैं।

५. जिमर और हापकिंस ने यह विचार नहीं किया कि सात में कौन-कौन नदियाँ हैं।

६. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १७९ "सप्तसिंधु = पंजाब जहाँ पर पुराने आर्य लोग, जो बाद में हिन्दू कहलाये, पहले-पहल टिके। सात नदियाँ—इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता, विपाशा, शतद्रु, सिंधु और सरस्वती अथवा काबुल हैं। सप्तसिंधु शब्द ऋग्० ८।२४।२७ का है। वेन्डिडड का हफ्त हिन्दु है (१।७३ भविष्य० प्रति सर्गपर्व १ अ० ५ और मैक्स-मूलर की चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप वालूम १ पृ० ८३)। पुराने आर्य लोग जो ऋग्० काल में पंजाब में रहते थे, पाँच जातियों में विभक्त थे। (पुरूज् या भरताज् जो कि बाद में कुरूज् कहलाये) वे रावी के उत्तर में रहते थे। तृत्सूज् बाद में पंचाल कहलाये, जो कि शतलज के उत्तर और दक्षिण में रहते थे। अनूज़, यदूज़ और तुर्वशाज् बीच में (रेगोजिन की वेदिक इंडिया पृ० ३२३)।"

वस्तुतः इसमें दो शब्द हैं, सप्त और सिंधु। 'सप्त' का अर्थ

'सर्पणशील' (खसकने की आदत रखनेवाला) और 'सात' भी होता है। ऋग्० १।७१।७ में इसी अर्थ मे 'सप्तस्रवतः' शब्द भी आये हैं। तथा १।१०२।२ में 'सप्त नद्यः' आये हैं। यहाँ पर 'सात नदियाँ' अर्थ स्फुट है। ऋग्० ८।२४।२७ में भी 'सप्तसिंधु' का अर्थ 'सात नदियाँ' या 'सर्पणशील' जल है। जल मे स्तुति करनेवालो का रहने का संभव नहीं, इससे लक्षणा-द्वारा 'उनके तट का निवासी' अर्थ होता है। परन्तु सप्तसिंधु-शब्द देशअर्थ मे नहीं आया है। सभी जल सर्पणशील होते हैं, इससे सभी नदियाँ अर्थ हो सकता है। यदि सात अर्थ भी किया जाय तो सात नदियाँ गंगा इत्यादि कोई भी ली जा सकती हैं। पंजाब की नदियाँ सरस्वती और सिंधु अर्थ करके उनके बीच की भूमि को सप्तसिंधु कहना एकदम निराधार है। किसी भी निश्चित देश के लिये ऋग्० में इसका प्रयोग नहीं है। ऋग्० ९।६६ में सर्पणशील जल या सात नदियाँ अर्थ है। ८ वें में 'सप्त जामयः' भी सात नदियों के ही अर्थ मे आया है। ऋग् ८।२४।२७ का अर्थ यह है:—'जो इन्द्र राक्षस से उत्पन्न उपद्रव से बचाता है और जो इन्द्र सप्तसिंधुषु=सर्पणशील जलों में रहनेवाले या सात नदियो में रहनेवाले स्तुतिकर्ताओ को धन आदि देता है। हे बहुत धनवाले इन्द्र ! आप हानि पहुँचाने-वाले असुर के वध के साधन अस्त्र को नीचा करें।' इसमें 'सप्तसिंधुषु' के दोनो अर्थों (जल या नदी) में स्तुति करनेवाले का सभव नहीं। इससे लक्षणा—द्वारा नदियों का तट अर्थ करना होगा। तट भी स्तुति नहीं कर सकते, इससे उनके निवासी अर्थ होगा। सप्तसिंधु कोई देश नहीं है, और न इस मन्त्र में

देशअर्थ ही है। ऋग्० ९।६६।८ में 'सप्त जामय:' शब्द आये हैं, अर्थ 'सप्तसिंधु' के समान है। सर्वत: सात नदियों को ही लेना और बाकी को छोड़ देने की अपेक्षा सभी नदियों का अर्थ आ जाय, इसलिये सर्पणशील=बहनेवाला जल अर्थ करना उचित प्रतीत होता है। 'सप्तसिंधव:' में सरस्वतीनदी नहीं आ सकती। क्योंकि ऋग्० ८।५४।४ में सप्तसिंधव: और सरस्वती शब्द साथ साथ आये हैं। ऋग्० में कोई ऐसा क्रम नहीं मिलता जिसमे पंजाब की सात नदियाँ साथ साथ आई हों। उन पाँचो को लेना और सिंधु को लेना तथा सरस्वती को उनके साथ घसीट लाना, कुभा और आक्सस को भी पकड़ लेना, इत्यादि को सिद्धान्तरूप से प्रचार करनेवालो का कथन प्रमाणाभाव से माननीय नहीं हो सकता। इससे तो सायण गंगा आदि सात नदी मानते हैं। उसमे गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि १०।७५। ५ की साथ-साथ पढ़ी सात नदियाँ मिलती भी हैं, परंच अट-कलपच्चू उड़ानेवालो के लिये एक साथ सात नदियाँ नहीं मिलतीं। वाजसनेयी सं० ३८।२६ में इन्द्रस्तुति में:—'हे इन्द्र! अन्न के साथ हम क्षय न होनेवाले इतने बड़े दधिघर्म का ग्रहण करते हैं। कितना बड़ा दधिघर्म? जितने बड़े द्युलोक और पृथ्वी हैं, और जहाँ तक सप्तसिंधु फैले हैं।' महीधर और उव्वट ने सप्तसिंधु का अर्थ सात समुद्र किया है; अर्थात् बहुत बड़ा'। इसमें सप्तसिंधु से आपकी सात नदियोंवाला देश मान लें तो वह कितना बड़ा देश हो सकता है? यदि संसार की सभी बहने-वाली नदियों या समुद्र अर्थ को मान लें, तब भी बड़प्पन आता है। अथर्व० ४।६।२ में सर्पादि के विष को दूर करने के लिये

एक सूक्त लिखा है। उसकी हर एक ऋचा से मदनफल को अभिमंत्रित कर विषयुक्त पुरुष को पिलाये अथवा घी मे हल्दी डालकर सूक्त की प्रत्येक ऋचा से अभिमंत्रित कर विष से युक्त पुरुष को पिलाये। उससे कै होती है और विष दूर होता है। उस सूक्त के दूसरे मंत्र मे सप्तसिंधु शब्द आया है। मंत्रार्थ यह है:—'विष को दूर करनेवाली वाणी का हम उच्चारण करते हैं। हमारी वाणी द्युलोक और पृथ्वीलोक जितने बड़े हैं और सप्तसिंधु जितने में फैले हैं, उनसे भी बड़ी है।' इसमें सात नदियोंवाला देश अर्थ यदि लिया जाय तो छोटा होगा। इससे सातो समुद्र या सभी नदियों का देश आ जाय तभी ठीक होगा। पंजाब की नदियाँ इत्यादि माननेवालों के मत में जो देश लिया जायगा, वह छोटा होगा। इससे उसका लेना ठीक नहीं। ऋग्० १०।७५।१ में वे नदियाँ साथ साथ होकर तीन प्रकार से; अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक मे बहीं। बहने-वाली नदियों के बीच में सिंधु नाम की नदी अपने बल से सम्पूर्ण नदियों का अतिक्रमण करके बहती है। पुराणों में गंगा का तीनों लोकों में होना वर्णन किया गया है। और गंगा के सात भेदों में सिंधु का भी नाम है। इससे सप्तसिंधु का गंगादि सात नदी अथवा बहनेवाला जल अर्थ जो सायणाचार्य करते हैं, वही ठीक हैं। जो लोग पंजाब की नदियाँ और उनके साथ और दो नदियों को पकड़कर उनके बीच का देश अर्थ करते हैं, उनका तात्पर्य आर्यों को विदेशी सिद्धकर भारत में देशभक्ति के नाश का अपप्रचारमात्र है।

समुद्र—१. वे० इ० "समुद्र (शाब्दिक अर्थ पानी का बटोर)

महासागर, ऋग्वेद तथा बाद के साहित्यों में बहुत बार आया है। यह बात इस विषय में महत्वपूर्ण है कि इससे संकेत मिलता है कि वैदिक भारतीय समुद्र जानते थे। यह तथ्य विविन्डी सेन्ट मार्टिन[1] द्वारा अस्वीकृत है। परन्तु केवल मैक्स-मूलर[2] और लासन[3] ही इसको नहीं मानते, बल्कि (जिमर[4] जो कि आर्यों के समुद्र को बहुत ही सीमित बतलाता और स्वीकार करता है कि ऋग्वेद[5] मे एक बार तथा बाद[6] के साहित्यों में यह शब्द आता है) उसके अनुसार समुद्र का बहाव तथा लहरें अज्ञात हैं, और सिंधुनदी के मुहाने का कभी भी वर्णन नहीं है और ऋग्० में मछलियाँ (मत्स्य) उनका भोजन जानी नहीं जातीं, समुद्र बहुत स्थानो में अलंकृत भाषा[7] मे नीचे तथा ऊपर[8] के समुद्ररूप मे आता है; अर्थात् दो समुद्रों का वर्णन

(१) ईटुड सुर्लजाग्राफी डुवेड ६२ से प्रारम्भ, तुलना करो विल्सन ऋग्० १।६१।

(२) सेक्रेड बुक्स आफ़ दी ईस्ट ३२।६१ से प्रारम्भ। यह ऋग्० १।७१।७, १६०।७, ५।७८।८, ७।४६।२,६५।२, १०।५८।

(३) इडिश्चे आल्टर थुम्स कुण्डे १[२],८८३।

(४) अल्टेन डिस्चेजलेवेन २२ से प्रारम्भ, तुलना करो मेकडानल सस्कृतलिटरेचर १४३, १४४।

(५) ७।६५।२।

(६) अथर्व० ४।१०।४ (मोती की सीप), ६।१०५।३ (समुद्र का 'विक्षर' बँटकर रहना), १६।३८।२, तैत्तिरीय सहिता ७।४।१३।१, इत्यादि।

(७) ऋग्० १०।१३६।५, तुलना करो अथर्व० ११।५।६।

(८) ऋग्० ७।६।७, १०।६८।५।

होता है, आदि। और अवतरणों में वह सोचता है कि समुद्र का तात्पर्य सिंधुनदी के उस हिस्से से है, जो पंजाब की पाँच सहायक[1] नदियों से बनता है। यह संभव है कि समुद्र के विषय में वैदिक ज्ञान इस प्रकार बहुत ही सीमित कर दिया जा रहा है, जो ज्ञान सिंधुनदी के जाननेवालों के लिये अनिवार्य-सा प्रतीत होता है। समुद्र के खजानों[2] का भी वर्णन बहुत बार आता है। संभवतः इसका तात्पर्य मोतियो तथा व्यापारिक[3] लाभ से है। और भुज्यु की कथा समुद्र पर जहाज चलाने की ओर संकेत करता है।"

"बेबिलन से वैदिक समय में कोई समुद्री व्यापार था, यह सिद्ध नहीं हो सकता। जो प्रभाव[4] है बू बुक आफ़[5] किंग्स तथा तुकूर्वीम मे बंदर तथा मोर के आने पर डाला जाता है, वह इस पुस्तक की संदेहपूर्ण तिथि से व्यर्थ हो जाता है और इस व्यापार का समय बहुत पहले मानने में बहुत कम कारण हैं।

---

(१) देखो उदाहरणार्थ ऋग्० १।७१।७, ३।३६।७, ३।४६।४, ५।८५।६, ६।३६।३, ७।६५।२, ८।१६।२, ४४।२५, ६।८८।६, १०७।६, १०८।१६ (जहाँ पर सोतो की ओर संकेत किया गया है) या ऋग्० १।६३।१, ४।२१।३, ५।५५।५, ८।६।२६ (जहाँ पर समुद्र तथा पृथ्वी में विरोध बतलाया गया है)।

(२) तुलना करो ऋग्० १।४७।६, ७।६।७, ६।६७।४४।

(३) तुलना करो ऋग्० १।४८।३, १।५६।२, ४।५५।६, डिस्कुरी और अश्विन का कहना एक-सा ही है।

(४) उदाहरणार्थ बेवर इन्डियन लिट्रेचर ३।

(५) १ किंग्स १०।२२।

यह व्यापार निःसंदेह ईसा के पूर्व[1] ७०० वर्ष आस-पास के समय मे बढ़ा। बाद के साहित्य समुद्र बार बार सागर[2] के लिये आता है।"

२. विविन्हो सेन्ट मार्टेन समुद्र को नहीं मानते हैं।

३. मैक्समूलर और लासन ऋग्० में समुद्र को स्वीकार करते हैं।

४. जिमर आर्यों के समुद्र के ज्ञान को बहुत ही सीमित मानते हैं और उनका कहना है कि ऋग्० में समुद्र का नाम एक ही बार आया है, और समुद्र का बहाव और लहरें उस समय आर्यों को मालूम नहीं थीं और ऋग्० मे सिंधुनदी के मुहाने का भी वर्णन नहीं है। ऋग्० में मछलियाँ उनका भोजन नहीं जानी जाती। बहुत से स्थानों में अलंकृत भाषा मे नीचे

(१) देखो केन्नेडी जरनल आफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी १८६८।२४१ से २८८ तक। बूलर इंडिस्चेस्टडियन ३।७६ से प्रारम्भ। इंडिस्चे पैलियोग्राफी १७ से १६ तक, जो कि अपने आने-जाने के साधनों को बहुत बढ़ाकर वर्णन करता है। विसेन्ट स्मिथ अर्ली हिस्ट्री आफ़ इंडिया २५ एन०।

(२) तैत्तिरीय सं० २।४।८।२, ७।५।१।२, ऐतरेय ब्रा० ५।१६।७ में वह असफल न होनेवाला बतलाया गया है। (तुलना करो ३।३६।७)। यह पृथ्वी के चारो ओर घूमता है, वही पुस्तक ८।२५।१। वह पूर्वी तथा पश्चिमी महासागर जो शतपथ ब्रा० १।६।३।११ (तुलना करो १०। ६।४।१) में यद्यपि अलंकृतरूप से आया है, संभवतः दोनों समुद्र हिन्द-महासागर और अरबमहासागर से सम्बन्ध दिखलाते हैं। तुलना करो हिल्लेब्रान्ट वेदिस्चे माइथालोजी ३।१४।१६। पिशल और गेल्डनर वेदिस्चे स्टडियन १।२३।

और ऊपर के समुद्रों का वर्णन मिलता है। और अवतरणों में समुद्र का तात्पर्य सिंधुनदी के उस हिस्से से है, जो कि पंजाब की पाँच सहायक नदियों से बनता है।

वस्तुतः यह शब्द ऋग्वेद तथा अन्य वेदो में सागर के अर्थ में आया है। योरोपियन विद्वानों का इसके विषय में जो मत है, वह हम ऊपर दिखला चुके। ऋग्० मे कहीं कहीं समुद्र का अर्थ अन्तरिक्ष भी होता है। इसलिये उन उदाहरणो को हम यहाँ पर न देंगे।

ऋग्० मे सागरअर्थ में समुद्रशब्द कहाँ-कहाँ आया है:— ऋग्० १।१९।७ यह अग्नि और मरुत् की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:-'हे अग्ने! आप जो मरुत् मेघों को चलाते हैं और पानीवाले समुद्र को तिरस्कृत करते हैं (निश्चल जल का तरंगादि की उत्पत्ति के लिये चलाना उसका तिरस्कार है) उन मरुतों के साथ आइये।' ८ वें का यह अर्थ है:—'हे अग्ने! जो मरुत् सूर्यकिरणों के साथ आकाश को व्याप्त करते हैं तथा अपने बल से समुद्र; अर्थात् सागर का तिरस्कार करते हैं, उन मरुतों के साथ आइये।' १।५६।२ यह इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है—'धन की इच्छा करनेवाले बनिये लोग धन के लिये यात्रा में जिस प्रकार समुद्र में जाते हैं, उसी प्रकार स्तुति करनेवाले नमंस्कारंपूर्वक जाते हुए यजमान लोग स्तुतियों से इन्द्र की आराधन करते हैं, इत्यादि।' १।४८।३ यह मन्त्र उषा; अर्थात् प्रातःकाल के अधिष्ठात्री देवता की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'जिस प्रकार धन की कामना करनेवाले लोग नावों को सजाकर समुद्र में भेजते हैं, उसी प्रकार प्रातःकाल

उषा के आगमन में जो रथ सजकर तैयार होते हैं, उन रथों की प्रेरणा करनेवाली उषादेवी ने पहले प्रातःकाल किया और आज भी करती है।' १।११६।४ यह मंत्र आश्विनीकुमारों की स्तुति में आया है। इससे पहले मंत्र में तुग्रराजा ने अपने पुत्र भुज्यु को सेनासहित नावों द्वारा समुद्र में भेजा। वे नावें समुद्र मे नष्ट हो गईं। तब भुज्यु ने आश्विनीकुमारों की स्तुति की। इसपर प्रसन्न हो अश्विनीकुमारों ने वहाँ पहुँचकर अपनी नावों द्वारा सेनासहित भुज्यु को तीन दिन रात के बाद भुज्यु के पिता के घर पहुँचा दिया। मंत्रार्थ यह है:-'हे नासत्यो = अश्विनीकुमारो! आपने सेनासहित पानी मे डूबे हुए भुज्यु को सैकड़ो पहिये-वाली और छः-छः जुते हुए घोड़ोंवाली नावों द्वारा तीन दिन-रात के बाद समुद्र के जलवर्जित प्रदेश में पहुँचा दिया।'

ऋग्० १।११६।५ यह अश्विनीकुमारो की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे अश्विनीकुमारो! आलम्बन-रहित (सहारा करने के लिये पकड़ने की वस्तु से रहित) तथा भूप्रदेश से रहित समुद्र में डूबे हुए भुज्यु को सैकड़ो डाँड़ोंवाली नावों में बैठाकर आपने उसके पिता के घर पहुँचा दिया। यह काम आपने किया।' १।९५।३ यह मंत्र अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'अग्नि के तीन जन्मस्थान हैं। पहला समुद्र में बड़वानल के रूप से, दूसरा द्युलोक में सूर्यरूप से और तीसरा अन्तरिक्ष में वैद्युताग्नि (बिजली-सम्बन्धिनी अग्नि) के रूप में, इत्यादि।' ८।१०२।४ यह मंत्र अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'समुद्र के बीच मे बसनेवाले पवित्र अग्नि को भृगु जिस प्रकार प्राप्त हुए उसी प्रकार हम आह्वान कर रहे हैं।'

४।५८।११ यह अग्निस्तुति में है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आपके तेजस्थान में संसार स्थित है। समुद्र के भीतर वड़वानल रूप में और सम्पूर्ण प्राणियों में जठराग्निरूप में आप स्थित हैं, इत्यादि।' १।१९०।७ में नदियों का समुद्र में जाना वर्णन है और समुद्र का अर्थ सागर ही है। अर्थ 'रोधचक्रा' में है। १।१३०।५ मे नदियों का समुद्र में जाने का वर्णन है। मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र! आपने जिस प्रकार रथों को हमारे यज्ञ के सामने आने के लिये पैदा किया है, उसी प्रकार बिना प्रयत्न के नदियो को समुद्र के सामने जाने के लिये मेघों के भेदन द्वारा पैदा किया है, इत्यादि।' ६।५०।१३ का अर्थ यह है:—'और भी प्रेत्तकरूप से सर्वत्र प्रख्यात वह सूर्य; भग और धनों को पूरा करनेवाले अग्नि हमारी रक्षा करें तथा देवताओं की स्त्रियों के साथ प्रसन्न देवता, त्वष्टा, देवताओं के साथ प्रसन्न द्युलोक और समुद्रों के साथ प्रसन्न पृथ्वी हमारी रक्षा करें।' इसमें 'समुद्रैः' शब्द बहुवचन में आया है, जिसका अर्थ तीन या उससे अधिक समुद्र होते हैं। ९।८०।१ का देवता सोम है। अर्थ यह है:—'यजमानों को देखनेवाले कूटकर निकाले हुए सोम की धाराएँ निकलती हैं और वह सोम द्युलोक में वर्तमान इन्द्र आदि के लिये हवन किया जाता है तथा मंत्र-पालक की स्तुति से विशेष करके प्रकाशित होता है। जिस प्रकार समुद्र पृथ्वी में व्याप्त है, उसी प्रकार सवन यज्ञों में व्याप्त है।' इसमें 'समुद्रासः' शब्द आया है, जो कि बहुवचन में है। इससे तीन या तीन से अधिक समुद्र अर्थ होता है और बहु-वचन होने से समुद्र का अन्तरिक्ष अर्थ भी संभव नहीं।

९।३३।६ में धनो से पूर्ण चार समुद्रों का वर्णन है। मंत्र सोमस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे सोम ! धन से पूर्ण चारों समुद्रों को तथा अपरिमित मनोरथो को हमारे लिये चारों ओर से दीजिये।' यहाँ 'समुद्रान्' शब्द और उसका विशेषण 'चतुरः' आया है, जो स्पष्टतः चार समुद्र अर्थ कर रहा है। ये चारों समुद्र पृथ्वी के चारो ओर के समुद्र हैं। १०।४७।२ यह इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'सुन्दर शस्त्रवाले, सुन्दर रक्षावाले, सुन्दर नेत्रवाले और चारो समुद्रों को यश से व्याप्त करनेवाले इत्यादि गुणों से युक्त आपको हम जानते हैं, इत्यादि।' इसमे 'चतुः समुद्र' शब्द आया है, जिसका अर्थ 'चार समुद्र' है, जो कि पृथ्वी के चारो ओर हैं। ४।१६।७ यह इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे राक्षसादि से रक्षक इन्द्र ! आपका वज्र मेघ का हननकर जल की बहुत अधिक प्रेरणा करता है। पृथ्वी चेतनावाली होकर आपसे मिलती है। हे दूसरो को तिरस्कृत करनेवाले शूर इन्द्र ! आप बल से लोकों के पालक होकर समुद्र-सम्बन्धी जलो की प्रेरणा करते हैं।' इस मंत्र में समुद्र के जल की वर्षा इन्द्र करते है, इस वर्णन से वर्षा मे मानसून द्वारा लाया गया समुद्री जल होता है, यह वर्णन मिलता है। १०।९८।५ मंत्र देवस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'आर्ष्टिषेण देवापि=कल्याण करनेवाली देवताओं की स्तुति को जानता हुआ होतृकर्म करने को बैठा है। वह ऊपर वर्तमान अंतरिक्ष नामक समुद्र से नीचे स्थित पार्थिव समुद्र के सामने वर्षा से पैदा हुए जलो को छोड़े।' इसमे दो समुद्रों का वर्णन है। ऊपरी समुद्र अंतरिक्ष है और नीचे का समुद्र पृथ्वी का

समुद्र है। १०।९८।६ में भी ऊपर और नीचे के समुद्रों का वर्णन है। १०।१३६।५ 'वायु की गति के समान व्याप्त अथवा वायु का भक्षण करनेवाला, इसीलिये वायु का मित्र देव=द्योतमान् वायु अथवा सूर्य को प्राप्त हुआ करिक्रत नाम का ऋषि वायुरूप या सूर्यरूप होकर पूर्वी और पश्चिमी दोनों समुद्रों पर जाता है।' इसमे पूर्वी और पश्चिमी दो समुद्रों का वर्णन है। ८।३।१० यह इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र! जिस आत्मीय बल से आपने समुद्रों के लिये बहुत अधिक जल पैदा किया है, वह आपका बल सम्यक् फल देनेवाला है, इत्यादि।' ८।१२।५ यह इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—हे स्तुतियो से सम्यक् भजन के योग्य इन्द्र! हमसे किये गये स्तोम=सामवेद के स्तोत्र का आप सेवन करें। हे इन्द्र! जिस स्तोम से व्याप्त रक्षाओ से आप हमारी रक्षा करते हैं, वह स्तोम समुद्र के समान बढ़ता है।' २।१९।३ का मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'पूज्य और मेघ के हनन करनेवाले इन्द्र ने जलों का प्रवाह समुद्र के सामने प्रेरित किया, इत्यादि।' ३।४६।४ यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'जिस प्रकार नदियाँ समुद्र मे प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार कूटकर निकाले गये सोम इन्द्र के सामने प्रवेश करते हैं, इत्यादि।' १।३०।३ यह इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'सोमों के शत या सहस्र, जिस प्रकार समुद्र में जल व्याप्त हैं, उसी प्रकार इन्द्र के उदर मे व्याप्ति धारण करते हैं, इत्यादि।' १।१६७।२ यह मंत्र मरुत् की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'इन वायुओ के नियुत नामक उत्कृष्ट घोड़े समुद्र के पार से

भी धन को धारण और वहन करते हैं, इसीलिये वे वायु रक्षण और धनों के साथ हमारे सामने आयें, इत्यादि।' २।१६।३ यह इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र! आपका रथ समुद्रों और पर्वतों से परिभव के योग्य नहीं है, इत्यादि।' ३।३६।६ यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'नदियाँ जिस प्रकार काम का अनुसरणकर बहुत दूर समुद्र में जाती हैं और उनके जल बहुत बड़े समुद्र में उसके प्रसन्न करने के लिये रथियों के समान जाते हैं। जिस प्रकार छोटी-सी नदियाँ और उनके थोड़े से जल बहुत बड़े समुद्र को तृप्त करते हैं, उसी प्रकार थोड़े से सोम इतने बड़े इंद्र को तृप्त करते हैं, इत्यादि।' ३। ३६।७ 'समुद्र के साथ संगति माँगती हुई नदियाँ जिस प्रकार उस समुद्र को पूरा करती हैं, इत्यादि।' १।८।७ यह इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'अतिशय करके सोम के पीने से इन्द्र की कुक्षि समुद्र के समान बढ़ती है, इत्यादि।' १।११।१ यह इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'समुद्र की तरह व्याप्त इन्द्र को हमारी सब स्तुतियों ने बढ़ाया, इत्यादि।' १।२५। ७ यह वरुणस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'समुद्र में स्थित वरुण आकाशमार्ग में उड़ते हुए पक्षियों के स्थान को जानता है, इत्यादि।' १।३२।२ यह इंद्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'उस वज्र से मेघ के भिन्न होने पर बहते हुए जल, जिस प्रकार बछड़ों के लिये रँभाती हुई गायें बछड़ों के पास जाती हैं, उसी प्रकार समुद्र में गये, इत्यादि।' ६।५०।१४ का अर्थ यह है:—'अहिर्बुध्न्य पृथ्वी और समुद्र हमारी स्तुति को सुनें, इत्यादि।' ६।६२।६ यह अश्विनीकुमारों की स्तुति में आया है।

अर्थ यह है:—'उन दोनों अश्विनीकुमारों ने तुग्र के पुत्र भुज्यु को नाव डूब जाने पर धूलरहित अंतरिक्ष के मार्गों से रथों से युक्त उड़नेवाले घोड़ों द्वारा समुद्र से निकाला।' १०।४५।३ यह मन्त्र अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! समुद्र में पैदा हुए जलों के मध्य में वाड़वरूप से स्थिति आपको मनुष्यों के ऊपर अनुग्राहकता से वरुण ने दीप्त किया, इत्यादि।' १०।७२।७ 'हे देवताओ! समुद्र के जल में छिपे हुए सूर्य को आप प्रातःकाल उदय के लिये लाये, इत्यादि।' १०।१४२।७ यह अग्निस्तुति में आया है। स्तम्बमित्र इसके ऋषि हैं। अर्थ यह है:—'यह हमारा निवासस्थान जलों का ह्रद हो और समुद्र का गृह हो; अर्थात् जैसे ह्रद और समुद्र को आप नहीं जलाते उसी प्रकार हमारे निवासस्थान को न जलायें, इत्यादि।' १०।१४२।८ का अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आपका आगमन होने पर हमारा घर समुद्र के आश्रयभूत हो; अर्थात् जैसे समुद्र के भीतर के घर नहीं जलते, उसी प्रकार न जले, इत्यादि।' १०।१४३।५ यह मंत्र आश्विनीकुमारों की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अश्विनीकुमारो! आपने समुद्र में डूबे हुए जल के प्रान्तों में तरंगों में इधर-उधर डोलते हुए भुज्यु को आकर परवाली नावों से बचाया, इत्यादि।' ७।३३।८ 'हे वशिष्ठ के पुत्रो! आपके स्तोम समुद्र के समान गम्भीर हैं, इत्यादि।' ७।३५।१३ यह मन्त्र विश्वेदेव की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'अहिर्बुध्न्य देव हमारी शान्ति के लिए हों और समुद्र भी हमारी शान्ति के लिये हों, इत्यादि।' ७।५५।७ 'सहस्र किरणोंवाला सूर्य समुद्र से उदय होता है, इत्यादि।' ७।९५।२ इसमे सर-

स्वती का पर्वतों से निकलकर समुद्र में गिरने का वर्णन है। ८।५।२२ 'हे अश्विनीकुमारो ! तुग्र के पुत्र भुज्यु ने समुद्र में छोड़े जाने पर कब आपकी स्तुति की, इत्यादि ।' ८।६।४ 'जिस प्रकार नदियाँ समुद्र को स्वयं नमती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजाऍ इन्द्र के कोप को नमती हैं।' ८।६।१३ 'इस इन्द्र के क्रोध ने मेघ को टुकड़े-टुकड़े करते हुए जिस समय गर्जनरूप शब्द किया, उस समय इन्द्र ने समुद्र के प्रति वृष्टि के जलों की प्रेरणा की।' ।८।६।३५ 'जिस प्रकार नदियाँ समुद्र को बढ़ाती है, उसी प्रकार हमसे किये गये सामवेद के स्तोत्र इन्द्र को बढ़ाते हैं।' ८।१६।२ 'जिस प्रकार तरंगसमूह समुद्र में छिप जाता है, उसी प्रकार इन्द्र मे सामवेदोक्त स्तोत्र और हविरूप अन्न रमण करते है।' ८।२०।२५ हे शोभन यज्ञवाले मरुतो । सिन्धु नामक नद, असिक्नीनदी और समुद्रो मे जो ओषधियाँ है, उनको आप देखें।' इसमें 'सिन्धवः' और 'समुद्रेषु' दोनों पद हैं। ९।८८।६ 'यह पवित्र किये गये सोम मेघों से बरसे गये आकाश के जलो के समान अविमय (भेड़ के) बालों का अतिक्रमण करते हैं, और अनायास नदियाँ जैसे समुद्र में जाती हैं, उसी प्रकार निकाले हुए सोम नीचे की ओर कलशों में जाते हैं।' ९।१०७।९ 'गाय के दूध और दही इत्यादि से युक्त सोम कलश में गिरता है, जिस प्रकार जल समुद्र में जाते हैं, उसी प्रकार रसरूप अन्न द्रोणकलश में जाते हैं, इत्यादि ।'

जिमर ने समुद्र की तरंगों का वर्णन ऋग्वेद मे नहीं माना है, सो ठीक नहीं। क्योकि ८।१६।२ में तरंगों का वर्णन मिलता है। समुद्र का तात्पर्य सिधुनद के विशेष भाग मे मानना भी

अनुचित है। क्योकि ८।२०।२५ में 'सिन्धौ और 'समुद्रेषु' दोनों पद मिलते हैं। समुद्रशब्द से सिधुनदी का अर्थ संस्कृतवाङ्मय-मात्र में कहीं भी संभव नहीं। समुद्र का ऋग्वेद में वर्णन इतने स्थानो पर रहते हुए भी जो लोग एक ही स्थान में वर्णन को मानते हैं या समुद्र का वर्णन नहीं है—यह सम्पादन करते हैं, वे कितने सच्चे हैं, इसे विद्वान् लोग सोचें। साथ ही; विचार करें कि जब समुद्र में नदियो के प्रवेश को जानते थे, तब सिंधु के मुहाने को नहीं जानना और समुद्र को जानते हुए लहरों को न जानना, कहाँ तक सम्भव है।

लासन, मैक्समूलर, मेकडानल और कीथ स्पष्टरूप से समुद्र को स्वीकार करते हैं। मेकडानल और कीथ हिन्दमहासागर और अरबसागर तक सीमित रहते हैं, यह उनकी संकीर्णता है। जब कि चार समुद्र पृथ्वी के चारों ओर है तो यहाँ पर भी चार समुद्र से वही लिये जायँगे। पूर्वी समुद्र का चीन से पूर्व के सागर में तात्पर्य है और पश्चिम समुद्र से भी सबसे पश्चिम दिशा के समुद्र में तात्पर्य है, न कि अरबसागर में।

अथर्ववेद ४।१०।४ में शंखमणि का वर्णन है। शंख को मोती की सीप कहना ठीक नहीं। शखमणि शंख ही है। ऋग्० १।४८।३ तथा १।५६।२ का अर्थ हम ऊपर लिख चुके हैं। इनमें समुद्र के खजाने का वर्णन नहीं हैं; प्रत्युत इससे व्यापारियों के जहाज व्यवसाय के लिये समुद्रों द्वारा समुद्र के तट पर बसनेवाले देशों मे माल पहुँचाते थे और वहाँ का माल यहाँ लाते थे, यह अनुमान होता है। इसी प्रकार ४।५५।६ से भी समुद्र के व्यवसाय का अनुमान होता है।

१।७१।७ का अर्थ यह है:—'जिस प्रकार सात महानदियाँ समुद्र में जाती हैं, उसी प्रकार पुरोडासादि अन्न अग्नि के सामने जाते हैं।' इसमें समुद्र में नदियों के जाने का वर्णन है। सिंध का भाग यदि अर्थ होता तो नदियों के न जाने का उसमें वर्णन होता। शतलज के मिलने के बाद उसमें किसी के मिलने का सम्भव नहीं है। इससे जिमर का कथन ठीक नहीं है। ३।४६।४ का अर्थ हम ऊपर लिख चुके हैं। इसमें समुद्र में नदियों के जाने का वर्णन है। सिंध के उस भाग में नदियो के न मिलने का जिमर का कथन एक दम निराधार है। ५।८५।६ यह मंत्र वरुणस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'शुभ्र और गमनशील जलों से चारों ओर सींचती हुई बहुत-सी नदियाँ सर्वदा जल से समुद्र को पूरा करती हुई भी पूरा नहीं कर सकतीं। यह वरुण का महत् कर्म है। प्रकृष्ट बुद्धिवाले स्तुति के योग्य वरुण की सर्वप्रसिद्ध बड़ी माया को कोई भी हनन नहीं कर सकता।' इसमें नदियों द्वारा समुद्र भरा जाता है और पूरा नहीं भर पाता, यह वर्णन है। क्या यह बात सिंधु के उस भाग में सम्भव है, जिसको जिमर समुद्र मानते हैं? इसपर बुद्धिमान् लोग विचार करें।

सरयु—१. वे० इ० "ऋग्० में इसका नाम तीन बार नदी के रूप में आता है। चित्ररथ और अर्ण, तुर्वशाज् और यदूज् से जिन्होने कि सरयु[1] को पार किया था, उनसे हराये माने

---

(१) ४।३०।१८, इससे हमें कोई सहायता नहीं मिलती। क्योंकि या तुर्वश और यदु को हम चित्ररथ और अर्ण का हरानेवाला न मानें, अथवा यदि वे हैं, तो इन दोनो के विरोध में पूर्व में चले आये होंगे।

जाते हैं। सरयु सरस्वती तथा सिंधु[1] के साथ एक स्थान पर आती है। दूसरे स्थान पर रसा, अनितभा तथा कुभा[2] के साथ आती है। बाद में उत्तरवैदिक काल में सरयु वर्तमान अवध की सरयू[3] है। जिमर[4] इसको वेद के प्रत्येक स्थान पर आई हुई तथा अन्त में आई हुई नदी मानते हैं, जो कि सरयू को पंजाब की नदी मानने मे एक कारण हो सकता है, या यह उत्तरी-पूर्वी मानसून या पश्चिमी मानसून की ओर संकेत है। हापूकिंस[5] सोचता है कि सरयू पश्चिम में पाई जा सकती है। लुडविक[6] इसको कुमु मानता है। वीविन्डा सेन्ट मार्टिन सोचता है कि यह संवभतः शुतुद्रु अथवा विपाशा से मिली नदी होगी।"

२. जिमर इसको पंजाब की नदी मानते हैं। (वे० इ०)

३. मुइर और मैक्समूलर का भी यही मत है। (वे० इ०)

४. हापूकिंस के मत में सरयू पश्चिम में पाई जा सकती है। (वे० इ०)

---

(१) १०।६४।६। (२) ५।५३।६।

(३) यह अवध की बड़ी नदी घाघरा से मिलनेवाली है। घाघरा का भी सरयू नाम ब्रह्मघाट के नीचे कहा जाता है। लोअर घाघरा की एक शाखा जो कि दाहिनी ओर घाघरा के पुराने मार्ग पर बहती हुई बलिया पार करने के बाद गंगा में मिलती है, वह छोटी सरयू कही जाती है। तुलना करो इम्पीरियल गजटियर आफ इन्डिया २२।१०६ तथा १२।३०२, (घाघरा) २३।४१८, पूर्वी टॉस २६ प्लेट ३१।

(४) आल्टिन डिस्चेजलेवेन १७।४५, तुलना करो मुइर संस्कृत टैक्स २[२]।२५, मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट ३२।३२३।

(५) रेलीजन्स आफ इंडिया ३४।

(६) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।२८०।

५. लुडविक के मत में यह क्रुमुनदी है। (वे० इ०)

६. विविन्डी सेन्ट मार्टीन इसको शुतुद्रु (शतलज) अथवा विपाशा (व्यास की सहायक नदी) मानते हैं। (वे० इ०)

७. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८१ "सरयु अवध की घाघरानदी या गोगरा, इसके तट पर अयोध्यानगर है (रामायण बालकाण्ड अध्याय २४)। 'कामाश्रम और शोण' देखो। प्रमाणतः मिलिन्द पन्हव की सरभूनदी (४।१।३५)। यह नदी कुमायूँ के पहाड़ो से निकलती है तथा कालीनदी के संगम के बाद सरयू कहलाती है। यही घाघरा या देवानदी है। महाभारत के अनुसार यह मानसरोवर से निकलती है (महाभा० अनु० अ० १५५)।"

वस्तुतः यह एक नदी है और उत्तरप्रदेश में इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह पहले छोटी होने पर भी बड़ी नदी घाघरा से मिलने पर भी बाद में सरयू नाम से ही प्रसिद्ध रही। ऋग्० ४।३०।१८ में उकारान्त 'सरयु' शब्द मिलता है और वह नदी का वाचक है। मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र ! और भी शीघ्र ही आपने प्रसिद्ध और आर्यत्वाभिमानी होते हुए भी इन्द्रभक्ति से रहिर अर्ण और चित्ररथ राजाओं को सरयुनदी के पार मे मारा।' इसके पहले मन्त्र में इन्द्र ने यदु और तुर्वश राजाओं को राज्याभिषेक के योग्य बनाया, यह लिखा है। परन्तु इन दोनों मन्त्रों में परस्पर कोई संबन्ध नहीं है। यदि संबन्ध मान भी लिया जाय तो यदु की संतान और तुर्वश की संतान अर्थ करना असंभव है। इससे यदूज् और तुर्वशाज् से चित्ररथ और अर्ण को हराना कहनेवाले असम्बद्ध

प्रलापी हैं। ऋग्० १०।६४।९ में 'सरयु' शब्द उकारान्त है और अर्थ यह है:—'बड़ी से बड़ी सरस्वती, सरयु, सिंधु इत्यादि २१ नदियाँ यज्ञ में हमारी रक्षा के लिये अपनी लहरों के सहित आयें। देवीमाताएँ और प्रेरणा करनेवाली ये नदियाँ अपने घृत और मधुयुक्त जलों को हमारे लिये दें।' ५।५३।९ का अर्थ हम 'कुभा' में लिख चुके हैं। यहाँ पर भी यह शब्द उकारान्त ही आया है। जिमर सरयू को पंजाब की नदी मानते हैं, उसका कारण मानसून है। हम जिमर और उनके वकीलों से प्रश्न करते हैं कि ऋग्० या अन्यत्र सरयू में पश्चिमी मानसून आने में कोई प्रमाण है? यदि नहीं है तो मानसून के बल पर प्रसिद्ध सरयू को छोड़कर पंजाब में ले जाना असंगत है। हाप्किंस, लुडविक, विविन्डी सेन्ट मार्टीन इत्यादि के कथन प्रमाणाभाव से माने नहीं जा सकते। यदि पजाब तक ही ऋग्० के समय में आर्यों का ज्ञान था, इसे सिद्ध करने के लिये ही यह प्रयत्न है, तो इनको चाहिये कि ऋग्० ५।८३।८ को देखें। इस मंत्र मे नदियो का पूर्वाभिमुख होकर बहने का वर्णन है। ईरान से पंजाब तक कितनी ही नदियाँ पूर्वाभिमुखी बहती हैं। आप इन पूर्वमुखी नदियों का वर्णन रहते हुए केवल पश्चिमी मानसून का सहारा लेकर 'पंजाब तक वेद में वर्णन है' यह साबित नहीं कर सकते। सरयू को पुराणादि ग्रन्थ अवध की सरयू कह रहे हैं और इस नाम से एक नदी प्रसिद्ध भी है। तब पंजाब में इसका मानना कोई भी प्रतिष्ठा नहीं रखता। कल्कि पु० ३।३।५७ सरयुनदी अयोध्या में है। वाल्मीकि बाल० (गु०) २४।९ सरयूनदी अयोध्या में है। यह कैलाश के शिर

पर स्थित मानससर से निकलती है और अनंगदेश में कामाश्रम के समीप गंगा से मिलती है। यह नदी ब्रह्मसर से निकलती है, ऐसा भी कहा जाता है। 'सर' से निकलने के कारण 'सरयू' नाम पड़ा। पद्म० भू० उ० ८१।२७ तथा ३९।५३ यह नदी है। ब्रह्मा० पू० अ० १६।२५ सरयुनदी हिमालय के पाद से निकली है और भारत में है। ब्रह्मा० म० उपो० ५१।६५ यह नदी अयोध्या में है। स्कन्द० वै० अयो० १।३१३ इसके तट पर अयोध्यापुरी है। १४४ इसका घाघरा से संगम है। ४३ यह मानससर से निकलती है। बड़े-बड़े मुनीश्वर इसके तट पर रहते हैं। यह अयोध्या के उत्तर पार्श्व में है। वाराह० ८५०० यह नदी हिमालय के चरण से निकलती है और भारत में है। वामन० १३।२३ यह नदी भारत में है और हिमवत्पाद से निकलती है। ८३।८ यहाँ गोप्रतारतीर्थ और कुशेशयतीर्थ भी हैं। नारदीय० उ० ४०।३८ यह गंगा से मिली है। इसके तट पर गोप्रतारतीर्थ है। जहाँ पर भगवान् रामचन्द्र अयोध्या-निवासियों के साथ परमधाम को गये। महाभा० भी० (म०) ९।१८ यह नदी भारत में है। विष्णुधर्मोत्तर० १।१।१३ इसके तट पर कोशल में अयोध्यापुरी है। रघुवंश १३।६ यह नदी ब्रह्मसर से निकली है और अयोध्या के समीप है। काशिका ६।४।१७४ यह नदी है और इसका जल सारव कहा जाता है।

सरसी—व्याकरण महाभाष्य में 'ईदूतौ च सप्तम्यर्थे' १।१।१८ के 'वचनाद्यत्र दीर्घत्वं' इस वार्तिक के व्याख्यान मे ऋग्० ७।१०३।२ के दिव्या० इत्यादि मन्त्र का 'दृतिन्नशुष्कं सरसी शयानम्' यह भाग उदाहरण में दिया है। उसके आगे के

वार्तिक 'तत्रापि सरसी यदि'—के व्याख्यान में 'अस्ति च लोके सरसी शब्दस्य प्रवृतिः कथं दक्षिणापथे महान्ति सरांसि सरस्यः इत्युच्यते'। अर्थात् 'लोक में सरसीशब्द की प्रवृत्ति है। कैसे? दक्षिणापथ में बड़े-बड़े तालाब सरसी कहे जाते हैं।' यह उदाहरण महाभाष्यकार ने ऋग्० का दिया है और उसी के 'सरसी' शब्द के लिए यह कहा है। जो लोग 'ऋग्० के समय में आर्यों को दक्षिण का ज्ञान नहीं था'—यह मानते हैं उन लोगो को यह महाभाष्य देखना आवश्यक है।

सरस्वती—१. वे० इ० "सरस्वती[1] ऋग्वेद तथा बाद के साहित्यो[2] में नदी के रूप में बहुत बार आई है। बाद के साहित्यो मे बहुत से स्थानो को देखने से यह पता चलता है कि वर्तमान सरस्वती ही रही होगी, जो कि पटियाला मे विनशन नामक स्थान पर लुप्त हो जाती है। राथ[3] भी यह स्वीकार करता है कि ऋग्० मे कुछ स्थानों में इसी सरस्वती से तात्पर्य

(१) इसका शाब्दिक अर्थ गढ़े से बनी हुई है। सभवतः यह अर्थ इसके पानी के तह के नीचे होने के सकेत से होता है। यह नाम ईरानियन हरक्वैती, जो वर्तमान हेलमण्ड है, उसका प्रसग देता है।

(२) तैत्तिरीय सहिता ७।२।१।४, पञ्चविंश ब्रा० २५।१०।१, कौषीतकी ब्रा० १२।२।३, शतपथ ब्रा० १।४।१।१४, ऐतरेय ब्रा० २।१९। १।२, सम्भवतः अथर्व० ६।३०।१ यह सूची सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी के आधार पर है।

(३) ऋग्० ३।२३।४, (जहाँ पर कि दृषद्वती प्रकट होती है), १०।६४।९, ७५।५ (जहाँ पर सिधु का भी लेख आया है)।

है। दृषद्वती[1] के साथ सरस्वती, ब्रह्मावर्त ('मध्यदेश' देखिये) की पश्चिमी सीमा बनाती है। यह प्राचीन वैदिक भारत की पवित्र नदी है। सूत्रों[2] मे इसके किनारे पर किये गये यज्ञों का उल्लेख आया है। ऋग्०[3] के और बहुत से स्थानों पर तथा बाद[4] के साहित्यो मे राथ के अनुसार दूसरी नदी सिंधु का का तात्पर्य है। तभी यह स्पष्ट किया जा सकता है कि सरस्वती सबसे पहले की नदी (नदीतमा[5]) कही गई है। यह क्यो[6] समुद्र में गिरती मानी गई अथवा बहुत बड़ी नदी से क्यों

---

(१) संभवतः वर्तमान चौतग, जो कि थानेश्वर के पूर्व से होकर बहती है। तुलना करो ओल्डहम जरनल आफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी २५।५८, इम्पीरियल गजटियर आफ़ इन्डिया २६ प्लेट ३२।

(२) कात्यायन श्रौ० सू० १२।३।२० तथा २४।६।२२, लाट्याठ श्रौ० सू० १०।१५।१, १८।१३, १६।४, आश्व० श्रौ० सू० १२।६।२।३, शांखायन श्रौ० सू० १३।२६।

(३) ऋग्० १।८६।३, १६४।१६, २।४१।१६ से प्रारम्भ, ३०।८, ३२।८, ३।५४।१३, ५।४२।१२, ५।४३।११, ५।४६।२, ६।४६।७, ६।५०।१२, ६।५२।६, ७।६।५, ७।३६।६, ७।३६।५, ७।४०।३, ८।२१। १७, ८।५४।४, १०।१७।७, १०।३०।१२, १०।१३१।५, १०।१८४।२।

(४) अथर्व० ४।४।६, ५।२३।१, ६।३।२, ६।८६।३, ७।६८।१ (वस्तुतः १०), १४।२, १५।२०, १६।४।४, १६।३२।६, तैत्तिरीय सं० १।८।१३।३, वाजसनेयी सं० १६।६३, ३४।११, शतपथ ब्रा० १।६, २।४, ११।४।३।३, १२।७।१।१२ तथा २।५, बृहदारण्यकोपनिषद् ६।३।८, इन सब अवतरणों को नं० २ के साथ रखना चाहिये।

(५) ऋग्० २।४१।१६।

(६) ऋग्० ६।६१।२।८, ७।६६।२।

तात्पर्य है, जिसके किनारे पर बहुत से राजे[1] तथा सचमुच पाँच जातियाँ रहती हुई मानी[2] गई हैं। जिमर[3] तथा अन्य लोगो[4] से भी यह धारणा स्वीकृत है। लासन[5] तथा मैक्स-मूलर[6] वैदिक सरस्वती को बाद मे आनेवाली सरस्वती[7] ही मानते हैं। मैक्समूलर की राय मे वैदिक समय में सरस्वती उतनी ही बड़ी थी, जितनी कि शतलज और यह सचमुच सिंध से मिलकर अथवा न मिलकर स्वतंत्ररूप से समुद्र तक गई होगी, जो सिंधु पंजाब की पश्चिमी सीमा शेष भारत के लिये थी।

---

(१) ऋग्० ८।२१।१८।

(२) ऋग्० ६।६१।१२।

(३) अल्टेन डिस्चेजलेवेन ५।१०।

(४) प्रमाणतः ग्रिफिथ हिम्स आफ् दि ऋग्वेद १।६०।२।६० आदि, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ् दि ऋग्वेद ३।२०१, २०२।

(५) इंडिस्चे आल्टर थुम्स कुण्डे १[2], ११८।

(६) सेक्रेड बुक्स आफ् दि ईस्ट ३२।६०।

(७) पूर्व से पश्चिम जानेवाली नदियो की ऋग्वेद १०।७५।५ की सूची में गगा, यमुना, सरस्वती और शुतुद्रि है, जिसमे कि सरस्वती जमुना तथा शतलज के बीच मे पड़ती है, जो कि वर्तमान सरसुती (सरस्वती) का स्थान है, जो कि थानेश्वर के पश्चिम से बहती हुई पटियाला नामक प्रान्त में एक और घग्गर नामक पश्चिमवाहिनी नदी से मिलती है तथा सिरसा से होकर गुजरती है और भटनैर के स्थान पर बालू में लुप्त हो जाती है। परन्तु एक सूखी हुई (हकरा या घग्गर) उस स्थान से सिंधुनदी तक प्राप्त की जा सकती है, इम्पीरियल गजटियर आफ इंडिया २६ प्लेट ३२ देखिये और ओल्डहम से तुलना कीजिये। जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी २५।४६,७६ भी देखिये।

परन्तु सरस्वती की लम्बाई और चौड़ाई में कोई परिवर्तन होने का सबूत नहीं मिलता। यद्यपि नदी कुछ कम हो गई थी, इस बात मे इन्कार करना असम्भव है; परन्तु बाद की सरस्वती और प्राचीन सरस्वती का एकीकरण करने के लिये बहुत से प्रमाण है। नदी का दैविक रूप उसी ऋचा[1] मे है, जो इसको पाँच जातियों से संबद्ध किये है तथा इसके बाद के पवित्र होने को सिद्ध करती है। और वह ऋचा, पारावताज् जो कि पंचविंश[2] ब्राह्मण मे आये हैं उनको पूर्व मे उनके असली घर से कुछ दूर बतलाती है, यह तभी है जब कि सरस्वती[3] को सिंधु मान लिया जाय। पुरूज् लोग सरस्वती के ऊपर बसे थे, बहुत कठिनाई से पश्चिम में स्थित माने जा सके हैं। और पाँच जातियाँ बहुत आसानी से सरस्वती पर रहती हुई मानी जा सकती है, जैसा कि प्रतीत होता है कि वे कुरुक्षेत्र मे भरताज् के पश्चिमी पड़ोसी थे। उस विचार से सरस्वती बड़ी आसानी से पंजाब की सीमा मानी जा सकती है। सात नदियाँ जो कि एक स्थान[4] पर दिखलाई जाती हैं, वे पंजाब की पाँच नदियाँ

---

(१) ऋग्० २।४१।१६ 'देवितमे'।

(२) 'पारावत' देखिये और 'बृसय' से तुलना कीजिये।

(३) ऋग्० ७।६५।६६, लुडविक की वही पुस्तक ३।१७५, यह स्वीकार करता है कि सिंधुनदी यहाँ नहीं हो सकती। हिल्लेब्रान्ट वेदिस्चे-माइथालोजी १।११५ देखिये।

(४) ऋग्० ८।२४।२७ सरस्वती तथा सात नदियों का सम्बन्ध अस्पष्ट-सा है। ऋग्० ८।५४।४ में सरस्वती तथा सात नदियाँ अलग-अलग वर्णित हैं, और ६।६१।१०–१२ में वह सात नदियों की बहन कही गई

सिंधु तथा कुभा न होकर पंजाब की पाँच नदियाँ सरस्वती तथा सिंधु रही होंगी। यह भी समझने में कठिन नहीं है कि यह नदी समुद्र तक बहती क्यों मानी गई है, या तो वैदिक लेखक सरस्वती के मार्ग से कभी समुद्र तक गया न होगा, अथवा नदी बहुत दूर तक रेगिस्तान मे बही होगी। केवल ब्राह्मण समय में इसका रेगिस्तान मे लुप्त होना पाया जाता है। कहा जाता है कि वाजसनेयी[1] संहिता में लिखा है कि पाँच नदियाँ सरस्वती तक जाती हैं; परन्तु प्रमाण बाद का ही नहीं है (जैसा कि देशशब्द का प्रयोग बतलाता है) वरन् यह नहीं बतलाता कि यह पाँच नदियाँ पंजाब ही की थीं। यह अंश अन्य संहिताओं मे नहीं है और यह कोई प्राचीन लेख भी नहीं माना जा सकता। यदि यह बाद का है तो बाद की सरस्वती से तात्पर्य है। हिल्ले[2]ब्रॉन्ट सरस्वती[3] की इसी धारणा को अपनाता है। परन्तु यह भी इसके अन्दर एक काल्पनिक

है 'सप्तस्वसा'। ७।३६।६ में सरस्वती को सातवीं नदी कहा गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरस्वती उनमे एक रही होगी। यदि ऊपर के अवतरणों पर विश्वास किया जाय तो 'सप्तस्वसा' की उस समय की नदियों से सरस्वती अलग रही होगी, तब सिंधु, कुभा तथा पंजाब की पाँच नदियाँ होंगी। 'सप्त सिंधवः' देखिये। परन्तु यह शब्द उन नदियों में से एक के लिये भी आ सकता है।

(१) ३४।११।

(२) वेदिस्चेमाइथालोजी १।९९ से प्रारम्भ, ३।३७२, ३७८।

(३) ऋग्० में केवल एक अवतरण जो कि २४ और २५ के नोट में है, उसके सिवाय सभी स्थानों पर इसी अर्थ में आता है।

नदी के सिवाय वैतरणी[1] और अराकोशिया[2] की आरगन्दाब का अनुमान करता है। इस धारणा का आधार उसकी वह थ्योरी[3] है, जो कि ऋग्० के छठे मण्डल का कार्यस्थान ईरानियन क्षेत्र को मानती है, जो सातवें मण्डल के विरोध मे है। परन्तु यह वैसे ही मानने योग्य नहीं है, जैसे कि उसकी थ्योरी ब्रन्होफर[4] ने किसी समय ईरानियन क्षेत्र को छठे मण्डल का कार्यक्षेत्र माना था। परन्तु बाद[5] में आक्सस्नदी के किनारे, जो कि व्यर्थ है, माना है, 'प्लाक्षप्रास्रवण' देखिये।"

२. राथ इसको ऋग्० के बहुत से स्थानो पर सरस्वती मानते हैं और ऋग्० के बहुत से स्थानो तथा बाद के साहित्यो मे सिंधु मे तात्पर्य मानते हैं। (वे० इ०)

३. जिमर और लुडविक का भी मत राथ से एक है।

४. लासन तथा मैक्समूलर के मत में सरस्वती कुरुक्षेत्र की ही सरस्वती है। (वे० इ०)

५. हिल्लेब्रान्ट इसको अराकोशिया की आरगन्दाब मानते

---

(१) ७।६५।६, १०।१७।७, अथर्व० ७।६८।२, १४।२।२०, पञ्चविंश ब्रा० २५।१०।११।

(२) ऋग्० ६।४६।७, ६१, सभवतः वाजसनेयी सहिता ३४।११।

(३) 'दिवोदास' को देखिये।

(४) वेजेन बरगर्स बीट्राज १०।२६१ नं० २।

(५) ईरान ऐन्ड तूरान १२७, तुलना करो मुइर संस्कृत टैक्स ५।३३७ से प्रारम्भ। मेकडानल सस्कृत लिटरेचर १४१।१४२, वेदिक माइथालोजी पेज ८६ से ८८ तक। श्रानस्क्राउडर इडियन लिटरेचर ऐन्ड कल्चर ८४।१६४।

हैं। (वे० इ०)

६. ब्रन्होफर और मुइर वानस्क्राउडर इसको आक्सस-नदी मानते हैं। (वे० इ०)

७. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८० " (१) सरस्वती-नदी हिमालयश्रेणी के सिवालिक पर्वतश्रेणी की सिरमुर पहाड़ी से निकलकर अम्बाला में आदिबद्री के पास उतरती है। यह हिन्दुओं की पवित्र नदियों मे से है। पर्वत मे एक झरना था, जिससे कि यह नदी निकलती थी। वह प्लक्षवृक्ष के जड़ के पास मे था, इसलिये वह प्लक्षावतरण या प्लक्षप्रस्रवण कहा जाता है और तीर्थस्थान है (महाभा० आदि० अ० १७२, पद्म० स्वर्ग खं० अ० १४, ऋग्० १०।७५)। यह चलौर ग्राम के पास बालू मे विलीन हो जाती है और भवानीपुर के पास फिर प्रकट होती है। तथा बालछप्पर के पास पुन: विलीन हो जाती है और बरखेरा के पास फिर प्रकट होती है। और पेहोआ के निकट उर्नई में मारकण्डनदी मे मिल जाती है तथा संयुक्तधारा सरस्वती कहलाती है, जो बाद में घग्गर (घग्घर) मे थोड़ी दूर पर मिल जाती है, जो सम्भवत: सरस्वती का निचला भाग था। (पंजाब गजटियर अम्बाला डिस्ट्रिक्ट चेप्टर१) घग्गर या गग्गर पुरानी सरस्वती मानी जाती है; परन्तु यह नाम कैसे हट गया, यह अज्ञात है। (जे० आर० ए० एस० १८९३ पृ० ५१ 'पावनी' देखिये)। महाभारत भी कहता है कि यह नदी विलीन होकर तीन स्थानों पर प्रकट होती है, वे ये हैं:—चमसोद्भेद, शिरोद्भेद और नागोद्भेद (वनपर्व ८२)। सरस्वतीनदी ऋग्० में एक बहती हुई नदी के रूप में

वर्णित है। मनु० और महाभारत में इसका बालू में विलीन होना वर्णित है, जो कि शिरसा के समीप विनशनतीर्थ कहा जाता है। (जे० आर० ए० एस्० १८९३ पृ० ५१) वैदिक काल में सरस्वती एक बड़ी नदी थी और समुद्र में गिरती थी। (मैक्समूलर की ऋग्वेद संहिता कमेन्ट्री पृ० ४६) ऋग्० में इलाहाबाद की त्रिवेणी में उसका प्रकट होना कहीं पर थोड़ा भी वर्णित नहीं है। कुरुक्षेत्र की सरस्वती प्राची या पूर्वी सरस्वती है (पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० ६७)। यह नाम विशेषतः पुष्कर सरस्वती के लिये है। यह वह नदी है जो कि लूनीनदी के साथ पुष्करझील से निकलती है। (पद्म० सृष्टि खण्ड अ० १८) यह कच्छ की खाड़ी मे गिरती है। (२) सोमनाथ के निकट गुजरात मे एक नदी है, जो इस समय रौनाक्षी कहलाती है। 'प्रभास' देखिये। यह छोटी नदी आबूपर्वत से निकलकर कच्छ की खाड़ी मे पश्चिम की ओर चलकर गिरती है। यहीं पर कोटेश्वरमहादेव का मन्दिर अरासूर की संगमरमर की पहाड़ियों मे है (फोरबेस रासमाला)। यह प्रभास सरस्वती भी कहलाती है। और प्राची सरस्वती भी इसी को कहते हैं। (स्कन्द० प्रभासखण्ड प्रभासमाहात्म्य अ० ३५,३६) इस नदी के तट पर ही सोमनाथ के निकट नीचे की ओर पीपल के पेड़ के नीचे श्रीकृष्ण ने शरीर छोड़ा था। (३) अराकोशिया या पूर्वी अफगानिस्तान के कन्दहार जिले की एक नदी जिन्दआविस्ता मे हरखैती लिखी है, जो कि सरस्वती है। यह बिहिस्तान इंस्क्रिप्शन में हरोबतिश वर्णित है। (राविंसन का हेरोडोटस २ पृ० ५९१) यह सौकूट भी कहलाती है। इसकी

राजधानी गजनी है। डाक्टर भण्डारकर ने अराकोशिया का ऋक्षोदपर्वत से प्राप्त होने के कारण यह नाम बतलाया है। पाणिनि के वृत्तिकारों ने यह नाम दिया है। (इण्डियन आन्टी-क्वेरी १।२२)। (४) अफगानिस्तान की हेलमन्दनदी आवेस्ता की हरखैतीनदी है। अत: अथर्व० की तीन सरस्वती हैं। हेल-मन्द, सिन्धु जो पहले सरस्वती कहलाती है और कुरुक्षेत्र की सरस्वती (रागोजिन की वैदिक इन्डिया)। (५) अराकोशिया की आरगन्दाबनदी हिल्लेब्रान्ट की सरस्वतीनदी है (मेकडा-नल कीथ का वेदिक इंडेक्स २।४३७)। (६) अलकनन्दा (गंगा) की सहायक नदी जो कि गढ़वाल में है।"

वस्तुत: वेदिक इंडेक्सकार दृषद्वती के साथ सरस्वती ब्रह्मा-वर्त की पश्चिमी सीमा बनाती है, यह कह रहे हैं। यह बात मनु के विरुद्ध है।। मनु सरस्वती और दृषद्वती के मध्य की भूमि को ब्रह्मावर्त मानते हैं। इससे सरस्वती ब्रह्मावर्त की उत्तरी सीमा बनाती है और दृषद्वती ब्रह्मावर्त की पश्चिमी और दक्षिणी सीमा बनाती है, 'ब्रह्मावर्त' देखिये।

यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है और प्लाक्षप्रस्रवण नामक स्थान से निकलकर विनशन तक प्रत्यक्षरूप से जाती है। निषाददेश के द्वार पर पहुँचकर गुप्त हो जाती है और कई स्थानों में पुनः पुनः प्रगट और गुप्त होती हुई समुद्र तक जाती है तथा सौराष्ट्र की खाड़ी में सोमनाथ के मन्दिर के समीप प्रविष्ट हो जाती है। इसकी सहायक पाँच नदियाँ हैं। इसके लुप्त होने का स्थान विनशन कहा जाता है। यह द्वैतवन से निक-लती है और घोड़े के ४४ दिन के मार्ग को चलकर लुप्त हो

जाती है, यह ताण्ड्य[1] ब्रा० में स्पष्ट है। इसका विनशन ही मध्यदेश की पश्चिमी सीमा है। आज भी कुरुक्षेत्र में यह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

लासन, मैक्समूलर और वेदिक इंडेक्सकार कुरुक्षेत्र की ही सरस्वती को सरस्वती मानते है। वेदिक इंडेक्सकार 'हिल्लेब्रान्ट जो कि सरस्वती को अराकोशिया की आरगन्दाब मानते हैं' और 'ब्रन्होफर जो कि पहले हिल्लेब्रान्ट के साथ हैं और बाद में आक्सस् को सरस्वती मानते हैं'—इनके मतो का मुक्तकण्ठ से खण्डन कर रहे हैं; परंच राथ ऋग्० के कुछ स्थानो पर सरस्वती को सरस्वती ही मानते हैं। और ऋग० के बहुत से स्थानो पर तथा बाद के साहित्यो मे सरस्वती का अर्थ सिंधु मानते हैं। जिमर, ग्रिफ्थ और लुडविक भी राथके अनुगामी हैं।

अब, हम उन मंत्रो के अर्थ दिखला रहे हैं, जिनमें राथ इत्यादि सरस्वतीशब्द का अर्थ सिंधु करते हैं। ऋग्० १।८९।३ यह मंत्र विश्वेदेव की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'उन विश्वेदेवों को हम प्राचीन वेदस्वरूप वाणी से बुला रहे हैं। वे विश्वेदेव कौन हैं? भगमित्र, अदिति, दक्ष, मरुत्गण, अर्यमा, प्रसिद्ध वरुण, सोम और अश्विनीकुमार। इन सबको हम अपनी रक्षा के लिये बुला रहे हैं तथा हमसे बुलाई गई सुन्दर धनों से युक्त सरस्वती हमारे लिये सुख को करे।' यहाँ सरस्वती का अर्थ वाणी की अधिष्ठात्रीदेवी या सरस्वतीनदी दोनो हो सकते हैं। प्रसिद्ध अर्थ को छोड़कर अप्रसिद्ध और असंभव

---

(१) २५।१०।१६।

सिंधुअर्थ यहाँ कैसे निकलता है और ये लोग क्यों स्वीकार कर रहे हैं, इसका पता नही चलता। ऋग्० १।१६४।१६ में सरस्वती शब्द ही नहीं है। ऋग्० २।४१।१६ यह मंत्र सरस्वती की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे माताओं और नदियों और देवियों में श्रेष्ठ सरस्वति! हम लोग धनाभाव से असमृद्ध के समान हो रहे हैं। हे मातः सरस्वति! हमारे लिये धन समृद्धि दीजिये।' १७ वाँ मंत्र भी इसी से संबद्ध है। अर्थ यह है:—'हे सरस्वति! द्योतमान् आपमे सम्पूर्ण अन्न आश्रित हैं। वह आप शुनहोत्रो (गृत्समदों) के ऊपर सोमपान से तृप्त हो। हे देवि सरस्वति! हम लोगों के लिये पुत्रो को दीजिये।' १८ वाँ भी इसी से संबद्ध है। अर्थ यह है:—'हे अन्नवाली और जल-वाली सरस्वति! आप इन हवियों को स्वीकार कीजिये। जो वस्तुएँ देवताओं को प्रिय है, उन्हीं का गृत्समद लोग (हम) हवन कर रहे हैं।' इन मंत्रों में स्पष्ट सरस्वतीनदी का वर्णन है। राथ और उनके साथी सरस्वती का अर्थ सिधु कैसे कर रहे हैं, यह पता नहीं चलता। शायद गृत्समद जाति को सिंधु पर रहनेवाली बनाने के लिये यह प्रयत्न हो।

२।३०।८ यह मंत्र सरस्वती की स्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे सरस्वतिदेवि! आप हम लोगों की रक्षा करे तथा मरुतों से युक्त होकर हमारे शत्रुओं को दबाती हुई जीतें और इस इन्द्र ने उस असुर को मारा, जो कि सबके भंजन मे समर्थ और शंण्डिकों में प्रधान था।' इसमें सरस्वतीदेवी की स्तुति हैं। सिधु का पीहरे के मंत्रों से भी संबंध नहीं। २।३२।८ 'जो गुङ्गू (कुहू) है, उसको हम बुला रहे हैं

और जो सिनीवाली है, उसे हम बुला रहे हैं तथा जो राका है, उसे हम बुला रहे हैं और जो सरस्वती है, उसे हम बुला रहे है। इन्द्राणी और वरुणानी को भी अपनी रक्षा और अपने कल्याण के लिये बुला रहे हैं।' 'सिनीवाली' वह अमावस्या कही जाती है, जिसमें चतुर्दशी के योग से चन्द्रमा दिखलाई पड़े। 'कुहू' वह अमावस्या कही जाती है, जिसमें चन्द्रमा बिल्कुल दिखलाई न पड़े। 'राका' वह पूर्णिमा कही जाती है जिसमें पूरा चन्द्रमा दिखलाई दे। जिस पूर्णिमा में चतुर्दशी के योग से पूरा चन्द्रमा न दिखलाई दे, उसे 'अनुमति' कहते हैं। यहाँ पर 'सरस्वती' का अर्थ सिंधु मानने मे कोई प्रमाण नहीं। ३।५४।१३ का अर्थ यह है:—'विद्योतमान् रथों से युक्त और दीप्तिवाले, द्योतमान् शत्रुओ को मारनेवाले, यज्ञ से पैदा हुए, निरंतर चलने का स्वभाव रखनेवाले और यज्ञ के योग्य मरुत् और सरस्वती हमारे इस स्तोत्र को सुनें और हमारे लिये फलप्रदान मे शीघ्रता करते हुए पुत्रसहित धन को हम लोगों के लिये दें।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'वाग्देवता' और 'नदी' दोनों का संभव है। सिन्धुअर्थ लगाना एकदम निर्मूल है। ५।४२।१२ का मंत्रार्थ यह है:—'देने की इच्छावाले और अच्छे कर्मवाले और कुशल हाथवाले देवते और इन्द्र की पत्नियाँ; अर्थात् पालन करनेवाली नदियाँ, जो कि विम्ब से सनाई-गई हैं और सरस्वती तथा बहुत कान्तिवाली राकादेवी हमारे मनोरथों को देती हुई दीप्त हो हमारे लिये धन की इच्छा करें।' इस मंत्र मे 'सरस्वती' का अर्थ 'वाग्देवता' तथा 'नदी' दोनों संभव है। सिंधुअर्थ करना एकदम निर्मूल है।

५।४३।११ का मंत्रार्थ यह है:—'हमारे यज्ञ में यजन के योग्य सरस्वती द्युलोक से आयें तथा बहुत बड़े पर्वत (पर्ववाले मेघ या अन्तरिक्ष) से सरस्वती आयें। हमारे आह्वान को स्वीकार करती हुई तथा जल को देती हुई सरस्वतीदेवी हमारी सुख-कारिणी वाणी को सुनना चाहती हुई सुनें।' यहाँ 'सरस्वती' शब्द का अर्थ 'देवी' और 'नदी' दोनो संभव है। सिंधुअर्थ करना एकदम निराधार है। ५।४६।२ के मंत्र का अर्थ यह है—'हे अग्ने! हे इन्द्र! हे वरुण! हे मित्र! आप लोग हमको बल दें। और हे मरुतो! हे विष्णो! आप लोग भी हमको बल दें। और दोनों अश्वनीकुमार और देवताओं की स्त्रियाँ पूषा, भग और सरस्वती हमारे यज्ञ और स्तोत्र का सेवन करें।' इस मंत्र में 'नदी' और 'देवी' दोनों अर्थ संभव है। सिन्धुअर्थ करना असंभव है। ६।४९।७ का अर्थ यह है:—'पावीरवी, कन्या, चित्रायु, सरस्वती और वीरपत्नी ये नदियाँ हमारे यज्ञ को धारण करें और देवपत्नियों के साथ प्रसन्न हो स्तुति करते हुए हमारे लिये छिद्ररहित और दुरा-धर्ष (शीत, वात, शत्रु इत्यादि के धर्षण के अयोग्य) घर को तथा कल्याण को दे।' इसमे 'सरस्वती' शब्द का अर्थ 'नदी' है। सिंधुअर्थ असंभव है। ६।५०।१२ का मंत्रार्थ यह है:—'वर्षा करनेवाले वे देवता हमारे लिये सुखकारक हो। कौन देवता? रुद्र, सरस्वती, प्रसन्न विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, वाज, देवताओं के लिये हितविधाता (प्रजापति), पर्जन्य और वायु हमारे लिये अन्न को बढ़ायें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'देवी' है, सिंधु का संभव नहीं। ६।५२।६ का मंत्रार्थ यह है:—'यह

और जो सिनीवाली है, उसे हम बुला रहे हैं तथा जो राका है, उसे हम बुला रहे है और जो सरस्वती है, उसे हम बुला रहे है। इन्द्राणी और वरुणानी को भी अपनी रक्षा और अपने कल्याण के लिये बुला रहे हैं।' 'सिनीवाली' वह अमावस्या कही जाती है, जिसमें चतुर्दशी के योग से चन्द्रमा दिखलाई पड़े। 'कुहू' वह अमावस्या कही जाती है, जिसमें चन्द्रमा बिल्कुल दिखलाई न पड़े। 'राका' वह पूर्णिमा कही जाती है जिसमें पूरा चन्द्रमा दिखलाई दे। जिस पूर्णिमा में चतुर्दशी के योग से पूरा चन्द्रमा न दिखलाई दे, उसे 'अनुमति' कहते हैं। यहाँ पर 'सरस्वती' का अर्थ सिंधु मानने मे कोई प्रमाण नहीं। ३।५४।१३ का अर्थ यह है:—'विद्योतमान् रथों से युक्त और दीप्तिवाले, द्योतमान् शत्रुओ को मारनेवाले, यज्ञ से पैदा हुए, निरंतर चलने का स्वभाव रखनेवाले और यज्ञ के योग्य मरुत् और सरस्वती हमारे इस स्तोत्र को सुनें और हमारे लिये फलप्रदान मे शीघ्रता करते हुए पुत्रसहित धन को हम लोगों के लिये दें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'वाग्देवता' और 'नदी' दोनों का संभव है। सिन्धुअर्थ लगाना एकदम निर्मूल है। ५।४२।१२ का मंत्रार्थ यह है:—'देने की इच्छावाले और अच्छे कर्मवाले और कुशल हाथवाले देवते और इन्द्र की पत्नियाँ; अर्थात् पालन करनेवाली नदियाँ, जो कि विम्ब से बनाई-गई हैं और सरस्वती तथा बहुत कान्तिवाली राकादेवी हमारे मनोरथों को देती हुई दीप्त हो हमारे लिये धन की इच्छा करे।' इस मंत्र मे 'सरस्वती' का अर्थ 'वाग्देवता' तथा 'नदी' दोनों सभव है। सिंधुअर्थ करना एकदम निर्मूल है।

५।४३।११ का मंत्रार्थ यह है:—'हमारे यज्ञ में यजन के योग्य सरस्वती द्युलोक से आयें तथा बहुत बड़े पर्वत (पर्ववाले मेघ या अन्तरिक्ष) से सरस्वती आयें। हमारे आह्वान को स्वीकार करती हुई तथा जल को देती हुई सरस्वतीदेवी हमारी सुखकारिणी वाणी को सुनना चाहती हुई सुनें।' यहाँ 'सरस्वती' शब्द का अर्थ 'देवी' और 'नदी' दोनों संभव है। सिंधुअर्थ करना एकदम निराधार है। ५।४६।२ के मंत्र का अर्थ यह है—'हे अग्ने! हे इन्द्र! हे वरुण! हे मित्र! आप लोग हमको बल दें। और हे मरुतो! हे विष्णो! आप लोग भी हमको बल दें। और दोनों अश्वनीकुमार और देवताओं की स्त्रियाँ पूषा, भग और सरस्वती हमारे यज्ञ और स्तोत्र का सेवन करें।' इस मंत्र में 'नदी' और 'देवी' दोनों अर्थ संभव है। सिन्धुअर्थ करना असंभव है। ६।४९।७ का अर्थ यह है:—'पावीरवी, कन्या, चित्रायु, सरस्वती और वीरपत्नी ये नदियाँ हमारे यज्ञ को धारण करें और देवपत्नियों के साथ प्रसन्न हो स्तुति करते हुए हमारे लिये छिद्ररहित और दुराधर्ष (शीत, वात, शत्रु इत्यादि के धर्षण के अयोग्य) घर को तथा कल्याण को दे।' इसमें 'सरस्वती' शब्द का अर्थ 'नदी' है। सिंधुअर्थ असंभव है। ६।५०।१२ का मन्त्रार्थ यह है:—'वर्षा करनवाले वे देवता हमारे लिये सुखकारक हो। कौन देवता? रुद्र, सरस्वती, प्रसन्न विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, वाज, देवताओं के लिये हितविधाता (प्रजापति), पर्जन्य और वायु हमारे लिये अन्न को बढ़ायें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'देवी' है, सिंधु का संभव नहीं। ६।५२।६ का मंत्रार्थ यह है:—'यह

इन्द्र जिस प्रकार बहुत समीप हो सके, उसी प्रकार रक्षा के साथ आनेवाले लोगों मे सबसे अधिक आनेवाला हो। और नदियों से बढ़ाई गई सरस्वतीनदी भी बहुत शीघ्र आये। तथा औषधियों के साथ पर्जन्य हमारे सुख के अनुभव को करानेवाला हो। पिता के समान अग्नि भी सुख से हमारी बातों का सुननेवाला और सुख से बुलाने योग्य हो।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीनदी' है, सिंधु नहीं। ७।९।५ का मंत्र अग्निस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आप देवताओ के पास दूत का कर्म करें; अर्थात् हवि पहुँचाएँ और समूह के साथ ब्रह्मा (तीनों वेदों के ज्ञाता ऋत्विक्) से किये गये स्तोत्रों को नष्ट न करें। और सरस्वती, मरुत्, अश्विनीकुमार और जल इन देवताओं का हमारे लिये रत्न देने के लिये यजन करें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु नहीं। ७।३६।६ का अर्थ यह है:—'जिन गङ्गादि नदियों के मध्य मे सिंधुमाता (जलों की माता) सरस्वती सातवीं होती हैं, मनोरथों को देनेवाली और सुंदर धारावाली नदियाँ बहती हैं और अपने जल से बढ़ाई जाती है, अन्नवाली और कामना देनेवाली वे नदियाँ साथ-ही-साथ आयें।' इसमें 'सरस्वतीनदी' है और छः नदियों का वर्णन है। सिंधु अर्थ नहीं है। ७।३९।५ यह अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आप द्युलोक से स्तुति के योग्य देवताओ का हमारे यज्ञ में आह्वान करें। पृथ्वी और अंतरिक्ष से भी बुलायें। किन देवताओं को? मित्र, वरुण, इन्द्र, देवतारूप में स्थित अग्नि को, हमारे कल्याण के लिये अर्यमा,

अदिति और विष्णु का बुलायें तथा हमारे स्तोत्र और हवियों से सरस्वती और मरुत् आनन्दित हो।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी है, सिंधु नहीं। ७।४०।३ का अर्थ यह है:—हे पृषदश्व (चीतल मृगवाहनवाले), हे मरुतो ! आप इस मनुष्य यजमान की रक्षा करें। यह यजमान तेजस्वी तथा बलवान् हो। तथा अग्नि और सरस्वती इत्यादि सब देवता इस यजमान के कार्य मे प्रवर्तक हों और कभी भी इसके धन के नाशक न हो।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु नहीं। ८।२१।१७ मे कण्व सौभरिऋषि आखुदेशाधिपति[1] चित्र के दान की प्रशंसा कर रहे हैं। चित्र ने सरस्वतीनदी पर यज्ञ किया था। मंत्रार्थ यह है:—'इन्द्र के लिये हवि देनेवाले मेरे लिये क्या इतना बड़ा धन इन्द्र ने ही दिया, अथवा सुन्दर धनवाली सरस्वती ने दिया, अथवा हे चित्र राजन् ! आप ने यह धन मुझे दिया।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीनदी' है, सिंधु का संभव नहीं। इसके अगले मंत्र में भी 'सरस्वती' शब्द 'सरस्वतीनदी' के लिये आया है, सिंधु के लिये नहीं। ८।५४।४ का मन्त्रार्थ यह है:—'पूषा, सरस्वती और विष्णु हमारे आह्वान को सुनें और सप्तसिंधवः; अर्थात् सर्पणशील जल या सात नदियाँ रक्षा करें। और जल, वायु, पर्वत, वनस्पति और पृथ्वी हमारे आह्वान को सुनें।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' और 'नदी' दोनों हो सकता है, सिंधु का संभव नहीं। इसमे सरस्वती और सप्तसिंधवः दोनो

---

(१) यह आखुदेश दक्षिण का मूषिकदेश है, यह बृहद्देवता ६।५८ में स्पष्ट है।

शब्द साथ-साथ आये हैं, इससे सात नदियों में सरस्वती नहीं ली जा सकती। जो लोग इसमे सरस्वती शब्द का अर्थ सिंधु करते हैं, उनको 'सप्तसिंधवः' मे सिंधु लेते हुए यह सोचना चाहिए कि इसमे सरस्वती का अर्थ सिंधु है तो सिंधु का अलग लेना व्यर्थ हो जायगा और नदियाँ पाँच ही रह जायँगी। जो लोग 'सप्तसिंधवः' में सरस्वती को खींच लाते हैं, उनको भी सोचना चाहिये कि जब 'सप्तसिंधवः' मे सरस्वती भी शामिल है, तो ऋग्वेद में सरस्वती का अलग पढ़ना व्यर्थ हो जायगा। इससे 'सप्तसिंधवः' मे सरस्वती का मानना ऋग्वेद के विरुद्ध है। 'सप्तसिंधवः' में सिंधु या सरस्वती एक उनको अवश्य छोड़नी पड़ेगी। १०।१७।७ का अर्थ यह है:—'देवताओं का यजन या स्तुति करने को चाहनेवाले यजमान लोग सरस्वती का आवाहन करते हैं और विस्तीर्ण यज्ञ में हवियों और स्तुतियों द्वारा सरस्वती का यजन करते हैं। पुण्यकर्मा लोग फलप्रदान के लिये सरस्वती का आवाहन करते हैं। इसलिये सरस्वतीदेवी हवि देनेवाले यजमान के लिये स्वीकार करनेवाले कर्मफल को दें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'देवी' है, सिंधु का संभव नहीं। इसके अगले दो मंत्रों में भी सरस्वतीदेवी का ही वर्णन है। १०।३०।१२ का मंत्रार्थ यह है :—'हे जलो! धनवाले आप धनों के स्वामी हैं, और कल्याण करनेवाले यज्ञ और उसके फल अमृत (अमरणरूप) को धारण करते हैं। तथा धन और सुन्दर पुत्र के रक्षक होते हैं। तथा जलभिमानिनी देवता सरस्वती स्तुति करते हुए मेरे लिये अन्नरूप इन सब धन को दें।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीनदी की अधिष्ठात्री

देवता' है; सिंधु का इससे कोई संबंध नहीं। १०।१३१।५ का मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे इन्द्र! जैसे माता-पिता पुत्र की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार दोनों अश्विनीकुमारों ने आपकी रक्षा की। और आपने शचियों (अपनी शक्तियों) के साथ सुख से रमण-साधन हवि का जब बहुत पान किया, तब सरस्वती ने आपकी सेवा की।' इसमें सरस्वती का अर्थ 'सरस्वती देवी' है, सिंधु नहीं। अथर्ववेद ४।४।६ मे निर्बल पुरुष को सबल बनाने के उपाय में इसका उपयोग है। वीर्यहीन पुरुष विधिवत् खोदी हुई कैथे की जड़ को दूध में पकाकर जिस सूक्त से अभिमंत्रितकर चढ़े हुए धनुष् को लिंग पर रखकर मूसल या लोहे की कील पर बैठकर पीये, उसी सूक्त का यह छठा मंत्र है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आप आज इस वीर्य की कामना करनेवाले पुरुष के लिंग को वीर्यप्रदान से धनुष् के समान ऊपर की ओर विस्तृत करें। और हे सूर्य्य! आप भी आज इस पुरुष को ..इत्यादि' अर्थ है। इसमें 'सरस्वती' का विशेषण 'देवी' दिया है, इससे 'सरस्वतीदेवी' अर्थ है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद ५।२३।१ कीड़ो की बीमारी दूर करने के उपाय में इस सूक्त का वर्णन है। करील की जड़ को जिस सूक्त से अभिमंत्रितकर बाँध देने से कीड़े नष्ट हो जाते हैं, उसी तेइसवें सूक्त का यह पहला मंत्र है। अर्थ यह है:—'हे द्युलोक, हे पृथ्वीलोक, हे देवि सरस्वती, हे इन्द्र और हे अग्नि! आप लोग हमारे कीड़ों को मूर्छित करें।' इसमें 'सरस्वतीदेवी' का अर्थ 'देवी' है, सरस्वती का संभव नहीं। अथर्ववेद ६।३।२ का अर्थ यह है:—'द्युलोक और पृथ्वी अभिमत फलप्राप्ति के लिये हमारी रक्षा करें। और

सोम के अभिषव के पत्थर हमारी रक्षा करें और निकाला हुआ सोम हमारी पाप से रक्षा करे। और सौभाग्य से युक्त देवी सरस्वती हमारी रक्षा करें और अग्नि हमारी रक्षा करें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद ६।८९।३ का मंत्रार्थ यह है :—'हे जाये ! तुमको मित्रावरुण देवता मेरे लिये संयुक्त करें। और द्योतमान् सरस्वती मेरे (पति) मे संयुक्त करे। और पृथ्वी के मध्य में स्थित प्राणिसमूह तुमको मुझमें संयुक्त करे। तथा पृथ्वी के ऊँचे-नीचे प्रदेश तुमको मुझमें संयुक्त करें।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वती-देवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद ७।६८।१ में सरस्वती शब्द नहीं है। ९ तथा १० में है। उनका मंत्रार्थ यह है। अथर्ववेद ७।६८।९ 'हे सरस्वतीदेवि ! आप अपने संबंधी दिव्य व्रतो और स्थानों में हवन किये गये हवियों का सेवन करें, तथा हमको पुत्रादिरूप संतान को दें।' इसमे 'सरस्वतीदेवी' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद ७।६८।१० 'हे सरस्वति देवि ! आपके लिये हवन किये जाते हुए घृतयुक्त हवि, तथा पितरों के क्षेपणीय हवि हमारे लिये सुखकर हों। आपके लिये दिये गये इन हवियों से हम अन्नवाले हों।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद १४।२।१५ 'हे सरस्वति ! आप विराट् हैं, आप विष्णु के समान यहाँ स्थित हों। हे सिनीवालि ! हम भग की सुमति में हों; अर्थात् हम भाग्यवान् हों।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'देवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद १४।२।२० "जिस समय वधू गार्हपत्य अग्नि के पास जाय, उसके बाद सर-

स्वती और पितरों को नमस्कार करे।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का संभव नहीं। अथर्ववेद १९।३२।९ इसमें 'सरस्वती' शब्द नहीं है। तैत्तिरीय संहिता १।८।१३।२ का मंत्रार्थ यह है :—'अग्नि के लिये स्वाहा, सोम के लिये स्वाहा, सूर्य्य के लिये स्वाहा, सरस्वती के लिये स्वाहा, इत्यादि।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु नहीं। वाजसनेयी संहिता १९।९३ में इन्द्र के रूपाधान का वर्णन है। 'वैद्य अश्विनीकुमारों ने इन्द्र के अंगवाले आत्मा का आधान किया और सरस्वती ने उस आत्मा को अंगों से युक्त किया। और अश्विनीकुमारों ने इन्द्र के जगत्पूज्य रूप, आयु और नेत्रों को आनन्द देनेवाले चन्द्रमा से अनश्वर बनाया।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का संभव नहीं। वाज० ३४।११ का मंत्रार्थ यह है :—'समान प्रवाहवाली सहायक नदियों के साथ पाँच नदियाँ सरस्वती मे जाती हैं। वही सरस्वती देश मे पाँच रूप से नदी हुई; अर्थात् पाँचों नदियाँ अपना रूप छोड़कर सरस्वती ही हो गई।' इसमे 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीनदी' ही है, सिंधु करना ठीक नहीं। क्योंकि सिंधु की सहायक आठ से अधिक नदियाँ हैं। शतपथ ब्राह्मण ३।६।२।४ में पुरोडाश के विधान के लिये एक आख्यायिका है। वहँ यह है :—'ऋषियों ने यह सुना कि देवताओं ने यज्ञ से स्वर्ग को जीता और वे देवता लोग मधुमक्खी जिस प्रकार शहद को पीकर खाली छत्ते को छोड़कर उड़ जाती है, उसी प्रकार यज्ञ को यूप से आच्छादितकर चले गये। ऋषियों ने विचारा कि हम भी मनुष्यों के लिये यज्ञ करें, तब यज्ञ को ढूँढ़ा। यज्ञ

के ढूँढ़ने में पुरोडाश उनको कूर्म के रूप मे खसकता हुआ मिला। ऋषियों ने उससे कहा कि अश्विनीकुमारों के लिये ठहरो, पर वह नहीं रुका। तब सरस्वती के लिये ठहरो—यह कहने पर भी वह नहीं रुका। जब अग्नि के लिये ठहरो कहा, तब रुका। इससे पुरोडाश आग्नेय (अग्निदेवतावाला) कहा जाता है।' इसमे 'सरस्वतीदेवी' हैं, सिंधु से कोई संबंध नहीं। शतपथ ब्राह्मण ११।४।३।३ मे मित्रविंदा नामक काम्येष्टिविधान के लिये हवि की उत्पत्ति इत्यादि दिखाने के लिये एक आख्यायिका आई है। वह इस प्रकार है :—'प्रजापति प्रजाएँ पैदा करते-करते थक गये। उनके थकने से उनकी श्री उनके शरीर से अलग हो गई। वह प्रजापति से अलग शोभित होती हुई ठहरी। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा, हम इसको मार दें या पकड़ लायें। प्रजापति ने कहा यह स्त्री है, स्त्री को मारते नहीं हैं। इससे इसको पकड़ लाओ। अग्नि ने उसको अन्न, सोम ने राज्य, वरुण ने साम्राज्य, सरस्वती ने पुष्टि तथा त्वष्टा ने रूप दिया। फिर श्री ने कहा कि यज्ञ करो, तब हम आपके पास आवेंगी, इत्यादि।' इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवी' है, सिंधु का कोई संभव नहीं। शतपथ० १२।७।१।१२ में एक आख्यायिका आई है। वह इस प्रकार है :—'इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को मारा। इससे रुष्ट हो त्वष्टा ने बदला लेने के लिये अभिचार करना चाहा। इन्द्र ने इस बात को जानकर विघ्न करना चाहा, और यज्ञ के लिये रखे हुए सोम को पी गये। इस कारण इन्द्र के शरीर से तेज निकल पड़ा। देवताओं ने अश्विनीकुमारों से कहा कि आप वैद्य हैं, इनकी चिकित्सा करें। अश्विनीकुमारों ने यज्ञ में

भाग माँगा, वह देवताओं ने दिया। बाद में देवताओं ने सरस्वतीदेवी से कहा, आप चिकित्सा हैं, इनको अच्छा करें। सरस्वती ने कहा, हमको यज्ञ में भाग दो, तब हम इन्हें अच्छा करें। इसे देवताओं ने स्वीकार कर लिया, इत्यादि।' इसमें 'सरस्वती' 'देवता' हैं, सिंधु से कोई संबंध नहीं। शतपथ १२।७।२।५ में प्राण सरस्वती है औ वह वीर्य को धारण करती है। इसमें 'सरस्वती' का अर्थ 'सरस्वतीदेवता' है, सिंधु का संभव नहीं। बृहदारण्यकोपनिषद् ६।३।८ मे 'सरस्वती' शब्द ही नहीं है। यहाँ पर मुद्रण की अशुद्धि प्रकट होती है। नं० ४ में वैदिक इंडेक्सकार 'दृषद्वती' का नाम 'चौतङ्ग' मान रहे है; परन्तु गजेटियर में इसका नाम 'रक्षो' लिखा है। वेदिकइंडेक्सकार लिख रहे है कि सूत्रो में इसके किनारे किये गये यज्ञों का उल्लेख है; परन्तु सूत्रो में यज्ञ का विधान है। यज्ञ किये गये—यह कहीं भी नहीं लिखा है। यज्ञो को सरस्वती के तट पर जिन-जिन स्थानों पर करना चाहिये, उन-उन स्थानो का वर्णन किया गया है। 'नदीतमा' का अर्थ 'नदियों में श्रेष्ठ' है। 'तमप्' प्रत्यय से जब कई नदियों से श्रेष्ठ हो, तभी व्यवहार हो सकता है। इसके लिये सिंधु ही क्यों खोजी जाती है? ऋग्वेद में तो गंगा, यमुना, सरयू इत्यादि बहुत-सी नदियाँ लिखी हुई मिलती हैं।

वैदिक इंडेक्सकार कहते हैं कि सरस्वती के तट पर बहुत से राजे बसते माने गये हैं। ऋग्वेद ८।२१।१८ मे चित्रराजा का वर्णन है। यह राजा दाक्षिणात्य मूषिकदेश का स्वामी था। यह बात बृहद्देवता ६।५८ में स्पष्ट है। वहीं इसको आखुराज लिखा है। 'आखु' चूहे का नाम है। आखुदेश से कोई देश

प्रसिद्ध नहीं है, इससे उसका समानार्थक मूषिकदेश लिया जायगा। दानपत्रादि में यह देश 'असिक' नाम से दक्षिण-भारत में लिखा मिलता है। ऋग्वेद में औरों के लिये 'राजका:'; अर्थात् 'छोटे राजे' लिखा है। वे भी सरस्वती के तट ही पर रहते थे या उससे दूर रहते थे, इसका कोई उल्लेख नहीं है। चित्र ने वहाँ यज्ञकर राजाओं को दान दिया, यह संभव है। 'पंचजन' का अर्थ पाँच जातियाँ नहीं है, बल्कि निरुक्ति के अनुसार निषाद-सहित चारों वर्ण है। पुरूज् के सरस्वती के तट पर बसने मे कोई प्रमाण नहीं है। भरताज् के पश्चिमी पड़ोसी कुरुक्षेत्र मे होने मे कोई भी प्रमाण नहीं है। ऋग्वेद ८।२४।७ में जो सात नदियाँ दिखलाई गई हैं, उनमें सरस्वती का संभव नहीं। क्योंकि ऋग्वेद ८।५४।४ मे 'सप्तसिधव:' और 'सरस्वती' दोनों एक ही अर्थ मे आये हैं। यदि सप्तसिंधु की नदियों में सरस्वती एक होती तो सरस्वती को पृथक् लिखने की आवश्यकता नहीं थी। यदि सिधु और सरस्वती भी एक होती तो भी सरस्वती के पृथक् लिखने की आवश्यकता नहीं थी।

'नं० १६ मे पूर्व से पश्चिम जानेवाली नदियों की सूची ऋग्वेद १०।७५।५ मे कही गई है'—यह वैदिक इंडेक्सकार का कथन असंगत है। क्योंकि गंगा और यमुना प्रत्यक्ष पश्चिम-वाहिनी नहीं हैं। सरस्वती का विनशन पहले वर्तमान स्थान पर नहीं था, क्योंकि वह पास ही में है। खग्गर और सरस्वती के मिलने के बाद जहाँ तक नदी के चिह्न मिलें और आगे अभाव हो, वही मानना होगा। सरस्वती की सहायक पाँच नदियाँ दृषद्वती आदि हैं। वे पंजाब को पाँचों नदियाँ नहीं

हो सकतीं। हिल्लेब्रॉट की आरगन्दाब की कल्पना का वैदिक इंडेक्सकार स्वयं खंडन कर रहे हैं। कोई लोग आविस्ता की हराकोती को सरस्वती मानते हैं। उसका वर्तमान समय में आरगंदाब नाम है। उनकी यह युक्ति है—प्राचीन पारसीक भाषा में 'सकार' के स्थान में 'हकार' हो जाया करता है, जैसा कि 'सिंधु' के स्थान पर 'हिन्दु' होकर 'सिन्धुस्थान' के स्थान पर 'हिन्दुस्तान' हो गया। इसी प्रकार 'हराकोती' का हकार सकार के स्थान में है, इत्यादि। परंच पारसीक भाषा में बहुत से शब्द ऐसे दिखलाई पड़ते है, जिनमें बहुत से अक्षरों के स्थान मे हकार दिखलाई पड़ता है। जैसे कि चत्वारा:=चहार मे 'त्व' के स्थान मे 'हकार', सप्त=हफ्त में 'सकार' के स्थान में 'हकार', अष्ट = हश्त में 'अकार' के स्थान में 'हकार', नव=नह में 'वकार' के स्थान पर 'हकार', दश=दह में 'शकार' के स्थान पर 'हकार', निदधौ=निहाद में 'दकार' के स्थान में 'हकार' हो गया। इसी प्रकार यदि ढूँढ़ा जाय तो बहुत से अक्षरों के स्थान में हकार का परिवर्तन मिल सकता है। इससे 'सकार' के स्थान में 'हकार' हो गया, यह अनभिज्ञ जनता के सामने कहना साहसमात्र है। ह्वेनसाँग इस देश का नाम 'इंदु' लिखते हैं और 'चन्द्रमा' से समानता करते हैं। और कहते हैं कि जैसे चन्द्रमा अन्धकार को दूरकर प्रकाश देता है, यह देश उसी प्रकार अज्ञान को दूरकर ज्ञानं देता है, इससे इसका नाम इन्दु है। महर्षि वाल्मीकि ने सिंधु का इन्दुमती नाम लिखा है। ऋग्वेद मे सिन्धु का नाम सुषोम भी दिखलाई पड़ता है। यूनानी लोग इसे इंडस कहते थे। और आज भी योरोप में

यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। 'इंडस' के कारण ही इस देश का 'इंडिया' नाम पड़ा। जिस प्रकार 'इंडस' के कारण 'इंडिया' नाम पड़ा, उसी प्रकार इस देश का 'इन्दुमती' या 'इन्दु' के कारण 'इन्दुस्तान' नाम पड़ा, और 'इन्दुस्तान' से 'हिंदुस्तान' हो गया। पारसीक भाषा में ढूँढ़ने पर इकार के स्थान में हकार का होना मिल सकेगा। सिंधुदेश एक प्रान्त है। पूरे देश का नाम एक प्रान्त के नाम पर नहीं हो सकता। इसलिये 'सिंधुस्तान' का 'हिन्दुस्थान' दृष्टान्त देकर 'सरस्वती' का 'हराकोती' कहना निर्मूल है।

'स्तान' शब्द में सकार का हकार के रूप में परिवर्तन न होने से ईरानियन भाषा मे सभी सकारों का हकार के रूप मे परिवर्तन हो जाता है, यह कहा नहीं जा सकता। आविस्ता मे 'हराकोती' शब्द जो आया है, उसका अर्थ सरस्वती है—इस पर विचार क्या आविस्ता के मन्त्र और ऋग्० के मंत्र का अर्थ एक ही है, जो वे दोनों एक ही समझे गये? ऋग्०[1] ७।९५।२ में सरस्वतीनदी का पर्वतों से निकलकर समुद्र में गिरने का वर्णन है। क्या आविस्ता में भी अराकोती का समुद्र मे गिरने का वर्णन है? सरस्वतीनदी ऋग्० में समुद्र में गिरती हुई जब वर्णित है, तब समुद्र में आरकोशिया की समुद्र तक न जाने-

(१) और नदियों के मध्य में पवित्र पर्वतों से समुद्र पर्यन्त जाती हुई अकेली सरस्वतीनदी ने नाहुष की प्रार्थना को जाना तथा वह संसार को बहुत धनों को देती हुई नाहुष अर्थात् नहुष के पुत्र ययाति के लिये घी और दूध को यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त यज्ञ के लिये पर्याप्त देती रही।

वाली हेलमन्द या आरगन्दाब को सरस्वती बनानेवाले लोग कितनी धाँधली कर रहे हैं, इसपर विद्वज्जन विचार करें।

वेदिक इंडेक्सकार सरस्वती का शब्दार्थ गड्ढे मे बनी हुई; और सम्भवतः यह अर्थ इसके पानी के तह के नीचे होने के संकेत से होता है, यह कहते हैं।

अमरकोष के टीकाकार रामाश्रम ने वारिवर्ग श्लोक ३४ की टीका में 'सरांसि सन्ति अस्यामितिमतुप्' यह विग्रह किया है, तथा २८वें श्लोक की टीका मे 'सरस्' शब्द का अर्थ 'सरो नीर तडागयोः' ऐसा लिखा; अर्थात 'सरस्' शब्द का अर्थ 'जल' और 'तालाब' होता है। 'जल जिसमे हो' वह 'सरस्वती' कही जाती है। इसका अर्थ तालाबवाली भी हो सकता है, इससे पानी के तह से कोई भी संबंध प्रतीत नहीं होता। वेदिक इन्डेक्सकार मूल मे तो कुरुक्षेत्र की सरस्वती का प्रतिपादन करते हैं और टिप्पणी मे हराकोती का प्रतिपादन करते हैं। यह भी लिखा है "यह नदी समुद्र तक बहती इसलिये कही गई है कि वैदिक लेखक सरस्वती के मार्ग से समुद्र तक कभी गया न होगा अथवा यह नदी रेगिस्तान में बहुत दूर तक बही होगी'। वेदिक इन्डेक्सकार का यह लेख सूचित करता है कि वेद के लेखक की प्रवृत्ति सुनी-सुनाई बातो को भी लिख देने में थी, तो वे सब बातें सच्ची नहीं हो सकतीं। जब लेखक की सत्यता में ही सन्देह है, तो उसके आधार पर कोई भी बात निश्चितरूप से कही नहीं जा सकती। सर्वत्र ही संदेह करने का स्थान हो सकता है। जिस संस्कृति का वेद सर्वस्व है, उस संस्कृति को माननेवाले वेद को अनादि मानते आये, मानते हैं और मानते रहेंगे। इसलिये अनादि

होने के कारण वेद कभी झूठे नहीं हो सकते। जहाँ-कहीं पर भ्रम होगा, वह उनके समझनेवालो का होगा। पुराण जो कि ऋषियों द्वारा निर्मित हैं, उनकी सत्यता को वायु[1] पु० उत्तरार्ध० अनुषङ्गपाद का भविष्यत् वर्णन प्रत्यक्ष दिखला रहा है। उसमें लिखा है—'अंग्रेजों का राज्य यहाँ ३५० वर्ष रहेगा और उसमें १३ राजे होगे। उनके राज्य मे एक अवान्तर राज्य चलेगा और उसका नाम 'वृषलराज्य' होगा। यह राज्य बड़ा बलिष्ठ होगा और इसके साथ मुसलमानराज्य भी चलेगा।' 'वृषल' का अर्थ 'शूद्र' व 'धर्मनाशक' है। यह राज्य शूद्रों; अर्थात् छोटों को बढ़ायेगा और बड़े लोगो का नाश करेगा। यह प्रत्यक्ष है। पार्टी कोई भी शासन पर हो, शासनप्रक्रिया मे दोनों बातों से सम्बन्ध अवश्य रहेगा। मुसलमानी राज्य पाकिस्तान भी साथ चल रहा है। अंग्रेजों के राजाओं में प्रथम राजा कम्पनी, द्वितीय महाराणी विक्टोरिया, तृतीय महाराज सप्तम एडवर्ड, चतुर्थ महाराज पंचम जार्ज, पंचम महाराज अष्टम एडवर्ड, षष्ठ महाराज षष्ठ जार्ज और सप्तम वर्तमान महारानी एलिजाबेथ हैं।

---

(१) कालिका यन्त्रालय कलकत्ता सं० १६३७ में स्पष्ट लिखा है और चित्रशाला प्रेस पूना में 'मुरुण्डावृषलैः सह' पाठ होने से अर्थ उतना साफ नहीं है और वप्टिस्म प्रेस कलकत्ते में भी स्पष्ट नहीं है। और यहाँ पर 'मुरुण्ड' के स्थान पर 'गुरुण्ड' शब्द है, यह श्रीमद्भागवत इत्यादि से स्पष्ट है। मत्स्यपुराण २७३।२३ में वप्टिस्म प्रेस के समान पाठ है; परन्तु 'गुरुण्डाः' स्पष्ट लिखा है। कालिका प्रेस में 'गुरुण्डाः' पाठ है परन्तु 'अवान्तर' शब्द स्पष्ट लिखा है। गुरुण्ड का पर्याय गोरा है। अंग्रेजों को गोरा अभी तक लोग कहते हैं।

अब भी भारतवर्ष अंग्रेजी राज्य से पूरा अलग नहीं है, उससे किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध है। और सम्बद्ध रहेगा, जब तक भविष्यत् राजों तक १३ संख्या पूरी नहीं होती, तब तक इंग्लैंड और भारत का सम्बन्ध अविच्छिन्न रहेगा। श्रीमद्भागवत में 'भूपोदश' पाठ मिलता है, वह अशुद्ध छपा है। हमने यू० पी० में फर्रुखाबाद जिले के तिरवानिवासी श्री दयाशंकर शुक्ल के पास एक (प्राचीन लेखनकाल ३०० के समीप) हस्तलिखित पुस्तक देखी है, उसमें 'त्रयोदश' पाठ है। जब कि पुराणों के भविष्यत् संबंधी लेख इस समय सत्य मिल रहे हैं, जो ऋषियो द्वारा निर्मित हैं, तब वेद जो ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण भ्रमरहित हैं, उनमें अटकलपच्चू लिखा कहना भूल है।

पुराणों मे सरस्वती का वर्णन प्लक्षप्रस्रवण से समुद्र तक है। विनशन में इसके लुप्त हो जाने तथा पुष्करादि में पुनः प्रकट होने तथा पुनः लुप्त होते हुए सौराष्ट्र में सोमनाथ के मन्दिर के पास समुद्र में गिरने का वर्णन है। महाभा० आरण्य० (म०) ५।२ (सु०) ६।३ (चि०) ५।१ यह नदी कुरुक्षेत्र मे है और इसके तट पर सम मरुभूमि मे काम्यकवन है। महाभा० आरण्य० (नि०) ९।५३ (म०) ९।२५ (चि०) ९।१९ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। शांखायन ब्रा० १२।३ यह नदी है। अभिधानचिन्तामणि ९४९ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा पर है। १०८५ यह नदी ब्रह्मपुत्री है। काव्यमीमांसा १७।५ यह नदी पश्चिमदेश में है। १७।१० यह नदी उत्तरापथ में है। महाभा० सभा० (म०) २८।९ यह नदी पश्चिमदेश में है और इसके तट पर शूद्राभीरगण रहते हैं, जो मछली से

निर्वाह करते हैं। महाभा० आर० (चि०) ८३।४ यह नदी कुरुक्षेत्र में है और उत्तर की ओर है। महाभा० हरि० वि० १०९।२२ यह नदी उत्तरापथगामी है। पद्म० सृष्टि० १८। २३३ यह नदी प्रभास, पुष्कर और कुरुक्षेत्र में दुर्लभा है और अन्यत्र सुलभा है। स्कन्द० वै० मार्ग० १४।४७ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। वाराह० ८५।८०, मत्स्य० ११४।२, ब्रह्म० २७।२५ यह नदी हिमालय के पाद से निकली है और भारत में है। वामन० १३।२० यह नदी हिमालय से निकली है और भारत में है। २२।४७ यह नदी कुरुजाङ्गल की एक सीमा में है। २२।५५ यह नदी कुरुक्षेत्र मे सन्निहितसर की सीमा पर है। ३२।४ यह नदी पर्वतों को फाड़ती हुई द्वैतवन में घुस गई, वहाँ प्लक्ष-वृक्ष मे स्थित हुई, और उससे पैदा होकर प्रवल प्रवाह से कुरुक्षेत्र में आई। वहाँ अरन्तुक के समीप से कुरुक्षेत्र को डुबाती हुई पश्चिम को चली गई। ३३।९ यह नदी ब्रह्मावर्त की एक सीमा में है। ३४।६ यह नदी सर्वकालवहा और कुरुक्षेत्र में है। नारदी० उ० ६४।१८ प्लक्ष से पैदा हुई यह नदी मार्कण्डेय के तपस्थान मे आई और सन्निहितसर को डुबाकर पश्चिम दिशा को चली गई। अग्नि० १०९।१५ यह नदी कुरुक्षेत्र में तीर्थ है। भवि० ब्रा० ७।६० यह नदी ब्रह्मावर्त की सीमा पर है। वायु० उत्तरार्ध १५।६७ यह नदी विनशन में है। ब्रह्माण्ड० म० उ० १३।६९ यह नदी विनशन में है। नीलम० १६८ यह नदी कुरुक्षेत्र में है। पद्म० आदि० १०३।३ यह नदी कुरुक्षेत्र और विनशन में है। २५।१८ यह मेरुपृष्ठ में छिपती है। पद्म० सृष्टि० १७।२-८ यहाँ देवमातादेवी है। ब्रह्माण्ड० म० उपो०

३५।४४ यह नदी पुष्कर मे ब्रह्मा के तीनों अग्निहोत्र के कुण्डों को पूरा करने को गई। इसके तट पर अगस्त्याश्रम है। स्कन्द० ब्रह्म० से० १९।१४ यह नदी पश्चिमाभिमुखी है। तैत्तिरीय ब्रा० ८।३।८ इस सरस्वती ने, जल के मध्य मे स्थित पुरुष अनायास जैसे कमल की जड़ को उखाड़ लेता है, उसी प्रकार अपनी तरंगों से पर्वतों के शिखर और मूल तोड़ डाले। स्कन्द० प्रभा० अर्बुद १०।२ यह नदी आम्रवृक्ष से निकलकर बड़वानल को लेकर पश्चिमसागर मे प्रविष्ट हुई। नारदीय० उत्तरार्ध० ७०।२९ यह नदी प्रभास में है। इसके तट पर ब्रह्मेश्वरमहादेव हैं। स्कन्द० प्रभास० ३३।४१ यह नदी हिमालय के दधीचि के आश्रम के पिप्पलवृक्ष से निकलकर दक्षिणाभिमुखी हो पश्चिम-सागर को गई। मार्ग में भूमि में प्रविष्ट और प्रकट होती हुई प्रभास मे पाँच धारावाली हो लवणोदधि में प्रविष्ट हुई। उन धाराओं के नाम ये हैं (१) हरिणी, (२) वज्रिणी, (३) न्यंकु, (४) कपिला, (५) सरस्वती। कात्यायन श्रौतसूत्र १३।५६ यह नदी है। वामन० ४६।५० यह नदी कुरुक्षेत्र में है और स्थाणुलिङ्ग से उत्तर में है। २२।५३ यह नदी कुरुक्षेत्र में सन्निहितासर की सीमा पर है।

कई सरस्वतियाँ पुराणों में और भी लिखी हैं, उनको संक्षेप से लिख रहे हैं:—महाभा० आर० (सु०) ८२।५९ यह नदी नैमिष में है। महाभा० आरण्य० (सु०) ८२।३४ (म०) ६७।३८।। यह नदी रुद्रावर्त और भद्रकर्णेश्वर के मध्य में गंगा से मिली है। वामन० ७।४२ यह नदी नैमिष में है। देवीभागवत ४।८।४६ यह नदी तीर्थ है और नैमिषारण्य में है। इसके

समीप बरगद के पास नर-नारायण का आश्रम है। शिवमहा० वायवीय संहिता उत्तरार्ध ४०।३ यह नदी नैमिषारण्य में है। बाराहपुराण १६०।४८ यह नदी मथुरातीर्थ में है। वायु० उत्तरार्ध ४६।७८ लोमश से बुलाई गई यह नदी मुण्डपृष्ठ गया में है। नीलम० १३९५ यह कश्मीर के समीप गृद्धकूट में है। १४९६ यह कश्मीर में देवसर से पूर्व-दक्षिण है। आजकल इसका नाम कङ्कतोरी है। और काश्मीर में शारदातीर्थ के सामने कृष्णगंगा के साथ इसका संगम है। अग्नि पु० ११६।३२ यह तीर्थ गया में सरस्वतीदेवी के समीप में है। बाराह० १४४।८७ यह नदी प्रयाग में है। १४४।१४९ यह नदी शालग्रामक्षेत्र के त्रिधारकतीर्थ में है। स्कन्द० प्रभास० अर्बुद० ९।२ यह नदी आबूपहाड़ पर मन्दाकिनीनदी से मिलती है। स्कन्द० आव० रेवा० २३०।३९ यह नदी सौगन्धिक और ईशानतीर्थ के बीच मे नर्मदा से मिली है। नारदीय० उत्तरा० ७७।६ यह नदी नर्मदा से मिली है। पद्म० आदि० ३८।६७ यह तीर्थ ऋषभद्वीप में है। महाभा० आर० (चि०) ८४।१६० (सु०) ८२।१३९ (म०) ६७।१५४ यह तीर्थ ऋषभद्वीप में है। ब्रह्म० १२६।३८–४० यह नदी गोदावरी में तपस्तीर्थ में मिली है और संगम का नाम सरस्वतीतीर्थ है। स्कन्द० आव० रेवा० ४९।१३ यह नदी भृगुपर्वत से निकलकर शूलभेदकुण्ड में गिरती है और नर्मदा के दक्षिण तट पर है। मत्स्य० १२१।६४। ३९ यह नदी हेमकूटपर्वत के ऊपर स्थित सर्पसर से निकलकर पूर्वसमुद्र मे गिरती है। ब्रह्म० १०२।८ यह नदी गोदावरी में गिरती है। स्कन्द० काशी० ७५।६ यह नदी काशी में त्रिविष्टपलिंग के

दक्षिण में है। स्कन्द० हिमवत् खण्ड २९।२३ यह नदी नेपाल में है। १०।१४ यह नदी नेपाल में है और मुकुन्दाद्रि के ऊपर स्थित सरस्वतीकुण्ड से निकली है। इसके तट पर तिलेश्वर से पश्चिम बीस धनुष् की दूरी पर चम्पेश्वरशिव हैं। यह मनोवतीनदी में मिली है। स्कन्द० ब्रह्म० धर्मा० २५।१० यह नदी धर्मारण्य में सुलेखपर्वत पर है। स्कन्द० वै० बदरी० ६४।३८ यह नदी बदरीक्षेत्र में गन्धमादनपर्वत पर इन्द्रपदतीर्थ से उत्तर है। यहाँ वेद द्रवरूप से स्थित है। महाभा० आर० (चि०) ८४।३८ यह नदी गंगा से मिली है और इस समय माणा गाँव के समीप केशवप्रयाग में है। विष्णुधर्मोत्तर० १।२३५।१४ यह नदी गंगाद्वार में है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।४८ यह नदी बिन्दुसर के समीप मे गंगा के सात भेदों मे पूर्व जाने वाले और भारत के समुद्र में गिरनेवाले तीन भेदो में एक है, जो कि ब्रह्मा के समुद्र में गिरती हैं। इसके साथ भी प्रमादवश, दृश्या और अदृश्या इत्यादि विशेषण अनभिज्ञ लोगो ने प्रक्षिप्त कर दिये हैं, वे माननीय नहीं हैं। स्कन्द० नागर० १६४।५ यह सरस्वतीनदी आनर्त के चमत्कारपुर (बड़नगर) में दक्षिणवाहिनी है।

(सरस्वती विनशन)—१. वे० इ० "विनशन = गायब हो जाना, एक स्थान का नाम है, जहाँ पर सरस्वती बालू मे लुप्त हो गई है। यह पंचविंश[1] ब्राह्मण तथा जैमिनीयोप-

---

(१) २५।१०।६, कात्यायन श्रौ० सू० २४।५।३०, लाट्या० श्रौ०

निषद्[1] ब्रा० में आया है। यह स्थान वर्तमान पंजाब[2] का पटिवाला जिला है। तुलना करो 'प्लक्षप्रास्रवण' से।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १८० "यह चलौरग्राम के पास बालू में विलीन हो जाती है और भवानीपुर के पास फिर प्रकट होती है, और बालछप्पर के पास पुनः विलीन हो जाती है, और बरखेरा के पास फिर प्रकट होती है, और पेहोआ के निकट उर्नई में मार्कण्डनदी से मिल जाती है तथा संयुक्तधारा सरस्वती कहलाती है, जो बाद में घग्गर (घर्घर) में थोड़ी दूर पर मिल जाती है, जो कि सम्भवतः सरस्वती का निचला भाग था (पंजाब गज़टियर अम्बाला डिस्ट्रिक्ट चेप्टर १)। घग्गर या गग्गर पुरानी सरस्वती मानी जाती है। परन्तु यह नाम कैसे हट गया, यह अज्ञात है (जे० आर० ए० एस० १८९३ पृ० ५१)। 'पावनी' देखिये। महाभारत भी कहता है कि यह नदी विलीन होकर तीन स्थानों पर प्रकट होती है। वे ये हैं:—चमसोद्भेद, शिरोद्भेद और नागोद्भेद (वन पर्व ८२)। सरस्वतीनदी ऋग्० में एक बहती हुई नदी के रूप में वर्णित है। मनुस्मृति और महाभारत में इसका बाद में विलीन होना वर्णित है, जो कि शिरसा के समीप विनशनतीर्थ कहा जाता है (जे० आर० ए० एस० १८९३ पृ० ५१)।

वस्तुतः यह स्थान मध्यदेश की पश्चिमी सीमा पर है

सू० १०।१५।१, बौधायन धर्म सू० १।१।२।१२, तुलना करो बूलर सेक्रेड बुक्स आफ् दी ईस्ट १४।२।१४७।

(१) ४।२६।

(२) तुलना करो इम्पीरियल गज़टियर आफ इंडिया २२।६७।

और सरस्वती के निर्गम स्थान से घोड़े से ४४ दिन[1] चलने के मार्ग पर है। सायणाचार्य ने ताण्ड्य ब्रा० २५।१०।२।१ का भाष्य यह किया है कि सरस्वतीनदी पश्चिम को बहती है और उसका पूर्व और पर भाग सभी के सामने है। मध्यभाग भूमि के भीतर डूबा हुआ है। उसको कोई देखता नहीं, इसी से उसका नाम विनशन है। उसके प्रारम्भ में दक्षिण तीर में दीक्षा ले "सरस्वत्या विनशने दीक्षन्ते" यह सूत्र का स्वरूप है। लाट्यायन श्रौ० सू० १०।१५।१, कात्यायन श्रौ० सू० २४।१८६ मे भी सरस्वती-विनशन का नाम आया है और दक्षिण तीर पर यज्ञों के करने का विधान है।

(**सरस्वती सप्तस्वसा**)—योरोपियन विद्वान् 'सप्त-सिंधवः' की सात नदियों को सरस्वती की बहन मानते हैं, जो कि उनके मत मे पंजाब की पाँचो नदियाँ एवं सिंधु और सरस्वती हैं।

वस्तुतः सामवेद पूर्वार्चिक अध्याय १३ खण्ड ४ सूक्त २ ऋचा १ में 'सरस्वती सप्तस्वसा' प्रयोग आया है। तथा ऋग्० ६।६१।१० में 'सरस्वती' का 'सप्तस्वसा' विशेषण आया है। मंत्रार्थ यह है—'और भी हमारे प्रियो के मध्य मे अत्यन्त प्रिया सप्तस्वसा (सात बहनवाली) पुराने ऋषियों से सेवित सरस्वती-देवी या सरस्वतीनदी स्तोत्र के योग्य हो।' योरोपियन विद्वानों का मत 'सप्तसिंधवः' की सातों नदियों का मानना, ऋग्० ८।५४।४ में 'सप्तसिंधवः' और 'सरस्वती' दोनों शब्दों के आने से असंभव है। यदि 'सप्तसिंधु' में सरस्वती होती तो सरस्वती

(१) ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०।१६।

को पृथक् लिखने की आवश्यकता न थी। भाई-बहन एक माता-पिता के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं, इसलिए यहाँ पर सरस्वती का उत्पादक हिमालय ही शेष छः नदियों का उत्पादक मानना होगा। इससे हिमाद्रिप्रभवा प्रसिद्ध और पवित्र गंगादिक छः नदियाँ सरस्वती की बहन हो सकती हैं। गंगा, यमुना, सरयू, असिक्नी, सिन्धु, दृषद्वती मान लेनी होंगी।

सरित्—ऋग्० ४।५८।६ में सामान्य नदी के अर्थ में आया है।

सर्वचरु—१. वे० इ० "सर्वचरु ऐतरेय[1] ब्रा० तथा कौषीतकी[2] ब्रा० के स्थान पर आया है, जहाँ पर देवता लोग सर्वचरौ नामक बलि लेते बतलाये गये हैं। यह शब्द सेन्ट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी के अनुसार एक मनुष्य के नाम के लिये आया है। एक[3] स्थान के नाम का भी संभव है अथवा एक विशेषण के रूप मे भी अर्थ माना[4] जा सकता है।"

२. राथ के अनुसार यह एक मनुष्य का नाम है।

३. आउफ्रेच्ट के मत में यह विशेषण यज्ञ का है।

वस्तुतः यह एक स्थान का नाम है और सायणाचार्य इसको देश मानते हैं। ऐतरेय० २६।१।१ में इसका वर्णन आया है। सर्वचरु नामक स्थान में देवताओं के सत्र का वर्णन

(१) ६।१।१ (२६।१।१)।

(२) २६।१।

(३) सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण में वहीं।

(४) आउफ्रेच्ट ऐतरेय ब्रा० ४२५ नं० १, जो कि यह सुझाते हैं कि यज्ञ में भी माना जाना चाहिये।

है। इसमे अर्बुदोदासर्पणी नाम का मार्ग है, 'अर्बुदसर्पणी' भी पाठान्तर है। अग्निष्टोम नामक यज्ञ में सोम को कूटकर निकालने के समय ब्रह्मा नामक महत्‌ऋत्विक् कूटनेवाले पत्थरों की ग्रावस्तुत् सूक्त से स्तुति करता है। वह स्तुति क्यों की जाती है, इसका कारण बतलाने के लिये ऐतरेय० में एक आख्यायिका लिखी गई है। वह यह है:—देवताओं ने सर्वचरु नामक स्थान मे एक सत्र किया, जिससे अपनी दरिद्रता के कारण (पाप) को नष्ट करें। तब कद्रु के पुत्र अर्बुद नामक सर्प ने आकर देवताओं को एक सूक्त बतलाया। तब देवताओ ने उस सूक्त से उन पत्थरों की स्तुति की। तभी से यज्ञ मे 'ग्रावस्तुत्' नामक सूक्त से सोम निकालने के समय पाषाणो को अभिमंत्रित किया जाता है। ऐतरेय का अक्षरार्थ न समझनेवालों ने खूब मनमानी उड़ाई।

सल्व—१. वे० इ० "सल्व एक जाति का नाम है, जो कि शतपथ[1] ब्रा० मे उल्लिखित है। जिसमें श्यापर्ण सायकायन के द्वारा एक आत्मश्लाघा का वर्णन है, कि यदि उसकी कुछ क्रियाएँ पूरी हो गई होतीं तो उसकी जाति ब्राह्मणों, राजाओं तथा सल्वाज् के किसानों की तरह होती अथवा उसकी जाति साल्वाज् से भी बढ़ जाती। ये लोग साल्वी:, प्रजा: के रूप में मंत्रपाठ[2] में आये हुए प्रतीत होते हैं, जहाँ पर ऐसा कहे हुए माने जाते हैं कि जब साल्वाज् अपने रथ[3] को यमुना के तट पर रोके थे,

(१) १०।४।१।१०।

(२) २।११।१२।

(३) विन्टरनीज मंत्रपाठ ५५, ५७ में "साल्व-स्त्री जो कि चर्चा

तब उनके राजा यौगन्धरि थे। बाद का प्रमाण[1] यह संकेत करता है कि साल्वाज् या शाल्वाज् कुरु पांचालाज् से घनिष्ठ सम्बद्ध थे और प्रकटतः उनमे से कुछ अन्त में यमुनानदी के किनारे विजयी हुए। कोई अच्छा प्रमाण नहीं कि उनको वैदिक समय[2] में उत्तर-पश्चिम में रहता हुआ माना जाय।"

२. वेबर इनको बाद में राजस्थान में बसता हुआ मानते हैं। (वे० इ०)

३. विन्टरनीज[3] "एक और मंत्र है, जो संभवतः हमें किसी दिन मंत्रपाठ का निश्चित काल बताने में सहायक हो। यह है साल्वो के बीच में सीमन्तोन्नयन के अवसर पर दो वीणा बजानेवालों के द्वारा गाई हुई गाथा। दूसरे गृह्यसूत्र (हिरण्यकेशि गृह्य० २।१।३, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१४।७, पारस्कर गृह्य० १।१५।८) मंत्रपाठ—

"सोम एव नो राजेत्याहुर्ब्राह्मणीः प्रजाः।

विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण सौ तव।" २।११।१२

—के समान एक गाथा का उल्लेख करते हैं, जिसमें सोमराजा

चला रही है"—इस बात का उल्लेख पाता है। परन्तु एक लड़ाकू जाति के आक्रमण का उल्लेख बहुत सम्भव मालूम होता है।

(१) महा० ४।१।१२ तथा ८।४४ (४५)। १४, पाणिनि की काशिकावृत्ति ४।१।१७३ की कारिका यौगन्धराज् की ओर संकेत करती है।

(२) तुलना करो वेबर इंडिस्चेस्टडियन १।२१५, बाद में वे राजस्थान में पाये गये होंगे। लासन इ'डिस्चेअल्टर थुम्स कुण्डे १[२]।७६०।

(३) आपस्तम्ब मंत्रपाठ भाग १ की भूमिका पृ० ४५ में विटरनीज ने लिखा।

की प्रशंसा की गई है और जिस नदी के पास पुजारी रहता है, उसका नाम उल्लेख करना उचित है। केवल आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (१४।४।६) कहते हैं कि पहली गाथा मंत्रपाठ—

"यौगन्धरिरेव नो राजेति साल्वीरवादिषुः।

विवृत्त चक्रा आसीनास्तीरेण यमुने तव।" २।११।१२

—साल्वों के बीच में गाने के लिये है, और दूसरी (अर्थात् २।११।१३) साधारणतया ब्राह्मणों के लिये प्रयोग करने को है। गाथा किसी आख्यान का भाग है, जिसका अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है—"केवल यौगन्धरि हमारा राजा है" ऐसा साल्व (स्त्रियों ?) ने कहा, हे यमुना ! तुम्हारे तट पर बैठे हुए चक्र (?) के चारों ओर घूमते हुए कहा। इस छन्द का शुद्ध अर्थ जानना असम्भव है, जो आरम्भ में एक लम्बी गाथा का भाग होगा, जिसका केवल यही एक छन्द हमें प्राप्त है। फिर भी यह निश्चित है कि यौगन्धरि उन साल्वों के राजा का नाम है, जो कहीं यमुना के किनारे पर रहते होंगे और यह प्रतीत होता है कि मंत्रपाठ के लेखक अथवा संग्रहकर्ता का साल्वों के इस राजा अथवा अन्य किसी राजा से सम्बन्ध रहा होगा।"

"साल्वों अथवा शाल्वों का बहुधा संस्कृत-साहित्यों में उल्लेख मिलता है। वे बहुत सी जातियों में विभक्त थे, जिनमें एक युगन्धर जाति के लोग थे, जैसा कि हम काशिका के पाणिनि ४।१।१७३ की कारिका में देखते हैं :—

"उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः।

भुलिङ्गाः शरदण्डाश्च साल्वावयव संज्ञिताः।"

"महाभारत ४।१।१२ मे शाल्वों और युगन्धरो का एक साथ उल्लेख कुरुओ के चारों ओर सुन्दर देशों में मिलता है। और महाभारत ८।४।(४५)।१४ में शाल्वों का उल्लेख कौरवों और पांचालों के बाद अन्य जातियों के साथ मिलता है, जो जाति ब्राह्मणधर्म के शाश्वत नियम का पालन करती है। एच० एस्० विल्सन (विष्णुपुराण लन्दन १८४० पृ० १७७) के अनुसार शाल्वों ने राजस्थान के भाग को घेर रखा था तथा एक शाल्वराजा की शत्रुता अन्यस्थल पर गुजरात में द्वारका के लोगो से दिखलाई है। लासन साल्वों की समानता प्लिनी के Salabastrae से बतलाते हैं और उनकी स्थिति सिन्धु तथा अरावली के बीच में बतलाते हैं। हमारे मंत्रपाठ के अनुसार साल्वो की, या शाल्वों के एक अग युगन्धरो की कहीं यमुना के पास स्थिति बतलानी चाहिये। चूँकि आपस्तम्बियों का सम्प्रदाय निःसन्देह दक्षिणी भारत का है, तो हमें मंत्रपाठ का उदय भी दक्षिण में समझना चाहिये। कुछ भी हो मन्त्रपाठ मे केवल यही उद्धरण है, जिसमे ऐतिहासिक प्रसंग हैं।"

४. लासन साल्वों की स्थिति सिन्धु तथा-अरावली के बीच मे बतलाते हैं। (विन्टरनीज मंत्रपाठ)

५. विल्सन साल्वों का देश राजस्थान मे मानते हैं। (विंटरनीज मन्त्रपाठ)

६. भारतीय इतिहास की रूपरेखा जिल्द १ पृ० २०४ "साल्वदेश, आबू के चौगिर्द का प्रदेश, इसकी राजधानी मार्तिकावतनगर था। यह नगर पर्णाश (आधुनिक बनास) के तट पर था और वृष्णि के भाई की राजधानी था।"

वस्तुतः यह एक देश था और पंजाब में रावी के पश्चिम था। यह कई भागों में बँटा था। उनके नाम ये हैं :—उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिङ्ग शरदण्ड और अजमीढ़[1]। शरदण्ड रावी का नाम है, यह वाल्मीकि रामा० अयो० में स्पष्ट है। 'केकय' देखिये। शरदण्ड रावी पर था, उससे दक्षिण-पश्चिम भूलिगदेश है। उसकी राजधानी भूलिगा है, इसके लिये भी 'केकय' देखिये। युगन्धरदेश की राजधानी युगन्धरनगर, जो युगन्धर राजा के नाम से प्रसिद्ध थी, उसका पुत्र यौगन्धरि कहा जाता था। मद्रकार और मद्र दोनों एक थे, इसकी राजधानी शाकल थी, जो आजकल श्यालकोट नाम से प्रसिद्ध है। कोई लोग ईरानियन भाषा में 'कार' शब्द का अर्थ 'सेना' कहकर 'मद्रकार' का अर्थ 'मद्र की सेना' करते हैं। वह भी ठीक नहीं, क्योंकि इस भाषा में 'कारजार' शब्द 'संग्रामभूमि' के लिये आता है। इससे 'कार' शब्द का अर्थ 'संग्राम' हो सकता है, न कि 'सेना'। इसके सभी अवयव रावी के पश्चिम थे और साल्वावयव भी कहे जाते थे। कुछ भाग शुद्ध साल्व भी था, वह भी इन्हीं से सटा हुआ था तथा उसी का राजा शाल्व था। उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अनुपस्थिति में द्वारकापुरी पर चढ़ाई की थी। युगन्धर के पंजाब मे होने मे महाभारत के कर्ण पर्व का कर्ण-शल्य का संवाद भी गवाही देता है। विन्टरनीज ने मंत्रपाठ २।११।१२ का अर्थ असंम्भव लिखा है। उसका अर्थ यह है :—'हे यमुने ! बदल गया है राष्ट्र जिसका,

(१) महाभाष्य 'वृञ् मगध' ४।१।१७०। काशिका ४।१।१७३। पदमञ्जरी।

ऐसी साल्वदेश की प्रजाएँ आपके तट पर बैठी हुई कह रही हैं कि यौगन्धर ही हमारा राजा हो।' इसके अर्थ से यह प्रतीत होता है कि सल्वदेश की प्रजाएँ अपने देश से भागकर यमुना-तट पर ठहरकर यौगन्धरि को अपने देश का फिर राजा होने की प्रार्थना कर रही थीं।

यह देश रावी के पश्चिम था, इसमें प्रमाण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी मे 'स्त्रीषु सौवीर साल्व प्राक्षु' सूत्र में साल्व को प्राच्य के साथ लिखा है। इससे साल्व स्पष्ट उदीच्यदेश मे है। यदि साल्व प्राच्यदेश में होता तो साल्व के पृथक् लिखने की आवश्यकता न थी। महाभाष्यकार ने 'अव्ययात्यप्' सूत्र के महाभाष्य मे 'शाकल' को उदीच्यदेश में माना है। शाकल मद्र-देश की राजधानी है और 'एङ् प्राचाम् देशे' के महाभाष्य मे सेपुर और स्कोनगर को प्राच्यदेश में माना है। कैयट ने इन दोनों को वाहीकग्राम; अर्थात् पंजाब के गाँव माना है। यह बात वहीं के विवरण मे स्पष्ट है। इस प्रकार महाभाष्यकार का व्यवहार पंजाब में ही उदीच्य और प्राच्य का विभाग प्रारम्भ होता है—यह कह रहा है। उदीच्य और प्राच्य के विभाग को करनेवाली शरावतीनदी वाल्मीकि की शरदण्डा, वर्तमान रावी है। शर (तृण) अधिक समीप होने के कारण इसका नाम शरावती पड़ा।

शतपथ ब्रा० १०।४।१।१० में इसका वर्णन है। अर्थ यह है :—(श्यापर्ण सायकायन कह रहे हैं) 'यदि हमारा यह काम समाप्त हो जाता तो हमारी प्रजा, हमारे ब्राह्मण और हमारे वैश्य सल्वदेश के राजा हो जाते। हमारा जितना कर्म समाप्त हुआ है, इससे हमारी प्रजा शल्वदेश की प्रजा से बढ़ गई, वही

श्री है, वही यश है और वही अन्न भोजन को है।' इसमें सल्वशब्द देशअर्थ मे आया है, जातिअर्थ में नहीं। वैदिक इंडेक्सकार का अर्थ मनमाना है। सल्व, साल्व, शाल्व–सभी पाठ मिलते हैं और अर्थ समान है। साल्वदेशनिवासी और कुरुदेशनिवासी परस्पर संबद्ध थे, यह कथन निराधार है।

साचीगुण—१. वे० इ० "साचीगुण एक स्थान का नाम है, जो कि भरताज् के राज्य मे था। ऐतरेय[1] ब्रा० की एक ऋचा में आया है। ल्यूमन[2] इसको इन्द्र का दूसरा नाम मानता है, साचीगु से इसका तात्पर्य रहा होगा।"

२. ल्यूमन इसको इन्द्र का दूसरा मानते हैं।

वस्तुतः यह एक स्थान का नाम है। सायणाचार्य इसको देश मानते है। यहाँ पर दुष्यन्त के पुत्र भरत ने अग्नि का चयन किया था, और भरत की दी गई गायो के विभाग में सहस्रों ब्राह्मणो ने सौ-सौ करोड़ गायें बाँटी थीं, यह ऐतरेय ब्राह्मण ३९।९ मे लिखा है। श्रीमद्भागवत ९।२०।२६ मे भी ठीक इसी प्रकार का वर्णन है।

वैदिक इंडेक्सकार भरताज् के राज्य में कह रहे हैं, यह ठीक नहीं। क्योंकि ऐतरेय ब्रा० भरत का नाम ले रहा है। जो भरत भरताज् के पूर्वज थे, वह भरताज् कैसे कहे जा सकते?

ल्यूमन् का कथन एकदम निराधार है। वैदिक इन्डेक्सकार का भी यही मत है।

---

(१) ८।२३।४ (३९।९)।

(२) जेट्स च्रिफ्टसडेर डयूट्स्चेन मार्गेन लांडिसस्चेन जेस लेश चेफ्ट ४८।८० एन ५, यह धारणा ठीक नहीं मालूम पड़ती।

सात्व—यह देश रावी के पश्चिम है। उदुम्बर तिलखल, मद्रकार, युगंधर, भूलिङ्ग, शरदण्ड और अजमीढ़ इसके भाग हैं। शरदण्ड नामक भाग रावी के तट पर था, इसीलिए शरदण्डों के समीप होने के कारण रावी का शरदण्डा नाम वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड में आया है। 'केकय' देखिये। इससे दक्षिण-पश्चिम का भाग भूलिङ्ग था। इसकी राजधानी भूलिङ्गा थी, यह वाल्मीकि ने लिखा है। साल्व और शाल्व दोनों प्रकार के पाठ मिलते हैं। 'शाल्व' देखिये। यह शब्द मत्स्यदेश के साथ द्वन्द्वसमास मे मिलता है। इसके सत्व और साल्व दोनों नाम मिलते हैं। यह शब्द क्षत्रिय का भी बोधक है, इससे यह क्षत्रियसमान जनपदवाची है। काशिका 'साल्वावयव, इत्यादि' ४।१।१७३ में साल्व क्षत्रिय है, उसका पुत्र भी साल्व है एवं उसका निवास जनपद भी साल्व है। यह देश उदीच्य है; अर्थात् रावी के पश्चिमोत्तर देशों में है।

महाभा० आदि० (म०) ९६।३३, महाभा० विराट्० २।६० यह देश है। महाभा० सभा० (म०) ५२।१३० ये क्षत्रिय युधिष्ठिर के यज्ञ मे बहुत सा धन लाये। वैजयतीकोष भूमि० देशाध्याय ३८ साल्व का कारकुत्सीय भी नाम है और मध्यदेश मे है। परन्तु ३२ मे इसको प्राच्य माना है। इन्हीं वैजयन्तीकार ने उदीच्य और प्राच्य की व्याख्या करते हुए शरावतीनदी के उत्तर-पश्चिम भाग को उदीच्य माना है और पूर्व-दक्षिण भाग को प्राच्य माना है तथा उन दोनो के मध्य को मध्यदेश माना है। इनको यह ज्ञान न हुआ कि नदी के दोनों तट जब उदीच्य और प्राच्य में बँट गये तो मध्यदेश के लिए स्थान

नदी की धारामात्र रह गई। इसलिये इनका मध्य और प्राच्य में कहना भी कोई प्रतिष्ठा नहीं रखता। अभिधानचिंतामणि ९५७ यह कारकुक्षीय का नाम है। विशेष 'सल्व' और 'शाल्व' में देखिये।

सिन्धु—१. वे० इ० "सिन्धु ऋग्वेद[1] तथा अथर्ववेद[2] में कई स्थानों पर नदी के रूप में आया है, तुलना करो 'सप्त-सिन्धवः' से। परन्तु इसका अर्थ बहुत अच्छी नदी सिन्धुनदी[3] भी है। यह नाम संहितायुग के बाद बहुत कम पाया जाता है, तब दूरी के अर्थ मे आता है। सिन्धु (सैन्धव) के घोड़े बहुत प्रसिद्ध थे। 'सैंधव' देखिये तथा तुलना करो 'सरस्वती' से।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ १८६ "(नं० १) सिंध-नदी, इन्डस-चिनाव के संगम के पहिले यह नदी सिन्धु कहलाती है। संगम से अरोर तक यह पंचनद कहलाती है और अरोर से अपने मुहाने तक मिहरान कहलाती है (अल्बरूनी की इन्डिया १ पृष्ठ २६०, कलकत्तारिव्यू खण्ड ११७ पृ० १५)। इसके उद्गम वृत्तान्त के लिए स्वेनहेडिन की 'ट्रांस हिमालय'-वालूम २ पृष्ठ २१३ देखिए। यह नदी विहिस्तान इन्सक्रिक्शन

---

(१) ऋग्० १।६७।८, १।१२५।५, २।११।६, २।२५।२, ५ तथा ३।५३।६ आदि।

(२) ३।१३।१, ४।२४।२, १०।४।१५ तथा १३।३।५०, आदि।

(३) ऋग्० १।१२२।६, ५।४।६, ५५।३ तथा ५।५३।६, ७।६५।१, ८।१२।३, २५।१४, २०।२५, २६।१८ तथा १०।६४।६, अथर्ववेद १२।१।३, १४।१।४३, सभवतः ६।२४।१, ७।४५।१, १६।३८।२ भी. वाजसनेयी स० ८।५६।

की 'हिधू' तथा बाईबिल की 'होडू' और वेदिन्दाद की 'इन्दु' है। (न० २) टालेमी के अनुसार इस सिन्धुदेश के दक्षिण में आभीर लोग रहते थे और उत्तर मे मुशिक लोग। आभीर लोगों ने ही श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद पंजाब मे अर्जुन से गोपियों को छीना था (ब्रह्मपुराण अ० २१२)। (नं० ३) कालीसिन्ध जो कि मालवा मे है। महाभारत वनपर्व अ० ८२ में दक्षिणसिन्धु और मेघदूत १।३० में सिन्धु नाम से वर्णित है (मत्स्यपुराण अध्याय ११३)। ह्वेनस्वांग ने भारतवर्ष का नाम इन्दु लिखा है, वह सिन्धु का ही रूपान्तर है और चीनियों द्वारा रखे गये नामो के लिए देखिये—बेट्स चैनडर्स मेडिवल रिसर्चेज वालूम २ पृष्ठ २५। मिस्टर रेप्सन के अनुसार सिन्धुदेश ही इन्डिया है (इन्शेन्ट इंडिया पृष्ठ १८५)। (नं० ४) मालवा मे एक नदी है, जो सिरोंज के पास से निकलकर यमुना में गिरती है (मालतीमाधव ४।९)। यह देवीपुराण अध्याय ३९ की पूर्वसिधुनदी है। (नं० ५) ऊपरी सिन्धनदी का भाग सिन्धुदेश था (आनन्दराम बरुइया की डिक्शनरी वालूम ३ फेसप्रेफेस २० से २५ तक)।"

३. राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ५ "कालीसिंधु, यह मध्यभारत से निकलती है और ग्वालियर, देवास, नरसिहगढ़ तथा इन्दौर राज्यों में बहती हुई राजपूताने मे प्रवेश करती है। फिर-झालाबार तथा कोटा राज्यों मे बहती हुई पीपलागाँव के पास चम्बल में मिल जाती है। राजपूताने में इसका प्रवाह ४५। मील है।"

वस्तुतः यह शब्द देशअर्थ, सामान्य नदी, सिन्धु नामक विशेष नद, कालीसिन्धु नामक नदी तथा समुद्र के अर्थ में आता

है। देश, नदविशेष और समुद्र के अर्थ में यह शब्द पुल्लिग है। सामान्य नदी के अर्थ में स्त्रीलिग और पुल्लिग भी है। यह शब्द ऋग्वेद १।१२६।१ मे देशअर्थ मे आया है। यह मंत्र दानस्तुति में है। अर्थ यह है:—"सिन्धुदेश में निवास करते हुए भाव्य के पुत्र स्वनय के अनल्पस्तोम (सामवेद के स्तोत्रविशेष को) और उसके दानों के कीर्तन को प्रियाविशय बुद्धि से करता हूँ। (क्या उसमें विशेष है, यह शंका करके कहते हैं) किसी से अहिंसित उस राजा ने अपनी कीर्ति की इच्छा करते हुए सम्पूर्ण धनप्रदान से सहस्रों सोमयाग मेरे लिये किये हैं, जिससे इस राजा ने आर्त्विज्य इत्यादि उपाधि के बिना ही कीर्ति के लिये बहुत सा धन दिया है। इससे इसकी स्तुति करता हूँ।" ऋग्० ३।३६।६ में सिन्धुशब्द सामान्यनदी के अर्थ में आया है। मंत्रार्थ 'समुद्र' में है। ऋग्० ३।३३।३ में सिन्धुशब्द सामान्यनदी के अर्थ में आया है। इसका मंत्रार्थ 'विपाट् शुतुद्री' मे है। ऋग्० ४।३३।७ में सिन्धुशब्द सामान्यनदी अर्थ में आया है। ऋग्० ६।३६।३ में सिन्धुशब्द सामान्यनदी के अर्थ में आया है। अर्थ 'समुद्र' में है। ऋग्० ८।९२।२२ में सिन्धुशब्द का अर्थ सामान्यनदी है। ऋग्० ९।१०८।१६ में सिन्धु का अर्थ सामान्यनदी है। ~~अर्थ 'समुद्र' में है।~~ ऋग्० ९।८८।६ मे सिन्धुशब्द सामान्यनदी के अर्थ में है। अर्थ 'समुद्र' में है। ऋग्० ७।९५।१ में सिन्धुशब्द का अर्थ सामान्यनदी है। इसका अर्थ 'पुर' में मिलेगा। ऋग्० १।९७।८ में सिन्धुशब्द का अर्थ सामान्यनदी है। अर्थ यह है:—(मंत्र अग्निस्तोत्र में आया है) "हे अग्ने! वह आप नाव से नदी के समान क्षेमार्थ

शत्रुओं का अतिक्रमणकर हमारा पालन करें; अर्थात् हमें शत्रु-रहित प्रदेश में पहुँचाएँ। आपके प्रसाद से हमारा पाप हमसे दूर हो।" ऋग्० ८।२४।२७ मे तथा १०।६८।१२ में सप्तसिन्धु शब्द आया है। यहाँ पर भी सिन्धु का अर्थ सामान्यनदी है। ऋग्० ४।३०।१२, ६।५२।६ तथा ६।१९।५ में सिन्धुशब्द का अर्थ सामान्यनदी है। ऋग्० २।१५।६ में सिधुशब्द का अर्थ कालीसिन्धु है, जो मध्यप्रदेश की ग्वालियर-कमिश्नरी में इसी नाम से प्रसिद्ध है। अर्थ यह है:—"उस इन्द्र ने अपनी महिमा से सिन्धुनदी को उत्तराभिमुखी बनाया और अपनी बलिष्ठ सेनाओं तथा वज्र से दुर्बल सेनाओं का विशेषरूप से भेदन करते हुए उषादेवी के शकट को चूर्ण किया।" इसमे सिन्धु का उत्तराभिमुखी होना वर्णित है। उत्तराभिमुखी कालीसिन्धु ही है। बड़ीसिन्धु का प्रवाह कहीं भी उत्तराभिमुखी नहीं है। जो लोग ऋग्० में पंजाब के आगे का वर्णन नहीं बतलाते हैं, उन्हें इसे देखना चाहिये।

ऋग्० १०।७५ में सिन्धुनद का वर्णन है। इस सूक्त में नौ मंत्र हैं। सभी में सिंधुशब्द से सिंधुनद का ही वर्णन है। केवल पाँच में सुषोमाशब्द से वर्णन है। ऋग्० १०।७५।१ में यह मंत्र नदीस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—"हे जलो! आपके उत्कृष्टतम महत्व की स्तुति करनेवाला मैं यजमान के यज्ञ में कह रहा हूँ। वे नदियाँ सात-सात होकर तीन स्थानों में; अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में बहीं। उन नदियों के मध्य में सिंधु नामक नदी अपने बल से सम्पूर्ण नदियों का अतिक्रमण करके बहती है।"

पुराणों[1] में गंगा का वर्णन तीन स्थानों पर; अर्थात् स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी पर किया है। पृथ्वी पर गंगा की सात धाराओं का वर्णन है। तीन धाराएँ पूर्व को गईं, तीन पश्चिम को और एक दक्षिण को गई। पूर्व जानेवाली धाराओं के नाम नलिनी, ह्लादिनी और पावनी हैं। पश्चिम जानेवाली तीन नदियाँ सीता, चक्षु और सिन्धु है। दक्षिण जानेवाली धारा अलकनंदा; अर्थात् भागीरथीगंगा है। सातों धाराएँ भारतवर्ष के ही समुद्र में गिरती हैं। पूर्वी[2] धाराएँ बर्मा के समुद्र में गिरती हैं। पश्चिम[3] जानेवाली धाराओं में सिंधु सर्वप्रसिद्ध है। चक्षु को वंक्षु कहते हैं और सीता का नाम क्या है, यह हमको इस समय तक निश्चय नहीं है। महाभारत में नलिनी का नाम सरस्वती लिखा है। और सब समान हैं। हमारी समझ में यदि सप्तसिंधु में सात नदियाँ अर्थ किया जाय तो गंगा के ये सात भेद ही लेना चाहिये। इसीलिये सायणाचार्य 'सप्तसिंधु' शब्द का अर्थ 'चलते हुए जल' अथवा 'गंगा आदि सात नदियाँ' करते हैं। गंगा का भेद ही सिंधु है। इससे 'सप्त-सिंधु' और 'सात गंगायें' एक ही पदार्थ हैं। ऋग्० के इस मंत्र का वर्णन पुराणों के कहे हुए गंगा की ओर इशारा कर रहा है। ऋग्० १।७१।७ में 'सप्त' से इन्हीं सात नदियों का समुद्र

---

(१) वायु० ४७।३७–५८, ब्रह्मा० पू० अ० १८।४०, वाल्मी० बा० (नि०) ४३।११ (गु०) ४३।१३, महाभा० भी० (चि०) ६। ४७, महाभा० आदि० (चि०) १७०।१६ (नि०) १८६।१६।

(२) ब्रह्मा० पू० अ० १८।४४–६१, वायु० वही।

(३) ब्रह्मा० पू० अ० २।१८।४१-४६।

में जाना लिखा है। समुद्रगामिनी ही सात ली जायँगी। पुराणों[1] में भारत के भीतर बर्मा, अफ्रीका, यूनान, अंगोरा, क्रीमियाँ, मुशल और पारसीकदेश को भी माना है। परसिया पारसीक कही जाती थी। मुशलदेश आज भी टर्की और पर·

(१) विष्णुपुराण २।३।१८ पारसीक यह देश भारत में है। ब्रह्म० १६।१८ यह देश भारत में है। महाभा० भीष्म० (नि० चि०) ६। ६६ यह देश भारत में है। कूर्म० ब्रा० पू० ४७।२१ से भारत के प्रारम्भ का वर्णन है। उसमें पारसीक शब्द आया है। पद्म० आदि० ६।६१ यह पारसीकदेश भारत में है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।६५ यवनदेश भारत में है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।६० अगारदेश भारत में है। पद्म० आदि० ६।५८ 'मुसल' यह देश भारत में है। ब्रह्म० २२०।८ 'कृमयः' यह देश भारत में है। पद्म० आदि० ६।५२ 'बर्बरा' यह देश भारत में है। महाभा० भीष्म० (चि०) ६।५१ यह बर्बरादेश भारत में है। ब्रह्मा० पू० अ० २।१६।४६ यह देश उदीच्य है। मत्स्य० १२१।४३, कल्कि० ३।१४।२६, वाल्मीकि० कि० (इ०) ५४।१४ (नि०) ४३। १३, वायु० ४५।११८ बर्बरादेश भारत में है और उदीच्य है। मार्क० ५४।५ में भारत का प्रारम्भ है। उसमें यह नाम है। महाभा० (आर० चि०) २५४।८ यह देश पश्चिमभारत में है। मार्क० ५४।५ में भारत का प्रारम्भ है। उसमें बर्बरा का वर्णन है। महाभा० (चि०) ६।६५ यह चीनदेश भारत में है। ब्रह्म० २७।१४ से भारत का वर्णन है। उसमें चीन है। ब्रह्मा० पू० अ० २।१६।५ से भारत का वर्णन है। उसमें चीन है। मार्क० ५४।५ से भारत का वर्णन है। उसमें चीन है। महाभा० उद्योग० (सु०) १६।१५ में आसाम के राजा भगदत्त का चीनियों को साथ लेकर दुर्योधन के पक्ष में लड़ने के लिए आने का वर्णन है। पद्म० आदि० ६।५८, महाभा० भीष्म० (नि० चि०) ६।६३ 'स्तनवाल' यह देश भारत में है।

सिया के बीच में इसी नाम से प्रसिद्ध है। अंगोरा का नाम पुराणों में अंगाराशब्द से आता है। कुस्तुनतुनियाँ का दूसरा नाम स्तम्बोल भी है। पुराणों में स्तनवाल नामक शब्द से प्रसिद्ध है। क्रीमियाँ का नाम पुराणों में कृमयः मिलता है। यवन का अर्थ यूनान है। बर्बरा अफ्रीका में एक प्रसिद्ध नगर है और पुराणों में बर्बरा नाम से देशअर्थ में यह शब्द आता है। अरब शब्द संस्कृत के 'अरु' शब्द का बहु-वचन है; क्योंकि देशअर्थ में शब्द बहुवचन बोले जाते हैं। अन्तर इतना है कि जो शब्द पहले देशअर्थ में प्रसिद्ध थे, उनमें से कुछ शब्द आज नगर के अर्थ में प्रसिद्ध हैं। पुराणों में भारत का वर्णन धनुषाकार है। चीन के यात्री ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि चीन में भारत को धनुषाकार मानते हैं। कनिंग-हम लिखते है कि भारत का वर्णन महाभारत में कमलाकार है। यह बात उनके बतलानेवाले की अनभिज्ञता सूचित कर रही है। पुराणों में धनुष् की प्रत्यञ्चा के स्थान में हिमालय है। यष्टि के स्थान में समुद्र है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों समुद्र इसमें लिये जाते हैं। पूर्वी सीमा इंडोचाइना के पूर्व का समुद्र है। क्योंकि भारत में चीन का भी वर्णन है। चीन से इन्डोचाइना ही लिया जायगा। महाभारत में इन्डोचाइना का राजा भगदत्त, जिसकी राजधानी आसाम के गोहाटीनगर में थी, दुर्योधन के पक्ष में लड़ने को आया था।

ऋग्वेद १०।७५।२ का अर्थ यह है:—"हे सिन्धो! आपके गमन के लिये वरुण ने मार्गों को अति विस्तृत बनाया। जिस लिये, हे सिन्धो! आप अन्नों का लक्ष्य करके बहती हैं और

भूमि के ऊपर ऊँचे शिखरों के मार्ग से होकर जाती हैं। इससे ऊँचे मार्ग से जाती हुई आप सभी प्राणियों के प्रत्यक्ष शोभित होती हैं।" ऋग्वेद १०।७५।३ का अर्थ यह है:—"जिस समय सिन्धुनदी वृषभ के समान जोर से शब्द करती हुई जाती है, उस समय पृथ्वी के ऊपर का शब्द देवलोक में जाता है। वह सिन्धु अपने अनन्त वेग को दीप्त लहरों से प्रकट करती है। वृष्टि के समय जिस तरह आकाश में मेघ गरजता है, उसी प्रकार इस सिन्धु के शब्द प्रकट होते हैं।" १०।७५।४ का अर्थ यह है:—"हे सिन्धो! शब्द करती हुई माताएँ जिस प्रकार पुत्र की ओर जाती हैं, उसी प्रकार शब्द करती हुई और नदियाँ आपकी ओर जाती हैं। दूध से युक्त नवप्रसूता गाएँ अपने बच्चों की ओर जिस प्रकार जाती हैं, उसी प्रकार नदियाँ आपकी ओर जाती हैं। और आप ही अपने दोनों तटों को जल से भरा हुआ करती हैं। और युद्ध करनेवाले राजा के समान आपके साथ जाती हुई नदियों के आगे आप ही जाती हैं।" ऋग्वेद १०।७५।५ की व्याख्या महर्षि यास्क ने निरुक्त ९।२६ में की है। उसमें 'मरुद्वृधा' शब्द की व्याख्या करते हुए सभी नदियों को मरुद्वृधा माना है। "मरुद्वृधाः सर्वा-नद्यो मरुतः एना वर्धयन्ति"—यह यास्क ने लिखा है। अर्थात् वायु इन सब नदियों को बढ़ाता है, इससे सभी नदियाँ 'मरु-द्वृधा' कही जाती हैं। इस मंत्र में 'मरुत्वृधे' सभी नदियों का विशेषण है। मंत्रार्थ यह है:—"हे मरुद्वृधे! वायु से बढ़ाई जाती हुई गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि आप लोग परुष्णी के साथ हमारे इस स्तोम (सामवेदोक्त स्तोत्र) को स्वीकार करें।

हे मरुद्वृधे ! हे आर्जीकिये ! आप भी असिक्नी, वितस्ता और सुषोमा के साथ अभिमुख्य से स्थित हो हमारे इस स्तोम को सुनें ।" 'सरस्वती' की टिप्पणी १६ में वेदिक इन्डेक्सकार ने कहा है—"इस मंत्र में पूर्व से पश्चिम जानेवाली नदियों की सूची है ।" विद्वान् लोग विचारें कि इनमे से कितनी नदियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर जाती हैं । इसमे गंगा और यमुना को सभी लोग जानते हैं । शुतुद्री शतलज है । असिक्नी कालोनदी है, जो उत्तरप्रदेश में कन्नौज के पास गंगा से मिली है । सरस्वती कुरुक्षेत्र मे 'सरसुती' नाम से प्रसिद्ध है । परुष्णी, रावी, मरुद्वृधा सभी नदियाँ वितस्ता (झेलम), आर्जीकिया (व्यास), सुषोमा (सिन्धुनद) हैं । इसमें सिन्धुशब्द नहीं है । उसके स्थान पर सुषोमाशब्द है । ऋग्० १०।७५।६ का मंत्रार्थ 'कुभा' मे है । ऋग्० १०।७५।७ का अर्थ यह है:—"ऋजुगामिनी, श्वेतवर्णवाली, दीप्यमान् सिन्धु वेगवाले जलों को धारण करती है । वेगवती और अहिंसित सिन्धु कर्म करनेवालियों के मध्य मे वेग नामक कर्मवाली होती है । घोड़ी के समान चित्रा; अर्थात् रखने योग्य या विचित्र वेषवाली और शरीरवाली; अर्थात् सुन्दर शरीरवाली स्त्री के समान दर्शनीया होती है ।" ऋग्० १०।७५।८ का अर्थ यह है:—"वह यह सिधु सुन्दर घोड़ेवाली, सुंदर रथोंवाली, सुन्दर वस्त्रवाली, सोने के गहनेवाली, अन्नवाली, ऊनवाली, नित्य जवान; अर्थात् सर्वदा बहुत जलवाली और सीलमावाली, सुन्दर भाग्यवाली और मधुवर्धक वृक्षों का आच्छादन रखती है ।" अर्थात् इसके तट पर घोड़े बहुत अच्छे होते हैं, रथ भी बहुत अच्छे होते हैं, वस्त्र भी

अच्छे-अच्छे तैयार होते हैं और वहाँ के निवासी अच्छे-अच्छे वस्त्र पहिनते हैं। उसके तट पर सोना भी बहुत है। ऊन भी अधिक पैदा होता है। नित्य जवान से यह तात्पर्य है कि कभी पानी की कमी नहीं होती है। सीलमा एक प्रकार का वृक्ष होता है, जिसके छाल से रस्सी बनती है। ये वृक्ष इसके किनारे बहुतायत से पैदा होते हैं और इसके तट पर शहद और अन्न बहुतायत से पैदा होता है। ऋग्० १०।७५।९ का अर्थ है:- "सिधु देवता सुखकर घोड़ेवाले रथ को जोतता है। उस रथ से हमको अन्न दे। संग्राम या यज्ञ मे दूसरों से अहिंस्य और स्वाधीन यशवाले और महान् इस सिधु की महिमा की स्तुति की जाती है।" ऋग्० १०।६४।९ में सिधुनदी का वर्णन है। अर्थ 'सरयू' में है। ऋग्० ५।५३।९ में 'सिधु' शब्द 'सिधुनद' के अर्थ में है। मंत्रार्थ 'कुभा' में है। ऋग्० ९।१२।३ का मंत्र सोमस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—"मद करनेवाले रस को टपकानेवाला सोम सिधुनदी के तरंगों में स्थित है। और गौरी-नदी में स्थित है।" यहाँ 'सिन्धु' शब्द 'सिंधुनद' के अर्थ में आया है। ऋग्० १।१८६।५ में सिन्धुशब्द सिधुनद के अर्थ में आया है। अर्थ यह है:—"और भी हमारे सुख को अहि-र्बुध्न्य नामक देवता करें और जिस प्रकार बच्चे को तृप्त करती हुई गाय चलती है, उसी प्रकार हमको अन्नरस से तृप्त करती हुई सिधुनदी आये। और जिस देव को मन के समान वेगवाले और वर्षा करनेवाले मेघ ले चलते है, वह वर्षा करनेवाला अग्नि हमारे सुख को करे।"

अब समुद्रार्थक सिन्धु शब्द दिखलाते हैं:—

ऋग्० ५।११।५ में सिंधुशब्द का अर्थ समुद्र है। यह मंत्र अग्निस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे अग्ने! आपके लिये अत्यन्त मधुर यह स्तुति की जाती है। यह स्तुति आपके हृदय मे सुख देनेवाली हो। जैसे बड़ी नदियाँ सिंधु (समुद्र) को पूरा करती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ आपको पूरी करती हैं और बल से बढ़ाती हैं।' ऋग्० १।१८२।५ मे समुद्रार्थक 'सिन्धुषु' शब्द आया है। मंत्र अश्विनीकुमार की स्तुति में है। अर्थ इस प्रकार है:—'हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों ने तुग्र के पुत्र भुज्यु के लिये समुद्रों मे दृढ़ और परवाले नाव को सुख कर किया था। देवताओं के मध्य मे अनुग्रहयुक्त बुद्धि से जिस नाव से युक्त हो आप निकलते हैं और बहुत शीघ्र पहुँचते हैं तथा जल में नीचे पहुँचकर रक्षा करते हैं, उससे हमारी भी रक्षा करें।' ऋग्० ९।५१।५ मे सिंधु का अर्थ समुद्र है। मंत्र सोमस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—'हे सोम! जिस प्रकार समुद्र की तरंगों से ध्वनि निकलती है, उसी प्रकार आपके वेग प्रकट होते हैं। वेग से बहते हुए आप छूटे हुए बाण के समान शब्द करें।' इस मंत्र मे समुद्र की लहरों का वर्णन है, तब भी जिमर 'समुद्र की लहरों को आर्य लोग नहीं जानते थे'—यह कहते हुए भी 'अथार्टी' माने जाते हैं। ऋग्० १०।१११।१० का मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—"जिस प्रकार कामवती स्त्रियाँ अपने पति के पास जाती है, उसी प्रकार साथ चलनेवाले जल सिंधु (समुद्र) के पास मे आते हैं, इत्यादि।" ऋग्० १०।१३७।२ का अर्थ यह है:—"यह दो हवाएँ समुद्रपर्यन्त अथवा समुद्र से जो देश अधिक दूर हैं, वहाँ तक जाती

हैं। हे स्तुति करनेवाले ! उनमें से एक हवा तुम्हारे बल को बढ़ाये और दूसरी तुम्हारे पापों को दूर करे।" ऋग्० १०। १५५।३ का अर्थ यह है:—"दुःख से सहने योग्य अथवा दुष्ट ठोढ़ी से युक्त हे अलक्ष्मि ! समुद्र के तट पर पुरुषों से रहित हमसे दूर देश मे जो काठ की नाव तैर रही है उसको पकड़ो और ब्रह्मणस्पति से प्रेरित होकर अतिशय से उतरने योग्य किसी दूसरे द्वीप मे चली जाओ।" इन दोनो मंत्रों में सिन्धुशब्द समुद्रार्थक है। ऋग्० १०।८९।१ का मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे स्तोतः ! आप उस नेतृतम इन्द्र की स्तुति करें, जिस इन्द्र का महत्व पृथ्वी के अन्त पर्यन्त और लोगों के तेज का तिरस्कार करता है। और जो इन्द्र मनुष्यों को धारण करनेवाला है और महत्व मे समुद्रों से भी बढ़कर तेजों से पृथ्वी और द्युलोक को चारों ओर से पूरा करता है।" इस मंत्र में 'सिधुभ्यः' यह बहुवचन में आया है, जिसका अर्थ 'चारों समुद्र' होता है। ऋग्० ७।८७।६ का मंत्र वरुणस्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"सूर्य के समान दीप्त वरुण समुद्र को वेला (समुद्रतट) मे स्थापित रखता है। यह वरुण जल-बिन्दु के समान श्वेत है। और गौरमृग के समान बलवान् और गम्भीर स्तोत्रवाला है। और जल का निर्माता है। और दुःख से पार करनेवाले बलवाला है। यह वरुण विद्यमान् इस जगत का राजा है।" इसमे सिन्धुशब्द समुद्रार्थक है। ऋग्० १०। १०४।८ में सिन्धुशब्द समुद्रार्थक है। ~~इसका अर्थ सप्तोत्तर नवति संख्या का 'सोम्यः' मे है।~~ ५।५३।९ मे सिन्धुशब्द समुद्रार्थक है।

ऋग्० ५।५३।९ में सिन्धुशब्द समुद्रार्थक है, यह सायणा-

चार्य मानते हैं। इसका अर्थ 'कुभा' में है। वस्तुतः यहाँ पर 'सिन्धु' का अर्थ 'समुद्र' और 'दोनों सिन्धु नदियाँ' हो सकता है। ऋग्० २।११।९ में सिन्धुशब्द का अर्थ मेघ है, नदी नहीं। "बलवान् इन्द्र ने मेघ में सोते हुए मायावी वृत्र को मारा। वर्षा करते हुए इस इन्द्र के शब्द करते हुए वज्र के भय से आकाश और पृथ्वी काँपते हैं।" ऋग्० ३।५३।९ में सिन्धुशब्द का अर्थ समुद्र और नदी दोनो हो सकते हैं। सायण ने विपाशा और शुतुद्री का संगम अर्थ किया है। ऋग्० १।१२२।६ में सिन्धु का अर्थ जलाभिमानी देवता है, सिन्धु-नदी नहीं। यह मंत्र मित्रावरुण की स्तुति मे आया है। अर्थ यह है:—"हे मित्रावरुण! (मित्र और वरुण) आप लोग हमारे आह्वानों को केवल सुनें ही नहीं; किन्तु हमारे यज्ञ में उद्गाता इत्यादि से चारों ओर से किये गये स्तोत्र को भी सुनें। और सर्वत्र सुना गया है दान जिसका, ऐसा सिन्धु (जलाभिमानी देवता) हमारे खेतो को जलों द्वारा धान्यादि से समृद्ध करता हुआ हमारे आह्वानों को सुनें।" इसमें सायण ने सिन्धुशब्द का अर्थ जलाभिमानी देवता किया है। ऋग्० ४। ५४।६ मे सिन्धु का जलाभिमानी देवता ही अर्थ सायण ने किया है। यहाँ सिन्धु से समुद्र, सिन्धुनदी, नदीमात्र और जल का अभिमानी देवता अर्थ हो सकता है। मंत्रार्थ यह है:—"हे सवितः (सूर्य)! जो यजमान प्रतिदिन तीनो सवनों में सौभाग्यदायक सोमों का अभिषव करते हैं, उन यजमानों (हमलोगों) के लिये इन्द्र कल्याण दे। आकाश, पृथ्वी, जलों से युक्त सिन्धु का अभिमानी देवता और सूर्यों के सहित अदिति

कल्याण दें।" ऋग्० ५।५।३ मे सिन्धुशब्द नहीं है। ऋग्० ७।९५।१ में सिन्धुशब्द का अर्थ नदीमात्र है और सरस्वती का विशेषण है। मंत्रार्थ 'पुर' में है। सिन्धुनदी के अर्थ का सम्भव नहीं। ऋग्० ८।१२।३ मे सिन्धुशब्द का अर्थ नदी, समुद्र सभी का सम्भव है। सिन्धुनदी की अपेक्षा नदी और समुद्र का अधिक सम्भव है। यह मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है :—"हे इन्द्र जिस प्रकार रथी रथो को अपने चाहे हुए स्थान मे जाने के लिये प्रेरणा करते हैं, उसी प्रकार आप बहुत बड़ी वर्षा के जलों को सिन्धु (समुद्र) या नदी में जिस सोमपान से पैदा हुए मद से प्रेरणा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ के मार्ग को प्राप्त होने के लिये हम उसी मद को माँग रहे हैं।" इसमें वर्षा का जल प्रायः नदी या समुद्र मे सर्वत्र का जाता है और सिन्धु के समीप का जल सिंधु मे भी जाता है। सर्वत्र का जल जाना अधिक उचित है। इससे सर्वत्र के जल के जाने के लिये सिन्धु शब्द का अर्थ नदी या समुद्र करना अधिक उपयुक्त है।

ऋग्० ८।२५।१४ में सिन्धुशब्द का अर्थ बहने के स्वभाववाला है। और उसका सम्बन्ध अयाम् (जलों) से हैं; अर्थात् जलों का सिन्धु। जल बहने के स्वभाववाला; अर्थात् मेघअर्थ है, सिन्धुनदी नहीं। सायण ने यह अर्थ किया है। और भी 'अयाम् सिन्धुः' = जल बहने के शीलवाला; अर्थात् मेघ हमारे उस धन की रक्षा करे। मरुत् लोग भी उस धन की रक्षा करें और अश्विनीकुमार भी उसी धन को पालें। उसी प्रकार इन्द्र, विष्णु और मनोरथों की वर्षा करनेवाले सभी देवता लोग मिलकर सभी हमारे धन की रक्षा करें; अर्थात् ये सभी देव

लोग हमारे लिये धनो को देकर उसकी रक्षा करें। ऋग्० ८।२६।१८ में सिन्धु का अर्थ नदीमात्र है और श्वेतयावरी का विशेषण है। अर्थ 'श्वेतयावरी' में है।

अथर्ववेद १६।३८।२ में सिन्धुशब्द नहीं है; किन्तु 'सैन्धव' शब्द है और उसका 'सिन्धु में पैदा हुआ' अर्थ है। गुग्गुलु का विशेषण है। यहाँ सिन्धुशब्द का अर्थ नदी नहीं है; किन्तु सिन्धुदेश है। यह राजा के रात्रि के शय्यागृहप्रवेशनकर्म मे पुरोहित गुग्गुलु और कूठ का धूप जिस सूक्त से दे, उसका दूसरा मंत्र है। अर्थ यह है:—"जिस प्रकार घोड़े और हिरण चारों ओर शीघ्रता से भाग जाते हैं, उसी प्रकार गुग्गुलु की गंध को सूँघकर यक्ष्मा इत्यादि रोग चारों ओर भाग जाते हैं। वह गुग्गुलु सिंधुदेश मे पैदा होता है और समुद्र मे भी पैदा होता है। उन दोनों प्रकार के गुग्गुलों के नाम को हम ले रहे हैं। क्यो? इस प्रवृत्त अरिष्ट करनेवाले रोग के नाश के लिये।" यह अर्थ सायणाचार्य ने किया है। अथर्ववेद ४।२४।१ मे सिंधुशब्द नहीं है। संख्या अशुद्ध छपी प्रतीत होती है। दूसरी में 'सिंधव:' शब्द आया है। यहाँ पर स्पन्दनशील जल या नदीमात्र अथवा समुद्र अर्थ का सम्भव है। परन्तु सिन्धुनद अर्थ का सम्भव नहीं। यदि सिंधुनद अर्थ होता तो एकवचन होता, यहाँ तो बहुवचन है। मंत्र इन्द्रस्तुति में आया है। अर्थ यह है:—"उग्रबाहु जो इन्द्र उग्र शत्रुसेनाओं को पृथक् करता है; अर्थात् उनको फोड़ देता है। जिस इन्द्र ने दानवों के सामर्थ्य को सभी स्थानों में भंग किया है, जिस इन्द्र से 'सिन्धव:' स्पन्दनशील मेघस्थ जल अथवा नदियाँ अथवा समुद्र जीते गये और जिस

इन्द्र से गायें जीती गईं।" अथर्ववेद ७।४५।१ में सिन्धुशब्द नहीं है। ७।४६।१ में है। यह मंत्र इर्ष्याविनाश करने के लिये इर्ष्यालु को देखकर जपना चाहिये। इस मंत्र में इर्ष्या दूर करनेवाली ओषधियों का सम्बोधन है। अर्थ यह है:— "संसार के लिये हित, जनपद और 'सिन्धुत:' = समुद्र से लाकर इकट्ठी की गई तथा दूर देश से लायी गयी तुमको (सक्तुमंथ नामक औषधि को) ईर्ष्या की दूर करनेवाली मानते हैं।" यहाँ सिन्धु का अर्थ सायण ने समुद्र किया है। परन्तु समुद्र, नदीमात्र, सिन्धुनद और सिन्धुदेश का भी सम्भव है। अथर्ववेद ३।१३।१ मे 'सिन्धव:' का अर्थ 'जल' है, नदीमात्र नहीं है। यह सूक्त नदी का प्रवाह जहाँ चाहे वहाँ ले जाने के लिये है। पहले मंत्र का अर्थ यह है:—"हे जलो! मेघ के ताड़ित होने पर आप लोग इकट्ठे होकर इधर-उधर शब्द करते हुए जाते हैं। इसी से (शब्द करते ही) आप लोग अव्यवधान से नदी होते हैं। हे सिन्धव: (बहने की आदतवाले जलो)।! आपके 'आप:' इत्यादि और भी नाम हैं।"

सिन्धु की सहायक नदियाँ:—तृष्टामा, सुसर्तु, रसा, श्वेती, कुभा, मेहत्नू, गोमती और क्रुमु। इनका ऋग्० १०।७५। ६ में वर्णन है। अर्थ 'कुभा' मे है।

सीरा—नदीमात्र का नाम है। ऋग्वेद १।१७४।९ में यह शब्द आया है।

सीलमावती—१. वे० इ० "सीलमावती ऋग्वेद[1] में लुड-

---

(१) ऋग्० १०।७५।८।

विक[1] के अनुसार एक नदी के रूप में आता है। परन्तु यह असंभव[2] है। सायण ने इसे एक बहुत अच्छा पौधा माना है।"

२. लुडविक इसको एक नदी मानते हैं।

३. जिमर, बोटलिङ् और गेल्डनर लुडविक के कथन को असम्भव कहते हैं।

वस्तुतः इसको नदी मानना अनुचित है। वेदिक इन्डेक्स-कार ने जो लिखा है, "सायण ने इसको एक बहुत अच्छा पौधा माना है"—सो ठीक नहीं। सायण ने 'सीलमा' नामका पौधा इसके तट पर होता है, इससे सिन्धु का विशेषण 'सील-मावती' किया है। सीलमा का पौधा इसके तट पर होता है। किसान लोग उसकी छाल की रस्सियों से हल इत्यादि को बाँधते हैं। 'सीलमावती' शब्द को पौधा नहीं माना है।

सुदामा—१. वे० इ० "सुदामन्, पञ्चविंश ब्राह्मण २२।१८।१ में नदी के रूप में आया है।"

वस्तुतः सुदामा एक नदी का नाम है। इसके तट पर ताण्ड्य ब्राह्मण २२।१८।८ में यज्ञ करने का विधान किया है। वेदिक इन्डेक्स मे ८ के स्थान में १ संख्या अशुद्ध छपी है। पुराणों मे दो नदियों के सुदामा नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मिलते हैं। उनमें एक शुक्तिमान्पर्वत; अर्थात् गिरिनार से निक-लती है। वामन पुराण १३०।३३ में सुदामानदी शुक्तिमान्पर्वत से निकलती है और भारत में है, यह लिखा है। दूसरी सुदामा

(१) ट्रान्सलेशन आफ् ऋग्वेद ३।२००।

(२) जिमर, एल्टेन डिस्चेजलेवेन ४२६, बोटलिङ् डिक्शनरी, गेल्डनर ऋग्वेद ग्लासर १६५।

नदी सुदामापर्वत से निकलती है। विष्णुधर्मोत्तर १।२०७।२६ यह नदी वितस्ता से पश्चिम है। वाल्मी० अयो० (नि० गु०) ७१।१ में एक नदी का वर्णन है, जो गिरिव्रज (गजनी) से अयोध्या आते समय मार्ग में पड़ती है और सुदामापर्वत से निकलती है। यह सिन्धुनदी से पश्चिम मालूम पड़ती है। सुदामापर्वत का वर्णन भी अयोध्या से गिरिव्रज जाते समय, गिरिव्रज के समीप बह्लीकदेश में पाया जाता है। 'केकय' देखिये। हींग पैदा होने के कारण उस देश का नाम बह्लीक है। इस प्रकार सुदामा नाम की दो नदियाँ हैं।

(शुक्तिमान्पर्वत पर विचार)—१. कनिगहम और वेगलर ने शुक्तिमान्पर्वत को शुक्तिमतीनदी का जन्मदाता, क्रमशः छत्तीसगढ़-बस्तर के बीच की पर्वतशृंखला तथा हजारीबाग के उत्तर के पहाड़ माना था (भारतभूमि और उसके निवासी)।

२. पार्जीटर की अन्तिम सम्मति यह थी कि शुक्तिमान् का अर्थ गैरो और खासी-जयन्तिया पहाड़ करना चाहिए। क्योंकि महाभारत में भीम के पूर्वदिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम है। और पूर्व में अन्य कोई उल्लेखयोग्य पहाड़ नहीं है (भारतभूमि और उसके निवासी)।

३. डा० रमेशचंद्र मजूमदार ने शुक्तिमान् की सुलेमान से शिनाख्त की है (भारतभूमि और उसके निवासी)।

४. भारतभूमि और उसके निवासी पृष्ठ ३१८ "शुक्तिमान्-पर्वत विषयक विवाद बहुत पुराना है। कनिंगहम और वेगलर ने उसे शुक्तिमतीनदी का जन्मदाता मानकर क्रमशः छत्तीसगढ़-बस्तर के बीच की पर्वतशृंखला तथा हजारीबाग के उत्तर के

पहाड़ माना[1] था। पार्जीटर ने सिद्ध किया है कि शुक्तिमती केननदी का नाम है; परन्तु उसका मुक्तिमान्पर्वत से कोई सम्बन्ध नहीं है। मार्कण्डेय[2] पुराण में शुक्तिमती का स्रोत विन्ध्य-पर्वत को कहा है और सभी पुराणों में शुक्तिमान् से निकलने-वाली नदियों की जो परिगणना है, उसमे शुक्तिमती का नाम नहीं है। पार्जीटर की अन्तिम सम्मति यह थी कि शुक्तिमान् का अर्थ गारो और खासी-जयन्तिया पहाड़ करना चाहिए; क्योंकि महाभारत में भीम के पूर्वदिग्विजय में शुक्तिमान् का नाम है और पूर्व मे कोई उल्लेखयोग्य पहाड़ है नहीं। उसके बाद डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने शुक्तिमान् की सुलेमानपहाड़ से शिनाख्त की है[3]। शुक्तिमान् से निकलनेवाली नदियों के नाम पुराणों मे इस प्रकार दिये हैं:—

ऋषिका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः॥ (वायु०)
ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
कृपा पलाशिनी......................॥ (मार्कण्डेय०)

मत्स्य० मे 'ऋषिका' और 'पलाशिनी' के बजाय 'काशिका' और 'पाशिनी' पाठ है। डा० मजूमदार का कहना है कि कृपा=कुभा (काबुलनदी), कुमारी=कुनार, मन्दगा या मन्दवाहिनी =

(१) आर्कीयोलाजिकल सर्वे रिपोर्टस् १७ पृष्ठ २४, ६६। ८ पृष्ठ १२४, १२५।

(२) मार्कण्डेय पुराण का अनुवाद पृ० २८५, २८६, ३०६।

(३) दूसरी भारतीय ओरियन्टल कान्फ्रेन्स (प्राच्यविद्या-सम्मेलन) कलकत्ता का विवरण पृष्ठ ६०६, आदि।

हेलमन्द, पाशिनी (पञ्जशीर), ऋषिकुल्या (इसिकला) यूनानियों की 'एबुअस्पला' जो कि सिन्ध के पच्छिम की हिन्दूकुश से निकलनेवाली कोई धारा थी। साथ ही; उनका कहना है कि शुक्तिमान् नाम हिन्दूकुश से दक्खिन तरफ भारत के पच्छिमी सीमान्त की समूची पर्वतशृंखला का है; जिसमें केवल एक अंश में अब वह सुलेमान-रूप मे पाया जाता है।"

"काबुल और हेलमन्द नदियों के स्रोत एक ही पहाड़ में हैं, इसमे सन्देह नहीं। पर हेलमन्द के नाम में 'मन्दगा' या 'मन्दवाहिनी' का 'मन्द' शब्द नहीं टटोला जा सकता। क्योंकि उसका मूल नाम अवस्ता में हएतुमन्त (सेतुमन्त) है। उन दोनों नदियों का स्रोत काबुल शहर के पच्छिम संगलखपहाड़ से है, जो हिन्दूकुश की एक दक्खिन-पच्छिम बढ़ी हुई बाहीं है। उस बाँहीं को और विद्यमान् सुलेमानपहाड़ को एक शृंखला कहना आश्चर्यजनक है। सुलेमानपहाड़ वास्तव में सीमान्त का पहाड़ है ही नहीं। सिन्ध की धाराएँ गोमल आदि उसके पच्छिम पार से आती हैं। खास सुलेमान से निकलनेवाली नदियाँ हैं:—गुद, विहोवा, लूणी, संगर, रखनी, काहा, वेलाब, तेरातानी, चकर, बेजी और लोरालाई। किन्तु गोमल के स्रोतवाली वजीरिस्तान और गजनी के बीच की पर्वत-शृंखला भी पच्छिमी सुलेमान कहलाती है। और यदि डा० मजूमदार के मत की यह व्याख्या की जाय कि संगलख-शृंखला, पच्छिम सुलेमान शृंखला, टोबा-काकड़-शृंखला तथा कलात के दक्खिन की हरबोल, हालार और खीरथर शृंखलाएँ मिलाकर पच्छिम सीमा की समूची पर्वत-परम्परा शुक्तिमान् कहलाती थी, तो

कुमारीनदी की शिनाख्त कलातवाली कुआर से की जा सकती है। किन्तु कुनार (चितराल, काष्कार या यारखूँ) के स्रोतवाले पहाड़ को और सुलेमान को एक कहने से तो हमें संस्कृत नैय्यायिकों का 'गोमय पायसीय न्याय' गोमयं पायसं गव्यत्वात्= गोबर दूध है, क्योंकि वह गाय के पेट से निकलता है'—याद आ जाता है। कुनार का स्रोत हिन्दूकुश की पूरबी जड़ मे है, जिसके दूसरी तरफ पामीर-ए-बखाँ है। डा० मजूमदार जैसे प्रामाणिक विद्वान् उसमें और सुलेमान मे भेद नहीं कर सकते। इससे केवल यही सूचित होता है कि भौगोलिक विषयों को हमारे देश में अभी तक बहुत हलकेपन से हथियाया जाता है।"

"मैं शुक्तिमान्पर्वत की कोई शिनाख्त अभी तक निश्चयपूर्वक नहीं कर सकता; किन्तु उस सम्बन्ध में एक-दो बातों की तरफ मुझे ध्यान दिलाना है। एक तो यह कि महेन्द्र आदि 'कुल-पर्वत' हैं और कुल-पर्वत तथा मर्यादा-पर्वत (सीमान्त के पर्वत) ये दो शायद प्राचीन भारतीय भूगोल की दो भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ हैं। दूसरे,

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥

इस परिगणन में एक क्रम है। महेन्द्र दक्खिनभारत के उत्तरपूर्वी छोर पर है, वहाँ से हम पूरब तट के साथ दक्खिन चलते हैं। नालमलइ से एलामलइ—आनमलइ तक सब पर्वत मेरे विचार में इस परिगणन के मलय मे सम्मिलित हैं। फिर पच्छिमी तट के साथ उत्तर घूमकर हम सह्य का साथ पकड़ते

(१) वस्तुतः गोबर खीर है, गाय का विकार होने से।

हैं। ऋक्षपर्वत सह्याद्रि के उत्तरी छोर से पच्छिम से पूरब भारत के आर-पार चला गया है। फिर उसके पूरबी छोर से उत्तर घूमकर विन्ध्य और उसके आगे पारियात्र है। स्पष्ट है कि शुक्तिमान् सह्य और ऋक्ष के बीच कहीं होना चाहिये। या तो वह सह्य के उत्तरी छोर या ऋक्ष के पच्छिमी छोर पर हो। किन्तु वहाँ गुञ्जाइश नहीं के बराबर है। इस लिये मेरा कहना है कि शुक्तिमान् हैदराबाद-गोलकुण्डावाले पठार का नाम है, जो पूर्वीघाट (महेन्द्रमलय) और पच्छिमीघाट (सह्य) के बीच और दोनों से अलग है। इस पठार की नदियों में से सबसे प्रसिद्ध मूसी है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि 'ऋषिका' वास्तव में 'मूषिका' का अपपाठ है। पेद्दवगू, दिन्दी, कागना और मुल्लामारी में से कोई एक सुकुमारी हो सकती है। मुल्लामारी कागना की शाखा ही है। मन्दगा तब शायद मानेर हो, मन्द-वाहिनी मुनेरु, और पलाशिनी या पाशिनी पालेर या पल्लेरु। इस प्रकार नदियों का परिगणन भी एक क्रम से होगा। कृपा या कूपा का अन्दाज मैं नहीं कर सका। मेरी यह शिनाख्त अभी तक आरज़ी है। क्योंकि शुक्तिमान्पर्वत-विषयक कुल निर्देशों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक मैंने नहीं किया।"

वस्तुतः वायु० ४५।१०७, ब्रह्मा० पू० अ० २।१६।३८, मार्कण्डेय० ५४।२९-३०, ब्रह्म० २७।३८ में शुक्तिमान्पर्वत से पलाशिनीनदी के निकलने का वर्णन है। इन्डि० आ० ७।२६०। कार्पस का इक्सप्रेशन पृष्ठ ६०, सेलेक्सन इक्सप्रेशन पृष्ठ १७० में जूनागढ़ के सुदर्शनसर के विषय में एक प्राचीन लेख छपा है। उसमें पलाशिनीनदी का सुदर्शनसर में गिरने का वर्णन है।

इससे गिरिनार के शुक्तिमान् होने में बिल्कुल सन्देह नहीं है। जो लोग और पर्वतों को शुक्तिमान् सिद्ध कर रहे हैं, उनका कथन प्रमाणाभाव से निस्सार है।

सुदर्शन—एक पर्वत का नाम है[१]। इसपर कुबेर का नगर है।

सुवास्तु—१. वे० इ० "सुवास्तु (अच्छे निवासस्थानवाला), यह ऋग्वेद[२] में एक नदी का नाम है। यह एरिअन[3] की सोस्टोज है तथा वर्तमान स्वात है, जो कि कुभा अथवा काबुलनदी की एक सहायक नदी है। कुभा स्वयं सिन्ध की एक सहायक नदी है।"

२. जिमर, लुडविक और राथ का भी यही मत है।

३. जागराफिकल डिक्शनरी पृ० १९९ "(नं० १) स्वात-नदी इस समय सिहोनपेद्र नामक नदी के नाम से कही जाती है (महाभारत भीम० अ० ९ में वर्णित है)। यह एरिअन की सुअसेस्तोस है और ह्वेनसांग की सुभवस्तु है (जे० ए० एस्० बी० १८३९ पृष्ठ ३०७; १८४० पृष्ठ ४७४ देखिये)। पञ्जकोरा और स्वात नदियो की संयुक्तधारा काबुलनदी में गिरती है। पुष्कलावती या पुष्करावती गान्धार या गन्धर्वदेश की राजधानी काबुलनदी के संगमके पास थी। 'पुष्कलावती'

---

(१) कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक प्र० १ अनु० ३१ पृ० १११।

(२) ८।१९।३७, निरुक्त ४।१५।

(३) इन्डिका ४।११, राथ निरुक्त एर, लौटेरुजेन ४३, जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन १८, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ ऋग्वेद ३।२००। इम्पीरियल गजटियर आफ इन्डिया २३।१८७।

देखिये। स्वातनदी का उद्गम नागापलाल झरने से है। (नं० २) स्वात (पाणिनि की अष्टाध्यायी)। बौद्ध लेखकों ने स्वातनदी को उद्यानदेश में माना है। स्वातदेश में यूसुफजाई लोग बसते थे। स्वात में ही राजा शिबि ने, जो महाभारत और शिविजातक में उशीनर कहे गये है; कबूतर की प्राणरक्षा के लिये बाज को अपना माँस दिया था। शिविजातक के शिबिदेश की राजधानी अरिट्ठपुर या अरिष्टपुर थी (जातक केम्० एडिशन ४ पृष्ठ २५०)। चरवग स्वात की आधुनिक राजधानी है (जे० ए० एस्० बी० १८३६ पृ० ३११)। 'शिवि' देखिये। महाउम्मग्ग जातक के अनुसार शिबिदेश विदेह और पंचाल के बीच में था (जातक ६ पृ० २१५ कैम्पवे कम्० एडिशन)।"

वस्तुतः यह एक नदी है और रूसदेश के सिवास्टोपोल नामक नगर के मध्य में चोरनापा नाम धारण करके वह रही है। इसका नाम किसी भी नक्शे में नही है; परन्तु इन्साइक्लोपिडिया नामक पुस्तक में सिवास्टोपोल के वर्णन में है। 'स्वात' का शुद्ध रूप 'स्वाति' है। 'सुवास्तु' और 'स्वात' की आनुपूर्वी मे बहुत अन्तर है, इससे सुवास्तु को स्वात कहना ठीक नही। सुवास्तु से स्वात होना असम्भव है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी मे 'सुवास्तादिभ्योऽण्' ४।२।७७ सूत्र लिखा है, जिसका अर्थ सुवास्तु इत्यादि शब्दो से चारों अर्थों में अण होता है। यह सूत्र चातुरर्थिक तद्धित मे है। इससे 'सुवास्तु' शब्द स सुवास्तु के अदूरभव; अर्थात् समीप होनेवाले अर्थ मे 'अण्' प्रत्यय होकर 'सौवास्तव' बनता है। अतः सुवास्तु के समीप होने से नगर 'सौवास्तव' कहा जाता है। उसका दूसरा नाम 'सुवास्तुपुर' भी है। 'सिवास्टोपोल' और 'सुवास्तु' में आनुपूर्वी के विचार से 'सुवास्तुपुर' का अपभ्रंश 'सिवास्टोपोल' है। ऋग्वेद ८।१९।३७ मे सुवास्तु शब्द आया है। इसका मंत्रार्थ सायणभाष्य

मे खण्डित होने से मैक्समूलर की पुस्तक मे नही छपा है। परन्तु निरुक्त ४।१५ मे इसका कुछ व्याख्यान मिलता है और दुर्गाचार्य ने भी इसका व्याख्यान किया है। वे नीचे दिये जा रहे है। निरुक्त का पाठ यह है—इदं च मेदांदिदं च मे दादित्यृषिः प्रसंख्यायाह। "सुवास्त्वा अधितुग्वानि सुवास्तुर्नदी तुग्वतीर्थं भवति तूर्णमेतदायान्ति।" दुर्गाचार्य का अर्थ यह है:—"यह द्रव्य राजा ने मुझे दिये—इस प्रकार गिनकर ऋषि ने कहा।" उदाहरण मे ऋग्वेद ८।१९।३६ की ऋचा दी है। इसका अर्थ यह किया है। सौभरि कण्व इसके ऋषि है और यह दान की बड़ी प्रशंसा है। "पुरुकुत्स के पुत्र पूज्यतम ऐश्वर्य से युक्त सज्जनो के पालक त्रसदस्यु ने मुझे पचास कन्याएँ स्त्री बनाने के लिये दी।" इसी से सम्बद्ध मंत्र का अर्थ है:—"और भी उन कन्याओ के साथ प्रपियु=धन, घोड़े आदि का समूह और उन कन्याओ के साथ वयिपु=वस्त्रादि के समूह को दिया। सत्तर के तिगुनी गायो के अग्रगामी श्यामवर्ण, दान के योग्य, गायो के पति, पूजित लक्षणवाले बैल को भी उन गायो के साथ सुवास्तुनदी के तुग्वन्तीर्थ=घाट मे दिया।" स्नान के लिये यहाँ शीघ्रता से आते है, अतएव इसे 'तुग्वन्' कहते हैं; अर्थात् स्नान के लिये शीघ्रता से आने के कारण ही घाट को 'तुग्व' कहते है।

यहाँ पर 'प्रपियु और 'वयिपु' का अर्थ भारतीय अनुशीलन पृष्ठ ३६ मे प्रो० डा० मणिलाल पटेल द्वारा 'ऋग्वेद की दानस्तुतियों मे ऐतिहासिक उपादान' नामक लेख मे जो किया गया है, उसपर विचार कर रहे है। वह यह है:—"प्रपिपु और वयिपु दोनो सुवास्तु के किनारे रहते थे। उसी दानस्तुति (ऋग्वेद ८।१९।३७) मे उल्लिखित है। इनकी चर्चा त्रसदस्यु के साथ हुई है। हम इनके बारे मे इससे अधिक नही जानते कि ये नाम अनार्य से जान

पड़ते हैं।" दुर्गाचार्य ने 'प्रपियु' शब्द का अर्थ 'धन' किया है और 'वयियु' शब्द का अर्थ 'वस्त्र' किया है। कन्यादान के साथ धन, वस्त्र, गाय और बैल का दान उचित है। दान त्रसदस्यु का है। इससे ये दोनों नाम किन्हीं मनुष्यों के हैं, यह ठीक नहीं जान पड़ता है। डा० साहब ने केवल योरोपियन विद्वानों की पुस्तकों के आधार पर लिखा है। वह ठीक नहीं है। त्रसदस्यु सिवास्टो-पोल के प्रान्त का राजा था, ऐसा प्रतीत होता है।

सुषोम या सुषोमा—१. वे० इ० "सुषोमा, यह शब्द नदी के नाम से ऋग्वेद[1] में नदीस्तुति में आया है। दो और स्थानों पर किसी व्यक्ति का नाम सूचित करता है। एक[2] बार पुल्लिंग जब कि सम्भवतः किन्हीं लोगों के लिये आया है। दूसरी बार स्त्रीलिंग[3]। यद्यपि राथ[4] इस शब्द को सोमपात्र का नाम मानता है, तथापि इसकी समानता अभी तक ठीक से तय नहीं हो सकी है। यद्यपि इसे मेगस्थनीज[5] की जोनेस सोचा जाता है, जो कि वर्तमान सुअननदी है।"

२. राथ इस शब्द को सोमपात्र का नाम मानते है। (वे० इ०)

---

(१) ऋग्वेद १०।७५।५, निरुक्त ९।२६, जहाँ पर कि इसको व्यर्थ में सिन्धु माना गया है।

(२) ऋग्वेद ८।७।२९।

(३) ऋग्वेद ८।६४।११।

(४) सेन्ट पीटर्सवर्ग डिक्शनरी।

(५) एरिअन इन्डिका ४।१२। देखिये स्वान वेक मेगस्थनीज् ३१, जहाँ पर जोनेस का विभिन्न पाठ हुआ है। तुलना करो हेल्लेब्रॉट वेदिस्वे माइथालोजी १।१२६ वही। मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ३२। ३९८,३९९, जिमर अल्टेन डिस्वेजलेवेन १२।१४।

३. हिलोंडले ग्रॉट, मैक्समूलर और जिमर के मत में यह सुश्रननदी का नाम है। (वे० इ०)

४. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ १६८ "पंजाब की सिन्धुनदी ऋग्वेद १०।७५ इन्डस । यह शायद मेगस्थनीज की जो ग्रनेस् (zoa-nes) है। प्रसिद्ध सुश्रन (वेदिक इन्डेक्स वाल्यूम २, पृष्ठ ४६१)।"

५. भारतभूमि और उसके निवासी पृष्ठ ३३ "अटक जिले की सोहन वैदिक सुषोमा है।"

वस्तुतः सुषोम और सुषोमा सिन्धु के नाम है। जहाँ पर यह पुल्लिंग होता है, वहाँ इसका अर्थ सिन्धुनद होता है। और जहाँ स्त्रीलिंग होता है, वहाँ सिन्धुनदी है। इसके तट पर अच्छा सोम पैदा होने से इसका नाम सुषोमा पडा। निरुक्त ने ६।२६ में इसको सिन्धु का नाम माना है। निरुक्त में 'इमं मे गंगे यमुने' इत्यादि ऋग्वेद १०।७५।५ के मंत्रार्थ को करते हुए "सुषोमा सिन्धुर्यदेनामभि-प्रसुवन्ति नद्यः" यह लिखा है। दुर्गाचार्य ने 'सुषोमा सिन्धुः सा कस्मात् यदेनामभिप्रसुवन्ति अभिगच्छन्ति अन्याः प्रभूताः नद्यः"; अर्थात् सुषोमा सिन्धु का नाम है। क्यो ? इसमें बहुत-सी नदियाँ मिलती है, इससे इसको सुषोमा कहते हैं—यह लिखा है। यद्यपि और भी नदियो मे और भी बहुत-सी नदियाँ मिलती है, तब भी वे सुषोमा नही कही जाती है और सिन्धु सुषोमा क्यों कही जाती है ? इस प्रश्न का उत्तर है कि यह शब्द 'योगरूढ़' है, जैसे 'पंकज' मे कमल का ही बोध होता है; न कि कीचड़ मे पैदा होनेवाली अन्य वस्तुओ का। उसी प्रकार 'सिन्धु' ही 'सुषोमा' कही जाती है तथा अन्य नदियाँ सुषोमा नही कही जाती। योगरूढ़ शब्दों मे अक्ष-रार्थ और प्रसिद्धि दोनो लिये जाते है। इसी से सुषोमाशब्द से सिन्धुनदी ही ली जाती है। वेदिक इन्डेक्सकार यह कहकर कि 'व्यर्थ मे निरुक्त मे सिन्धु का नाम लिखा है'—संस्कृतानभिज्ञों के सामने

निरुक्तकार पर भी अपनी अभिज्ञता की मुहर लगाना चाहते हैं। निरुक्त, ब्राह्मण और श्रौतसूत्रो के आधार पर ही वेदार्थ होता है। उस निरुक्त की व्याख्या को व्यर्थ कहना उनकी साहसिकता है। जो लोग योगरूढ़ शब्द जानते है, वे वेदिक इन्डेक्सकार की इस अनभिज्ञता पर बिना हँसे नही रहेगे। मेगस्थनीज़ और एरियन ने जो शब्द लिखे है, एक का भी उच्चारण शुद्ध नही है। ये लोग लेटिन न जाननेवालो के सामने उनके नामो को मनमाने नामों से एककर हिस्ट्री के धुरन्धर बनकर यास्क तक के अर्थ को व्यर्थ कहते हुए नहीं चूकते और स्वयं प्रामाणिक बनते हुए जिन यमुना, सरयु इत्यादि के नाम आज भी पुराने चले आते है, उनके भी मनमाने नाम उड़ाते हैं।

ऋग्वेद १०।७५।५ का अर्थ हम 'सिधु' मे लिख चुके है। इसमे 'सुषोमा' का अर्थ 'सिन्धुनदी' है। ऋग्वेद ८।७।२९ का अर्थ यह है:—"यज्ञ के नेता ऋत्विक् लोग नीचीनचक्रा (छोटे-छोटे पहिये-वाली शकटी, छोटी गाड़ी) से सोम लेने के लिए सुषोमनद मे, शर्यणावन् मे, आर्जीकदेश और पस्त्यावत्देश मे जाते हैं। वेदिक इन्डेक्सकार का 'किन्ही लोगो के लिये' कहना निर्मूल है। यहाँ पर शब्द सिन्धुनद के लिये आया है। ऋग्वेद ८।६४।११ का अर्थ 'आर्जीकीय' मे मिलेगा। वहाँ पर भी 'सुषोमा' 'सिन्धुनदी' के अर्थ मे है। 'किन्ही लोगो के लिये'—कहना आधाररहित है। राथ का 'सोमपात्र' अर्थ करना भी अप्रामाणिक है।

सुसर्तु—१. वे० इ० "सुसर्तु, यह एक नदी का नाम है, जो कि ऋग्वेद[1] मे नदीस्तुति मे आया है। यह निश्चित है कि

---

(१) १०।७५।६, जिमर अल्टेन डिस्चेजलेवेन १४, लुडविक ट्रान्सलेशन आफ ऋग्वेद ३।२००।

यह सिन्ध की एक सहायक नदी थी। पर कौन थी, यह अनिश्चित है।"

२. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ १९८ "ऋग्वेद १०।७५ मे नदीस्तुति मे एक नदी का नाम आया है। यह सिन्धु की सहायक है।"

३. जिमर और लुडविक इसको सिन्धु की सहायक मानते है। परञ्च नाम जानने मे असमर्थ हैं। (वे० इ०)

वस्तुतः यह सिन्धु की सहायक दूसरी नदी है। इसका वर्णन ऋग्वेद १०।७५।६ में आया है। मंत्रार्थ 'कुभा' मे दिया है। आजकल 'सुरु' नाम से प्रसिद्ध है। यह दक्षिण से उत्तर जाती है। इसकी पश्चिमी सहायक नदी 'ड्रास' कही जाती है और पूर्वी सहायक नदी 'पतुम' कही जाती है। यह नदी 'जासकार' नामक नदी के बाद उसी दिशा मे सिन्धु मे मिलती है। इसके बाद शेवक (शवेक) नाम की नदी इसके विरुद्ध दिशा मे मिलती है। नक्शे मे इसका स्वरूप है; किन्तु नाम नही। हमने लखनऊ यूनिवर्सिटी के सुप्रसिद्ध रजिस्ट्रार श्री के० डी० तिवारीजी के अनुग्रह से इसके नाम को प्राप्त किया है। उन्होने हमारी प्रार्थना पर कश्मीर के सुप्रसिद्ध मिनिस्टर श्री अब्दुल्लाजी को लिखकर वहाँ से मँगाने का कष्ट किया है, और श्री मिनिस्टर की आज्ञा से वहाँ के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर महोदय ने यहाँ लिखकर भेजने का अनुग्रह किया। नक्शे मे इसकी संख्या दूसरी लिखी है और ऋग्वेद मे भी इसकी संख्या दूसरी ही है। इससे इसका नाम दूसरी ही नदी के साथ एक करने मे ठीक प्रतीत होता है।

सृत्वरी—यह शब्द ऋग्वेद १०।७५।१ मे नदी सामान्य के लिये आया है।

स्थूलार्मन्—यह देश या स्थान सरस्वती के दक्षिण में है। इससे उत्तर सरस्वती में एक अनुपम ह्रद (अगाध जलवाला कुण्ड) है। इसमें विदेह के राजा मप्य के पुत्र नमी ने यज्ञ के बाद अवभृथ किया था और स्वर्ग को गये तथा लाई गई गौ गाएँ पुत्रोत्पादन द्वारा सहस्र हो गईं। यह बात ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०। १८ में लिखी है। सायणाचार्य इसे देश मानते है।

स्वसा—यह शब्द ऋग्वेद ३।१।३ में नदीमात्र के अर्थ में आया है।

हरियूपीया—१. वे० इ० "हरियूपीया ऋग्वेद[1] में जहाँ पर वृचीवन्त आभ्यावर्तिन चायमान से हराये गये थे, उस स्थान का नाम है। यह या तो कोई स्थान या नदी हो सकती है। क्योंकि बहुत-सी लड़ाइयाँ नदियों के तट पर लड़ी गई थी। लुडविक[2] इसको एक शहर मानते है, जो कि यव्यावती के तट पर था, जिसे सायण की व्याख्या में इससे निश्चित किया गया है। हिल्लेब्रान्ट[3] सोचते है कि यह इर्याब (हलिआब) नदी है, जो कि क्रुमु की एक सहायक नदी है। पर ऐसा सम्भव नहीं।"

२. लुडविक के मत में यह एक शहर का नाम है, जो कि यव्यावती के तट पर था। (वे० इ०)

३. हिल्लेब्रान्ट के मत में यह इर्याब (हलिआब) नदी का नाम है और क्रुमु की सहायक है। (वे० इ०)

४. जिमर और केगी भी हिल्लेब्रान्ट के अनुयायी है। (वे० इ०)

---

(१) ऋग्वेद ६।२७।५।

(२) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१५८।

(३) वेदिश्चेमाइथालोजी ३।२६८, जिमर की अल्टेन डिस्चेनलेवेन १८।१६, केगी का ऋग्वेद ३२८।

५. भारतीय अनुशीलन पृष्ठ ३७ "ऋग्वेद की दानस्तुतियों में ऐतिहासिक उपादान नामक लेख में डा० मणिलाल पटेल पी० एच० डी० (मारबुर्ग) ने विश्वभारती शान्तिनिकेतन में अभ्यावर्ती का वर्णन करते हुए कहा है:—'हरियूपीया और यव्यावती के किनारे यह युद्ध हुआ।' हिल्लेब्रान्ट कहते है (लीदेहदेस् ऋग्वेद गोटिंगेन १६१३ पृष्ठ ४६) कि हरियूपीयानदी आधुनिक अरिओब या हलिआबनदी है, जो कि कुरुम प्रान्त की नदियों में से एक है। (यह स्थान पार्थवप्रदेश में नहीं है, जैसा कि ब्रूनहाफर कहते है। यह ठीक है कि ब्रूनहाफर ने ही हरियूपीया को अरिओव पहले-पहल बतलाया था; मगर उनका बतलाया स्थान ठीक नहीं था)। यव्यावती भी उससे बहुत दूर नहीं होगी।"

६. ब्रूनहाफर के मत मे अरिओवनदी हरियूपीया है। (भारतीय अनुशीलन)

वस्तुतः हरियूपीया का नाम ऋग्वेद ६।२७।५ मे आया है। बृहद्देवता ५।१२१ में 'हर्य्युपीया' पाठ आया है और इसको नदी माना है। सायणाचार्य इसको नदी या नगरी दोनो होने का सम्भव मानते है। इन्द्र ने इसके तट पर चायमान अभ्यावर्ती के लिये वरशिख के पुत्रो को मारा। इसका दूसरा नाम यव्यावती भी था। इसी यव्यावती के तट पर चायमान अभ्यावर्ती का यज्ञ हुआ था। ऋग्वेद मे चायमान अभ्यावर्ती का 'सम्राट्' विशेषण इस राजा को ऐन्द्राभिषेक से अभिषिक्त पूर्वदेश का राजा कह रहा है। पूर्वदेश का राजा कुरुमप्रान्त मे जाकर यज्ञ करे, यह सम्भव नहीं। यदि हरियूपीया गंगा और सरस्वती के समान यज्ञ के लिये प्रतिष्ठित होती, तो यज्ञ करने के लिए जाना सम्भव भी था। परन्तु संस्कृतवाङ्मयमात्र मे हरियूपीया या यव्यावती के इतने पवित्र होने मे कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए हरियूपीया या यव्यावती

स्थूलार्मन्—यह देश या स्थान सरस्वती के दक्षिण में है। इससे उत्तर सरस्वती में एक अनुपम ह्रद (अगाध जलवाला कुण्ड) है। इसमें विदेह के राजा मण्य के पुत्र नमी ने यज्ञ के बाद अवभृथ किया था और स्वर्ग को गये तथा लाई गई सौ गाएँ पुत्रोत्पादन द्वारा सहस्र हो गईं। यह बात ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०।१८ में लिखी है। सायणाचार्य इसे देश मानते हैं।

स्त्रसा—यह शब्द ऋग्वेद ३।१।३ में नदीमात्र के अर्थ में आया है।

हरियूपीया—१. वे० इ० "हरियूपीया ऋग्वेद[1] में जहाँ पर वृचीवन्त आभ्यावर्तिन चायमान से हराये गये थे, उस स्थान का नाम है। यह या तो कोई स्थान या नदी हो सकती है। क्योंकि बहुत-सी लड़ाइयाँ नदियों के तट पर लड़ी गई थीं। लुडविक[2] इसको एक शहर मानते हैं, जो कि यव्यावती के तट पर था, जिसे सायण की व्याख्या में इससे निश्चित किया गया है। हिल्लेब्रान्ट[3] सोचते हैं कि यह इर्याब (हलिआब) नदी है, जो कि क्रुमु की एक सहायक नदी है। पर ऐसा सम्भव नहीं।"

२. लुडविक के मत में यह एक शहर का नाम है, जो कि यव्यावती के तट पर था। (वे० इ०)

३. हिल्लेब्रान्ट के मत में यह इर्याब (हलिआब) नदी का नाम है और क्रुमु की सहायक है। (वे० इ०)

४. जिमर और केगी भी हिल्लेब्रान्ट के अनुयायी हैं। (वे० इ०)

---

(१) ऋग्वेद ६।२७।५।

(२) ट्रान्सलेशन आफ दि ऋग्वेद ३।१५८।

(३) वेदिश्चेमाइथालोजी ३।२६८, जिमर की अल्टेन डिस्चेजलेबेन १८।१६, केगी का ऋग्वेद ३२८।

५. भारतीय अनुशीलन पृष्ठ ३७ "ऋग्वेद की दानस्तुतियो मे ऐतिहासिक उपादान नामक लेख मे डा० मणिलाल पटेल पी० एच० डी० (मारबुर्ग) ने विश्वभारती शान्तिनिकेतन मे अभ्यावर्ती का वर्णन करते हुए कहा है:—'हरियूपीया और यव्यावती के किनारे यह युद्ध हुआ।' हिल्लेब्रान्ट कहते हैं (लीदेहदेस् ऋग्वेद गोटिगेन १६१३ पृष्ठ ४६) कि हरियूपीयानदी आधुनिक अरिओब या हलिआबनदी है, जो कि कुरुम् प्रान्त की नदियों मे से एक है। (यह स्थान पार्थवप्रदेश मे नही है, जैसा कि ब्रूनहाफर कहते है। यह ठीक है कि ब्रूनहाफर ने ही हरियूपीया को अरिओब पहले-पहल बतलाया था; मगर उनका बतलाया स्थान ठीक नही था)। यव्यावती भी उससे बहुत दूर नही होगी।"

६. ब्रूनहाफर के मत मे अरिओबनदी हरियूपीया है। (भारतीय अनुशीलन)

वस्तुतः हरियूपीया का नाम ऋग्वेद ६।२७।५ मे आया है। बृहद्देवता ५।१२१ मे 'हर्य्युपीया' पाठ आया है और इसको नदी माना है। सायणाचार्य इसको नदी या नगरी दोनो होने का सम्भव मानते है। इन्द्र ने इसके तट पर चायमान अभ्यावर्ती के लिये वरशिख के पुत्रो को मारा। इसका दूसरा नाम यव्यावती भी था। इसी यव्यावती के तट पर चायमान अभ्यावर्ती का यज्ञ हुआ था। ऋग्वेद मे चायमान अभ्यावर्ती का 'सम्राट्' विशेषण इस राजा को ऐन्द्राभिषेक से अभिषिक्त पूर्वदेश का राजा कह रहा है। पूर्वदेश का राजा कुरुमप्रान्त मे जाकर यज्ञ करे, यह सम्भव नही। यदि हरियूपीया गंगा और सरस्वती के समान यज्ञ के लिये प्रतिष्ठित होती, तो यज्ञ करने के लिए जाना सम्भव भी था। परन्तु संस्कृतवाङ्मयमात्र मे हरियूपीया या यव्यावती के इतने पवित्र होने मे कोई प्रमाण नही है। इसलिए हरियूपीया या यव्यावती

नदी पूर्वदेश मे कही पर होनी चाहिये। ऐतरेय ब्राह्मण ३८।३ मे ऐन्द्राभिषेक से अभिषिक्त पूर्वदेश के राजा की पदवी 'सम्राट्' होती थी, यह स्पष्ट है। ऋग्वेद ६।२७।८ मे चायमान अभ्यावर्ती की पदवी 'सम्राट्' लिखी है, इससे यह पूर्वदेश का राजा था, इसमे अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। ऋग्वेद मे इस प्रकार वर्णन मिलता है। ऋग्वेद ६।२७।४ यह मंत्र इन्द्रस्तुति मे आया है। इसके भरद्वाज ऋषि है। अर्थ यह है:—"हे इन्द्र! जिस वीर्य से आपने वरशिख (असुर) के पुत्रो को मारा, जिस बल से चलाये गये वज्र के शब्द से ही वरशिख का सबसे बलिष्ठ पुत्र फट गया, हमने आपके इस बल को जाना।" ऋग्वेद ६।२७।५ मे "चायमान के पुत्र अभ्यावर्ती को धन देते हुए इंद्र ने वरशिख के पुत्रो को मारा। किस प्रकार मारा? जब इस इन्द्र ने हरियूपीया के पूर्वभाग मे स्थित वृचीवन्तो (वरशिख के पूर्वज का नाम वृचीवत् था, उसकी सन्तान वृचीवन्त) वरशिख के पुत्रो को मारा। तब वरशिख का दूसरा पुत्र जो हरियूपीया के दूसरे भाग मे स्थित था, विदीर्ण हो गया।" ऋग्वेद ६।२७।६ का अर्थ है:—"हे इन्द्र! अन्न अथवा यश की कामनावाले १३० कवचधारी यज्ञपात्रो को नष्ट करते हुए वृचीवन्तो ने आपको मारने की इच्छा से यव्यावती मे आपके ऊपर धावा किया और मारे गये।" ऋग्वेद ६।२७।७ का अर्थ है:—"गतिविशेष से चलनेवाले इन्द्र के घोड़े अन्तरिक्ष मे चलते है। वृचीवन्तो का धन दैववात (देववात के वंशोत्पन्न) अभ्यावर्ती को ईप्सित देते हुए उस इन्द्र ने सृञ्जय नामक राजा के लिये तुर्वश नामक राजा को दिया।" ऋग्वेद ६। २७।८ मे अभ्यावर्ती चायमान का 'सम्राट्' विशेषण लिखा है। इससे यह पूर्वदेश का राजा था, इसमे सन्देह नही। यव्यावती और हरियूपीया, दोनो ही एक है। क्योकि यव्यावती मे अभ्यावर्ती के यज्ञ मे चायमान के पुत्रो का इन्द्र के मारने के लिए धावा

करने का वर्णन है। यज्ञ के पात्रों को भङ्ग करना वृचीवन्तो का इन्द्रशत्रु और यज्ञध्वंसक असुर होना सिद्ध कर रहा है और वृचीवन्तो का इन्द्र द्वारा हरियूपीया के पूर्व पर भाग मे मारा जाना दोनो नाम एक ही के है, यह सिद्ध कर रहा है। हिल्लेब्रान्ट अभ्यावर्ती को ईरान मे मानते है। वह ऐतरेय के प्रमाण से खण्डित हो जाता है।

हरयाण—१. वे० इ० "हरयाण एक मनुष्य का नाम है जो कि ऋग्वेद मे[1] उक्षण्यायन के साथ आता है, और सुषामण के भी साथ आता है।"

वस्तुतः यह शब्द ऋग्वेद ८।२५।२२ मे आया है और वरुराजा का विशेषण है। इसका अर्थ निरुक्त ५।१५ मे 'हरयाणो हरमाणयानः रजतं हरयाण इत्यपि निगमो भवति' यह लिखा है। दुर्गाचार्य ने इसपर यह भाष्य किया है—'हरयाण इत्यनवगतं हरमाणयान इत्यवगमः'। बाद मे मंत्रपाठ दिया है। इसके विश्वमना ऋषि है। उष्णिक् छन्द है। इसमे यान की स्तुति की जाती है। ऋजुगामी चाँदी से बने हुए या चाँदी से मढ़े हुए, घोड़ो से युक्त रथ को उक्षण्यायन और हरयाण (हरमाणयान = नित्य जिसका रथ चला ही करता है) और सुषामा=सुन्दर सामवाले; अर्थात् महादक्ष दाता के यजमान होने पर हमने पाया। इस प्रकार शब्दसारूप्य और अर्थ ठीक होने से 'हरयाण' का अर्थ 'हरमाणयान' है। सायण ने यह अर्थ किया है। सुषामा के पुत्र वरुराजा के दान की प्रशंसा विश्वमना ऋषि कर रहे है। उक्षण्यायन (उक्षन् नाम का वरु का कोई पूर्वज था, उसके गोत्रापत्य अर्थ मे 'उक्षण्' शब्द से 'ण्य' प्रत्यय करके 'उक्षण्य' बना और उससे 'फक्' प्रत्यय करके 'उक्ष-

---

(१) ऋग्वेद ८।२५।२२, निरुक्त ५।१५।

ण्यायन' बना। ये दोनो शब्द छान्दस् है, इससे इनमे वृद्धि का अभाव हुआ)। उत्तण के गोत्रापत्य हरयाण=शत्रु के जीवित और ऐश्वर्यादि के हरण करने के शीलवाले रथ से युक्त, सुषामा के पुत्र वरु को दाता होने पर ऋजुगामी चाँदी से बने या चाँदी-सदृश, घोड़ो से युक्त रथ को हमने मित्रावरुण के प्रसाद से पाया। इसमें हरयाणशब्द एक राजा के विशेषणरूप मे आता है। इससे उस राजा का नाम हरयाण भी प्रसिद्ध था, यह प्रतीत होता है। इसका उत्तण्यायन भी विशेषण है। सायणाचार्यजी इसको अपत्यार्थ तद्धित मे खींचे लिये जाते है और छान्दस् वृद्धि के अभाव का कल्पन करते है।

हमारी समझ मे उत्तन शब्द से 'तत्रसाधुः' ४।४।९८ सूत्र से 'यत्' प्रत्यय करके 'उत्तणि साधुः' इस विग्रह मे 'उत्तण्य' शब्द बनता है और 'बैलो के लिये कल्याणकारक' इसका अर्थ होता है। 'उत्तण्यम् अयनम् गृहम् अस्य' इस विग्रह मे बहुव्रीहिसमास होकर 'बैलो के लिये कल्याणकारक है घर जिसका' इस अर्थ मे 'उत्तण्यायन' शब्द तैयार होता है और राजा का विशेषण है। इसमें हमे छान्दस् वृद्धि के अभाव का भी कल्पन नही करना पड़ता। हरयाण-राजा के नाम से उस प्रान्त का नाम हरयाण पड़ गया, जो आज भी पंजाब मे 'हरियाना' नाम से प्रसिद्ध है। हरियाना के बैल भी जगत् मे प्रसिद्ध है। इससे यह पंजाब के हरियाना का नाम है।

हिमवान्—१. जागराफिकल डिक्शनरी पृष्ठ ७५ "हिमालय पर्वत (मार्कण्डेय पुराण अ० ५४, ५५) 'हिमवान्' देखिये। (हिमवान् पृ० ७५) पुराणो के अनुसार हिमालय या हिमवान्श्रेणी मानसरोवर के दक्षिण मे है (वाराह पुराण अध्याय ७८)।"

वस्तुतः हिमालय एक पर्वत का नाम है। वाजसनेयी संहिता २४, ३० मे 'हिमवते हस्ती'; अर्थात् हिमालय के लिये हस्ती—

ऐसा लिखा है। और भी हिमवत्शब्द का प्रयोग बर्फीले पर्वतों के लिये बहुवचन[1] मे आया है। वाराह पुराण ७८।८ मे मानससर गन्धमालनपर्वत पर इलावृत्त से दक्षिण लिखा है। और उससे हिमालय दक्षिण लिखा है। पुराणो मे हिमालय-पर्वतश्रेणी चीनसागर से लेकर टर्की के आगे के समुद्र तक फैली है। वाराह पुराण मे कैलास के समीपवाले मानसरोवर से दक्षिण नहीं लिखा है।

हिरण्यवर्णा—ऋग्वेद २।३५।६ मे यह शब्द नदीमात्र के अर्थ मे आया है।

ह्रद—अगाध जलवाले स्थान का नाम है। ऋग्वेद १०।१४२।८ मे यह शब्द आया है।

रसाकाशनभोनेत्रे वैक्रमे माधवे कुजे।
पूर्णिमायामगात्पूर्तिं लक्ष्मणस्य पुरोत्तमे॥
गिरीशचन्द्रेण कृतमेतद्वेदधरातलम्।
प्रीत्यै भूयात् सरस्वत्या भवानी विश्वनाथयोः॥

इति श्री तिर्वाराज्याचार्य ज्योतिर्विच्छिरोमणि रामसहाय तनूज लक्ष्मणपुर विश्वविद्यायलय संस्कृत-प्राच्यविभाग-प्रधानाध्यापकावसथिक व्याकरणाचार्य गिरीशचन्द्र कृतम् वेदधरातलम् समाप्तम्।

—:०:—

(१) ऋग्वेद १०।१२१।४।

सहायक ग्रंथ-सूची

ग्रंथ का नाम	छपने का स्थान	सन्
अग्निपुराण	आनन्दाश्रम, पूना	१९०० ई०
अत्रिस्मृति (स्मृतिसमुच्चय)	आनन्दाश्रम, पूना	१९२९ ,,
अथर्ववेद	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१८९५ ,,
अभिधानचिन्तामणि	सेन्ट पीटर्सवर्ग	१८४७ ,,
अमरकोष (रामाश्रमी टीका)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	संवत् १९६२
अष्टाध्यायी	सैन्ट् जोसफ्स इण्डस्ट्रियल स्कूल प्रेस	१९११ ई०
आइने अकबरी का अनुवाद	प्रकाशक जामय उस्मानिया, हैदराबाद दक्षिण	१९३६ ई०
आश्वलायन श्रौतसूत्र	आनन्दाश्रम, पूना	१९१७ ,,
ऐन्शेन्ट जागरफी	गौराङ्ग प्रेस, मिर्जापुर स्ट्रीट, कलकत्ता	१९२४ ,,
उद्योत (नवाह्निक महाभाष्य के साथ, प्रथमावृत्ति)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९०८ ,,
ऋग्वेद	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन	१८९० ,,
इन साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका वालूम १९ आर, अमेरिका की छपी		
ऐतरेय ब्राह्मण (द्वितीयावृत्ति)	आनन्दाश्रम, पूना	१९३१ ,,
ऐतरेयारण्यक (द्वितीयावृत्ति)	आनन्दाश्रम, पूना	१९४३ ,,
ऐतरेयोपनिषद् (अष्टाविंशत्युपनिषद्) छठी आवृत्ति	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९२३ ,,
कठोपनिषद् (अष्टाविंशत्युपनिषद्) छठी आवृत्ति	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९२३ ,,
कथासरित्सागर (चतुर्थ संस्करण)	,,	१९२३ ,,
कलिकपुराण	नारायण प्रेस, कलकत्ता	१८९० ,,
काठकसंहिता	भारतमुद्रणालय, औंध राजधानी	संवत् १९९९

ग्रंथ का नाम	छपने का स्थान	सन्
कात्यायन श्रौतसूत्र	विद्याविलास प्रेस, बनारस	१९०८ ई०
कादम्बरी	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	शक १८५४
कालिकापुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	संवत् १९६४
काव्यमीमांसा (प्रथमावृत्ति)	गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, काशीविद्यासुधानिधि, चौखम्बा, काशी	
कीर्तिकौमुदी	गवर्नमेन्ट सेंट्रल बुकडिपो सोसाइटी प्रेस, बम्बई	१८८३ ई०
कूर्मपुराण	गिरिश विद्यारत्न प्रेस, कलकत्ता	१८९० ,,
कृष्णयजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता)	आनन्दाश्रम, पूना	१९०२ ,,
कौटलीय अर्थशास्त्र	अनन्तशयनग्रन्थमाला	१९२४ ,,
केनोपनिषद् (अष्टाविंशत्युपनिषद्) छटी आवृत्ति	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९२३ ,,
कैयट (महाभाष्य के साथ)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९०८ ,,
गणेशपुराण	गोपाल नारायण कम्पनी प्रेस, बंबई	शक १८१३
गरुड़पुराण	सरस्वती प्रेस, कलकत्ता	१८९० ई०
गर्गसंहिता	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	संवत् १९६६
गोपथ ब्राह्मण	ईजे ब्रिल्ल लेडेंन	१९१९ ई०
चरकसंहिता	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९२२ ,,
छान्दोग्योपनिषद्	वाणीविलास ग्रन्थमाला, काशी	१९४२ ,,
जागराफिकल डिक्शनरी इन्सेन्ट ऐन्ड मेडिवल इन्डिया	(दूसरी आवृत्ति)	१९२७ ,,
जागराफी आफ अर्ली बुद्धिज्म	केगनपाल, लन्दन	१९३२ ,,
जैमिनीय ब्राह्मण	सरस्वतीविहार आर्य भारतीय प्रेस, लाहौर	संवत् १९८४
जैमिनीय ब्राह्मण (द्वितीय कांड)	नागपुर	संवत् २००६
जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (प्रथमावृत्ति)		
ताण्ड्य महाब्राह्मण	न्यूसंस्कृत प्रेस, कलकत्ता	१८७० ई०

ग्रंथ का नाम	छपने का स्थान	सन्
तिलकमंजरी	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९३८ ई०
तैत्तिरीयब्राह्मण	आनन्दाश्रम, पूना	१८९८ ,,
तैत्तिरीयसंहिता	,,	१९०२ ,,
तैत्तिरीयारण्यक	,,	१८९७ ,,
त्रिकाण्डशेष	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बंबई	संवत् १९७२
दशकुमारचरित (पंचमावृत्ति)	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	शक १८ '७
देवलस्मृति (स्मृतिसमुच्चय)	आनन्दाश्रम, पूना	१९२९ ई०
देवीभागवत	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	संवत् १९८२
नरसिंहपुराण (द्वितीय संस्करण)	गोपालनारायण कम्पनी प्रेस, कालबादेवी, बंबई	१९११ ई०
नागरीप्रचारिणी पत्रिका, काशी		संवत् १९८० से–९० तक
नाट्यशास्त्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस	१९२९ ई०
नारदीय महापुराण (बृहन्नारदीय महापुराण)	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	संवत् १९८०
निरुक्त (प्रथमावृत्ति)	संस्कृत एन्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई	
नीलमतपुराण	पंजाब-संस्कृतसीरीज, लाहौर	१९२४ ई०
नैषधीयचरित	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९२८ ,,
न्यास (प्रथमावृत्ति)	चौखम्भा, काशी	
पंचविंश ब्राह्मण	चौखम्भा, काशी	
पदमञ्जरी (प्रथमावृत्ति)	काशीविद्यासुधानिधि, काशी	
पद्मपुराण	आनन्दाश्रम, पूना	१८९४ ई०
कृष्णोपनिषद् (अष्टाविंशत्युपनिषद्)	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९२३ ,,
फाहियान की भारतयात्रा का अनुवाद (प्रथमावृत्ति)	इंडियन प्रेस, प्रयाग	
बृहज्जाबालोपनिषद् (अष्टाविंशत्युपनिषद्)	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९२३ ई०
बृहत्कथामंजरी	निर्णयसागर प्रेस, बंबई	१९०१ ,,

ग्रंथ का नाम	छपने का स्थान	सन्
बृहत्कथा श्लोकसंग्रह	प्रथमावृत्ति	
बृहत्पराशरसंहिता (बृहत्संहिता के साथ)	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १९६७
बृहत्संहिता	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १९६७
बृहदारण्यकोपनिषद्	आनन्दाश्रम, पूना	१९२७ ई०
बृहद्देवता (शौनकीय बृहद्देवता)	हर्वर्ड यूनीवर्सिटी, अमेरिका	१९०४ ई०
बृहन्नारदीय पुराण (नारदीय पुराण)	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १९८०
बौधायन धर्मसूत्र	चौखम्भा-सीरीज, बनारस	संवत् १९९१
बौधायन श्रौतसूत्र	मिशनप्रेस, कलकत्ता	१९४० ई०
बौधायनस्मृति	गवर्नमेंटप्रेस, मैसूर	१९०७ ई०
ब्रह्मपुराण	आनन्दाश्रम, पूना	१८९५ ई०
ब्रह्मवैवर्तपुराण (जीवानन्द विद्यासागर)	सरस्वतीयंत्रालय, कलकत्ता	१८८८ ई०
ब्रह्माण्डपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १९६२
भविष्यत्पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	संवत १९६७
भारतभूमि और उसके निवासी (दूसरा परिवर्धित संस्करण)	रत्नाश्रम, आगरा	संवत् १९८७
भारतभूमि परिशिष्ट	(ऊपर की पुस्तक का ही अंग)	
भारतीय अनुशीलन	हिन्दीसाहित्यसम्मेलन, प्रयाग	संवत् १९९०
भारतीय इतिहास की रूपरेखा (द्वितीय संस्करण)	हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, इलाहाबाद	१९४२ ई०
मत्स्यपुराण	आनन्दाश्रम, पूना	१९०७ ई०
,,	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	१८९२ ई०
मनुस्मृति	निर्णयसागरप्रेस, बंबई	सन् १९०९
महाभारत	चित्रशालाप्रेस, पूना	
,,	वाविलप्रेस, मद्रास	१९३४ ई०

ग्रन्थ का नाम	छपने का स्थान	सन्
महाभारत	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	१९१४ ई०
,, (प्रथम संस्करण)	सुथकर, पूना	
महाभारत (हरिवंशपुराण) प्रथमावृत्ति	गोपालनारायण कम्पनी प्रेस, बम्बई	
माण्डूक्योपनिषद् (अष्टविंशत्युपनिषद्)	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	१९२३ ई०
मार्कण्डेयपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई	सं० १९५९
मुंडकोपनिषद् (अष्टविंशत्युपनिषद्)	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	१९२३ ई०
मृच्छकटिक	वाचस्पत्य यन्त्रालय, कलकत्ता	१९१८ ई०
मेघदूत	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	१९१० ई०
मेदिनीकोश (प्रथमावृत्ति)	चौखम्भा सीरीज, काशी	
मैत्रायणीसंहिता	भारतमुद्रणालय, अवधनगर	संवत् १९६८
योगवाशिष्ठ	गोपालनारायण कम्पनी प्रेस, बम्बई	शक १८२८
रघुवंशमहाकाव्य	चौखंभा-सीरीज, काशी	१९३८ ई०
राजतरंगिणी (प्रथम संस्करण)	एजुकेशन सोसाइटी	
राजपूताने का इतिहास	वैदिकयन्त्रालय, अजमेर	१९३३ ई०
लघुशिवपुराण	(हस्तलिखित निजी)	
लाट्यायन श्रौतसूत्र	वाल्मीकि यन्त्रालय, कलकत्ता	१८७२ ई०
लिंगपुराण	लक्ष्मीवेंकटेश्वरप्रेस, खेतबाड़ी, बम्बई	संवत् १९८१
वशिष्ठस्मृति	गवर्नमेंट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई	१९१६ ई०
वाजसनेयिसंहिता (शुक्ल यजुर्वेद)	विद्याविलासप्रेस, बनारस	१९१५ ई०
वात्सायनकामसूत्र (दामोदरलाल गोस्वामि संशोधित)	चौखम्भा, काशी	
वामनपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १९६०
वायुपुराण	बप्टिस्मप्रेस, कलकत्ता	१८८० ई०
,,	कालिका यन्त्रालय, कलकत्ता	संवत् १९३७
,,	आनन्दाश्रम, पूना	१९०५ ई०
वाराहपुराण	गिरिशविद्याप्रेस, कलकत्ता	१८९३ ई०

ग्रन्थ का नाम	छपने का स्थान	सन्
वाल्मीकीय रामायण	गुजराती प्रेस	१९१३ ई०
,,	लाहौर	संवत् १९३६
,,	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	शक १८३०
,, (प्रथमावृत्ति, बंगपाठ)	इटली	
विक्रमाङ्कदेवचरित,	ज्ञानमंडलयन्त्रालय, काशी	संवत् १९७८
विश्वकोष (विश्वप्रकाश)	चौखम्भा, बनारस	२९११ ई०
विष्णुधर्मोत्तरपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई	संवत् १९७८
विष्णुपुराण	जनताप्रेस, बंबई	शक १८२४
वेणीसंहार नाटक	वाचस्पति यन्त्रालय, कलकत्ता	१९३४ ई०
वेदव्यासस्मृति (स्मृतिसमुच्चय)	आनन्दाश्रम, पूना	१९२९ ई०
वेदिक इन्डेक्स	(मेकडानलकीथ रचित), लन्दन	१९१२ ई०
वैजयन्ती कोष	गवर्नमेंट प्रेस, मद्रास	१८९३ ई०
व्याकरण महाभाष्य (नवाह्निक) प्रथमावृत्ति	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	
शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिनीय शाखीय)	बप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता	संवत् १९६०
,, (डा० वेबर द्वारा)	बर्लिन-संस्करण	१८५५ ई०
शतपथब्राह्मण (काण्वशाखीय)	आर्यभारतीयप्रिंटिंगवर्कप्रेस, लाहौर	१९३९ ई०
,,	मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर	
शब्देन्दुशेखर	चौखम्भा, काशी	
शांखायन श्रौतसूत्र	बैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता	१८८८ ई०
शाश्वतकोष	बर्लिन-संस्करण	१८८२ ई०
शिवमहापुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई	संवत् १९८२
शुक्लयजुःसंहिता (माध्यन्दिन शाखीया)	विद्याविलासप्रेस, बनारस	१९१३ ई०

ग्रन्थ का नाम	छपने का स्थान	सन्
श्रीमद्भागवत् पुराण (मूल गुटका) छठी आवृत्ति	निर्णयसागरप्रेस, बंबई	१६२३ ई०
समाससंहिता (बृहत्संहिता के साथ)	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १६६७
सामवेद (सेलेक्टइक्सप्रेशन, प्रथमावृत्ति)	सनातनधर्मप्रेस, मुरादाबाद	१६१७ ई०
सुश्रुतसंहिता	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	१६०१ ई०
सौरपुराण	आनन्दाश्रम, पूना	शक १८८१
स्कन्दपुराण	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई	संवत् १६६५
स्कन्दपुराण (हिमवत्खण्ड, हस्तलिखित)	पुस्तकालय श्रीदेवाचार्य साहित्यरत्न, सूर्यकुण्ड, बनारस का पुस्तकालय	संवत् १८५२
हस्त्यायुर्वेद	आनन्दाश्रम, पूना	१८६४ ई०
हरिवंशपुराण (प्रथमावृत्ति)	गोपालनारायण प्रभृति मण्डलप्रेस, बंबई	
हिंदी-विश्वकोष (प्रथमावृत्ति)	कलकत्ता	
ह्वेनसांग का भारत-भ्रमण (ठाकुरप्रसाद द्वारा अनुवादित)	इंडियन-प्रेस, प्रयाग	१६२६ ई०



शुद्धि-पत्र

(फुटनोट की अशुद्धि-पंक्ति फुटनोट के ऊपर की पंक्ति से ली गई है)

पेज	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१६	रामनरेश	रामपाल नरेश का
८	(फुटनोट) १	२।६।३	२।१०
१३	७	३७।३३	४७।४३
३५	९	गांछ्न	गांघन
३७	६	नाम से प्रसिद्ध...	नाम से प्रसिद्ध नहीं है।
,,	१४	और हैं, नहीं है।	और हैं।
४१	५	के बहुत ऊँचे	के समीप बहुत ऊँचे
४२	२	मूरिखक	मूषिक
४३	(फुटनोट) १	पुराण	पुराण आदि०
४४	२३	अयोवद्दृतरैः पूरभिः	अयोवद्द्दृतरैः पूर्भिः
,,	२४	उरुष्ये	उरुष्य
४७	१३,१४	क्षण्	छ्ण्
५३	४	आरह	आरट्ट
५५	१०	पठार	पाथर
,,	२४	१८।१६	१६।१६
५७	४	हम उत्तरी पूरी	हम पूरी
६०	१०	मुस्ताग करपुरम् कोवम	मुस्ताघ करकोवम
,,	११	बैलफोल	बलफोल
६१	१७	आरति	अराति
६२	४	११।११४	११।११५
,,	७	८।१६	८।१४
६५	२३	अरञ्जिर	उरञ्जिर
८०	१४	स्तोत्र	स्रोत
८२	२०	८।४६।१० में	८।४६।१०,७।१८।७ में

८३	८	सौम=गया	सौम=जाऊँगा
,,	१०	क्योंकि इसमें शव के शुद या	शुद=गया,
८६	(फुटनोट) ४	कम्बोज	कम्भोज
८७	१	वायु० पू० २६।१५१	वायु० उ० २६।१३५
९६	३	गुहशिव और उसके भतीजे खिरधार	गुहशिव और खिरधार के भतीजे
१००	१२	यह . . ए० डी०	यह १५५७ ए० डी० में राजधानी बनी और
१०८	१	रेवाकूल में लिखी	रेवाकूल में नृपुरी लिखी
१०९	(फुटनोट) ४	२३।६६	२३।१६
,,	,, ६	ब्रह्मा० म० उपो० ६।१८	ब्रह्मा० अ० १६।५३
११७	(फुटनोट) ११	१।१४१	१।१४१।३
१२७	१३	कि वह भी	क्योंकि आप भी
१३५	१७	४।७	४।७।१
१३६	७	इस शब्द . क्षत्रिय	कठायन शब्द को कठ क्षत्रिय
१३९	(फुटनोट) १०	वायु० पू० ४७।१३६	वायु० पू० ४५।१३६
१४४	१४	अ० ९	अ० १
१५८	(फुटनोट) १	१३।५।४।७	१४।६।६।१
,,	,, ३	३।१।२	३।१।१
,,	,, ४	पंचालानां	कुरु पंचालानां
१७१	६	लोपा	लोया
,,	(फुटनोट) ४	१२।४१	१२।६१
१७९	९	४००	८००
,,	१९	अ० ८३	अ० १३
१८६	७	वृहिमान्	वृष्टिमान्
१८९	२	उन पुराणों	उस राजा
१९०	१	११४।७३	१२४।७३

१६२	५	१३	२३
१६७ (फुटनोट)	६	४३	५३
,, ,,	७	३७।२४	उ० ३७।२४
२०१	११	पारवाली नदी	पारवाली ह्लादिनीनदी और
२०२	२३	गिरिजाक	गिर्भ्राक
२०६ (फुटनोट)	७	हिरएय	हैरएय
२०७	४	२८	१८
२२३	२	महाकोशल के समान	यही महाकोशल है
२३३	१७	चक्रकोटा राष्ट्र	चक्र राष्ट्र
२४६	२०	२।२२।२ में	
			५।५४।१४ में 'क्रिवि' का अर्थ 'कर्ता' है
२५३	१६	नेत्रों	पेजों
,,	२४	४।१०।४	४।१०।५
२६५ (फुटनोट)	३	३१।१०	उ० ३७।६
२८२	५,६,८,१०	जा० डि०	ए० जा०
२८४	७	वर्णा	वरणा
२८५	२०	गदाब	आरगंदाब
२८७	२४	और पुष्करावती	और यूनानियों का पुष्करावती
२८६	२०	गधाज्	मगधाज्
२६२	७	शब्द सचार	शब्द गोसंचार
२६३	७	ऊरु	उरुः
२६७ (फुटनोट)	६	१०।६४।१	१०।६८।१
,, ,,	१२	७।६६।२	७।६५।२
२६८	८	शेप	शेवक
३०१	५	२२।६७४	२२।१७८
३०७	१	सतहत्रपातापी	शतद्रु या तापी
३११	३	८	१८

३१६	११	पुत्र	नाम
३२२ (फुटनोट)	४	१०।८४।८	१०।८४।४
३२३ (फुटनोट)	१६	जिमर	पिशल
३२७	१५	सोम लोगों का	सोम लोगो की गायों का
३२६	१	जनपद	जानपद
३३०	११	मेहलू	मेहत्नू
,, (फुटनोट)	३	गिरेरधिभि	गिरेरधि
३३१	८	त्रिकूट यमुनोत्तरी पर्वत 'त्रिकूट' देखो	
३३३	१०	दीवालों के लिये	आता है दीवालो से घिरे किले के लिये प्रमाण आता है
३४२	२४	पूरोर्वोरण	पूरोरण
३४७ (फुटनोट)	४	५२।६१।।	५२।६१।।
३४६	१६	मत्स्यपुराण के	मत्स्यपुराण २७३।२३, वायु०
३५१	६	१।४३।४	१।१४३।४
,,	११	कम	वन
३५२	२१	द्रुरोण	दुरोण
३५५ (फुटनोट)	१	वायु०	वायु० पू०
३६२ (फुटनोट)	१	४।१७।२१,१६।७।	४।१७।२,१६।७,
,, ,,	५	६।३४।७	६।३४।४
३७४	१३	नर्मन या नर्मण	नर्मिन या नर्मिण
३७७	२	अपप्रभ्रंशन	अवप्रभ्रशन
,,	७	६।५।१८	६।५।१७
३७६	४,६	न्यसस	निसिश्रंस
,,	१५	त्विषजुध्वम्	जुषध्वम्
,, (फुटनोट)	६	२६०	२०६
३८०	१	कस्मान्निषण्णम्	कस्मान्निषदनोभवतिनिष
,,	२	निषध्य	निषद्य

३८०	२	जीविनः	जीवनः
,,	३	सौघन्वनाः	सौघन्वनः
,,	१६	इनमें स्थपति का	इस स्थपति का इनमें
३८६	६	दक्षिण	दक्षिण-पश्चिम
३८७	३	दक्षिणी	उत्तरी
,,	५	दक्षिण तट	उत्तर तट
,,	६	उत्तर	दक्षिण
,,	८	उत्तरी	दक्षिणी
,,	,,	दक्षिणी	उत्तरी
३८८	११	अर०	आदि०
३८९	१४	याच्याना	पाच्याना
,,	१५	नीच्य लोगों	नीच्य और अपाच्य लोगों
३९१	१६	दार्शदवृतु	दार्षद्वत
३९२	(फुटनोट) १	१६३	३६३
३९३	८	सत्रिष	सत्रिणः
३९४	(फुटनोट) ५	१५।२९०	१५।२६०
४०७	१०	जैगल	बलि
४१५	१०	ऊर्णा	ऊर्णा के झुण्ड
४१६	५	मेय	येय
४१९	१०	मेद्य	मेघ
४२१	१५	भिन्न थे .और कुत्स	भिन्न थे। और कुत्स
४२३	(फुटनोट) १४	१२९०	१८९०
४२४	२२	८ । ६ । ४८	८ । ६ । ४६
४३४	८	अपिया	आराइया
४३६	१७	,,	,,
४४४	७	ब्रह्मपुत्र	विसना और ब्रह्मपुत्र
,,	१९	ब्राह्मणीमंडल	ब्राह्मणी ग्राममंडल

४४४	२२	दडेयश्वर	दडत्रहेश्वर
४४६	१७	वागिक	वायिक
४४६	६	ताम्रस्मृत्ति	ताम्रलिप्ति
४५०	१६	पुर	पुर्
४५४	६	पराजित	अपराजित
,,	१४	प्रकाश	सकाश
४७४	१५	६।१६।१३	१०।१०७।१०
४७६	७	प्रभभव	प्रभव
,,	१७	प्लक्षप्राश्रवण	प्लक्षप्रास्रवण
४८४	१४	उमडलविड	उमउलविद्ड
४८५	१६	केकय	बाहीक
४८६	१०	डिक्शनरी	डिक्शनरी पृ० ३१
५१६	२३	विदेहेविति	विदेहेष्विति
५२०	४	शवसेशीनरेषु	सवशोशीनरेषु
५२२	१७	ओपल	ओयल
५५०	१०	ब्राह्मण सौत्रकालिक	ब्राह्मण और उत्तरकालिक
५५१	(फुटनोट) ११	३८	८३
५६०	६	उत्तर	उत्कर
५६२	३	मरुवृधाः	मरुद्वृधाः
,,	१६	विजय में दृश्य	विजयदृश्य में
५६३	३	सात	एक सौ सात
५६४	(फुटनोट) ६	७०।१४७	७० तथा १४७
५६६	१३	४५।६	४५।६७
५७७	(फुटनोट) ४	३।२०४, ऋ०	३।२०४, केगि ऋ०
५७६	(फुटनोट) ४	असीमितप्रभा	अमितभा
,,	,, ६	१६६	१६६
,,	,, ६	१६००	१६।१००

५८६	७	१।१६।५	१।१६०।७
५८७	१६	सूत्र	धर्मसूत्र
,,	(फुटनोट) १	१७५	१।१७५
५८६	५	वंगदेश	वगदेशवासी
५६५	१,३	वितस्था	वितस्थाना
,,	८	पाकलज	माचलज
,,	(फुटनोट) ८	नद	नदी
५६६	११	कर्ण	कण्र्य
६१३	४	PNTPN	फ्रेटी
,,	(फुटनोट) १६	छान्दोग्योपनिषद्	छान्दोग्योपनिषद् ८।१४
६१५	७	ऋभुथु	ऋभु
,,	२२	विभूति को महत्व	विभूति के महत्व के कारण
६१६	११	ओषधियाँ प्रजाओं	ओषधियों और प्रजाओं
,,	१२	टकटकी लगाकर रक्षा	निरंतर रक्षा
६१८	१६	ब्रह्मणस्पति हवि	ब्रह्मणस्पति की हवि
६१६	१६	विश्वपन्य	विश्वपस्न्य
६२५	५	१०।३६।४	१०।४६।४
६२७	(फुटनोट) ५-६	प्रारभ से ६ में	से प्रारंभ जिसमें वैकर्णों में
६२६	६,६	परपूज	पर्शूज
६४०	३	शर्यणावन्त	शर्यणा नामक झिले में शर्यणावन्त
६४१	२	है	है, इसकी कोई संभावना नहीं
६४८	१०	और था।	और था (अमरकोश भूमिवर्ग)।
६४६	(फुटनोट) ५	सोसाइटी	सोसाइटी १६ से प्रारंभ, कीथ जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी
६५२	२१	जेत्तुर	जयतुर

६६३	(फुटनोट)	२	१६०३-४।६०१ पृ०	१६०३-२८।६७१ पृ०
६६५	,,	४	परावन्ति	पराकरावन्ति
६६६	११		उत्तर	उत्तर-पूर्व
६६७	२०		में सौ	में कई सौ
६७३	२४		स्थान दशपुर माना	स्थान माना
६७६	४		अ० ६७	अ० ५
६७६	१३		सदानीरा	करतोया
,,	(फुटनोट)	२	१५२४	१५।२४
,,	,,	४	वर्ग 'गराडक'	'बड़ीगराडक'
६८५	१४		ऋग्० ६।६६	ऋग्० ६ । ६६ । ६
६८७	१३		साथ-साथ	सात-सात
६८६	(फुटनोट)	४	१।६३।१	१।१६३।१
६६८	१४		सिंधवः	सिन्धौ
७१६	२०		बिम्ब	बिम्व
७२१	२२		सरस्वती का	सिन्धु का
७२५	२१		८।२१।१८	८।२१।१७
,,	२३		६।५८	६।५६
७५१	(फुटनोट)	१	वायु०	वायु० पू०
७५२	,,	१२	,,	,,
७५६	१०		सिंधु	सिधुरथ
७५७	१३		६।५७।५	६।५०।५
७७०	१३		चोरनापा	चोरनाया
७७१	१२,१८,२१		प्रपिपु	प्रयियु
	१३,१८,२१		वायेपु	'वायेयु